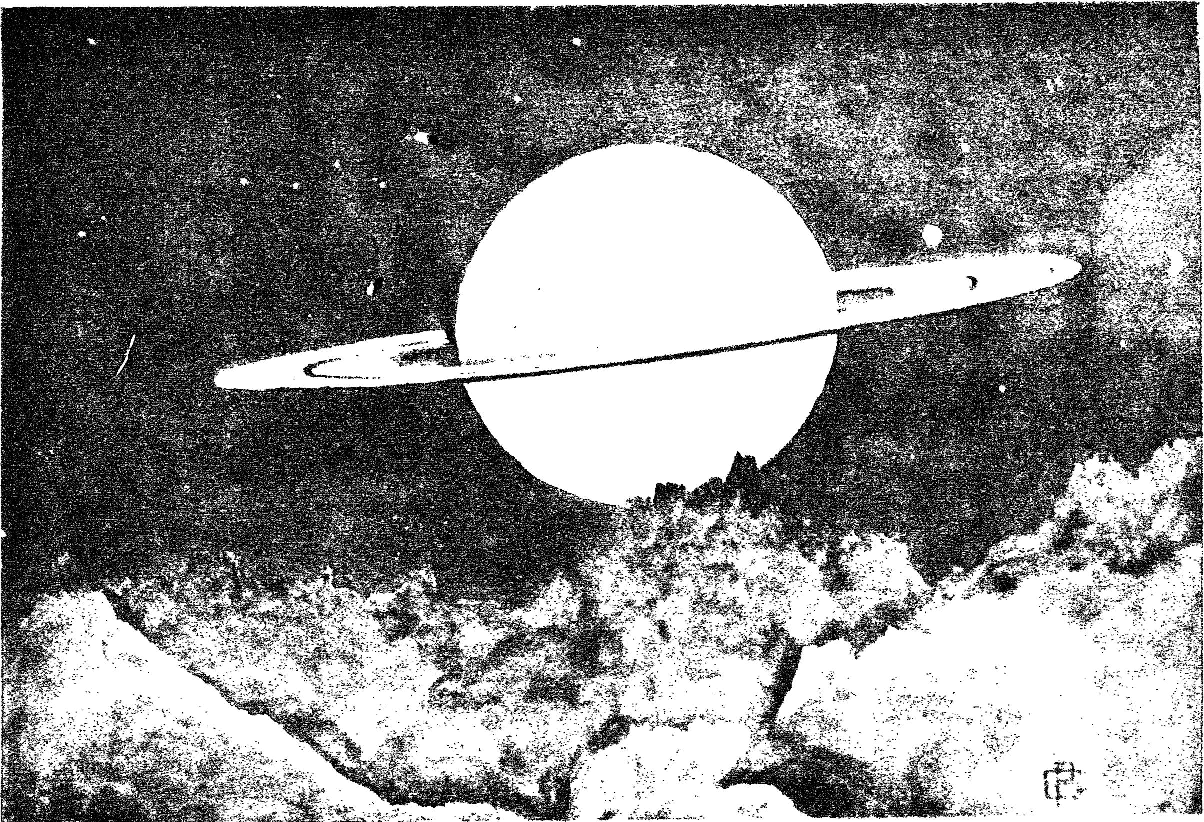


शनि

मिमास नामक उपग्रह से देखने पर शनि जैसा दिखलाई पड़ेगा, वही दृश्य इस चित्र में अंकित है। शनि के अन्य दो उपग्रह भी दिखलाई पड़ रहे हैं।

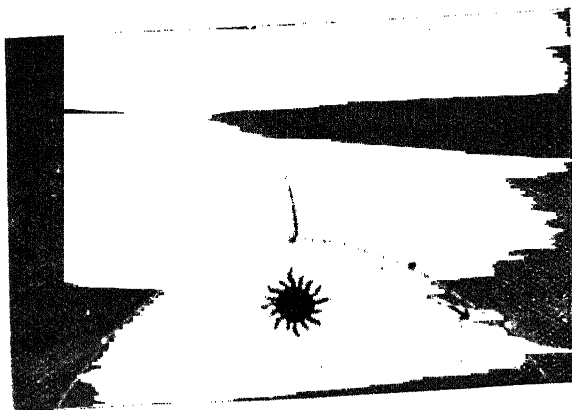
सौर-परिवार

लेखक

गोरखप्रसाद

डी० एस-सी० (एडिन०), एफ़० आर० ए० एस०,

रीडर, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी



इलाहाबाद

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, संयुक्त प्रांत

१९३१

भूमिका

प्राय: सभी लोग ज्योतिष के विषय में कुछ न कुछ जानना चाहते हैं परन्तु हिन्दी में (बालकों के लिए लिखी गई एक-दो छोटी पुस्तकों को छोड़) कोई भी पुस्तक ऐसी नहीं थी जिससे लोग इसका ज्ञान प्राप्त कर सकें। इसलिए हिन्दुस्तानी एकेडेमी के इस प्रस्ताव को कि मैं सबके समझने योग्य एक पुस्तक ज्योतिष पर लिखूँ मैंने सहर्ष स्वीकार किया। मेरी इच्छा थी कि मैं एक ऐसी पुस्तक लिखूँ जिसमें सरल गणित-ज्योतिष, भारतीय ज्योतिष, और ज्योतिष-इतिहास भी आ जायँ; परन्तु विस्तारभय से इन विषयों को और नक्षत्रों की चर्चा को भी छोड़ देना पड़ा।

आश्चर्य की बात है कि ज्योतिष की अनेक समस्यायें, जिनके लिए संसार के सबसे बड़े वैज्ञानिकों को वर्षों घोर परिश्रम करना पड़ा था, अत्यन्त सुगमता से सर्वसाधारण को समझाई जा सकती हैं। एक दिन एक मित्र के घर जाने पर मैंने आश्चर्य के साथ देखा कि उन्होंने एक टुकड़े काग़ज़ पर वे ही चित्र खींचे थे जिन्हें मैंने अपनी पुस्तक में पृथ्वी कैसे तौली गई इस विषय को समझाने के लिए दिये थे। मैंने उनके पास अपनी पुस्तक की हस्त-लिखित प्रति छोड़ रक्खी थी, यह मैं जानता था; परन्तु इसका मैं अनुमान न कर सका कि इन चित्रों को उन्हें खींचने की क्या आवश्यकता पड़ी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि मेरी पुस्तक से यह जान लेने पर कि पृथ्वी कैसे तौली जा सकती है वे बहुत आनन्दित हुए और तब उन्हें यह सूझी कि देखना चाहिए कि मैं इस विषय को पूर्णतया समझ गया हूँ या नहीं और इसलिए वे अपनी स्त्री को वही बात समझाने की

चेष्टा कर रहे थे ! और ख़ूबी यह कि उन्होंने विज्ञान का अध्ययन कभी भी नहीं किया था !

इस पुस्तक में सौर-जगत् के उन सभी अंगों का, जो सर्व-साधारण के समझने योग्य हैं, सरल भाषा में और विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है और चित्रों को अधिक संख्या में देकर पाठकों के पास दूरबीन या अन्य यंत्र के न रहने की असुविधा को बहुत कुछ मिटा दिया गया है। परन्तु पुस्तक विशेषकर उन लोगों के लिए लिखी गई है जो किसी बात को सत्य मानने के पहले उसका प्रमाण चाहते हैं। साथ ही इस पर भी ध्यान रक्खा गया है कि यह पुस्तक उनकी समझ में भी अच्छी तरह आ जाय जो अधिक गणित या विज्ञान न जानते हों। मेरा विश्वास है कि धैर्य के साथ पढ़ने से इस पुस्तक की प्रायः सभी बातें उन लोगों की समझ में आ जायँगी जिन्होंने कभी हाई स्कूल तक का गणित और विज्ञान का अध्ययन किया होगा। बहुत सी बातें छोटे छोटे लड़के लड़कियाँ भी समझ लेंगी।

प्रस्तुत पुस्तक-सरीखे ग्रन्थों में दी गई बातें नवीन नहीं हो सकतीं; तिस पर भी कई स्थानों पर समझाने के ढंग में, किसी भी भाषा की पुस्तक से तुलना करने पर, नवीनता पाई जायगी।

मेरे मित्र श्री० सत्यजीवन वर्मा एम० ए० की कृपा से भाषा की कई एक छोटी-मोटी त्रुटियाँ दूर हो गई हैं और मेरे शिष्य श्री० रामइक़बाल लाल श्रीवास्तव ने इस ग्रंथ की प्रति को प्रेस में भेजने योग्य बनाने में बड़ी सहायता की है, जिसके लिए उपरोक्त दोनों सज्जनों का मैं आभारी हूँ। कई बेधशाला और कारख़ाना के अध्यक्षों और कई एक प्रकाशकों ने कृपापूर्वक अपने चित्रों को उद्धृत करने की अनुमति दी है, जिनके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। मेसर्स ज़ाइस (Messrs. Zeiss, Jena, Germany), वाटसन एण्ड

सन्स (Messrs. W. Watson & Sons, London), रॉस (Messrs. Ross Ltd. London), विज्ञान-परिषद, प्रयाग, और इंडियन प्रेस, प्रयाग की कृपा से उनके कई ब्लाकों का उपयोग किया जा सका है, जिसके लिए हम उनके ऋणी हैं। इस पुस्तक की छपाई में इंडियन प्रेस के व्यवस्थापक और कार्यकर्त्ताओं के विशेष परिश्रम, सावधानी और सहायता के लिए मैं उनका बहुत अनुगृहीत हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक-सरीखे सचित्र ग्रंथों का छपवाना अधिक व्यय के कारण बहुत कम प्रकाशकों से निबह सकता, लेकिन हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने इस कठिन कार्य को अपने हाथ में लिया, इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। मैं बहुत चाहता था कि पुस्तक की कुल प्रतियाँ आर्ट पेपर पर छपें। केवल ऐसे ही काग़ज़ पर इन चित्रों का पूर्ण सौन्दर्य दिखलाई पड़ सकता और ब्लाक भी इसी आशा से बहुत बारीक बनवाये गये थे; परन्तु पुस्तक को प्रेस में भेजते समय एकेडेमी ने किफ़ायत के ख़याल से साधारण काग़ज़ लगाना ही उचित समझा।

बेली रोड, इलाहाबाद
अक्टोबर, १९३१

गोरखप्रसाद

विषय-सूची

अध्याय ४

दूरदर्शक का इतिहास और कुछ प्रसिद्ध दूरदर्शक

अध्याय ५

सूर्य की गरमी

पृष्ठ

अध्याय ६

सूर्य-कलंक

अध्याय ७

रश्मि-विश्लेषण

पृष्ठ

अध्याय ८

सूर्य-ग्रहण

अध्याय ९

सूर्य की बनावट

अध्याय १०

चन्द्रमा

अध्याय ११

सौर-परिवार और इसके दो सदस्य, बुध और शुक्र

अध्याय १२

अवान्तर ग्रह इत्यादि

अध्याय १७

उल्का

अध्याय १८

क्या हम ग्रहों तक जा सकते हैं ?

अशुद्धि

पृष्ठ ४५८, अंतिम पंक्तियों होनी चाहिए "हैं; इनसे नीचे यूरेनस और नेपच्यून हैं और नीचे बायें कोने में पृथ्वी और बुध हैं"।

———

रंगीन चित्र

सौर-परिवार

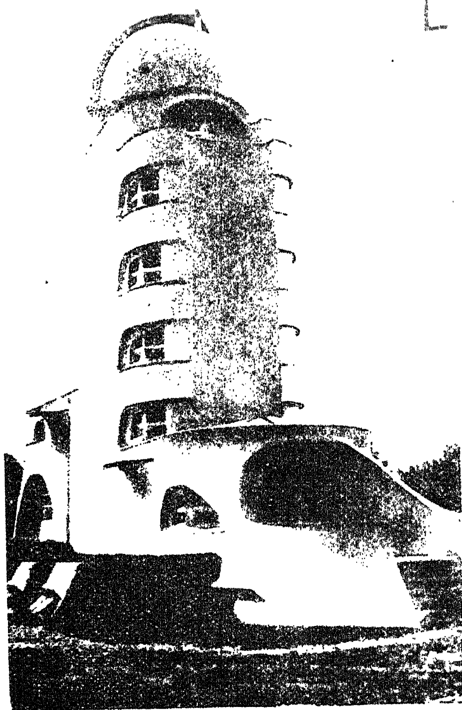
अध्याय १

प्रारम्भिक बातें

१—**सब विज्ञानों का पिता**—सूर्य, चन्द्रमा और तारे सृष्टि के आदि से ही मनुष्य के हृदय में आश्चर्य की प्रबल तरंगें उठाते रहे होंगे। यही बात है जिसके कारण ज्योतिष का जन्म सब विज्ञानों से पहले हुआ और जिसके कारण अब तक इसमें बराबर उन्नति होती रही है। ज्योतिष दूसरे विज्ञानों का पिता है, क्योंकि सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों के नियमित उदयास्त से, चन्द्रमा के विधि-युक्त घटने बढ़ने से, और जाड़ा, गरमी, बरसात, इत्यादि ऋतुओं के नियमानुसार लौटने से ही पहले-पहल मनुष्यों ने यह सीखा होगा कि इस परिवर्तनशील संसार में कोई नियम भी है और नियमों का ज्ञान करना ही विज्ञान की उत्पत्ति का मूल कारण है। इसके अतिरिक्त, जैसे तुच्छ धातुओं से सुवर्ण बनाने की खोज में रसायन-शास्त्र और रोगों से मुक्ति पाने की चेष्टा में वैद्यक-शास्त्र की उत्पत्ति हुई, उसी प्रकार ज्योतिष के प्रश्नों को हल करने में गणित-शास्त्र के अनेक अंगों की उत्पत्ति हुई और आज-कल भी ज्योतिष के कारण गणित में विशेष उन्नति हो रही है।

गोलीय त्रिकोणमिति (Spherical Trigonometry) की उत्पत्ति और विकास केवल नक्षत्रों के परस्पर सम्बन्ध जानने की

इच्छा से हुआ। गणित के उन शाखाओं में, जिन्हें चलन और चलराशिकलन कहते हैं, अनेक बातें ज्योतिष की समस्याओं ही के कारण निकाली गईं। गतिशास्त्र की नींव न्यूटन के वे तीन नियम हैं जिनका सच्चा होना न्यूटन ने ज्योतिष ही के बल पर प्रमाणित किया था। अभी हाल में आइन्स्टाइन (Einstein) के प्रसिद्ध सापेक्षवाद (Theory of relativity) का समर्थन ज्योतिष के ही द्वारा किया गया है। भूगोल भी ज्योतिष का बहुत ऋणी है। क्या ज्योतिष की अनुपस्थिति में कोलम्बस कभी यह समझ सकता था कि यूरप से पश्चिम जाने पर भारतवर्ष या अन्य कोई देश अवश्य मिलेगा? कदापि



[पापुलर सायन्स से

चित्र १—आइन्स्टाइन अट्टालिका-बेधालय; ऐसे बेधालयों से बेध करके आइन्स्टाइन के सिद्धान्तों का सत्य होना प्रमाणित किया गया है।

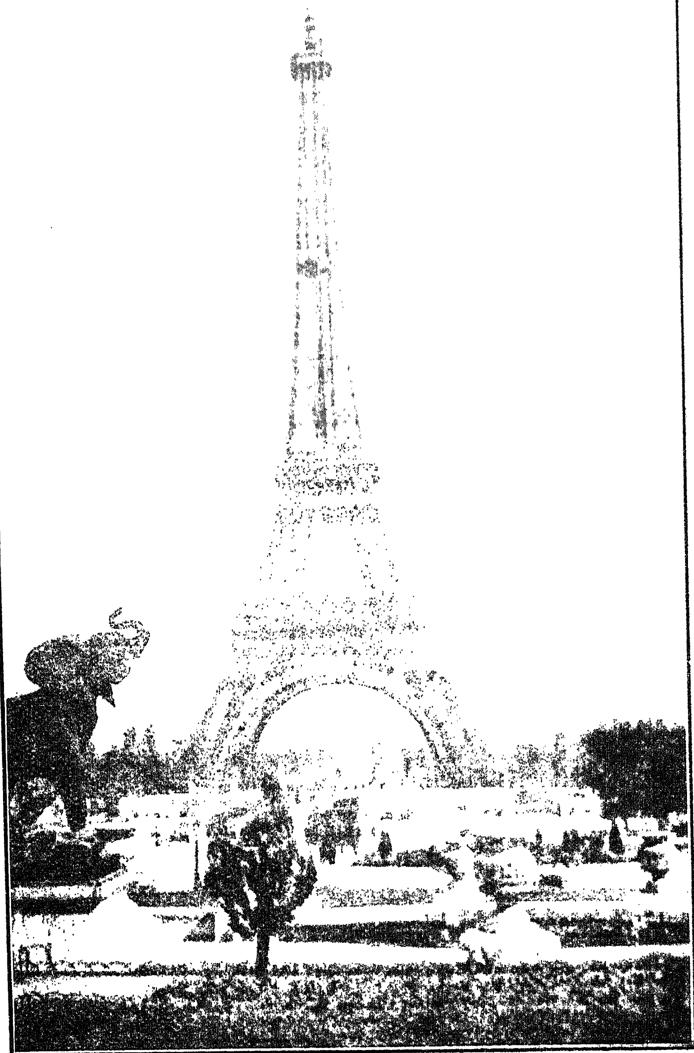
नहीं। उसने बार बार तारात्रों, सूर्य, और चन्द्रमा को पूर्व में उदय होकर पश्चिम में अस्त होते तथा उन्हीं तारात्रों को पूर्व दिशा में दूसरे दिन फिर उदय होते देखा था। इससे उसने निश्चय किया

कि वह भी यदि पश्चिम ही चलता जाय तो अवश्य ही कभी न कभी वह भारतवर्ष पहुँच जायगा, यद्यपि यह देश यूरप से पूर्व दिशा में है।

२—अत्यन्त उपयोगी है—कोलम्बस की बात तो पुरानी है। अब भी जहाज़ के कप्तानों को ज्योतिष की आवश्यकता नित्य पड़ती है। ज्योतिष ही के द्वारा समुद्र में जहाज़ की स्थिति का पता लगता है और इसके बिना लम्बी समुद्र-यात्रा सफल हो ही नहीं सकती। पृथ्वी पर, और वायु में भी, यात्रा करनेवाले को ज्योतिष-शास्त्र का यथेष्ट ज्ञान अवश्य होना चाहिए। नये देश में रास्ता निकालने के लिए यह शास्त्र कितना उपयोगी है इसका कुछ पता इस अवतरण से लगेगा, जो सर सैमुयेल होर (Sir Samuel Hoare) की पुस्तक "इण्डिया बाई एयर" (India by Air) से दिया जाता है।*

"इन्हीं कारणों से मोटरों पर सवार दो समुदाय, एक पूर्व से और दूसरा पश्चिम से, इस अभिप्राय से चले कि ज़ीज़ा और यूफ्रि-टीज़ के बीच के अज्ञात रेगिस्तान को लगभग ५०० मील लम्बी हल-रेखा से अंकित करें × × × । डाक्टर बॉल, ये वे ही वैज्ञानिक थे जो इस रास्ते की पैमाइश करने में हवाई फ़ौज को सहायता दे रहे थे, अपनी स्थिति का ज्ञान नक्षत्रों से किया करते थे और अपनी ज्योतिष-घड़ी के समय को शुद्ध करने के लिए उन्होंने एक बे-तार के तार का केन्द्र स्थापित किया था जिससे वे हर संध्या को पेरिस के ईफ़ल टावर (Eiffel Tower) वाले समय-संकेतों को सुना करते थे। विज्ञान के बल का क्या इससे भी कोई स्पष्ट चित्र हो सकता है कि फ़्रान्स का तार भेजनेवाला अपनी मशीन चलाये और

* १९२७ में छपी।



[इंडियन प्रेस की कृपा से

चित्र २—ईफ़ल टावर, पेरिस;

इस टावर से चले बे-तार के तारवाले संकेतों द्वारा, ज्योतिष की सहायता से, डाक्टर बॉल अज्ञात रेगिस्तान में अपनी स्थिति का पता लगाया करते थे।

२,००० मील पर पड़ा अँगरेज़ वैज्ञानिक मार्गरहित मरुभूमि में उससे अपनी स्थिति का पता लगावे ?"



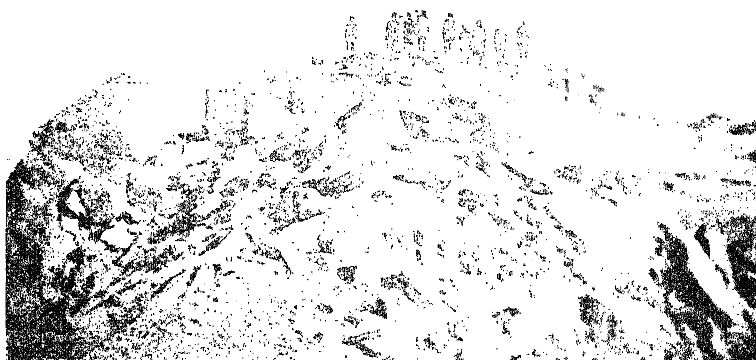
[देहरादून-वेधशाला

चित्र ३—**क्षेत्रमाप,**

(सरवे, Survey) में भी ज्योतिष की आवश्यकता पड़ती है ।

समुद्र-यात्रा या आकाश-यात्रा के अतिरिक्त जब कभी किसी बड़े देश की पैमाइश (Survey सरवे) करनी पड़ती है तब ज्योतिष की शरण ली जाती है। समय का शुद्ध ज्ञान ज्योतिष-यंत्रों से ही होता है। ज्योतिष की अनुपस्थिति में शुद्ध समय का ज्ञान नहीं हो सकता और रेलगाड़ियाँ भी इतनी नियमित रूप से न चल सकतीं।

इतिहास को भी ज्योतिष ने बड़ी सहायता पहुँचाई है। कई एक तिथियों का, जिनका ठीक पता अन्य किसी भी प्रकार न



[देहरादून-वेधशाला

चित्र ४—**सरवे-पार्टी;**

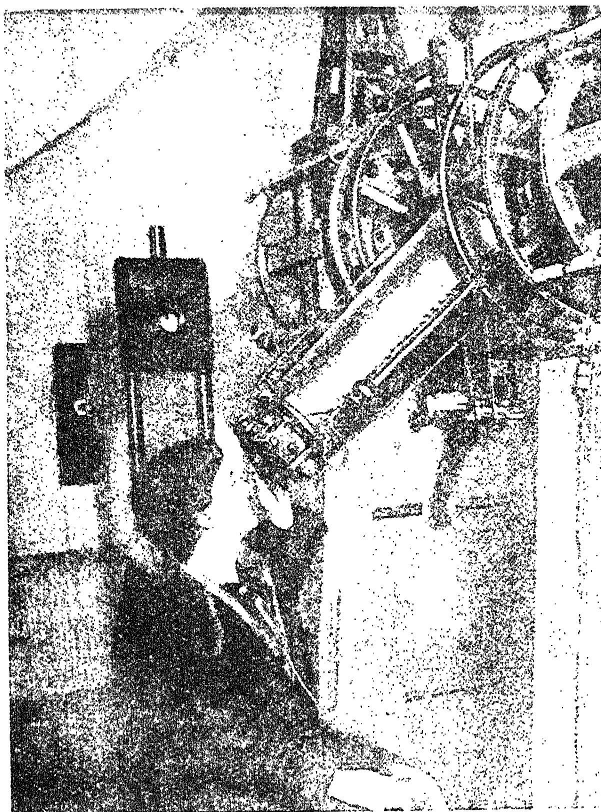
ज्योतिष के अभाव में सरवे का काम ही बन्द हो जाता।

चलता, ज्योतिष ने ही निर्णय किया है। प्रसिद्ध जरमन गणितज्ञ अपोल्ज़र (Oppolzer) ने लिखा है* "प्राचीन और मध्यकालीन युग

---

* Oppolzer : Canon der Finsternisse, p. IV.

में हुए अनेक सूर्य और चन्द्र ग्रहणों की चर्चा पुराने ग्रन्थों में मिलती है। इन सबको अन्य ऐतिहासिक सामग्री के साथ जोड़ने पर इति-



[पापुलर सायन्स से

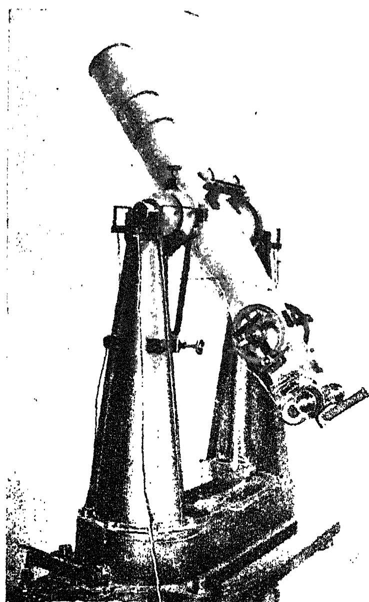
चित्र ४—**समय का शुद्ध ज्ञान ज्योतिष-यंत्रों ही से होता है।**

अमरीका की एक सरकारी ज्योतिषी समय के जानने के लिए ताराओं का वेध कर रही है।

हास की तिथियों को शुद्ध करने के लिए अमूल्य सामग्री मिलती है। इतना ही नहीं, मेरा तो विश्वास है कि मैं अत्युक्ति नहीं करता

जब मैं यह कहता हूँ कि प्राय: इन्हीं के आधार पर ही ऐसा सम्भव हो सका है कि प्राचीन इतिहास की तिथियों को कुछ कुछ निश्चय रूप से श्रेणी-बद्ध कर दिया जाय।"

३—ज्योतिष-अध्ययन से लाभ—यद्यपि मनुष्य के साधारण जीवन से ज्योतिष का उतना घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है जितना अन्य विज्ञानों का, तो भी ज्योतिष के अध्ययन से प्रत्येक मनुष्य को लाभ पहुँचता है। परन्तु ज्योतिष के विद्यार्थी को मानसिक आनंद के अतिरिक्त अन्य किसी लाभ की आशा न करनी चाहिए। ज्योतिष के लिए सूक्ष्मरूप से माप और बेध करने से हाथ की सफ़ाई और आँख की सचाई बढ़ती है और इन मापों और बेधों पर तर्क-वितर्क करके सिद्धान्त निकालने से बुद्धि प्रखर होती है; फिर, ज्योतिष का विषय ही ऐसा है कि इसके नियमों से विश्व की अनन्तता का दृश्य सदा आँखों के सामने नाचा करता है जिससे मनुष्य को छोटे छोटे सांसारिक झगड़ों से विरक्ति हो जाती है। इसी से तो ज्योतिष का ज्ञान परम पवित्र, रहस्यमय और सब वेदांगों में श्रेष्ठ कहा गया है।



[देहरादून-बेधशाला

चित्र ६—**समय नापने का यंत्र**।

देहरादून (संयुक्त प्रान्त) का वह यंत्र जिससे समय का ज्ञान किया जाता है।

रहस्यं परमं पुण्यं जिज्ञासोर्ज्ञानमुत्तमम् ।

वेदाङ्गमग्र्यमखिलं ज्योतिषां गतिकारणम् ॥ *

भास्कराचार्य ने भी लिखा है कि:—शब्दशास्त्र वेद भगवान् का मुख है, ज्योतिशास्त्र आँख है, निरुक्त कान है, कला हाथ है, शिक्षा नासिका है, छन्द पाँव है। इसलिए जैसे सब अंगों में आँख श्रेष्ठ होती है वैसे ही सब वेदाङ्गों में ज्योति:शास्त्र श्रेष्ठ है†। और यह भी प्रसिद्ध है कि "सफलं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ।" अर्थात्, शास्त्रों में ज्योति:शास्त्र हो सफल है क्योंकि सूर्य और चन्द्रमा इसके साक्षो हैं।

उपरोक्त विषय के सम्बन्ध में नीचे को सच्चो घटना पढ़ने योग्य है:—

सन् १९१२ के जून का महीना था, जब सारे अमेरिका में नये प्रेसिडेण्ट के चुनाव की धूम थी, उस समय लिक (Lick) बेधशाला के ज्योतिषी ने दर्शकों को एक तारा-समूह दिखलाया जिसमें एक साथ ही छ: हज़ार तारे दिखलाई पड़ते थे। एक दर्शक ने पूछा "क्या कहा? क्या सचमुच इनमें से प्रत्येक तारा एक सूर्य है,"—ज्योतिषी ने कहा—"जी हाँ।"

"और प्रत्येक सूर्य के साथ कई एक ग्रह हो सकते हैं?" उत्तर मिला "जी हाँ।"

"और इन ग्रहों में प्राणी रह सकते हैं?" फिर उत्तर मिला "जी हाँ।"

* सूर्यसिद्धान्त, मध्यमाधिकार, श्लोक २, ३।

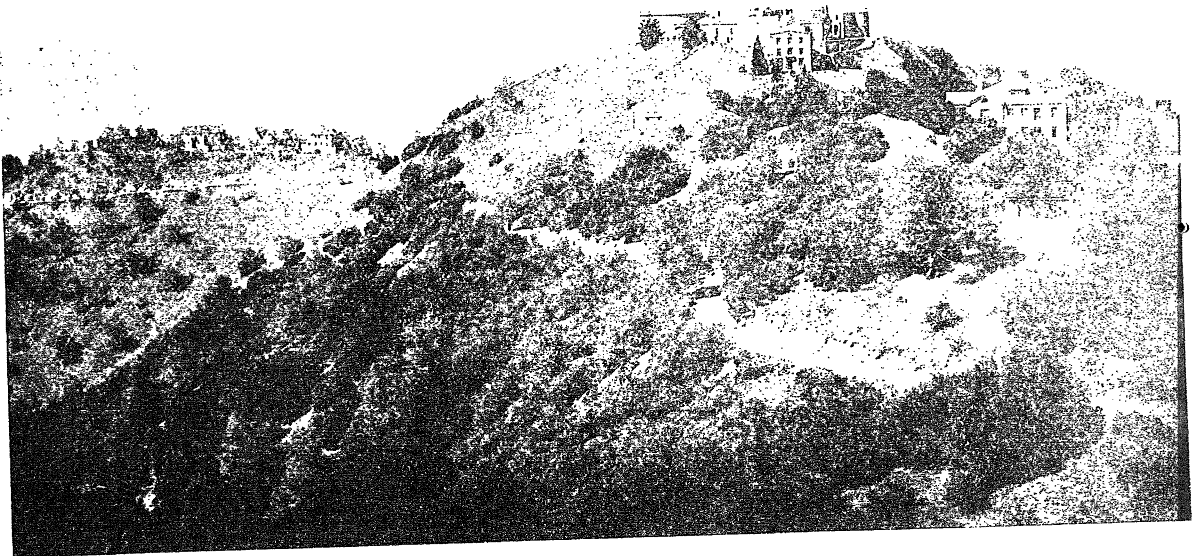
† सूर्यसिद्धान्त, विज्ञानभाष्य, पृष्ठ ३।



[ग्रिनिच-वेधशाला

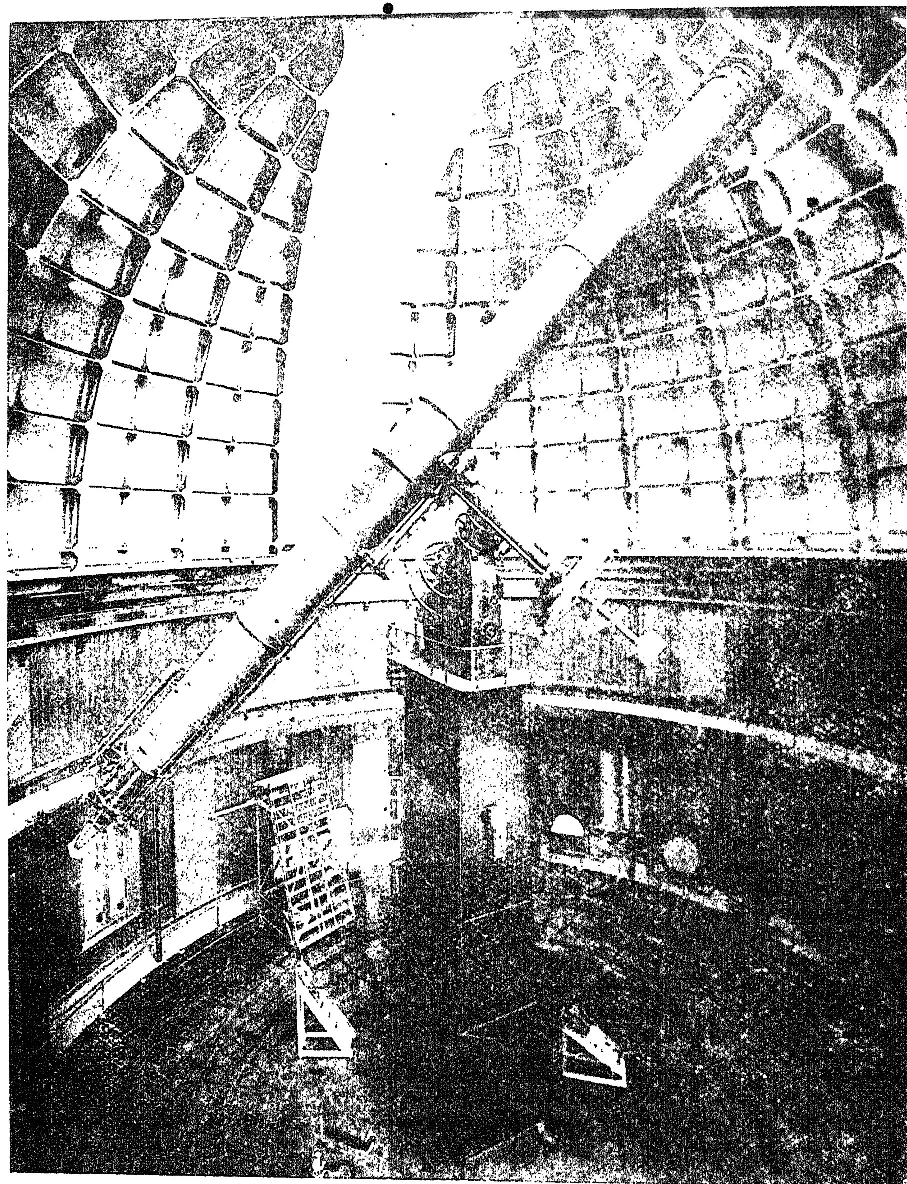
चित्र ७—ग्रिनिच की प्रसिद्ध सरकारी वेधशाला ।

फाटक के पास जो घड़ी लगी है उसी का समय सारे ग्रेटब्रिटेन में शुद्ध माना जाता है। यह घड़ी ताराओं के वेध से शुद्ध रक्खी जाती है।



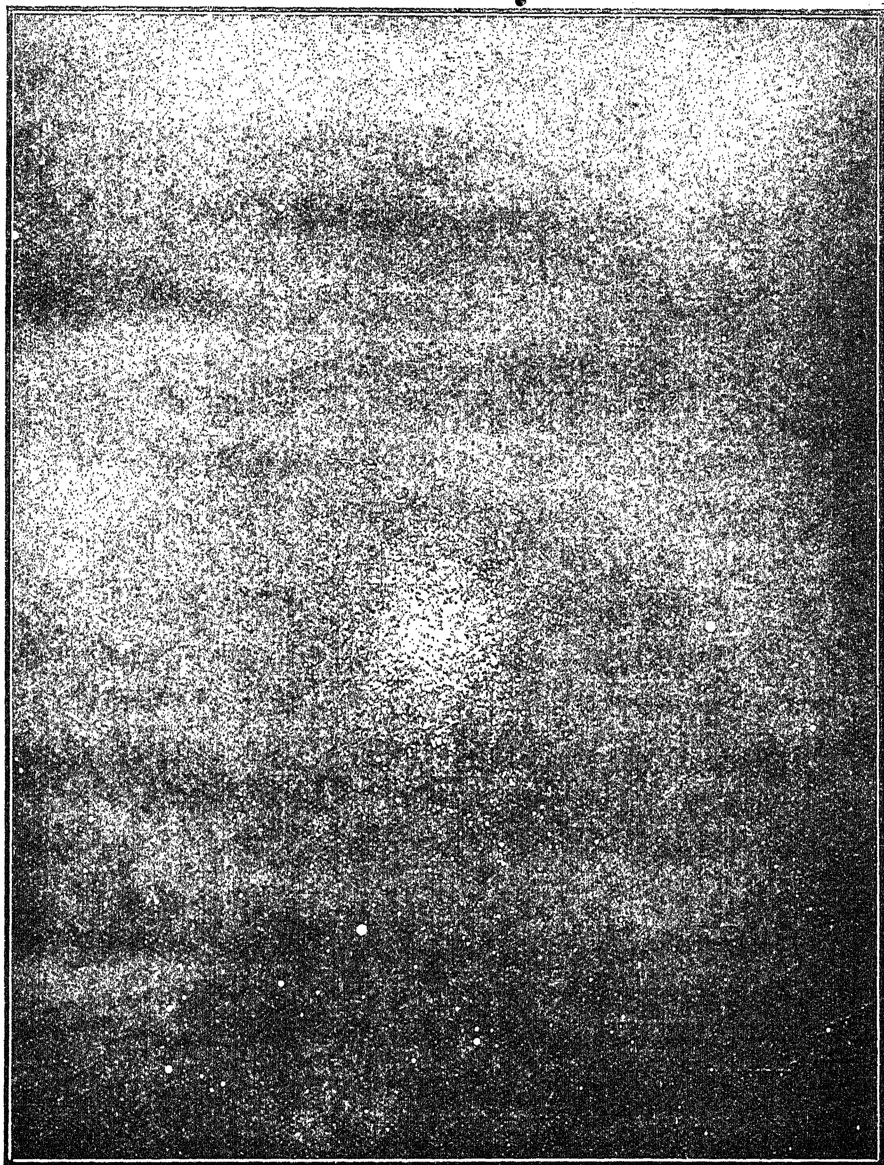
[लिक-वेधशाला

चित्र ८—लिक-वेधशाला



[लिक-वेधशाला

चित्र ९—लिक-वेधशाला का बड़ा दूरदर्शक ।



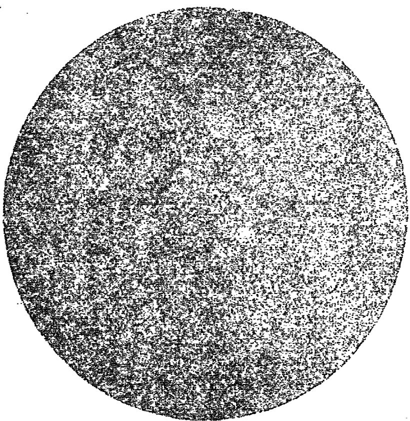
[सरकारी बेधशाला, केप, अफ़्रीका

चित्र १०—एक तारासमूह

इसमें हज़ारों तारे हैं ।

दर्शक ने गम्भीरभाव से कहा, "तब हमें रत्ती भर भी चिन्ता नहीं है कि आगामी सप्ताह में रूज़वेल्ट प्रेसिडेण्ट चुने जाएँगे या टैफ़्ट।"

ज्योतिष के महत्त्व के साथ ही विद्यार्थी यह भी देखता है कि बड़ी से बड़ी कठिनाइयाँ, जिनके हल होने की कोई भी आशा पहले नहीं दिखलाई पड़ती थी, एक एक करके कैसे दूर की गई हैं। भला पहले यह भी कोई समझ सकता था कि मनुष्य इस छोटी सी पृथ्वी पर से ही सैकड़ों अरब मील की दूरी पर स्थित ताराओं की ठीक दूरी, वज़न, नाप और गति बतला सकेगा और यह भी कि वह नक्षत्र किन किन पदार्थों से बना है और उसका तापक्रम (Temperature) क्या है? परन्तु ये बातें, और इनसे भी अधिक अनहोनी प्रतीत होनेवाली बातें, अब वस्तुतः घटित हुई हैं। इन पर मनन करने से मनुष्य को एक प्रकार का आनन्द मिलता है जो अन्यथा दुर्लभ है। सरलतम नियमों के बल से ग्रहण, उल्कापात इत्यादि ऐसे ज्योतिष के अत्यन्त विषम घटनाओं को पहले ही से बतला देना कल्पना-शक्ति को उत्साहित करता है, और ज्योतिष के अनेक अंगों के सौन्दर्य से मनुष्य के चित्त को आनन्द मिलता है। साथ ही यह भी है कि ज्योतिष की प्रायः सभी बातें, और इनके जानने की अधिकांश रीतियाँ प्रत्येक व्यक्ति को रोचक प्रतीत होती हैं, चाहे उसने विशेष रीति से गणित या विज्ञान का अध्ययन किया हो या नहीं। फिर, साधारण मनुष्य भी ज्योतिष में नई बातें निकाल सकता है और यदि भाग्य ने कृपा की तो वह नाम भी पैदा कर सकता है। कितने लोग जिन्होंने नियमित रूप से शिक्षा नहीं पाई है ताराओं के प्रकाश के घटने बढ़ने के नियमों का ज्ञान करने में, या उल्कापात के वेध करने में, प्रतिरात्रि कई घंटे व्यतीत करते हैं। उनमें से कई एक ने हमारे ज्योतिष के ज्ञान को बढ़ाया है।

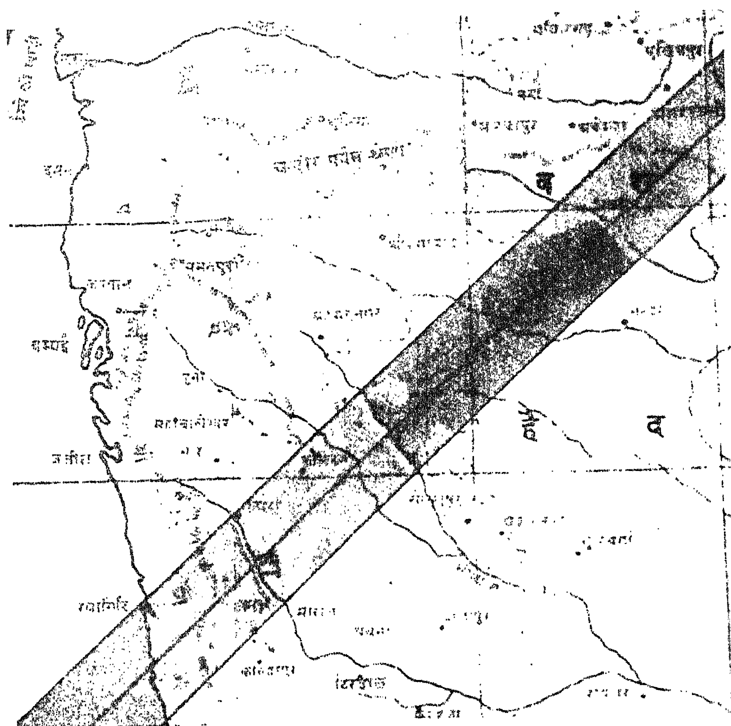


लिक-वेधशाला

चित्र ११—सर्व-सूर्य-ग्रहण।

चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण से मनुष्यगण आरम्भ ही से आकर्षित हुए होंगे।

४—जन-साधारण और ज्योतिष—'प्राचीन काल से ही सर्व-साधारण ने ज्योतिष-सम्बन्धी घटनाओं में रुचि दिखलाई है। सूर्य और चन्द्रमा के उदयास्त और चन्द्रमा के घटने-बढ़ने पर तो सभी



चित्र १२—२२ जनवरी १८९८ के सर्व-सूर्य-ग्रहण का छाया-पथ।

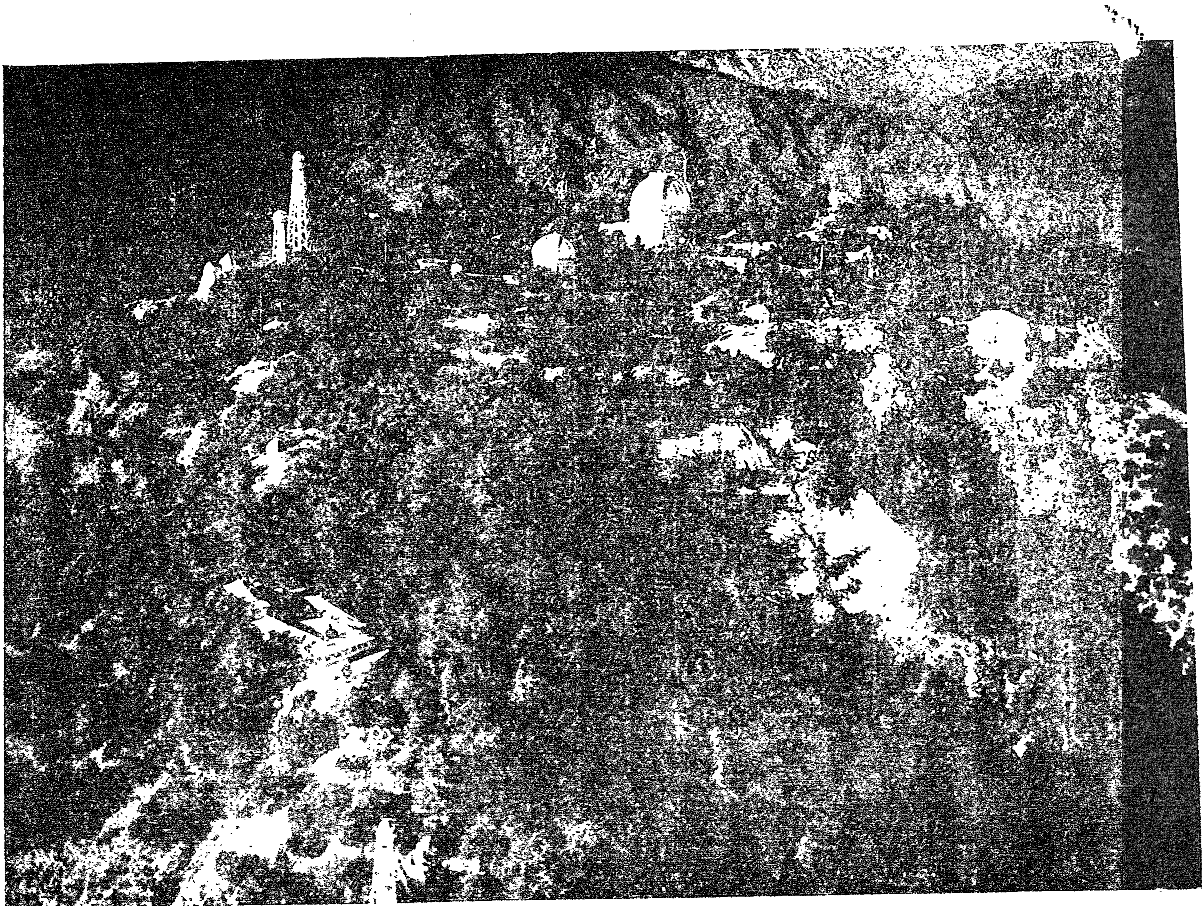
क्या यह आश्चर्य-जनक नहीं है कि ज्योतिषी सैकड़ों वर्ष पहले से बतला सकते हैं कि किस स्थान पर कब और कैसा ग्रहण लगेगा? इस ग्रहण को देखने अमरीका तक के ज्योतिषी भारतवर्ष आये थे। यहाँ के ज्योतिषियों ने भी इसका वेध किया था।

ने ध्यान दिया होगा। सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण से भी मनुष्यगण आरम्भ से आकर्षित हुए होंगे। पुराने ग्रंथों में ऐसी घटनाओं की चर्चा इस बात की गवाही देती है। परन्तु प्राचीन काल में लोग

ज्योतिष की ओर केवल कौतूहल-शान्ति के लिए ही नहीं आकर्षित हुए थे; उनके लिए यह अत्यन्त आवश्यक भी था। कृषि के लिए ऋतुओं का जानना अनिवार्य था और बिना ज्योतिष के भला यह कोई कैसे बतला सकता था कि लगभग ३६५ दिन बाद ऋतुएँ फिर लौट आती हैं। इसी प्रकार पूजा-पाठ की आवश्यकता ने उन्हें तिथियों का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करने के लिए बाध्य किया होगा। इसी से तो ज्योतिष वेदों का नेत्र कहा जाता है। रात्रि में समय और दिशा का ज्ञान करने के लिए प्राचीन समय के लोगों को नक्षत्रों का अध्ययन करने के लिए विवश होना पड़ा होगा और नक्षत्रों का अध्ययन करते समय उनको ग्रह और पुच्छल तारात्रों का ज्ञान हुआ होगा।

पुराने समय में प्राय: सभी का, और अब भी कितनों का, विश्वास है कि मनुष्य के भाग्य में क्या है यह ग्रहों और नक्षत्रों की स्थिति से बतलाया जा सकता है और ग्रहों की पूजा करने से मनुष्य अपने अदृष्ट को बदल सकता है। इस कारण भी ज्योतिष का बड़ा आदर होता रहा है। ज्योतिष के इस विभाग को फलित ज्योतिष (Astrology) कहते हैं। सभी पाश्चात्य वैज्ञानिकों का मत है कि फलित ज्योतिष सर्वथा निर्मूल है, और फलित ज्योतिष को "निर्मूल पाखंड" या "झूठा विज्ञान" कह कर फिर इसकी चर्चा ही नहीं करते, परन्तु तो भी अभी उनके देश से फलित ज्योतिष उठ नहीं गया है।

इन दिनों ज्योतिष में सर्व-साधारण की रुचि बढ़ती ही जा रही है और कितने धनी सज्जन ज्योतिष में खोज करने के लिए काफ़ी धन दे जाते हैं। दुनिया भर में सबसे बड़ी बेधशाला, जो अमेरिका में माउन्ट विलसन पर है, एक सज्जन के दान से ही स्थापित हुई है। आशा है हमारे देश के भी दानी-सज्जन इस ओर ध्यान देंगे। कई धनी लोग



[यू० एस० वार डिपार्टमेंट की कृपा से

फ़ोटो, युनाइटेड स्टेट्स आरमी एअर कोर]

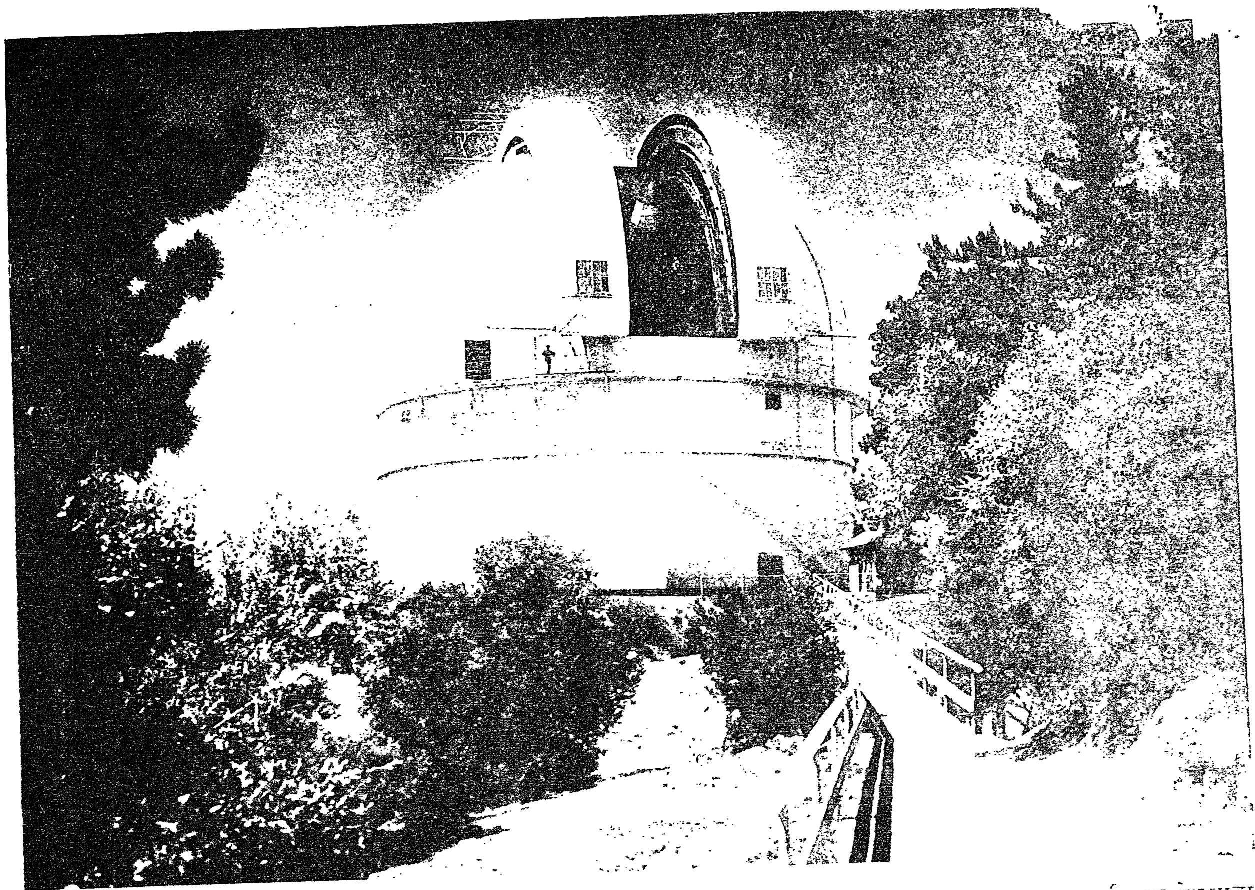
चित्र १३—माउन्ट विल्सन और इस पर की वेधशाला।

माउन्ट विल्सन पहाड़ बहुत ऊँचा है।



[माउन्ट विलसन वेधशाला

चित्र १४—माउन्ट विल्सन-वेधशाला से अन्य पहाड़ियों का दृश्य ।
देखिए बादल पहाड़ी की चोटी से नीचा है ।



[माउन्ट विल्सन वेधशाला

चित्र १५—माउन्ट विल्सन की वेधशाला।

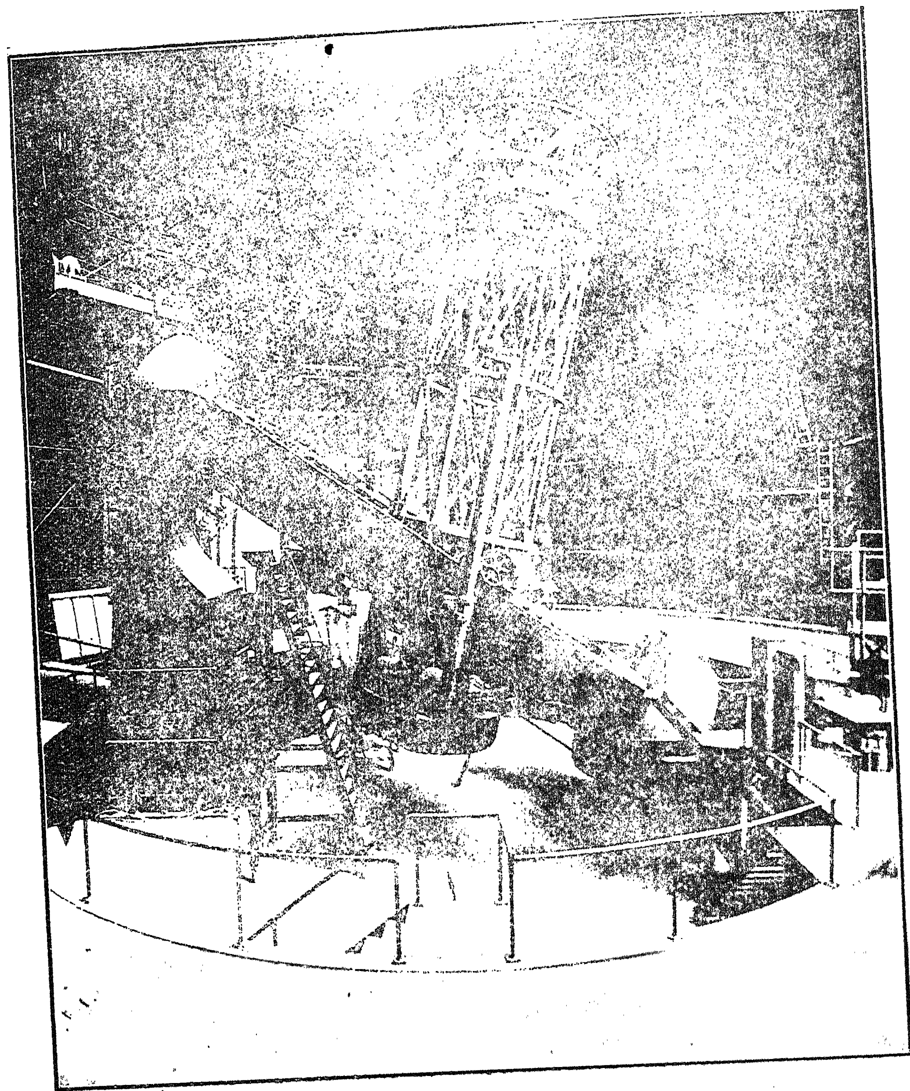
यहां संसार का सबसे बड़ा दूरदर्शक है जो एक सज्जन के दान का स्मारक है।

अपने मकानों में निजी बेधशाला बनवा लेते हैं। हाल में एक ऐसे यंत्र का आविष्कार हुआ है जिसमें सिनेमा-यंत्र की तरह बनी मशीन से ग्रहों और नक्षत्रों की गति दृष्टिगोचर कराई जा सकती है। इसके लिए जरमनी, अमरीका, रूस, इटली इत्यादि में कई एक भवन बने हैं जिनके अर्ध गोलाकार छत पर ग्रह, इत्यादि, के चित्र चलते फिरते दिखलाये जाते हैं। इस प्रकार, और व्याख्यानों द्वारा, जनता को ज्योतिष सिखलाया जाता है।

५—आश्चर्यजनक कार्य—वर्तमान युग चमत्कारों का युग है। ऊँचे से ऊँचे पर्वत-शिखर पर लोग चढ़ते हैं और गहरे से गहरे समुद्र-तल तक डुबकी लगाते हैं। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव तक मनुष्य पहुँचते हैं, समुद्र के भीतर और समतल पर जहाज़ चलाते हैं, पृथ्वी पर ढाई सौ मील प्रतिघंटे के हिसाब से मोटर दौड़ाते हैं और वायु में उससे भी अधिक तेज़ी से उड़ते हैं। एक धातु से दूसरा अब आँखों सामने बनते दिखलाई पड़ता है। वृक्ष और पौधों के सुख-दु:ख भी हमको अब दृष्टिगोचर होने लगे हैं। बूढ़े मनुष्यों को युवा बनाने की रीति भी मालूम हो गई है और अब वैज्ञानिक लोग प्रेतों से भी बात करने का दावा रखते हैं। ज्योतिष में भी इस नवीन युग के योग्य ही उन्नति हुई है। ऐसा जान पड़ता है जैसे ज्योतिषियों को दिव्य दृष्टि मिल गई है। पृथ्वी पर बैठे ही बैठे वे नक्षत्रों और ग्रहों के बारे में बहुत सी आश्चर्यजनक बातें बतला सकते हैं।*

---

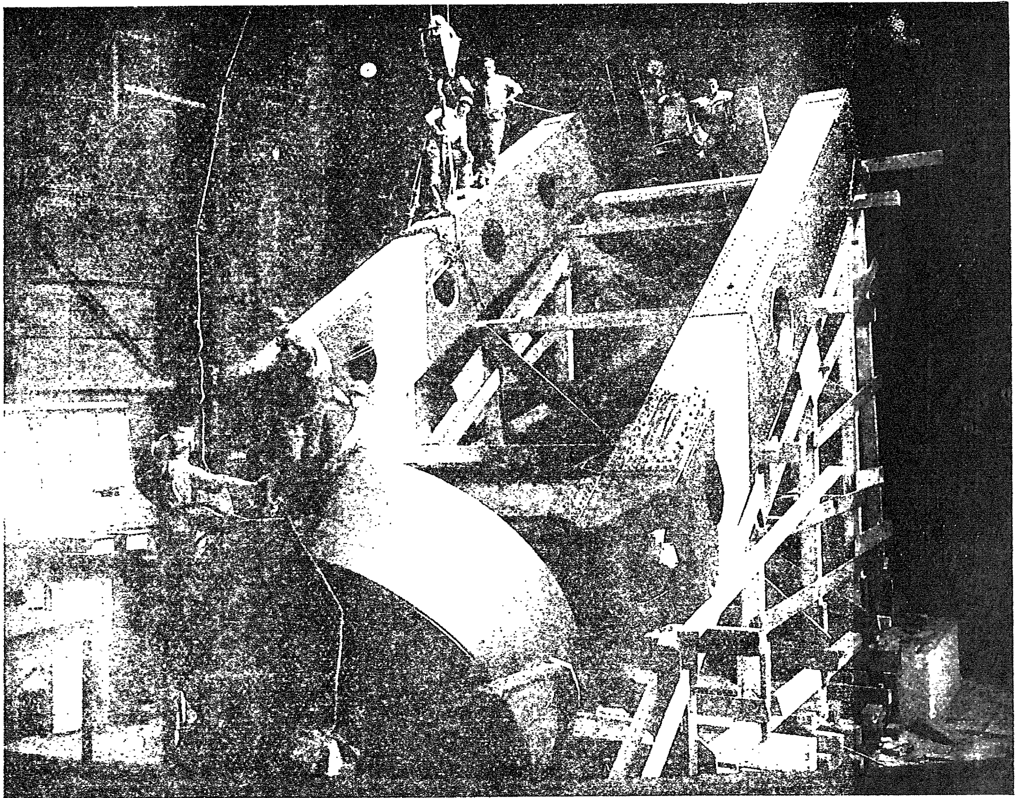
* हर्ष और गौरव की बात है कि भारत में भी संसार-प्रसिद्ध वैज्ञानिक हो रहे हैं जिनके आविष्कार की ख्याति सारे जगत् में फैल गई है। वनस्पति-शास्त्र में सर जगदीशचंद्र बोस, गणित में डाक्टर गनेशप्रसाद, रसायन में सर पी० सी० राय, भौतिक विज्ञान में सर सी० वी० रमन और ज्योतिष-सम्बन्धी भौतिक विज्ञान में प्रोफ़ेसर मेघनाथ साहा के आविष्कारों को कौन नहीं जानता?



[माउन्ट विल्सन वेधशाला

चित्र १६—संसार का सबसे बड़ा दूरदर्शक।

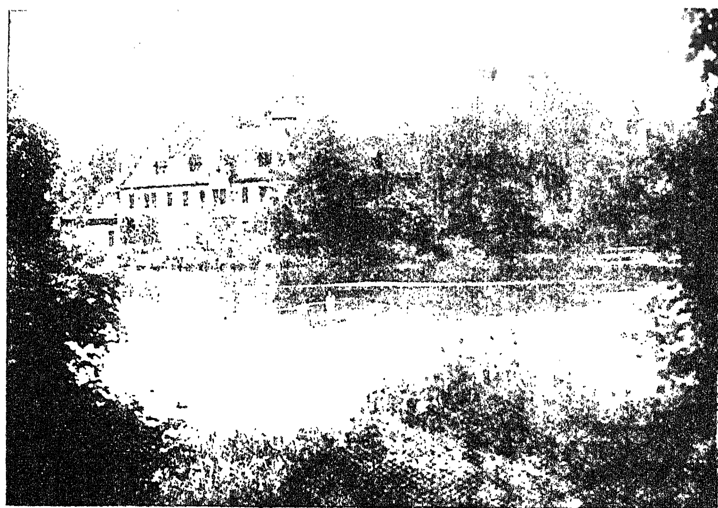
इसका व्यास ८ फुट से भी अधिक है।



[माउन्ट विलसन बेधशाला

चित्र १७—संसार के सबसे बड़े दूरदर्शक की धुरी स्थापित की जा रही है। इस वृहत्काय यन्त्र के डीलडौल का कुछ अनुमान मनुष्यों की नाप से किया जा सकता है।

प्राचीन काल में केवल ज्ञानी ही लोग समझ सकते थे कि अमुक बात क्यों ऐसी है, परन्तु अब विज्ञान, और विशेषकर ज्योतिष, की बहुत सी बातें, और उनकी यथार्थता का प्रमाण, प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को समझाया जा सकता है। प्रस्तुत

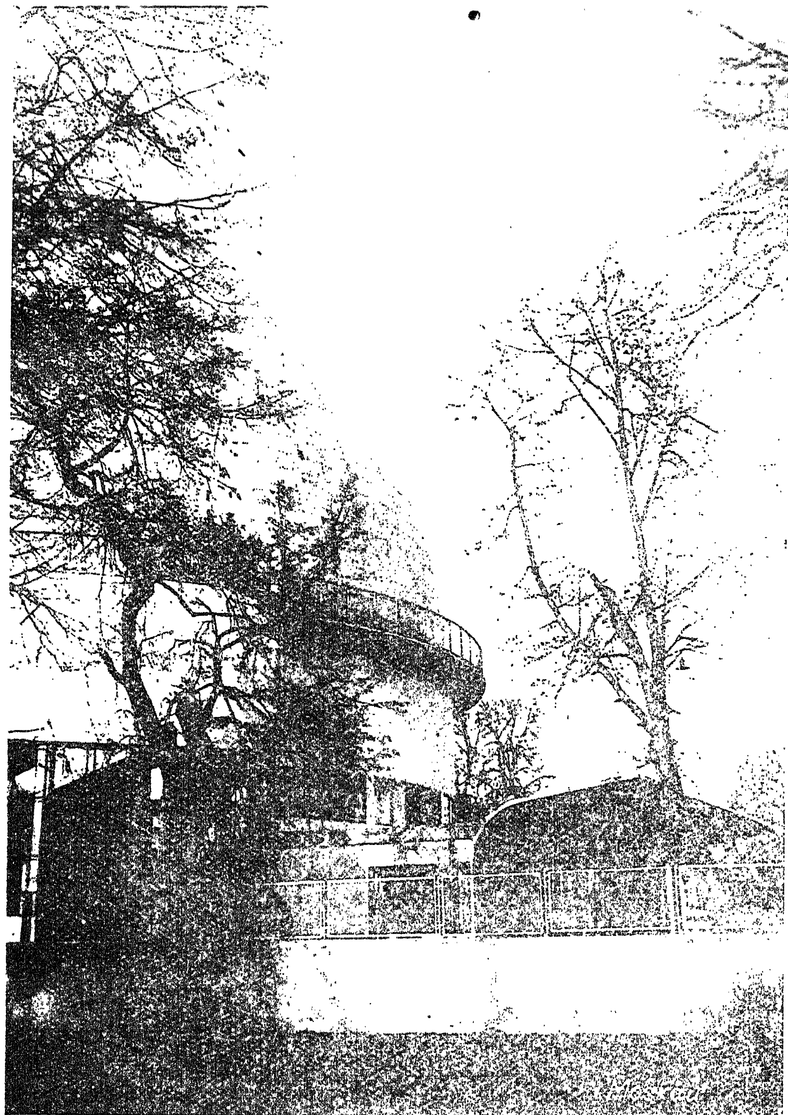


[ज़ाइस कंपनी की कृपा से

चित्र १८—एक व्यक्तिगत वेधशाला।

इसको जरमनी के एक रईस ने अपने मकान की छत पर बनवाया है।

पुस्तक में केवल ज्योतिष-सम्बन्धी परिणाम ही नहीं बतलाये जायँगे, बल्कि इस बात के समझाने की विशेष चेष्टा की जायगी कि ज्योतिषी-गण कैसे और क्यों किसी परिणाम पर पहुँचे हैं। लेखक का विश्वास है कि परिणामों की अपेक्षा उनके प्राप्त करने की रीतियाँ अधिक मनोरंजक हैं; जैसे इसे पढ़ लेने से कि ध्रुव तारा २,५०,००,००,००,००,००० मील दूर है इतना आनन्द नहीं मिलता जितना इसे समझ लेने में कि उसकी दूरी नापी कैसे गई।

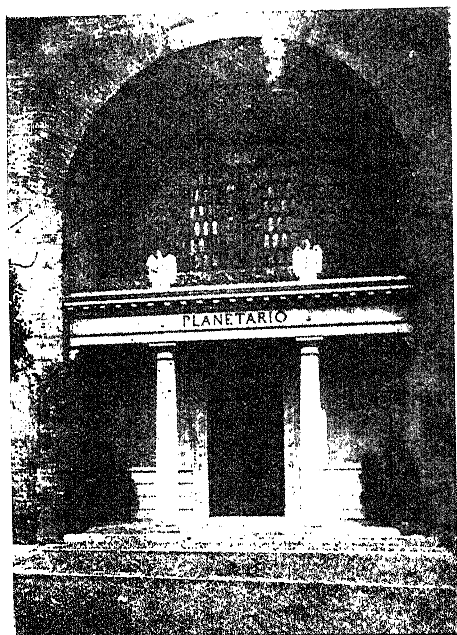


[ज़ाइस कंपनी

चित्र १९—जनता को ज्योतिष सिखलाने के लिए बना रूस का एक ज्योतिष-गृह;

इसमें सिनेमा की तरह एक विशेष मशीन से ग्रह इत्यादि की गति दिखलाई जाती है और ज्योतिष-सम्बन्धी व्याख्यान दिये जाते हैं।

यों तो सुशिक्षित मनुष्य को विद्या की सभी शाखाओं का थोड़ा बहुत ज्ञान रखना चाहिए, परन्तु प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ ज्योतिष अवश्य जानना चाहिए। बालक से लेकर बूढ़े तक सभी को ज्योतिष में रुचि होती है और प्रत्येक शिक्षित मनुष्य से कभी न कभी कोई व्यक्ति ज्योतिष-सम्बन्धी साधारण प्रश्न अवश्य कर बैठता है। अपने मन में भी इस प्रकार की कई एक बातों के जानने की इच्छा उत्पन्न हुआ करती है। उदाहरणार्थ, कौन नहीं जानना चाहता कि पुरोहित लोग जो मेष, वृष, मिथुन, कर्क इत्यादि, गिनते हैं इसका क्या अर्थ है? तारे क्यों गिरते हैं और वे हैं क्या? पुच्छल तारा जो कभी कभी आकाश में आ जाता है, कहां से आता है और कहाँ लुप्त हो जाता है? आकाशगंगा क्या है? ग्रहों और नक्षत्रों में भी प्राणी हैं अथवा नहीं? मंगल तक कोई उड़ जा सकता है या नहीं? विश्व (Universe) की उत्पत्ति पर वैज्ञानिकों का क्या मत है? क्या सचमुच चन्द्रमा पृथ्वी ही का एक टुकड़ा है जो अब इस रूप में है? फलित ज्योतिष कहाँ तक सच है? हमारे पूर्वज



[ज़ाइस कंपनी

चित्र २०—ज्योतिष-गृह।

ऊपर के चित्र की तरह इटली के एक ज्योतिष-गृह का प्रधान दरवाज़ा।

कितना ज्योतिष जानते थे? इत्यादि; ऐसे प्रश्न अत्यन्त रोचक हैं। इन सबका उत्तर प्रत्येक शिक्षित मनुष्य को दे सकना चाहिए।



[जिओलॉजिकल सरवे आफ़ इंडिया

चित्र २१ आकाश से गिरी हुई उल्का।

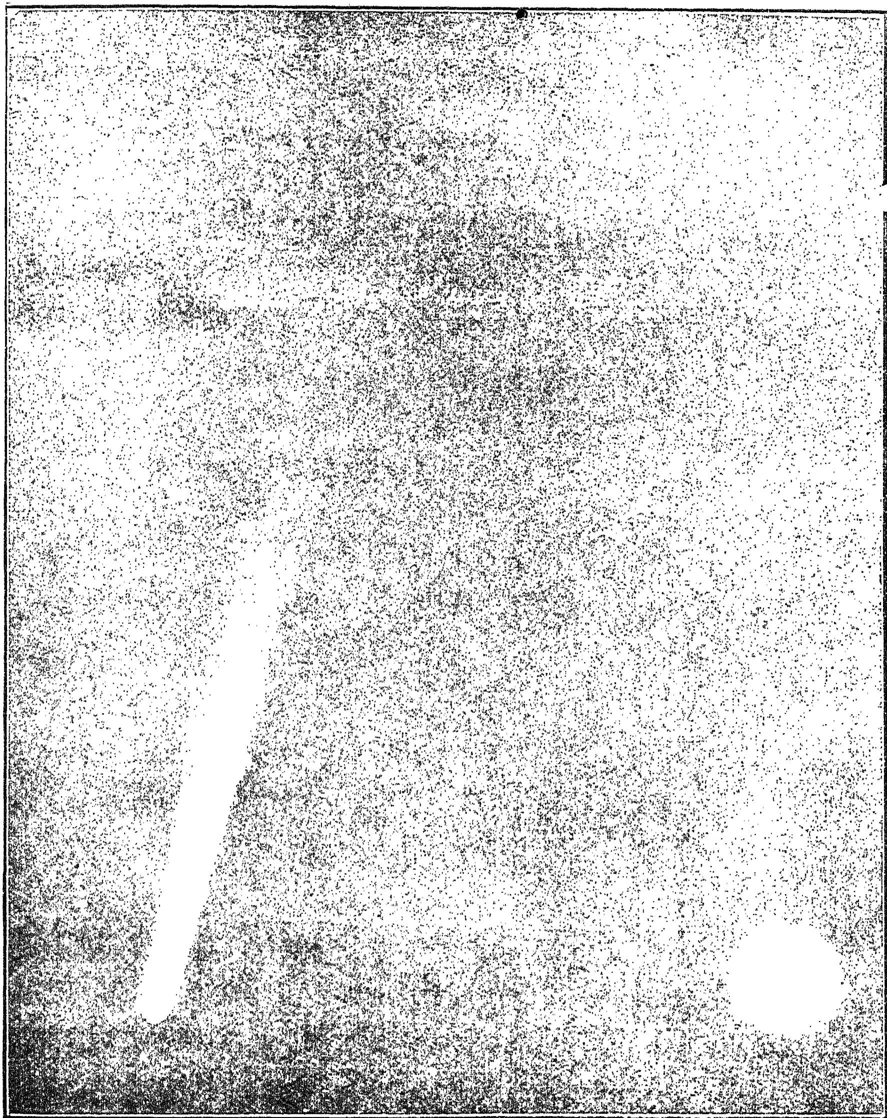
पहले कोई भी पुस्तक हिन्दी में ऐसी नहीं थी जिससे कोई अपने कौतूहल को सन्तोष दे सकता। अँगरेज़ी में कोई ऐसी पुस्तक नहीं



[हेलवन वेधशाला

चित्र २२—पुच्छल तारा।

यदि इसके अकस्मात निकल पड़ने पर, इसकी लम्बी, लौ-सरीखी पूँछ से लोग डर जाया करते थे तो इसमें क्या कोई आश्चर्य है ?



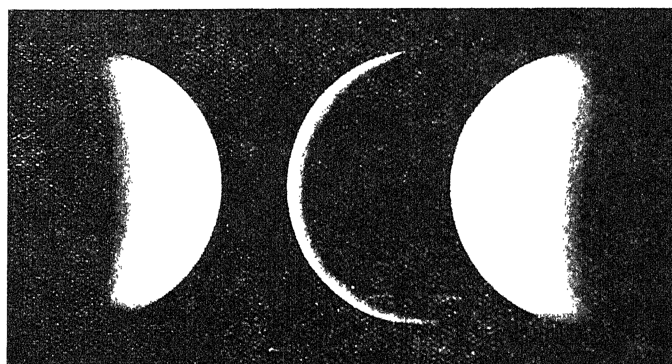
[यूनियन बे०, जोहासबुर्ग

चित्र २३—हैलो पुच्छल तारा, १९१०;

इसके बगल में शुक्र दिखलाई पड़ रहा है।

है जो विशेष रूप से भारतीय पाठकों के लिए लिखी गई हो। प्रस्तुत पुस्तक इस अभाव की पूर्ति के लिए लिखी गई है।

६—विज्ञान और धर्म—ज्योतिष—वैज्ञानिक ज्योतिष—के कुछ अंगों और सनातनधर्म के बीच प्राचीन काल से ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। हम यह बतला चुके हैं कि धर्मकार्यों का उचित रीति से निर्वाह करने की ही अभिलाषा से ज्योतिष का विकास

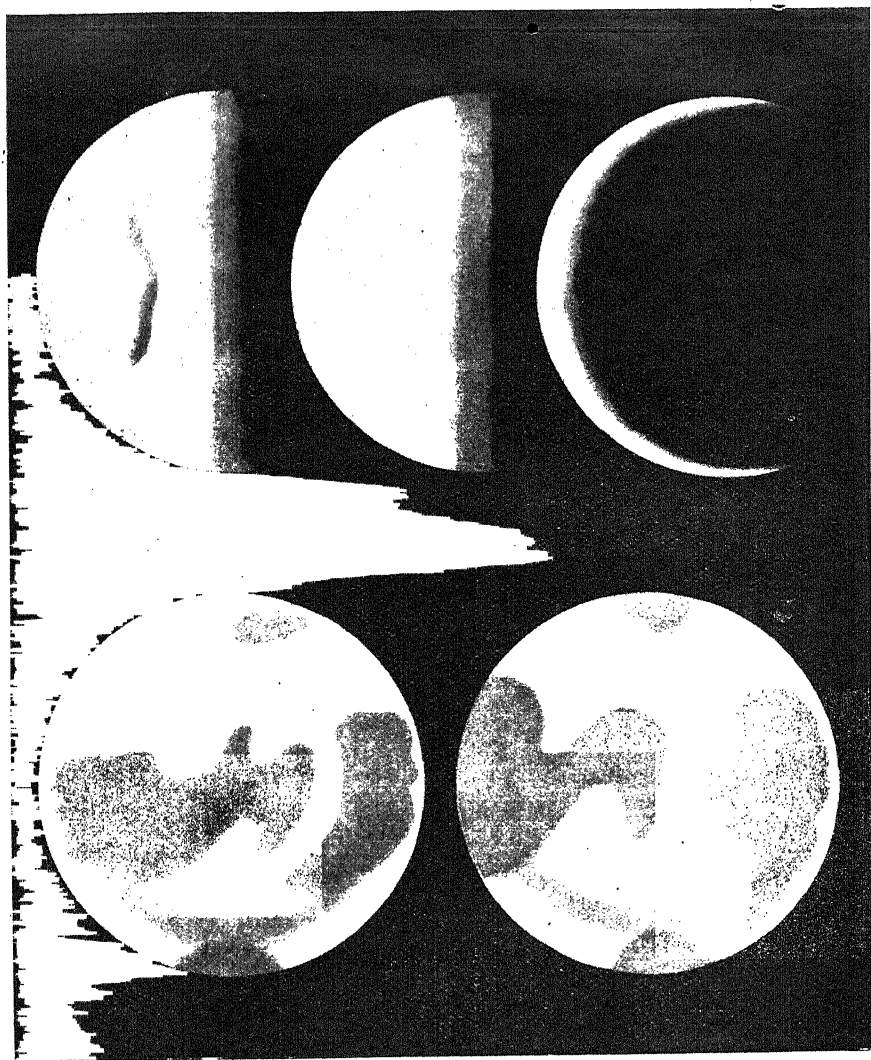


[[illegible]

चित्र २४—बुध।

शुक्र के समान इसमें भी कलायें होती हैं।

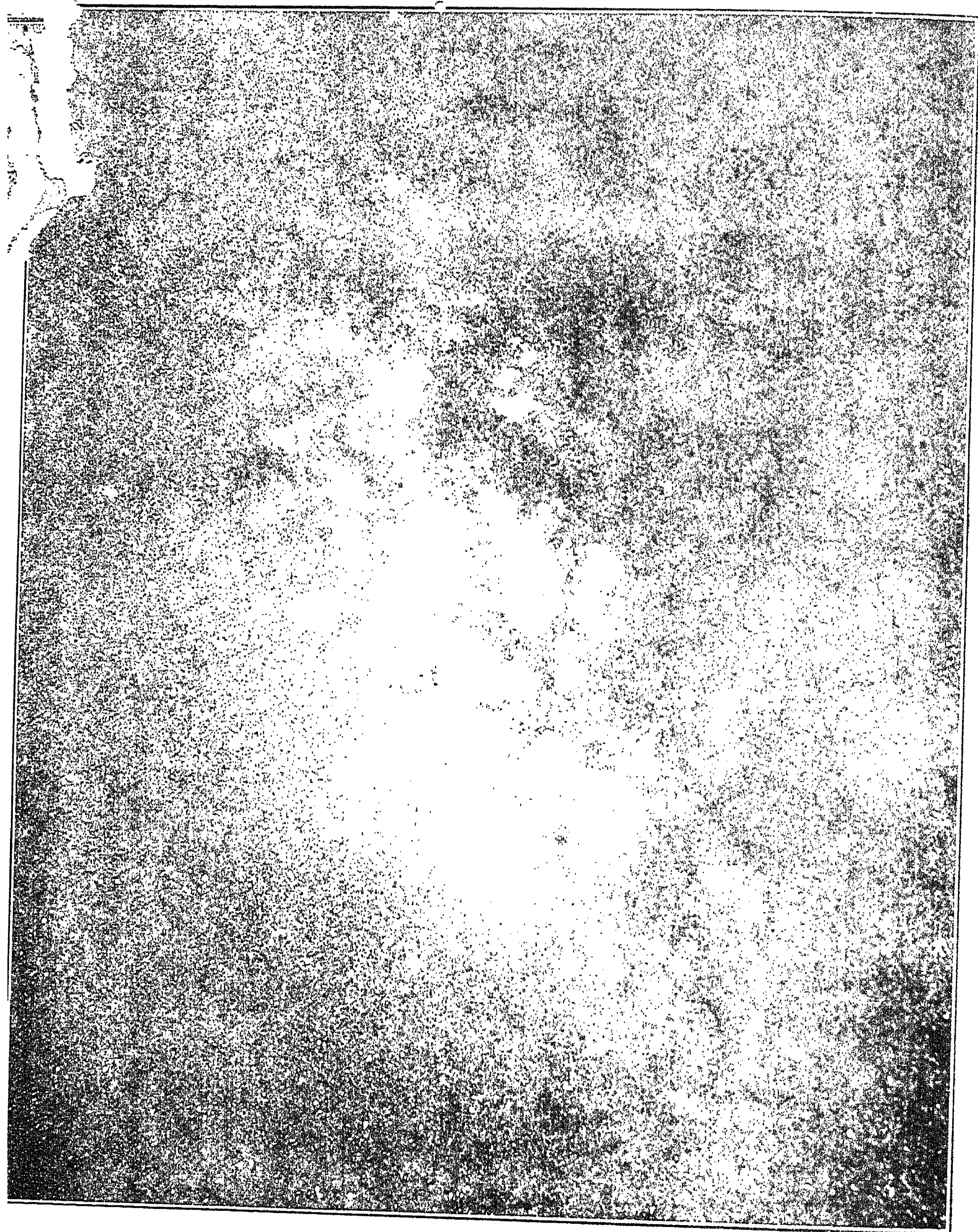
हुआ; परन्तु खेद के साथ लिखना पड़ता है कि इन दिनों भारतवर्ष में सनातनधर्म के नाम पर वैज्ञानिक ज्योतिष पर भी अत्याचार किया जा रहा है। उदाहरण के लिए तिथि ही पर विचार कीजिए। सभी जानते हैं कि चन्द्र-ग्रहण पूर्णिमा के दिन लगता है। ग्रहण का मध्य लगभग उस समय होता है जब पूर्णिमा समाप्त होती है और कृष्णपक्ष की प्रथम तिथि आरम्भ होती है। अब किसी ऐसे पत्रे को लीजिए जिसकी गणना प्राचीन रीति से की गई हो। उसमें से आप किसी चन्द्र-ग्रहणवाली पूर्णिमा के अन्त समय को



[पुराने चित्रों की नक़ल

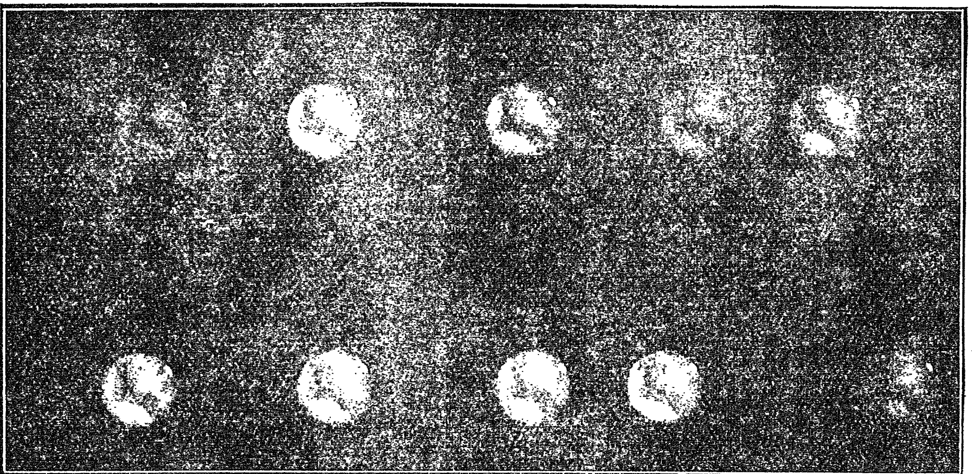
चित्र २९—शुक्र।

संध्या-समय पश्चिम की ओर सब ताराओं से अधिक चमकते हुए शुक्र को किसने नहीं देखा होगा ? शुक्र के उदय और अस्त होने की बात को किस हिन्दू ने नहीं सुना होगा ? परन्तु क्या आप यह भी जानते थे कि चन्द्रमा की तरह शुक्र भी घटता-बढ़ता है ? इसमें भी कलायें होती ह ?



[हारवार्ड कालेज वेधशाला

चित्र २६—**आकाशगंगा** (Milky way)

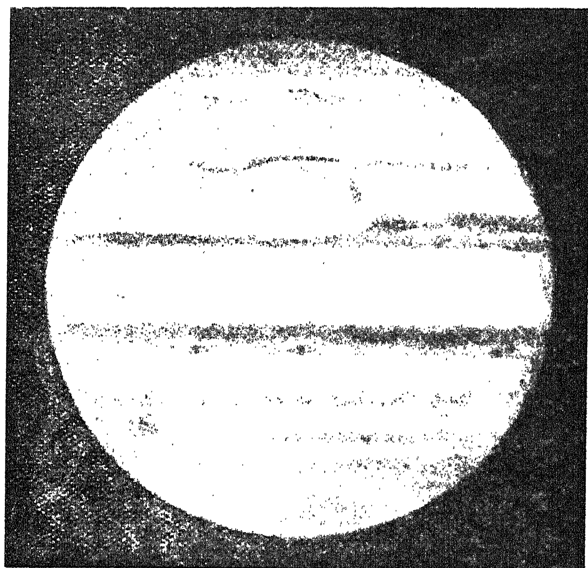


[बारनार्ड

चित्र २७—**मंगल** ।

इसमें मनुष्य रहते हैं या नहीं, इसमें जो रेखायें दिखलाई पड़ती हैं क्या वे नहर हैं, इत्यादि प्रश्नों की चर्चा समाचारपत्रों तक में पहुँच गई है ।

ले लीजिए और देखिए कि क्या सचमुच ग्रहण का मध्य उसी समय पर होता है। आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि तिथि और ग्रहण में कभी कभी घंटों का अन्तर पड़ जाता है। एक साधारण उदाहरण नीचे दिया जाता है। ता० २ अप्रैल १९३१, बृहस्पति,

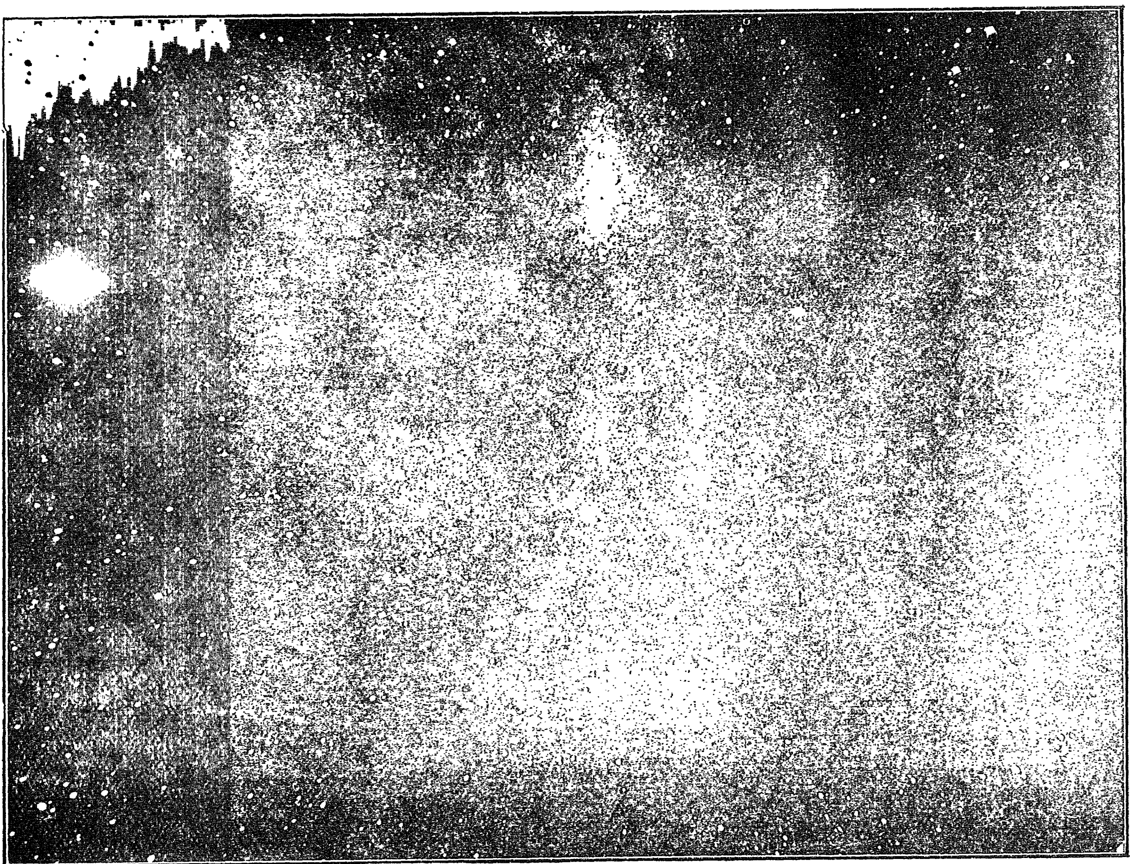


[ऐन्टोनिआडी

चित्र २८—बृहस्पति;

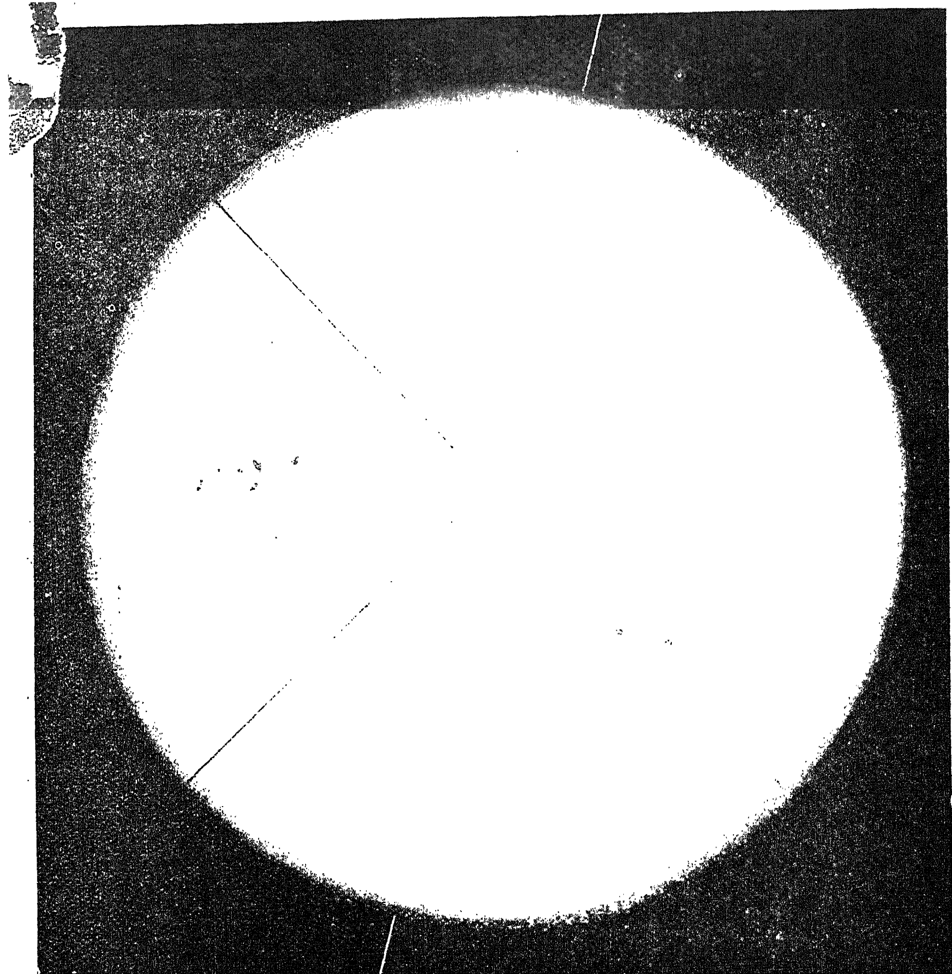
इसमें कई एक धारियां दिखलाई पड़ती हैं।

को चन्द्र-ग्रहण लगा था। ग्रहण का मध्य काशी में रात के १ बज कर ३७ मिनट पर हुआ। यह १९३१ के अँगरेज़ी पत्रे नॉटिकल अलमैनैक (Nautical almanac) या नाविक पंचांग से सिद्ध है। काशी-विश्वविद्यालय की ओर से छपे "विश्वपंचाङ्ग" नामक पत्रे में भी ग्रहण का मध्य समय १ घंटा ३७ मिनट ही लिखा गया है, जिससे प्रत्यक्ष है कि यह समय नाविक पंचांग से निकाला गया है। परन्तु पूर्णिमा



[हब्ल

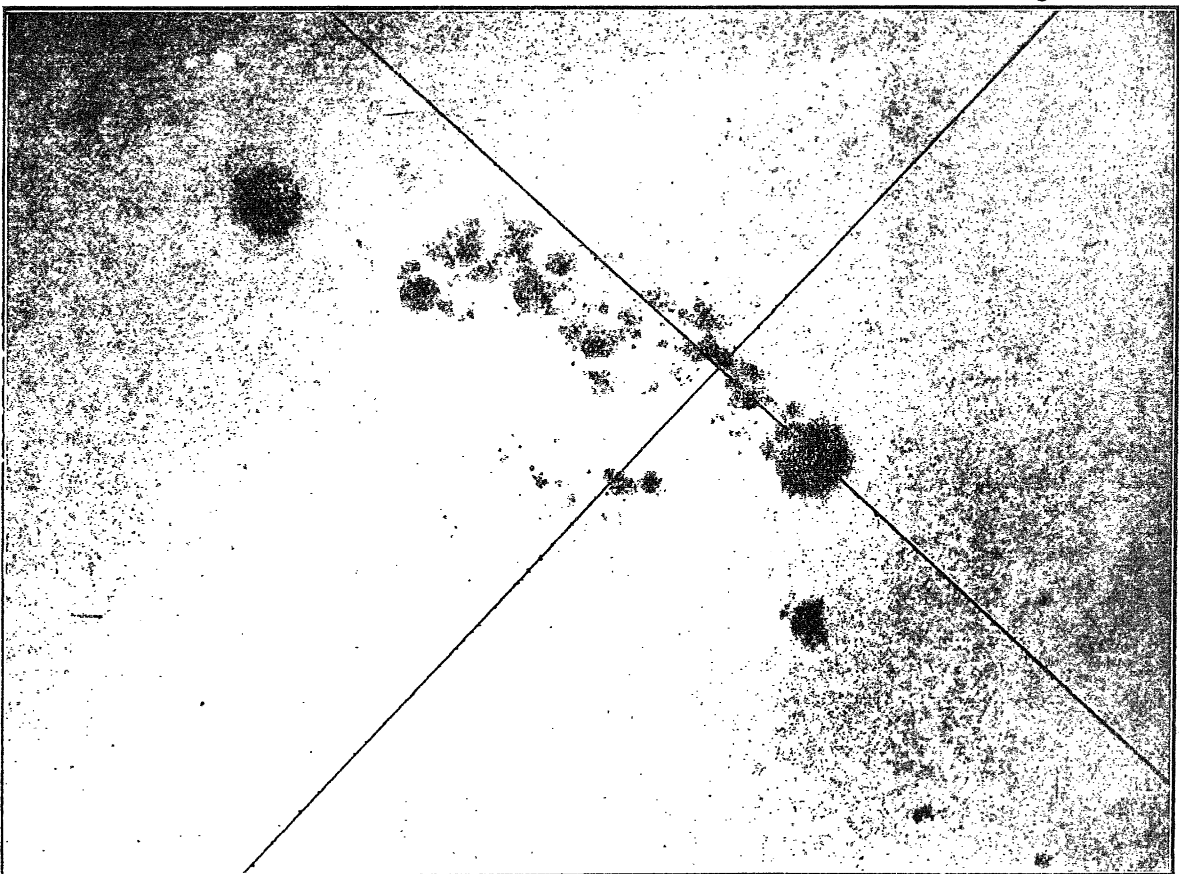
चित्र २९—ऐन्ड्रोमिडा तारापुंज की प्रसिद्ध नीहारिका का एक कोना;
वैज्ञानिकों का अनुमान है कि हमारे सौर-परिवार की सृष्टि ऐसी ही नीहारिका से ?



[ग्रिनिच-वेधशाला

चित्र ३०—सूर्य ।

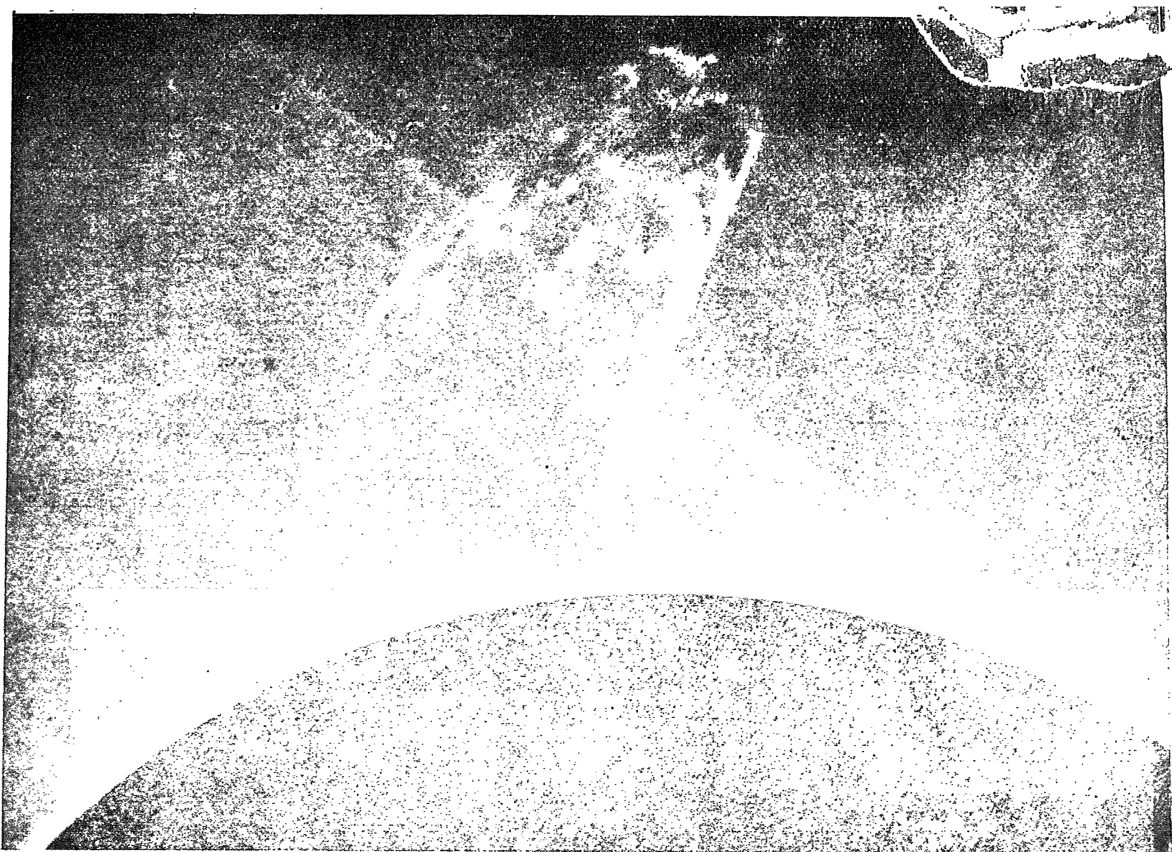
इसमें भी कलंक होते हैं, जिनको पहले-पहल चीन निवासियों ने आज से २,००० वर्ष पहले देखा था ।



[ग्रिनिच-वेधशाला

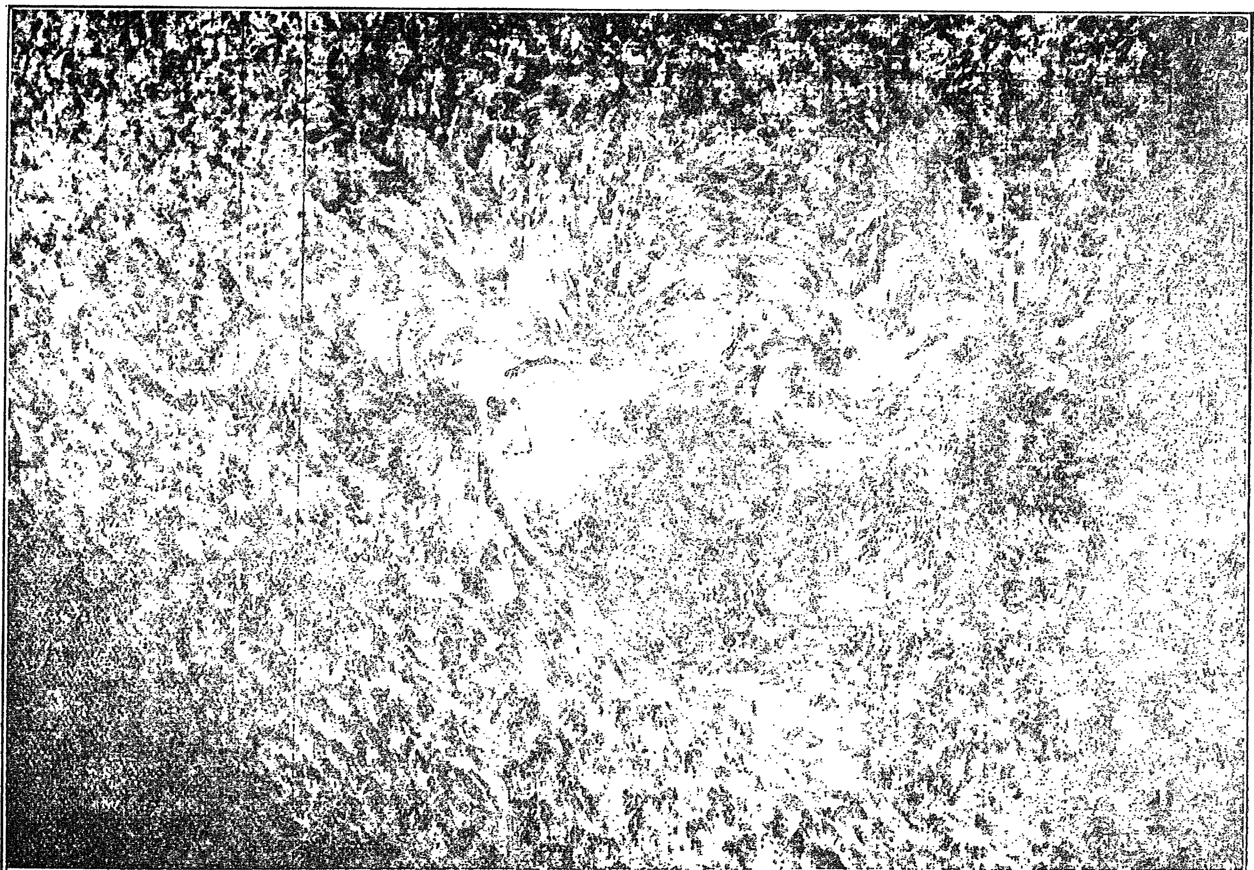
चित्र ३१—सूर्यकलंक।

ये चिरस्थायी नहीं होते। कभी कभी ये इतने बड़े होते हैं कि वे बिना दूरदर्शक से भी



[एवरशेड

चित्र ३२—सूर्य की रक्त ज्वालायें;
ये सर्वग्रहण के समय दिखलाई पड़ती हैं ।



[हेल

चित्र ३२—सूर्य के भँवर;

ये विशेष यंत्र-द्वारा ही देखे जा सकते हैं ।

की तिथि का इस पत्रे में २ बजकर ३ मिनट पर समाप्त होना दिखलाया गया है ! दूसरे पत्रों में तो इससे कहीं अधिक अन्तर मिलता है ।

बात यह है कि ग्रहण एक प्रत्यक्ष घटना है । इसे वे भी, जो ज्योतिषी नहीं हैं, देख सकते हैं और समझ सकते हैं । परन्तु पूर्णिमा ऐसी घटना नहीं है जिसके समय का सभी शुद्ध ज्ञान कर सकें । इस लिए ग्रहण के समय की गणना को तो कट्टर पुराने मतावलम्बी भी आधुनिक रीति से करने के लिए राज़ी हो गये हैं, परन्तु तिथियों को आधुनिक रीति से निकालने के लिए वे राज़ी नहीं होते । हाँ, कभी कभी ग्रहणों के कारण तिथियों की अशुद्धि का पता सर्व-साधारण को लग जाता है । तब ज्योतिषी ज़रा असमंजस में पड़ जाते हैं ।

धर्म का विषय इतना गूढ़ है कि मैं इस पर अपनी सम्मति प्रकट करना केवल धृष्टता समझता हूँ, परन्तु यहाँ मैं इतना लिख देना आवश्यक समझता हूँ कि हमारे पुराने आचार्यों ने स्वयं ज्योतिष के नियमों को बार बार शुद्ध करने की अनुमति दी है । देखिए आचार्य केशव ने अपनी पुस्तक ग्रह-कौतुक में लिखा है:—

"...एवं बह्वन्तरं भविष्ये सुगणकैर्नक्षत्रयोगग्रहयोगोदयास्तादिभिर्वर्तमानघटनामवलोक्य न्यूनाधिकभगणाद्यैर्ग्रहगणितानि कार्याणि ।" इत्यादि ।

इससे यह स्पष्ट है कि वर्तमान आकाशीय घटनाओं को वेध द्वारा देखकर ग्रहों के भगण कालों का संशोधन करते रहना चाहिए । इसके अतिरिक्त सूर्य-सिद्धान्त और मकरंदसारिणी के रचयितागण और ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, मल्लारि, गणेश दैवज्ञ,

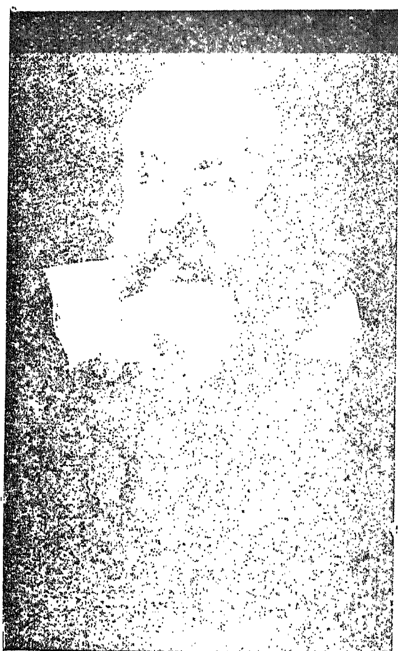


[गोरखप्रसाद

चित्र २४—**माघमेला, इलाहाबाद ।**

मकरसंक्रान्ति के समय स्नानादि बहुत से हिन्दू करते हैं, परन्तु क्या वे यह भी सोचते हैं कि संक्रान्ति की गणना ठीक तरह से नहीं की जाती है ?

इत्यादि सभी ने* आवश्यकतानुसार ज्योतिष के नियमों के संशोधन करने की सम्मति दी है।



[एक पुराने चित्र की नक़ल

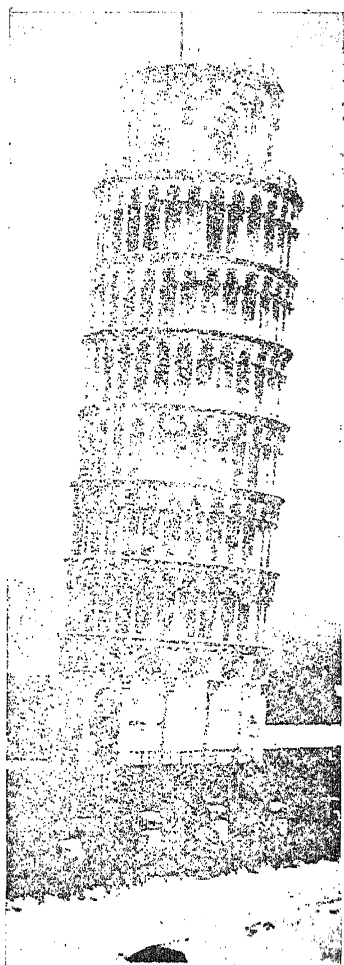
चित्र २१—गैलीलियो।

दूरदर्शक का आविष्कारक।

ऊपर की बातों के लिखने में यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि मैं उन लोगों की हँसी उड़ाऊँ जो यह समझते हैं कि ग्रहणों की भाँति तिथियों को भी आधुनिक रीति से निकालने में सनातन धर्म का क्षय होगा। उद्देश्य केवल यही दिखलाना है कि धर्म के कारण भारतीय ज्योतिष की उन्नति में कितनी बाधा पड़ती है। ध्यान देने की बात है कि कुछ पत्र अब भी ऐसे छपते हैं जिनमें ग्रहण भी पुरानी प्रथा के अनुसार निकाले जाते हैं। ये जब बतलाते हैं कि चन्द्रमा में ग्रहण लगना चाहिए तब तो चन्द्रमा पूर्ण और दीप्तमान रहता है और जब वे बतलाते हैं कि अब ग्रहण समाप्त हो गया तब ग्रहण लगता है!

* अवतरण, इत्यादि और अन्य बातें श्री० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव के सूर्य्य-सिद्धान्त (विज्ञानभाष्य) में मिलेंगी; पृष्ठ १६७।

प्राचीन समय में धर्म्म के कारण यूरोप में भी ज्योतिष पर अनेक अत्याचार हुए थे। दूरदर्शक यंत्र के प्रसिद्ध आविष्कारक गैलीलियो (Galileo) को सन् १६३३ में ईसाईमत के धर्म-गुरु (Pope) ने इसलिए कारागार भेज दिया था कि गैलीलियो अपने शिष्यों को सिखलाया करता था कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी उसकी परिक्रमा करती है। उस समय यह बात शास्त्र-विरुद्ध समझी जाती थी। कदाचित् उसे जीते जी जला दिये जाने की आज्ञा हो जाती यदि वह यह स्वीकार न कर लेता कि पोप ही का कहना ठीक है, उसका नहीं। परन्तु शोक की बात यह है कि भारतवर्ष के लोग अब भी उसी स्थान में पड़े हैं जहाँ वे ४०० वर्ष पहले थे और यूरोप और अमेरिका के लोग हमसे बहुत आगे बढ़ गये। अभी हाल की बात है कि पंचाङ्ग सुधारने के झगड़े

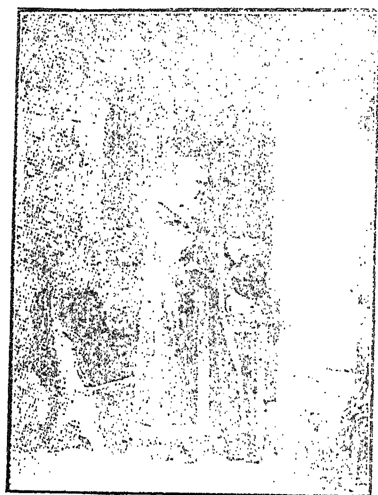


[पापुलर सायन्स से

चित्र ३६—**पीज़ा की टेढ़ी मीनार।**

इस पर से पत्थर के टुकड़े गिरा गिरा कर गैलीलियो ने गति-शास्त्र (Dynamics) के कई नियमों का आविष्कार किया।

में ही परलोकवासी लोकमान्य तिलक के सुपुत्र को जेल जाना पड़ा था।



[सायंटिफ़िक अमेरिकन से

चित्र २७—कारागार में गैलीलियो।

अपने नवीन विचारों के कारण वृद्ध गैलीलियो को कारागारवास भी करना पड़ा था।

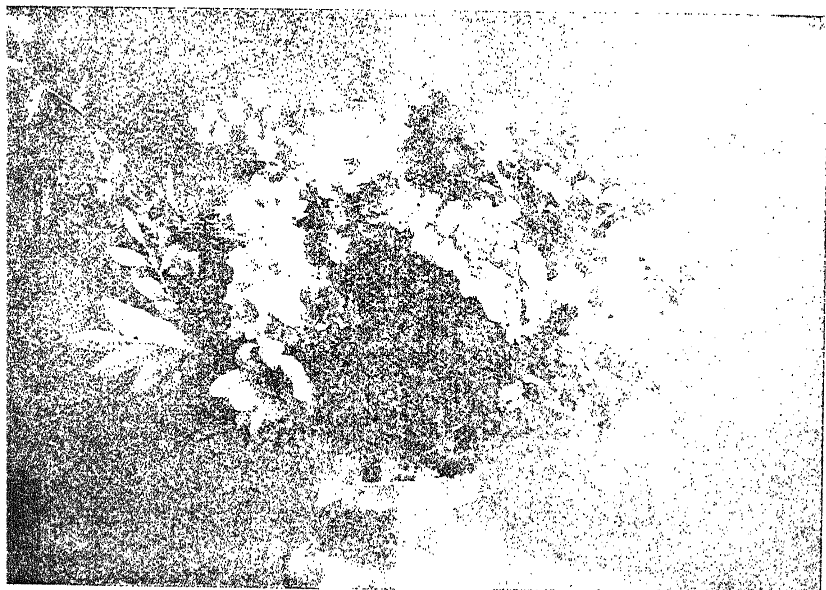
७—मनुष्य सर्वज्ञ नहीं है—धर्म्म और विज्ञान के सम्बन्ध पर विचार करते समय इस बात पर भी विचार करना आवश्यक है कि विज्ञान में सत्य और असत्य की क्या परिभाषा है। ऐसे लोग जो अपनी धर्म-पुस्तक को ईश्वर-वाक्य समझते हैं और इसलिए उसको अक्षरशः सत्य मानते हैं विज्ञान पर हँसते हैं। उनका कहना है कि विज्ञान एक ही सिद्धान्त को कभी सत्य मानता है और कभी झूठ। इसलिए विज्ञान कभी भी सत्य नहीं हो सकता। एक बार ग्रेट-ब्रिटेन के एक प्रसिद्ध वेधशाला के प्रधान सहायक ज्योतिषी से मुझसे ईसाई-मत पर बहस हुई थी। मैंने सुना था कि वे एक ऐसे (Plymouth Bretheren प्लिमथ ब्रदेरन नामक) समुदाय के सदस्य हैं जो कट्टर क्रिस्तान होते हैं और जो बाइबल को अक्षरशः सत्य मानते हैं। मुझे वस्तुतः अत्यन्त आश्चर्य हुआ जब उन्होंने यह सम्मति प्रकट की कि यदि "विज्ञान और तर्कशास्त्र ईश्वर-दत्त धर्म के विपरीत हों, तो उन्हें भाड़ में झोंक देना

चाहिए"। मालूम नहीं कैसे वे विज्ञान का अध्ययन दिन-रात किया करते थे, उसमें नये नये आविष्कार भी किया करते थे, और साथ ही उसी विज्ञान को इतना तुच्छ समझते थे। उनके अन्य सहयोगी, जो सभी क्रिस्तान थे, परन्तु बाइबल को अक्षरशः सत्य मानने के लिए तैयार न थे, इनके इस अन्ध-विश्वास पर हँसा करते थे।

परन्तु मुझे यहाँ धर्म पर या किसी विशेष मत पर, आक्रमण नहीं करना है। मैं केवल यहाँ यही बतलाना चाहता हूँ कि क्यों एक ही वैज्ञानिक सिद्धान्त कभी सत्य और कभी असत्य माना जाता है। इतना मैं और कह देना चाहता हूँ कि यह बड़े सौभाग्य की बात है कि वैदिक धर्म को वैज्ञानिक ज्योतिष से कुछ भी हानि नहीं पहुँची है।

विज्ञान कपटी और छली नहीं है। यह अपने दोषों को छिपाता नहीं है। यही कारण है कि वैज्ञानिक अकसर विज्ञान की नींव की जाँच किया करता है और उसके दोषों को दूर करने की चेष्टा किया करता है। वैज्ञानिक सिद्धान्त अनुभव और परीक्षा के आधार पर बनाये जाते हैं। परन्तु अनुभव और परीक्षा में जो जो त्रुटियाँ रह जाती हैं उनका प्रभाव सिद्धान्त पर भी पड़ जाता है। किसी घटना को हर पहलू से और पूरे ब्योरे के साथ देख लेना कितना कठिन है यह भिन्न भिन्न दर्शकों के विवरण में जो अन्तर पड़ जाया करता है उससे प्रत्यक्ष है। यद्यपि विज्ञान में यही चेष्टा की जाती है कि अनुभव और परीक्षाओं में यथासम्भव त्रुटि न होने पावे, परन्तु मनुष्य सर्वज्ञ तो है नहीं, त्रुटि रह ही जाती है। फिर मनुष्य घटनाओं को प्रत्येक दृष्टिकोण से नहीं देख सकता, जिससे सिद्धान्त में भी दुविधा रह जाती है। पर यह बात नहीं है कि इस कारण विज्ञान किसी काम का नहीं है या इसकी उन्नति

के लिए हमको चेष्टा न करनी चाहिए। जैसा प्रोफ़ेसर मोल्टन (Moulton)* ने कहा है—लकड़ी, पत्थर, ईंट और चूने से अभी तक कभी भी सब प्रकार से निर्दोष मकान नहीं बन सका है, तो भी मकान बड़े उपयोगी होते हैं और मनुष्य उनका निर्माण किया ही करेगा।



[लेखक के "फ़ोटोग्राफ़ी" से (इंडियन प्रेस)

चित्र २८—पुष्पगुच्छ।

क्या रंग और उभाड़ (relief) के न रहने से यह चित्र झूठा है ?

८—**एक दृष्टान्त**—प्रोफ़ेसर मोल्टन ने विज्ञान की वास्तविक प्रकृति को इस दृष्टान्त से समझाया है। कल्पना कीजिए कि

---

* F. R. Moulton: An Introduction to Astronomy (Macmillan) 1920.

मनुष्य ऐसी स्थिति में है कि वह अपने कोठे पर की खिड़की से एक पुष्प-वाटिका को देख सकता है। यदि वह मनुष्य चाहे तो इस वाटिका का ऐसा चित्र बना सकता है जिसमें रास्ते, क्यारियाँ, फूल और वृक्ष सब शुद्ध स्थान में अंकित रहें। यदि इस मनुष्य को रंग नहीं दिखलाई पड़ता, अर्थात् यदि यह मनुष्य रंग के सम्बन्ध में अंधा (Colour-blind) है तो वह चित्र को पेन्सिल से बना सकता है और उसे जितना दिखलाई पड़ता है वह सब इस चित्र में पूर्ण रूप से अंकित रहेगा। पर अब यदि कोई दूसरा मनुष्य, जिसे रंग भी दिखलाई पड़ता है, इस चित्र की जाँच करे तो वह कहेगा कि इसमें रंग तो है ही नहीं और इसलिए यह चित्र अशुद्ध है। उसका कहना ठीक भी होगा। यदि चित्र में रंग भर दिया जाय तो दोनों परीक्षकों को सन्तोष हो जायगा। परन्तु यदि कोई तीसरा मनुष्य इस चित्र का अध्ययन करे और तब वाटिका में जाकर वह वहाँ की वस्तुओं की पूरी जाँच करे तो उसे तुरन्त पता चलेगा कि बाग़ के फूल-पौधे-वृक्ष इत्यादि में लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई तीनों हैं। काग़ज़ पर बने चित्र में केवल लम्बाई-चौड़ाई ही थी। इसलिए उसे चित्र अशुद्ध जान पड़ेगा; वस्तुतः वाटिका को पूर्ण रूप से काग़ज़ पर अंकित कर ही नहीं सकते। इस काम के लिए मिट्टी या लकड़ी या अन्य उचित पदार्थ की मूर्ति बनानी चाहिए। इसलिए वह कहेगा कि काग़ज़ पर चित्र बनाकर बाग़ में क्या क्या है यह दिखलाना स्वभावतः सर्वथा अशुद्ध है। यदि तीसरे मनुष्य के अनुभव के अनुसार एक मूर्ति तैयार की जाय तो यह मूर्ति पहले दर्शक ने जिस वस्तु को जहाँ देखा था और दूसरे ने जिस वस्तु को जिस रंग का देखा था सबको ठीक तौर से प्रदर्शित करेगी और साथ ही तीसरे मनुष्य ने जो नई बातें पाई थीं उसे भी अंकित करेगी।

९—सत्य और असत्य—प्रोफ़ेसर मोल्टन का कहना है "कोई भी वैज्ञानिक सिद्धान्त एक या अधिक व्यक्ति के कार्य पर आश्रित रहता है। इन व्यक्तियों को अनुभव और परीक्षा के लिए केवल परिमित अवसर मिलता है। वैज्ञानिक सिद्धान्त भी एक चित्र है—काग़ज़ी नहीं मानसिक चित्र है—जिसमें संसार का एक भाग अंकित किया रहता है। इसमें उन सब बातों का निरूपण रहता है जो इस समय देखने में आती हैं, और यह भी मान लिया जाता है कि यह सिद्धान्त उन सब सम्बन्धों को भी शुद्ध रूप से प्रदर्शित करेगा, जिनका भविष्य में पता चलेगा। अब मान लीजिए कि कुछ ऐसी बातों का पता चलता है जो हमारे सिद्धान्त के बाहर हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे दूसरे दर्शक ने वाटिका में रंग देखा था जिसको पहले दर्शक ने न देख पाया था। तब उस वैज्ञानिक सिद्धान्त में इस प्रकार परिवर्तन करना पड़ेगा कि इसमें यह नई बात भी आ जाय। कदाचित्, सिद्धान्त में कुछ जोड़ देने ही से काम चल जायगा। परन्तु यदि ये नई बातें उस प्रकार की हैं जिस प्रकार बाटिका के सम्बन्ध में तीसरे दर्शक की थीं तो पुराने सिद्धान्त का त्याग ही करना पड़ेगा और एक बिलकुल नये सिद्धान्त का निर्माण करना पड़ेगा। नये में उन सब सम्बन्धों को सुरक्षित रखना पड़ेगा जो पुराने सिद्धान्त में थे और साथ ही नये सम्बन्धों को भी दिखलाना पड़ेगा।

"इस बहस को ध्यान में रखते हुए यह पूछा जा सकता है कि किस अर्थ में वैज्ञानिक सिद्धान्त सत्य कहे जा सकते हैं। उत्तर है कि ये सब वहाँ तक ठीक हैं जहाँ तक वे प्रकृति का चित्रण करते हैं। मुख्य बात प्रकृति के नियम ही हैं। जब प्रकृति के वास्तविक सम्बन्धों का भली भाँति निर्णय हो जाता है तब वे हमारी चिर-स्थायी पूँजी हो जाते हैं। उनके निरूपण करने का ढंग चाहे



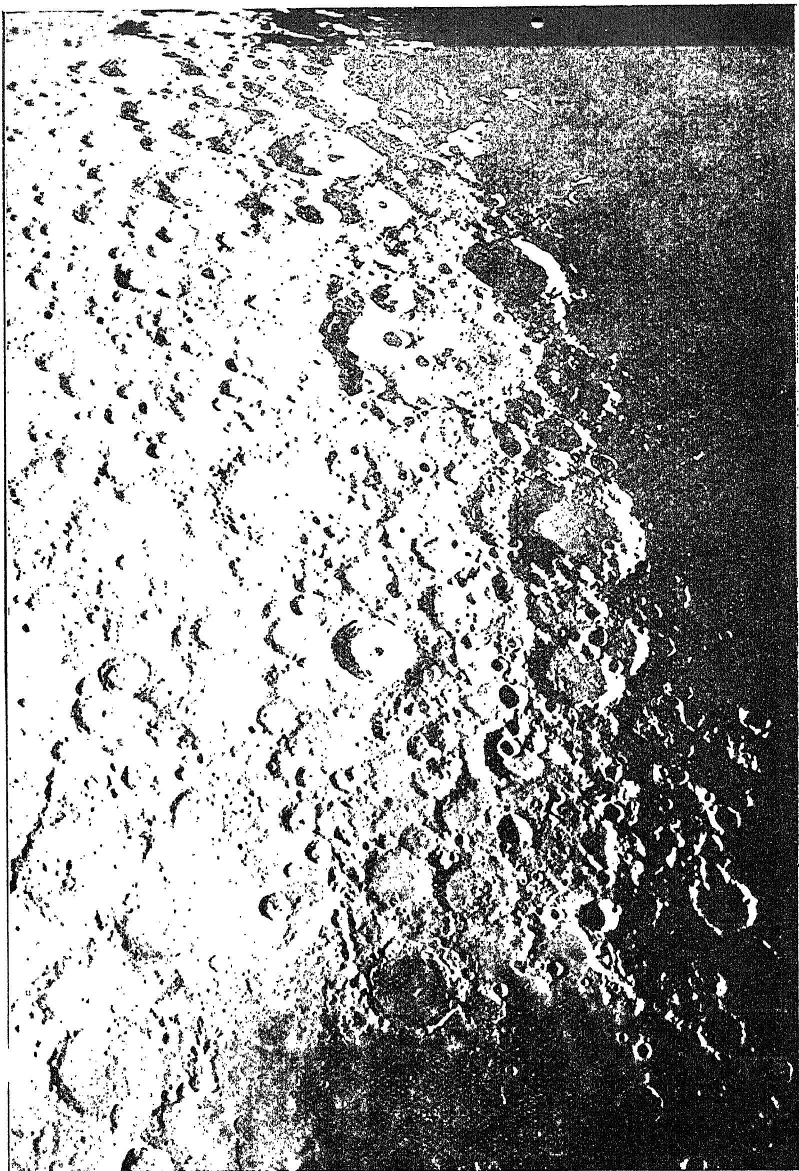
[लिक वेधशाला

चित्र २९—चन्द्रमा पर अनेक पहाड़-पहाड़ियाँ हैं ।
इनका अध्ययन वर्णनात्मक ज्योतिष के अन्तर्गत है ।

कितना ही बदले, वे निर्विकार रह जाते हैं। कोई भी वैज्ञानिक सिद्धान्त उन सम्बन्धों के, जिन पर वह आश्रित है, वर्णन करने का एक सुगम और अत्यन्त उपयोगी रीति है। यह उनका शुद्ध शुद्ध चित्र खींचता है और इस बात में अंधविश्वास से भिन्न है। अंध-विश्वास तो सब जानी हुई बातों के सानुकूल भी नहीं होता। सिद्धान्त से कई एक नई बातों का संकेत निकलता है और वह कई एक नये अनुसंधानों के लिए मनुष्य को प्रेरित करता है। यदि सिद्धान्त की बतलाई हुई बातें अनुभव से शुद्ध पाई गईं, तो सिद्धान्त अधिक दृढ़ हो जाता है; अन्यथा, इसमें परिवर्तन करना पड़ता है। इसलिए, सिद्धान्त में संशोधन करना पड़ता है या इसका परित्याग करना पड़ता है यह कोई लज्जा की बात नहीं है। ऐसा करने की आवश्यकता यह सूचित करती है कि नई बातों का पता चला है, यह नहीं कि पहले की बातें झूठी थीं। (वैज्ञानिक सिद्धान्त का वाटिका की वस्तुओं के चित्र से तुलना केवल उनकी एक विशेषता को स्पष्ट करने के लिए की गई है। स्मरण रखना चाहिए कि अधिकांश बातों में ऐसी तुच्छ वस्तु से तुलना करना अत्यन्त अपूर्ण है और यह विज्ञान के लिए बिलकुल अन्याय है।) ”

१०—ज्योतिष क्या है ?—ज्योतिष में आकाशीय पिंडों (celestial object) की गति, उनके आकार, माप, और वज़न, उनकी सतह पर के पहाड़, पहाड़ी आदि, उनकी बनावट, प्रकृति और तापक्रम आदि, उनके परस्पर आकर्षण, और उनके विकास आदि पर विचार किया जाता है। आधुनिक ज्योतिष के मुख्य अंग ये माने जाते हैं:—

(१) प्रैक्टिकल (practical) अर्थात् क्रियात्मक ज्योतिष, जिसमें बेधक्रिया पर विचार किया जाता है। यंत्रों का निर्माण



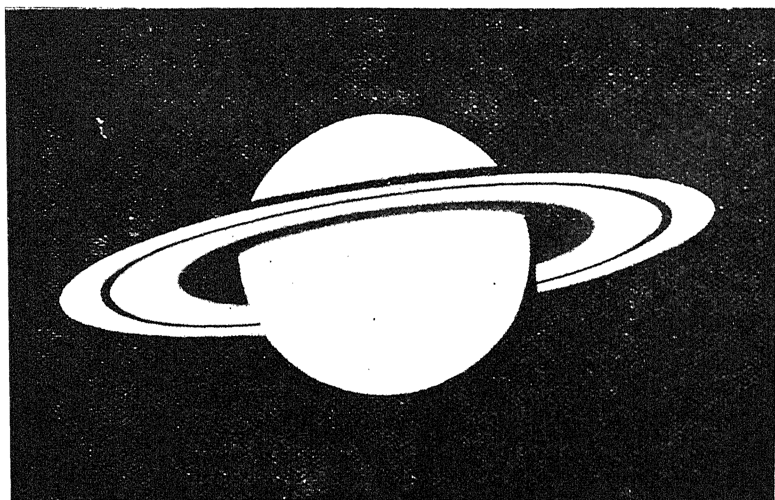
[यरकिज़ बेधशाला

चित्र ४०—चन्द्रमा का एक भाग।

देखिए इसमें कितने गड्ढे दिखलाई पड़ते हैं।

और प्रयोग, बेधक्रिया की विधि, उसकी त्रुटियों का निवारण और उन सब वस्तुओं का नापना जिनका प्रयोग ज्योतिष के अन्य विभागों में किया जाता है, इसी अंग के अन्तर्गत हैं।

(२) स्थिति-सम्बन्धी ज्योतिष में आकाशीय पिंडों की स्थिति, दूरी, नाप; उनके पहाड़, पहाड़ों की उँचाई इत्यादि; तथा



[बारनार्ड

चित्र ४१—शनि या सनीचर।

दूरदर्शक में यह ग्रह बड़ा सुन्दर जान पड़ता है। इसका अध्ययन भी वर्णनात्मक ज्योतिष के अन्तर्गत है।

उनकी प्रत्यक्ष गति और उनकी वास्तविक गति पर विचार किया जाता है। इसी अंग का एक विभाग गोलीय ज्योतिष (spherical astronomy) है जिसमें आकाशीय पिंडों की प्रत्यक्ष गति और स्थिति पर विचार किया जाता है।

(३) आकाशीय गति-शास्त्र (celestial mechanics) में गति-शास्त्र के उन नियमों को ज्योतिष-सम्बन्धी विषयों में लगाया जाता

है जो यह बतलाते हैं कि वस्तुओं में शक्ति (force) के प्रभाव से किस प्रकार की गति उत्पन्न होती है। विशेष रूप से चन्द्रमा और ग्रहों की गतियों पर विचार किया जाता है। इस विभाग को आकर्षण-शक्तीय (gravitational) ज्योतिष भी कहते हैं, क्योंकि एक दो छोटे कारणों को छोड़ कर आकर्षण ही एक ऐसी शक्ति है जिससे आकाशीय पिंडों में प्रत्यक्ष गति उत्पन्न होती है।

आकाशीय पिंडों के मार्गों का निर्णय करने में और उनकी स्थितियों और गति की सारिणी बनाने में ऊपर बतलाये गये ज्योतिष के सभी अंग प्रयोग किये जाते हैं।

(४) ऐस्ट्रोफ़िज़िक्स (astrophysics) में आकाशीय पिंडों की भौतिक दशा, और उनकी चमक और रंग, उनके तापक्रम और विकिरण, उनके वायुमंडल



[लॉवेल बेधशाला

चित्र ४२—शनि के चार फ़ोटोग्राफ़।
भिन्न भिन्न वर्षों में, स्थिति के बदलने से, इसका आकार भी बदलता रहता है।

की दशा और बनावट, और उनको धरातल और रसातल को उन सब घटनाओं पर विचार किया जाता है जो उनकी भौतिक



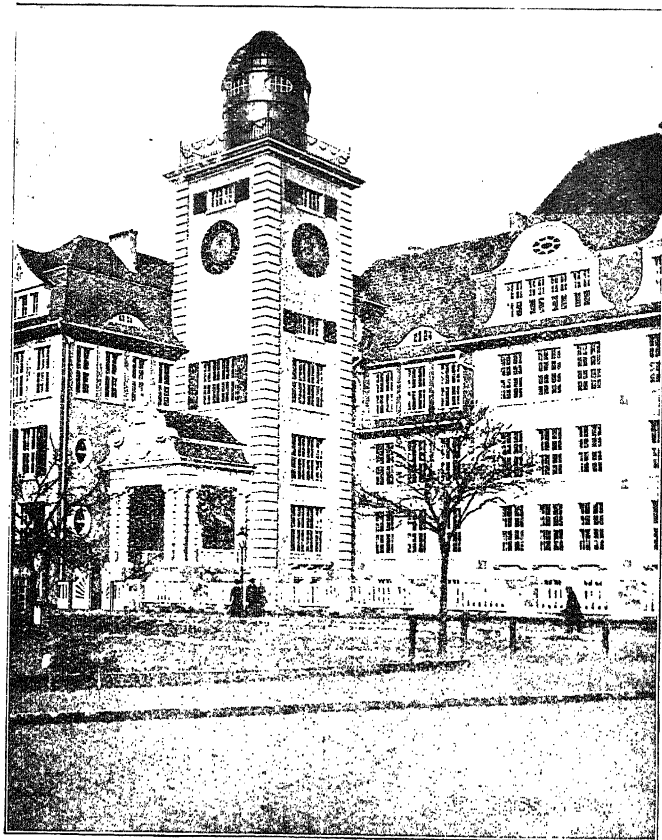
[पापुलर सायन्स से

चित्र ४३—छोटे ज्योतिषी।

अमेरिका में ज्योतिष का प्रचार इतना है कि वहाँ स्कूल के लड़के भी ज्योतिष का अच्छा अध्ययन करते हैं। इस चित्र में कुछ स्कूली लड़के दूरदर्शक ठीक करते हुए दिखलाये गये हैं। ऊपर के दाहने कोने में उनका वेधालय दिखलाया गया है।

दशा को बतलाती हैं या उस पर निर्भर हैं। यद्यपि यह अंग सबसे अल्प-वयस्क है, तो भी यह ज्योतिष का सबसे सजीव

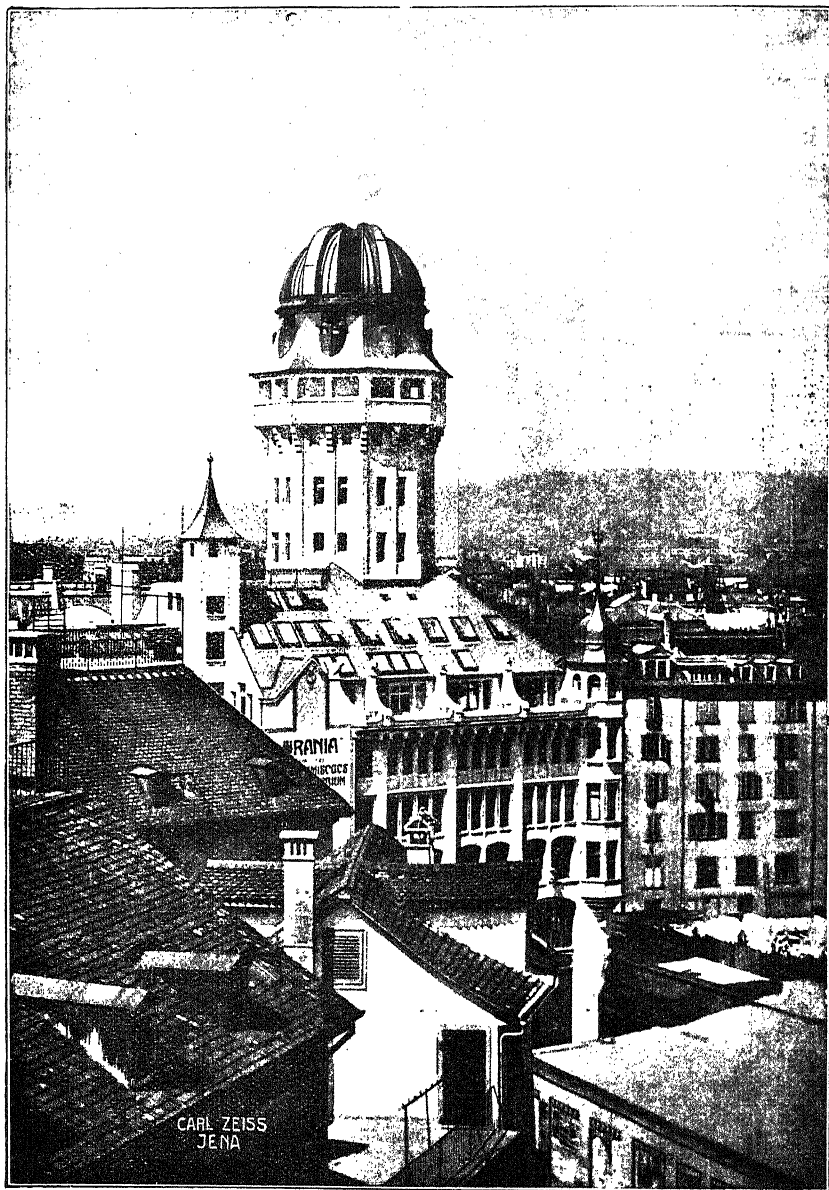
अंग है और बहुत सम्भव है कि शीघ्र हो यह इतना बढ़ जायगा कि दूसरे सब अंग एक साथ मिल कर भी इसका मुक़ाबला न कर



[जाइस कंपनी

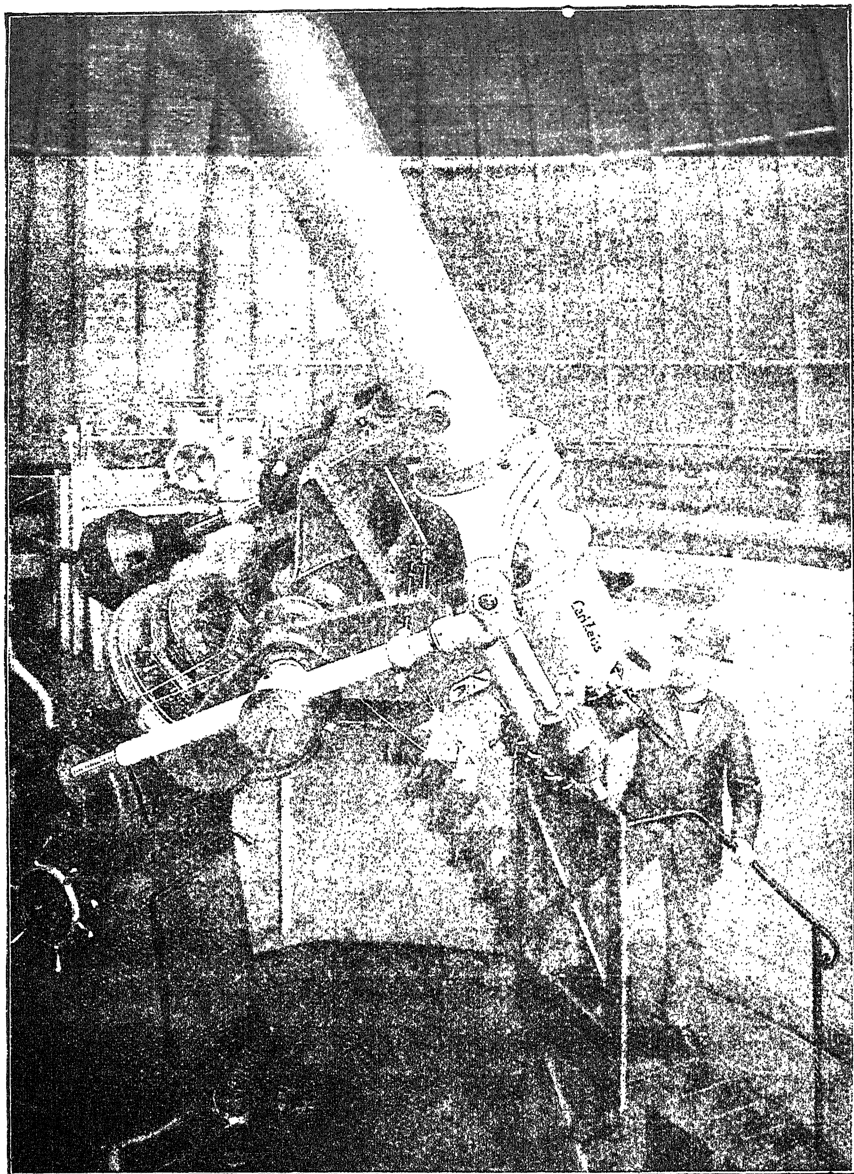
चित्र ४४—एरफुर्ट (जरमनी) के सरकारी हाई स्कूल की बेधशाला। भारतवर्ष के कालेजों में भी बेधशाला नहीं रहती; अन्य देशों के स्कूलों में यह उन्नति है।

सकेंगे। इस अंग के मुख्य भाग रश्मि-विश्लेषण (spectroscopy) और ज्योति-मापन (photometry) हैं।



[जाइस कंपनी

चित्र ४९—यूरेनिया बेधशाला, ज़ीरिख़ (Zürich), जरमनी;
"यूरेनिया" नामक बेधशाला जनता के लिए बनी है।



[ज़ाइस कंपनी

चित्र ४६—"यूरेनिया" बेधशाला का प्रधान दूरदर्शक; यह बेधशाला जनता के लिए बनाई गई है ।

(५) ज्योतिष की सभी शाखायें उस प्रधान, और अभी तक उत्तर-रहित पहेली को हल करने की चेष्टा में सहायता देती हैं जिसे विश्व-विकास (cosmogony) कहते हैं और जिसमें सूर्य, ग्रह, पृथ्वी और नक्षत्रों के जन्म और विकाश का अध्ययन किया जाता है।

(६) वर्णनात्मक ज्योतिष (descriptive astronomy); ज्योतिष की घटनाओं और नियमों के सिलसिलेवार वर्णन को ही वर्णनात्मक ज्योतिष कहते हैं।

(७) नाविक ज्योतिष (nautical astronomy) में वे बातें आती हैं जिनकी आवश्यकता नाविक को पड़ती है।

* * * * * *

इस पुस्तक में ज्योतिष के उन सभी अंगों का, जो सर्वसाधारण के समझने योग्य हैं, सरल भाषा में और विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है और चित्रों को अधिक संख्या में देकर पाठकों के पास दूरबीन या अन्य यंत्र के न रहने की असुविधा को बहुत कुछ मिटा दिया गया है। परन्तु पुस्तक विशेष कर उन लोगों के लिए लिखी गई है जो किसी बात को सत्य मानने के पहले उसका प्रमाण जानना चाहते हैं। साथ ही इस पर भी ध्यान रक्खा गया है कि यह पुस्तक उनकी समझ में भी अच्छी तरह आ जाय जो अधिक गणित या विज्ञान न जानते हों। लेखक का विश्वास है कि धैर्य्य के साथ पढ़ने से इस पुस्तक की प्रायः सभी बातें उन लोगों की समझ में आ जायँगी जिन्होंने कभी हाई स्कूल तक के गणित और विज्ञान का अध्ययन किया होगा। बहुत सी बातें छोटे छोटे लड़के लड़कियाँ भी समझ लेंगी।

अध्याय २

दूरदर्शक यंत्र की बनावट

१—ज्योतिषियों की आँख—कहा जाता है कि पुराने ज़माने में साइक्लॉप्स नाम की निश्चरों की एक जाति होती थी जिनके सिर में एक ही बड़ी सी आँख होती थी। आधुनिक ज्योतिषी को भी एक आँख है और वह एक दो इंच की नहीं, एक



[पुराने चित्र की नक़ल

चित्र ४७—**साइक्लॉप्स**।

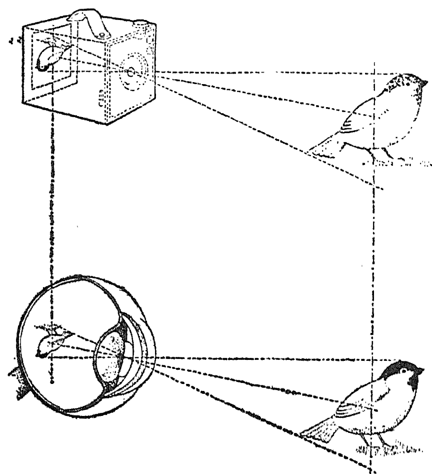
कहा जाता है कि पुराने ज़माने में साइक्लॉप्स नाम की एक जाति निश्चरों की होती थी जिनके सिर में एक ही आँख बड़ी सी होती थी।

दो फ़ुट की भी नहीं, एकदम सवा आठ फ़ुट की! उसकी आँख दूरदर्शक यंत्र है। ठीक आँख सा यह बनता है। जैसे आँखों में एक ताल होता है*, ठीक उसी प्रकार, दूरदर्शकों में भी

---

* देखिए त्रिलोकीनाथ वर्मा "हमारे शरीर की रचना" जिल्द २, पृष्ठ २४९।

एक ताल होता है और जैसे आँख के ताल से बाहरी वस्तुओं की मूर्ति बन कर नेत्रान्त-पटल (retina रेटिना) पर पड़ती है, वैसे ही दूरदर्शक के ताल से फ़ोटोग्राफ़ी के प्लेट पर मूर्ति बनती है (चित्र ४८); परन्तु ज्योतिषी निश्चरों से दोनों बातों में बढ़ गया है। साधारण आँखों के ⅕ इंच व्यास के ताल के बदले वह महाबृहत्काय ताल रखता है और उसका प्लेट नेत्रान्त-पटल से कहीं अधिक तेज़ होता है। जिस अँधेरे में घंटों घूरते रहने पर भी नेत्रान्त-पटल को कुछ भी पता नहीं चलता वहाँ उसका प्लेट सुगमता से चित्र उतार सकता है। ऐसे अद्भुत यंत्र की, जिसके बिना ज्योतिष की उन्नति हो ही नहीं सकती थी, बनावट क्या है? क्यों इससे चीज़ें बड़ी या अधिक चमकीली मालूम पड़ती हैं? अदृश्य वस्तुएँ भी इससे क्यों दिखलाई पड़ती हैं? इस यंत्र को किस प्रकार काम में लाया जाता है? संसार के सबसे बड़े दूरदर्शक कहाँ कहाँ हैं? और कितने बड़े हैं? दूरदर्शक का आविष्कार किसने किया? इत्यादि बातें जानने की इच्छा प्रत्येक ज्योतिष-प्रेमी को होगी।

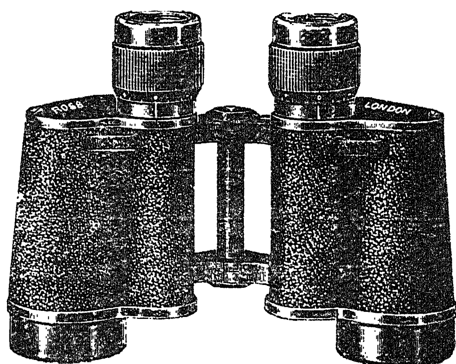


[टरनर की फ़िज़िऑलोजी एण्ड हाइजीन से

चित्र ४८—आँख की बनावट;

यह फ़ोटोग्राफ़ी के कैमेरे सी है।

हमको विश्वास है कि दूरदर्शक की बनावट आदि के समझ जाने पर जो आनन्द मिलेगा वह उस आनन्द से कहीं अधिक होगा जो संसार के बड़े से बड़े दूरदर्शकों का सरसरी तौर से दिग्दर्शन कर लेने से होता। इसलिए हम पाठकों से कहेंगे कि वे इस अध्याय के सभी प्रक्रमों को पढ़ें। उन्हें आश्चर्य होगा कि विज्ञान की कठिन से कठिन बातें भी कैसी सुगमता से समझ में आ सकती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी पाठक होंगे जिनके पास कुछ नहीं तो एक छोटा सा बिनॉक्युलर दूरदर्शक होगा या वे कोई दूरदर्शक, छोटा या बड़ा, बिनॉक्युलर या ज्योतिष-सम्बन्धी, ख़रीदना चाहते होंगे। स्वभावतः वे जानना चाहेंगे कि रंगदोष-रहित (achromatic), प्रवर्धन-शक्ति (magnifying power), दृष्टि-क्षेत्र (field of view), इत्यादि का क्या अर्थ है। इन सबका ज़िक्र प्रत्येक कैटलग (सूचीपत्र) में रहता है। हमें आशा है कि इस अध्याय से ऐसे पाठकों को भी संतोष होगा।



[रॉस कंपनी

चित्र ४६ —**बिनाक्युलर दूरदर्शक** (Binocular)

इस छोटे से यन्त्र से भी आकाश के कई सुन्दर दृश्य देखे जा सकते हैं।

२—दूरदर्शक यंत्र के तीन काम—दूरदर्शक यंत्र (telescope, टेलेस्कोप), जैसा इसके नाम से ज्ञात होता है, दूरस्थ वस्तुओं को स्पष्ट रूप से देखने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके मुख्य काम तीन हैं :—

(१) इसकी सहायता से दूरस्थ विषय समीप, स्पष्ट और बड़ा दिखलाई पड़ता है। ऐसे नक्षत्र आदि जो इतने मन्द प्रकाश के हैं या इतनी दूर हैं कि वे हमको दिखलाई नहीं पड़ते इस यन्त्र की सहायता से देखे जा सकते हैं या उनका प्रकाश-चित्र (फ़ोटोग्राफ़) लिया जा सकता है।

(२) दूरदर्शक नक्षत्र इत्यादि के प्रकाश को एकत्रित करता है और उसे दूसरे यंत्र में, जैसे रश्मि-विश्लेषक यंत्र में, भेजता है।

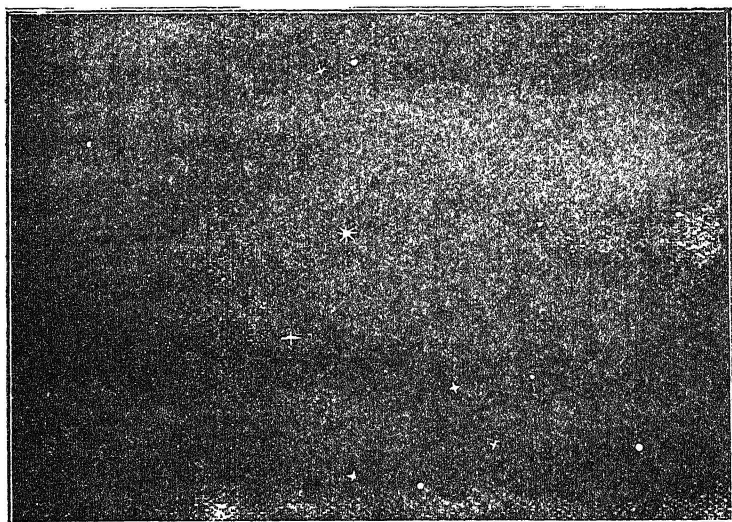
(३) दूरदर्शक की सहायता से किसी वस्तु की दिशा को सूक्ष्मरूप से स्थिर किया जा सकता है।

इन तीनों कार्यों को हम निम्न-लिखित प्रयोगों से अच्छी तरह समझ सकते हैं।

यदि हम किसी पुस्तक को खोल कर इस प्रकार खड़ी कर दें कि इसके पृष्ठ पर धूप पड़े और हम इससे १०० फ़ुट की दूरी पर खड़े हो जायँ तो हम देखेंगे कि पुस्तक का पढ़ना या इसके अक्षरों का पहचानना असम्भव है। परन्तु यदि हम इस पुस्तक को अच्छे दूरदर्शक यंत्र द्वारा देखें तो सब अक्षर स्पष्ट, बड़े बड़े और समीप दिखलाई पड़ेंगे। दूरदर्शक का यह एक काम हुआ।

हम देखेंगे कि यद्यपि दूरदर्शक की सहायता से अक्षर स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं परन्तु तो भी पुस्तक स्वयं इतनी प्रकाशमान नहीं दिखलाई पड़ती है जितनी कोरी आँख से। सच्ची बात यह है कि दूरदर्शक यन्त्र के प्रयोग से सभी वस्तुओं की चमक कम हो जाती है, क्योंकि दूरदर्शक में वह वस्तु बड़ी दिखलाई देने लगती है और इसलिए प्रकाश बँट जाता है। परन्तु यह बात उन वस्तुओं के लिए लागू नहीं है जिनमें लम्बाई चौड़ाई नहीं होती, अर्थात्, जो केवल विन्दुस्वरूप होते हैं, क्योंकि उनका व्यास शून्य के तुल्य होता है। हज़ार गुना बड़ा होने पर भी उनका व्यास 0×1000,

अर्थात् शून्य ही के बराबर रह जाता है। इसलिए दूरदर्शक में जितना प्रकाश घुसता है सब इस विन्दु में एकत्रित हो जाता है और यह विन्दु अत्यन्त चमकीला दिखलाई पड़ने लगता है। तारे सब हमसे इतनी दूर हैं कि वे हमको सदा विन्दु ही से दिखलाई पड़ते हैं। इसी कारण दूरदर्शक यंत्र की सहायता से वे अधिक



[मिस एअरी

चित्र ४०—कृत्तिका तारा-पुंज।

कोरी आँख से वे ही ६ तारे जो यहाँ स्वस्तिक चिह्न से सूचित किये गये हैं दिखलाई पड़ते हैं।

चमकीले दिखलाई पड़ते हैं, यहाँ तक कि वे तारे जो हमको कोरी आँख से कभी भी न दिखलाई पड़ते इससे स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगते हैं। आपने उस तारा-पुंज को कदाचित् देखा होगा जिसे ग्रामीण भाषा में किचपिचिया और संस्कृत में कृत्तिका (Pleides प्लायडीज़) कहते हैं। सरसरी तौर से देखने पर यह तारा-पुंज अस्पष्ट और

कई ताराओं का एक छोटा सा झुंड जान पड़ता है पर ध्यान देने से इसमें ६ तारे दिखलाई पड़ते हैं (चित्र ५०)। यदि इसे छोटे से दूरदर्शक यंत्र से भी देखा जाय तो इसमें पचीसों तारे दिखलाई पड़ेंगे (चित्र ५१)। इस प्रकार दूरदर्शक ऐसे नक्षत्रों को भी दिखलाता है जो कोरी आँख को नहीं दिखलाई देते। आँख की पुतली का छिद्र, लगभग १/५ इंच है, इसलिए १ इंच दूरदर्शक से बनी

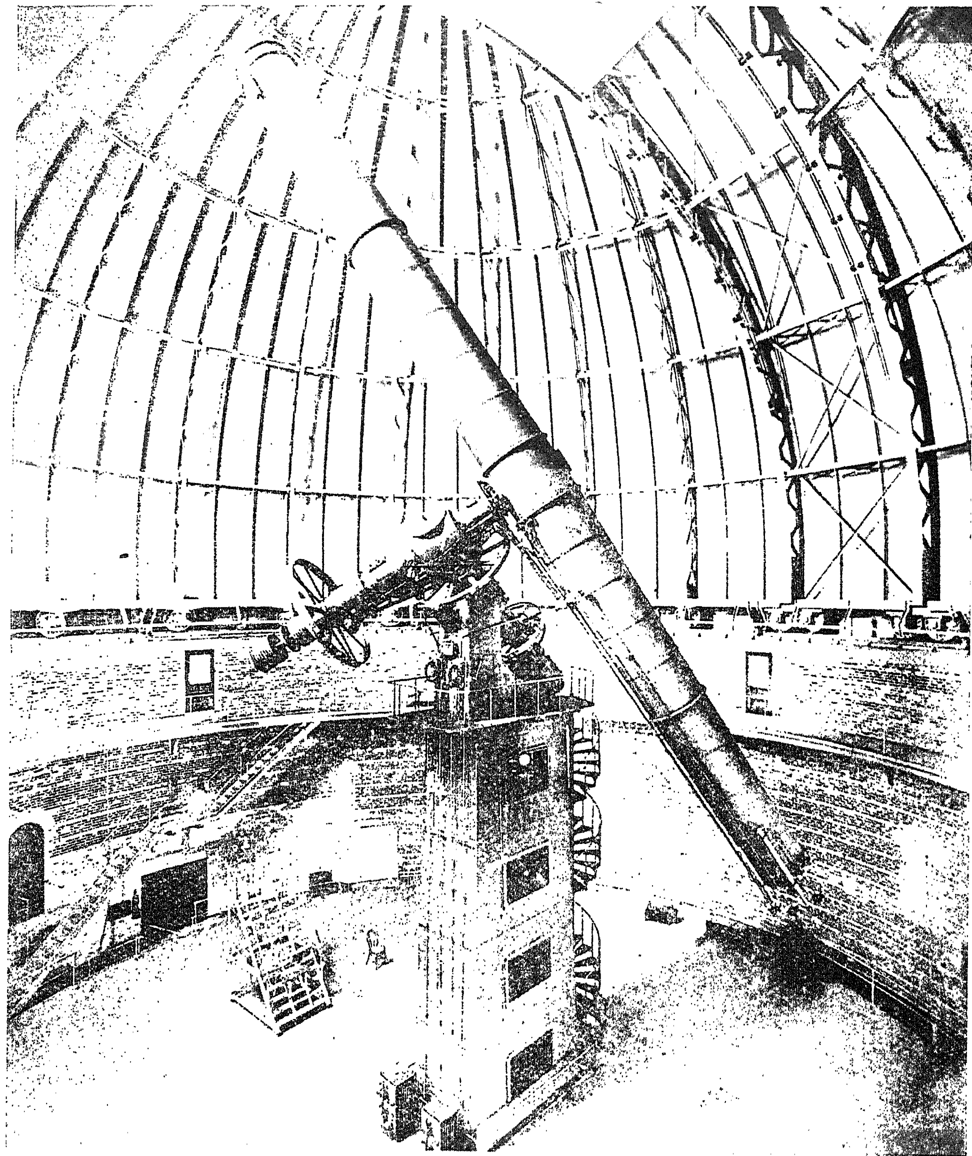


[जोरैट

चित्र ५१—कृत्तिका तारा-पुंज।

छोटे दूरदर्शक-द्वारा पचीसों तारे दिखलाई पड़ते हैं।

नक्षत्र की मूर्ति, (तालों को पार करने में जितने प्रकाश का क्षय हो जाता है उसे छोड़कर) २५ गुनी दीप्तिमान् होती है। यरकिज़ का ४० इंचवाला दूरदर्शक आँख की अपेक्षा १४० हज़ार गुना



[यरकिज़ बेधशाला

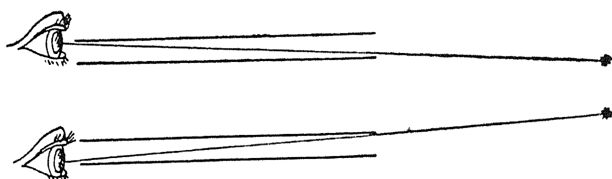
चित्र ५२—यरकिज़ का ४० इंचवाला दूरदर्शक।

यह संसार के सब तालयुक्त दूरदर्शकों में बड़ा है। किसी तारे की मूर्ति इस यन्त्र में आँख की अपेक्षा २५ हज़ार गुनी चमकीली दिखलाई पड़ती है!

(या क्षति को काट कर, ३५ हज़ार गुना) प्रकाश को एकत्रित करता है !

इसका दूसरा कार्य रश्मि-विश्लेषण यंत्र के अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा।

३—दूरदर्शक का तीसरा कार्य—दूरदर्शक का तीसरा कार्य ज्योतिष-सम्बन्धी मापों के लिए बड़े महत्त्व का है। इस यंत्र के आविष्कार होने के पहले किसी तारे की दिशा को स्थिर करने के लिए एक नलिका का प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार की नलिका काशी के मान-मन्दिर के चक्र-यन्त्र में लगी



चित्र ५३ और ५४—नलिका से दिशा का सूक्ष्म ज्ञान नहीं हो सकता।

है। परन्तु नलिका से दिशा का सूक्ष्म ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि आँख के ज़रा सा भी इधर-उधर होने से नलिका और नक्षत्र की दिशा में अन्तर पड़ जायगा (चित्र ५३ और ५४)। यदि नलिका पतली और लम्बी बनाई जाय तो यह त्रुटि कम हो जायगी, परन्तु मिटेगी नहीं और स्मरण रखना चाहिए कि नलिका बहुत पतली बनाई नहीं जा सकती, क्योंकि ऐसा करने से इसके द्वारा स्पष्ट देखना कठिन हो जायगा। इस कठिनाई का पाय केवल दूरदर्शक के प्रयोग से ही हो सकता है।

साधारण बन्दूक़ में निशाना ठीक करने के लिए उन्न पर दो विन्दु लगे रहते हैं। जब ये दोनों विन्दु और दूरस्थ

वस्तु दोनों एक ही रेखा में हो जाते हैं तब निशाना सधता है। कभी कभी दो विन्दु के बदले एक छेद और एक विन्दु रहते हैं। कुछ पुराने ज्योतिष के यंत्रों में भी इसी सिद्धान्त का उपयोग किया



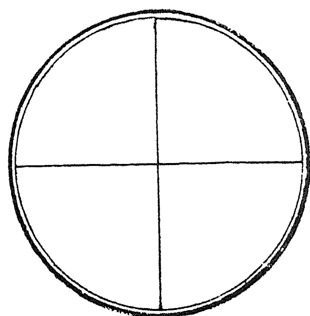
[न्यूकॉम्ब-एंगलमान की ऐस्ट्रॉनोमी से

चित्र ५५—हेवेलियस का भित्ति-यंत्र।

हेवेलियस और उसकी स्त्री बेध कर रहे हैं।

जाता था। चित्र ५५ में हेवेलियस (Hevelius) नामक प्रसिद्ध ज्योतिषी का एक यंत्र, जिसे भित्ति यंत्र (mural circle, म्यूरल सरकिल) कहते हैं, दिखलाया गया है। इससे तारात्रों की उँचाई

(उन्नतांश) नापी जाती थी। इसमें तारात्रों को बेधने के लिए एक ओर छिद्र और दूसरी ओर धारदार पत्र लगा था। परन्तु इस प्रकार के यंत्रों में भी, चाहे इनमें दो विन्दु, चाहे एक छेद और एक विन्दु या धार हो, स्थूलता रहती है, क्योंकि दूरस्थ वस्तु, धार और छिद्र तीनों एक साथ ही स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ते।



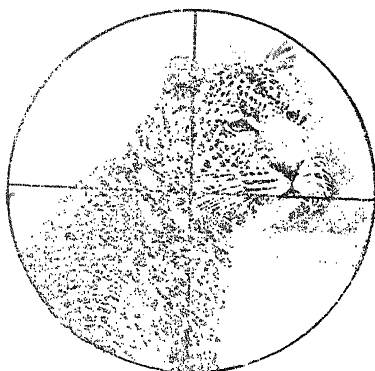
चित्र ५६—स्वस्तिक तार।

ये दो तार बाज़ दूरदर्शकों के दृष्टि-क्षेत्र में लगे रहते हैं।

दूरदर्शक यंत्र लगाने से यह कठिनाई बिलकुल मिट जाती है। दूरदर्शक के दृष्टि-क्षेत्र में दो तार एक दूसरे से समकोण बनाते हुए लगे रहते हैं (चित्र ५६)। इनको स्वस्तिकतार (cross-wires क्रॉस-वायर्स) कहते हैं। दूरस्थ वस्तु के जिस भाग पर वह विन्दु पड़े जहाँ ये दोनों तार एक दूसरे को काटते हैं उसी भाग की ओर दूरदर्शक की दिशा होगी। सुभीता और सूक्ष्मता इस बात से होती है कि ये तार और दूरस्थ वस्तु दोनों साथ ही स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं (चित्र ५७)। इसी कारण कुछ बन्दूकों में भी दूरदर्शक लगे रहते हैं (चित्र ५८)। इनके रहने से निशाना बहुत ठीक लगाया जा सकता है। तारात्रों की ऊँचाई जिस यन्त्र से अब निकाली जाती है उसका चित्र यहाँ दिया जाता है (चित्र ५९)। इसको यामोत्तर चक्र कहते हैं और इसमें भी तारात्रों की दिशा का ज्ञान करने के लिए ऐसा दूरदर्शक रहता है जिसकी दृष्टि में दो या अधिक तार लगे रहते हैं।

४—दूरदर्शक का महत्त्व—दूरदर्शक के ये तीनों कार्य आप आपके लिए सभी महत्त्वपूर्ण हैं, परन्तु इनमें से पहला कार्य

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र इत्यादि के न तो हम निकट जा सकते हैं और न हम उनको छू सकते हैं। इसलिए सिवाय उनकी गति के अन्य किसी बात का पता दूरदर्शक के बिना नहीं चल सकता। प्राचीन ज्योतिषियों को इसी लिए उनके स्वरूप और बनावट के विषय में निश्चयरूप से कुछ ज्ञात न था। परन्तु दूरदर्शक के प्रयोग से हम अब बहुत सी बातें जान सके हैं; इसलिए यह यंत्र अत्यन्त महत्त्व का गिना जाता है, अतः हमको पहले इनके विषय में कुछ जान लेना उचित होगा।



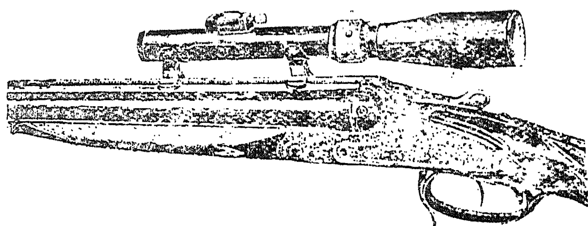
चित्र ४७—स्वस्तिक तार और दूरस्थ वस्तु दोनों साथ ही स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं।

इसलिए दूरदर्शकयुक्त बन्दूक़ से बड़ा सच्चा निशाना लगता है।

जिस प्रकार ग्रामोफ़ोन के गाने से सभी आनन्द उठा सकते हैं, चाहे वे इस यंत्र की बनावट को समझें या न समझें, उसी प्रकार दूरदर्शक-द्वारा प्राप्त ज्ञान से सभी आनन्द उठा सकते हैं चाहे वे यह जानें या न जानें कि दूरदर्शक की बनावट क्या है, या इससे क्यों दूर की चीज़ें स्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं। परन्तु पढ़े-लिखे लोग ऐसे बहुत कम होंगे जिनको यह जानने की रुचि न हो कि ग्रामोफ़ोन से क्यों और कैसे आवाज़ निकलती है और दूरदर्शक से दूरस्थ वस्तुएँ क्यों स्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त लेखक को विश्वास है कि विज्ञान न जाननेवाले भी इसे सरलता से समझ सकते हैं कि दूरदर्शक कैसे अपना कार्य करता है; और यह काफ़ी मनोरंजक भी

होगा। इसी लिए पहले सरल रीति से यह समझाया जायगा कि दूरदर्शक की बनावट क्या है।

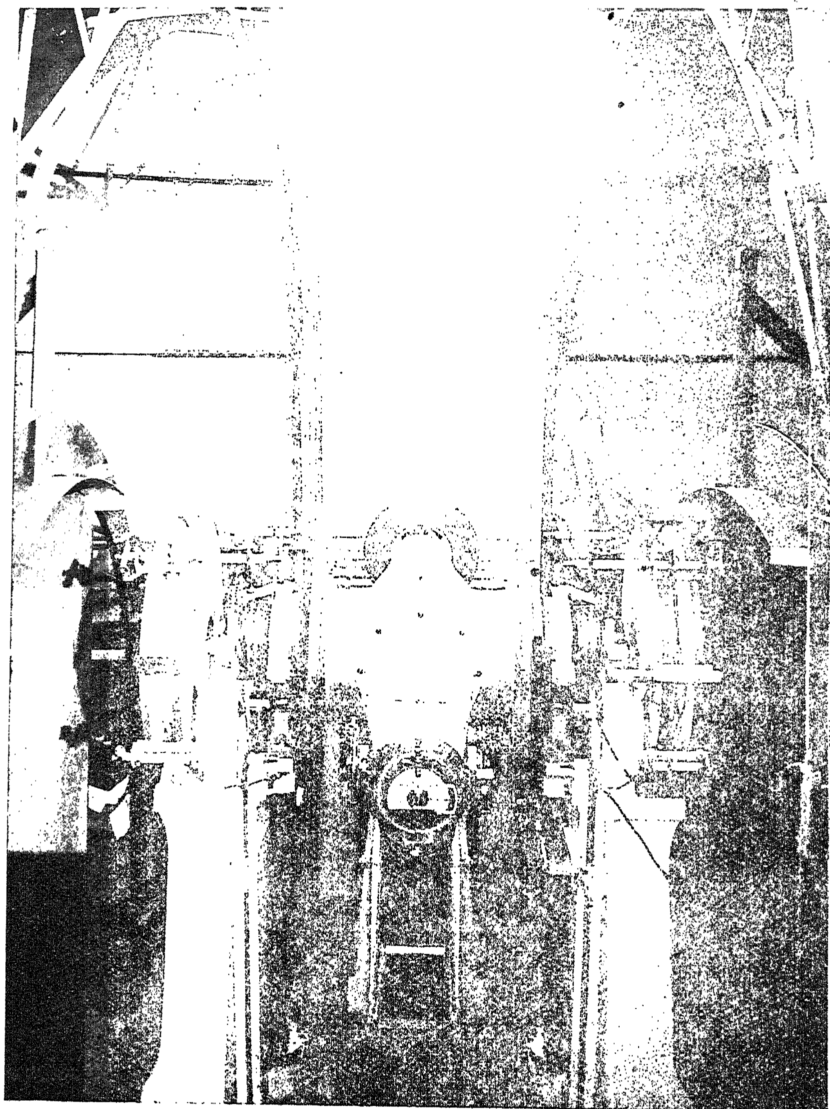
५---**ताल**---सभी जानते हैं कि प्रकाश सीधी रेखा में चलता है। यदि किसी मोमबत्ती के सामने कोई अपारदर्शक परदा रख दिया जाय, जैसे दफ़्ती या टीन का एक टुकड़ा, और इस परदे में एक छोटा सा छेद कर दिया जाय तो प्रकाश इस छेद से निकल कर सीधी रेखा में चला जायगा (चित्र ६१)। यदि सीधे न जाने देकर किसी अन्य दिशा में अब प्रकाश को हम घुमा देना चाहें तो हमारे लिए दो उपाय हैं। पहला तो यह कि हम एक दर्पण का प्रयोग करें (चित्र ६२); दूसरा यह कि हम शीशे के क़लम (त्रिपार्श्व, prism प्रिज़्म) का उपयोग करें (चित्र ६३)। यह क़लम वही है जो झाड़ फ़ानूस में लगाया



[ग्लाइखेन की ऑप्टिकल इन्स्ट्रुमेन्ट्स से

चित्र ५८---दूरदर्शकयुक्त बन्दूक़।

जाता है। इसके द्वारा देखने से सभी वस्तुएँ लाल, नीली हरी, पीली, रंग बिरंगी, इन्द्र-धनुष-सदृश दिखलाई पड़ती हैं। यदि आप उपरोक्त प्रयोग को करके देखें तो आपको पता चलेगा कि प्रकाश मुड़ अवश्य जाता है, पर साथ ही यह कई रंगों का हो जाता है। यहाँ हमें इसके रंग-बिरंगी हो जाने से प्रयोजन नहीं है। इस पर पीछे विचार किया जायगा। ध्यान अभी इस बात पर देना चाहिए कि प्रकाश मुड़ जाता है। अब देखना चाहिए कि हमें प्रकाश की एक रश्मि के

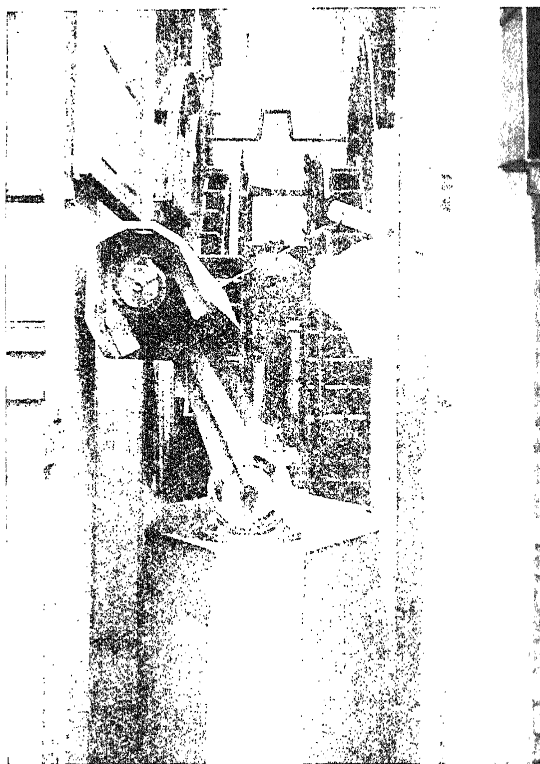


[ग्रिनिच-बेधशाला

चित्र ४१—यामोत्तरचक्र।

इस यन्त्र के दृष्टि-क्षेत्र में स्वस्तिक तार लगे रहते हैं। इससे ताराओं की ऊँचाई नापी जाती है।

बदले कई एक रश्मियों को मोड़कर एकत्रित करना हो तो हमको क्या करना चाहिए। चित्र ६४ में परदे को मोमबत्ती के बहुत पास



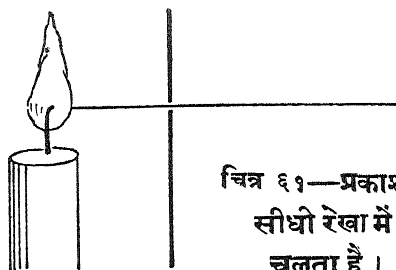
[ग्रिनिच-वेधशाला

चित्र ६०—उसी यामोत्तर चक्र का दूसरा दृश्य।

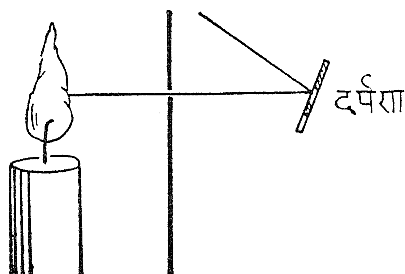
सामने एक सहायक दूरदर्शक है, जिसकी सहायता से यामोत्तर चक्र की दिशा ठीक की जाती है।

रक्खा गया है। इसी से इसमें से बहुत सी प्रकाश-रश्मियाँ, सूची (cone) के आकार में निकल रही हैं। यदि प्रत्येक रश्मि के लिए एक एक क़लम लगाना सम्भव होता तो इन क़लमों के कोण के

घटाने बढ़ाने से इन सब रश्मियों को एकत्रित करना सम्भव होता। वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि यदि इन रश्मियों के मार्ग में एक ताल रख दिया जाय तो सब रश्मियाँ मुड़कर फिर एकत्रित हो जायँगी (चित्र ६५)। बात यह है कि

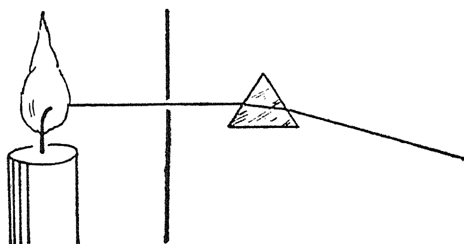


चित्र ६१—प्रकाश सीधी रेखा में चलता है।



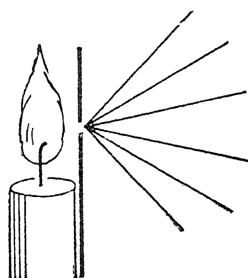
चित्र ६२—प्रकाश का दर्पण-द्वारा मुड़ना।

ताल का प्रत्येक भाग क़लम का ही काम करता है और सब स्थान से प्रकाश की रश्मियाँ मुड़ कर एक ही स्थान पर पहुँचती हैं। इस बात को वैज्ञानिक भाषा में इस प्रकार कहते हैं कि ताल से विन्दु **क** की मूर्त्ति स्थान **ख** पर बनती है (चित्र ६५)। यदि अब हम मोमबत्ती के सामने, काफ़ी दूर पर, ताल को रक्खें तो ताल के कारण मोमबत्ती के प्रत्येक विन्दु की मूर्त्ति बनेगी; अर्थात्, ताल मोमबत्ती की मूर्त्ति बनावेगा (चित्र ६७)। बूढ़े लोग जो चश्मा लगाते हैं उनके ताल ठीक उपरोक्त प्रकार के होते हैं। इसलिए ऐसे



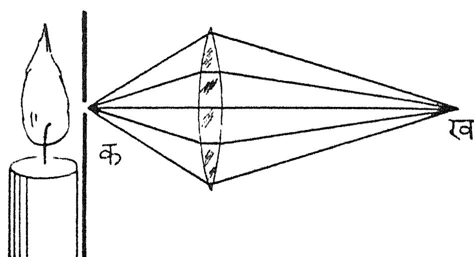
चित्र ६३—प्रकाश का त्रिपार्श्व या क़लम (prism) द्वारा मुड़ना।

ताल का मिलना सुगम है। यह देखने के लिए कि मूर्त्ति कैसे बनती है ऐसे ताल से निम्न-लिखित प्रयोग करना चाहिए।



चित्र ६४—प्रकाश रश्मियों की सूची (cone)।

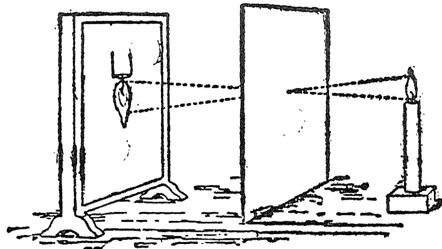
दिन के समय अन्य सब खिड़कियों को बन्द करके केवल एक खिड़की खुली रहने दीजिए और इस खिड़की के सामनेवाली दीवाल के पास चश्मे को इस प्रकार रखिए कि इसका धरातल (plane) दीवाल के समानान्तर रहे। दीवाल के समानान्तर रखते हुए इसको दीवाल से हटाते जाइए। आप देखेंगे कि एक विशेष स्थिति में खिड़की और इसके बाहर की वस्तुओं की उलटी मूर्त्ति दीवाल पर बनती है (चित्र ६८)। फिर, यदि आपने फ़ोटो के कैमेरे से किसी दृश्य का फ़ोकस किया होगा तो आपने लेन्ज़, अर्थात् ताल, को मूर्त्ति बनाते देखा होगा। इसी प्रकार, यदि आतिशी शीशे से आपने कभी सूर्य की रश्मियों को एकत्रित करके किसी वस्तु के जलाने की चेष्टा की होगी तो आपने सूर्य की मूर्त्ति बनते देखी होगी (चित्र ६९ और ७०)



चित्र ६५—ताल से प्रकाश-रश्मियों का एकत्रित होना।

६—**ताल से बड़ा भी दिखलाई पड़ता है**—आपने इसे भी देखा होगा कि यदि आतिशी शीशे या बूढ़े मनुष्यों के चश्मे द्वारा किसी समीप की वस्तु को देखा जाय तो वह बड़ी

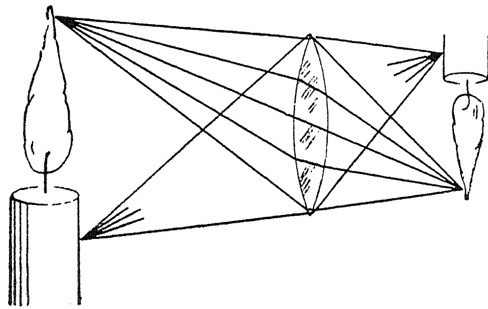
दिखलाई पड़ती है (चित्र ७१)। इसका कारण चित्र ७२ से समझ में आ जायगा। यदि वस्तु **क ख** को ताल के द्वारा, आँख को स्थान **आ** पर रख कर, देखा जाय तो **क** से चली हुई रश्मियाँ ताल में घुस कर उस पार निकलने पर इस प्रकार मुड़ जाती हैं कि वे विन्दु **का** से आती मालूम पड़ती हैं; अर्थात्, विन्दु **क** की मूर्त्ति **का** पर बनी हुई सी जान पड़ती है; इसी प्रकार **ख** की मूर्त्ति **खा** पर दिखलाई पड़ती है। इसलिए वस्तु अब स्थान **का खा** पर और बड़े आकार की दिखलाई पड़ती है।



[गेलनमुक की लाइट से

चित्र ६६—उल्टी मूर्त्ति का बनना।

यह इस चित्र से स्पष्ट हो जाता है। सरलता के लिए लेन्ज़ को एक सूक्ष्म छेद मान लिया गया है।



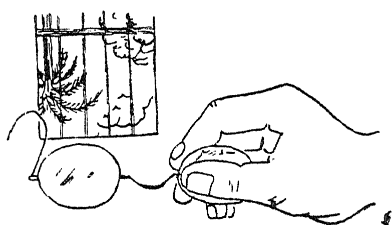
चित्र ६७—ताल से मूर्त्ति कैसे बनती है।

देखिए मूर्त्ति उलटी है।

बूढ़े मनुष्यों के चश्मे बीच में मोटे और चारों ओर पतले होते हैं, इसलिए इसके ताल उन्नतोदर (convex कॉनवेक्स) कहलाते हैं। इनको यदि बीच से काट दिया जाय तो इनकी मोटाई चित्र ७३ के अनुसार पाई जायगी। युवा पुरुषों के चश्मों के तालों की मोटाई

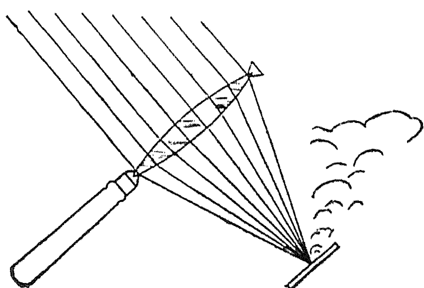
चित्र ७४ के अनुसार होती है। ऐसा ताल बीच में पतला और चारों ओर मोटा होता है। इसके द्वारा देखने से सब वस्तुएँ छोटी दिखलाई पड़ती हैं। इसका कारण चित्र ७५ की जाँच से स्पष्ट हो जायगा। स्मरण रखना चाहिए कि प्रकाश की रश्मियाँ ताल में घुसने पर मोटे भाग की ओर झुक जाती हैं।

७—तालयुक्त ज्योतिष-सम्बन्धी दूरदर्शक—(Refracting Astronomical Telescope रिफ्रैक्टिंग ऐस्ट्रोनॉमिकल टेलेस्कोप)—यदि हम उन्नतोदर ताल को दीवाल से इतनी दूर पर रक्खें कि दीवाल पर बहुत दूर की किसी वस्तु की मूर्ति स्पष्ट बने तो ताल और दीवाल के बीच की दूरी के उस ताल का फ़ोकल-लम्बान (focal length फ़ोकल-लेंग्थ) कहा जाता है। ताल का फ़ोकल-लम्बान जितना ही अधिक होगा उतनी ही किसी विशेष दूरस्थ विषय की मूर्ति बड़ी बनेगी, जैसा चित्र ७६ और चित्र ७७ की तुलना से स्पष्ट है। इसके विपरीत, समीप की वस्तु के देखने के लिए ताल का फ़ोकल-लम्बान जितना ही कम रक्खा जायगा उतनी ही वह वस्तु बड़ी दिखलाई पड़ेगी। दूर-दर्शक यंत्र की बनावट अब सहज में ही



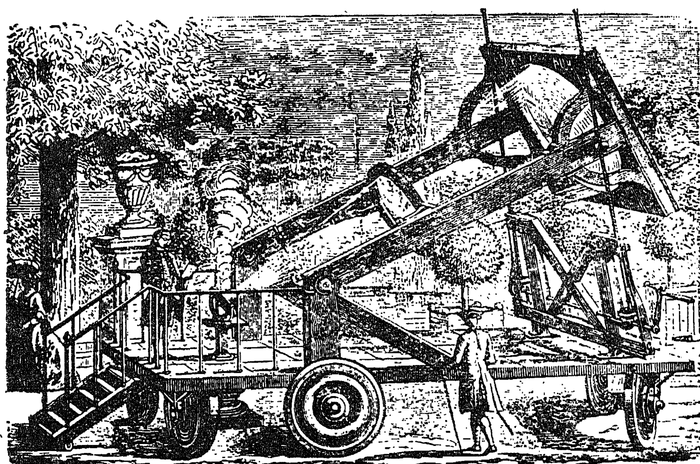
["फ़ोटोग्राफ़ी" से

चित्र ६८—**चश्मे से मूर्त्ति बनना।**



चित्र ६९—**आतिशी शीशा।**
काले कागज़ पर ऐसे शीशे से सूर्य-रश्मियों को एकत्रित करने से कागज़ में आग लग जाती है।

समझ में आ जायगी। इसको बनाने के लिए किसी नली के एक सिरे पर बड़े फ़ोकल-लम्बान का उन्नतोदर ताल लगा देते हैं और उचित दूरी पर, जिसका ज्ञान थोड़ा सा हेर फेर करने पर सुगमता से किया जा सकता है, दूसरा उन्नतोदर ताल छोटे फ़ोकल लम्बान का लगा देते



[ऐस्ट्रॉनोमी फ़ॉर ऑल से

चित्र ७०—**एक बड़ा आतिशी शीशा।**

ऐसे शीशे से सूर्य की इतनी रश्मियाँ एकत्रित हो जाती हैं और इसलिए इतनी गर्मी पैदा होती है कि इससे सोना भी पिघल जाता है।

हैं। इसके द्वारा जब छोटे फ़ोकल-लम्बान के ताल के पास आँख रख कर कोई दूरस्थ वस्तु देखी जाती है तो वह स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। इसका कारण चित्र ७८ के देखने से मालूम हो जायगा। इस चित्र में **ता त** दूरदर्शक है जिसमें **ता** और **त** दो ताल, पहला बड़े फ़ोकल-लम्बान का, दूसरा छोटे फ़ोकल-लम्बान का, लगे हैं। दूरस्थ वस्तु **क ख** की उलटी मूर्त्ति **का खा** पर ताल **ता** के कारण बनती है और स्थान **आ** पर आँख लगाने से यह मूर्त्ति बड़े आकार की होकर

स्थान **खि खि** पर दिखलाई पड़ती है। बड़े ताल को प्रधान ताल (objective) और छोटे को चक्षु-ताल (eye-piece) कहते हैं।

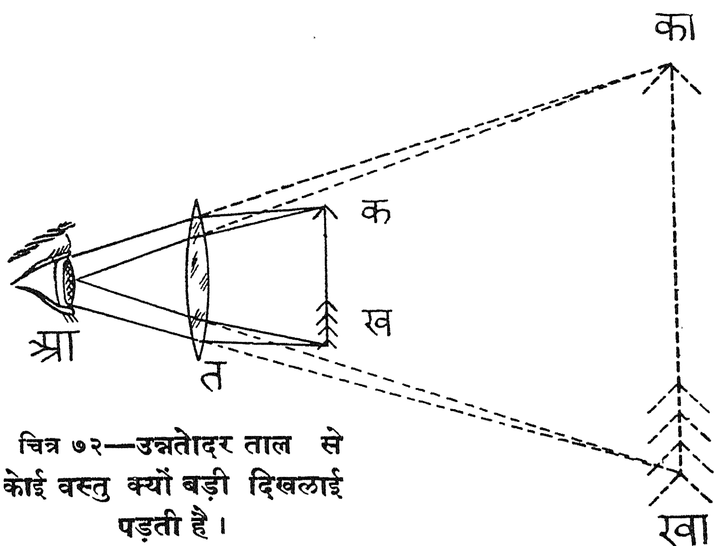
८—गैलीलियन दूरदर्शक—ऊपर बतलाये दूरदर्शक को ज्योतिष-सम्बन्धी दूरदर्शक (astronomical telescope, ऐस्ट्रोनॉमिकल टेलेस्कोप) कहते हैं। इसमें सब वस्तुएँ उलटी दिखलाई



चित्र ७१—उन्नतोदर ताल से अक्षर बड़े दिखलाई पड़ते हैं।

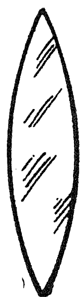
पड़ती हैं, परन्तु आकाशीय पिंडों की जाँच में उलटा दिखलाई पड़ने से कोई असुविधा नहीं होती। हाँ, पृथ्वी पर के दृश्यों की दूसरी ही बात है। इसलिए ऐसे दूरदर्शक का, जिसका प्रयोग अधिकतर भूलोकस्थ विषयों के लिए किया जाता है, दूसरे प्रकार से निर्माण किया जाता है। एक प्रकार का ऐसा दूरदर्शक लम्बे फ़ोकल-लम्बान

के एक उन्नतोदर ताल के पीछे छोटे फ़ोकल-लम्बान का एक नतोदर ताल लगा देने से बनाया जाता है। इससे वस्तुएँ क्यों सीधी दिखलाई पड़ती हैं यह चित्र ७९ के अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा। इसको गैलीलियन दूरदर्शक (Galilean telescope) कहते हैं क्योंकि



चित्र ७२—उन्नतोदर ताल से कोई वस्तु क्यों बड़ी दिखलाई पड़ती है।

इसका प्रचार गैलीलियो ने किया था। इसको ऑपेरा ग्लास (opera glass) भी कहते हैं, क्योंकि लोग इसका थियेटर या ऑपेरा के देखने में प्रयोग किया करते थे, और अब भी इसका प्रचार थोड़ा बहुत है, परन्तु इसकी प्रवर्धन-शक्ति बढ़ाने के लिए जब इसका पहला ताल अधिक फ़ोकल-लम्बान का और दूसरा बहुत कम फ़ोकल-लम्बान का कर दिया जाता है तब यह बहुत लम्बा हो जाता है और साथ ही इसका दृष्टि-क्षेत्र (नीचे देखिए) बहुत कम हो जाता है, इसलिए अब त्रिपार्श्व-युक्त (prismatic प्रिज़्मैटिक) दूरदर्शकों का प्रयोग किया जाता है।

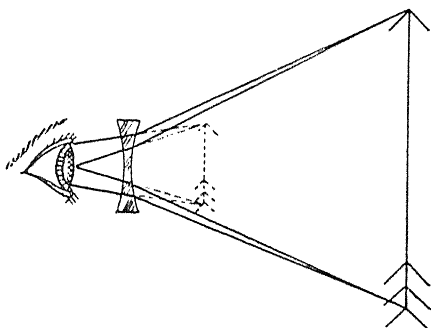


चित्र ७३—उन्नतोदर ताल

९—त्रिपार्श्व-युक्त दूरदर्शक—ये ज्योतिष-सम्बन्धी दूर-दर्शक की ही भाँति दो उन्नतोदर तालों से बने रहते हैं परन्तु इनके भीतर त्रिपार्श्व (prism, प्रिज़्म) लगे रहते हैं जो दर्पण का काम देते हैं। आपने देखा होगा कि दर्पण में किसी पुस्तक के प्रतिबिम्ब की जाँच करने पर अक्षर उलटे दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु इस उलटने में केवल दाहने का बायाँ और बायें का दाहना ही हो जाता है। ऊपर का नीचे और नीचे का ऊपर नहीं होता। परन्तु यदि एक से अधिक दर्पणों का प्रयोग किया जाय तो प्रतिबिम्ब में अक्षर इच्छा-नुसार उलटे या सीधे किये जा सकते हैं। उसी प्रकार दूरदर्शक के भीतर कई एक दर्पण, या इनके बदले दर्पण ही का काम करनेवाले त्रिपार्श्वों को लगाने से प्रधान ताल से बनी उलटी मूर्त्ति को पूर्णतया सीधा किया जा सकता है; दाहना बायाँ का फेर भी ठीक हो जायगा और ऊपर नीचे का भी। साथ ही, एक लाभ और भी होता है। इन दर्पणों (या त्रिपार्श्वों) के कारण प्रकाश की किरणों को दूरदर्शक की लम्बाई को तीन बार तय करना पड़ता है (चित्र ८१)। इसलिए इस प्रकार का दूरदर्शक समुचित प्रवर्धन-शक्ति के साथ साथ काफ़ छोटा होता है और इसलिए उसे साथ रखने में असुविधा नह



चित्र ७४—नतोदर ताल



चित्र ७५—नतोदर ताल से वस्तु छोटी दिखलाई पड़ती है।

होती। इस प्रकार के दो दूरदर्शकों से युगल दर्शक (binoculars बिनॉक्युलर्स) बनता है (चित्र ५०)। ज्योतिष-सम्बन्धी दूरदर्शक से यदि भूलोकस्थ पदार्थों को सीधा देखना चाहें तो पिछले ताल के बदले चार तालों से बने विशेष नलिका (चित्र ८२) का प्रयोग किया जाता है, जिससे मूर्ति एक बार और पलटा खाकर सीधी हो जाती है। इसको terrestrial (टेरेस्ट्रियल) या erecting (एरेक्टिंग) eye-piece (आइ-पीस) कहते हैं और इसका हम भूलोकस्थ



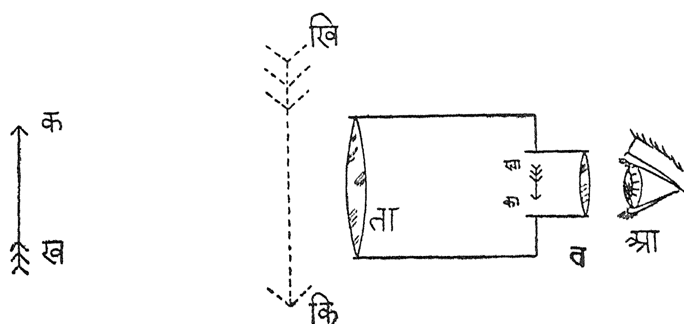


[लेखक की "फ़ोटोग्राफ़ी" से

चित्र ७६ और ७७—६ इंच और १२ इंच से लिये गये दो फ़ोटोग्राफ़।

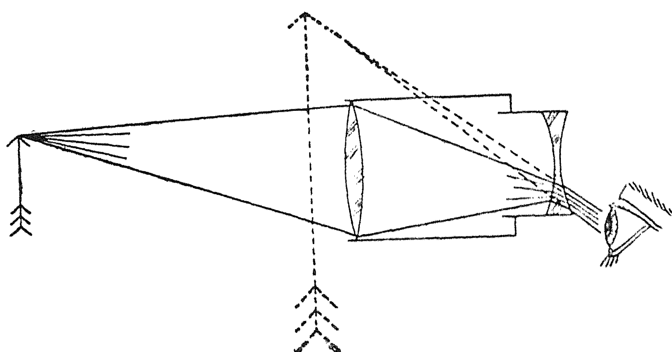
लेन्ज़ का फ़ोकल-लम्बान जितना ही बड़ा होगा, फ़ोटो उतने ही बड़े पैमाने पर उतरेगा।

चक्षु-खंड या सीधा करनेवाला चक्षु-खंड कह सकते हैं। कभी कभी अधिक तालों के बदले त्रिपार्श्वों से ही काम लिया जाता है। मूर्त्ति को



चित्र ७८—ज्योतिष-सम्बन्धी दूरदर्शक की बनावट।
देखिए वस्तुएँ उलटी दिखलाई पड़ती हैं।

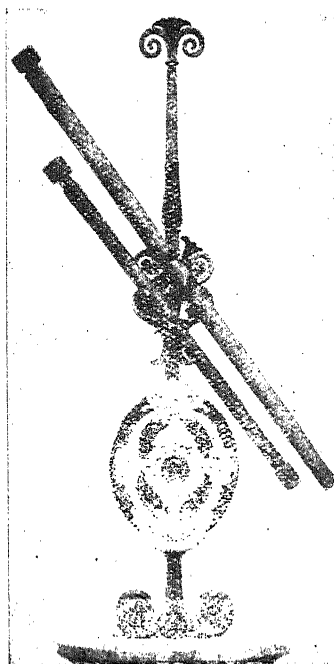
खड़ी करने के लिए ताल या त्रिपार्श्व लगाने से प्रकाश कुछ कम हो जाता है, इसी लिए ज्योतिष-सम्बन्धी दूरदर्शकों में ये नहीं लगाये जाते।



चित्र ७९—गैलीलियन दूरदर्शक।
इससे दृश्य सीधा दिखलाई पड़ता है।

ऊपर साधारण दूरदर्शकों की बनावट बतलाने में हमारा अभिप्राय यह है कि आप देख लें कि साधारण और ज्योतिषसम्बन्धी

दूरदर्शकों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। दोनों की जाति एक ही है, केवल डील-डौल में अन्तर है। यदि आपके पास कोई साधारण भी दूरदर्शक हो तो इसको तुच्छ न समझना चाहिए, इससे भी आकाशीय दृश्य कोरी आँखों की अपेक्षा कहीं अच्छी तरह देखा जा सकता है।



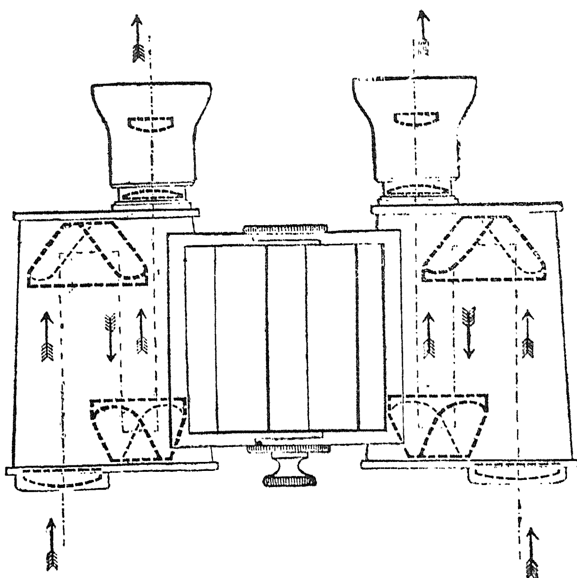
[स्पलेण्डर आफ़ दि हेवंस से

चित्र ८०—गैलीलियो के बनाये दूरदर्शक।

ये अब भी इटली के एक म्यूज़ियम में सुरक्षित हैं।

१०—रंग-दोष—ऊपर हमने देखा था कि शीशे की क़लम से प्रकाश की रश्मियाँ मुड़ती अवश्य हैं पर साथ ही वे टूट कर कई रङ्गों में बँट जाती हैं। वस्तुत: चित्र ६३ बिलकुल सच्चा नहीं है। सच्ची बात चित्र ८४ में दिखलाई गई है। एक ओर बैंगनी रंग और दूसरी ओर लाल रंग दिखलाई पड़ता है, बीच में शेष रंग रहते हैं, ठीक जैसे इंद्र-धनुष में। इन रंगों को स्थूल रूप से सात भागों में बाँटा जा सकता है; बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी और लाल। त्रिपार्श्व से श्वेत प्रकाश के टूटने या "विश्लेषण" हो जाने का फल यह होता है कि जब हम किसी प्रकाश-विन्दु की मूर्त्ति साधारण ताल-द्वारा बनने देते हैं तब बैंगनी प्रकाश से बनी मूर्त्ति ताल के सबसे समीप और दूसरी रंगों की

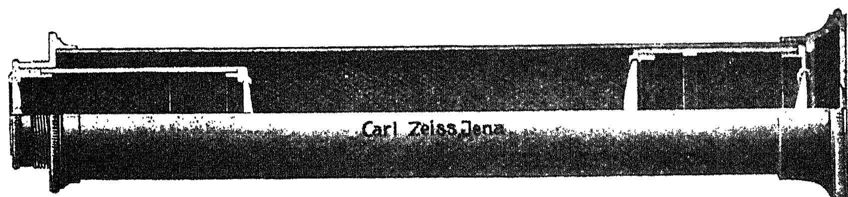
मूर्तियाँ क्रमशः अधिक दूरी पर बनती हैं (८५)। यदि हम



[गैनो की फ़िज़िक्स से

चित्र ८१—त्रिपार्श्वयुक्त (prismatic) दूरदर्शक के भीतर रश्मियों का मार्ग।

किसी परदे को उस स्थान में रक्खें जहाँ बैंगनी मूर्त्ति



[ज़ाइस कंपनी

चित्र ८२—सीधा करनेवाला चक्षुखंड।

बनती है तो बीच में बैंगनी मूर्त्ति और इसके चारों ओर

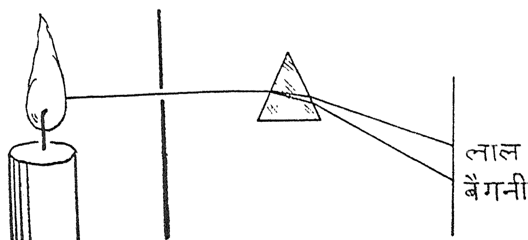


[जाइस कंपनी

चित्र ८२—ज्योतिष के दूरदर्शक में भूलोकस्थ चक्षुखंड ।

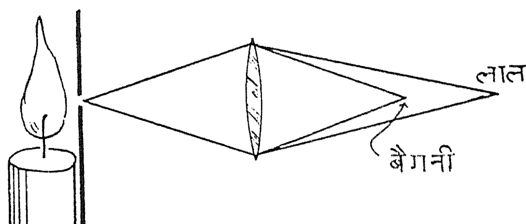
ज्योतिष के दूरदर्शक में भूलोकस्थ चक्षुखंड लगा कर दूरस्थ दृश्यों को स्पष्ट देखने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है। जरमनी में इसका बड़ा रिवाज है।

अन्य रंगों का (सबसे बाहर लाल रंग का) वृत्त बन जायगा। परिणाम यह होगा कि किसी विन्दु की मूर्त्ति विन्दु-रूप में न बनेगी; छोटे से वृत्त के समान होगी। स्पष्ट है कि यदि परदे को कुछ और पीछे रखते तो भी मूर्त्ति विन्दु-



चित्र ८४—त्रिपार्श्व से प्रकाश का विश्लेषण।

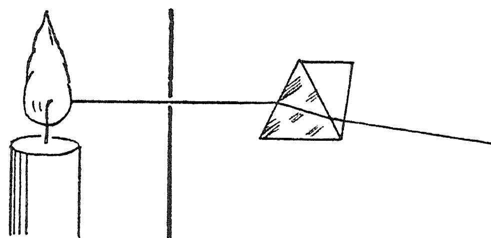
सरीखी न होती। इस कारण, यदि हम किसी वस्तु को सरल ताल से बनी मूर्त्ति की सूक्ष्म रूप से जाँच करें, तो हम देखेंगे कि मूर्त्ति भद्दी है और इसके किनारे रंगीन हैं। इस दोष को रंग-दोष (chromatic aberration, क्रोमैटिक अबेरेशन



चित्र ८५—रंगदोष का फल।
विन्दु की मूर्त्ति विन्दु सी नहीं बनने पाती।

कहते हैं। इसके कारण दूरदर्शक के आविष्कार के बाद बहुत वर्षों तक दूरदर्शक से लोग अधिक लाभ न उठा सके, परन्तु पीछे इस दोष से छुटकारा पाने का भी उपाय निकला।

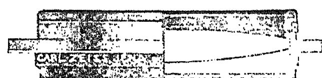
११—रंगदोष से छुटकारा—वैज्ञानिकों ने मालूम किया कि सब प्रकार के शीशों में एक ही सा गुण नहीं होता। बालू, पोटैशियम कारबोनेट, चूना और संदुर को आँच में गलाने से शीशा बनता है। इनकी मात्रा न्यूनाधिक करने से कई प्रकार के शीशे बन सकते हैं। इनमें से एक प्रकार के शीशे का नाम फ़्लिण्ट (flint) शीशा है और दूसरे का क्राउन (crown)। मान लीजिए क्राउन शीशे की एक क़लम बनाई गई है जिसका कोण ३०° (समकोण का तिहाई भाग) है। प्रकाश की रश्मि इसको पार करने से मुड़ जाती है और साथ ही रश्मि का विश्लेषण भी हो जाता है। मान लीजिए कि अब फ़्लिण्ट शीशे की दूसरी क़लम बनाई जाती है। इसके कोण को छोटा बनाने से प्रकाश का झुकाव और विश्लेषण दोनों कम होंगे। कोण को बड़ा बनाने से ये दोनों अधिक होंगे। मान लीजिए कि इसका कोण इतना बड़ा बनाया जाता है कि विश्लेषण ठीक पहली क़लम के बराबर हो जाता है। प्रश्न अब यह उठता है कि क्या झुकाव भी साथ ही साथ पहले के बराबर हो जायगा? उत्तर है, नहीं; झुकाव भिन्न होगा। इस बात से हम यों लाभ उठा सकते हैं:—



चित्र ८६—बिना विश्लेषण के झुकाव।

यदि इन दोनों क़लमों का कोण प्रतिकूल दिशाओं में कर दिया जाय (चित्र ८६), तब दोनों के विश्लेषण बराबर और प्रतिकूल होने के कारण एक दूसरे को काट देंगे और इसलिए विश्लेषण होगा ही नहीं। परन्तु दोनों के झुकाव बराबर नहीं हैं, इसलिए

थोड़ा झुकाव (दोनों के अन्तर के समान) अवश्य होगा। इसी सिद्धान्त को रंग-दोष रहित लेन्ज़ बनाने में भी प्रयोग कर सकते हैं। इसके लिए क्राउन शीशे के उन्नतोदर ताल के साथ फ़्लिण्ट शीशे का नतोदर ताल जोड़ दिया जाता है (चित्र ८७)। इन दोनों की शक्ति इस हिसाब से रक्खी जाती है कि रंग-दोष तो यथासम्भव मिट जाता है, परन्तु दोनों मिल कर उन्नतोदर ताल की भाँति काम देते हैं। सभी दूरदर्शकों में रंग-दोष-रहित संयुक्त तालों का ही प्रयोग किया जाता है, परन्तु यदि आप किसी इस प्रकार के दूरदर्शक से किसी ख़ूब चमकते हुए नक्षत्र या ग्रह (जैसे शुक्र) को देखें तो आपको ग्रह या नक्षत्र के चारों ओर अनेक रंग दिखलाई पड़ेंगे, जिससे प्रमाणित होता है कि रंग-दोष-रहित कहलाने पर भी ये ताल पूर्णतया इस दोष से मुक्त नहीं रहते। बात यह है

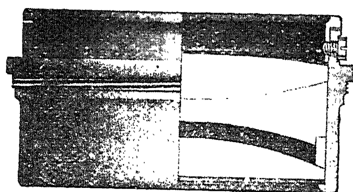


[जाइस कंपनी

चित्र ८७—रङ्गदोष-रहित ताल।
यह दो तालों के योग से बनता है।

कि यदि फ़्लिण्ट और क्राउन शीशे की क़लमों से बने रश्मि-चित्रों की जाँच की जाय (श्वेत प्रकाश टूट कर परदे पर जो बैंगनी-नीला-आसमानी-हरा-पीला-नारंगी-लाल रंग का चित्र डालता है उसी को रश्मि-चित्र कहते हैं) तो हमको पता चलेगा कि वे ठीक ठीक एक दूसरे के समान नहीं होते, अर्थात्, यदि इनके रश्मि-चित्रों को एक के नीचे एक रक्खा जाय और इन क़लमों के कोण को इस नाप का रक्खा जाय कि एक का हरा रंग ठीक दूसरे के हरे रंग के ऊपर पड़े और साथ ही पीला रङ्ग ठीक पीले के ऊपर पड़े तो हम देखेंगे कि अन्य रङ्ग, बैंगनी आदि, ठीक ठीक एक दूसरे के ऊपर नहीं पड़ते। इसलिए यदि उपरोक्त दोनों क़लमों का कोण विपरीत दिशा में करके इनमें से प्रकाश की रश्मि भेजी जाय तो रश्मि-चित्र एकदम

न मिट जायगा। हरा और पीला तो सिमट कर एक हो जायँगे, साथ ही आसमानी और नारङ्गी के भी अधिक अंश वहीं आ मिलेंगे; परन्तु बैंगनी, नीले और लाल रङ्ग के कुछ अंश इधर-उधर छूट जायँगे। इसलिए रश्मि-चित्र के मध्य में श्वेत और अगल-बगल बैंगनी, नीला और लाल रङ्ग दिखलाई पड़ेंगे। बीच में श्वेत दिखलाई पड़ेगा क्योंकि बीच में रङ्गीन रश्मियों के संयोग हो जाने से फिर से श्वेत प्रकाश बन जायगा। इससे अब स्पष्ट हो गया कि दो तालों से बना रङ्ग-दोष-रहित ताल वस्तुतः रङ्ग-दोष-रहित नहीं रह सकता। इसमें कुछ न कुछ रङ्ग-दोष रह ही जाता है। इस बचे खुचे रङ्ग-दोष को गौण (secondary, सेकंड्री) रङ्ग-दोष कहते हैं। आँख से देखने के लिए निर्माण किये गये दूरदर्शकों में वे रश्मियाँ जो आँख को विशेष तेज़ जान पड़ती हैं एक ही फ़ोकस पर लाई जाती हैं, पर फ़ोटोग्राफ़ी के लिए बने दूरदर्शक में नीली और बैंगनी रश्मियाँ एक ही फ़ोकस में लाई जाती हैं, क्योंकि प्लेट पर इन्हीं रश्मियों का प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है।



[ज़ाइस कंपनी

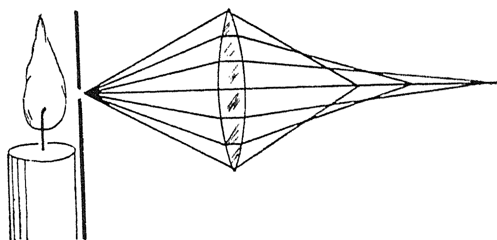
चित्र ८८—तीन सरल तालों से बना ताल।

इसमें प्रायः कुछ भी दोष नहीं रह जाता।

इन दिनों दूरदर्शक के लिए कुछ ताल ऐसे भी बनते हैं जिनमें यह बचा खुचा रङ्ग-दोष इतना कम हो जाता है कि वह नहीं के समान हो जाता है। यह तीन सरल तालों के संयोग से बनता है (चित्र ८८)।

१२—गोलीय दोष—सरल तालों में एक दोष यह भी होता है कि एक ही रङ्ग के प्रकाश को भी वे पूर्णतया एकत्रित नहीं कर सकते। मान लीजिए कि किसी विन्दु से एक रङ्ग का (जैसे पीला)

प्रकाश फैल रहा है। ताल के प्रयोग से यदि ये रश्मियाँ एकत्रित की जायँ तो वे ठीक ठीक फिर एक ही विन्दु को न जायँगी। कुछ रश्मियाँ ताल के समीप और कुछ रश्मियाँ दूर पर एकत्रित होंगी (चित्र ८९)। इस दोष को गोलीय दोष (spherical aberration, स्फ़ेरिकल अबेरेशन) कहते हैं। सरल तालों में कई एक अन्य दोष भी होते हैं। ये सब दोष संयुक्त तालों में कम हो जाते हैं, क्योंकि जिन सरल तालों से ये बने रहते हैं उनका आकार इस प्रकार का रक्खा जाता है कि सब दोष कम हो जायँ। आकार की गणना

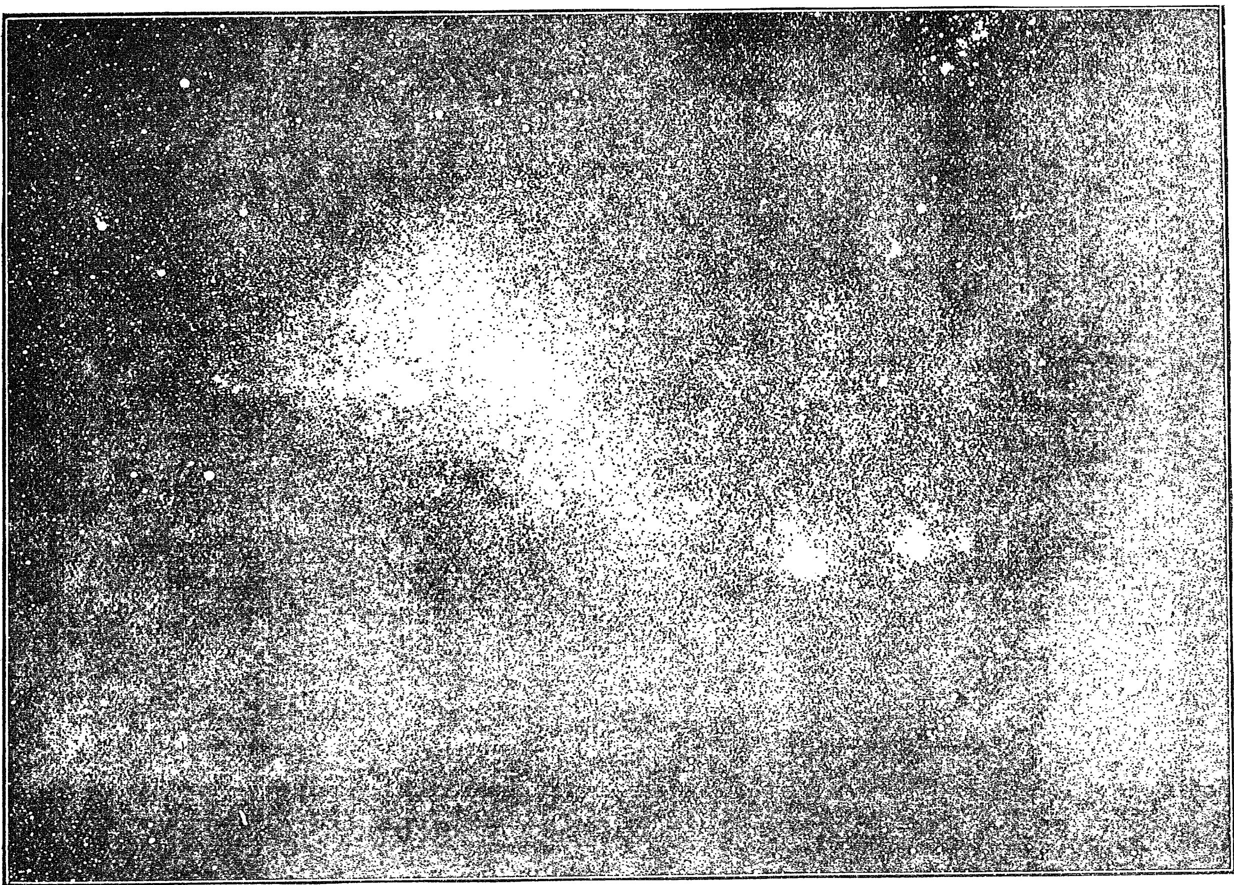


चित्र ८९—गोलीय दोष।

इसके कारण भी विन्दु की मूर्ति विन्दु सी नहीं बनने पाती।

करने में सूक्ष्म गणित की आवश्यकता पड़ती है और बहुत समय लगता है। बड़े तालों के बनाने में प्रत्येक ताल के लिए, इसके शीशे के गुण के अनुसार, विशेष गणना करनी पड़ती है। परन्तु जो ताल अब बनते हैं, वस्तुतः वे इतने अच्छे होते हैं कि एक बार उनके द्वारा चन्द्रमा या अन्य ग्रहों को देखने से चित्त प्रसन्न हो जाता है; और जिस आनन्द का अनुभव होता है वह फिर कभी नहीं भुलाया जा सकता।

१३—दर्पण-दूरदर्शक—प्रक्रम ५ में बतलाया गया है कि प्रकाश की रश्मियों को, जो स्वभावतः सीधी चलती हैं, दर्पण के

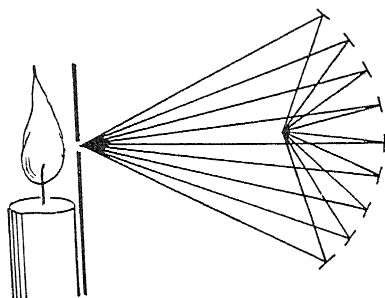


[हारवार्ड बेधशाला, अरेकिपा

चित्र ६०—आकाशीय फ़ोटोग्राफ़।

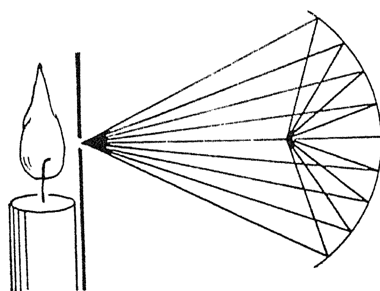
इन दिनों ताल इतने दोष-रहित और अच्छे बनते हैं कि उनसे प्रत्येक ब्योरा सुई-नोक की तरह तीक्ष्ण उतरता है।

प्रयोग से भी हम घुमा दे सकते हैं। इस सिद्धान्त से एक दूसरे प्रकार का दूरदर्शक बनाने में सहायता ली जाती है। चित्र ६१ में मान लीजिए परदे के छिद्र द्वारा ६ रश्मियाँ निकल रही हैं। यदि हम ६ छोटे छोटे साधारण दर्पणों का प्रयोग करें, और इनको उचित स्थिति में रक्खें, तो प्रकाश की ये सभी रश्मियाँ एक ही विन्दु पर भेजी जा सकती हैं। यदि हम साधारण दर्पणों का प्रयोग न करके इनके बदले एक नतोदर (concave, कॉनकेव) दर्पण का प्रयोग करें तो सभी रश्मियाँ मुड़कर एक ही विन्दु पर एकत्रित हो जायँगी (चित्र ६२)।



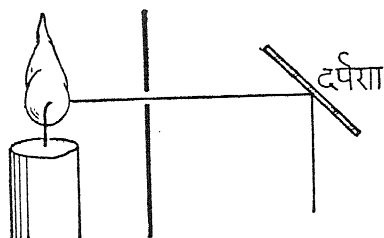
चित्र ६१—कई दर्पणों से प्रकाश की रश्मियों को एकत्रित करना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोलाकार दर्पण से भी वही काम निकलता है जो ताल से, अन्तर केवल इतना ही है कि दर्पण से मूर्त्ति उसी ओर बनती है जिस ओर वस्तु रहती है। इसलिए दर्पण से दूरदर्शक बनाने में एक छोटे से साधारण दर्पण से रश्मियों को मोड़कर मूर्त्ति को एक बग़ल बनाते हैं। वहाँ चक्षुताल लगा कर इसे देखते हैं। जैसा पहले बतलाया गया है, चक्षुताल



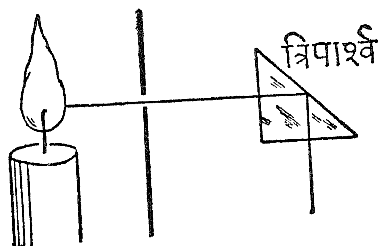
चित्र ६२—गोलाकार दर्पण से मूर्ति कैसे बनती है।

से यह मूर्त्ति बड़ी और स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगती है। छोटे दर्पण के बदले अधिकतर त्रिपार्श्व का ही प्रयोग किया जाता है और इससे वही काम निकलता है जो दर्पण से। त्रिपार्श्व के इस कार्य को समझने के लिए चित्र ९३ और ९४ की जाँच ध्यानपूर्वक करनी चाहिए।



चित्र ९३—दर्पण से प्रकाश-रश्मि इच्छित दिशा में मोड़ी जा सकती है।

अब हम सुगमता से समझ सकते हैं कि दर्पणयुक्त दूरदर्शक किस प्रकार काम करता है। चित्र ९५ के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जायगा। किसी दूरस्थ वस्तु से जो रश्मियाँ आती हैं वे पहले नतोदर दर्पण क पर पड़ती हैं। वहाँ से वे इस प्रकार मुड़ती हैं कि थोड़ी दूर पर, उस दर्पण के नाभि (focus, फ़ोकस) की स्थिति में वे उस वस्तु की मूर्त्ति बनाती हैं। परन्तु वहाँ तक पहुँचने के पहिले ही दर्पण या त्रिपार्श्व ख उन्हें मोड़कर बगल में भेज देता है।

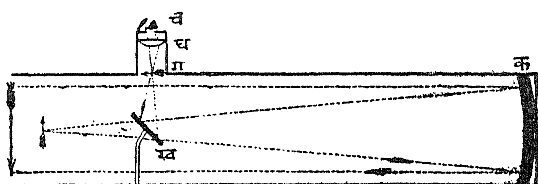


चित्र ९४—त्रिपार्श्व से भी दर्पण का कार्य निकलता है।

इसलिए मूर्त्ति अब **ग** पर बनती है। पास ही चक्षुताल **घ** रक्खा जाता है और स्थिति **च** में आँख रख कर देखने से प्रथम वस्तु बड़ी और स्पष्ट दिखलाई पड़ती है।

इस प्रकार के दूरदर्शक को न्यूटोनियन (Newtonian) दूरदर्शक कहते हैं, क्योंकि इसका आविष्कार न्यूटन (Newton) ने

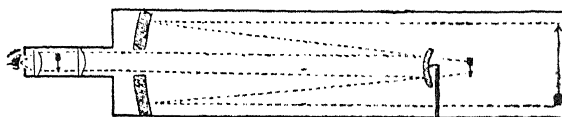
किया था। यदि छोटे त्रिपार्श्व या साधारण दर्पण के बदले छोटे से उन्नतोदर दर्पण का प्रयोग किया जाय, तो दूरदर्शक कैसिग्रेनियन (Cassegranian) कहलाता है, क्योंकि इसका आविष्कार फ़्रेंच



चित्र ६५—न्यूटन के सिद्धान्तानुसार बना दूरदर्शक।

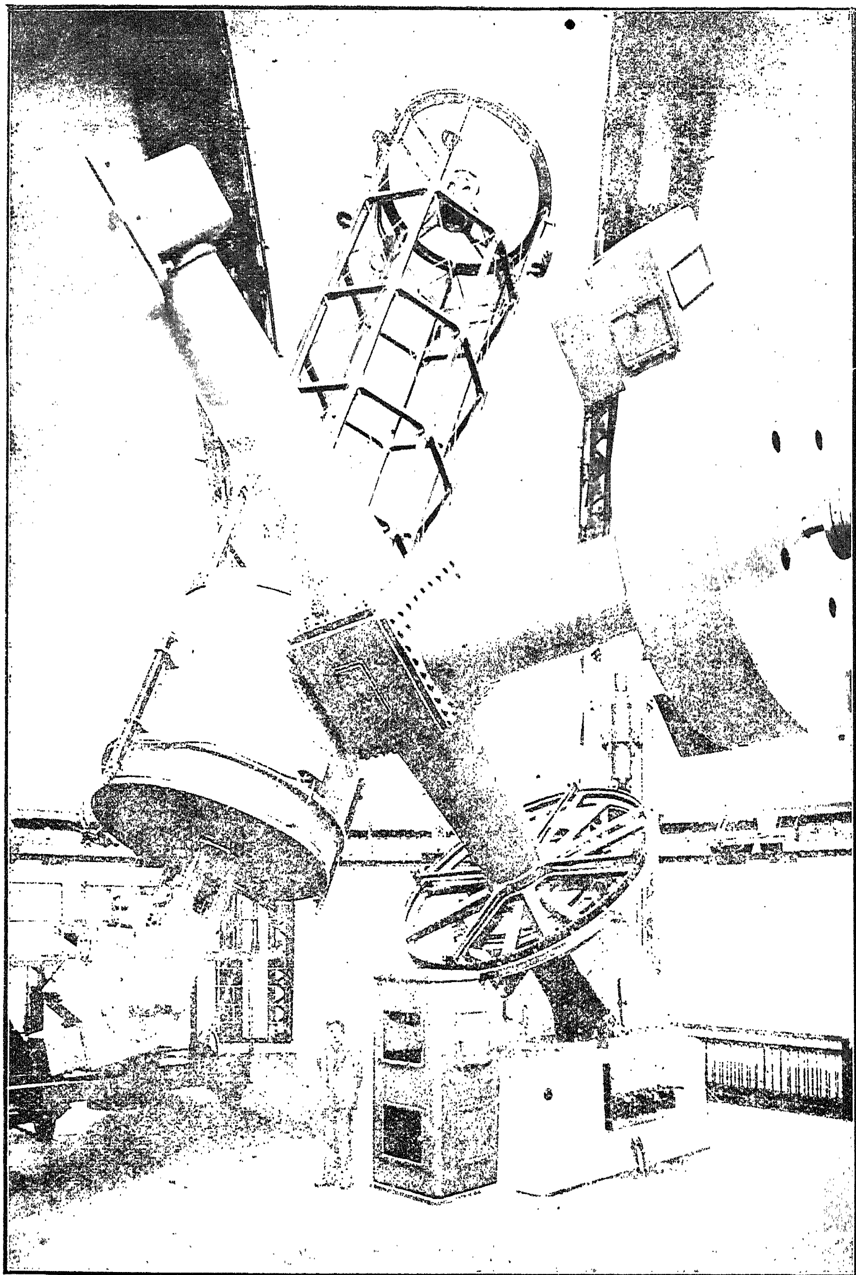
ज्योतिषी कैसिग्रेन (Cassegrain) ने किया था। इसके लिए बड़े दर्पण के बीच में छेद करना पड़ता है जिसमें प्रकाश की रश्मियों से बनी मूर्त्ति की जाँच सुभीते से की जा सके, जैसा चित्र ९६ से स्पष्ट है।

१४—क़लई—साधारण व्यवहार में आनेवाले दर्पणों में शीशे की पीठ पर क़लई की रहती है और सस्ते दर्पणों में यह क़लई राँगे



चित्र ६६—दर्पण-युक्त कैसिग्रेनियन दूरदर्शक।
देखिए प्रधान दर्पण के बीच में छेद है।

और पारे के मिश्रण की होती है। शीशे की पीठ पर क़लई करने का दुष्परिणाम यह होता है कि इससे एक के बदले कई एक प्रतिबिम्ब बनते हैं। इसका प्रमाण किसी मोटे दर्पण में जलती हुई



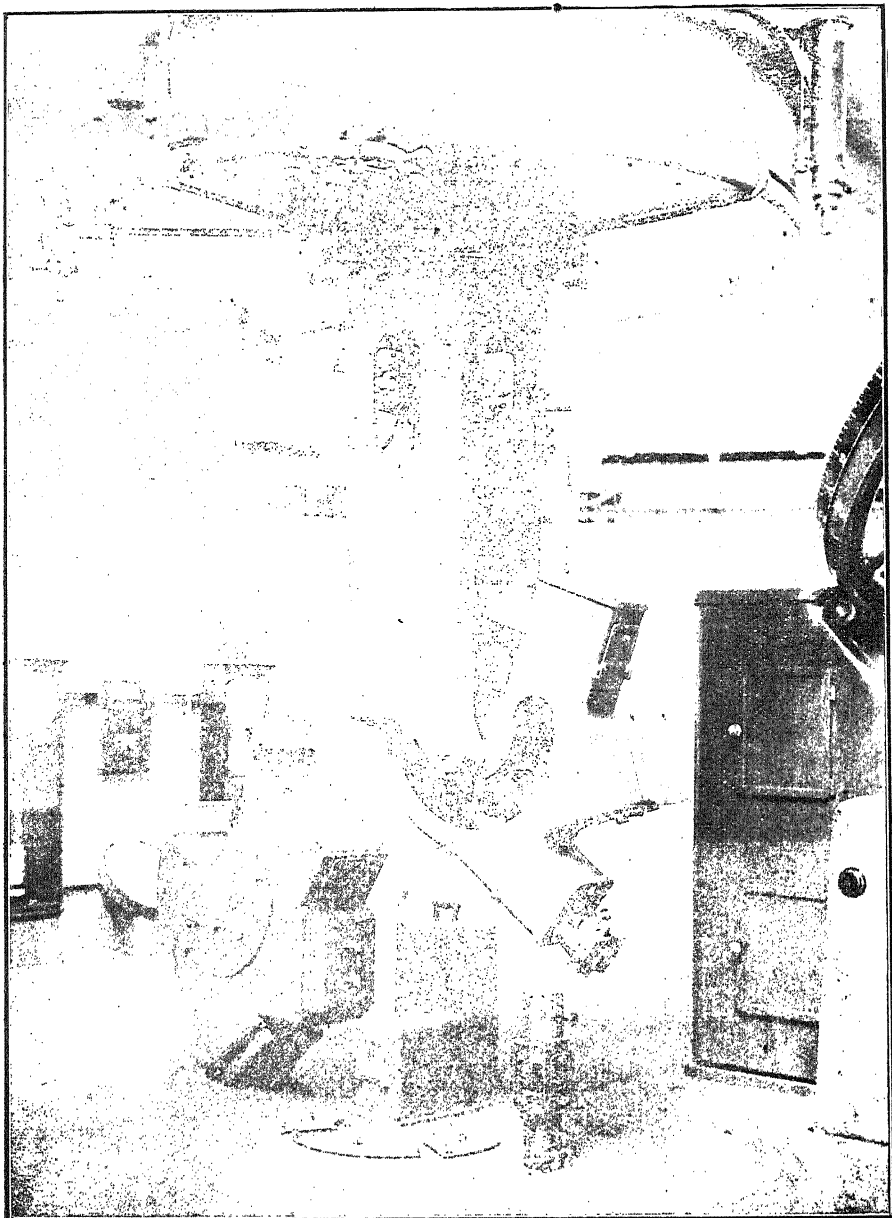
[डोमिनियन ऐस्ट्रोफ़िज़िकल वेधशाला

चित्र ६७—कैसिग्रेन के सिद्धान्त पर बना दूरदर्शक।

इस चित्र में संसार का द्वितीय सबसे बड़ा दूरदर्शक दिखलाया गया है। इसका व्यास ७२ इंच है और यह विक्टोरिया (कैनाडा) में है।

मोमबत्ती के प्रतिबिम्ब की जाँच करने से मिल सकता है। आप देखेंगे कि दर्पण में कई एक प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ते हैं (चित्र ९९)। कारण यह है कि शीशे की ऊपरी सतह भी दर्पण का काम देती है और पीठ भी। पीठ पर क़लई रहती है, इसलिए दूसरी मूर्त्ति सबसे स्पष्ट (प्रकाशमान) होती है। पहली मूर्त्ति शीशे की ऊपरी सतह से बनती है। अन्य मूर्त्तियाँ प्रकाश के उस भाग से बनती हैं जो क़लईदार पीठ से चल कर बाहर निकल जाने के बदले शीशे की ऊपरी सतह से टकरा कर भीतर ही लौट जाती हैं।

इन त्रुटियों से छुटकारा पाने के लिए दूरदर्शक के दर्पणों में ऊपर की सतह पर ही क़लई रहती है और वह क़लई असली चाँदी की होती है। ऐसा करने से अनेक प्रतिबिम्ब बनने का दोष तो मिट जाता है, परन्तु क़लई साल छः महीने से अधिक नहीं चलती, और इतना भी तभी यदि ख़ूब सावधानी से काम किया जाय। असावधानी करने से यह क़लई शीघ्र नष्ट हो जाती है। पहले ये दर्पण फूल (राँगा और ताँबा के मिश्रण) से बनाये जाते थे, परन्तु एक बार दर्पण के पालिश में ख़राबी आ जाने पर उनको फिर पालिश करने में कहीं अधिक और कहीं कम रगड़ खा जाने से उनके आकार में अन्तर पड़ जाने का भय रहता था और इसलिए पालिश ख़राब होने पर इसको यन्त्र बनानेवाले के पास फिर भेजना पड़ता था। एक फ़्रेंच वैज्ञानिक ने शीशे के दर्पण पर चाँदी की क़लई करके दूरदर्शक बनाने का आविष्कार किया। चाँदी की क़लईवाला दर्पण फूल से कहीं अधिक चमकीला होता है और ऊपर से सुभीता यह रहता है कि क़लई के बदरङ्ग हो जाने पर नई क़लई ज्योतिषी स्वयं कर सकता है। इसके लिए दर्पण पर शोरे का तेज़ाब (नोषकाम्ल, nitric acid, नाइट्रिक एसिड) छोड़ दिया जाता है

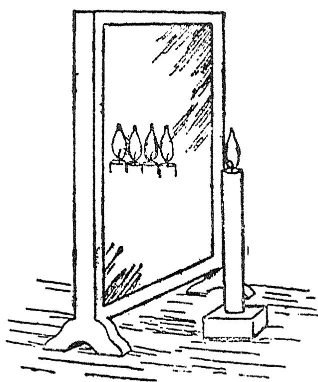


[डोमिनियन एस्ट्रोफ़िज़िकल बेधशाला

चित्र ६८—उपरोक्त ७२ इंचवाले दूरदर्शक के चक्षुखंड का निकटवर्ती दृश्य ।

किसी नक्षत्र का रश्मि-चित्र लेने के लिए प्रधान ताल के छेद में रश्मि-चित्र-कैमेरा जोड़ दिया जाता है ।

जिससे चाँदी घुल जाती है, परन्तु शीशे को कुछ हानि नहीं पहुँचती। फिर शीशे को ख़ूब धोकर इस पर चाँदी के खारों का उचित घोल छोड़ दिया जाता है जिसमें से चाँदी की ख़ूब चमकीली तह शीशे पर जम जाती है, और इस प्रकार दर्पण तैयार हो जाती है।



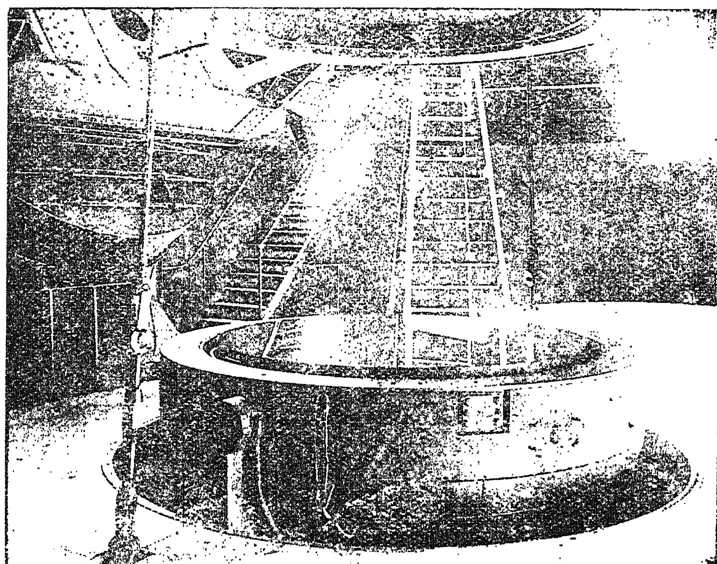
[ग्लेज़ब्रुक की लाइट से

चित्र ९९—साधारण दर्पण से कई प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ते हैं।

१५—चक्षु-ताल—ऊपर प्रधान ताल या दर्पण का पूरा हाल दिया गया है। अब चक्षु-ताल का भी संक्षिप्त वर्णन दिया जायगा। साधारण इकहरे ताल में रंग-दोष, गोलीय-दोष इत्यादि के रहने के कारण चक्षु-ताल इकहरा नहीं बनाया जाता। यह कई एक तालों से बनाया जाता है। साधारणतः दूरदर्शकों के साथ हायगेन्स (Huyghens) चक्षु-ताल का प्रयोग किया जाता है। इसकी बनावट चित्र १०२ से स्पष्ट है। इसमें छोटे ताल का फ़ोकल-लम्बान बड़े का आधा होता है। उन दूरदर्शकों में, जिनसे दिशा का ज्ञान करना रहता है और जिनमें इसी लिए दृष्टि-क्षेत्र में तार (cross-wires) लगे रहते हैं रैम्ज़डेन (Ramsden) चक्षु-ताल का प्रयोग किया जाता है (चित्र १०२)। इसके दोनों तालों का फ़ोकल-लम्बान बराबर होता है। हायगेन्स चक्षु-ताल के साथ तार का प्रयोग नहीं किया जा सकता, परन्तु इससे आकाशीय दृश्य अधिक स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं।

छोटे दूरदर्शकों से उन वस्तुओं को देखने में, जो लगभग सिर के ऊपर होते हैं, बड़ी कठिनाई पड़ती है, क्योंकि इस काम के लिए

सिर को कष्टप्रद स्थिति में रखना पड़ता है। इसलिए ऐसी वस्तुओं को देखने के लिए दर्पणयुक्त चक्षु-ताल का उपयोग किया जाता है। इसकी बनावट चित्र १०४ में दिखलाई गई है। स्पष्ट है कि इस चक्षु-ताल के प्रयोग से ठीक सिर के ऊपर की वस्तुओं को देखने में



[माउन्ट विल्सन

चित्र १००—क़लई करना।

माउन्ट विलसन के १०० इंचवाले दूरदर्शक के प्रधान दर्पण पर नई क़लई की गई है।

भी कोई असुविधा न होगी, क्योंकि दर्पण के कारण खड़ी रश्मियाँ मुड़कर बेंड़ी हो जाती हैं। साधारणतः दर्पण के बदले त्रिपार्श्व (prism) का ही प्रयोग किया जाता है जो ठीक दर्पण का ही काम देता है और साथ ही दर्पण से इस बात में अच्छा होता है कि इसमें

क़लई की आवश्यकता नहीं होती है और वस्तुएँ अधिक चमकीली दिखलाई पड़ती हैं।

१६—सूर्य के लिए चक्षु-ताल—सूर्य को दूरदर्शक से देखने के लिए विशेष चक्षु-ताल का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि



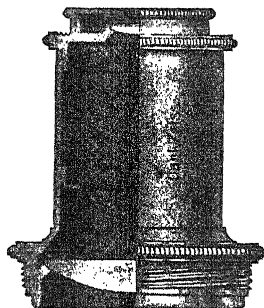
[माउन्ट विलसन

चित्र १०१—नतोदर दर्पण बनाना।

वह यंत्र जिससे माउन्ट विलसन का १०० इंच वाला दर्पण गहरा (नतोदर) किया गया।

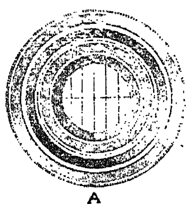
साधारण चक्षु-ताल के प्रयोग में प्रकाश के अतिरिक्त सूर्य की गरमी भी इतनी एकत्रित हो जाती है कि आँख लगाने से यह तुरन्त जल जाय, और यदि गहरे रंग के शीशे (dark glass, डार्क ग्लास) या कालिख लगे शीशे (smoked glass, स्मोक्ड ग्लास) का प्रयोग किया जाय तो इस शीशे के चटख़ जाने या कालिख के

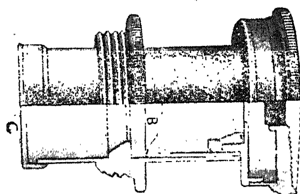
जल जाने का भय रहता है। इसलिए सूर्य की जाँच के लिए बिना क़लई के दर्पणवाले चक्षु-ताल का उपयोग किया जाता है। बिना क़लई के दर्पण से प्रकाश और गरमी का अधिक भाग पार हो जाता है और शेष मुड़ कर आँखों तक पहुँचता है। आवश्यकता होने पर इस चक्षु-ताल के साथ गहरे रङ्ग का शीशा लगाया जा सकता है। ऊपर बतलाये गये चक्षु-ताल की बनावट चित्र १०५ में दिखलाई गई है। सूर्य को देखने के लिए बड़े दूरदर्शकों में दो दर्पणवाले चक्षु-तालों का प्रयोग किया जाता है। इनके प्रयोग से रश्मियों का और भी कम भाग आँखों तक पहुँचता है। इनमें से एक दर्पण दूसरे के हिसाब से घुमाया जा सकता और इस प्रकार सूर्य की जो मूर्त्ति आँखों को दिखलाई पड़ती है उसकी चमक इच्छानुसार न्यूनाधिक की जा सकती है। ऐसा होने का कारण क्या है यह यहाँ स्थानाभाव से नहीं समझाया जा सकता; परन्तु जो भौतिक विज्ञान (physics) जानते हैं वे इसे तुरन्त समझ जायँगे, क्योंकि दो दर्पणों के प्रयोग से पोलैराइज़ेशन (polarisation) द्वारा प्रकाश इच्छानुसार घटाया बढ़ाया जा सकता है।



[ज़ाइस कंपनी

चित्र १०२—**हायगेन्स चक्षु-ताल।**

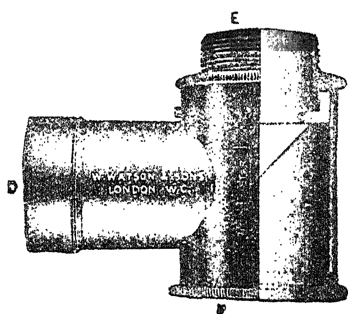




[वाटसन एण्ड संस

चित्र १०३—**रैम्ज़डेन चक्षुताल और उसके साथ लगाने के लिए स्वस्तिक तार।**

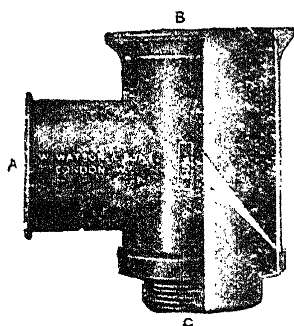
सूर्य के प्रकाश को कम करने के लिए प्रधान ताल पर टोपी या ढकना भी चढ़ा दिया जाता है, जिसमें इच्छानुसार छोटा या बड़ा छेद कटा रहता है, परन्तु इस छेद को बहुत छोटा नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से मूर्त्ति स्पष्ट नहीं बनती।



[वाटसन ऐण्ड संस

चित्र १०४—दर्पण-युक्त चक्षु-ताल।

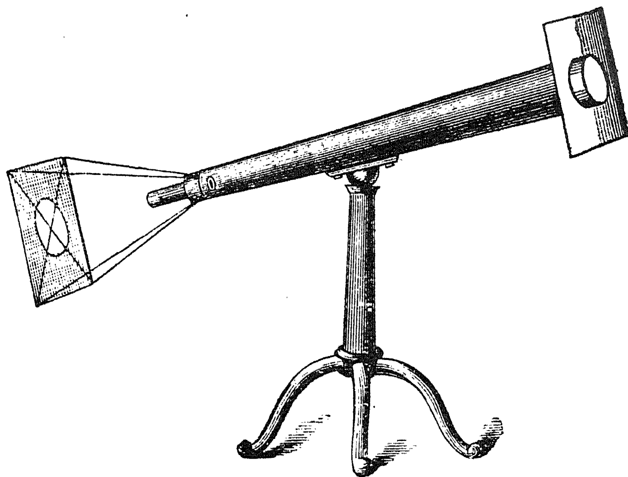
साधारण दूरदर्शकों में विशेष चक्षु-ताल के न रहने पर निम्न-लिखित उपाय का अवलम्बन करना चाहिए। इसमें विशेष गुण यह है कि इस रीति से कई एक व्यक्ति एक साथ ही सूर्य को देख सकते हैं। दूरदर्शक के चक्षु-ताल से लगभग १ फ़ुट की दूरी पर एक सफ़ेद परदा इस प्रकार स्थायी कर देना चाहिए कि दूरदर्शक को घुमाने पर भी यह सदा दूरदर्शक से समकोण बनाता रहे (चित्र १०६)। अब यदि दूरदर्शक को घुमा कर इसको सूर्य की दिशा में कर दिया जाय तो इस परदे पर सूर्य की अस्पष्ट मूर्ति दिखलाई पड़ने लगेगी। चक्षु-ताल को आगे पीछे चलाने पर



[वाटसन ऐण्ड संस

चित्र १०५—सौर चक्षु-ताल।

जब फ़ोकस शुद्ध हो जायगा तब सूर्य की स्पष्ट मूर्ति परदे



[एबेट की "दि सन" से

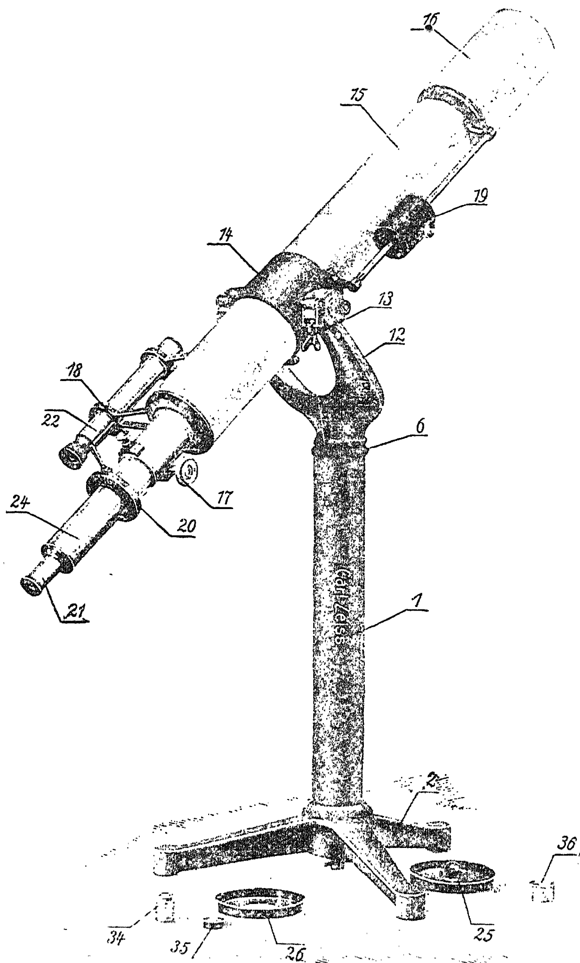
चित्र १०६—सूर्य की मूर्ति परदे पर कैसे बनाई जा सकती है

पर दिखलाई पड़ेगी, जिसे कई व्यक्ति एक साथ ही देख सकते हैं।

अध्याय ३

आकाशीय फ़ोटोग्राफ़ी तथा अन्य बातें।

१—दूरदर्शक का आरोपण—सभी जानते हैं कि आकाशीय पिंड स्थिर नहीं रहते। वे सदा चलायमान रहते हैं। सूर्य पूर्व में उदय होता है और लगातार चल कर पश्चिम में पहुँचता है, जहाँ वह अस्त होता है। इसी प्रकार चन्द्रमा, ग्रह और तारागण सभी पश्चिम की ओर चलते रहते हैं। इसलिए दूरदर्शक किसी विशेष स्थिति में स्थायी नहीं रक्खा जा सकता है। इसको भी चलना पड़ता है। जिस प्रबन्ध द्वारा दूरदर्शक इच्छित दिशा में घुमाया या चलाया जाता है उसको "आरोपण" (mounting, माउन्टिङ्ग) कहते हैं। आरोपण दो प्रकार का होता है, एक दृग्-यंत्र (altazimuth ऑल्टैज़िमथ), दूसरा नाड़ी मडल-यंत्र (equatorial इक्वेटोरियल)। इनमें से नाड़ी-मंडल आरोपण ही बड़े दूरदर्शकों के लिए प्रयोग किया जाता है, क्योंकि इससे विशेष सुविधा होती है, जैसा अभी बतलाया जायगा; परन्तु सरल होने के कारण छोटे या सस्ते दूरदर्शकों में दृग्-आरोपण का ही प्रयोग किया जाता है। इसका स्वरूप चित्र १०७ से स्पष्ट हो जायगा। दूरदर्शक (नम्बर १५) स्तम्भ (१) पर खड़ा किया गया है। यह स्तम्भ नलिका के समान होता है और इसमें एक छड़ पहनाया रहता है, जिसके ऊपरी भाग में रकाब (१२) बना रहता है। इसलिए यह रकाब स्तम्भ (१) के सहारे चारों ओर घुमाया जा सकता है। रकाब में दूरदर्शक इस प्रकार लगाया जाता है कि इसकी दिशा ऊपर या नीचे की ओर इच्छानुसार की जा सकती है। स्पष्ट है कि इस प्रकार आरोपित



[ज़ाइस कम्पनी

चित्र १०७—दृग्-यंत्र (Altazimuth)।

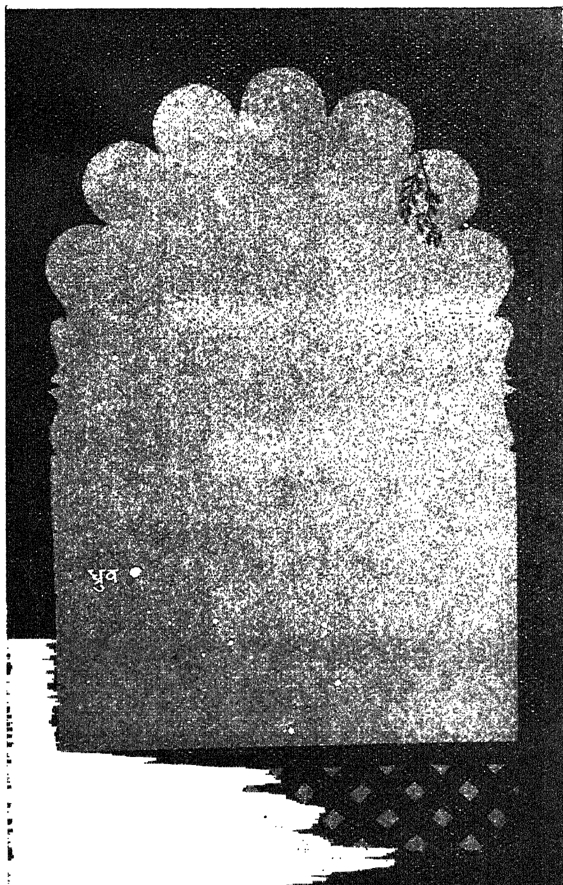
१—स्तम्भ। २—चंगुलनुमा तिपाई। ६—दिशा बदलने के लिए जोड़। १२—रकाब। १३—रकाब को कसने का पेंच। १४—दूरदर्शक को पकड़ने का चोंगा। १५—दूरदर्शक। १६—ओस से रक्षा करने की टोपी। १७—फ़ोकस करने की घुन्डी। १८—फ़ोकस स्थायी करने की घुन्डी। १९—दोनों ओर बोझ बराबर करनेवाला बाँट। २०—चक्षु-खंड जोड़ने की चूड़ी। २१—चक्षुताल। २२—सहायक दूरदर्शक। २४—चक्षुखंड। २५—ताल की टोपी। २६—प्रधान ताल के छिद्र को छोटा करने के लिए टोपी। ३४—दूसरा चक्षुताल। ३५—सूर्य के लिए गहरे रङ्ग का शीशा। ३६—सहायक दूरदर्शक की टोपी।

किये दूरदर्शक को घुमा फिरा कर हम आकाश के किसी भी विन्दु की ओर कर सकते हैं। किसी किसी दूरदर्शक में स्तम्भ के बदले उस प्रकार की तिपाई (tripod) लगी रहती है जैसी फ़ोटोग्राफ़र अपने कैमेरे के लिए रखता है, परन्तु दूरदर्शक की गतियाँ ठीक उपरोक्त दृग्-यंत्र की सी होती हैं।

२—ताराओं की गति—ऊपर बतलाया गया है कि नक्षत्र, ग्रह, इत्यादि सदा चलते रहते हैं; इसलिए दृग्-यंत्र के दूरदर्शक को भी सदा चलाना पड़ता है। यदि दूरदर्शक को केवल एक धुरी पर घुमाना होता तब तो कोई विशेष कठिनाई न पड़ती, परन्तु यहाँ तो इसको दो धुरियों पर घुमाना पड़ता है। एक तो स्तम्भ-मध्यस्थ धुरी पर घुमा कर दूरदर्शक को सदा पूर्व से पश्चिम की ओर चलाना पड़ता है और साथ ही रकाब के दोनों सिरों से जानेवाली धुरी पर घुमा कर दूरदर्शक को सदा ऊपर या सदा नीचे करते रहना पड़ता है। देखना चाहिए कि किस उपाय से दूरदर्शक को केवल एक ही धुरी पर घुमाने से काम लिया जा सकता है।

बेध से, अर्थात् देखने से, पता चलता है कि नक्षत्र सब एक विन्दु की प्रदक्षिणा करते हैं जिसको ध्रुव कहते हैं। ध्रुव तारा भी ध्रुव (pole) की प्रदक्षिणा करता है, परन्तु यह ध्रुव के इतना पास है कि इसका चलना यंत्र बिना दिखलाई नहीं पड़ता और इसको हम स्थूल गणना के लिए स्थायी ही मान सकते हैं। इस बात का प्रमाण कि तारे एक ही विन्दु की प्रदक्षिणा करते हैं हम निम्न-लिखित रीति से बड़ी सुगमता से पा सकते हैं। अँधेरी रात में ध्रुव तारे का फ़ोटोग्राफ़ लेना चाहिए। लेन्ज़ (lens) को 'तेज़' होना चाहिए। यदि इसका छिद्र (aperture, अपरचर) फ़/३·५ (f/3·5), या इससे भी बड़ा हो तो अच्छा है। कैमेरे के मुख को ध्रुव तारे की ओर

करके इसको इस प्रकार टिका देना चाहिए कि यह एक घण्टे तक निश्चल रह सके। परम तेज़ प्लेट लगा कर लगभग १ घंटे का

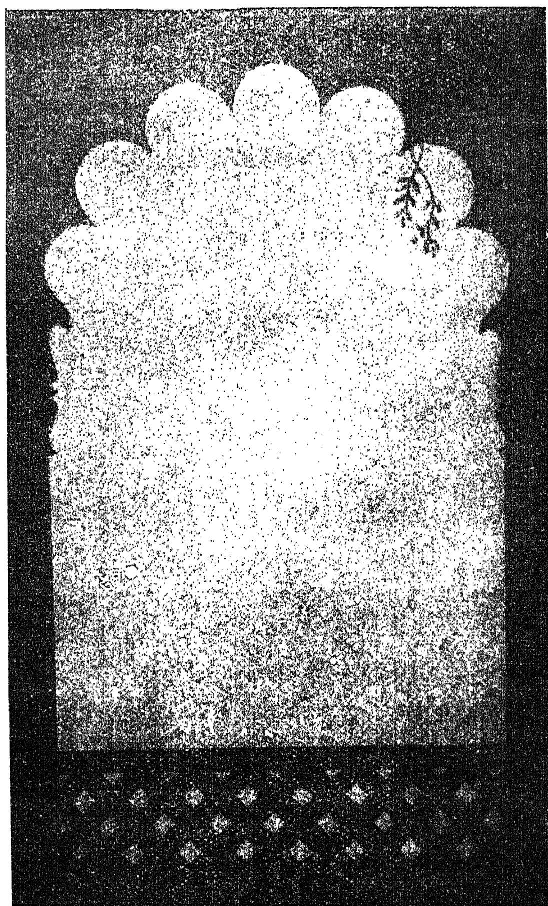


चित्र १०८—सभी तारे ध्रुव की प्रदक्षिणा करते हैं।

अगले चित्र से तुलना कीजिए, जो इसके एक घंटे बाद की स्थिति दिखलाता है।

प्रकाश-दर्शन (exposure, एक्सपोज़र) देना चाहिए। प्लेट को

डेवेलेप· इत्यादि करने पर हमें चित्र ११० के समान फ़ोटोग्राफ़ मिलेगा। आप देखते हैं कि सब तारे (जो इस प्लेट पर आ सके हैं)

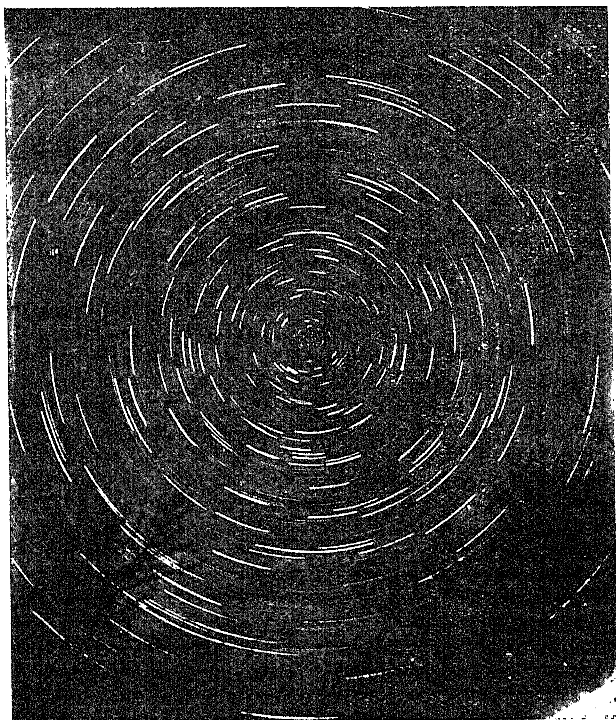


चित्र १०९—सभी तारे ध्रुव की प्रदक्षिणा करते हैं।

पिछले चित्र से तुलना कीजिए, जो इसके एक घंटे पहले की स्थिति दिखलाता है।

एक विन्दु के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। इसी विन्दु को ध्रुव

कहते हैं। जो खूब चटकीली और छोटी रेखा बीच में है वही ध्रुव तारे का मार्ग है। आप देखते हैं कि यह ध्रुव के पास ही है।



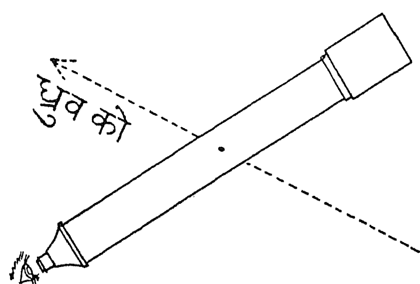
[यरकिज़ बेधशाला

चित्र ११०—सभी तारे ध्रुव की प्रदक्षिणा करते हैं।

ध्रुव के समीपवर्ती तारात्रों का फ़ोटोग्राफ़। कैमेरा स्थिर रक्खा गया था, इसी से तारात्रों का चित्र धनुषाकार उतरा है।

३—नाड़ीमण्डल दूरदर्शक—यदि दूरदर्शक इस प्रकार आरोपित किया जा सके कि तारात्रों की तरह यह भी ध्रुव के चारों ओर प्रदक्षिणा कर सके तो हमारा अभिप्राय सिद्ध हो जायगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि दूरदर्शक को घुमाने

के लिए एक धुरी ऐसी हो जिसकी दिशा ठीक ध्रुव की ओर हो (चित्र १११)। जब धुरी और दूरदर्शक के बीच के कोण को घटा बढ़ा कर, और दूरदर्शक को इस धुरी पर घुमा कर, दूरदर्शक को एक बार किसी तारे की ओर कर दिया जाता है तब फिर इस कोण को घटाने बढ़ाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। केवल धुरी पर ही दूरदर्शक को घुमाने से वह तारा बराबर इसमें दिखलाता रहेगा। दूरदर्शक को इस धुरी पर घुमाने के लिए घड़ी की सी मशीन (clock-work) लगाई जा सकती है (चित्र ११२), और ऐसा करने से ज्योतिषी अपना कुल ध्यान तारा या ग्रह को देखने में लगा सकता है। नाड़ीमंडल यंत्र के इसी सुभीते के कारण सब अच्छे दूरदर्शक नाड़ीमंडल-आरोपण पर ही लगाये जाते हैं*।



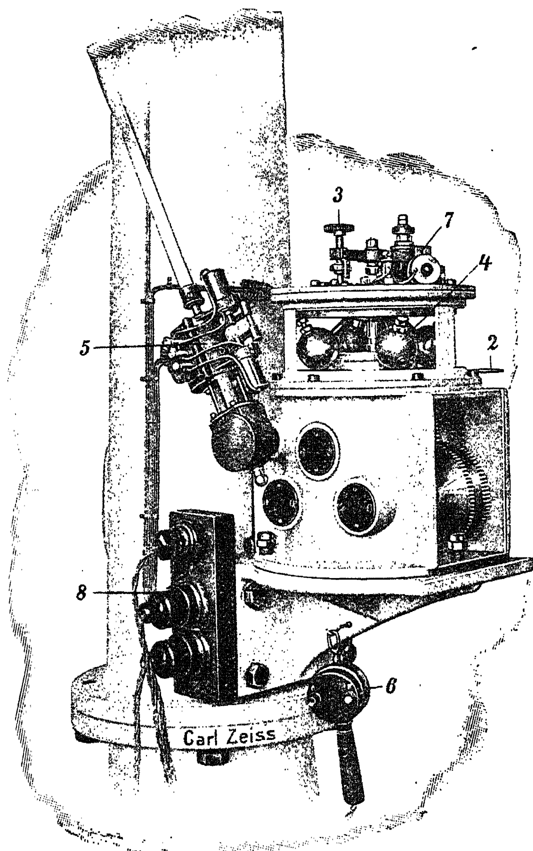
चित्र १११—नाड़ीमंडल दूरदर्शक का नक़शा।

एक छोटा नाड़ीमंडल यंत्र चित्र ११२ में दिखलाया गया है। इसमें दूरदर्शक को चलाने के लिए घड़ी नहीं लगी है। घड़ी लगा हुआ एक छोटा दूरदर्शक चित्र ११३ में दिखलाया गया है।

---

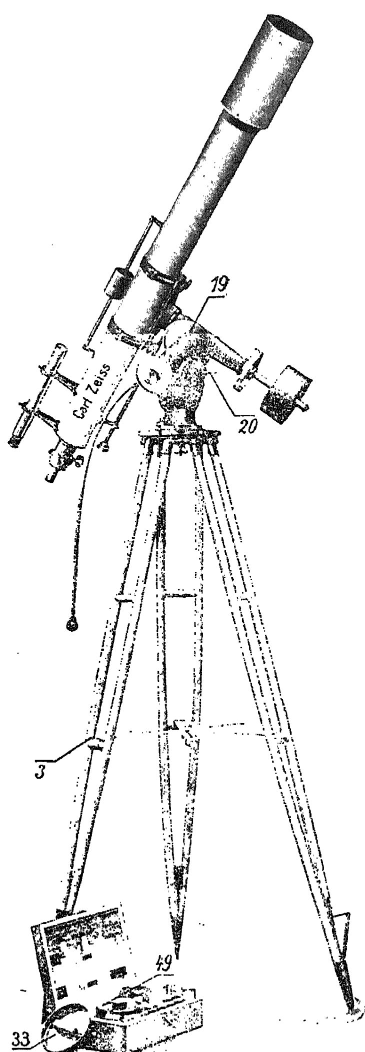
* ध्रुव की दिशा में स्थित धुरी को ध्रुव-धुरी (polar axis, पोलर-ऐक्सिस कहते हैं। इस धुरी और दूरदर्शक के बीच के कोण को घटाने बढ़ाने के लिए दूरदर्शक को जिस धुरी पर घुमाना होता है उसे क्रान्तिधुरी (declination axis, डेक्लिनेशन ऐक्सिस) कहते हैं।

४—दूरदर्शक गृह—तीन इंच से बड़े व्यास के दूरदर्शक इतने बड़े और भारी होते हैं कि वे प्रतिदिन अपने स्थान से उठा कर कहीं सुरक्षित स्थान में नहीं रक्खे जा सकते। इसलिए उनके लिए कुछ ऐसा प्रबन्ध करना पड़ता है कि इच्छानुसार वे खोल दिये जा सकें जिसमें उनसे बेध किया जा सके और फिर वे ढक दिये जा सकें जिसमें धूप और वर्षा से उनकी रक्षा हो सके। इसके लिए कभी कभी तो दूरदर्शक के ऊपर लोहे की चादर का एक घर इस प्रकार बना रहता है कि आवश्यकता पड़ने पर यह घर ज्यों का त्यों पीछे ढकेल दिया जा सके। परन्तु साधारणतः दूरदर्शक की ऊँचाई तक साधारण ईंट, पत्थर इत्यादि का मकान बनाया जाता है और इसके ऊपर या तो अर्ध-गोलाकार या ढोल-नुमा गुंबद बना



[जाइस कंपनी

चित्र ११२—नाड़ीमंडल दूरदर्शक को चलाने के लिए घड़ी।

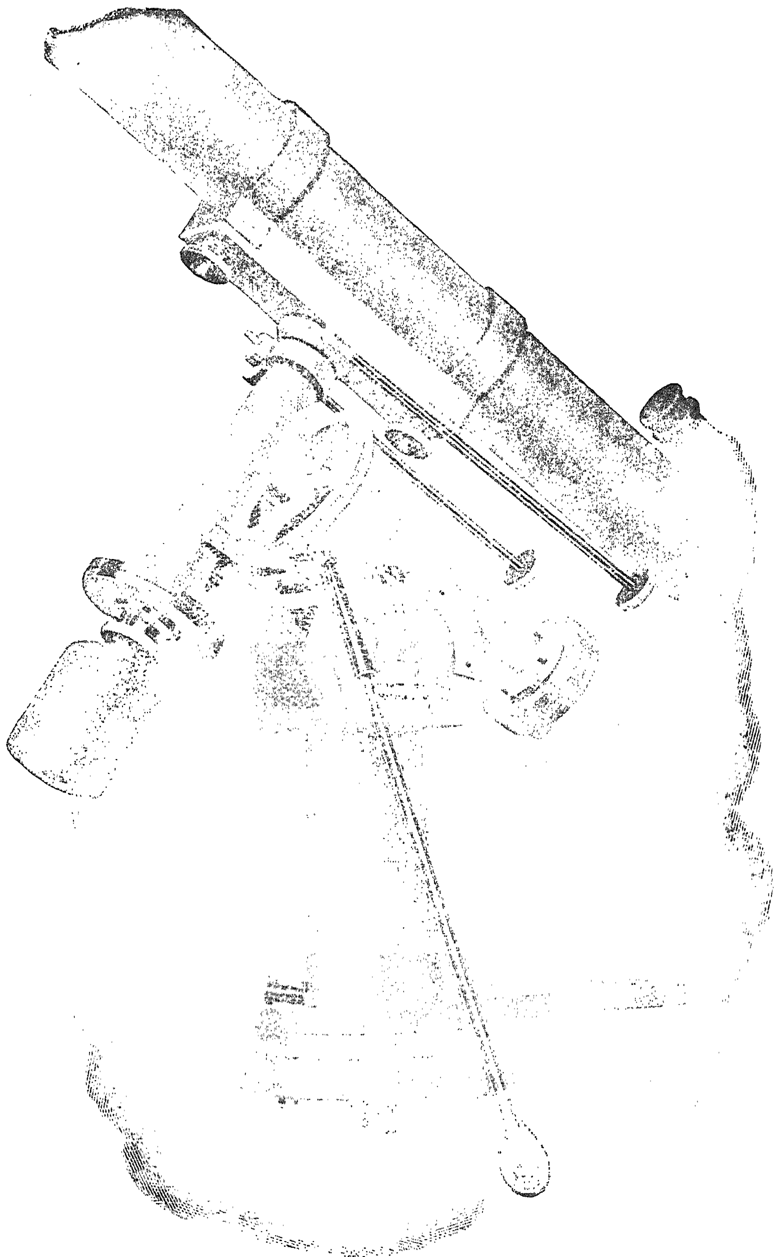


[जाइस कंपनी

चित्र ११२—छोटा नाड़ीमंडल दूरदर्शक ।

रहता है (चित्र ११५ और ११६)। इस गुंबद में एक ओर लम्बा सा भाग खुला रहता है जिस पर ढकना लगा रहता है। ढकना खिसका देने से यह भाग खुल या बन्द हो सकता है (चित्र ११७)। गुंबद मकान के ऊपर जड़ा नहीं रहता, क्योंकि ऐसा करने से आकाश का केवल एक विशेष भाग ही देखा जा सकता। यह घुमाया जा सकता है और इस प्रकार इसका खुला भाग जिधर चाहे उधर किया जा सकता है। इसलिए आकाश का सभी भाग बारी बारी देखा जा सकता है। बड़ी बेधशालाओं के गुंबद को घुमाने के लिए और छत के खुले भाग को ढकने के लिए बिजली का मोटर लगा रहता है।

५—नाड़ीमण्डल दर्पण— जब कभी किसी स्थान पर थोड़े समय के लिए दूरदर्शक आरोपित करने की आवश्यकता पड़ती है तो इसकी रक्षा के लिए घूमनेवाले गुंबद (revolving dome, रिवॉल्विङ्ग डोम) का निर्माण करना

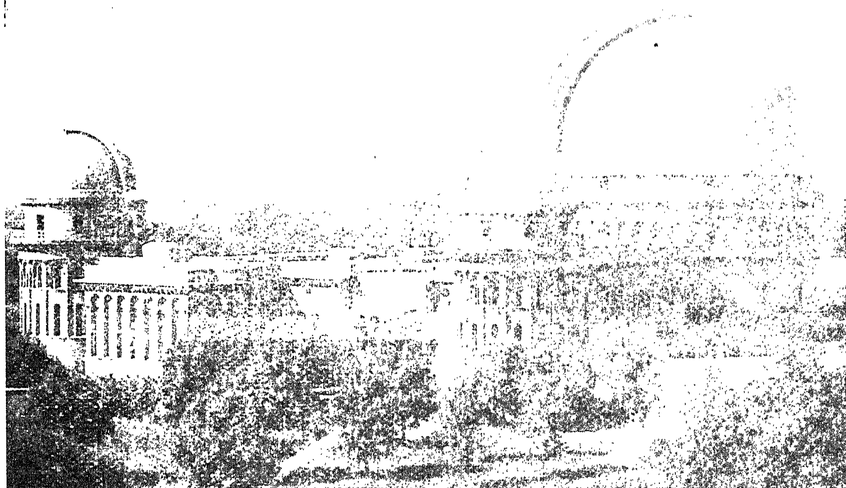


[वाटसन ऐंड संस

चित्र ११४—छोटा नाड़ीमंडल दूरदर्शक।

केवल आरोपण और दूरदर्शक का मध्य भाग ही दिखलाया गया है। नीचे, दाहिनी ओर, जो ब्रकेट दिखलाया गया है उसी पर वह घड़ी बैठाई जाती है जिससे दूरदर्शक चलता है।

असम्भव होता है। इसी प्रकार बहुत लम्बे दूरदर्शकों के लिए भी कठिनाई पड़ती है। ऐसी दशा में दूरदर्शक को किसी एक स्थिति में स्थायी कर देते हैं और इसमें प्रकाश की रश्मियों को दर्पण द्वारा भेजते हैं। नाड़ीमंडल यंत्र की तरह इसमें भी ऐसा प्रबन्ध



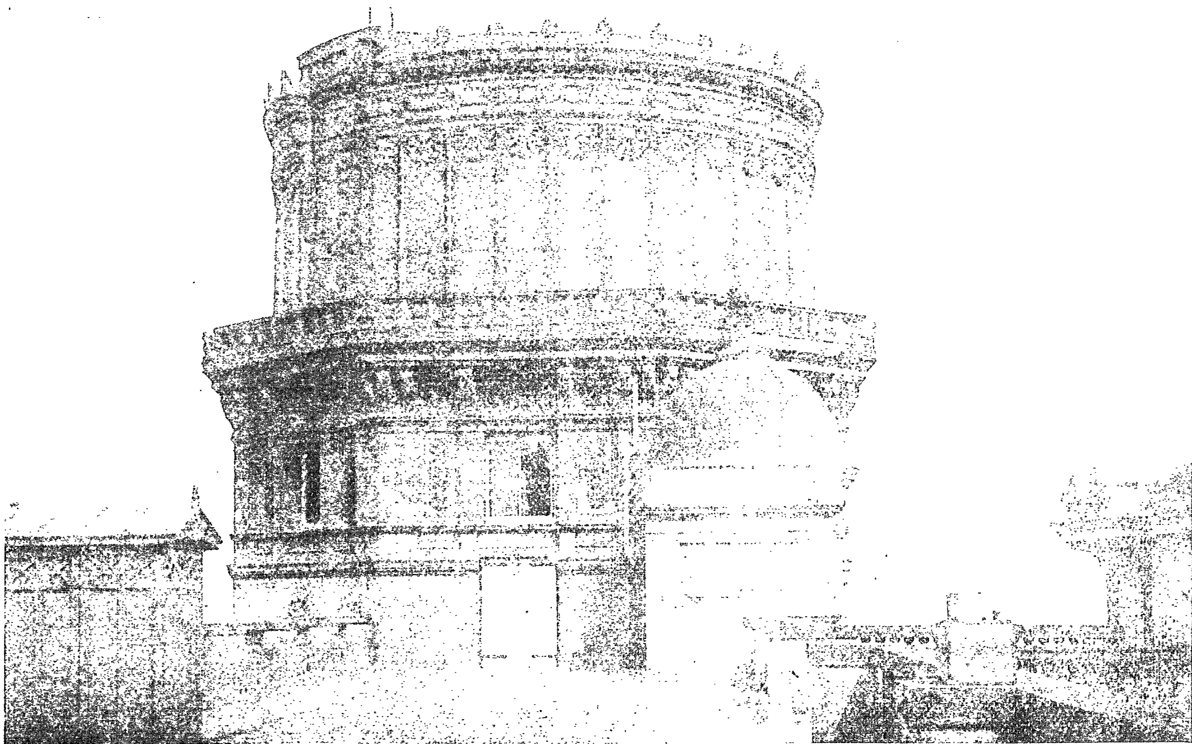
[यरकिज़ वेधशाला

चित्र ११८—यरकिज़ का वेधालय।

देखिए दूरदर्शक-गृह की छत गोलाकार है।

रहता है कि घड़ी की सहायता से दर्पण ध्रुव की दिशा में स्थित धुरी पर घूमता रहता है (चित्र ११९) और इसलिए प्रकाश-रश्मियाँ बराबर दूरदर्शक तक पहुँचती रहती हैं। ऐसे दर्पण को नाड़ीमंडल दर्पण (coelostat सोलोस्टैट) कहते हैं।

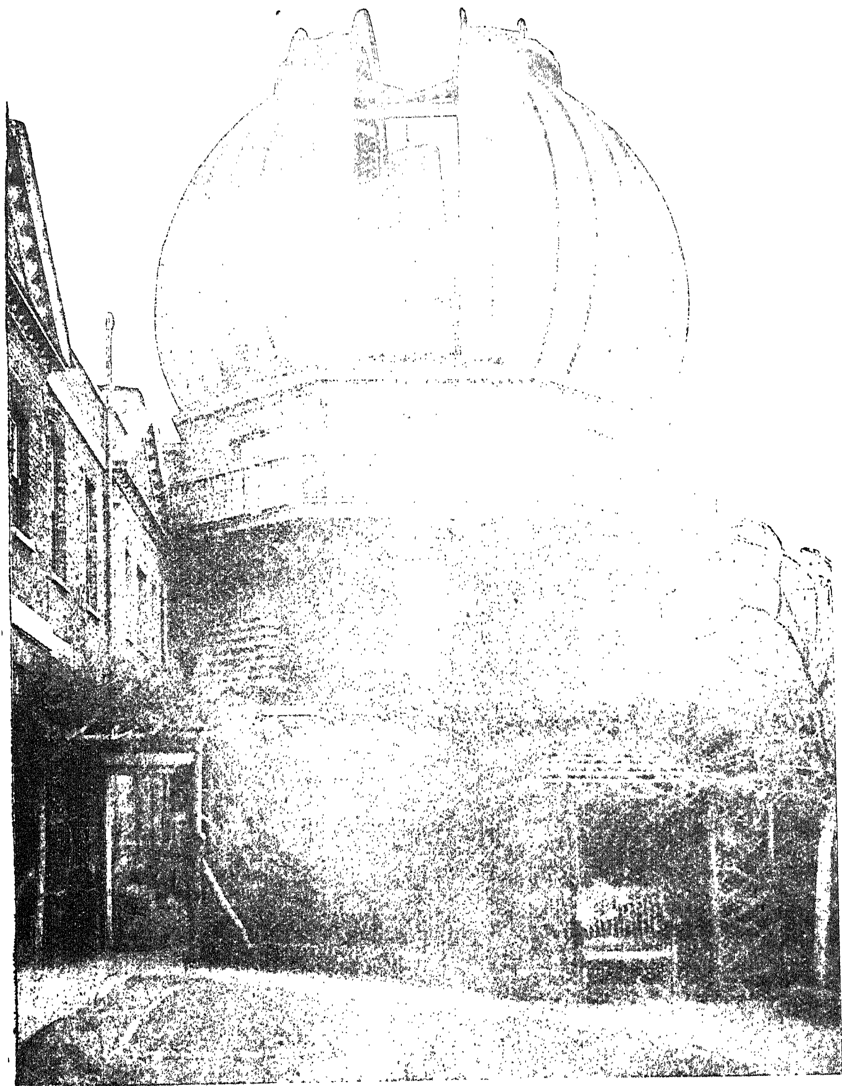
माउन्ट विलसन-वेधशाला (Mount Wilson Observatory) में स्थायी रूप से एक नाड़ीमंडल दर्पण बना हुआ है। इसका



[रॉयल बेधशाला, एडिनबरा

चित्र ११६—**एडिनबरा की सरकारी बेधशाला** (Royal Observatory, Edinburgh) ।

देखिए इसकी छत बेलननुमा है ।

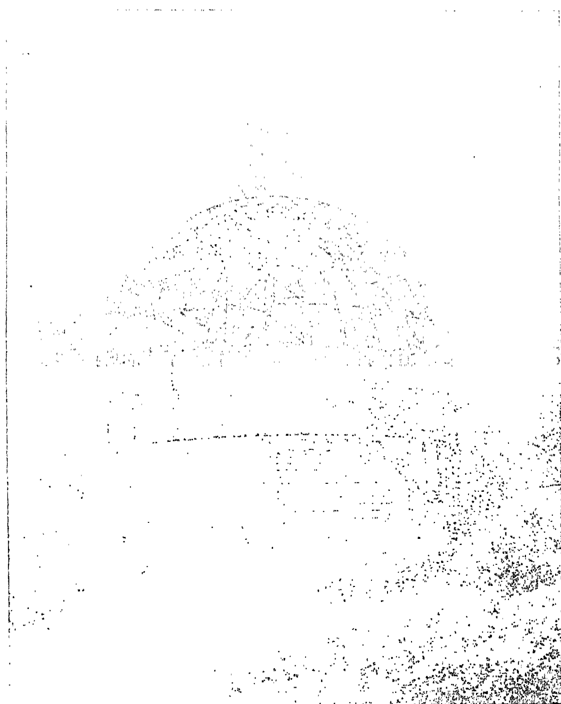


ग्रिनिच-बेधशाला

चित्र ११७—ग्रिनिच-बेधालय का दूरदर्शक गृह।

देखिए छत गोलाकार है और इसका एक लम्बा सा भाग खुल सकता है।

कारण यह है कि इसके साथ जिस दूरदर्शक का प्रयोग किया जाता है वह बेहद लम्बा, लगभग १५० फ़ुट का है। इस यंत्र को ज्योतिषी



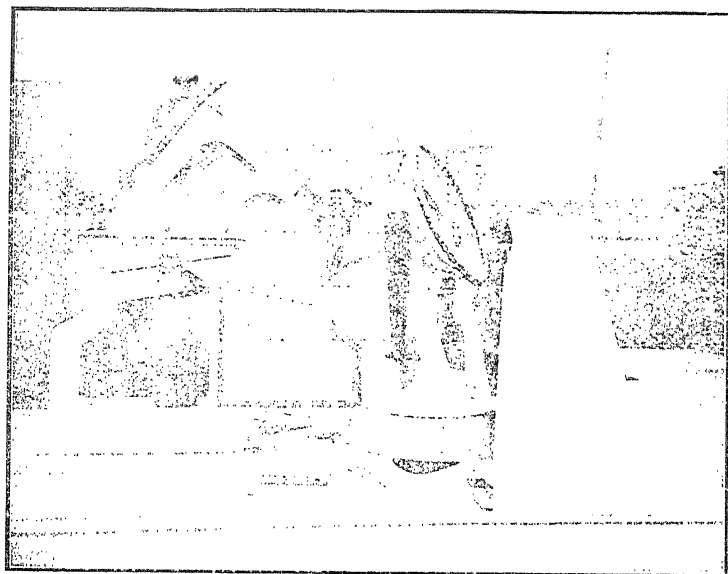
[माउन्ट विलसन वेधशाला

चित्र ११८—गोलाकार छत बनाने की रीति।

नीचे ईंट, पत्थर या सीमेन्ट की दीवार बनाकर ऊपर गोलाकार छत बैठा देते हैं। यह छत अधिकतर लोहे के ढांचे पर तांबे की चादर मढ़ने से बनाई जाती है।

अट्टालिका-दूरदर्शक (tower telescope, टॉवर टेलेस्कोप) कहते हैं क्योंकि यह मीनार के रूप में बना हुआ है। इसका बाहरी

आकार चित्र १२२ में दिखलाया गया है और इसकी भीतरी बनावट चित्र १२३ में दिखलाई गई है। नाड़ीमंडल दर्पण से मुड़ कर सूर्य की रश्मियाँ पहले एक दूसरे स्थायी दर्पण पर पड़ती हैं। वहाँ से वे १५० फ़ुट के फ़ोकल-लम्बान के ताल पर पड़ती हैं। इतने लम्बे

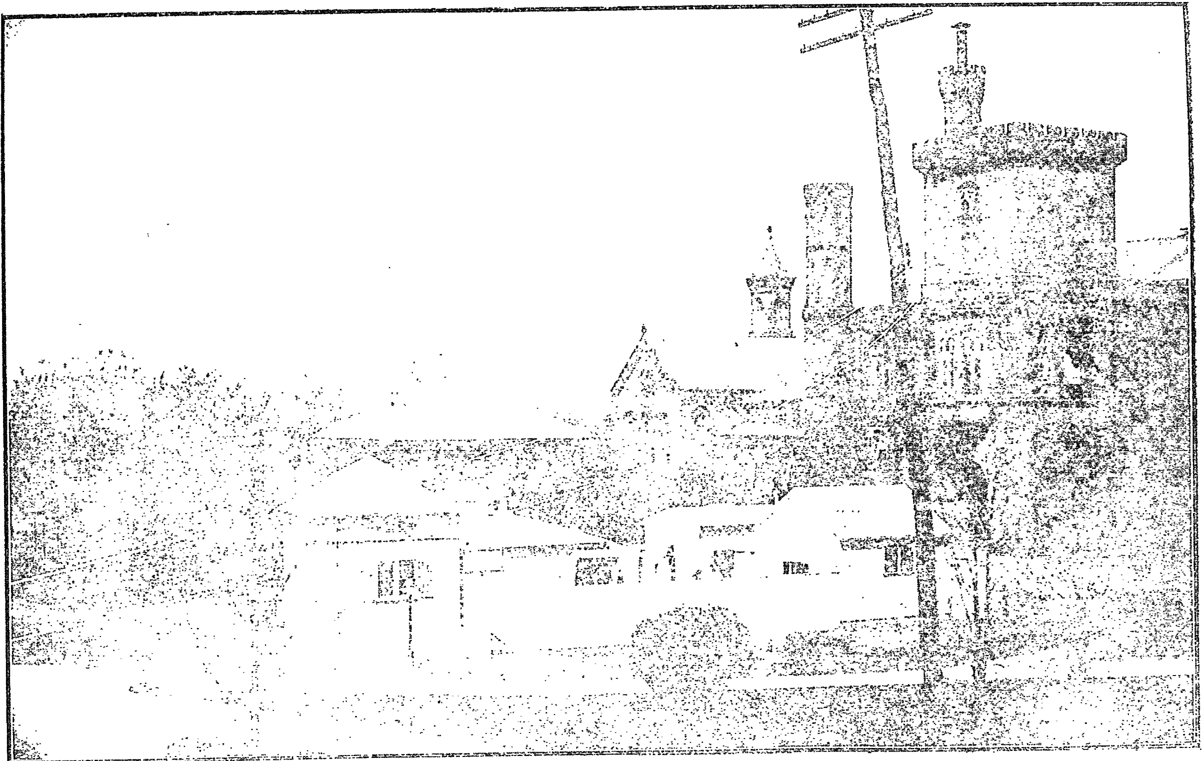


[स्मिथसोनियन वेधशाला

चित्र ११६—नाड़ीमंडल दर्पण (coelostat)।

इस यंत्र के प्रयोग से दूरदर्शक स्थायी रक्खा जा सकता है; केवल इस यंत्र के दर्पण को ही घुमाना पड़ता है। लम्बे दूरदर्शकों के लिए यह यंत्र विशेष उपयोगी है।

फ़ोकल-लम्बान के कारण सूर्य की मूर्ति जो बनती है वह लगभग १६½ इंच व्यास की होती है। इसी मूर्ति की जाँच करने के लिए ७५ फ़ुट लम्बे रश्मि-विश्लेषण-कैमेरे (spectrograph, स्पेक्ट्रोग्राफ़) का प्रयोग किया जाता है। इस यंत्र को रखने के लिए ८० फ़ुट गहरा



[स्मिथसोनियन वेधशाला

चित्र १२०—स्मिथसोनियन वेधशाला।

यहीं पर पिछले चित्र में दिखलाया गया यंत्र है।

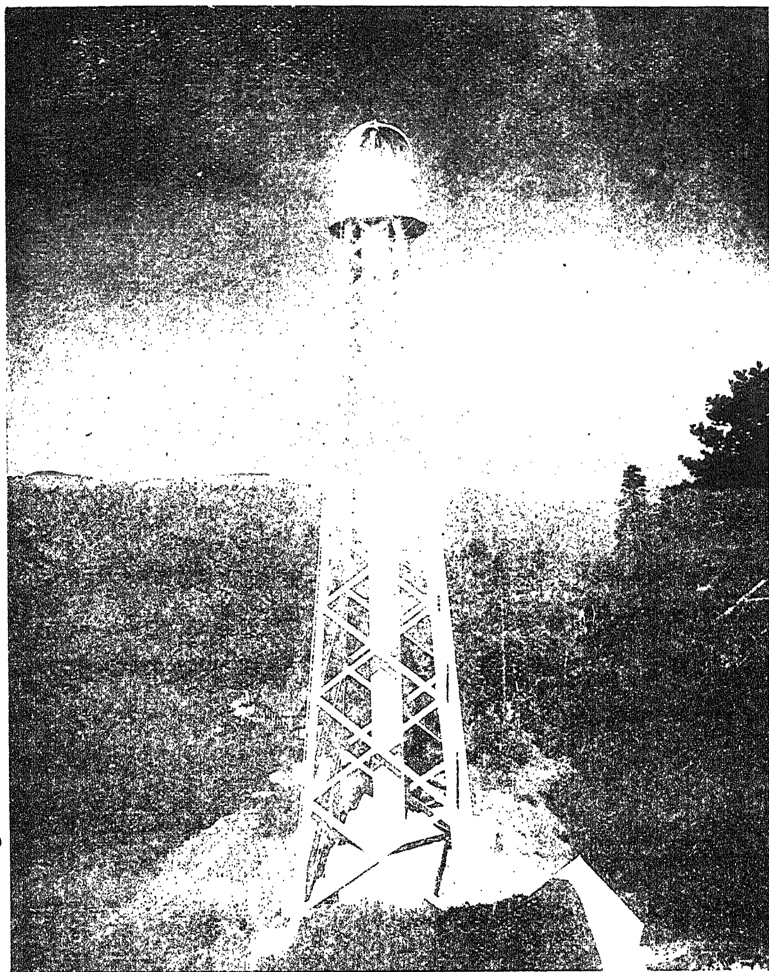


[माउन्ट विलसन बेधशाला

चित्र १२१—माउन्ट विलसन-बेधशाला।

दाहिनी ओर बड़ा अट्टालिका-दूरदर्शक है और बीच में छोटा।

कुआँ खुदा हुआ है, जो चित्र १२३ में दिखलाया गया है।

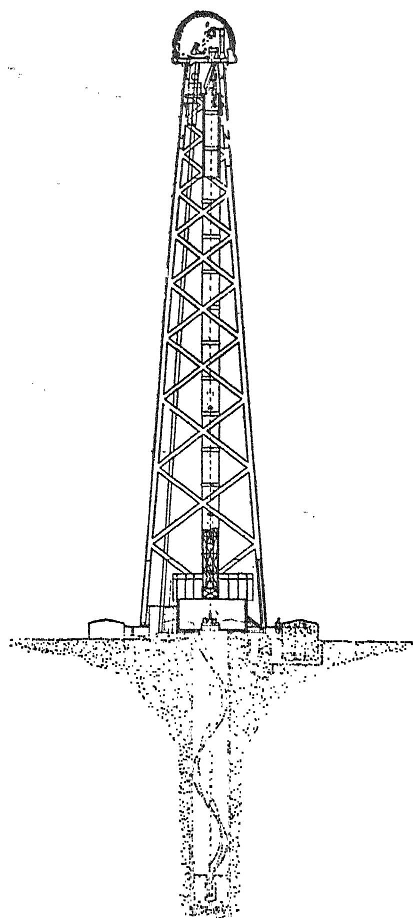


[माउन्ट विलसन वेधशाला

चित्र १२२—माउन्ट विलसन का अट्टालिका-दूरदर्शक।

इतनी ऊँची अट्टालिका में हवा के झकोरों से जो थरथराहट

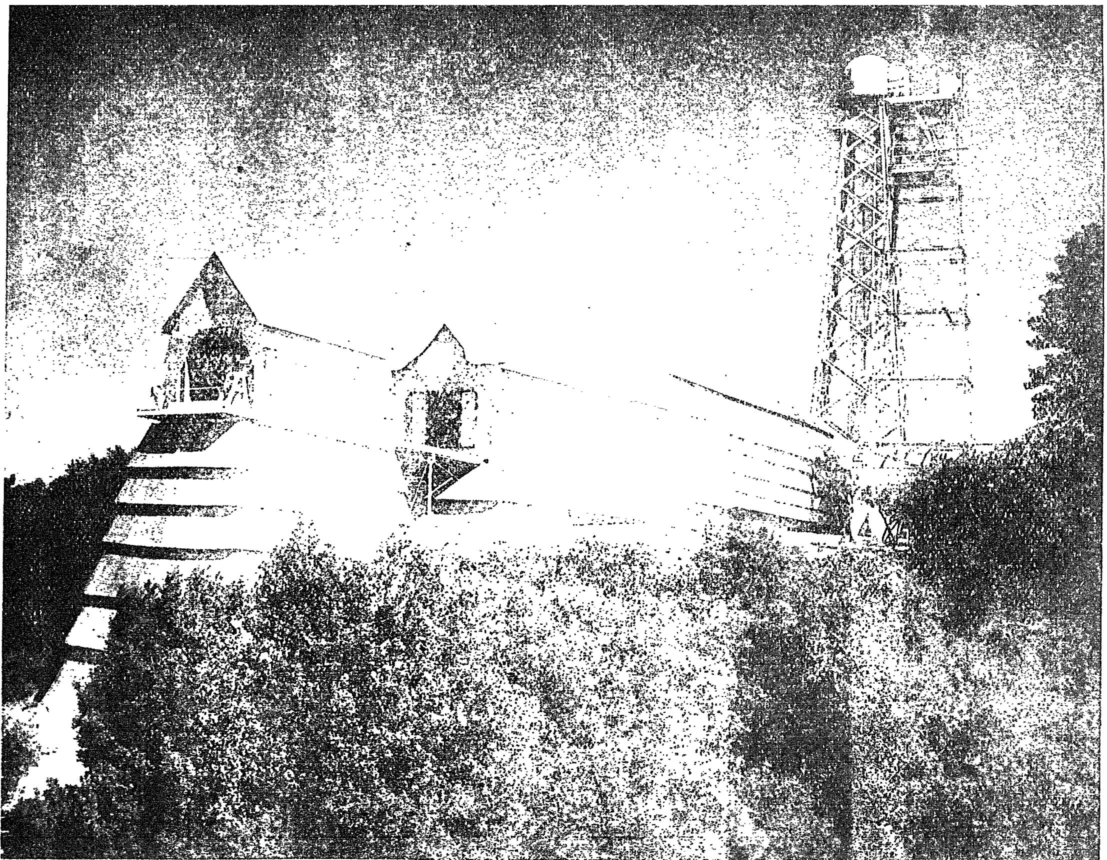
पैदा होती उससे दूरदर्शक बेकाम ही हो जाता, परन्तु इसके निर्माणकर्त्ता ने एक ऐसी युक्ति निकाली है जिससे वायु भी परास्त हो गया है। यह युक्ति बड़ी सरल है। खोखली नलिकाओं से अट्टालिका खड़ी की गई है, परन्तु वह यंत्र जिस पर दूरदर्शक का प्रधान ताल और दर्पण इत्यादि हैं इस खोखली नलिकाओं के भीतर भीतर आये हुए खम्भे और छड़ों पर जड़ा है। नलिकायें इन छड़ इत्यादि से कहीं भी नहीं छू गई हैं। इसलिए वायु बाहर को नलिकाओं और छतों में चाहे कितना ही कम्पन पैदा क्यों न कर दे, वह दूरदर्शक को ज़रा भी नहीं डिगा सकता। रश्मि-विश्लेषण यंत्र का वर्णन एक आगामी अध्याय में दिया जायगा।



[रसेल-डुगन-स्टेवार्ट की ऐस्ट्रॉनोमी से

चित्र १२३—अट्टालिका-दूरदर्शक।

पिछले चित्र में दिखलाये दूरदर्शक की भीतरी बनावट।



[माउन्ट विलसन बेधशाल

चित्र १२४—माउन्ट विलसन का छोटा अट्टालिका-दूरदर्शक।

यह बड़े ही जैसा है, परन्तु इसमें कुआँ नहीं है। इसके बदले प्रकाश-रश्मियों को दर्पण से मोड़ कर बड़ी स्थिति में रक्खे यंत्रों में भेजा जाता है।

लिए, पहले, जब फ़ोटोग्राफ़ी का प्रचार नहीं हुआ था, तब इष्ट तारे और समीपवर्त्ती अन्य तारात्रों के बीच की दूरी को बार बार नापना पड़ता था। ऐसा करने में घंटों लगता था और इतनी देर तक दूरदर्शक यंत्र भी फँसा रहता था। इन दिनों, थोड़े ही मिनटों में इन तारात्रों का फ़ोटोग्राफ़ ले लिया जाता है और तब फ़ोटो के प्लेट (plate) पर इन तारात्रों के बीच की दूरी इतमीनान से नापी जाती है। इस प्रकार दूरदर्शक, जहाँ पहले एक तारा की दूरी नापने में कुल मिला कर दस घंटे तक फँसा रहता, अब केवल दस मिनट ही में छुट्टी पा जाता है। इसलिए एक ही दूरदर्शक से अब पहले की अपेक्षा बहुत अधिक कार्य हो सकता है।

निजी गति (proper motion, प्रॉपर मोशन) के नापने में फ़ोटोग्राफ़ी की सहायता से कितना समय बचता है यह और भी अधिक स्पष्ट रीति से प्रमाणित होता है। इसके समझने के लिए स्मरण रखना चाहिए कि आकाश में जो तारे दिखलाई पड़ते हैं और जो 'स्थिर' तारे (fixed stars, फ़िक्स्ड स्टार्स) कहलाते हैं वे वास्तव में बिल्कुल स्थिर नहीं हैं। दूसरे तारात्रों की अपेक्षा इनमें से कुछ तारे चलायमान हैं। इनकी गति को नापने से आधुनिक ज्योतिषियों ने अनेक नई बातें सीखी हैं। उन तारात्रों की पहचान करने की, जिनमें पर्याप्त मात्रा में निजी गति है, आधुनिक रीति यह है कि पहले आकाश के किसी भाग का फ़ोटोग्राफ़ ले लिया जाता है। आठ दस वर्ष बाद फिर इसी भाग का फ़ोटोग्राफ़ लिया जाता है। जब इन दोनों प्लेटों का मिलान किया जाता है, तब वे तारे जो अपनी स्थिति से हटे हैं तुरन्त पकड़ लिये जाते हैं।

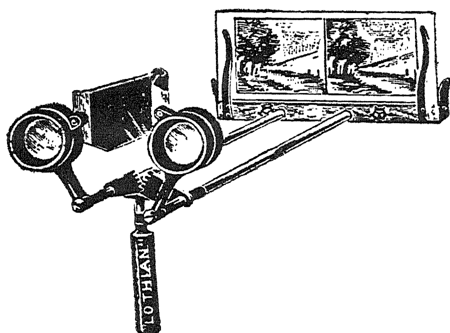
७—**निमीलं सूक्ष्म-दर्शक**—प्लेटों के मिलान करने की रीतियाँ भी बहुत रोचक हैं। एक रीति तो यह है कि दोनों प्लेट, एक की बग़ल में एक, रख दिये जायँ। फिर उन्हें प्रवर्धक तालों

रश्मि-चित्र

ऊपर मोमबत्ती के प्रकाश का रश्मि-चित्र है, बीच में सोडियम प्रकाश का, और नीचे सौर प्रकाश का। देखिए जहाँ सोडियम-रश्मि-चित्र में दो चमकदार रेखायें हैं, ठीक उसी स्थान में सौर रश्मि-चित्र में दो काली रेखायें हैं; इसीसे समझा जाता है कि सूर्य में सोडियम अवश्य है।

पृ० १२३

(magnifying lenses) द्वारा देखा जाता है जिससे वे बड़े और स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। दाहिनी आँख को दाहिनी ओर का और बाईं को बाईं ओर का प्लेट दिखलाई पड़ता है, परन्तु दोनों प्लेट एक साथ ही नहीं दिखलाई पड़ते क्योंकि तालों के पास एक ऐसा यंत्र लगा रहता है जिससे दाहिनी और बाईं आँखों से बारी बारी, एक के बाद दूसरी से, देखने को मिलता है। शीघ्रता से, यंत्र द्वारा, दाहिनी बाईं आँखों की बारी बदलती रहती है। इसका फल यह होता है कि वे तारे जो अपने स्थान से हटे नहीं रहते स्थिर दिखलाई पड़ते हैं, पर वे तारे जिनमें निजी गति होती है थरथराते हुए जान पड़ते हैं। इस प्रकार उनका पता तुरन्त लग जाता है। इस यंत्र को ब्लिंक माइक्रॉस्कोप (blink microscope) कहते हैं। ब्लिंक का अर्थ है पलक मारना। इसलिए इस यंत्र को हम निमीलं सूक्ष्मदर्शक कह सकते हैं।

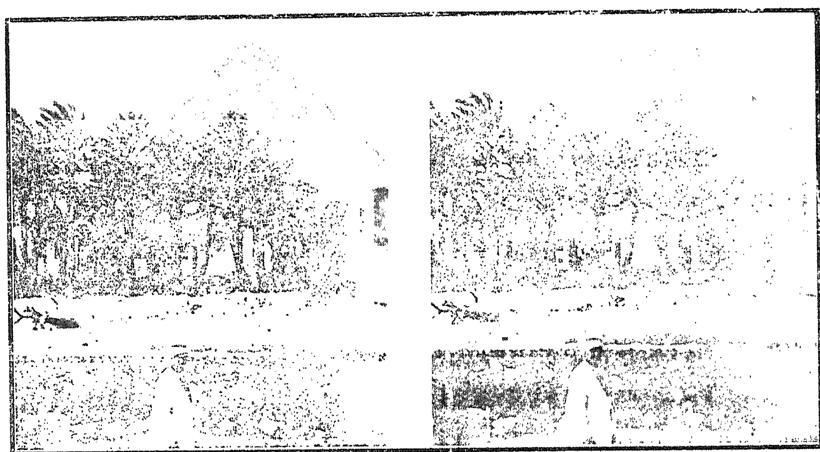


["फ़ोटोग्राफ़ी" से

चित्र १२७—साधारण सैरबीन।

८—**सैरबीन**—कभी कभी, ऊपर बतलाये गये यंत्र के अभाव में, ये प्लेट सैरबीन (stereoscope स्टिरियस्कोप) में लगा कर देखे जाते हैं। इस प्रकार देखे जाने से निजी गतिवाले तारे उभड़े हुए जान पड़ते हैं और इस प्रकार उनका पता लग जाता है। जो सैरबीन की बनावट और कार्य को जानते हैं उनको स्पष्ट हो गया होगा कि क्यों ये तारे उभड़े हुए दिखलाई पड़ते हैं।

सैरबीन के प्रयोग के बदले, थोड़ा सा प्रयत्न करने पर, प्लेटों का मिलान यों ही, बिना किसी यंत्र के, किया जा सकता है। यदि एक प्लेट को दूसरे पर रख कर मिलान कर लिया जाय तब भी चलायमान ताराओं का पता लग जायगा। परन्तु जिन लोगों ने फ़ोटो के प्लेट को देखा होगा वे जानते होंगे कि प्लेट में शीशे पर एक ओर मसाले की तह जमी रहती है और इस मसाले पर ही चित्र उतरता है। दो प्लेटों का मिलान करने के लिए जब इनको एक पर



["फ़ोटोग्राफ़ी" से

चित्र १२८—सैरबीन के लिए चित्र।

एक रखना पड़ेगा तब एक प्लेट का मसाला दूसरे के शीशे पर पड़ेगा और इसलिए इन दोनों का मिलान ठीक ठीक न हो सकेगा। इसलिए इस रीति से मिलान करने के लिए जो फ़ोटोग्राफ़ लिये जाते हैं, प्रकाश-दर्शन (exposure, एक्सपोज़र) देते समय उनमें से एक प्लेट का मसाला ताल की ओर रक्खा जाता है, और दूसरे प्लेट का शीशा। इस प्रकार प्रकाश-दर्शन देने से, डेवेलप

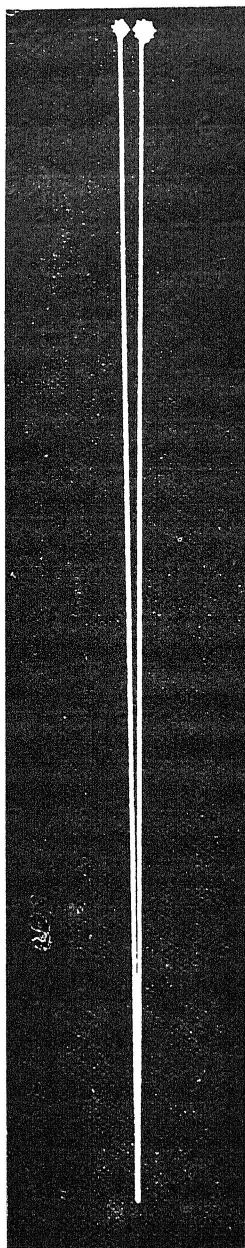
इत्यादि कर लेने पर जब दोनों प्लेट तैयार होकर नेगेटिव बन जाते हैं, तब मिलान करने के लिए उनको इस प्रकार रक्खा जा सकता है कि मसाला मसाले पर पड़े। इसलिए उनके मिलान करने में कुछ भी कठिनाई नहीं पड़ती। सब तारे तो एक के ऊपर एक पड़ेंगे, केवल वे ही जिनमें निजी गति है खिसके हुए दिखलाई पड़ेंगे और इसलिए उनका पता सुगमता से लग जायगा।

८—समय की बचत—विचार कीजिए कि फ़ोटोग्राफ़ी के अभाव में इन ताराओं का पता कैसे चलता। जिन जिन ताराओं पर ज्योतिषियों का सन्देह पड़ता उनके और अन्य ताराओं के बीच की दूरी को कई बार नापना पड़ता। इन दूरियों में दस पन्द्रह वर्ष में जो अन्तर पड़ता है वह बहुत सूक्ष्म होता है। इसलिए बिना किसी तारे की दूरी को बीस-पचीस ताराओं से नापे यह कोई निश्चय रूप से नहीं कह सकता कि उस तारे में निजी गति है या नहीं। इस प्रकार, बहुत परिश्रम करने पर पता चलता कि तारा स्थिर है या चलायमान और बहुत से ताराओं की जाँच करने पर थोड़े से ताराओं का पता चलता जो चलायमान हैं; इसलिए यह कहना कि फ़ोटोग्राफ़ी की सहायता के बिना नाक्षत्र ज्योतिष की उन्नति नहीं हो सकती थी पूर्णतया सत्य है।

जैसा एक अगले अध्याय से पता चलेगा, हम लोगों को सूर्य के विषय में बहुत सी बातों का ज्ञान सर्व-ग्रहण के समय सूर्य की परीक्षा करने से हुआ है। सर्व-ग्रहण कभी भी आठ मिनट से अधिक समय के लिए नहीं लगता। साधारणतः पाँच छः मिनट तक ही सर्व-ग्रहण दिखलाई पड़ता है। इतना ही समय पाने के लिए ज्योतिषीगण हज़ारों मील की यात्रा करते हैं, बहुत परिश्रम करते हैं और बहुत सा धन व्यय करते हैं। इस बहुमूल्य समय में फ़ोटो-ग्राफ़ी की सहायता से एक ही ग्रहण में इतना काम हो जाता है

जितना इसके अभाव में सैकड़ों ग्रहण में और इसलिए सैकड़ों वर्षों में भी न हो सकता। जगत्-प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टाइन (Einstein) को, जिसके सापेक्षवाद (Theory of Relativity, थ्योरी ऑफ़ रेलेटिविटी) ने सारे वैज्ञानिक संसार में हलचल मचा दी, कौन नहीं जानता? इनके सिद्धान्त का समर्थन सर्व-ग्रहण के समय ताराओं की सूर्य से दूरी नापने से हुआ। फ़ोटोग्राफ़ी के अभाव में यह कार्य कैसे हो सकता था?

१०—अत्यन्त सूक्ष्मता—दूसरा लाभ फ़ोटोग्राफ़ी से यह हुआ है कि इसके द्वारा ज्योतिष-सम्बन्धी सब माप अधिक सूक्ष्म रीति से किये जा सकते हैं। दैनिक गति के कारण नक्षत्र इत्यादि



चित्र १२६—एक अंश का कोण।

यदि इस कोण को ४ लाख भागों में बाँट दिया जाय, और कोई तारा अपने स्थान से केवल एक भाग के बराबर हट जाय तो भी ज्योतिषी अपने सूक्ष्म यन्त्रों से उस तारे की गति को नाप लेगा।

सभी चलते रहते हैं; वे पूर्व में उदय होते हैं और पश्चिम में अस्त होते हैं। इस प्रकार दो चलते हुए तारात्रों की दूरी को नापना, विशेषकर जब उन्हें बेढङ्गी स्थिति में लेट कर देखना पड़ता है, और जब वे हमारे वातावरण (atmosphere, ऐटमॉस्फ़ियर) के कारण नाचते रहते हैं, इतना सरल काम नहीं है जितना उनका फ़ोटो-ग्राफ़ ले लेना और फिर फ़ोटोग्राफ़ को नापना। आधुनिक रीति से कितनी सूक्ष्मता प्राप्त होती है इसका ज्ञान यों हो सकता है। बड़े दूरदर्शक से लिये गये फ़ोटोग्राफ़ों को नापने से अब $\frac{१}{१००}$ विकला तक के कोण का ज्ञान हो सकता है। इतने छोटे कोण को दृष्टिगत करने के लिए स्मरण रखना चाहिए कि एक समकोण में ९० अंश (degree, डिग्री) होते हैं। एक अंश (चित्र १२८) का साठवाँ भाग १ कला का कोण हुआ। इतने छोटे कोण का चित्र यदि हम दिखलाना चाहें तो दस बारह इंच तक तो इस कोण की दोनों भुजायें सटी हुई ही रहेंगी। कोण दिखलाई ही न पड़ेगा। अब इस कला का ६० भाग किया जाय तो एक विकला मिले। फिर इसका एक सौ भाग किया जाय और उसमें से एक भाग लिया जाय तो $\frac{१}{१००}$ विकला का कोण बनेगा! सूक्ष्मता की हद हो गई, तो भी ज्योतिषी दिन रात इसी फ़िकर में रहते हैं कि किस उपाय से और भी सूक्ष्म कोणों को नाप सकें।

इस सूक्ष्मता तक पहुँचने के लिए एक ओर तो दूरदर्शकों को दिन पर दिन वे बड़ा बनाते जा रहे हैं। अभी तक तो १०० इंच व्यास तक ही ज्योतिषी पहुँच सके थे, परन्तु अब २०० इंच व्यास का (दर्पणवाला) दूरदर्शक कुछ ही दिनों में बननेवाला है। दूसरी ओर वे फ़ोटो के प्लेट को अधिकाधिक बलिष्ठ सूक्ष्मदर्शकों से देखते हैं। ३० इंच व्यास के तालवाले दूरदर्शक

यंत्रों से लिये गये प्लेट पर बाल की मोटाई का तिहाई भाग लगभग १ विकला के कोण के बराबर होता है। तिस पर भी इसका सौवाँ ($\frac{१}{१००}$) हिस्सा नापा जाता है। यदि यह बाल का खाल खींचना नहीं तो है क्या?



चित्र १३०—सूक्ष्मता की हद।

तीस इंच के दूरदर्शक से लिये गये प्लेट पर लुब्धक नाम का तारा ६ महीने में अपने स्थान से मकड़ी के जाले की मोटाई से भी कम हटा हुआ दिखलाई पड़ता है। इसी को उस तारे का लम्बन कहते हैं। तारे के लम्बन के इतना सूक्ष्म होते हुए भी ज्योतिषी को इसके नापने में कुछ कठिनाई नहीं पड़ती! (यह चित्र असल से २०० गुना बड़ा दिखलाया गया है)।

फ़ोटोग्राफ़ी से आकस्मिक अशुद्धियों के हो जाने की सम्भावना भी बहुत कम हो जाती है। कुछ घटनाओं के बेध के लिए इतना कम समय मिलता है कि हड़बड़ी में ज्योतिषी ६ के बदले ३ लिख सकता है, परन्तु यदि फ़ोटोग्राफ़ ले लिया जाय तो इस प्रकार की अशुद्धियाँ नहीं हो सकतीं।

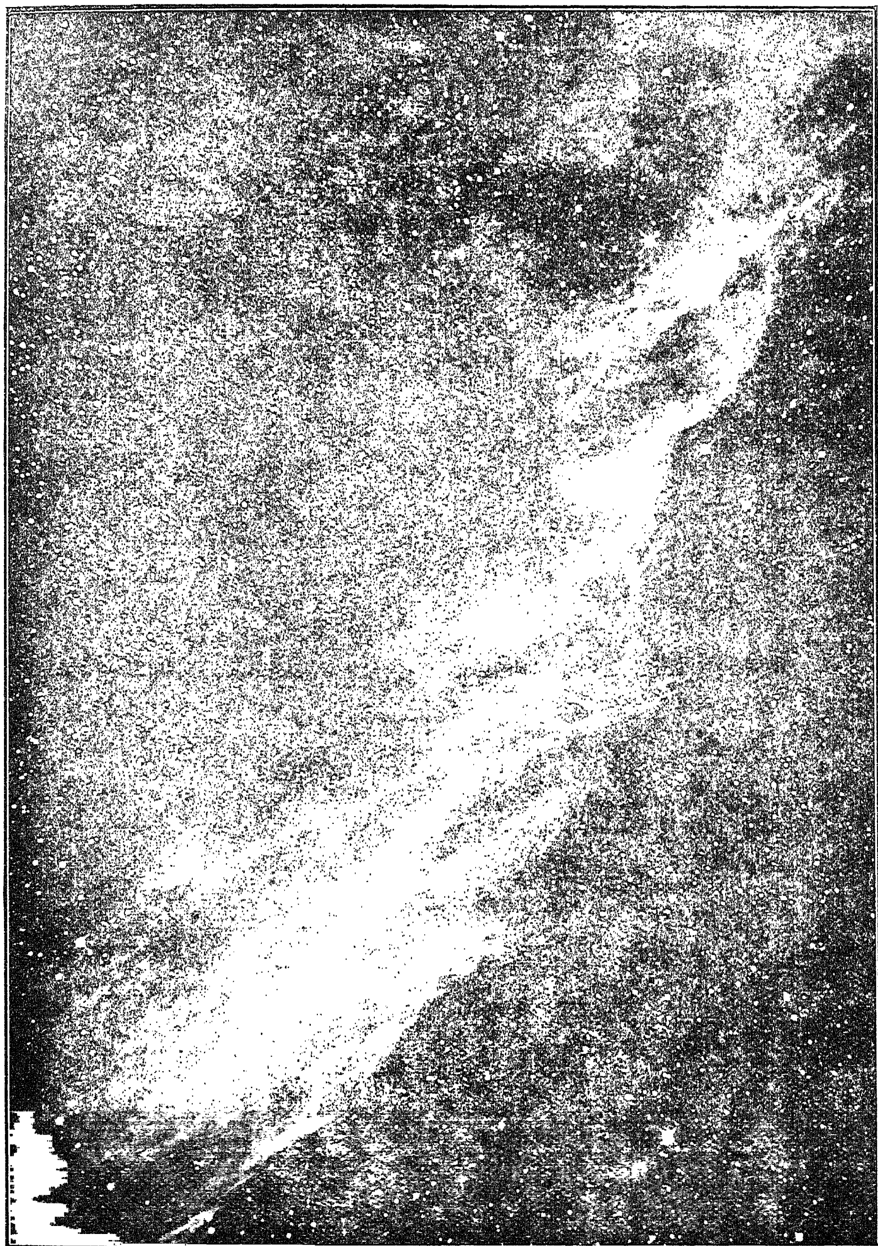
११—फ़ोटोग्राफ़ी के अन्य लाभ—फ़ोटोग्राफ़ी की बदौलत हम वह भी देख सकते हैं जो अन्य किसी रीति से दिखलाई नहीं पड़ता। इस विचित्र बात का कारण यह है कि फ़ोटोग्राफ़ी के प्लेट



[आइज़क रॉबर्ट्स

चित्र १२१—कृत्तिका नीहारिका ।

पर प्रकाश का प्रभाव इकट्ठा होता चला जाता है; परन्तु आँख पर ऐसा नहीं होता। यदि प्रकाश इतना कम हो कि हम किसी वस्तु को देख न सकते हों तो घंटों देखने से भी वह वस्तु दिखलाई न देगी। इसके विपरीत, यदि प्रकाश इतना कम हो कि घंटे भर के प्रकाश-दर्शन में भी कोई चित्र न उतरे तो हम दस घंटे का प्रकाश-दर्शन दे सकते हैं। प्रकाश दस घंटे में एक घंटे की अपेक्षा दस गुना प्रभाव प्लेट पर डालेगा; और सम्भव है, जहाँ प्लेट पर कुछ भी दिखलाई नहीं देता था वहाँ अब स्पष्ट चित्र उतर आवे। ज्योतिष-सम्बन्धी फ़ोटोग्राफ़ी में दस घंटे से कहीं अधिक का प्रकाश-दर्शन दिया जा सकता है। एक रात को आठ दस घंटे का प्रकाश-दर्शन देकर प्लेट-घर (plate-holder, प्लेटहोल्डर) का ढकना बन्द कर दिया जा सकता है। दूसरी रात में दूरदर्शक को फिर उसी वस्तु पर साध कर प्लेट-घर का ढकना खोल दिया जा सकता है। धीमे प्रकाशवाले आकाशीय पिंडों पर वस्तुत: कई रात्रि तक इस रीति से प्रकाश-दर्शन दिया गया है। अधिक प्रकाश-दर्शन देकर फ़ोटोग्राफ़ लेने पर हमको बहुत सी बातें मालूम हुई हैं, जिनका ज्ञान अन्य किसी रीति से न होता। विशेषकर नीहारिकाओं (nebula नेब्युला) की बनावट के विषय में ज्योतिषियों ने बहुत सी बातों का पता इस रीति से चलाया है। उदाहरण के लिए चित्र १३१ को देखिए। यह उसी कृत्तिका तारा-पुंज का फ़ोटोग्राफ़ है जिसकी चर्चा पहले हो चुकी है। अधिक प्रकाश-दर्शन देने से पता चला कि ये तारागण एक दूसरे से नीहारिका द्वारा गुथे हैं। चित्र १३२ और १३३ में दो सुन्दर नीहारिकायें दिखलाई गई हैं जिनका पता लगाना फ़ोटोग्राफ़ी से ही सम्भव हो सका।



[जी० डब्ल्यू० रिची

चित्र १३२—तन्तुमय (filamentous) **नीहारिका।**

इसका पता लगाना फ़ोटोग्राफ़ी ही से सम्भव हो सका।

फ़ोटोग्राफ़ी से ताराओं इत्यादि की ज्योति भी नापी जा सकती है और नापी जाती है। यद्यपि अच्छे दूरदर्शकों में प्रत्येक तारा विन्दु के समान दिखलाई पड़ता है, तिस पर भी फ़ोटोग्राफ़ लेने पर चमकीले ताराओं के फ़ोटो बड़े और फीके ताराओं के फ़ोटोग्राफ़ छोटे आते हैं। फ़ोटो के प्लेट में यह एक विशेषता है। इसलिए फ़ोटोग्राफ़ में इन ताराओं के व्यासों को नापने से ताराओं की चमक नापी जा सकती है। फिर, ताराओं के रश्मि-चित्र के भिन्न भिन्न लकीरों की चमक नापने से, जैसा आगे बतलाया जायगा, उनके तापक्रम और दूरी इत्यादि का ज्ञान हो सकता है। इन लकीरों की चमक का अनुमान फ़ोटोग्राफ़ में उतरी लकीरों की घनत्व (density डेन्सिटी) नाप कर किया जाता है।

हाथ के खिंचे चित्र १३४ और १३५ को फ़ोटोग्राफ़ (१३६) से मिलाने पर फ़ोटोग्राफ़ी के लाभ अच्छी तरह ज्ञात हो जाते हैं। ये चित्र सन् १८९८ के भारतीय सर्व-सूर्य-ग्रहण के हैं।

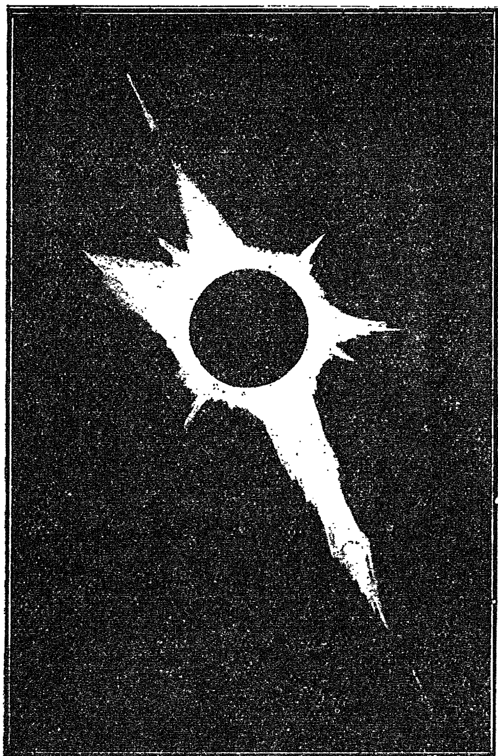
१२—ताराओं के मानचित्र—फ़ोटोग्राफ़ी से आकाश का मानचित्र (नक़शा) भी सुगमता से बनता है। संसार के प्रायः सभी बड़ी बेधशालाओं ने मिलकर कुल आकाश का बड़े पैमाने पर एक नक़शा तैयार किया है। हर्ष की बात है कि हैदराबाद (दक्षिण) की निज़ामिया बेधशाला भी इस शुभ कार्य में सम्मिलित थी। फ़ोटोग्राफ़ी के अभाव में इस नक़शे का बनना असम्भव होता। नक़शे के अतिरिक्त, फ़ोटो-ग्राफ़ी से एक प्लेट पर कई हज़ार ताराओं की स्थिति और चमक का पक्का इतिहास दो चार मिनट में अंकित हो जाता है। इन प्लेटों को सुरक्षित रखने से आवश्यकता पड़ने पर



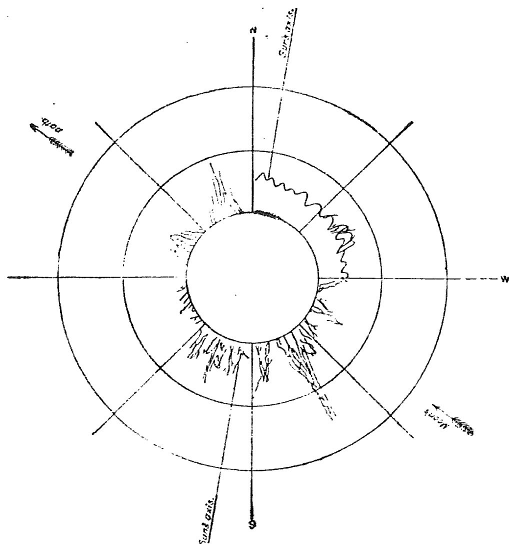
[माउन्ट विलसन बेधशाला

चित्र १२२—काली नीहारिका।

इसका भी पता फ़ोटोग्राफ़ी ही से लग सका।



[पील

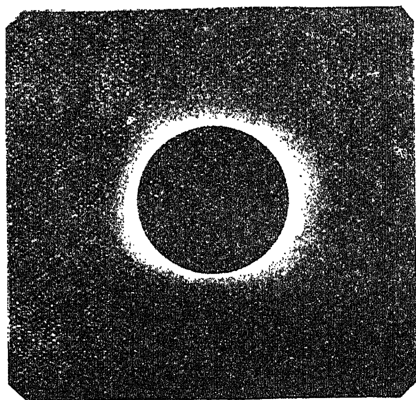


[कदने, यादव और बॉल

चित्र १३४, १३५—हाथ से खिंचे सर्वसूर्य-ग्रहण के दो चित्र।

देखिए दोनों में कितना अंतर है। ऊपर वाला चित्र Rev. V. de Campigneulles के "ऑबज़रवेशंस टेकन ऐट डुमराँव" से और नीचे वाला चित्र नायगमवाला के "रिपोर्ट, टोटल सोलर इकलिप्स, २१–२२ जनवरी, १८९८" से लिया गया है।

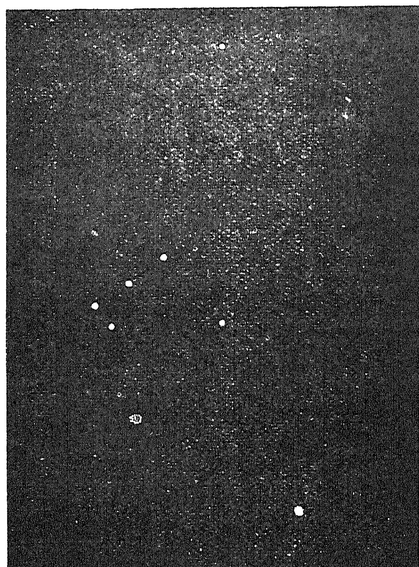
किसी नक्षत्र के पुराने इतिहास का पता तुरन्त लग सकता है। इसी लिए हारवार्ड वेधालय में सारे आकाश का फ़ोटोग्राफ़ कई बार लेकर सब प्लेट रख लिये गये हैं। कुल आकाश का चित्र ७५ प्लेटों पर आ जाता है। इन प्लेटों से ज्योतिषियों ने कई बातें सीखी हैं। उदाहरण के लिए २२ फ़रवरी १९०१ को परसियस (Perseus) नक्षत्र-पुंज में एक नया तारा दिखलाई पड़ा। २३ फ़रवरी को यह ब्रह्महृदय (Capella कैपेला) नाम के तारे से भी चमकीला हो गया। पुराने फ़ोटो-ग्राफ़ों की जाँच से पता लगा कि यह नया तारा नहीं था, बल्कि यह एक पुराना ही तारा था जो पहले बहुत ही धीमे प्रकाश का था। धीमे से धीमे प्रकाश का तारा जो हमें बिना यन्त्र के दिखलाई पड़ता है उसके प्रकाश से इस तारे का प्रकाश ढाई सौ गुना कम था और इसलिए कोरी आँख से और छोटे दूरदर्शकों में भी नहीं दिखलाई पड़ता था। १९ फ़रवरी तक यह मंद ही रहा; फिर यह एक बार चमक उठा और पीछे, साल भर में, घटते घटते जैसा पहले था वैसा ही हो गया।



[नायगमवाला

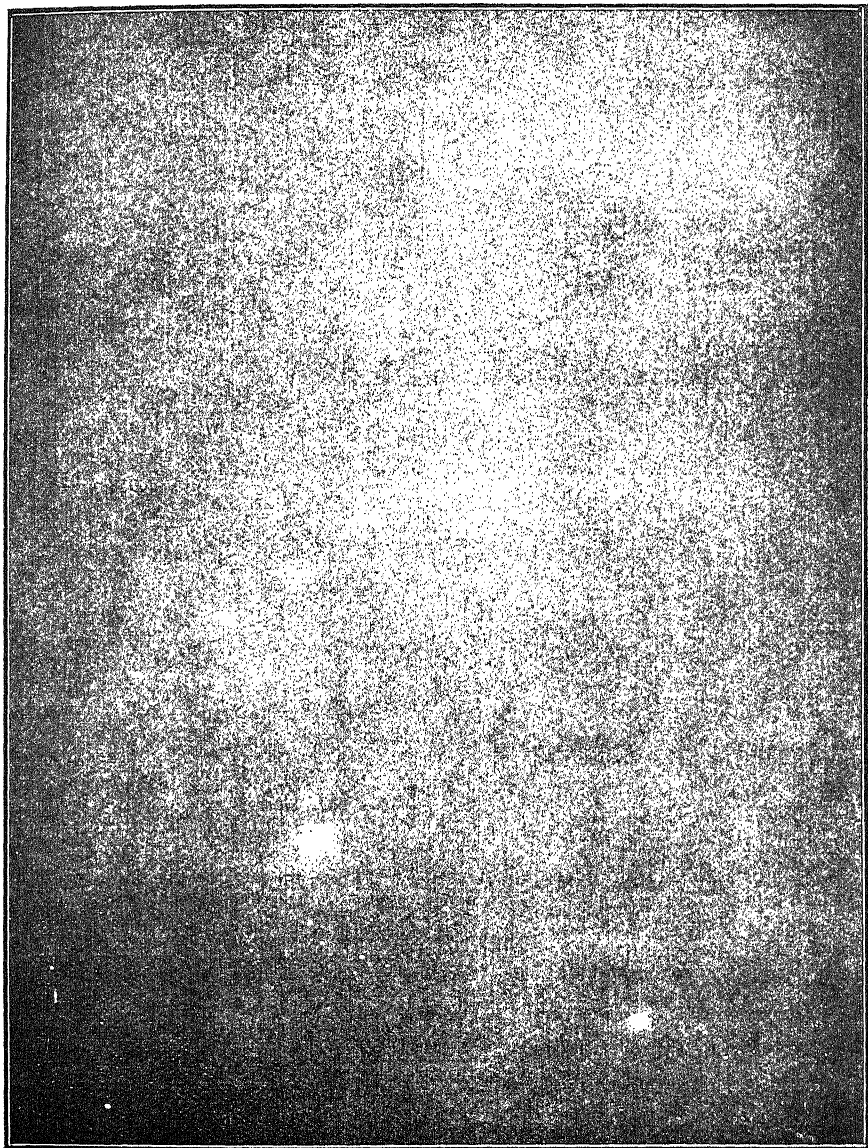
चित्र १३६—उसी सर्व-सूर्य-ग्रहण का फ़ोटोग्राफ़।

सूर्य-कलंकों का फ़ोटोग्राफ़ भी प्रतिदिन लेकर रक्खा जाता है, जिससे सूर्य के विषय में बहुत सी बातें जानी गई हैं। यद्यपि फ़ोटोग्राफ़ी में अनेक लाभ हैं, तो भी सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहों के पहाड़ इत्यादि की सूक्ष्म जाँच करने के लिए दूरदर्शक में आँख ही लगा कर देखने से अधिक ब्योरा दिखलाई पड़ता है। फ़ोटोग्राफ़ लेने में बहुत ब्योरे रह जाते हैं। इसके अतिरिक्त यामोत्तर चक्र, इत्यादि यन्त्रों में भी फ़ोटोग्राफ़ी का प्रयोग सुगमता से नहीं किया जा सकता और इसलिए ऐसे यन्त्रों में आँख से ही बेध किया जाता है। नक्षत्रों के फ़ोटोग्राफ़ लेने में एक असुविधा यह होती है कि प्लेट की वे त्रुटियाँ जो छोटे छोटे, काले काले, विन्दु सी दिखलाई पड़ती हैं, प्लेट पर नक्षत्र ही जान पड़ती हैं। इस असुविधा से छुटकारा पाने के लिए एक ही प्लेट पर तीन फ़ोटोग्राफ़ लेते हैं, जिससे नक्षत्रों के चित्र में सटे सटे तीन तीन विन्दु बन जाते



चित्र १३७—कोरी आँख से आकाश के इस भाग में केवल सात तारे दिखलाई पड़ते हैं।

फ़ोटोग्राफ़ में इसी भाग में सैकड़ों तारे दिखलाई पड़ते हैं। अगले चित्र से तुलना कीजिए।



[फ्रैङ्कलिन ऐडम्स

चित्र १३८—आकाश के एक भाग का फ़ोटोग्राफ़ (ओरायन का तारापुंज)।

जहाँ कोरी आँख से केवल ७ तारे दिखलाई पड़ते हैं, वहाँ इस फ़ोटो में सैकड़ों तारे दिखलाई पड़ते हैं।

हैं; प्लेट की त्रुटियाँ अकेली ही रह जाती हैं और इसलिए धोखा नहीं होता।

१३—दूरदर्शक कैमेरा—जैसे साधारण कैमेरे में एक ओर लेन्ज़ रहता है और दूसरी ओर प्लेट (चित्र १४४), ठीक उसी



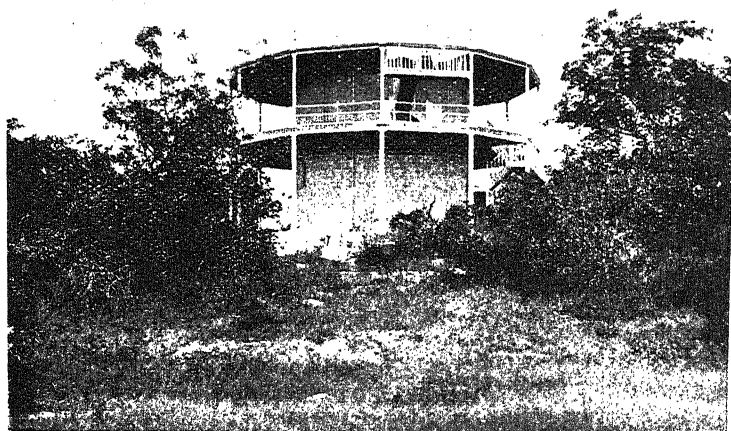
[निज़ामिया बेधशाला

चित्र १२९—**निज़ामिया बेधशाला, हैदराबाद।**

हर्ष की बात है कि जब संसार की सभी बड़ी बेधशालाओं ने मिलकर आकाश का बड़े पैमाने पर फ़ोटोग्राफ़ी की सहायता से एक नक़शा तैयार करने का कार्य हाथ में लिया तब भारतवर्ष की यह बेधशाला भी इस शुभ कार्य में सम्मिलित थी।

प्रकार जब चक्षु-ताल को हटा कर और प्लेट-घर लगा कर दूरदर्शक से फ़ोटो लिया जाता है, तब इसमें एक ओर लेन्ज़ और दूसरी ओर प्लेट रह जाता है। साधारणतः इसी रीति से फ़ोटोग्राफ़

लिया जाता है; परन्तु छोटे दूरदर्शकों में जब उपरोक्त रीति से काफ़ी बड़ा चित्र नहीं आता, तब प्लेट और प्रधान-ताल के बीच में एक दूसरा ताल लगा देते हैं जिससे चित्र बड़े आकार का दिखलाई पड़ता है। चित्र १४५ में एक बड़ा दूरदर्शक दिखलाया गया है और



[निज़ामिया बेधशाला

चित्र १४०—निज़ामिया बेधशाला का प्रधान दूरदर्शक गृह।

चित्र १४७ में एक छोटा। पहले में प्रधान-ताल और प्लेट के बीच में कोई दूसरा ताल नहीं लगा है; छोटे दूरदर्शक में प्लेट और प्रधान-ताल के बीच एक दूसरा ताल भी लगाना पड़ा है।

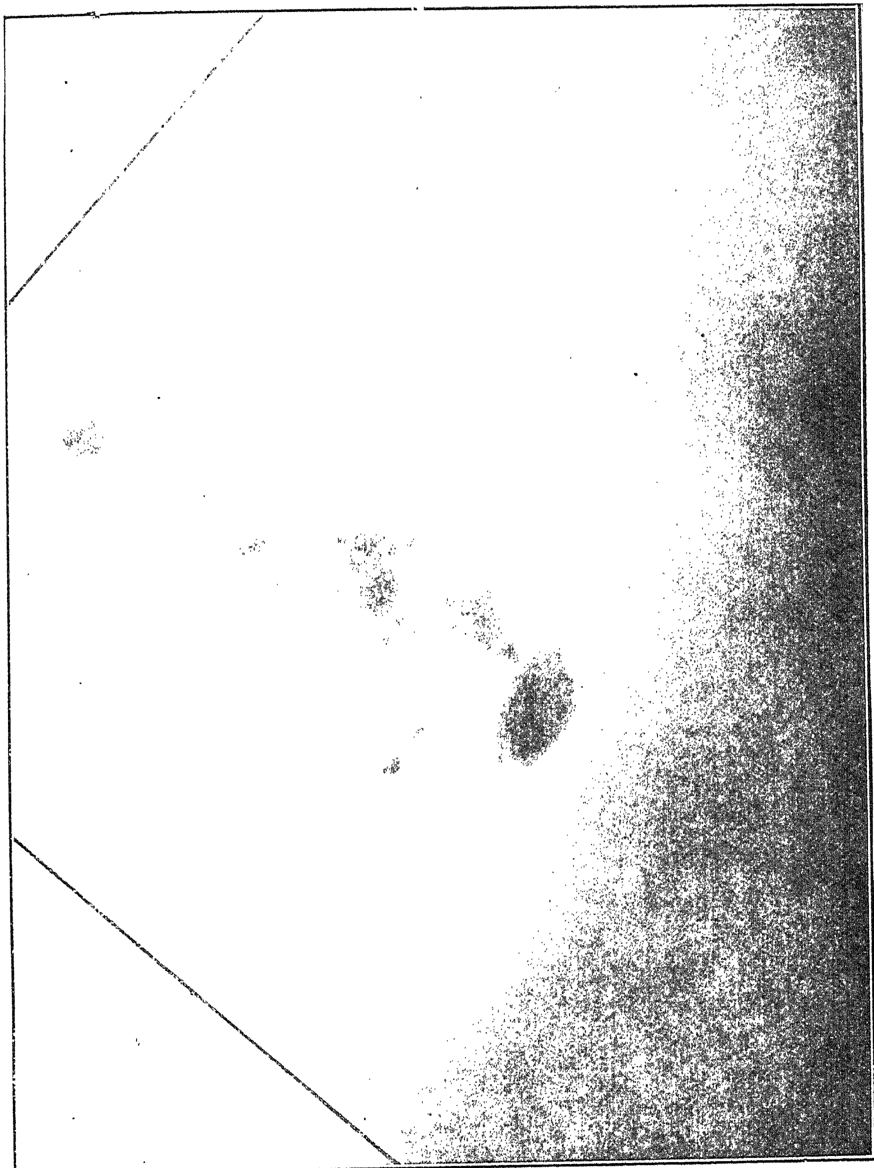
ऊपर बतलाये गये दोनों उपायों में से किसी से भी आकाश के अधिक भाग का एक साथ ही फ़ोटोग्राफ़ नहीं उतर सकता। इसके लिए छोटे फ़ोकल-लम्बान के लेन्ज़ से बने कैमेरे दूरदर्शक की बगल



[हारवार्ड कॉलेज बेधशाला

चित्र १४१—हारवार्ड कालेज बेधशाला ।

यहाँ पर सारे आकाश का फ़ोटोग्राफ़ कई बार खींच कर रख लिया गया है ।

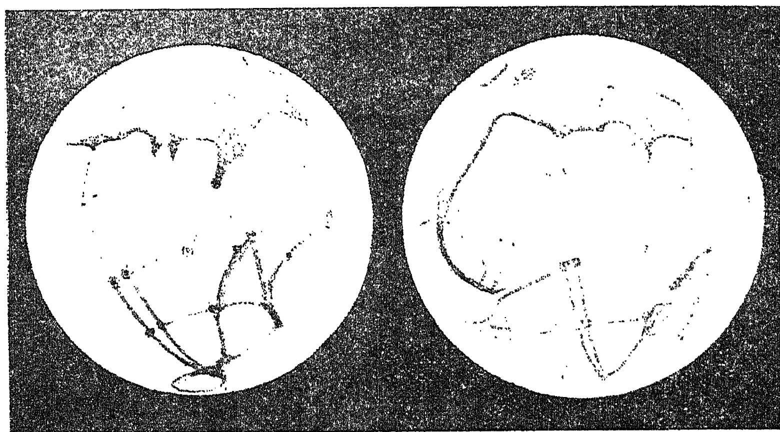


[ग्रिनिच-वेधशाला

चित्र १४२—**सूर्यकलङ्क** ।

इन कलंकों का फ़ोटोग्राफ़ प्रतिदिन लिया जाता है। ऐसे फ़ोटोग्राफ़ों से बहुत सी बातें सीखी गई हैं।

में बाँध दिये जाते हैं (चित्र १४८)। ये कैमेरे साधारण फ़ोटोग्राफ़ी-वाले कैमेरे का भाँति होते हैं, परन्तु उनसे बहुत अधिक मज़बूत बनाये जाते हैं, क्योंकि इनके लेन्ज़ बड़े भारी होते हैं और इनके ज़रा सा भी थरथराने से नाप सब अशुद्ध हो

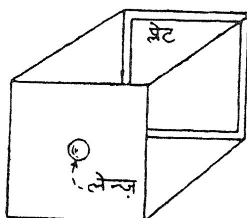


[शायापरेली

चित्र १४३ – मंगल, जैसा यह बड़े दूरदर्शक में दिखलाई पड़ता है। फ़ोटोग्राफ़ में रेखायें नहीं उतर पातीं (चित्र २७, पृष्ठ ३३, से तुलना कीजिए)।

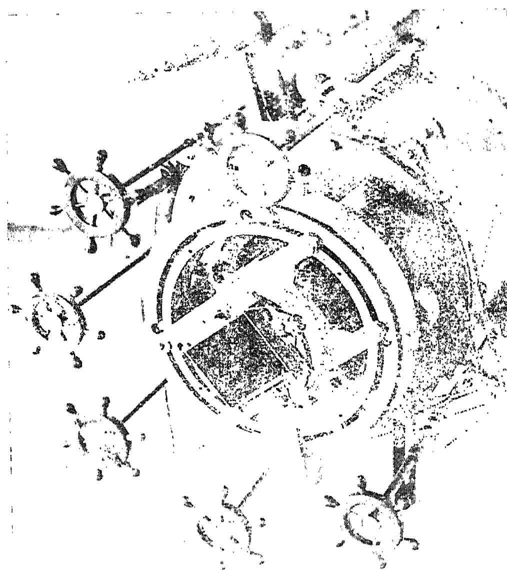
जायँगे। इस प्रकार के कैमेरे से फ्रैंकलिन-ऐडम्स (Franklin-Adams) ने सारे आकाश का फ़ोटोग्राफ़ २०६ प्लेटों पर लिया था। इनमें १६ वीं श्रेणी (magnitude) के ताराओं तक का फ़ोटो आ गया है, अर्थात् उन छोटे ताराओं का भी फ़ोटोग्राफ़ आ गया है जिनका प्रकाश इतना कम है कि यदि यह १०,००० गुना अधिक हो जाता तब वे अँधेरी रात में सिर्फ़ दिखला भर जाते। फ्रैंकलिन-ऐडम्स का कैमेरा चित्र १४९ में दिखलाया गया है, और इस यन्त्र से लिया गया एक चित्र भी यहाँ पर दिखलाया जाता है (चित्र १५०)।

१४—फ़ोटोग्राफ़ लेने की रीति— अब इस पर भी थोड़ा विचार कर लेना चाहिए कि नक्षत्रों के फ़ोटोग्राफ़ लिये कैसे जाते हैं। यह सभी जानते हैं कि कम प्रकाश में फ़ोटोग्राफ़ खिंचवाने के लिए स्थिर बैठना पड़ता है। नक्षत्र तो सदा चलते रहते हैं। इसलिए उनका फ़ोटोग्राफ़ लेने के लिए घड़ी से चलाये गये नाड़ी-मंडल दूरदर्शक का प्रयोग किया जाता है। परन्तु चाहे यन्त्र कैसा ही सच्चा क्यों न बनाया जाय, इसमें थोड़ी-बहुत सूक्ष्म त्रुटि रह ही जाती है। इसी लिए फ़ोटोग्राफ़ लेनेवाले दूरदर्शक के साथ एक दूसरा दूरदर्शक भी बँधा रहता है (चित्र १५२)। इस दूसरे दूरदर्शक के दृष्टि-क्षेत्र में स्वस्तिक तार लगे रहते हैं। ज्योतिषी इस दूसरे दूरदर्शक के तार को फ़ोटोग्राफ़



["फ़ोटोग्राफ़ी" से

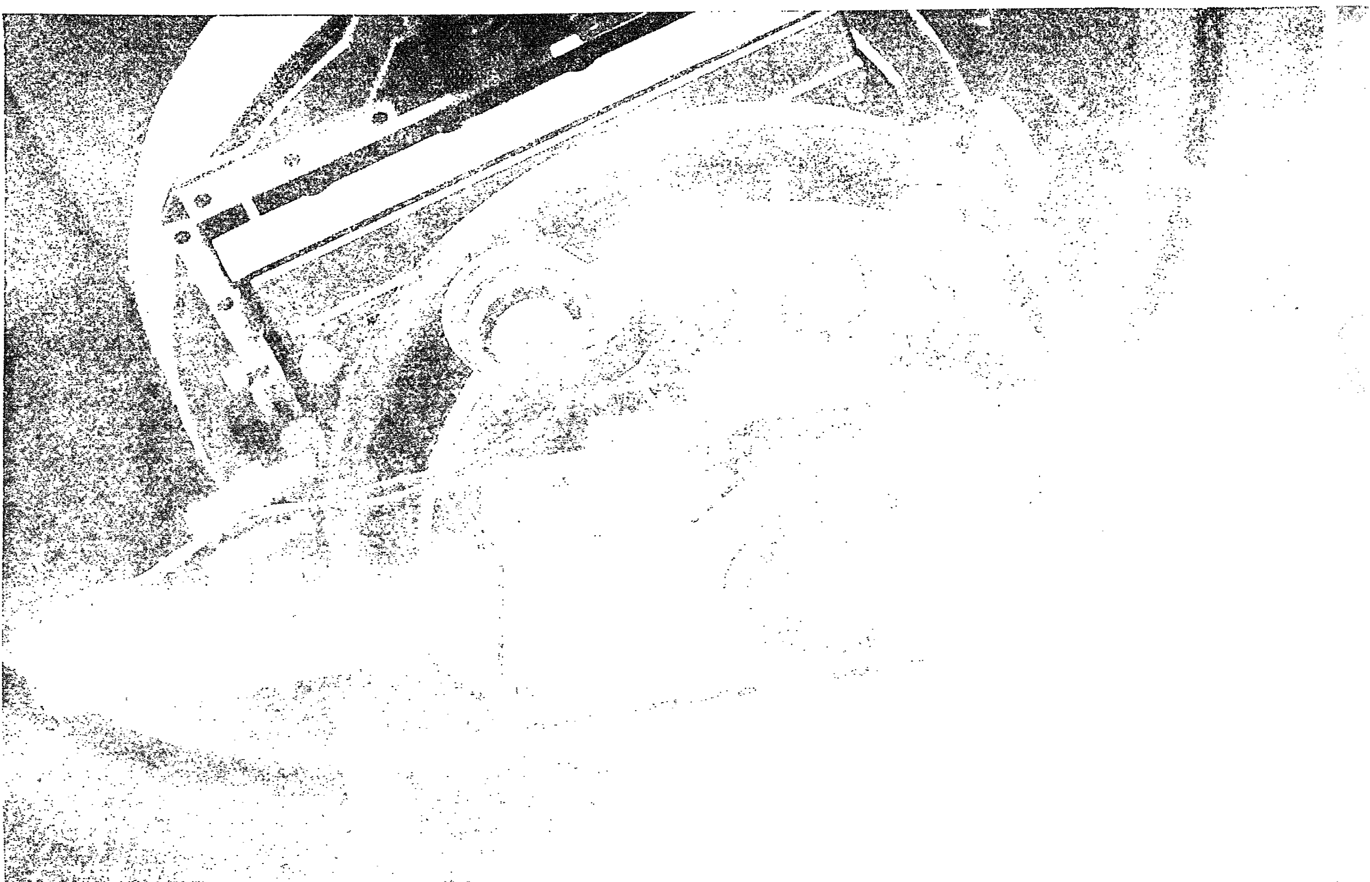
चित्र १४४—**सरल कैमेरा।**



[यरकिज़ वेधशाला

चित्र १४५—**बड़े दूरदर्शकों में प्रधान ताल के फ़ोकस में ही प्लेट को रख कर फ़ोटो लेते हैं।**

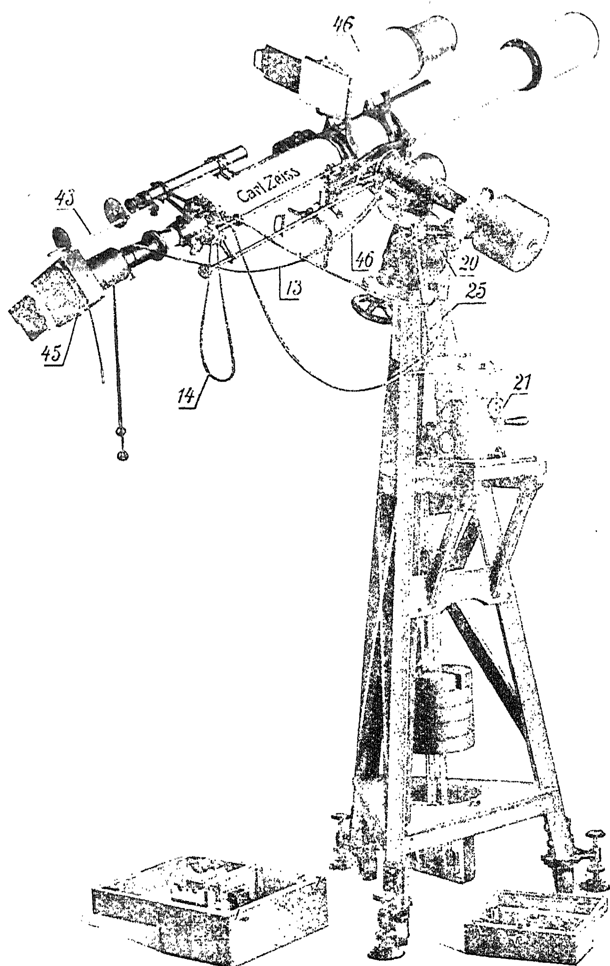
यह यरकिज़ के ४० इंचवाले दूरदर्शक का चक्षु-सिरा है।



[यरकिज़ वेधशाला

चित्र १४६—जब फ़ोटो नहीं लेना रहता तब चक्षु-सिरे पर चक्षु-ताल लगा देते हैं। यह यरकिज़ के ४० इंचवाले दूरदर्शक का चक्षु-सिरा है; पिछले चित्र से तुलना कीजिए ।

लेने के पहले किसी सितारे पर साध लेता है और तब प्रकाशदर्शन

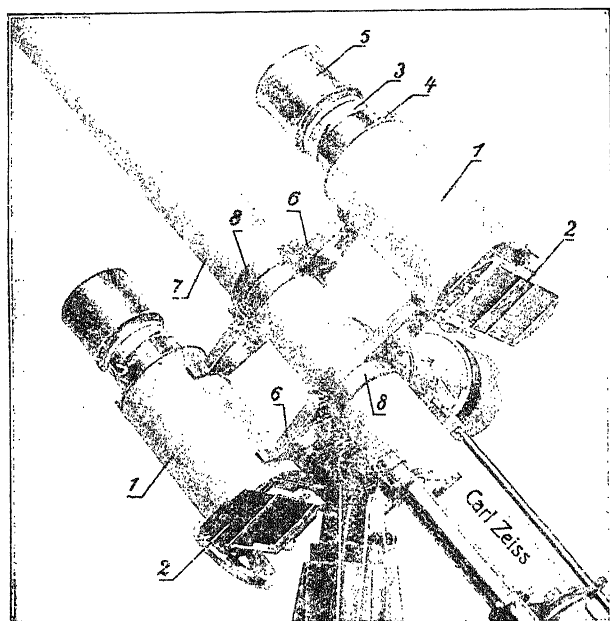


[जाइस कंपनी

चित्र १४७—छोटे दूरदर्शकों में प्रधान ताल और प्लेट के बीच में एक और ताल लगता है।

देना आरम्भ करता है। वह बराबर इस दूरबीन में देखा करता है

कि इसका तार ठीक उसी सितारे पर है या नहीं। दूरदर्शक को चलानेवाली घड़ी की चाल में ज़रा सा भी अन्तर पड़ना उसे पता लग जाता है और वह तुरन्त बिजली के बटन को दबा कर घड़ी को



[ज़ाइस कंपनी

चित्र १४८—नाक्षत्र कैमेरा।

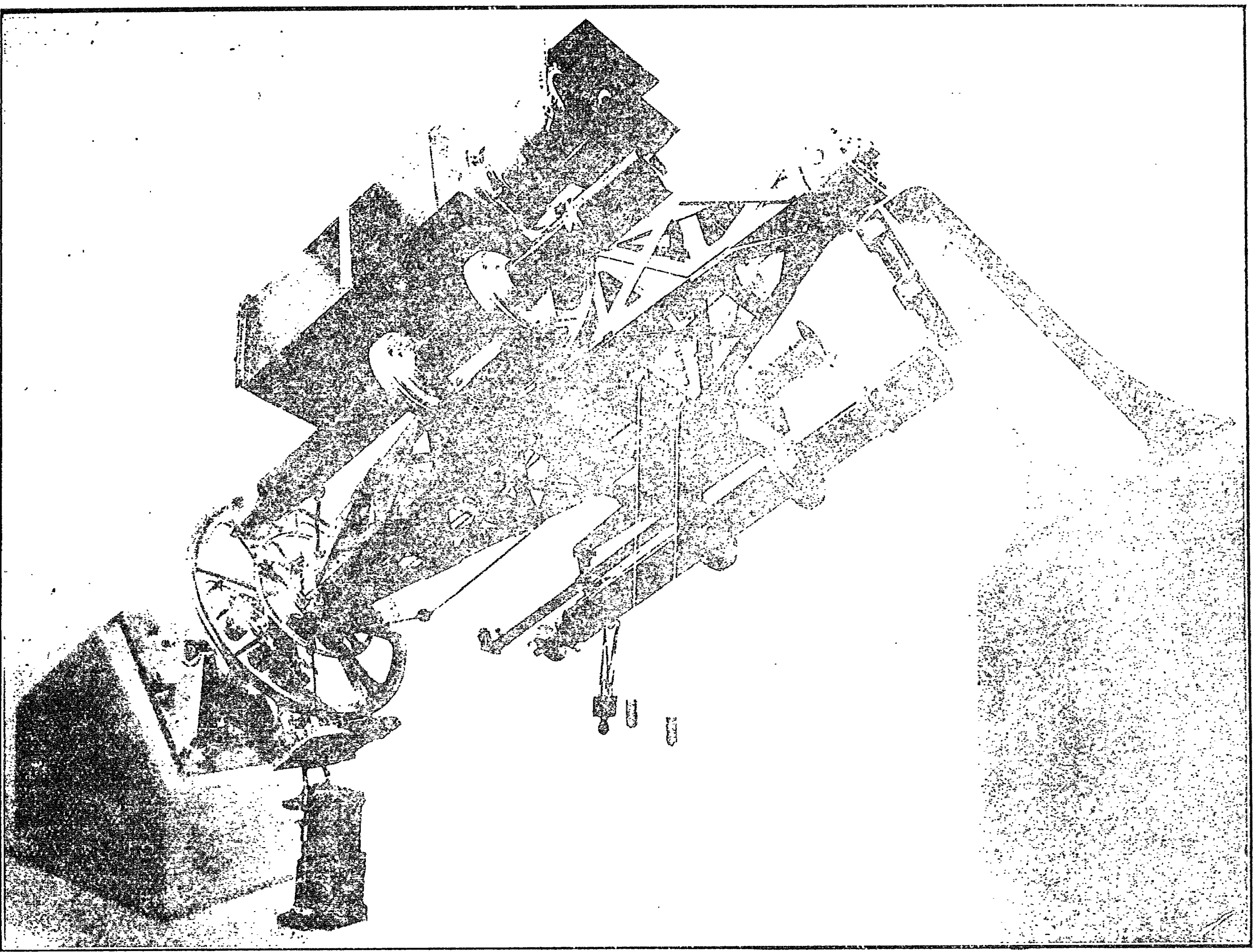
१—कैमेरा। २—प्लेट-घर। ३—फ़ोकस करने का चोंगा। ४—फ़ोकस स्थायी करने की घुण्डी। ५—ओस से रक्षा करने की टोपी। ६—कैमेरा को बाँधनेवाले क्लिप। ७—दूरदर्शक। ८—दूरदर्शक को बाँधनेवाली चूड़ी।

ठीक कर देता है। आप देखते हैं कि नक्षत्र इत्यादि का फ़ोटोग्राफ़ लेना वैसा ही खेल नहीं है जैसा हैन्ड कैमेरे से दनादन स्नैपशाट लेना। केतु या पुच्छल तारा का फ़ोटोग्राफ़ लेते समय दूरदर्शक

को केतु की गति के अनुसार चलाना पड़ता है; परन्तु केतु की गति नक्षत्रों की गति से भिन्न होती है। परिणाम यह होता है कि केतु का चित्र तो स्पष्ट उतरता है, परन्तु नक्षत्रों के चित्र विन्दु सरीखे नहीं उतर पाते। वे खिंच कर छोटी सी रेखा हो जाते हैं (चित्र १५३)।

१५—**प्रवर्धनशक्ति**—इस दूरदर्शक से वस्तुएँ कै गुनी बड़ी दिखलाई दे सकती हैं? यह प्रश्न ज्योतिषियों के सामने दर्शकों द्वारा अकसर उपस्थित किया जाता है। सच पूछिए तो इसका उत्तर दूरदर्शक के ऊपर नहीं, बल्कि हमारे वायु-मंडल (atmosphere) की दशा पर निर्भर है। जब आकाश पूर्णतया स्थिर और स्वच्छ रहता है तब १० इंच व्यास के दूरदर्शक से वस्तुएँ १,००० गुनी बड़ी देखी जा सकती हैं, इसके लिए केवल चक्षु-ताल को काफ़ी छोटे फ़ोकल-लम्बान का होना चाहिए। कम या अधिक व्यास-वाले दूरदर्शक में इसी हिसाब से (व्यास की १०० गुनी) प्रवर्धनशक्ति (magnifying power) लाई जा सकती है; परन्तु साधारणतः इनी-गिनी रात्रियों में ही इतनी अधिक प्रवर्धनशक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। अधिकांश रात्रियों में केवल इसकी आधा या चौथाई प्रवर्धनशक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। कारण यह है कि उन रात्रियों में जब आकाश पूर्णतया स्वच्छ या निश्चल नहीं रहता, प्रधान ताल से बनी हुई मूर्ति ख़ूब स्पष्ट और स्थिर नहीं होती। अधिक शक्ति के चक्षुताल लगाने से यह मूर्त्ति बड़ी तो अवश्य हो जाती है, परन्तु साथ ही इसकी त्रुटियाँ भी इतनी बढ़ जाती हैं कि लाभ होने के बदले हानि ही होती है।

हम जानते हैं कि दूरदर्शक का प्रधान ताल जितना ही बड़े फ़ोकल-लम्बान का होगा, मूर्त्ति उतनी ही बड़ी बनेगी। फिर, दो तालों

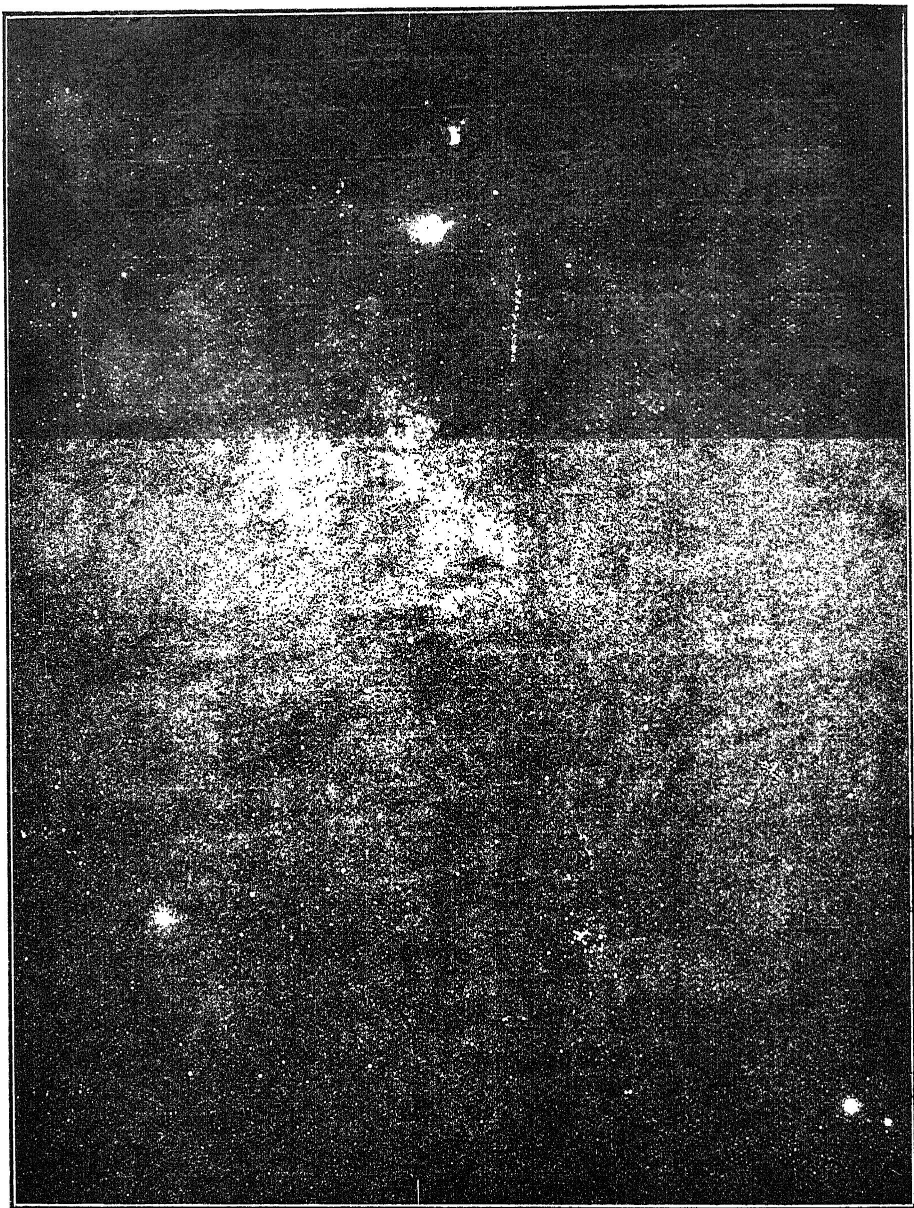


[मेसर्स कुक, ट्राउटन ऐंड सिम्स

चित्र १४६—फ्रैंकलिन ऐडम्स का नाक्षत्र कैमेरा।

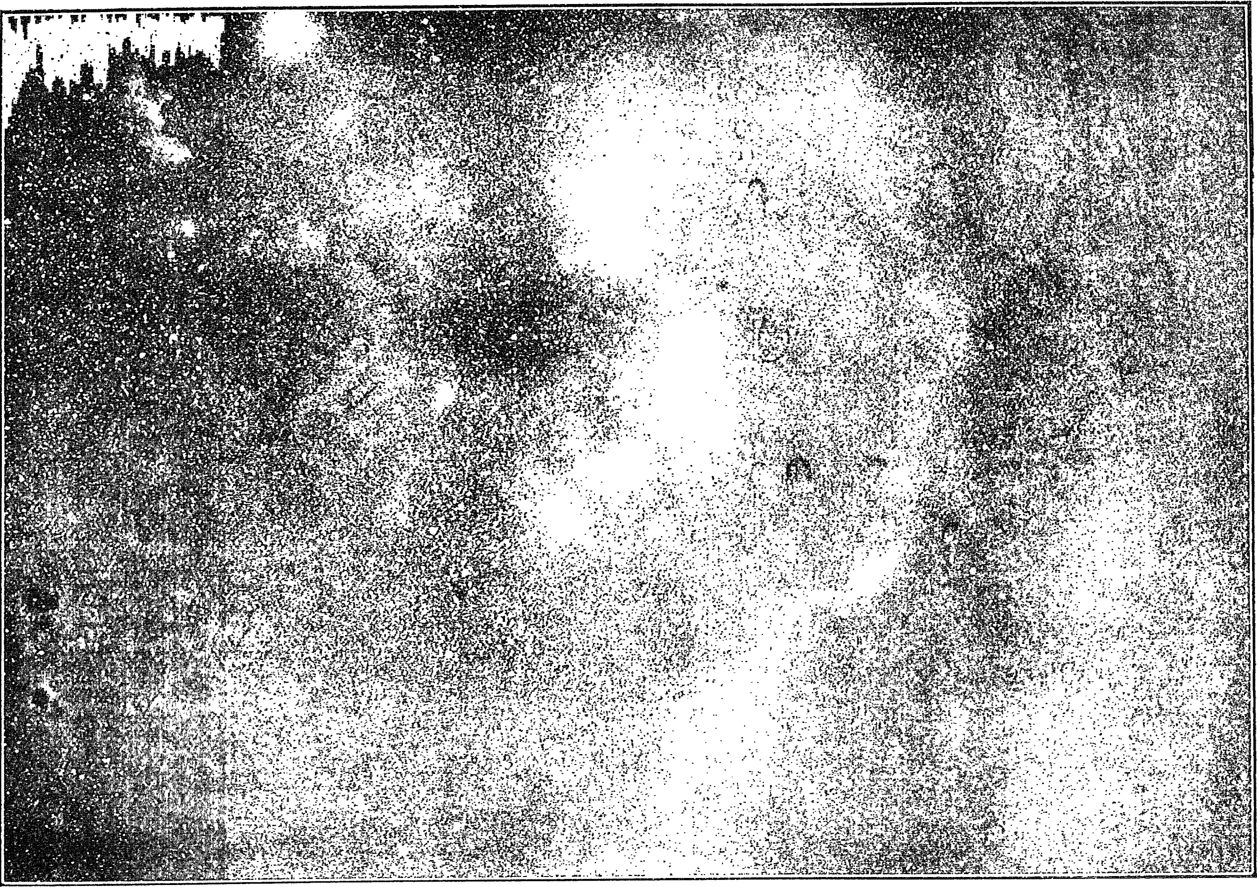
को लेकर हम देख सकते हैं कि सूक्ष्म-दर्शक की तरह प्रयोग करने पर फ़ोकल-लम्बान जितना ही छोटा होगा, वस्तुएँ उतनी ही बड़ी दिखलाई देंगी। इससे स्पष्ट है कि प्रधान ताल जितना ही अधिक फ़ोकल-लम्बान का होगा और साथ ही चक्षुताल जितना ही कम फ़ोकल-लम्बान का होगा, दूरदर्शक की प्रवर्धन-शक्ति उतनी ही अधिक होगी। वस्तुतः, प्रधान ताल के फ़ोकल-लम्बान को चक्षुताल के फ़ोकल-लम्बान से भाग देने पर प्रवर्धन-शक्ति प्राप्त होती है। इसलिए स्पष्ट है कि प्रवर्धन-शक्ति चक्षुताल के फ़ोकल-लम्बान को काफ़ी छोटा करने से भी इच्छानुसार मात्रा में बढ़ाई जा सकती है। परन्तु वास्तव में ऐसा किया नहीं जा सकता। ऐसा करने से प्रधान ताल से बनी मूर्ति की कुल त्रुटियाँ बहुत बढ़ जाती हैं, इतनी बढ़ जाती हैं कि अन्त में दूरदर्शक लगाने पर कोरी आँख से जो कुछ दिखलाई पड़ता है वह भी न दिखलाई पड़ेगा। इन त्रुटियों में से एक त्रुटि प्रधान ताल के व्यास पर निर्भर है। जितना ही व्यास बड़ा होगा यह त्रुटि उतनी ही कम होगी, क्योंकि भौतिक विज्ञान बतलाता है कि कोई भी ताल चाहे कितना ही अच्छा क्यों न बनाया जाय, इससे किसी विन्दु की मूर्त्ति सुई की नोक के समान तीक्ष्ण नहीं बनती। मूर्त्ति छोटे से वृत्त के समान बनती है; हाँ, ज्यों ज्यों ताल का व्यास बढ़ता जायगा त्यों त्यों मूर्त्ति तीक्ष्ण होती जायगी। यही कारण है कि अच्छे से अच्छे प्रधान ताल के लिए भी इसके व्यास के १०० गुने से अधिक वर्धन-शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

१६—**एक उदाहरण**—ये बातें एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायँगी। सभी जानते हैं कि छोटे फ़ोटोग्राफ़ों से एनलार्जमेंट (enlargement) बना कर बड़ा फ़ोटोग्राफ़ तैयार किया जा सकता है। हम चाहें तो वेस्ट पाकेट कैमेरे से पहले १ इंच का चित्र खींचें और इसे फिर बड़ा (एनलार्ज) करके ६ फ़ुट का बना लें



[फ्रैंकलिन ऐडम्स

चित्र १६०—फ्रैंकलिन ऐडम्स कैमेरे से लिया गया फ़ोटोग्राफ़।



[यरकिज़ वेधशाला

चित्र १२१—ओरायन तारापुंज की नीहारिका।

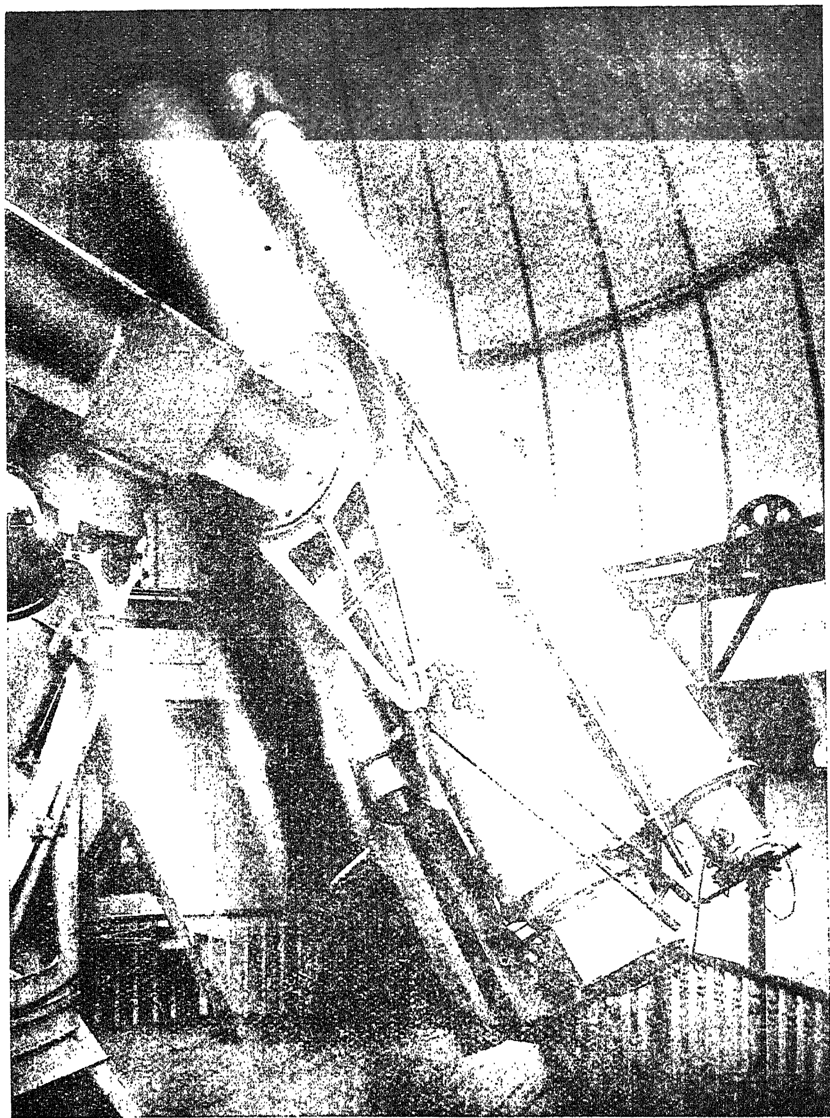
और चाहें तो हम बड़े प्लेट पर १ फुट का चित्र पहले खींच कर इसको उसी ६ फुट का बना सकते हैं। क्या १ इंच से बड़ा बना चित्र उतना ही तीक्ष्ण आवेगा जितना १ फुट से बना चित्र ? कदापि नहीं। यही हाल छोटे और बड़े दूरदर्शकों का भी है।

फिर, आप जानते हैं कि पुस्तकों में छपे फ़ोटोग्राफ़ छोटे छोटे सहस्रों विन्दु से बने रहते हैं। ऐसे चित्र को ४ गुना बड़ा करने से क्या फल होता है यह चित्र १५४ और १५५ के देखने से स्पष्ट हो जायगा। क्या बड़े होने से हमेशा ही अधिक बातें दिखलाई पड़ती हैं ?

अब हम समझ सकते हैं कि किसी दूरदर्शक के भले बुरे की पहचान केवल इसकी प्रवर्धन-शक्ति से न करनी चाहिए; यह इसके तालों की सचाई, स्वच्छता और इसके प्रधानताल के व्यास के ऊपर निर्भर है। यही बातें छोटे, हाथ के, दूरदर्शकों के लिए भी लागू हैं।

१७—**दृष्टि-क्षेत्र**—दृश्य का जितना भाग एक साथ ही दिखलाई पड़ता है वह दृष्टि-क्षेत्र कहलाता है। इसका मान अंश में बतलाया जाता है। चित्र १५६ में यदि दृश्य का भाग **क ख** ही दिखलाई पड़ता है तो कोण **क ग ख** दृष्टि-क्षेत्र के मान को बतलाता है। जैसे यह कोण यदि ५०° है तो कहेंगे कि दृष्टि-क्षेत्र ५०° है। छोटे दूरदर्शकों में कभी कभी दृश्य की दूरी और दृश्य के उस भाग का नाप जो दिखलाई देता है बतलाकर भी दृष्टि-क्षेत्र की नाप बतलाई जाती है, जैसे यदि **क ख** १४६ गज़ है और **ग** से **क ख** की दूरी १,००० गज़ है तो कहेंगे कि दृष्टि-क्षेत्र १००० गज़ पर १४६ गज़ है।

दूरदर्शकों में ज्यों ज्यों प्रवर्धन-शक्ति बढ़ाई जाती है, त्यों त्यों दृष्टि-क्षेत्र कम होता जाता है (चित्र १५७ और १५८) और

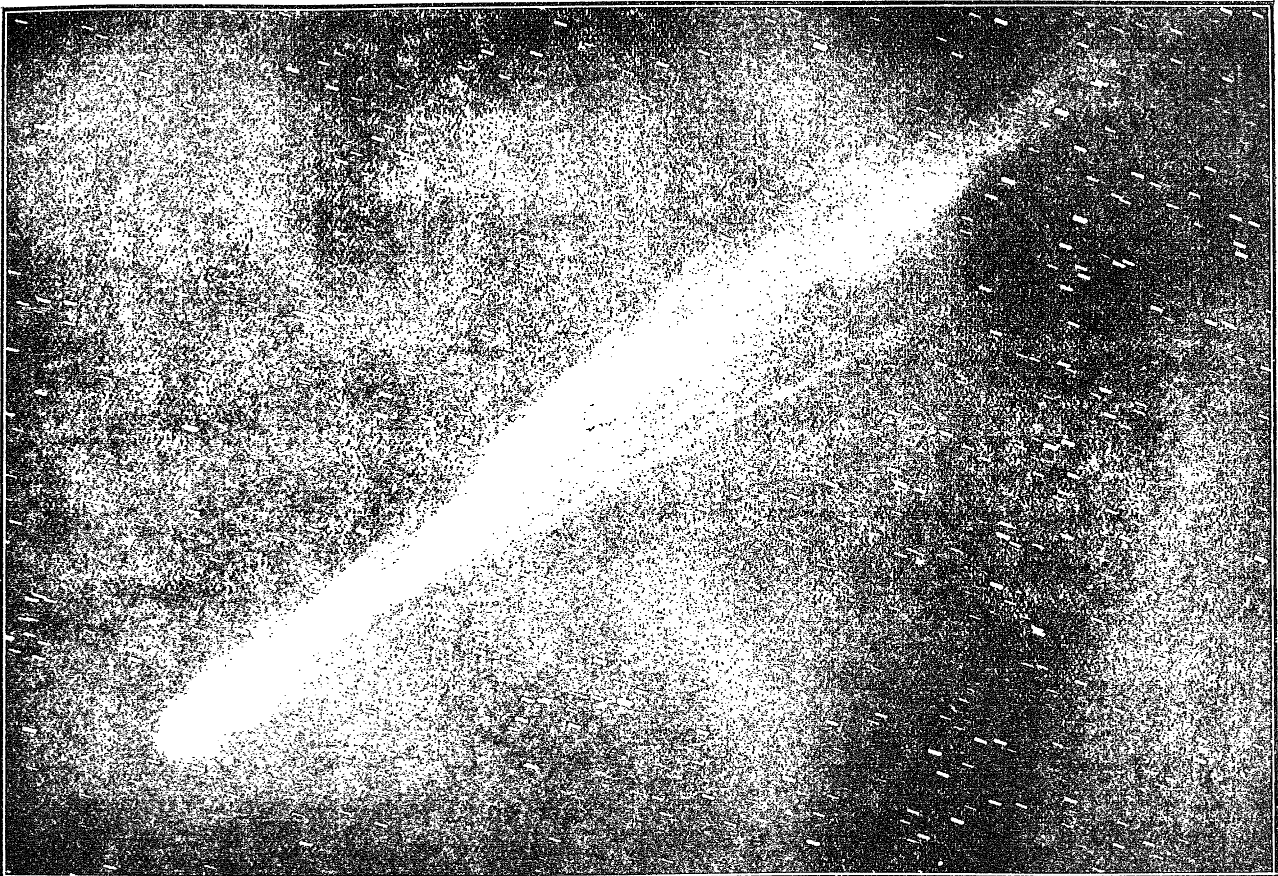


[ग्रिनिच बेधशाला

चित्र १९२—फ़ोटोग्राफ़ लेनेवाले दूरदर्शक के साथ एक दूसरा दूरदर्शक भी बँधा रहता है।

इसका प्रकाश भी कम होता जाता है। इसी कारण साधारण दूरदर्शकों में अधिक प्रवर्धन-शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाता। ज्योतिष-सम्बन्धी दूरदर्शकों में अधिक प्रवर्धन-शक्ति के साथ साथ दृष्टि-क्षेत्र बहुत ही छोटा हो जाता है। उदाहरण के लिए, चन्द्रमा का केवल एक अंश ही एक बार दूरदर्शक में दिखलाई पड़ेगा। इसकी पूरी जाँच करने के लिए पारी पारी इसके भिन्न भिन्न भाग पर दूरदर्शक लगाया जायगा। पुराने समय में इस बाधा के कारण कभी कभी बड़ी कठिनाई पड़ती थी। नीहारिकाओं का सच्चा आकार अङ्कित करने में अशुद्धियाँ हो जाती थीं। फ़ोटोग्राफ़ी के गुणों में से एक यह भी है कि फ़ोटोग्राफ़ी के कैमेरे का दृष्टि-क्षेत्र बहुत बड़ा होता है, और इसलिए इससे पूरी नीहारिका का चित्र एक साथ ही खिँच जाता है।

१८—प्रवर्धन-शक्ति कितनी है?—यह एक विचित्र बात है कि दूरदर्शक द्वारा किसी आकाशीय पिंड को देखने पर भिन्न भिन्न व्यक्तियों को इसका आकार एक सा नहीं प्रतीत होता है। छोटे दूरदर्शक से, जिसकी प्रवर्धन-शक्ति लगभग १० हो, चन्द्रमा को देखने पर कोई कहेगा कि पहले की अपेक्षा यह बहुत बड़ा दिखलाई पड़ता है, परन्तु अधिकांश लोग कहते हैं कि दूरदर्शक और कोरी आँख दोनों से चन्द्रमा एक सा बड़ा दिखलाई पड़ता है। परन्तु यह ठीक नहीं है। यदि किसी को यह देखना हो कि दूरदर्शक से चन्द्रमा कितना बड़ा दिखलाई पड़ रहा है तो उसे दोनों आँखों को खुला रखना चाहिए। एक से तो दूरदर्शक द्वारा देखना चाहिए, और दूसरे से बिना इसकी सहायता से। ज़रा सी चेष्टा करने पर आप देखेंगे कि आप को दो चन्द्रमा एक साथ ही दिखलाई पड़ते हैं; एक बहुत बड़ा, दूसरा छोटा। इन दोनों की नाप की तुलना करने से आप दूरदर्शक की प्रवर्धन-शक्ति का पता लगा सकते हैं।



[बारनार्ड

चित्र १९३—केतु का फ़ोटोग्राफ़ खींचने पर नक्षत्र की मूर्त्तियाँ लम्बी हो जाती हैं, कारण यह है कि केतु और नक्षत्रों की गतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं ।

वस्तुतः, छोटे दूरदर्शकों की प्रवर्धन-शक्ति नापने की सबसे सरल रीति इसी प्रकार की है। केवल, चन्द्रमा को देखने के बदले किसी ऐसी वस्तु को, जैसे रेखाओं से अङ्कित पटरी को, देखते हैं, जिससे कोरी आँख और दूरदर्शक से दिखलाई पड़नेवाली मूर्तियों की तुलना सुगमता से हो सके।



[लेखक के "फ़ोटोग्राफ़ी" से

चित्र १५४—ब्लाक से छपे फ़ोटोग्राफ़ में छोटे छोटे सहस्रों विन्दु बने रहते हैं।

आगामी चित्र से तुलना कीजिए।

१८—प्रदर्शक— ऊपर हम देख चुके हैं कि ज्योतिष-सम्बन्धी दूरदर्शकों का दृष्टि-क्षेत्र बहुत छोटा होता है। इसलिए इसको यदि किसी विशेष तारे पर साधना पड़े तो बड़ी कठिनाई पड़ती है। दूरदर्शक में से देखने पर वह तारा दिखलाई नहीं पड़ता। शायद छोटे छोटे अन्य तारे दिखलाई पड़ते हैं। पता ही नहीं चलता है कि दूरदर्शक को किधर घुमाने से वह तारा दिखलाई पड़ेगा। अटकल-पच्चू घुमाते रहने पर हो सकता है वह तारा घण्टों में दिखलाई पड़े। इसी लिए सभी ज्योतिष-सम्बन्धी दूरदर्शकों में एक प्रदर्शक (finder फ़ाइन्डर) लगा रहता है। यह छोटा सा, साधारण मेल का, दूरदर्शक होता है। इसमें विशेषता यह होती है कि

इसका दृष्टि-क्षेत्र काफ़ी बड़ा होता है और इसके फ़ोकस में दो स्वस्तिक तार (cross-wires, पृष्ठ ६८ देखिए) लगे रहते हैं। दूर-दर्शक पर प्रदर्शक स्थायी रूप से जड़ा रहता है। किसी विशेष

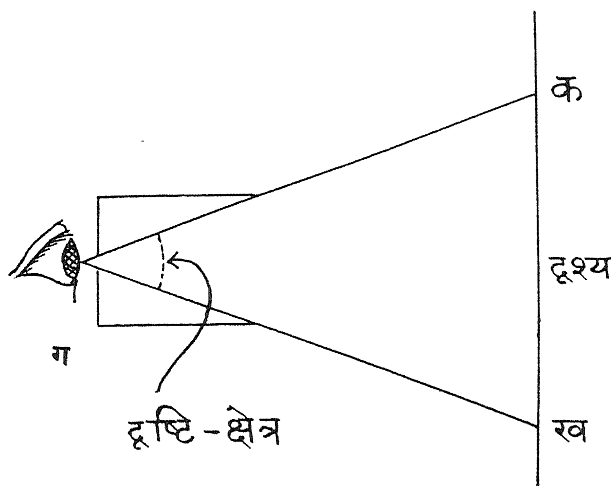


[लेखक के "फ़ोटोग्राफ़ी" से

चित्र १५५—ऊपर के चित्र का एक भाग ४ गुना बड़ा करके दिखलाया गया है।

तारे इत्यादि को देखने के लिए पहले दूरदर्शक को घुमा फिरा कर इसको तारे की ओर कर देते हैं। ऐसा करने पर वह तारा प्रदर्शक में दिखलाई पड़ने लगता है, क्योंकि

इसका दृष्टि-क्षेत्र बड़ा होता है और इसलिए दूरदर्शक की दिशा में थोड़ी बहुत त्रुटि रहने से फल केवल यही होता है कि तारा दृष्टि-क्षेत्र के ठीक बीच में देख पड़ने के बदले थोड़ा इधर या उधर दिखलाई पड़ता है। अब दूरदर्शक को सूक्ष्म रीति से घुमा कर तारे को प्रदर्शक के मध्य में (अर्थात्, इसमें लगे हुए दोनों

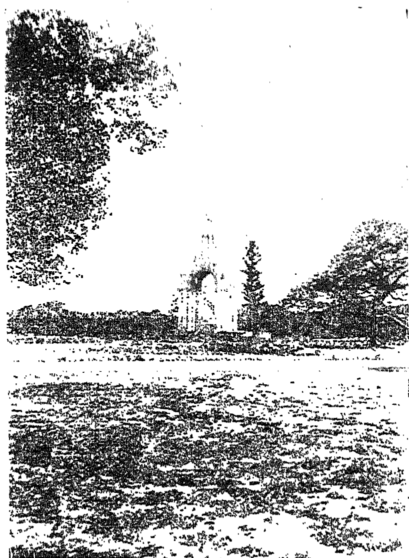


चित्र १२६—दृष्टि-क्षेत्र कोण क ग ख को कहते हैं।

तारों के सम्मिलन विन्दु पर) लाते हैं; तब तारा प्रधान दूरदर्शक में भी दिखलाई देने लगता है। चित्र १०७ में भाग नम्बर २२ प्रदर्शक है और नम्बर १५ प्रधान दूरदर्शक है।

कभी कभी दूरदर्शकों को ऐसे तारे या ग्रहों पर साधना पड़ता है जो इतने छोटे होते हैं कि वे आँख से दिखलाई नहीं पड़ते। ऐसी दशा में दूरदर्शक के साथ लगे हुए चक्रों की सहायता से, जिन पर अंश, कला, इत्यादि खुदे हुए होते हैं, दूरदर्शक की दिशा ठीक की जाती है।

२०—दिन में भी तारे देखे जा सकते हैं—दूरदर्शकों से दिन में भी तारे देखे जा सकते हैं। दिन में उनके कोरी आँख को न दिखलाई पड़ने का कारण यह है कि हमारा वायु-मंडल छोटे छोटे गर्द के कणों से भरा रहता है और इसलिए सूर्य के प्रकाश में यह चमकने लगता है। ताराओं को देखते समय चमकता हुआ यह वायु-मंडल भी दिखलाई पड़ता है। वायु-मंडल के प्रकाश की अपेक्षा तारे का प्रकाश बहुत कम होता है, और इसलिए हमको ये तारे दिखलाई नहीं पड़ते। रात को ये ही तारे हमें बहुत चमकीले जान पड़ते हैं। इसका कारण यह है कि हमारी आँखों की पुतलियाँ सदा एक नाप की नहीं रहतीं। कम प्रकाश में ये बहुत बड़ी हो जाती हैं। इस बात का समर्थन आप अपने मित्र की पुतलियों को घर के बाहर और भीतर बारी बारी से देख कर कर सकते हैं। अब देखना चाहिए कि दिन में दूरदर्शक से तारे क्यों दिखलाई पड़ने लगते हैं। दूरदर्शक से देखने पर तारागण विन्दु-समान दिखलाई पड़ते हैं। प्रवर्धन-शक्ति को बढ़ाने से उनका आकार नहीं बढ़ता और इसलिए उनकी चमक कम नहीं होती।



[लखक के "फ़ोटोग्राफ़ी" से

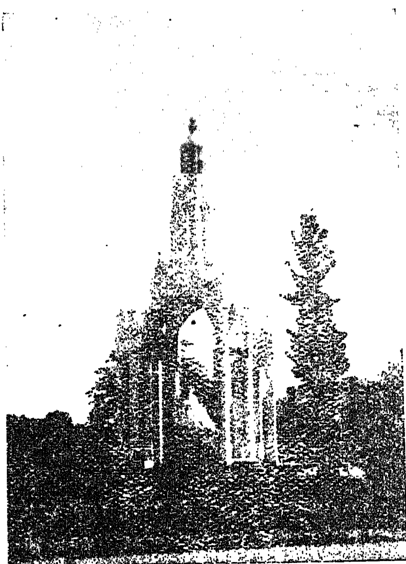
चित्र १२७—कोरी आँख से।
आगामी चित्र से तुलना कीजिए।

इसके विपरीत आकाश का वह भाग जो तारे के साथ दूरदर्शक में दिखलाई पड़ता है प्रवर्धन-शक्ति को बढ़ाने से बढ़ता ही चला जाता है और इसलिए उसकी चमक घटती ही चली जाती है, क्योंकि जितना प्रकाश कम प्रवर्धन-शक्ति के रहने पर थोड़े से स्थान में एकत्रित रहता था वही अधिक प्रवर्धन-शक्ति लगाने पर फैल कर बड़े स्थान को छेंकता है। तारे के आकार का न बढ़ना वैसा ही है जैसे शून्य को किसी संख्या से गुणा करना। शून्य को १०० से भी गुणा करने पर यह शून्य ही रह जायगा। परन्तु अन्य किसी संख्या को (जैसे २ को) १०० से गुणा करने पर यह पहले की अपेक्षा सौ गुनी बड़ी हो जायगी। अब हम समझ सकते हैं कि दूरदर्शक से दिन ही में तारे क्योंकर देखे जा सकते हैं। प्रवर्धन-शक्ति के बढ़ाने से दूरदर्शक में आकाश की चमक बहुत घट जाती है, परन्तु तारे की चमक नहीं घटती; यहाँ तक कि तारा स्पष्ट रूप से चमकता हुआ दिखलाई पड़ने लगता है।

यदि ख़ूब गहरे कुएँ में, या किसी कारख़ाने की ख़ूब लम्बी चिमनी (chimney) की पेंदी में कोई बैठे और संयोग से कोई ख़ूब चमकीला तारा या ग्रह ठीक सिर के ऊपर हो तो वह दिन ही में कोरी आँख से दिखलाई पड़ेगा, क्योंकि आड़ रहने के कारण आँख की पुतलियाँ बहुत छोटी नहीं हो जातीं।

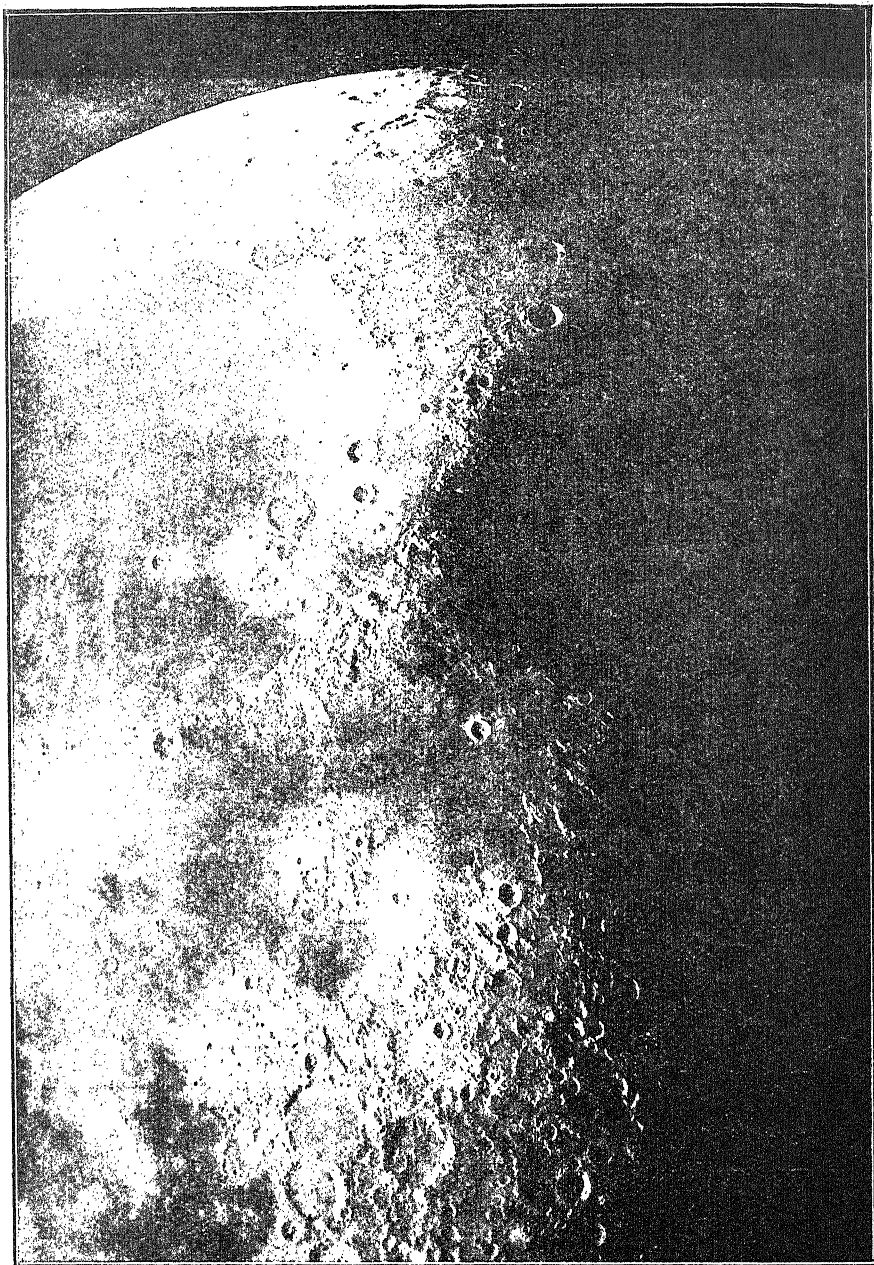
२१—ताल-युक्त और दर्पण-युक्त दूरदर्शकों की तुलना—दर्पण-युक्त दूरदर्शकों में बारबार क़लई करने के झंझट से छोटे दूरदर्शक इस प्रकार के बनाये नहीं जाते। दूसरी ओर बहुत बड़े ताल-युक्त दूरदर्शक बनाये नहीं जा सकते। बड़े से बड़ा ताल-युक्त दूरदर्शक ४० इंच व्यास का है। इससे बड़ा ताल बनाने में जो जो कठिनाइयाँ पड़ती हैं अभी तक उनसे छुटकारा पाने में वैज्ञानिक लोग सफल नहीं हुए हैं। तीस-चालीस इंच के

दूरदर्शकों में गौण रंग-दोष (पृष्ठ ८६) बहुत बढ़ जाता है परन्तु सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इतने बड़े शीशे काफ़ी स्वच्छ और दोषरहित अभी बन नहीं सके हैं। फिर उन्नतोदर ताल चारों ओर पतले और बीच में मोटे होते हैं। जब ये बहुत बड़े बनाये जाते हैं तब ये इतने भारी हो जाते हैं कि ये अपने ही बोझ से लचने लगते हैं और बीच में ये इतने मोटे हो जाते हैं कि प्रकाश का बहुत सा भाग इसी में मिट जाता है। दर्पण बनाने के लिए यदि शीशा स्वच्छ न भी हो, या इसके भीतर कुछ दोष भी रहे तो कुछ हानि नहीं होती। केवल एक ओर इसे शुद्ध होना चाहिए। फिर दर्पण को हम इच्छानुसार काफ़ी मोटा बना सकते हैं जिससे लचने का डर बिलकुल कम हो जाता है। इसलिए ४० इंच से बड़े दूरदर्शक सब दर्पण-युक्त हैं। अभी तक संसार भर में सबसे बड़ा दर्पण-युक्त दूरदर्शक १०० इंच व्यास का है, परन्तु अब एक २०० इंच व्यास का बननेवाला है। दर्पण-युक्त बड़े दूरदर्शकों में अभी तक सबसे भारी त्रुटि यह रही है कि हवा में



[लेखक के "फ़ोटोग्राफ़ी" से

चित्र १५८—वही दृश्य, × ३ (अर्थात्, तीन गुना बड़ा दिखलाने वाले) दूरदर्शक से।
पिछले चित्र से तुलना कीजिए।

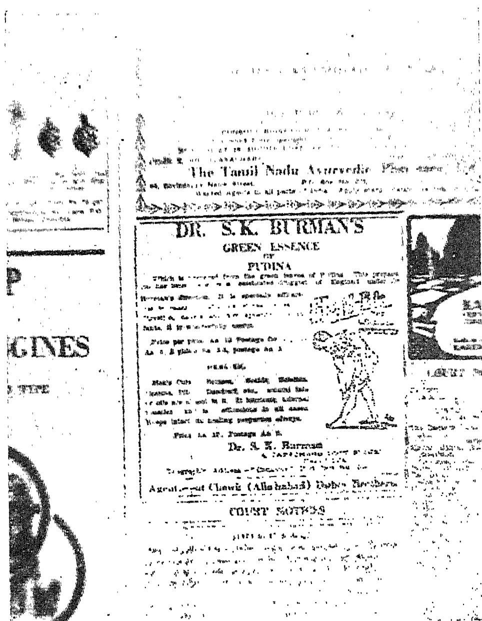


[हेल

चित्र १२१—रंग-दोष के न रहने के कारण दर्पण-युक्त दूरदर्शकों से फ़ोटोग्राफ़ बड़ा सुन्दर उतरता है।

चन्द्रमा का यह फ़ोटोग्राफ़ संसार के सबसे बड़े, १०० इंच व्यासवाले, दर्पण-युक्त दूरदर्शक से खींचा गया था।

सरदी गरमी के थोड़ा सा भी बढ़ने से दर्पण का आकार क्षण भर के लिए बिगड़ जाता है, क्योंकि इसके सब भाग एक साथ ही गरम या ठंढे नहीं हो सकते और जैसा सभी जानते हैं कम या अधिक गरम होने से शीशा कम या अधिक बढ़ जाता है। फल यह होता है कि किसी तारे से आई हुई प्रकाश की रश्मियाँ सब साथ ही एकत्रित नहीं हो सकतीं और इसलिए दूरदर्शक से सब चीज़ें भद्दी दिखलाई पड़ने लगती हैं। इसी लिए २०० इंच-वाला दर्पण स्फटिक (quartz) का बनाया जायगा। स्फटिक में सरदी गरमी का प्रभाव बहुत कम पड़ता है।



The Tamil Nadu Ayurvedic

DR. S.K. BURMAN'S

GREEN ESSENCE

PUDINA

Dr. S. K. Burman

[लेखक के "फ़ोटोग्राफ़ी" से

चित्र १६०—लेन्ज़ में त्रुटि रहने का परिणाम।

लेन्ज़ में त्रुटि रहने से और दर्पणयुक्त सभी दूरदर्शकों से, चित्र बीच में तीक्ष्ण, परन्तु चारों ओर भद्दा उतरता है।

दर्पण-युक्त दूरदर्शक उतनी ही शक्ति के ताल-युक्त दूरदर्शक से सस्ता पड़ता है, क्योंकि इसके लिए शीशे को घिस कर एक ही पृष्ठ बनाना और पॉलिश (polish) करनी पड़ती है और तालवाले

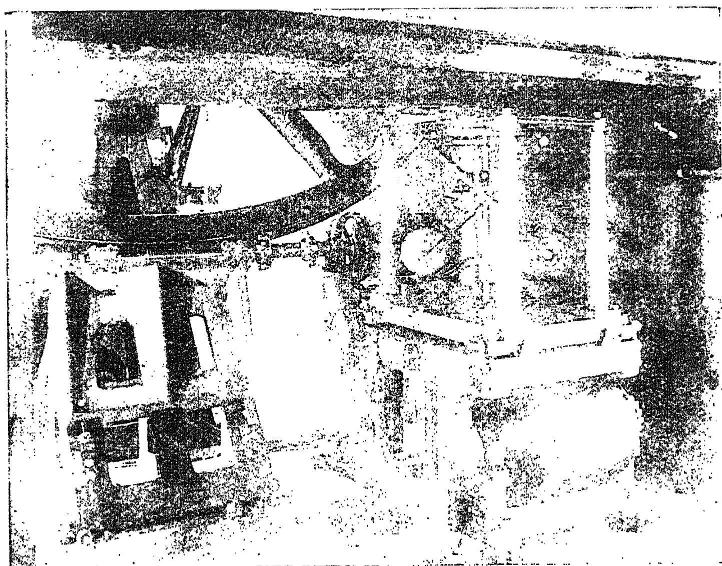
में चार पृष्ठों को ठीक करना पड़ता है। एक ही व्यास के दूरदर्शकों में दर्पणवाला कम लम्बाई का बनाया जा सकता है। लगभग तिगुने का अन्तर पड़ता है, इसलिए इसके प्रयोग में सुभीता होता है। दर्पण-युक्त दूरदर्शक में रंग-दोष का लेश-मात्र भी नहीं रहता; इसलिए इससे फ़ोटोग्राफ़ी और रश्मि-विश्लेषण के काम में विशेष लाभ होता है, परन्तु साथ ही इसमें यह भी दोष है कि इससे यदि बहुत बड़ा फ़ोटोग्राफ़ लिया जाय तो मध्यस्थ भाग ही तीक्ष्ण होंगे (चित्र १६०)।

परन्तु ताल-युक्त दूरदर्शक सदा कार्य्य के लिए तैयार रहते हैं और उन पर गर्मी सर्दी का प्रभाव बहुत कम पड़ता है। इसी लिए पचीस तीस इंच तक के दूरदर्शक साधारणतः ताल-युक्त ही बनाये जाते हैं।

अध्याय ४

दूरदर्शक का इतिहास और कुछ प्रसिद्ध दूरदर्शक

१—संसार के सबसे बड़े दूरदर्शक—जैसा ऊपर बतलाया गया है, संसार का सबसे बड़ा दूरदर्शक माउन्ट



[माउन्ट विलसन वेधशाला

चित्र १६१—१०० इंचवाले दूरदर्शक को चलानेवाली घड़ी।

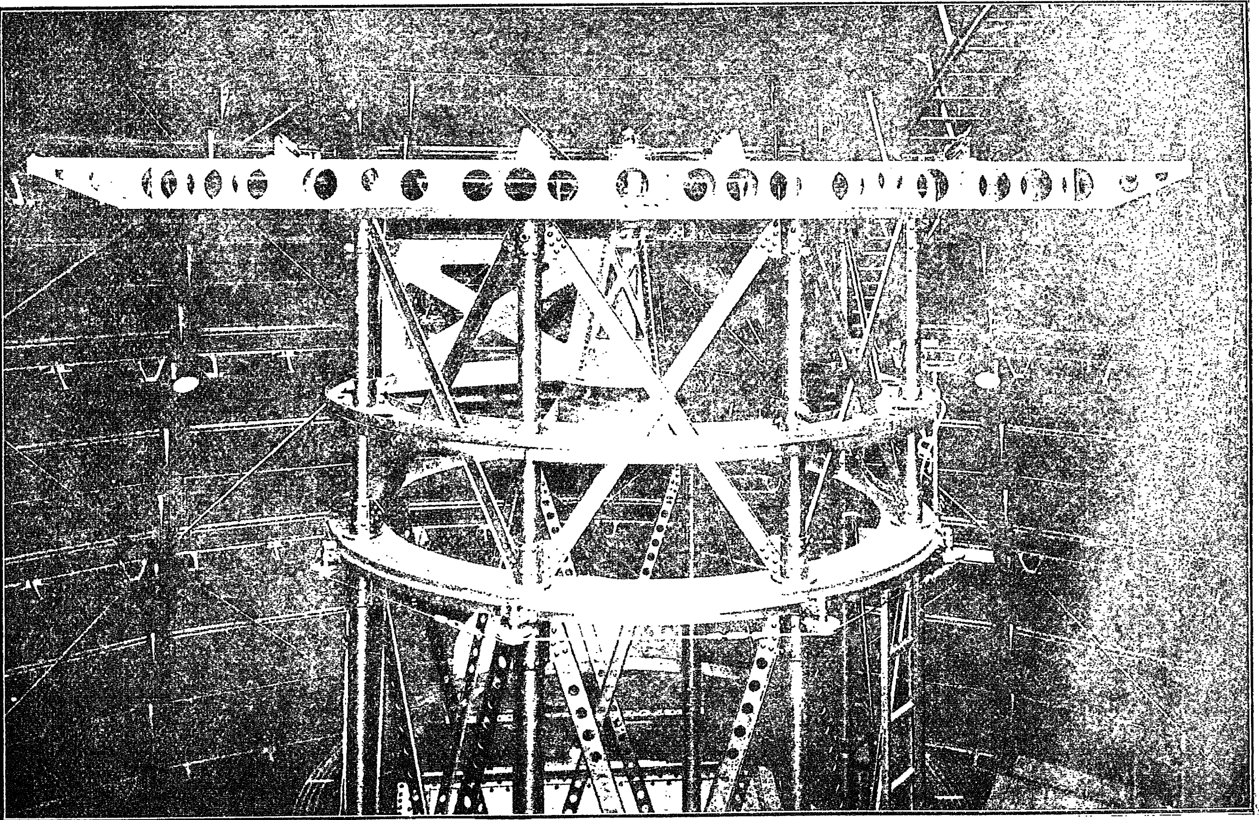
यह दूरदर्शक इतनी सचाई से आरोपित किया गया है कि इसको यह घड़ी अच्छी तरह चला लेती है। दूरदर्शक में नाम-मात्र भी हचक नहीं है।

विलसन पर है। इसका व्यास १०० इंच और लम्बाई ४२ फ़ुट

है। यह दर्पण-युक्त है। इसके बाद कैनाडा (Canada) के विक्टोरिया (Victoria) शहर के ७० इंच व्यासवाले दर्पण-युक्त दूरदर्शक का नम्बर आता है। तीसरा दर्पण-युक्त दूरदर्शक, ६० इंच व्यास का माउन्ट विलसन पर ही है।

ताल-युक्त दूरदर्शकों में सबसे बड़ा, ४० इंच व्यास का, अमरीका के शिकागो शहर के पास यरकिज़ (Yerkes) बेधशाला में है। इससे छोटा ३६ इंच का तालयुक्त दूरदर्शक लिक (Lick) बेधशाला में है।

इन बड़े दूरदर्शकों को नाड़ीमंडल यंत्र की तरह आरोपित करना कठिन काम है, तिस पर भी यह इस ख़ूबी से किया गया है कि इच्छानुसार ये एक अंश (degree) के १/१०,००० वें भाग तक घुमाये जा सकते हैं। १०० इंचवाला दूरदर्शक इतना मज़बूत है कि यदि इसके सिरे पर एक आदमी चढ़ जाय तो भी यह ज़रा भी नहीं लचता। इस दूरदर्शक के चल भाग की तौल लगभग १०० टन (या २,७०० मन) है। केवल दर्पण ही ४ टन का है और जिस शीशे से यह बनाया गया था वह १०१ इंच व्यास का, १३ इंच मोटा और ४½ टन वज़न का था। इस दूरदर्शक को, इसकी छत को, और ज्योतिषी की चौकी इत्यादि को इच्छानुसार घुमाने-फिराने के लिए कई बिजली के मोटर हैं, जिनमें कुल मिला कर ५० अश्वबल (horse-power हॉर्सपॉवर) है। इस दूरदर्शक में नलिका (tube) खुली ही है। जिन छड़ों से यह बनी है उसकी मज़बूती उसी प्रकार की गई है जिस प्रकार पुलों की की जाती है। चित्र १७ में मनुष्यों के नन्हे आकारों पर ध्यान देने से दूरदर्शक के विकट आकार का पता चलता है। ज्योतिषी जिस चौकी (platform) पर खड़ा होता है वह मोटर से इच्छानुसार ऊँचा-नीचा किया जा सकता है।

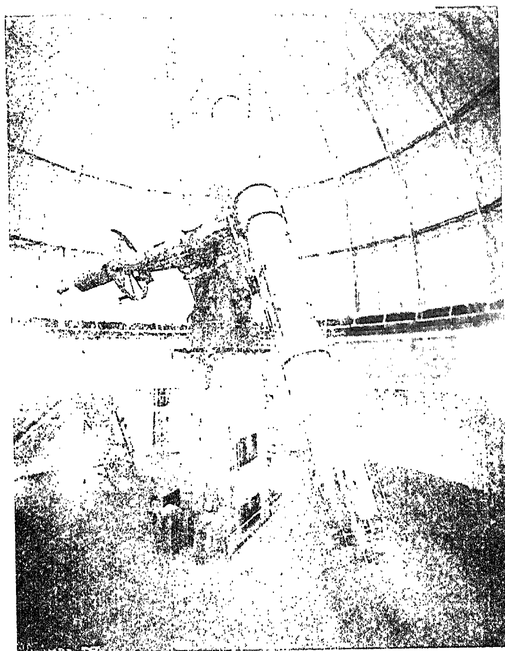


[माउन्ट विलसन वेधशाला

चित्र १६२—१०० इंचवाले दूरदर्शक का चक्षु-सिरा।

देखिए, इस दूरदर्शक के छड़ों की मज़बूती लोहे के पुलों की तरह की गई है।

इसको गोलाकार छत (dome) १०० .फ़ुट व्यास की है। इस दूरदर्शक के निर्माण में, मय आरोपण, मकान इत्यादि के ५, ४०,००० डॉलर (लगभग १६ लाख रुपया) ख़र्च हुआ था ।



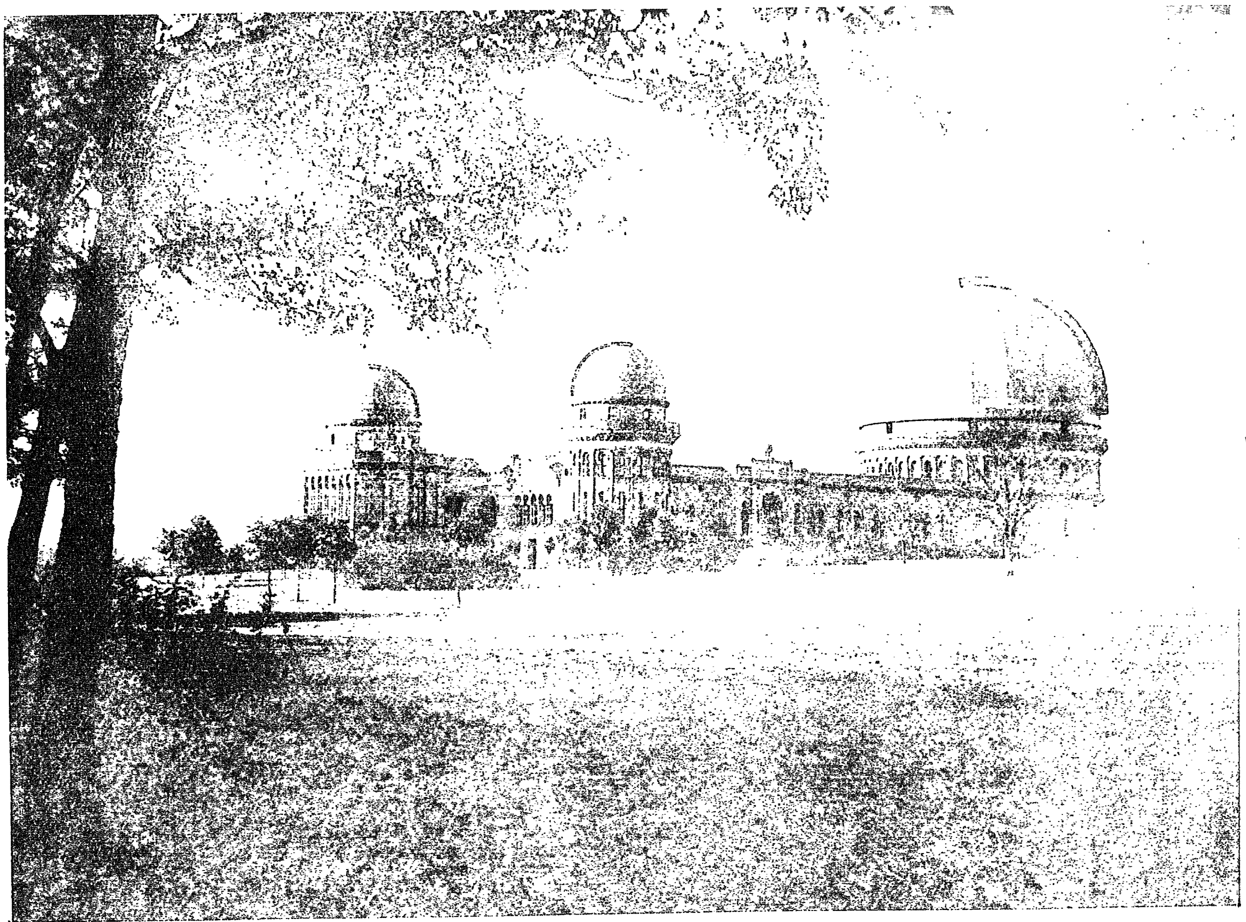
[यरकिज़ बेधशाला

चित्र १६३—यरकिज़ का ४० इंचवाला दूरदर्शक ।

चित्र ५२ से तुलना करने पर पता चलेगा कि सुविधानुसार बेधशाला का कुल फ़र्श ही ऊपर नीचे किया जा सकता है।

यरकिज़ बेधशाला का ४० इंचवाला दूरदर्शक चित्र १६३ में दिखलाया गया है। यह ६० .फ़ुट लम्बा है। इसके फ़र्श में विशेषता यह है कि यह समूचा का समूचा बिजली के द्वारा ऊपर नीचे उठाया और गिराया जा सकता है (चित्र ५२ और १६३ की तुलना कीजिए)। शिकागो शहर के एक करोड़पति, मिस्टर यरकिज़ (Mr. Yerkes) ने इस दूरदर्शक के बनाने के लिए रुपया दिया था।

२—झक्की करोड़पति—लिक-बेधशाला में, जैसा पहले लिखा गया है, ३६ इंच व्यास का दूरदर्शक है। जब यह बना

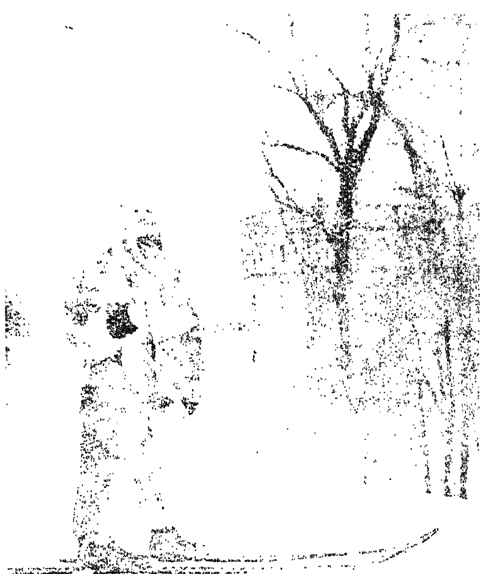


[यरकिज़ बेधशाला

चित्र १६४—यरकिज़ बेधशाला।

यहाँ संसार का सबसे बड़ा ताल-युक्त दूरदर्शक (४० इंच व्यास का) है।

था, तब यह संसार का सबसे बड़ा दूरदर्शक था। लिक-बेधशाला जेम्स लिक (James Lick) नाम के एक झक्की करोड़पति के दान से बना है। यह सैनफ़्रान्सिस्को का रहनेवाला था और यदि ज्योतिषी डेविड-सन (Davidson) से इसको भेंट न हुई होती तो न जाने यह अपने रुपये को किस प्रकार ख़र्च कर डालता। लिक के बारे में कई एक दन्त-कथायें प्रचलित हैं; प्रोफ़ेसर टरनर* की पुस्तक से हम यहाँ एक कहानी लिखते हैं। कई एक व्यक्ति लिक के पास नौकरी पाने के लिए प्रार्थना-पत्र भेजा करते थे और वह विचित्र ढङ्ग से यह निश्चय करता था कि उनको नौकरी दें या नहीं। वह इस बात को अत्यन्त आवश्यक समझता था कि लोग उसकी आज्ञा का तुरन्त पालन करें, चाहे वह कितना हो बे-सिर-पैर की हो। इसलिए यदि कोई उसके पास काम के



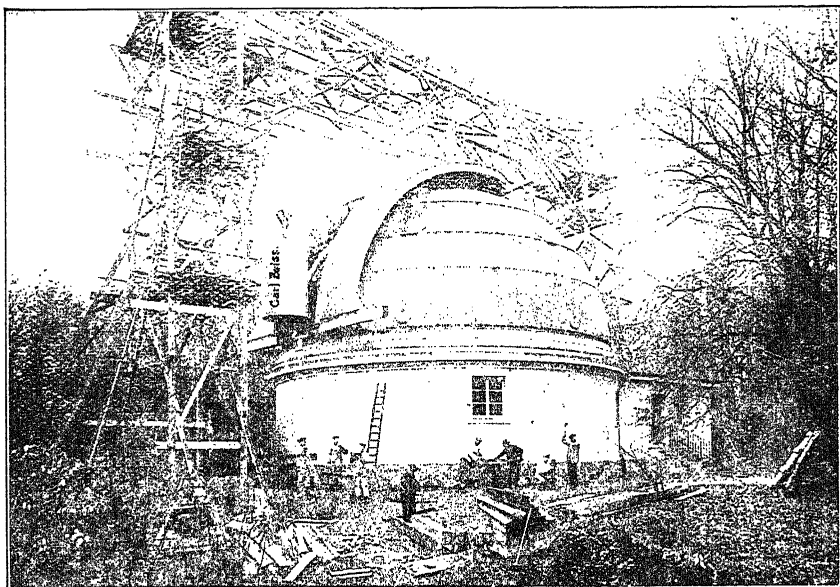
[यरकिज़ बेधशाला

चित्र १६९—जाड़े में यरकिज़ बेधशाला;

बर्फ़ के कारण बेधशाला तक पहुँचने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता है।

* H.H. Turner: A Voyage in Space (1915), p. 108.

लिए आता तो वह कभी-कभी उनको पौधे रोपने को कह देता, परन्तु आज्ञा दे देता कि जड़ ऊपर रक्खा जाय और पत्तियाँ नीचे गाड़ दी जायँ। जो तुरन्त इस काम को करने लगता, उसे तो वह नौकरी दे देता; परन्तु जो कोई उसकी आज्ञा के पालन करने

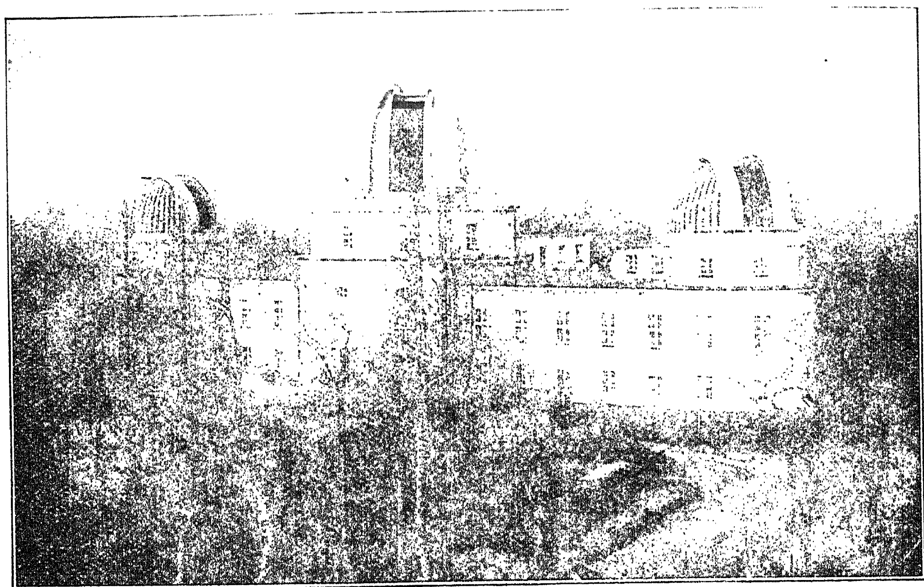


[ज़ाइस कंपनी

चित्र १६६—बरलिन के पास बाबेल्सबर्ग की बेधशाला बन रही है।

में आपत्ति करता, या प्रश्न करने लगता, उसको वह भगा देता। ऐसा झक्की आदमी अपने धन के सद्व्यय के विषय पर भी विचित्र विचार रखता था; परन्तु विशेष रूप से वह यही चाहता था कि उसका नाम अमर हो जाय। डेविडसन ने उसे अच्छी तरह समझा

दिया कि ख़ूब बड़ा दूरदर्शक बनवा देने से बढ़कर उसके लिए और कोई स्मारक नहीं हो सकता। उसने यह बात मान ली और उसकी हड्डियाँ हैमिल्टन शिखर (Mount Hamilton) पर बड़े दूरदर्शक के नीचे गड़ी हैं। मिस्टर लिक ने अपने दान के साथ

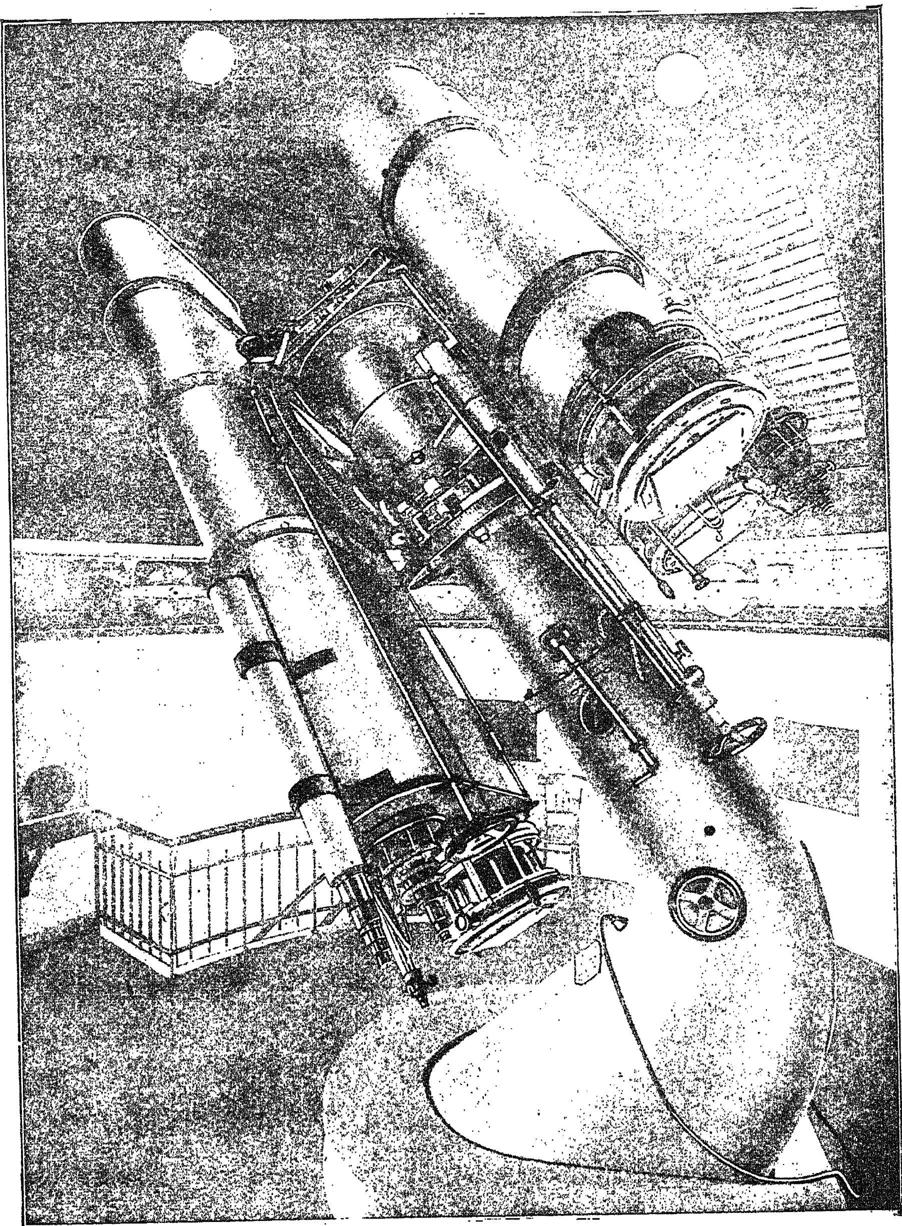


[जाइस कंपनी

चित्र १६७—बरलिन-बाबेल्सबर्ग की वेधशाला।

यह शर्त लगा दी थी कि जनता को भी प्रति सप्ताह एक रात्रि दूरदर्शक में से देखने को मिले; और प्रति शनिश्चर बहुत से दर्शक उस पहाड़ पर जाकर इस बड़े यंत्र से आकाश के सौन्दर्य को देखने का आनन्द लेते हैं।

हाल ही में ओह्यियो वेज़लियन विश्वविद्यालय (Ohio Weslyan University) के लिए ६१ इंच का दर्पण-युक्त दूरदर्शक



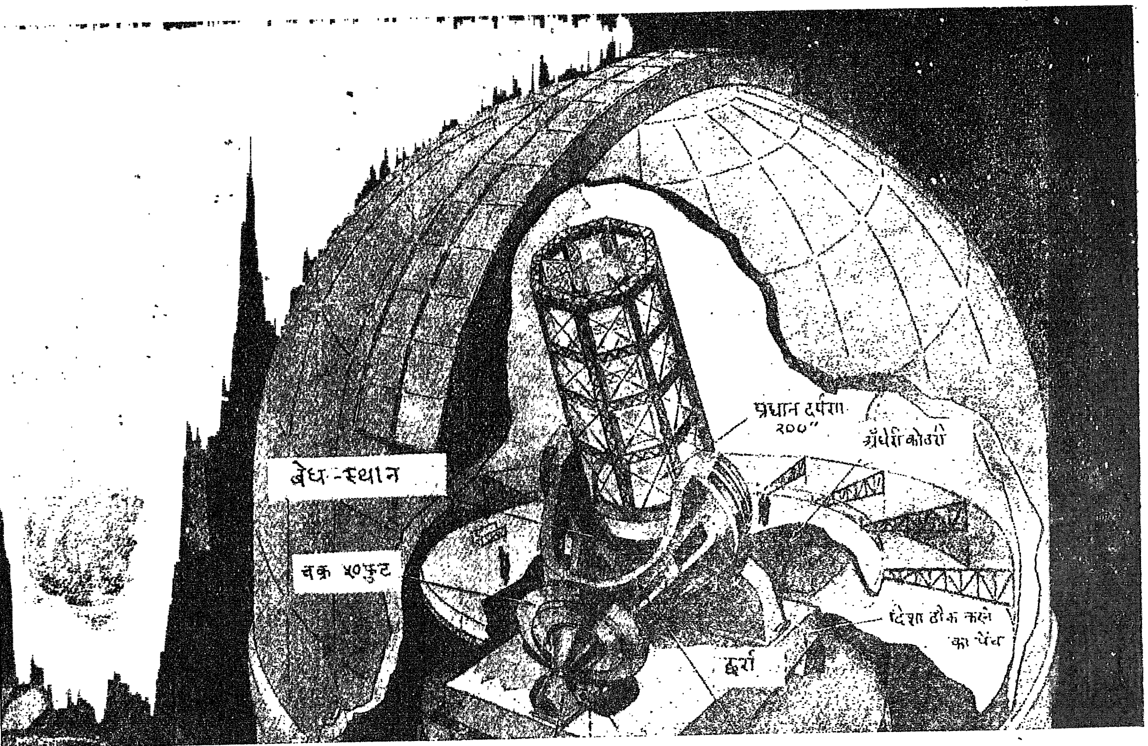
[जाइस कंपनी

चित्र १६८—बरलिन-बाबेल्सबर्ग का $१३\frac{१}{२}$ इंचवाला नाक्षत्र कैमेरा।

तीन कैमेरे, एक दूरदर्शक और एक सहायक दूरदर्शक एक ही आरोपण पर लगे हैं।

बना है, यह प्रोफ़ेसर और मिसेज़ परकिन्स के दान का फल है; इसलिए बेधशाला का नाम परकिन्स बेधशाला रक्खा जायगा। भारतवर्ष में सबसे बड़ा दूरदर्शक केवल १५ इंच व्यास का है। यह हैदराबाद की निज़ामिया बेधशाला में है।

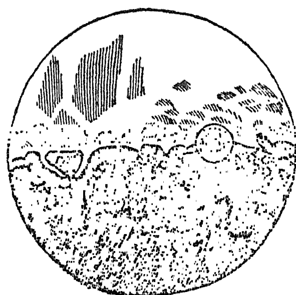
३—**एक भीमकाय दूरदर्शक**—चित्र १६९ में वह २०० इंच व्यास का दूरदर्शक दिखलाया गया है जिसका निर्माण अमेरिका में हो रहा है। कुछ ही वर्षों में कैलिफ़ोर्निया के किसी पहाड़ पर इसके लिए बेधलाशा बनेगी। अभी इस बात की जाँच हो रही है कि किस स्थान में वायु ख़ूब स्वच्छ और स्थिर रहता है, इसलिए अभी इस बात का निश्चय नहीं हुआ कि यह किस पहाड़ पर रक्खा जाय। यह दूरदर्शक कैलिफ़ोर्निया इन्स्टिट्यूट ऑफ़ टेकनॉलोजी (California Institute of Technology) के लिए बन रहा है, इसलिए यह यथासम्भव इसके पास ही (अर्थात् सौ डेढ़ सौ मील के भीतर) रक्खा जायगा। स्फटिक (quartz) गला कर दर्पण ढाला जायगा, क्योंकि जैसा हम ऊपर बतला आये हैं, शीशे पर तापक्रम के घटने बढ़ने का इतना अधिक प्रभाव पड़ता है कि बड़े दूरदर्शकों से कभी-कभी काम लेना कठिन हो जाता है। स्फटिक (बिल्लौर) में शीशे की अपेक्षा रुपये में केवल एक आना प्रभाव पड़ता है। इससे लोग आशा करते हैं कि इस दूरदर्शक से सूर्य भी देखा जा सकेगा। अभी तक किसी भी दर्पण-युक्त दूरदर्शक से सूर्य अच्छी तरह नहीं देखा जा सकता है क्योंकि सूर्य की रश्मियों से दर्पण का ताप-क्रम शीघ्र बढ़ने लगता है। स्फटिक में गरमी में ठीक रहने का गुण तो है; परन्तु स्फटिक का गलाना बड़ा कठिन है; शीशा ३०० डिगरी पर ही गल जाता है, पर स्फटिक १००० डिगरी पर गलता है। बिजली की भट्ठी में ही यह गल सकेगा। ढालने के बाद साँचा-समेत यह कई महीनों में बहुत



[पापुलर सायन्स से

चित्र १६६—२०० इंच व्यास के दूरदर्शक का नक़शा।
अभी तक यह बना नहीं है।

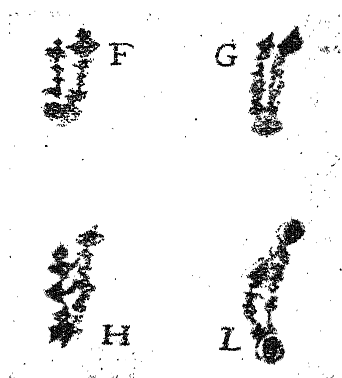
धीरे धीरे ठंढा किया .जायगा, जिसमें यह चटख़ न जाय (छोटे से ६१ इंचवाले परकिन्स बेधशाला का शीशा ८ महीने तक ठंढा होता रहा!)। आशा की जाती है कि १९३२ तक यह तैयार हो जायगा। इसके दर्पण का भार लगभग ३० टन होगा, या यों समझिए कि ३० बड़े मोटरकारों से भी यह भारी होगा! किफ़ायत के ख़्याल से दूरदर्शक केवल लगभग ६० फ़ुट लम्बा रक्खा जायगा तिस पर भी इसके सामने १०० इंचवाला दूरदर्शक बच्चा सा जान पड़ेगा। ६० ही फ़ुट लम्बा बनाने से यह फ़ोटोग्राफ़ी के लिए अधिक तेज़ हो जायगा—जो फ़ोटोग्राफ़ी जानते हैं वे देखेंगे कि इसका अपरचर (aperture) फ़/३·५ (f/3·5) होगा—परन्तु इससे उतना बड़ा फ़ोटो न आ सकेगा जितना इसे अधिक लम्बा बनाने से आता; साथ ही, इसका दृष्टि-क्षेत्र भी बहुत विस्तृत न होगा।



चित्र १७०—दूरदर्शक के आविष्कारक गैलीलियो ने अपने प्रथम दूरदर्शक में चन्द्रमा को देख कर इस चित्र को खींचा था।

४—इतिहास—पहले-पहल दूरदर्शक का आविष्कार किसने किया, इसका ठीक पता अब नहीं चलता, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि गैलीलियो (Galileo) ही ने पहले-पहल दूरदर्शक से ज्योतिष-सम्बन्धी कई एक आविष्कार किये। नई नई बातों के प्रचार करने का और इसलिए बाइबल में लिखे ईश्वर-वचन को सत्य न मानने का अभियोग इस पर उस समय के पोप (Pope) ने लगाया था। उसको तो, जैसा पहले लिखा जा चुका है, जीते ही जला देने का दंड मिल जाता, परन्तु मित्रों की सलाह से बूढ़े

गैलीलियो ने अपने वैज्ञानिक आविष्कारों को पोप के सामने झूठा मान लिया और इस प्रकार अपनी जान बचाई। इस घटना के बहुत पहले, १६०७ में, गैलीलियो को ख़बर लगी थी कि एक ऐसा यंत्र भी बनाया गया है जिससे दूर की वस्तु स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। पूछ-ताछ से विशेष पता न लगने पर उसने स्वयं ही दूरदर्शक बनाने की रीति का पता लगाया। उसके प्रथम दूरदर्शक से केवल ३ गुना बड़ा दिखलाई पड़ता था, परन्तु पीछे उसने ऐसे दूरदर्शक भी बनाये जिससे ३० गुना बड़ा दिखलाई पड़ता था। इस यंत्र से उसने चन्द्रमा के पहाड़, सूर्य के कलंक, बृहस्पति के उपग्रह, शनि के वलय (rings), इत्यादि का पता चलाया। गैलीलियो के, और उसके बाद के बने, दूरदर्शक रंग-दोष-रहित नहीं थे। इसी से लोग दिन पर दिन लम्बे दूरदर्शक बनाने लगे, जिसमें यह त्रुटि यथासम्भव कम हो जाय।



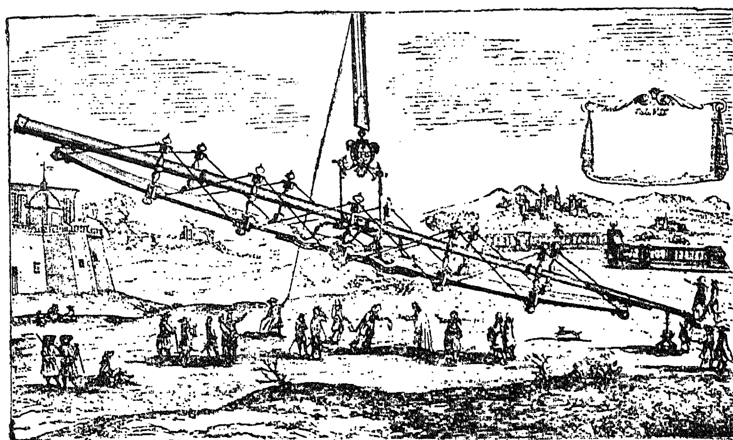
[बेरी की हिस्ट्री ऑफ़ एस्ट्रॉनोमी से

चित्र १७१—गैलीलियो ने अपने नये दूरदर्शक से देख कर सूर्य-कलङ्कों का यह चित्र खींचा था।

हॉयगेन्स ने—वही जो चक्षु-ताल का आविष्कारक था—सन् १६८० के लगभग रॉयल सोसायटी को एक दूरदर्शक भेंट किया जिसका प्रधान-ताल १२३ फ़ुट फ़ोकल लम्बान का था! स्मरण रखना चाहिए कि बड़े यरकिज़ दूरदर्शक के प्रधान-ताल का फ़ोकल-लम्बान केवल ६२ फ़ुट है।

५—हरशेल—लम्बे दूरदर्शकों के प्रयोग में इतनी कठिनाई पड़ती थी कि लोग दर्पण-युक्त दूरदर्शक की ओर झुक पड़े और इसकी

उन्नति बहुत शीघ्र हुई । १६६८ में प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन (Newton) ने नये ढंग का दर्पण-युक्त दूरदर्शक बनाया जो अभी तक उसके नाम से विख्यात है; परन्तु न्यूटन का दर्पण केवल १ इंच व्यास का था। असली उन्नति तब हुई जब विलियम हरशेल (William Herschel) ने अपने बड़े बड़े दूरदर्शक बनाये। इस व्यक्ति का इतिहास बड़ा विचित्र है। यह पैदाइश से जरमन (German) था, परन्तु फ़ौज की नौकरी चुपके से छोड़ इँगलैंड में



[न्यूकॉम्ब-एञ्जेलमान के पापुलर ऐस्ट्रॉ० से

चित्र १७२—पुराने समय का एक अत्यन्त लम्बा दूरदर्शक।

जा बसा। बहुत दुःख झेलने के बाद उसे बाथ (Bath) शहर में गिरजाघर में बाजा बजाने का काम मिल गया। वह और उसकी बहन, कैरोलिन हरशेल (Caroline Herschel) एक साथ रहते थे। विलियम हरशेल को आरम्भ ही से पढ़ने लिखने का बड़ा शौक़ था और वह बड़ा मिहनती था। अब उसे ज्योतिष का शौक़ हुआ। अच्छे दूरदर्शकों का मूल्य बहुत अधिक होने के कारण वह अपने

फ़ुरसत के समय में दूरदर्शक के लिए दर्पण बनाता था। उसने कई एक दर्पण बनाये जिनमें प्रत्येक पहलेवालों से बड़ा और अच्छा था। बाज़ार में इतने बड़े दर्पण मिल ही नहीं सकते थे। अन्त में उसने २ फ़ुट व्यास का दूरदर्शक बना डाला। अभी तक किसी ने कल्पना भी नहीं की थी कि इतने बड़े दूरदर्शक भी बनाये जा सकते हैं। इस दूरदर्शक से हरशेल ने एक नये ग्रह, यूरेनस (Uranus), का पता लगाया। इससे वह जगत्-प्रसिद्ध हो गया। राजा ने इसे राज-ज्योतिषी बना लिया और २०० पाउन्ड सालाना वेतन नियत कर दिया। हरशेल ने फिर चार फ़ुट व्यास का एक दूरदर्शक बनाया और इससे शनि के दो नये उपग्रह देखे, परन्तु इसके आरोपण का वह अच्छा प्रबन्ध न कर सका (चित्र १७५)। तापक्रम (सरदी गरमी) के घटने-बढ़ने से भी इतने बड़े दर्पण में बहुत बुरा प्रभाव पड़ता था; इसलिए हरशेल इसका बहुत कम प्रयोग करता था। न्यूकॉम्ब (Newcomb) ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि १८३९ के अन्त में हरशेल के लड़के ने इसको इसके आरोपण



[बेरी की हिस्ट्री से

चित्र १७३—विलियम हरशेल।

से उतरवा कर पट रखवा दिया। फिर इस दूरदर्शक के भीतर बैठ-कर लोगों ने ख़ुशी मनाई। उस समय निम्नलिखित गाना गाया गया और फिर वह दूरदर्शक सदा के लिए बन्द कर दिया गया*।



[सोसायटी फ़ॉर प्रोमोटिङ्ग क्रिस्चियन कॉलेज की कृपा; टर्नर के वॉयेज इन स्पेस से

चित्र १७४—कैरोलिन हरशेल।

In the old Telescope's tube we sit
And the shades of the past around us flit;
His requiem sing we with shout and din,
While the old year goes out and the new comes in.
Chorus.—Merrily, merrily, let us all sing,
And make the old telescope rattle and ring!
Full fifty years did he laugh at the storm,
And the blast could not shake his majestic form;
Now prone he lies, where he once stood high,
And searched the deep heaven with his broad, bright eye.
Chorus.—Merrily, merrily, etc., etc.,

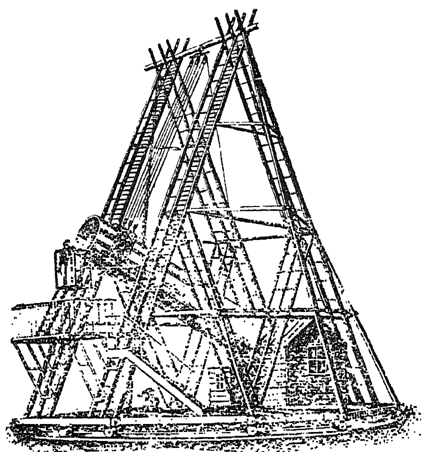
* * *

हरशेल की बहन सदा हरशेल को सहायता दिया करती थी। राज-ज्योतिषी होने के पहले दूरदर्शक बनाने की धुन में हरशेल कितना पक्का था इसका पता उसकी बहन के रोज़नामचे से लगता है। उसने लिखा है कि हरशेल विश्राम-काल का एक एक क्षण बड़ी उत्सुकता से दूरदर्शक बनाने में लगा देता था; कपड़ा बदलने में समय लगने के डर से कपड़ा भी नहीं बदलता था। कई एक आस्तीन फट गये या कालिख लग जाने से नष्ट हो गये।" × × × "उन्हें जीवित रखने के लिए मुझे बार बार उनके मुँह में कौर रख कर खिलाना पड़ता था"। इसकी आवश्यकता एक बार तब पड़ी थी जब ७ फ़ुट फ़ोकल-

* Newcomb; Popular Astronomy (1878) p. 127.

लम्बान के एक दर्पण पर पॉलिश करने में हरशेल ने १६ घंटे तक दर्पण से अपना हाथ नहीं उठाया* ।

६—रॉस का ६ फ़ुटवाला दूरदर्शक—दर्पण-युक्त दूरदर्शकों में हरशेल के बाद रॉस के नवाब (Earl of Rosse) ने ख्याति प्राप्त की । उसका दूरदर्शक ६ फ़ुट व्यास का था। परन्तु इतने बड़े दूरदर्शक को आधुनिक नाड़ीमंडल यंत्र की तरह आरोपित करने में रॉस असमर्थ था। इसलिए यह दो दीवारों के बीच में आरोपित किया गया और इस प्रकार इससे यामोत्तर वृत्त (meridian) के समीप आने ही पर कोई आकाशीय पिण्ड देखा जा सकता था (चित्र १७७) और यह अधिकतर चन्द्रमा, ग्रह और नीहारिकाओं की जाँच के लिए प्रयोग में लाया जाता था ।



[न्यूकॉम्ब-एङ्गेलमान की पुस्तक से

चित्र १७५—हरशेल का बड़ा दूरदर्शक ।

७—आधुनिक ताल-युक्त दूरदर्शक का जन्म—इधर तो हरशेल के हस्तकौशल से दर्पण-युक्त दूरदर्शक संसार को चकित कर रहा था, उधर ताल-युक्त दूरदर्शक धीरे धीरे उन्नति के

* Hector Macpherson: Herschel (London, 1919), p. 18.

शिखर की ओर अग्रसर हो रहा था। १७३३ में ही एक व्यक्ति, हॉल (Hall) ने रंग-दोष-रहित तालों के बनाने के सिद्धान्त का पता लगा लिया। परन्तु हॉल ने अपने आविष्कार का प्रचार नहीं किया। २५ वर्ष पीछे डॉलैन्ड (Dolland) ने रॉयल सोसायटी के सामने रंग-दोष-रहित ताल बनाने की रीति पर एक लेख उपस्थित किया और तभी से आधुनिक ताल-युक्त दूर-दर्शकों का जन्म समझना चाहिए।

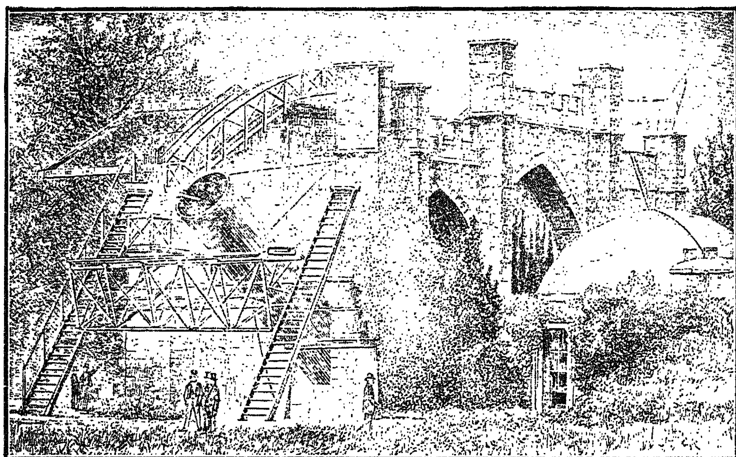


[स्प्लेंडर ऑफ़ दि हेवन्स से

चित्र १७६—रॉस के अर्ल (नवाब)

डॉलैन्ड के आविष्कार के बाद भी ताल-युक्त दूरदर्शक दर्पण-युक्त दूरदर्शकों का मुक़ाबला न कर सका। बात यह थी कि उस समय काफ़ी स्वच्छ और दोष-रहित शीशे दो तीन इंच से बड़े नहीं बनाये जा सकते थे। परन्तु उस साल के लगभग जब हरशेल अपने पहले दूरदर्शक को बना रहा था, स्विज़रलैंड (Switzerland) के एक कारीगर, गुनैन्ड (Guinand) ने चश्मा बनाने का कार्य आरम्भ किया। वह पीछे दूरदर्शक भी बनाने लगा, परन्तु अच्छे शीशे के न मिलने से उसका कार्य ऐसा रुक जाता था कि वह शीशा बनाने की ओर झुका। ७ वर्ष लगातार परिश्रम करने पर भी वह सफल नहीं हुआ। पर उसने हिम्मत न हारी। वह और भी तत्परता से इसमें लिपट गया और शहर छोड़ कर गाँव में

जा बसा। वहाँ कुछ ज़मीन ख़रीद कर उसने एक बड़ी सी भट्ठी बनाई। खाने पहनने में बड़ी किफ़ायत करके और तकलीफ़ उठा कर घंटा ढालने से उसे जो आमदनी होती थी सब उसने शीशा बनाने में लगा दिया। अन्त में उसको अपने कठिन तपस्या का फल भी मिला। वह ६ इंच तक का शीशा बनाने लगा। मरते समय तक (१८२३ में) उसने १८ इंच का शीशा बना डाला।

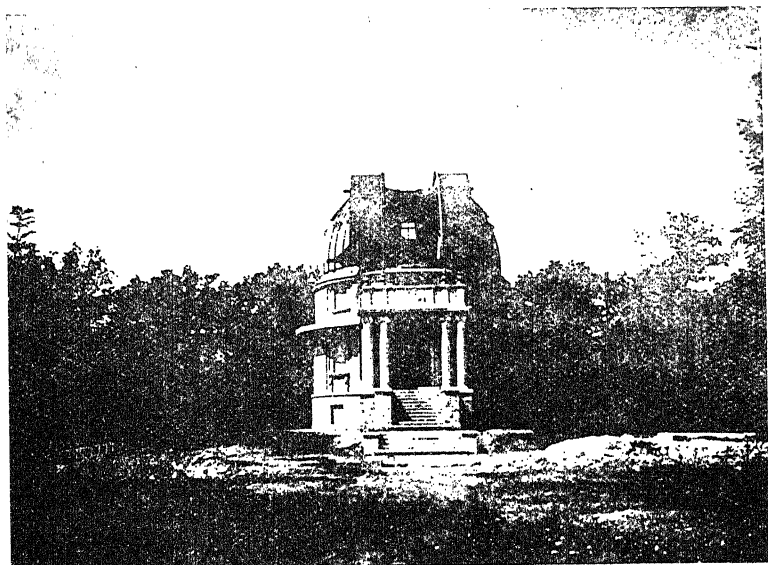


चेम्बर्स की ऐस्ट्रॉनोमी से] [ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस की कृपा

चित्र १७७—रॉस के अर्ल का बड़ा दूरदर्शक।

गुनैन्ड के बने शीशे से १२ और १४ इंच के दूरदर्शक बने और उनसे कई एक आविष्कार किये गये। अच्छा शीशा बनाने के भेद का पता इसके लड़के से बिरमिंगहैम (Birmingham) शहर के मेसर्स चान्स ब्रदर्स (Messrs. Chance Brothers) को लगा, जो अब भी शीशा बनाते हैं। इसी कारख़ाने ने ऐलवान क्लार्क एन्ड

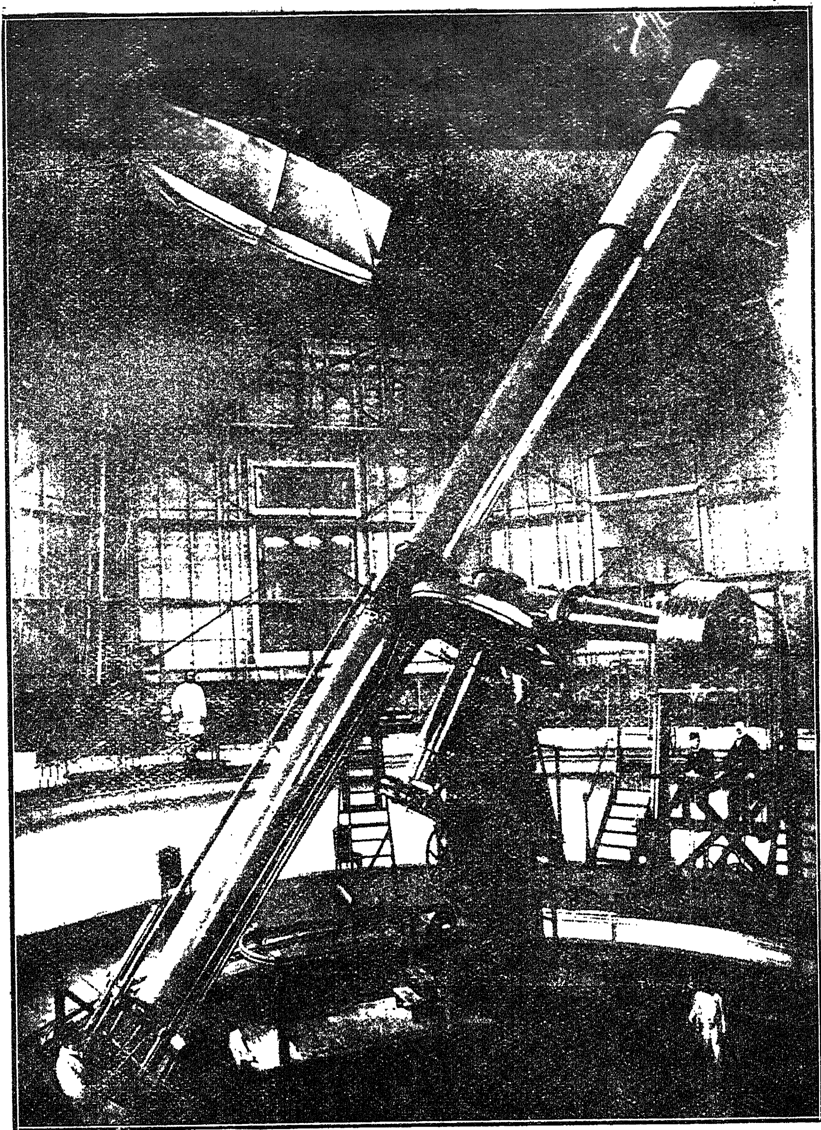
सन्स (Alvan Clark & Sons) के लिए २६ इंच का दूरदर्शक बनाने के वास्ते शोशा बनाया था; परन्तु लिक के विख्यात ३६ इंच के शीशे को पेरिस की फ़ाइल कम्पनी ने बनाया था।



[जाइस कंपनी

चित्र १७८—एक रईस की व्यक्तिगत बेधशाला।

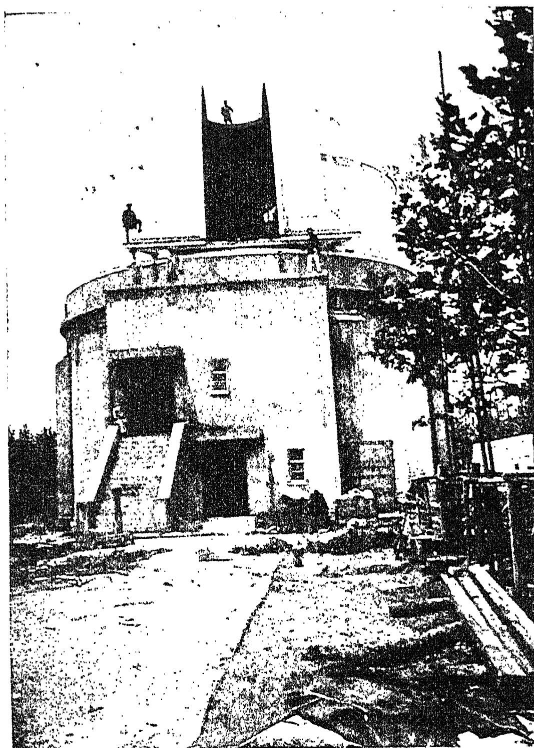
८—**फ़्राउनहोफ़र और क्लार्क**—जब गुनैन्ड शीशा बनाने में लगा था उस समय जगत्-प्रसिद्ध फ़्राउनहोफ़र (Fraunhofer) चश्मा इत्यादि बनाने का काम म्युनिश (Munich) में आरम्भ कर रहा था। फ़्राउनहोफ़र बड़ा ही होशियार वैज्ञानिक था। उसने दोष-रहित दूरदर्शक बनाने के प्रश्न पर सूक्ष्म और विस्तृत खोज की और गुनैन्ड के शीशे से १० इंच तक के दूरदर्शक



चेम्बर्स की ऐस्ट्रॉनोमी से] [ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस की कृपा

चित्र १७९—रूस देश की पुलकोवा वेधशाला का ३० इंच व्यासवाला दूरदर्शक।

बनाये। उसके मरने के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों ने दो दूरदर्शक १५ इंच के बनाये जो उस समय अत्यन्त आश्चर्य-जनक समझे जाते थे। इनमें से एक तो रूस के पुलकोवा

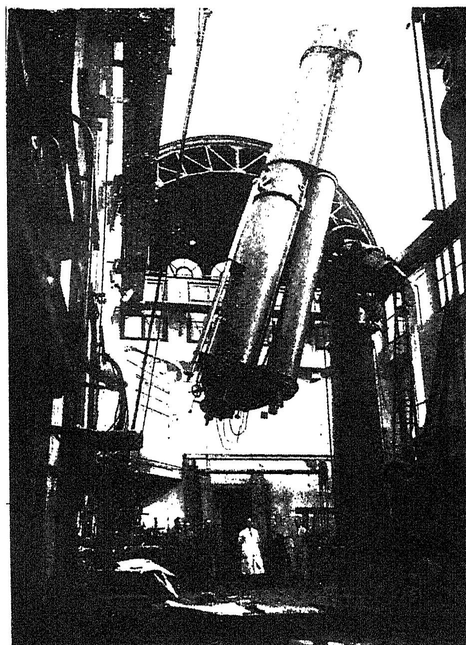


[ज़ाइस कंपनी

चित्र १८०—टोकियो (जापान) की बेधशाला।

(Pulkowa) बेधशाला में गया और दूसरे को अमेरिका के बोस्टन (Boston) नगर के निवासियों ने चन्दा करके ख़रीद लिया और हारवार्ड (Harvard) विश्वविद्यालय को दे दिया।

बड़े बड़े ताल-युक्त दूरदर्शकों के बनाने में फ्राउनहोफ़र के कारख़ाने का मुक़ाबला करनेवाला उसके मरने के तीस वर्ष बाद तक कहीं न उठा और उठा तो ऐसे स्थान पर जहाँ कोई भी आशा न थी। मिस्टर ऐलवन क्लार्क (Mr. Alvan Clark) केम्ब्रिजपोर्ट, मैसाचूसेट्स (Cambridgeport, Massachusets), अमेरिका, का रहनेवाला था। ख्याति इसे जानती न थी और यह अपने ही सीखे हुए चित्रकारी के भरोसे साधारण सी जीविका उपार्जन करता था। अपने अवकाश के समय में छोटे छोटे दूरदर्शक बना कर वह अपना मन बहलाया करता था। यद्यपि वह गणित के अध्ययन के लाभ से वंचित रहा, तथापि दूरदर्शक बनाने और उसके भले बुरे के पहचान करने भर के लिए उसे वैज्ञानिक सिद्धान्तों का पूरा ज्ञान था। संयोग-वश उसे ताल स्वयं ही बनाने का कार्य आरम्भ करना पड़ा। उसने शीघ्र ही अच्छे से अच्छे बने तालों के मुक़ाबले का ताल बनाया और



[ज़ाइस कंपनी

चित्र १८१—टोकियो (जापान) की बेधशाला का दूरदर्शक।

साइमन न्यूकॉम्ब अपनी पुस्तक* में लिखते हैं कि "यदि वह किसी भी दूसरे सभ्य देश का निवासी होता तो उसे अपना नाम जमा लेने में कुछ भी कठिनाई न होती। परन्तु उसे दस वर्ष तक उस अनादर और अविश्वास के विरुद्ध झगड़ना पड़ा जो इस देश † में सभी स्वदेशी आविष्कारकों को भुगतना पड़ता है। और, चाहे यह कितना ही विचित्र क्यों न जान पड़े, एक विदेशी ने पहले-पहल उसके नाम और शक्ति को ज्योतिष-संसार के सम्मुख उपस्थित किया"। बात यह हुई कि इँगलैंड के एक प्रसिद्ध अव्यवसायी (amateur) ज्योतिषी ने क्लार्क के दूरदर्शक को इतना



[यरकिज़ बेधशाला की कृपा

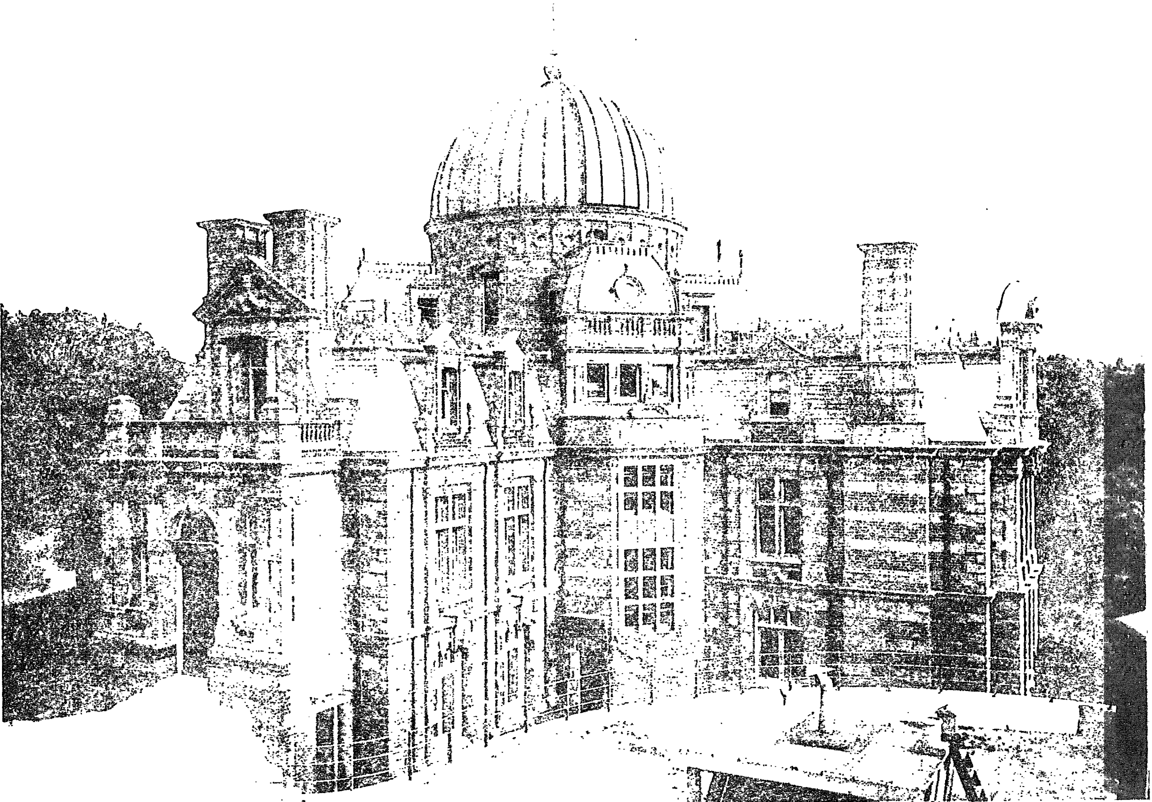
चित्र १८२—एेल्वन क्लार्क,

जिसने संसार के कई प्रसिद्ध दूरदर्शकों का निर्माण किया है।

---

* Simon Newcomb: Popular Astronomy (London) 1378, p. 137.

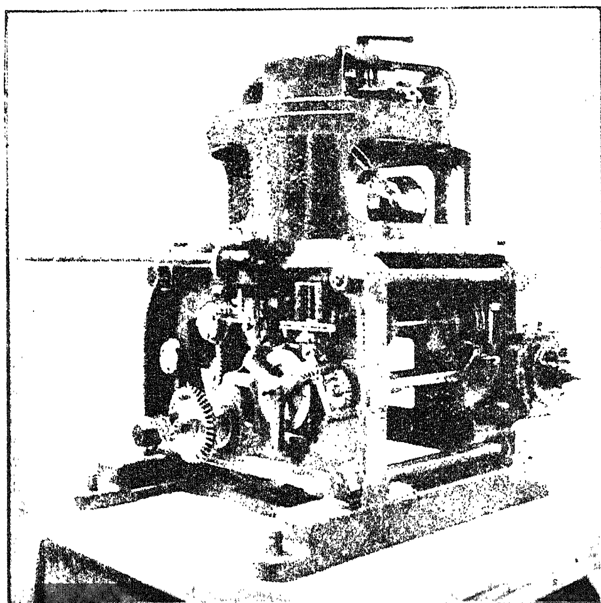
† अमेरिका



[ग्रिनिच बेधशाला

चित्र १८३—ग्रिनिच, लंदन की सरकारी बेधशाला।

अच्छा पाया कि उसने लंडन के ज्योतिष-परिषद् के सामने उन नक्षत्र-युग्मों की सूची पढ़ी, जिनका पता मिस्टर क्लार्क ने अपने दूरदर्शक से लगाया था और प्रमाण दिया कि उसके दूरदर्शक प्रायः पूर्णतया शुद्ध हैं।



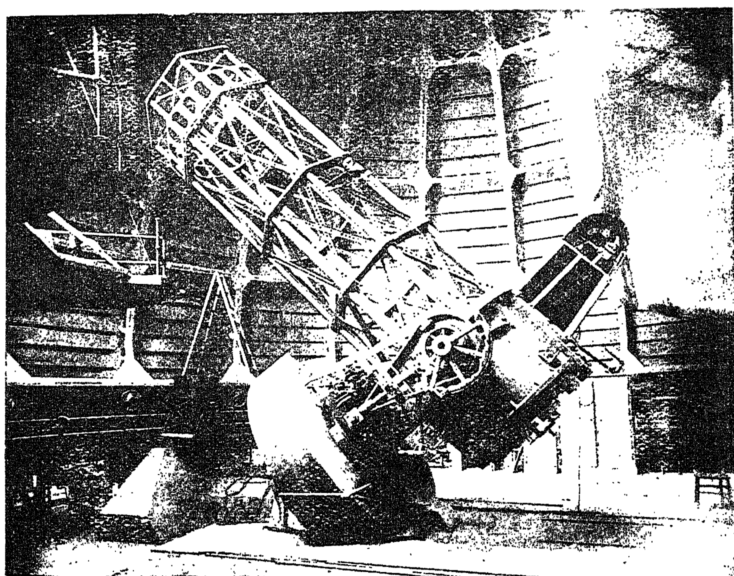
(कुक, ट्राउटन ऐन्ड सिम्स

चित्र १८४—टॉमस कुक के कारख़ाने में बने १८ इंच के दूरदर्शक की घड़ी।

फल यह हुआ कि अब क्लार्क की इज्ज़त घर पर भी होने लगी। १८६० में उसे मिसिसीपी (Missisipi) के विश्वविद्यालय से १८ इंच के दूरदर्शक के लिए ऑर्डर आया। यह दूरदर्शक कारख़ाने से बाहर निकलने के पहले ही मशहूर हो गया, क्योंकि

इससे पता चला कि आकाश का सबसे चमकीला तारा साइरियस (Sirius) या लुब्धक एकहरा नहीं, युग्म-तारा है।

८—कुछ आधुनिक दूरदर्शक—उपरोक्त दूरदर्शक बहुत दिनों तक सम्राट् की पदवी पर नहीं टिका रहा। दस



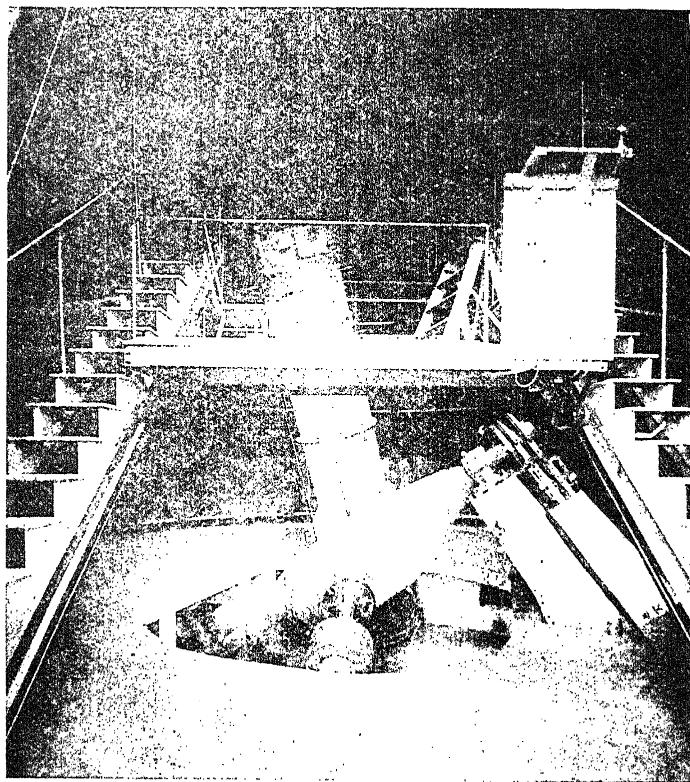
[माउन्ट विलसन बेधशाला

चित्र १८९—माउन्ट विलसन का ६० इंचवाला दूरदर्शक।

वर्ष के अन्दर ही इँगलैंड के मेसर्स टॉमस कुक ऐन्ड सन्स (Messrs. Thomas Cook & Sons) नाम की कम्पनी* का जन्म-दाता, टॉमस कुक ने, जो एक मोची का लड़का था और जिसने दूरदर्शक बनाने का काम स्वयं ही, बिना उस्ताद के, सीखा था, २५

* अब इस कम्पनी का नाम मेसर्स कुक, ट्राउटन एन्ड सिम्स (Messrs. Cook, Troughton and Simms) है।

इंच व्यास का दूरदर्शक बनाया। इस दूरदर्शक को मिस्टर नेवाल (Mr. Newal) ने केम्ब्रिज के विश्वविद्यालय को दान कर दिया। यह दूरदर्शक अब भी वहाँ है और नक्षत्रों की गति, इत्यादि की खोज में काम आता है।



[लिक बेधशाला

चित्र १८६—लिक बेधशाला का प्रसिद्ध क्रॉसली दूरदर्शक।

इसके थोड़े ही दिनों बाद ऐलवन क्लार्क ने यूनाइटेड स्टेट्स नेवल बेधशाला (United States Naval Observatory) के लिए २६

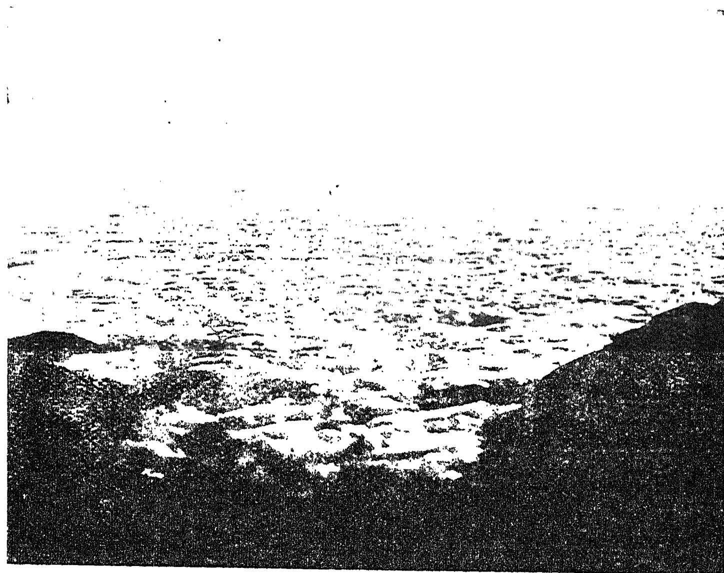
इंच का दूरदर्शक बनाया। इस दूरदर्शक से मंगल के दो उपग्रहों का पता लगा। क्लार्क को इस यंत्र के लिए बीस हज़ार डॉलर (लगभग साठ हज़ार रुपया) मिला था। इसके बाद तीन यंत्र और भी बड़े बने। तब १८८६ में लिक बेधशाला के लिए ३६ इंच का दूरदर्शक ऐलवन क्लार्क ने बनाया। "इस यन्त्र के बनाने के लिए काफ़ी स्वच्छ और इच्छित आकार के शीशों के बनाने में जो जो कठिनाइयाँ पड़ीं उनसे इस बात का पता लगा कि इस दिशा में उन्नति करने की सीमा बहुत दूर नहीं है। फ़्लिन्ट शीशा तो पेरिस के मुस्यो फ़ाइल के कारख़ाने में बड़ी सुगमता से ढल गया। इस दोषरहित टुकड़े का वज़न १७० किलोग्राम (५ मन) था और इसका व्यास ३८ इंच था। इसका ख़र्च १० हज़ार डॉलर (३० हज़ार रुपया) पड़ा। लेकिन रंग-दोष-रहित ताल बनाने के लिए जिस क्राउन शीशे की आवश्यकता थी उसका बनाना इतना सरल नहीं था। दोष-रहित शीशे की सिल्ली कहीं उन्नीस बार अनुत्तीर्ण होने पर जाकर बनी और इसमें दो वर्ष की देर हो गई"*।

१८९२ में शिकागो के करोड़पति मिस्टर यरकिज़ ने कहा कि चाहे जितना ख़र्च लगे, हमारे शहर के विश्वविद्यालय के लिए जितना बड़ा दूरदर्शक बन सकता हो बनाओ। इसका परिणाम यह हुआ कि ऐलवन क्लार्क के स्थापित किये हुए कारख़ाने ने ४० इंच व्यास का दूरदर्शक तैयार किया, जिससे बड़ा ताल अभी तक नहीं बन सका है। इस दूरदर्शक से ज्योतिष का ज्ञान बहुत बढ़ गया है।

---

* Miss A. M. Clerke: A Popular History of Astronomy during the Nineteenth Century (London) 1908, p. 430.

१६०५ में माउन्ट विलसन बेधशाला की स्थापना हुई। यहाँ पर कई एक संसार के सबसे बड़े यन्त्र हैं। १०० इंचवाले दूरदर्शक के अतिरिक्त, यहाँ एक ६० इंच का दर्पण-युक्त दूरदर्शक भी है (चित्र १८५)। १६१८ में ७२ इंचवाला दूरदर्शक विक्टोरिया



[माउन्ट विलसन बेधशाला

चित्र १८७—माउन्ट विलसन बादलों से भी ऊँचा है।

यह चित्र माउन्ट विलसन के नीचे दिखलाई देते हुए बादलों का है।

में आरोपित किया गया (चित्र ६७, पृष्ठ ६५)। एक दूसरा प्रसिद्ध यन्त्र लिक बेधशाला का क्रॉसली दूरदर्शक है (चित्र १८६)। इससे नीहारिकाओं के अनेक सुन्दर फ़ोटोग्राफ़ खींचे गये हैं।

१०—बेधशालाओं की स्थिति—पहले बतलाया जा चुका है कि दूरदर्शकों से पूरा लाभ उठाने के लिए वायु को पूर्णतया स्वच्छ और स्थिर होना चाहिए। यही कारण है कि बड़-बड़ दूरदर्शक पहाड़ की चोटियों पर बनाये गये हैं। माउन्ट विलसन-बेधशाला इतनी ऊँचाई पर है कि बादल भी यहाँ तक नहीं पहुँचते (चित्र १८७)। बेधशाला तक सड़क बनाने में १००,००० डॉलर (३,००,००० रुपया) ख़र्च हुआ था*। यहाँ साधारणतः साल में दो तीन रात्रि को छोड़ शेष रात्रियों में वायु-मंडल पूर्णरूप से स्वच्छ रहता है। इस पहाड़ पर बड़े बड़े दूरदर्शकों के ले जाने में अनेक कठिनाइयाँ पड़ीं। धन्य हैं वे ज्योतिषी जो नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लालच से इस निर्जन स्थान में तपस्या करते हैं।

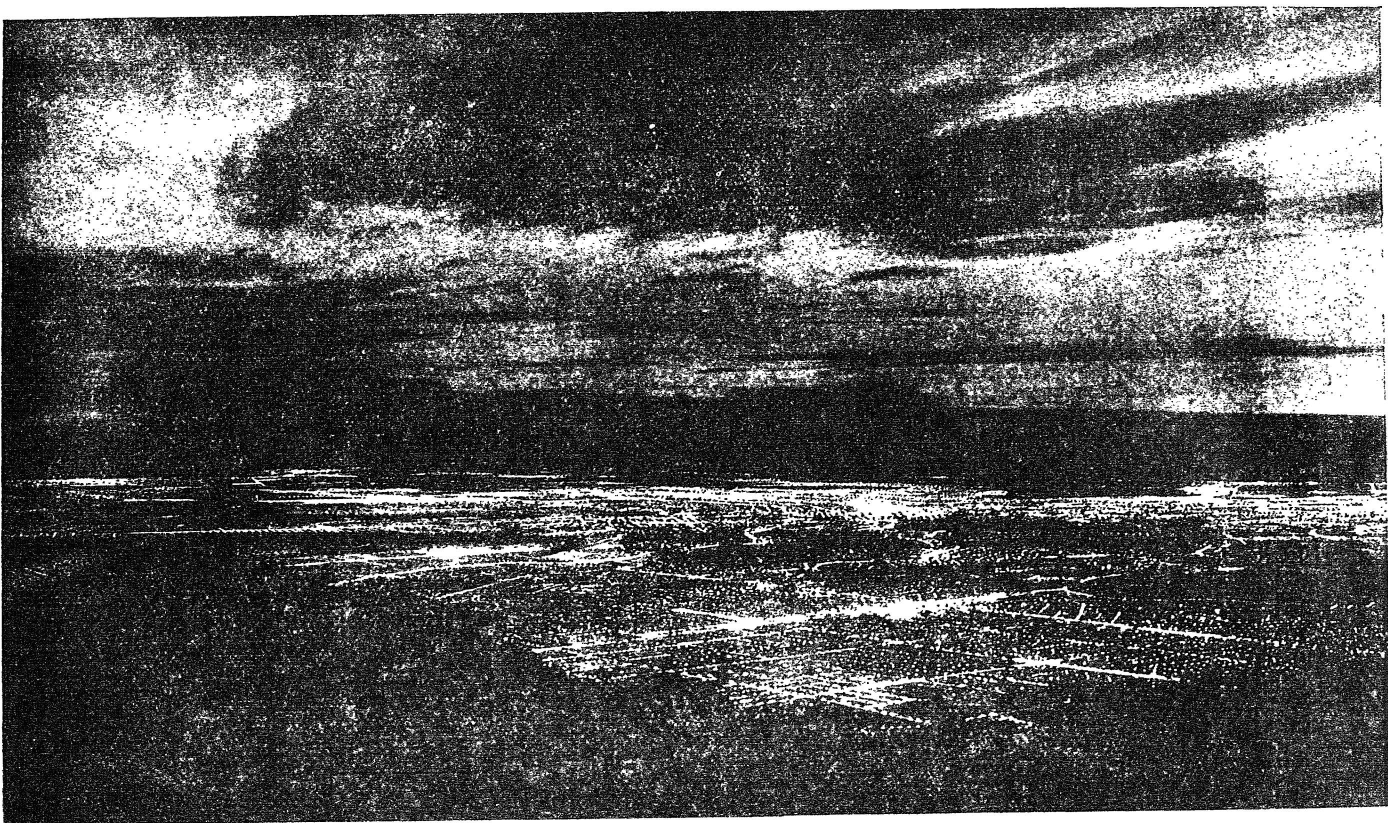
माउन्ट विलसन से पासाडेना और लॉस-एंजेलस ये दोनों शहर रात्रि के समय जगमगाते हुए अत्यन्त रमणीक दिखलाई पड़ते हैं (चित्र १८८)।

माउन्ट हैमिल्टन, जहाँ लिक बेधशाला है, ४,२०० फ़ुट ऊँचा है। यहाँ भी वायु वैसा ही स्वच्छ है जैसा माउन्ट विलसन पर, परन्तु यहाँ दो तीन के बदले चालीस पचास रात्रियों में वायु उतना स्वच्छ नहीं रहता जितना ज्योतिषी चाहते हैं।

कभी कभी स्वच्छ वायु की खोज में ज्योतिषी बहुत दूर निकल जाते हैं और वर्षों दूरदर्शकों द्वारा नक्षत्रों की जाँच करते रहने पर अपनी बेधशाला का स्थान निर्णय करते हैं। उदाहरण के लिए, हारवार्ड विश्वविद्यालय ने अपनी निकटस्थ बेधशाला के अतिरिक्त अरेक्विपा में, समुद्र-तल से ८,००० फ़ुट ऊँचे पहाड़ पर दूसरी बेधशाला (चित्र १८८) बनवाई है। यहाँ तापक्रम (सरदी-

---

* Scientific American, January 1929; p. 217.

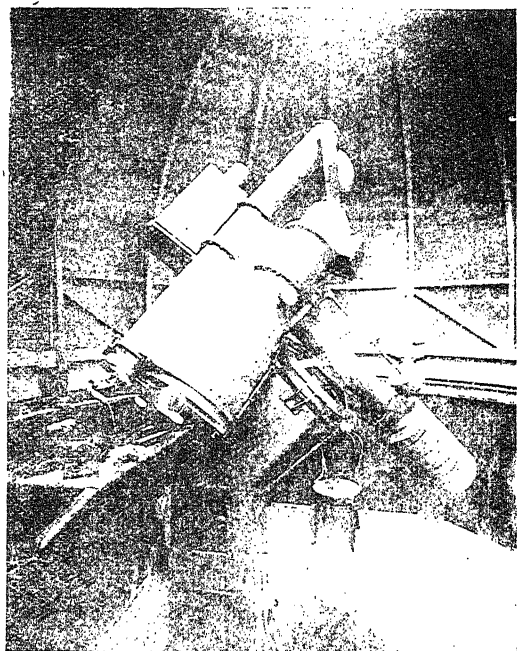


[एलरमैन

चित्र १८८—पासाडेना श्रौर लॉस एंजेलस का शहर
(माउन्ट विलसन से)

गरमी) प्राय: एक सी रहती है। साल भर में तीन चार इंच से अधिक पानी नहीं बरसता। यहाँ वायु इतना स्वच्छ है कि अँधेरी रात में कृत्तिका तारापुंज (किचपिचिया) में ६ के बदले ११ तारे कोरी आँख से दिखलाई पड़ते हैं और साधारण चमक के तारे डूबने के समय तक स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं।

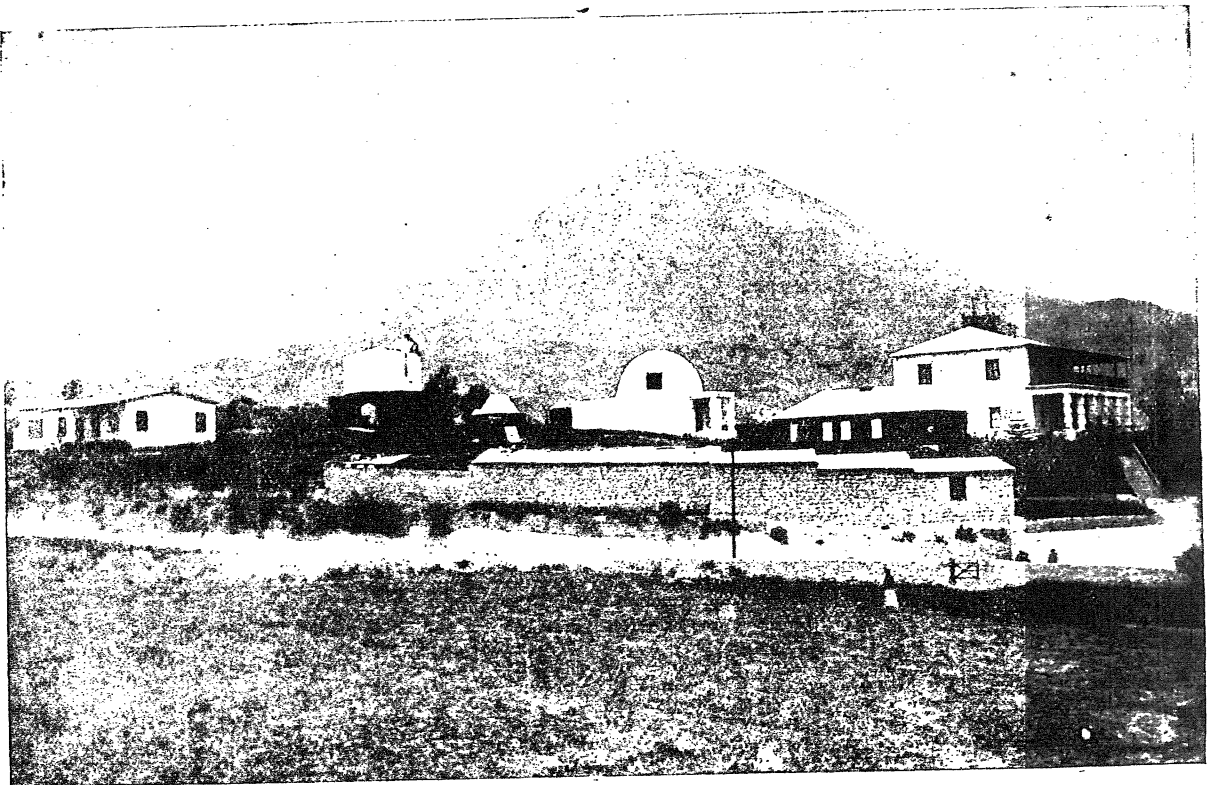
११—छोटे दूरदर्शक—बड़े दूरदर्शकों के अभाव में ज्योतिष-प्रेमियों को छोटे दूरदर्शकों की अवहेलना न करनी चाहिए। शिकार इत्यादि के काम में आनेवाला साधारण बिनॉक्युलर्स (binoculars) आकाश के ऐसे सुन्दर दृश्य दिखलायेगा जो कोरी आँख से कभी न दिखलाई पड़ेंगे। बिनॉक्युलर्स तो क़ीमती चीज़ है, सस्ते चश्मे के रद्दी ताल से घर पर बनाये गये दूरदर्शक से, इसमें रंग-दोष के रहते हुए भी, चन्द्रमा के पहाड़, बृहस्पति के उपग्रह, इत्यादि, दिखलाई पड़ेंगे। इस प्रकार के दूरदर्शक को बनाने के लिए एक वैसे चश्मे का ताल लीजिए जैसे बूढ़े



[यरकिज़ वेधशाला

चित्र १८९— **युग्म दूरदर्शक।**

इससे बारनार्ड ने अनेकों नक्षत्र-फ़ोटोग्राफ़ लिये थे।

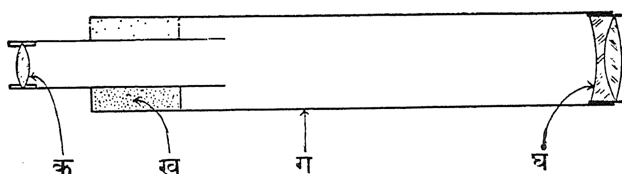


[हारवार्ड बेधशाला

चित्र १६० —अरेकिपा की बेधशाला।

१६२७ में इस बेधशाला को यहाँ से उठा कर दक्षिण अफ्रीका में स्थापित कर दिया गया।

लोग लगाते हैं, अर्थात् यह उन्नतोदर हो। बीच में किनारों की अपेक्षा ज़रा सा यह मोटा होगा और इसके द्वारा चीज़ें बड़ी दिखलाई पड़ेंगी (चित्र ७१, पृष्ठ ७८)। इसका फ़ोकल-लम्बान पंद्रह बीस इंच के लगभग हो। यदि आप फ़ोटोग्राफ़र हैं और आपके पास पंद्रह बीस इंच के फ़ोकस का कोई ताल है तो इससे बढ़कर और कुछ नहीं हो सकता। यदि आपके कैमेरे में ऐसा ताल



चित्र १६१—सरल दूरदर्शक।

इसका स्वयं बना लेना सरल है। क, चक्षुताल; ख, दफ़्ती या लकड़ी; ग, कागज़ की नली; घ, प्रधान ताल।

(लेन्ज़) लगा है जिसका एक अर्ध भाग अलग काम में लाया जा सकता है तो शायद इससे भी बढ़िया काम निकल सकेगा। यह तो हुआ प्रधान ताल। इसके बाद चक्षुताल की फ़िकर करनी चाहिए। कैमेरों में जो विउ-फाइन्डर (view-finder) या दृश्य-बोधक लगा रहता है उसका ताल लगभग १ इंच के फ़ोकल-लम्बान का होता है और चक्षुताल का काम अच्छी तरह कर सकता है। इस प्रकार का ताल टूटे फूटे कैमेरों में से किसी फ़ोटोग्राफ़र की दूकान से मिल सकता है, या चश्मेवाले की दूकान पर मिल सकता है। दोनों तालों को पा जाने पर दफ़्ती की दो नलिकाओं को इस आकार का बनाना चाहिए कि वे एक दूसरे के भीतर सुगमता से खिसक सकें। तब एक के सिरे पर

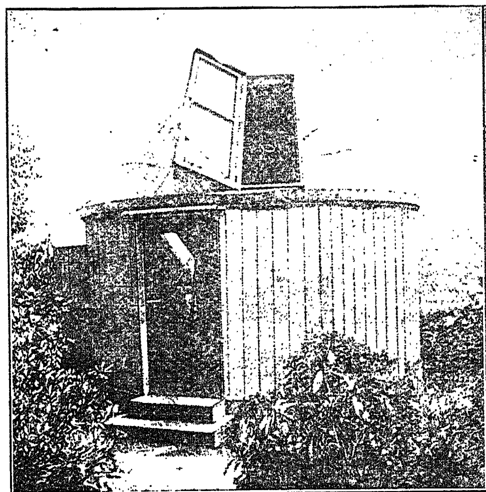
प्रधान ताल लगा दीजिए और दूसरे के सिरे पर चक्षुताल (चित्र १९१)। यदि दोनों के बीच की दूरी दोनों तालों की फ़ोकल-लम्बाई के योग के बराबर कर दी जायगी तो इस दूरबीन से चन्द्रमा, ग्रह इत्यादि देखे जा सकते हैं। तीस चालीस फ़ुट की दूरी से पुस्तक भी पढ़ी जा सकेगी। नलिकाओं को खिसका कर प्रत्येक बार फ़ोकस ठीक कर लेना चाहिए।

इस प्रकार के दूरदर्शक से ज्योतिष-अध्ययन में तो इतना नहीं लाभ होगा जितना दूरदर्शक की बनावट, रंग-दोष, फ़ोकल-लम्बान, प्रवर्धन-शक्ति, इत्यादि का ज्ञान प्राप्त करने में। आकाश के सौन्दर्य को देखने के लिए कम से कम ३ इंच व्यास का दूरदर्शक चाहिए। ऐसा यंत्र लगभग एक हज़ार रुपये में मिल सकता है। यद्यपि, बिना दूरदर्शक के नक्षत्र, ग्रह इत्यादि पहचानने में भी बड़ा आनन्द मिलता है, मनुष्य को दो चार घंटे के लिए दुनिया के अनेक झंझटों से मुक्ति मिल जाती है और उसके चित्त को शान्ति और सुख मिलता है, तो भी यदि बन पड़े तो एक ऐसा यंत्र अवश्य ले लेना चाहिए। एक अच्छे ३ इंच के यंत्र से बृहस्पति का चिपटा आकार, उसके उपग्रहों का ग्रहण, ग्रह पर पड़ती हुई इनकी छाया इत्यादि जब जब देखा जायगा तब तब आनन्द मिलेगा। ऐसे दूरदर्शकों से शनि सदा ही मनोहर जान पड़ता है। इसके वलय (छल्ले) स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ेंगे। एक दो उपग्रह भी दिखलाई पड़ेंगे। शुक्र की कलायें भी दिखलाई पड़ेंगी। छोटे दूरदर्शकों में भी चन्द्रमा मन को मुग्ध कर देता है। इसके पहाड़-पहाड़ी ख़ूब भले दिखलाई पड़ेंगे। कई एक नक्षत्र-पुंज, दो-चार नीहारिकाओं इत्यादि की भी छटा चित्ताकर्षक प्रतीत होगी।

दर्पण-युक्त दूरदर्शक भी, पाठक को यदि धैर्य हो और यदि वह कर-दक्ष हो, काफ़ी सुगमता से बनाये जा सकते हैं, परन्तु

स्थानाभाव से उनके बनाने की रीति यहाँ नहीं बतलाई जा सकती। पाठक को यदि इसका शौक हो तो उसे इस विषय पर लिखी हुई विशेष पुस्तकों को पढ़ना चाहिए।

१२—छोटे दूरदर्शकों की पहचान, प्रयोग और हिफ़ाज़त—नीचे की दो चार बातें, जिनमें से अधिकांश वेब की पुस्तक* से चुनी गई हैं, उनके लिए लाभकारी होंगी जिनके पास दूरदर्शक है, या जो दूरदर्शक लेना चाहते हैं। साधारण पाठकों को भी ये बातें रोचक प्रतीत हो सकती हैं।



[चेम्बर्स की ऐस्ट्रोनोमी से; ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस की कृपा

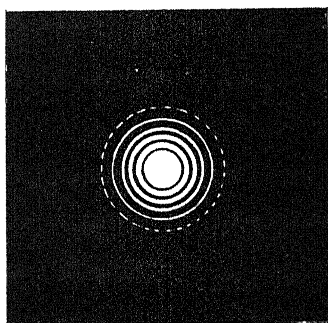
चित्र १६२—एक छोटा वेधशाला।

इसको पाठक बड़ी सुगमता से बनवा सकता है। पूरा विवरण चेम्बर्स के हैन्डबुक ऑफ़ ऐस्ट्रोनोमी में मिलेगा।

(१) किसी दूरदर्शक के गुणों के विषय में निर्णय करने के लिए, बाहरी सूरत से हमको धोखा नहीं खाना चाहिए। रद्दी चीज़ें भड़कीली बनाई जा सकती हैं, इसलिए बाहरी स्वरूप से कुछ नहीं होता।

* Webb: Celestial Objects for Common Telescopes, vol. 1.

शीशे की चमक और स्वच्छता से भी दूरदर्शक की उत्तमता का पूरा ज्ञान नहीं होता; इस स्वच्छता और पॉलिश के साथ साथ ताल का आकार दूषित हो सकता है, और इसका यही अटल परिणाम होगा कि दूरदर्शक अच्छा काम न कर सकेगा। थोड़े से बुलबुले या एक दो खरोंच की परवा न करनी चाहिए; उनसे केवल नाम-मात्र प्रकाश कम हो जाता है। दूरदर्शक से कैसा दिखलाई पड़ता है इसी जाँच से इसकी परीक्षा हो सकती है। सबसे अधिक प्रवर्धन-शक्ति के लगाने पर नक्षत्रों की मूर्त्ति को स्वच्छ और स्पष्ट होना चाहिए और चक्षु-ताल को अच्छे फ़ोकस की स्थिति से ज़रा सा ही हटाने पर फ़ोकस बिगड़ जाना चाहिए (अर्थात् तब वस्तुओं को भद्दा दिखलाई पड़ना चाहिए)। दूरदर्शक



चित्र ११३—अच्छे दूरदर्शक में नक्षत्र की मूर्त्ति

की परीक्षा के लिए उचित विषय चुनना चाहिए। चन्द्रमा का देखना बहुत सरल है, शुक्र बहुत कठिन। शुक्र की चमक के कारण एकदम अच्छे दूरदर्शकों को छोड़ सभी में रङ्ग-दोष दिखलाई पड़ेगा। बड़े ताराओं में भी यही दोष है। अनुभवी व्यक्तियों को युग्म ताराओं की जाँच से तुरन्त पता चलता है कि दूरदर्शक कैसा है, परन्तु साधारणतः जाँच के लिए कोई मध्यम चमक का तारा अच्छा है। सबसे अधिक प्रवर्धन-शक्तिवाले चक्षुताल के लगाने पर और फ़ोकस ठीक करने पर नक्षत्र की मूर्त्ति को बहुत सूक्ष्म वृत्त की तरह

दिखलाई पड़ना चाहिए। इस वृत्त के चारों ओर एक या दो धीमे प्रकाश की पतली कुंडलियाँ (rings) दिखलाई पड़ेंगी। इनको ठीक ठीक गोलाकार होना चाहिए (चित्र १९३)। ये कुंडलियाँ क्यों दिखलाई पड़ती हैं इस पर यहाँ विचार नहीं किया जा सकता, परन्तु यहाँ पर हमें प्रयोजन इस बात से है कि इनको गोल होना चाहिए। उनमें पङ्ख, रश्मियाँ इत्यादि न होनी चाहिए। फ़ोकस से चक्षु-ताल को ज़रा सा बाहर या भीतर हटाने पर कुंडलियाँ और भी स्पष्ट हो जाती हैं और इसलिए दूरदर्शक की त्रुटियों का भी पता सुगमता से लग जाता है (चित्र १९४-९९)।

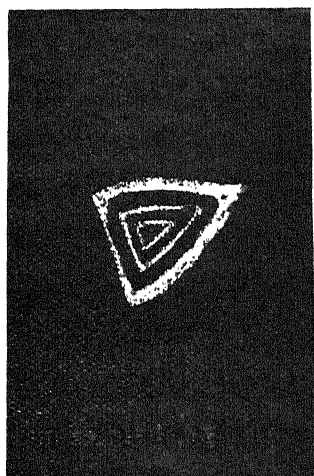


[कुक, ट्राउटन ऐंड सिम्स

चित्र १९४—जिन दो पेंचों से ताल बँधा है वे बहुत कसे हैं।

(२) जहाँ तक हो सके दूरदर्शक के तालों को पोंछना नहीं चाहिए, क्योंकि इससे खरोंच पड़ जाते हैं और पॉलिश ख़राब हो जाने से शीशा धुँधला या अंधा हो जाता है। दूरदर्शक के तालों को बक्स में, या टोपी लगा कर, इस प्रकार रखना चाहिए कि उन पर गर्द पड़े ही न। यदि गर्द पड़ भी जाय तो नर्म रेशमी कपड़े की सहायता से उसको बहुत धीरे से हटा देना चाहिए। इस कपड़े को चौड़े मुँह के बन्द बोतल में रखना चाहिए, जिससे इस पर गर्द न पड़े। चक्षु-ताल के शीशों को पोंछने के लिए सोख़्ते (blotting paper, ब्लॉटिङ्ग पेपर) को लपेट कर पेन्सिल-सा बना लेना चाहिए।

(३) फ़ोकस ठीक रखने में आलस्य न करना चाहिए। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए फ़ोकस भिन्न भिन्न होता है और एक ही व्यक्ति के लिए थोड़ा बहुत फ़ोकस बदलता रहता है।

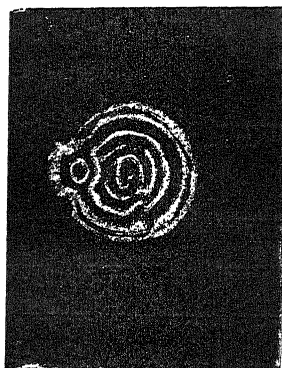


[कुक, ट्रा० ऐंड सिम्स

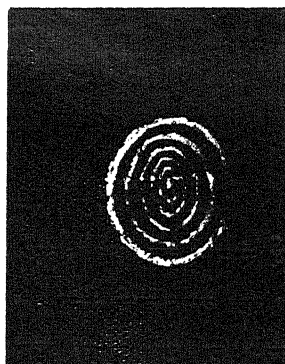
चित्र १६५—जिन तीन पेंचों से ताल बँधा है वे बहुत कसे हैं।

(४) यदि काफ़ी कपड़ा पहन लिया जाय तो सरदी से स्वास्थ्य बिगड़ने का कुछ भी डर नहीं रहेगा। ज्योतिषी लोग बड़े दीर्घ-जीवी होते हैं; जो सदा ही भोर होने तक, कभी-कभी तो बर्फ़ से भी ठण्डी हवा में, रात रात भर तारात्रों के पीछे जगा करते हैं, वे भी बहुत स्वस्थ रहते हैं।

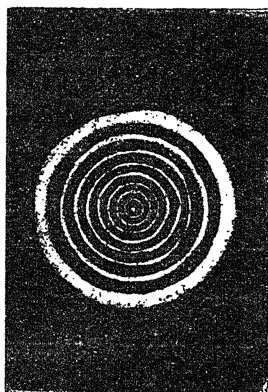
(५) प्रधान-ताल के दोनों भागों को कभी भी अलग न करना चाहिए, क्योंकि उनको फिर शुद्ध रीति से बैठाना अनुभवी दूरदर्शक बनानेवालों का काम है। बाल भर भी अन्तर पड़ जाने से यह ख़ूब अच्छा काम न दे सकेगा। "किसी मतलब से, या बिना मतलब से, यह तो कारख़ानेवाले ही जानें; परन्तु सभी दूरदर्शकों और दूर-दर्शक-युक्त यंत्रों के साथ चुलबुले हाथोंवाले व्यक्तियों के मन को मचला देनेवाली वह वस्तु, एक पेंचकस, रख देते हैं। यही कारण है कि इतने ऐसे यंत्र लौट कर आते हैं जिनमें असाध्य रोग लग जाता है" (चेम्बर्स)।



चित्र १६६—ताल के शीशे में नस है।

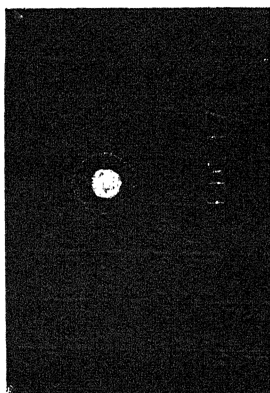


चित्र १६७—ताल कुछ तिरछा लगा है।



चित्र १६८—ताल ठीक है।

फ़ोकस ठीक करने पर यह चित्र १६६ की तरह हो जायगा।



चित्र १६६—शुद्ध ताल, शुद्ध फ़ोकस।

चित्र १८८—१६३ "टेलिस्कोप ऑबजेक्टिव्ज़" से लिये गये हैं, (प्रकाशक, मेसर्स कुक, ट्राउटन ऐण्ड सिम्स)।

F. 27

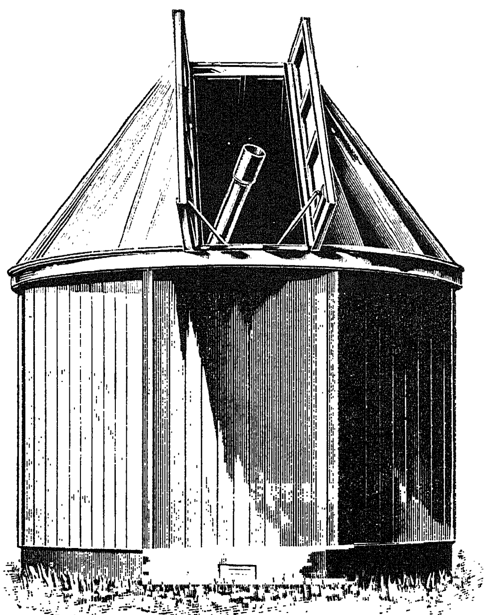
अध्याय ५

सूर्य की गरमी

१—**त्रिविध केन्द्र**—आकाशीय पिंडों में परम तेजस्वी सूर्य संसार का एक प्रकार से त्रिविध केन्द्र है। पहले, पृथ्वी-कक्षा का यह वास्तविक केन्द्र है; इसी के चारों ओर पृथ्वी घूमती है और दिन-रात्रि, तथा ऋतु इत्यादि, इसी के कारण होते हैं। फिर, सूर्य हम सबका, साथ ही वृक्ष, पौधे आदि और छोटे बड़े सभी जानवरों का भी, प्राणदाता है; अनुमान किया गया है कि सूर्य के मिट जाने के तीन दिन भीतर ही चर और अचर सभी जीवधारी मर जायँगे, शायद समुद्र-तल में थोड़ी सी मछलियाँ जीवित रह जायँ। सूर्य के मिटने के दो ही दिन में वायु-मंडल से जल का कुल अंश वर्षा या बर्फ़ के रूप में गिर पड़ेगा और फिर ऐसी ठंढक पड़ेगी कि एक ही दिन में सब जीवधारी ठंढे हो जायँगे। इसके अतिरिक्त सूर्य ही से हमको पत्थर का कोयला मिलता है जिससे बड़े बड़े इंजन चला कर हम शक्ति उत्पन्न करते हैं। शक्ति पैदा करने की अन्य रीतियाँ भी अन्त में सूर्य ही पर निर्भर हैं। हमारा भोजन भी इसी से मिलता है; परन्तु तीसरा कारण जिससे सूर्य केन्द्र कहा जाता है यह है कि नक्षत्रों के विषय में हम बहुत सी बातें सूर्य ही से सीखते हैं। सूर्य भी एक नक्षत्र है और अन्य नक्षत्रों की अपेक्षा अत्यन्त निकट होने के कारण हम इसके अध्ययन से नक्षत्रों के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

२—**दूरी**—सूर्य कितना दूर है, इसके जानने की आवश्यकता पहले पड़ती है, क्योंकि इस दूरी के जानने से ही सूर्य के विषय में

कई एक बातें ठीक ठीक जानी जा सकती हैं। इस दूरी के नापने की रीति प्राय: वही है जिससे क्षेत्र-मापक (सरवेयर, surveyor) दूरस्थ वस्तु की दूरी को नापता है (चित्र २०१)। अन्तर केवल यही है कि सूर्य के दूर होने के कारण इसकी दूरी सीधे निकालने के बदले पहले किसी ग्रह की दूरी को नापते हैं, जैसे मंगल या एरॉस (Eors) की दूरी (अध्याय १२ देखिए)। फिर पृथ्वी और इस ग्रह के चक्कर लगाने के समय (भ्रमण-काल) के सम्बन्ध से सूर्य की दूरी की गणना कर ली जाती है। पता चला है कि सूर्य हमसे लगभग सवा नौ करोड़ मील की विकट दूरी पर है। सवा नौ करोड़! अंकगणित भी क्या ही विचित्र है कि इतनी बड़ी संख्या को ८ ही अंकों में लिख डालता है और इस प्रकार हमारी कल्पना-शक्ति को भ्रम में डाल देता है। इस बात को दृष्टिगोचर करने के लिए कि यह दूरी कितनी बड़ी है कई एक युक्तियों का प्रयोग किया जाता है। जैसे, यदि हम रेलगाड़ी से सूर्य तक जाना चाहें और यह गाड़ी बिना रुके हुए बराबर डाकगाड़ी की तरह

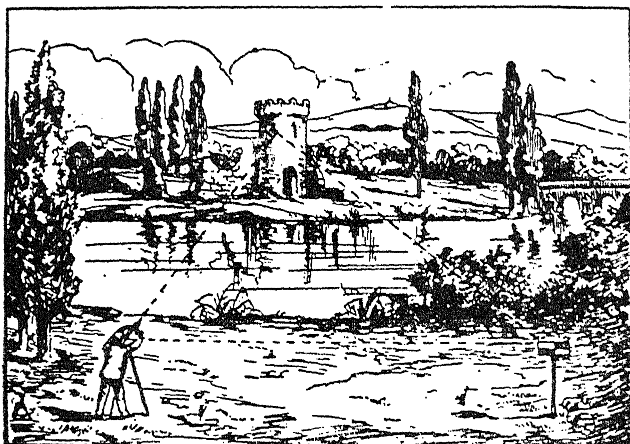


[वाटसन ऐण्ड सन्स की कृपा

चित्र २००—एक छोटी बेधशाला।

यह बनी बनाई बिकती है।

६० मील प्रति घंटे के हिसाब से चलती जाय तो हमें वहाँ तक पहुँचने में (यदि हम रास्ते ही में भस्म न हो जायँ, या बुढ़ापे के कारण हमारी मृत्यु न हो जाय) १७५ वर्ष से कम नहीं लगेगा। १½ पाई प्रतिमील के हिसाब से तीसरे दरजे के आने-जाने का ख़र्च सवा



फ़ेबर के हेवंस से] [अरनेस्ट बेन लिमिटेड की कृपा

चित्र २०१—दूरस्थ और अगम्य वस्तु की दूरी का पता लगाना ।

इसके लिए क्षेत्र-मापक किसी सुगम्य स्थान में अपना झंडा खड़ा कर देता है। फिर अपनी स्थिति, यह झंडा और वह दूरस्थ वस्तु, इन तीन विन्दुओं से बने त्रिभुज के दो कोण और एक भुज को नाप कर इच्छित दूरी का ज्ञान कर लेता है ।

सात लाख रुपया हो जायगा। इस यात्रा के लिए यदि स्टेशनमास्टर नोट लेना न स्वीकार करे तो हमको लगभग साढ़े ग्यारह मन सोना किराया में देना पड़ेगा !

जटायु की दशा स्मरण करके यदि आप सूर्य तक यात्रा करने पर राज़ी न हों, तो यही विचार कीजिए कि सवा नौ करोड़ तक

गिनने में कितना समय लगेगा। यदि आप बहुत शीघ्र गिनेंगे तो शायद एक मिनट में २०० तक गिन डालेंगे, परन्तु इसी गति से लगातार, बिना एक क्षण भोजन या सोने के लिए रुके हुए, गिनते



फेबर के हेवंस से] [अरनेस्ट बेन लिमिटेड की कृपा

चित्र २०२—दूरस्थ वस्तु के नाप का पता लगाना।

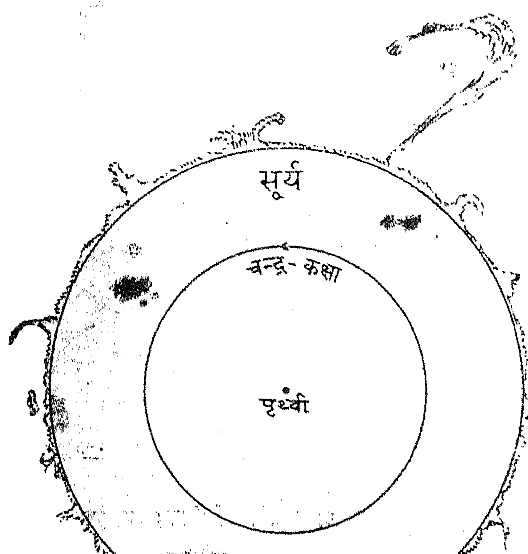
इसके लिए क्षेत्रमापक उस कोण को नापता है जो उस दूरस्थ वस्तु के दो किनारों से आई हुई रश्मियाँ उसकी आँख पर बनाती हैं। इस कोण को और वस्तु की दूरी को जान कर वस्तु की नाप का गणित-द्वारा पता लगा लेना अत्यन्त सरल है।

रहने पर भी आपको सवा नौ करोड़ तक गिनने में ११ महीना लग जायगा!

एक दूसरी युक्ति सुनिए* । यदि हमारी अँगुली जल जाय तो हमको इसका पता तुरन्त ही नहीं लगता, क्योंकि इस

* Gregory : The Vault of Heaven से ।

बात की ख़बर हमारे मस्तिष्क तक पहुँचने में ज़रा सा समय लग जाता है, यद्यपि यह ख़बर १०० फ़ुट प्रतिसेकंड़ के हिसाब से दौड़ती है। अब कल्पना कीजिए कि कोई मनुष्य इच्छानुसार अपने हाथ को तुरन्त लाखों मील बढ़ा सकता है। यदि ऐसा मनुष्य हाथ बढ़ा कर सूर्य को छू दे तो सूर्य के छू जाने पर उसकी अँगुली के जल जाने की सूचना उसके मस्तिष्क तक १६० वर्ष में पहुँचेगी!



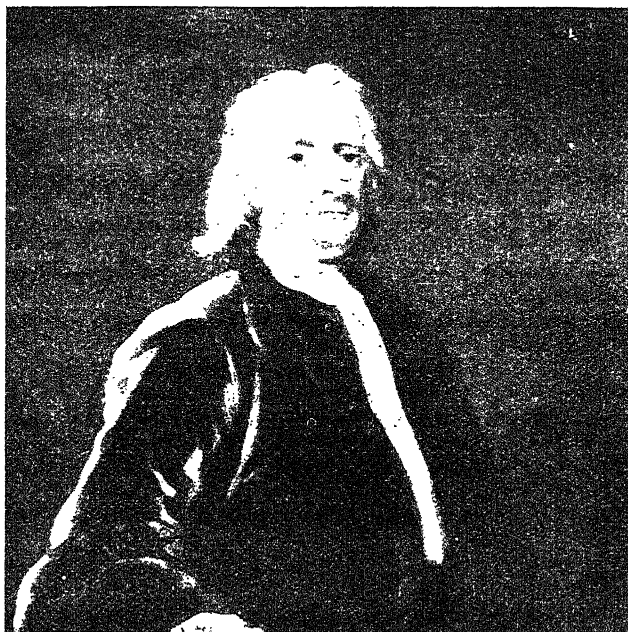
चित्र २०३—**सूर्य और पृथ्वी के नाप की तुलना।**

यदि सूर्य को खोखला करके इसके केन्द्र में चन्द्रमा-सहित पृथ्वी रख दी जाय तो चन्द्र-कक्षा सौर-पृष्ठ की अपेक्षा आधी ही दूरी पर रह जायगी।

आवाज़ हवा में प्रति सेकण्ड १,१०० फ़ुट चलती है। यदि यह शून्य में भी उसी गति से चलती तो सूर्य पर घोर शब्द होने से पृथ्वी पर वह चौदह वर्ष बाद सुनाई पड़ता। फिर, प्रकाश को १,८६,००० मील चलने में केवल एक सेकंड लगता है; परन्तु ऐसे शीघ्रगामी दूत को भी सूर्य से पृथ्वी तक आने में आठ मिनट लग जाते हैं।

३—नाप इत्यादि—सूर्य की दूरी जानने से उसकी नाप (डीलडौल) का पता लगाना सरल है। इसकी रीति वही है

जिसका उपयोग क्षेत्र-मापक दूरस्थ वस्तु की नाप को जानने के लिए प्रयोग करता है (चित्र २०२)। इसके अतिरिक्त, फ़ोटोग्राफ़ में सूर्य के व्यास को नाप लेने से और कैमेरे के ताल का फ़ोकल-लम्बान मालूम होने पर, सूर्य का व्यास शीघ्र ज्ञात हो जाता है।



[स्मिथसोनियन रिपोर्ट से

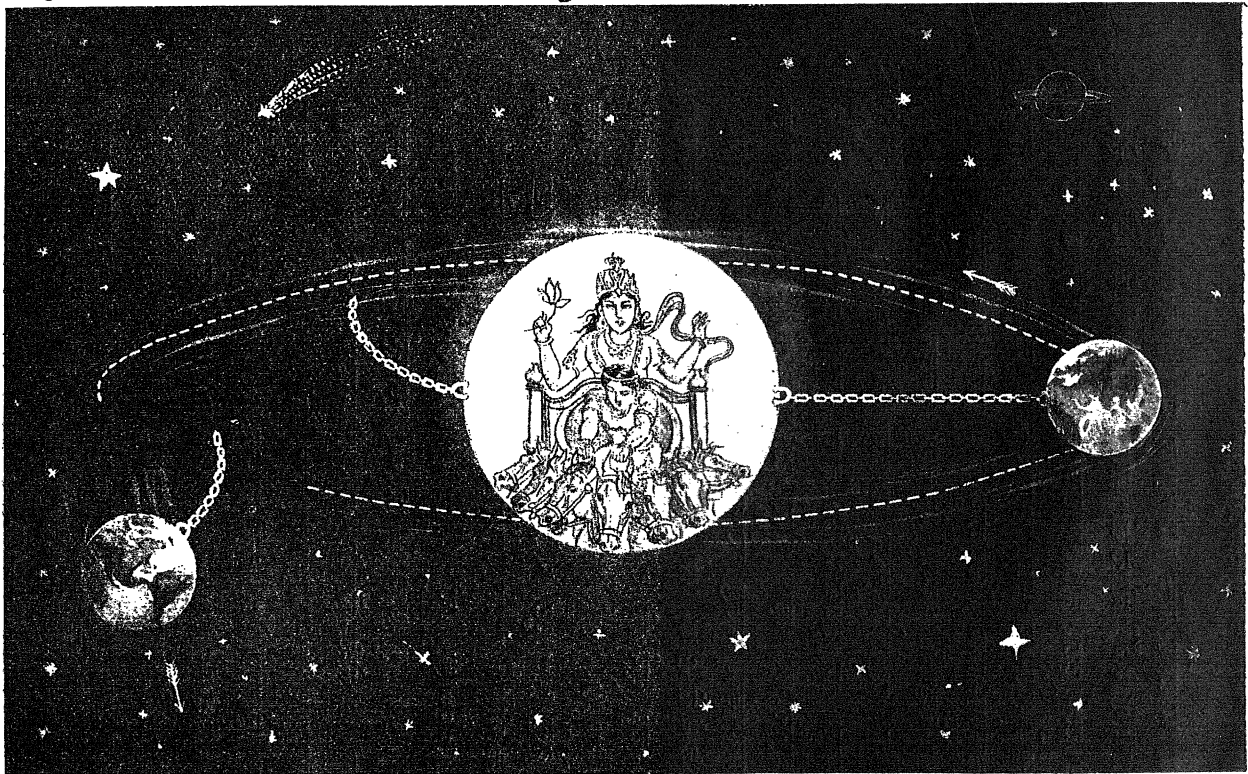
चित्र २०४—न्यूटन।

इसने ही आकर्षण के नियमों का पता लगाया था।

इस प्रकार पता लगा है कि सूर्य का व्यास ८,६४,००० मील है। पृथ्वी का व्यास केवल ७,६२० मील के क़रीब है। इसलिए सूर्य का व्यास पृथ्वी के व्यास से १०९ गुना बड़ा है।

यदि हम कल्पना करें कि सूर्य को खोखला करके इसके केन्द्र में चन्द्रमा-सहित पृथ्वी रख दी जाय, तो चन्द्र-कक्षा सौर-पृष्ठ की अपेक्षा आधी ही दूरी पर रह जायगी ! सूर्य के विकट आकार की कल्पना यों भी की जा सकती है कि यदि सूर्य दो फ़ुट व्यास के कुन्डे से सूचित किया जाय तो इसी पैमाने पर पृथ्वी का निरूपण छोटे से मटर से ही हो जायगा। और मटर को सूर्य से २१५ फ़ुट की दूरी पर रखना पड़ेगा ! और इस पैमाने पर तारे कितनी दूर होंगे ? एक दो मील नहीं, दस बीस, या सौ दो सौ मील भी नहीं; निकटतम तारे को ११ हज़ार मील पर निरूपण करना पड़ेगा ! फिर सूर्य का घन-फल (volume) ? चूँकि व्यास दुगुना करने से घन-फल २ × २ × २, अर्थात् ८ गुना, और तिगुना करने से घन-फल ३ × ३ × ३, अर्थात् २७ गुना, हो जाता है, इसलिए सूर्य का घन-फल पृथ्वी की अपेक्षा १०९ × १०९ × १०९, अर्थात् लगभग १३,००,००० (तेरह लाख) गुना होगा। हमारी पृथ्वी के समान तेरह लाख पृथ्वियों को गला कर एक नया गोला ढाला जाय तब कहीं यह सूर्य के बराबर होगा। परन्तु यह गोला वास्तविक सूर्य से बहुत भारी हो जायगा। सूर्य की घनता पृथ्वी की अपेक्षा लगभग चौथाई ही है, इसलिए सूर्य पृथ्वी से १३ लाख गुना भारी होने के बदले केवल लगभग सवा तीन लाख गुना ही भारी है।

४—सूर्य की तौल—परन्तु सूर्य तौला कैसे गया ? उत्तर यह है कि न्यूटन (Newton) ने आकर्षण-शक्ति के नियमों का पता लगा कर बतलाया कि सर्वत्र दो वस्तुएँ एक दूसरे को आकर्षित करती हैं। जैसे, सूर्य पृथ्वी को खींचता है और पृथ्वी सूर्य को, या यों कहिए कि पृथ्वी और सूर्य के बीच में आकर्षण है। सभी जानते हैं कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। यदि अब किसी



[लेखक के आदेशानुसार टी० के० मित्रा ने बनाया

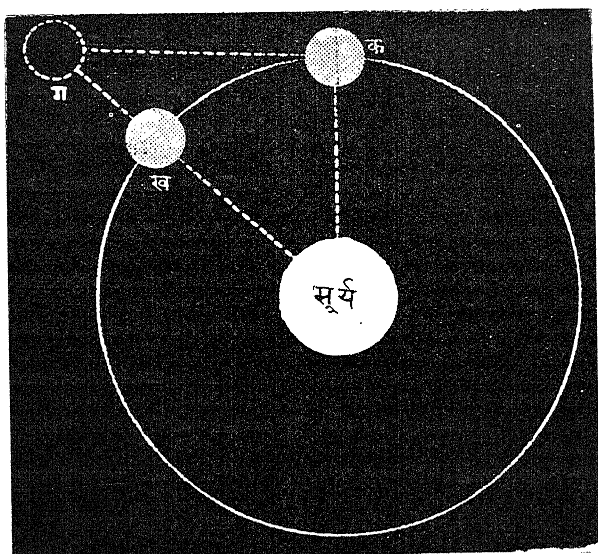
चित्र २०९—यदि आकर्षण-शक्ति का लोप हो जाय तो क्या होगा ?

चित्रकार ने आकर्षण-शक्ति को ज़ंजीर से निरूपण किया है। एक ओर तो आकर्षण-शक्ति के रहने पर पृथ्वी किस प्रकार चक्कर लगाती है यह दिखलाया गया है। दूसरी ओर आकर्षण-शक्ति के न रहने से क्या होगा यह दिखलाया गया है।

त्तण इस आकर्षण-शक्ति का लोप हो जाय तो क्या होगा ? वही होगा जो तागे से बँधे लंगर को नचाते समय तागे के टूटने से होता है। जैसे तागा टूटते ही लंगर छटक जाता है और चक्कर लगाने के बदले सीधे स्पर्श-रेखा की दिशा में चला जाता है, उसी प्रकार यदि आकर्षण-शक्ति मिट जाय तो पृथ्वी भी छटक जायगी और स्पर्श-रेखा की दिशा में चली जायगी (चित्र २०५) न्यूटन का आकर्षण-नियम बतलाता है कि दोनों वस्तुओं में एक जितना ही अधिक भारी* होगा उतना ही अधिक उसका प्रभाव दूसरे पर पड़ेगा और यह जितना ही दूर होगा उतना ही कम प्रभाव पड़ेगा; परन्तु दूरी दुगुनी होने से आकर्षण-शक्ति चौथाई, तिगुनी होने से ९ वाँ भाग, इत्यादि हो जायगी। इसी नियम के बल पर हम सूर्य को तौल सकते हैं। बात यह है कि पृथ्वी के केन्द्र से हमारी दूरी ४,००० मील है। यहाँ पर पहले सेकंड में कोई वस्तु १६ फ़ुट गिरती है। सूर्य के केन्द्र से पृथ्वी सवा नौ करोड़ मील है अर्थात्, सूर्य पृथ्वी के व्यासार्ध की अपेक्षा लगभग २४,००० गुने दूरी पर है। इसलिए यदि किसी वस्तु को पृथ्वी से इतनी दूर ले जायँ जितनी दूर सूर्य है तो वह पृथ्वी की ओर एक सेकंड में केवल $\frac{१६}{२४००० \times २४०००}$ फ़ुट ही गिरेगी। बस, अब यदि यह मालूम हो जाय कि कोई वस्तु यहाँ से एक सेकंड में सूर्य की ओर कितनी दूर तक गिरेगी तो हम सूर्य की तौल बतला सकते हैं; क्योंकि, सूर्य की ओर वस्तुएँ उपरोक्त दूरी को जैगुनी पहले सेकंड में अधिक गिरेंगी, सूर्य पृथ्वी से उतना

* वास्तव में, कहना चाहिए कि "एक में जितना ही अधिक द्रव्य (matter) होगा" इत्यादि, क्योंकि पृथ्वी पर ही वस्तुओं के द्रव्य की नाप उनके वज़न से की जा सकती है; अन्य स्थानों में द्रव्य की नाप वज़न से नहीं की जा सकती।

ही गुना भारी होगा। परन्तु किसी वस्तु का सूर्य की ओर गिरना नापा कैसे जाय ? वस्तुएँ तो सभी पृथ्वी ही की ओर गिरती हैं। इसलिए ज्योतिषी पृथ्वी ही के गिरने को नापता है, क्योंकि पृथ्वी स्वयं भी बराबर सूर्य की ओर गिरती रहती है। आप जानते हैं कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। जब पृथ्वी **क** पर है (चित्र २०६), तब यदि आकर्षण रुक जाय तो यह सीधे **ग** की ओर चली जायगी। अब मान लीजिए कि एक सेकंड में पृथ्वी, आकर्षण के रहने पर **ख** पर पहुँचती है। यदि आक-

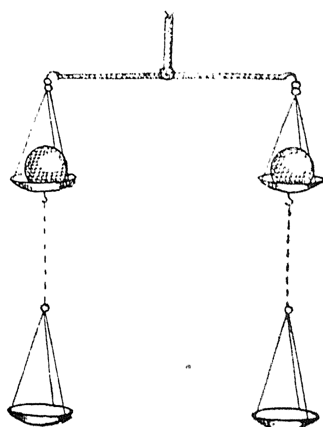


चित्र २०६—पृथ्वी सूर्य की ओर बराबर गिरती रहती है।

स्पष्टता के ख्याल से क से ख बहुत दूर दिखलाया गया है।

र्षण न होता तो पृथ्वी एक सेकंड में लगभग **ग** तक पहुँचती। इसलिए इतनी देर में पृथ्वी **ग** से **ख** तक सूर्य की ओर गिरी। इस प्रकार हमको वे सभी चीज़ें मालूम हो गईं जिनसे सूर्य की

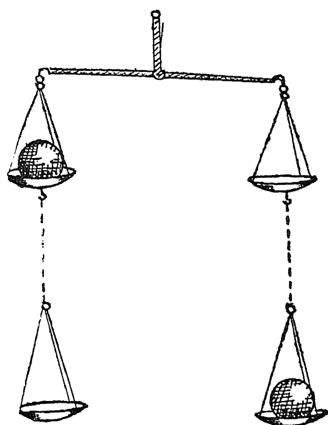
तौल जानी जा सकती है। गणना करने से पता चलता है कि सूर्य पृथ्वी की अपेक्षा ३,३०,००० गुना भारी है। पृथ्वी, कुल मिला कर, अपने ही नाप के पानी के गोले से लगभग साढ़े पाँच गुनी भारी है, इसलिए सूर्य पानी की अपेक्षा लगभग सवा गुना भारी है। यदि सूर्य थोड़ा सा और हलका होता तो पानी में तैर सकता! हाँ, सूर्य का भीतरी भाग बहुत ही भारी होगा; साथ ही, ऊपर की तहें पानी से बहुत हलकी भी होंगी।



चित्र २०७—ऊपर के पल्लों में बराबर बराबर बाँट रखने से उनकी तौल भी बराबर ठहरती है।

यहाँ पर एक बात यह देखने योग्य है कि यदि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती न होती तो सूर्य के आकर्षण से यह सीधे उसी में जा गिरती। सूर्य का आकर्षण कितना अधिक होता है, इसका अनुमान इस बात पर ध्यान देने से किया जा सकता है कि आकर्षण के अभाव में पृथ्वी या किसी अन्य ग्रह को सूर्य के चारों ओर घुमाने के लिए इसको कितने मोटे रस्से से बाँधने की आवश्यकता पड़ेगी। गणना से पता लगा है कि सबसे दूरवाले ग्रह पर भी सूर्य का आकर्षण इतना पड़ता है कि नेपचून को आकर्षण के बदले केवल बाँध कर घुमाने के लिए ५०० मील व्यास के मोटे फ़ौलाद (steel) के डंडे से बाँधना पड़ेगा! इससे कम मज़बूत चीज़ तुरन्त टूट जायगी।

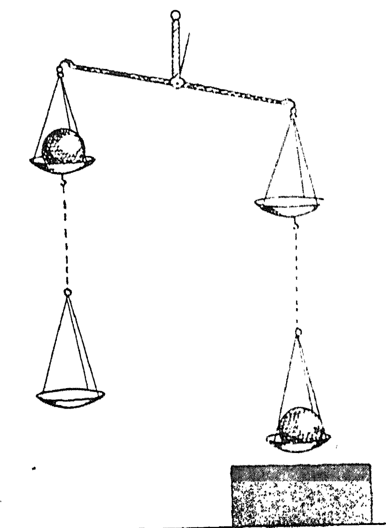
५—पृथ्वी पर आकर्षण-शक्ति—पृथ्वी पर वस्तुएँ भारी इसी लिए मालूम पड़ती हैं कि पृथ्वो उनको अपनी तरफ़ खींचती है। यदि यह आकर्षण कम हो जाय तो चीज़ें कम भारी मालूम होने लगेंगी। ऊँचे पहाड़ों पर, जहाँ पृथ्वी के केन्द्र से वस्तुओं की दूरी अधिक हो जाती है, वे हलकी मालूम देती हैं। ऊँचे पहाड़ों की क्या बात, सूक्ष्म अन्तर बतलानेवाली अच्छी वैज्ञानिक तराज़ुओं से सब जगह इस बात का प्रमाण मिल सकता है। यदि तराज़ू में प्रत्येक ओर दो दो पल्ले लगा दिये जायँ, जैसा चित्र २०७ में दिखलाया गया है और तब ऊपर के पल्लों में दो बराबर बराबर बाँट रख दिये जायँ तो, जैसा सभी आशा करेंगे, दोनों का वज़न बराबर ठहरेगा। परन्तु अब इनमें से किसी एक को नीचेवाले पल्ले में रख दिया जाय, तो नीचेवाला बाँट भारी जान पड़ेगा, क्योंकि अब यह पृथ्वी के अधिक पास है और इसलिए इस पर पृथ्वी का आकर्षण अधिक है (चित्र २०८)।



चित्र २०८—पृथ्वी का आकर्षण। उन्हीं बाँटों में एक बाँट को ऊपर के पल्ले में और दूसरे को नीचे वाले में रखने से नीचेवाला बाँट भारी जान पड़ता है क्योंकि नीचे-वाले को पृथ्वी अधिक आकर्षित करती है।

यदि नीचे के बाँट के नीचे सीसे की भारी सिल्ली रख दी जाय तो इस बाँट का वज़न और भी बढ़ जायगा (चित्र २०९), क्योंकि दूसरे बाँट की अपेक्षा नीचेवाले बाँट पर सीसे के गोले का

आकर्षण अधिक पड़ेगा। जरमनी के योली (Jolly) नामक एक वैज्ञानिक ने पहले पहल ऊपर के प्रयोग को किया था। उसके एक प्रयोग में दोनों बाँटों में से प्रत्येक साढ़े पाँच सेर का था। सीसे का गोला १६० मन का था। यह नीचेवाले बाँट से २२ इंच की दूरी पर था। इस गोले के कारण नीचेवाले बाँट का वज़न लगभग $\frac{१}{२००}$ रत्ती बढ़ गया।

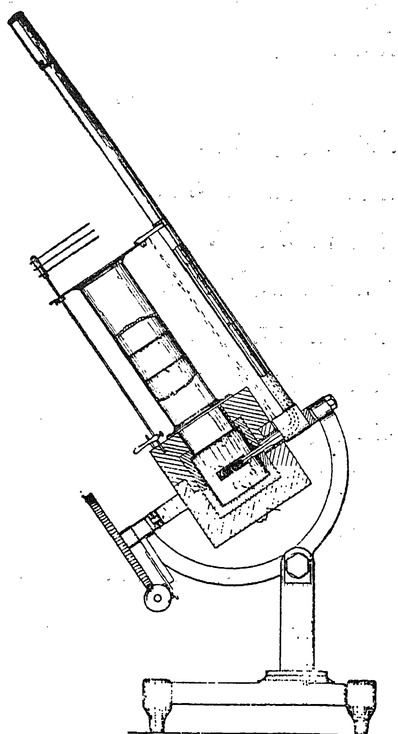


चित्र २०६—सीसे का आकर्षण।

यदि नीचेवाले बाँट के नीचे सीसे की भारी सिल्ली रख दी जाय तो वही बाँट और भी भारी जान पड़ेगा। सरलता के लिए चित्रों में वैज्ञानिक के बदले साधारण तराज़ू दिखलाई गई है और यह सूचित करने के लिए कि दोनों पल्लों के बीच का तार बहुत लम्बा है, तार बीच में टूटा हुआ दिखलाया गया है।

६—सूर्य पर आकर्षण-शक्ति—यह तो हुई पृथ्वी और पृथ्वी की वस्तुओं की बात। अब देखना चाहिए कि सूर्य पर क्या दशा है। सूर्य के केन्द्र से उसकी सतह की दूरी मालूम है और सूर्य में कितना द्रव्य है, अर्थात् इसका द्रव्य-मान (mass) क्या है, यह भी मालूम है; इसलिए न्यूटन के नियम से हम तुरन्त पता चला सकते हैं कि सूर्य पर पृथ्वी की अपेक्षा आकर्षण-शक्ति २८ गुनी अधिक है। यहाँ का एक सेर का बाँट वहाँ २८ सेर का जान पड़ेगा; और यदि गरमी की बात छोड़ दी जाय तो वहाँ पर मनुष्य अपने ही बोझ से चूर हो जायगा। हमारी टाँगें यहाँ हमारे शरीर के डेढ़ दो मन के भार को सुगमता

से सहन कर सकता हैं। सूर्य पर हम डेढ़ मन के बदले ४२ मन के हो जायँगे। जैसे घी का लोंदा अपने ही बोझ से दब कर फैल जाता है, वैसे ही यदि हम सूर्य पर पहुँच जायँ और आँच से बच जायँ तो मारे बोझ के हमारा कचूमर निकल जायगा।



[ऐबट के "दि सन" से

चित्र २१०—सूर्य की गरमी नापने के आधुनिक यन्त्र को भीतरी बनावट।

सूर्य पर आकर्षण-शक्ति इतनी अधिक है, तो भी यह सिमट कर ख़ूब ठस नहीं हो जाता—स्मरण रखिए कि यह पानी से केवल डेढ़ गुना ही भारी है, यद्यपि, जैसा हम आगे देखेंगे, इसमें लोहा इत्यादि भारी भारी धातुएँ भी अधिक मात्रा में हैं। यह बात केवल यही सूचित करती है कि सूर्य में भयानक गरमी है, जिससे लोहे, इत्यादि, सभी पदार्थ वहाँ भाप के रूप में हैं।

सूर्य के केन्द्र में दबाव (pressure) बहुत अधिक होगा। सूर्य में यदि दबाव सब जगह एक सा होता तो भी यह दबाव हमारे वायुमंडल के दबाव से (जो प्रतिवर्ग इंच पर साढ़े सात सेर है) दस खरब गुने से भी अधिक होता, परन्तु दबाव सब जगह

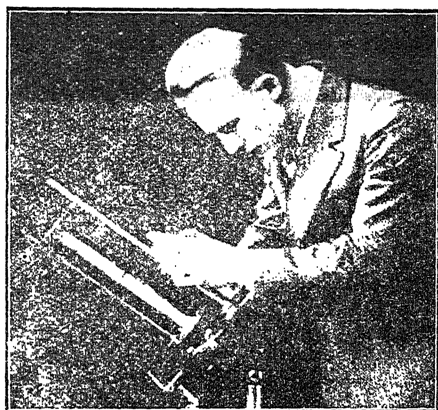
तो एक-सा होगा नहीं। इसलिए सूर्य के केन्द्र पर दस खरब गुने से कहीं अधिक दबाव होगा। इतने दबाव में भी इतना कम घनत्व तभी हो सकता है जब सूर्य के केन्द्र का तापक्रम कई लाख डिगरी हो।

७—**सूर्य की गरमी**—सूर्य से हमको कितनी गरमी मिलती है? बादल इत्यादि रुकावटों को छोड़, क्या सूर्य बराबर हमको एक-सा गरमी भेजता है? इन प्रश्नों का उत्तर हमें अभी हाल ही में मिला है और अब भी इनके विषय में खोज हो ही रही है। सबसे अधिक कठिनाई हमारे वायु-मंडल से होती है। यह बराबर बदलता रहता है। कभी कड़ी धूप होती है, कभी छाया रहती है। कभी वायु में जल-वाष्प अधिक रहता है; कभी बहुत कम। इसलिए वैज्ञानिक लोगों ने अनेक कष्ट उठा कर अत्यन्त उजाड़ जगहों में, रेगिस्तानों में और पहाड़ों की चोटियों पर सूर्य की गरमी को नापा है।

सूर्य की गरमी-विषयक खोज के साथ अमेरिका के एस० पी० लैंग्ली (S. P. Langley) का नाम सदा स्मरण रहेगा। लैंग्ली ही ने बोलोमीटर (bolometer) नाम का यंत्र निकाला जिससे गरमी सरदी का अत्यन्त सूक्ष्म ज्ञान किया जा सकता है और वर्षों तक इससे खोज करता रहा। उसने माउन्ट ह्विटनी (Mount Whitney) के शिखर पर जाकर सूर्य की गरमी को नापा था। यह दक्षिण कैलिफ़ोर्निया (Southern California) के सिर्रा नेवादा (Sierra Nevada) श्रेणियों में से एक पहाड़ है। इसकी चोटी १४,८८७ फ़ुट ऊँची है। देश उजाड़ रेगिस्तान है, और यहाँ की हवा बेहद ख़ुश्क रहती है। इसके अतिरिक्त एक लाभ यह है कि यह पहाड़ प्राय: एक-दम खड़ा है और इस प्रकार दस पाँच मील की दूरी के भीतर ही ११,००० फ़ुट ऊँचाई का अन्तर मिल

जाता है। लैंग्ली ने साथ ही साथ ऊपर और नीचे दोनों स्थानों पर सूर्य की गरमी नापी और इस प्रकार वह इसका अनुमान कर सका कि यदि वायु-मंडल के ऊपर जाकर सूर्य की गरमी नापी जाती तो कितनी गरमी मिलती। पता चला कि रश्मियों के समुद्र-तल तक पहुँचते पहुँचते लगभग आधी गरमी वायु-मंडल में ही रह जाती है।

८—गरमी नापने का आधुनिक यंत्र—सूर्य की गरमी नापने का एक आधुनिक यंत्र चित्र २१० और २११ में दिखलाया गया है। इसमें काली की हुई चाँदी की एक सिल्ली रहती है। धूप इसी पर पड़ती है। इस सिल्ली में एक छोटा सा बेंड़ा छेद करके और उसमें इस्पात का अस्तर लगा कर पारा भर देते हैं। पारे में एक थरमामीटर का सिर डुबाया रहता है। जब चाँदी की सिल्लो पर धूप पड़ती है तब यह गरम हो जाती है; साथ ही पारा भी गरम हो जाता है। इसके तापक्रम का पता ताप-मापक (थरमामीटर) से लगा लिया जाता है। सूर्य से जितनी ही अधिक गरमी आती है, ताप-क्रम उतना ही बढ़ता है। चाँदी की सिल्ली में हवा न लगे इसलिए यह ऐसे बक्स में बन्द रहता है जिसके एक सिरे पर धूप के आने के लिए एक चोंगा लगा रहता है। चोंगे के कारण धूप तो



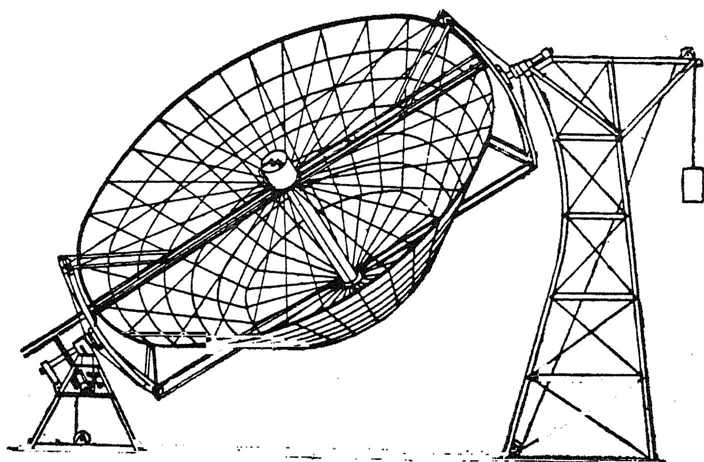
[सायंटिफ़िक अमेरिकन से

चित्र २११—पिछले चित्र में दिखलाये गये यन्त्र से काम किया जा रहा है।

चाँदी की सिल्ली तक पहुँच जाती है, परन्तु उसमें हवा नहीं लगने पाती। अधिक रक्षा के लिए चोंगे के भीतर कई एक पत्र लगे रहते हैं, जिनमें चाँदी की सिल्ली से कुछ ही बड़े छेद कटे रहते हैं। इससे चोंगे के भीतर के वायु में धारायें उत्पन्न नहीं होने पातीं। चोंगेवाला बक्स एक काठ के बक्स में बन्द रहता है जिससे धूप की गरमी को छोड़ अन्य किसी रीति से भीतर गरमी न पहुँचने पावे। यह यंत्र नाड़ी-मंडल दूरदर्शक की तरह आरोपित किया रहता है जिसमें इसका मुँह ठीक सूर्य की ओर कुछ समय तक रक्खा जा सके। चोंगे के मुँह पर तेहरा ढकना लगा रहता है जिसको हटा देने से धूप भीतर जा सकती है। ऐसे यंत्रों से कई स्थानों में सूर्य की गरमी बराबर नापी जा रही है। वायु-मंडल से जितनी गरमी रुक जाती है उसका हिसाब लगा लेने पर सभी स्थानों में सूर्य से कितनी गरमी आती है इसका मान प्राय: एक ही आता है, जिससे पता चलता है कि इस प्रकार के यंत्र पर पूरा भरोसा किया जा सकता है।

८—मनुष्य शक्ति कहाँ से प्राप्त करता है—शक्ति के लिए मनुष्य वायु से हवा-चक्की चलाता है या नाव में पाल लगाता है। जल-प्रपात से पनचक्की चलती है। अमरीका के प्रसिद्ध नायगरा जल-प्रपात (Niagara waterfalls) से बड़ी बड़ी बिजली की मशीनें चलाई जाती हैं। अनुमान किया गया है कि नायगरा प्रपात के जल में ८० लाख अश्वबल की शक्ति है। संसार में केवल नायगरा में ही पनचक्कियाँ नहीं चलतीं। हज़ारों जगह चलती होंगी और लाखों जगह चल सकती होंगी। जल से जितनी शक्ति उत्पन्न हो सकती है वह अवश्य ही अति बृहत् होगी; परन्तु वायु में भी कम शक्ति नहीं रहती है। केवल २० मील प्रतिघंटे चलती हुई जितनी हवा १०० वर्ग फुट से जाती है, उतनी में ५६० अश्वबल

की शक्ति होती है। जिन्हें कभी दस पाँच अश्वबल का तैल-इञ्जन (oil-engine) ख़रीदना और चलाना पड़ा होगा वे ही समझ सकेंगे कि हवा में कितना रुपया मुफ़्त बहा करता है। परन्तु प्रश्न यह है कि इतनी शक्ति आती कहाँ से है? वायु को कौन चलाता है? पानी को पहाड़ों पर कौन चढ़ाता है? उत्तर है—सूर्य। सूर्य ही पृथ्वी को गरम कर देता है, जिससे वहाँ की हवा गरम होकर ऊपर



[एबट की "दि सन" से

चित्र २१२—सूर्य की गरमी से चलनेवाले इंजन का बायलर (boiler)

उठती है और इसके स्थान को भरने के लिए बगल की हवा दौड़ती है। सूर्य ही समुद्र से पानी को भाप बना कर ऊपर भेजता है जहाँ यह पहाड़ों से टकरा कर, या स्वयं ठंढा होकर, पानी के रूप में गिरता है और नीचे की ओर बहने लगता है। थोड़ा सा खेती सींचने के लिए कूयें से पानी खींचने में कितनी शक्ति ख़र्च करनी पड़ती है। परन्तु सूर्य तो समुद्र से मील भर या अधिक ऊँचा पानी

चढ़ाता है और जहाँ पर वार्षिक वर्षा केवल ३५ इंच है वहाँ पर भी साल भर में प्रतिवर्ग मील पर ५ करोड़ मन से अधिक जल बरसाता है।

१०—पत्थर के कोयले में कहाँ से शक्ति आई—इन दिनों मनुष्य पत्थर के कोयले से ही अधिक शक्ति प्राप्त करता है, परन्तु पत्थर के कोयले में भी तो शक्ति सूर्य ही से आई है। पत्थर का कोयला वस्तुतः बहुत पुरानी लकड़ी या वनस्पति है जो कई युग पूर्व मिट्टी के नीचे दब गई थी और इसलिए पत्थर की तरह कड़ी हो गई है। परन्तु पौधे और वृक्षों में जलने और शक्ति पैदा करने की योग्यता सूर्य से ही आती है। सूर्य की रोशनी और गरमी में पौधे वायु के करबन द्विओषिद (carbon dioxide) से करबन (carbon) ग्रहण करते हैं। करबन द्विओषिद से करबन अलग करने के लिए शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। यह शक्ति धूप से आती है और वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि पौधे धूप से जितनी शक्ति खींचते हैं, ठीक उतना ही, न एक रत्ती कम, न एक रत्ती अधिक, जलने पर देते हैं। मिट्टी के तेल और पेटरोल, इत्यादि के लिए भी यही बात लागू है। हम देखते हैं सब शक्ति असल में सूर्य ही से आती है। "स्वभावतः लोग जानना चाहते हैं" प्रोफ़ेसर मोल्टन लिखते हैं कि "शक्ति प्राप्त करने के ये ख़ज़ाने सदा चलेंगे या नहीं। वायु अवश्य तब तक बहता रहेगा और पानी तब तक बरसता रहेगा जब तक पृथ्वी और सूर्य वर्तमान स्थिति में रहेंगे, परन्तु कोयले और मिट्टी के तेल अन्त में सब ख़र्च हो जायँगे। ये कई सौ वर्ष, कदाचित् कुछ हज़ार वर्ष, तक चलेंगे। एक व्यक्ति के, और शायद एक जाति के भी जीवन के मुक़ाबले में इतना समय बहुत अधिक जान पड़ता है, परन्तु हमारे वंशज जितने समय तक इस पृथ्वी पर वास करेंगे उसका इतना समय एक अत्यन्त सूक्ष्म भाग है। इसलिए

उनको अन्य शक्तियों के भंडार पर, जिनका इस समय प्रयोग नहीं हो रहा है निर्भर होना पड़ेगा। शायद, मनुष्य-जाति का कोई महान् उपकारक किसी ऐसी रीति का आविष्कार करेगा जिससे सूर्य से पृथ्वी पर आनेवाली ढेर की ढेर शक्ति तुरन्त काम में लाई जा सकेगी। इस समय तो हम सब उस शक्ति के, जो कई युग बीत गये पृथ्वी पर आई थी, नाम-मात्र बचे खुचे अंश पर निर्भर हैं जो कोयले और तेल में समा गई थी और इसलिए अब तक बच गई है"*।



चित्र २१३—अँगूठी के नग के बराबर सूर्य की सतह से १४,००० मोमबत्ती की रोशनी और ३ अश्वबल की शक्ति बराबर निकला करती है।

११—धूप से रसोई बनाना और इंजन चलाना—भूतकाल में भी सूर्य से धूप के रूप में आई शक्ति को काम में लाने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये हैं। कहा जाता है कि सन् २१४ ई० पू० (214 B.C.) में जगत्प्रसिद्ध वैज्ञानिक और दर्शनज्ञ आर्किमिडिज़ (Archimedes), ने रोम से आये वैरियों के जहाज़ों पर सूर्य की किरणों को दर्पणों से एकत्रित करके उनको भस्म कर दिया। एक फ्ऱान्सीसी वैज्ञानिक ने पीछे प्रयोग करके देखा कि इस प्रकार आग लगाना सम्भव है या नहीं और उसने ऐसा करने की सुगमता को प्रमाणित कर दिया। ६ इंच × ९ इंच के ३६० दर्पणों से बने नतोदर दर्पण से वह ८५ गज़ की दूरी पर रक्खी लकड़ी को जला सकता था। प्रसिद्ध विलियम हरशेल के लड़के ने, जो स्वयं मशहूर ज्योतिषी था, दक्षिण अफ्रीका में देखा कि वह कम्बल से मढ़े और शीशे से ढके बरतन में अंडा, फल, मांस इत्यादि

* Moulton : Introduction to Astronomy, p. 353.

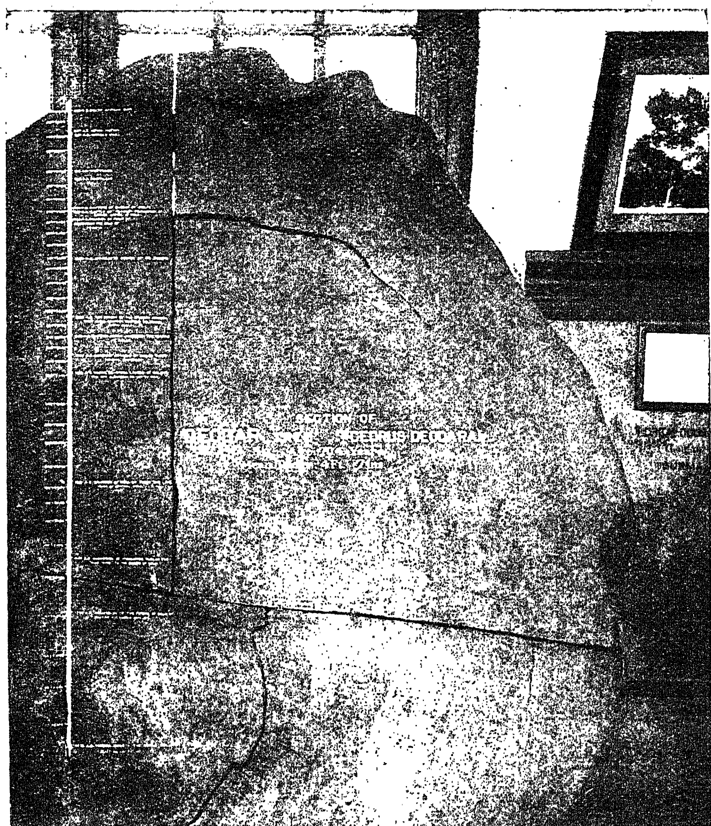
पका सकता था । कम्बल, लकड़ी इत्यादि से बरतनों को मढ़ने से बरतन की गरमी बाहर नहीं जा सकती। शीशे के ढकने द्वारा सूर्य की गरमी भीतर घुस जाती है, परन्तु बरतन की गरमी बाहर नहीं निकलने पाती। जैसे सायकिल के वाल्व (valve) द्वारा पम्प की हवा ट्यूब में चली जाती है परन्तु ट्यूब की हवा बाहर नहीं निकलने पाती, कुछ कुछ उसी प्रकार शीशे में से भी धूप की गरमी भीतर चली जाती है, परन्तु बरतन की गरमी बाहर नहीं निकलने पाती। बात यह है कि शीशा ख़ूब गरम वस्तुओं से आये हुए प्रकाश और गरमी के लिए पारदर्शक है, परन्तु कम गरम वस्तुओं से निकली गरमी के लिए अपारदर्शक है। इसी लिए बक्स को शीशे से ढकना चाहिए। पूरी सफलता के लिए, एक इंच का अन्तर दे कर शीशे के ऊपर एक दूसरा शीशा भी देना चाहिए, जिससे बरतन की गरमी ज़रा भी बाहर न जाने पावे। बरतन के मुँह को चौड़ा होना चाहिए और इसको सदा सूर्य की ओर रखना चाहिए।

लगभग पचास वर्ष हुए बम्बई में दर्पणों से सूर्य-रश्मियों को एकत्रित करके रसोई बनाने का प्रबन्ध एक व्यक्ति ने किया था। जनवरी के जाड़े में भी केवल दो घंटे में सात मनुष्यों के लिए रसोई बन जाती थी*। कैलिफ़ोर्निया में एक व्यक्ति ने चित्र २१२ में दिखलाये गये आकार के बड़े दर्पण से, जो छोटे छोटे कई दर्पणों को उचित स्थिति में चिपकाने से बना था, पानी खौला कर ढाई अश्वबल का इंजन चलाया। परन्तु अभी एक भी इंजन ऐसा नहीं निकला जो प्रतिदिन सुगमता से कार्य में लाया जा सके। अभी तक तो सबसे सरल रीति यही है कि

---

* Scientific American, June 5, 1878; quoted in Abbot: The Sun.

जंगल के वृक्षों में सूर्य से आई शक्ति पहले भर ली जाय और फिर उस लकड़ी को जला कर शक्ति पैदा की जाय।



[फ़ॉरेस्ट रिसर्च इन्स्टिट्यूट, देहरादून

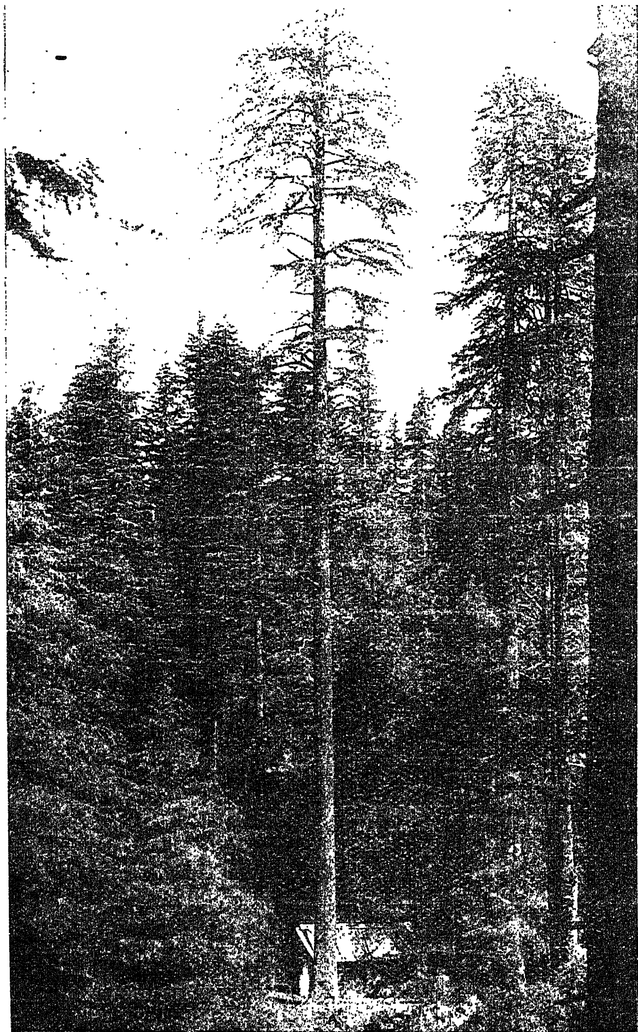
चित्र २१४—वृक्षों के वार्षिक छल्ले।

अभाग्यवश ब्लाक से छपे इस चित्र में छल्ले बहुत स्पष्ट नहीं हैं, क्योंकि वे बहुत सूक्ष्म हैं। इतने में कुल ७०४ छल्ले (वृत्ताकार धारियाँ) हैं।

१२—सूर्य से कितनी शक्ति आती है—पहले बतलाये गये यंत्र से धूप की गरमी नापने और थोड़ी सी गणना करने

से पता चलता है कि वायुमंडल की ऊपरी सतह पर, जब रश्मियाँ खड़ी गिरती हैं तब प्रतिवर्ग गज़ डेढ अश्वबल के बराबर शक्ति आती है। वायुमंडल में ही कुछ गरमी के रुक जाने के कारण और रश्मियों के बराबर खड़ी न रहने के कारण उत्तरी भारत-वर्ष की धूप में लगभग २ वर्ग गज़ पर सामान्य रीति से एक अश्वबल के बराबर शक्ति पड़ती है। कुल पृथ्वी भर पर कितनी अधिक शक्ति गिरती होगी! अनुमान किया गया है कि यह लगभग २३,००,००, ००,००,००,००० अश्व-बल के बराबर है।

परन्तु सूर्य से देखने पर पृथ्वी नन्हीं सी दिखलाई पड़ती है। यह कितनी छोटी सी दिखलाई पड़ती होगी इसको आप इस प्रकार दृष्टिगोचर कर सकते हैं:—शुक्र (Venus) हमको सदा एक-सा नहीं दिखलाई पड़ता है। यह कभी छोटा और कभी बड़ा जान पड़ता है। जब शुक्र सबसे बड़ा दिखलाई पड़ता हो तो उसके क्षेत्रफल के पंद्रहवें भाग का अनुमान कीजिए। बस, सूर्य से देखने पर पृथ्वी इतनी ही छोटी दिखलाई पड़ती होगी। सूर्य से प्रकाश और गरमी चारों ओर छिटकती है, केवल पृथ्वी ही की ओर नहीं। इसी से आप समझ सकते हैं कि सूर्य से कुल मिला कर कितनी शक्ति चलती होगी। ज़रा सी गणना करने पर पता लगेगा कि सूर्य की सतह के प्रत्येक वर्ग इंच से ५४ अश्वबल की शक्ति निकलती है। अँगूठी के नग के बराबर सूर्य की सतह से लगभग ३ अश्वबल की शक्ति रात-दिन, बराबर, निकला करती है। सूर्य के प्रत्येक वर्ग सेन्टीमीटर से क़रीब ५०,००० मोमबत्ती (candle-power) की रोशनी निकलती है। यदि हमारी अँगूठी के नग की ऊपरी सतह से रोशनी इसी हिसाब से निकलने पाती तो इससे १४ हज़ार मोमबत्ती की रोशनी निकला करती! सूर्य की भीषण शक्ति का अनुमान यों भी किया जा सकता है कि सूर्य की



[फ़ॉरेस्ट रिसर्च इन्स्टिट्यूट, देहरादून

चित्र २१९—वह वृक्ष जिसको काटकर पिछला फ़ोटोग्राफ़ लिया गया है।

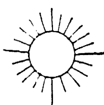
स्त्री की ऊँचाई पर ध्यान देने से वृक्ष की ऊँचाई का कुछ पता चल सकता है। इस वृक्ष की आयु केवल ७०४ वर्ष है। सवा तीन हज़ार वर्ष की आयु के वृक्ष भी मिले हैं। आयु का पता वृक्ष के वार्षिक छल्लों से लगता है, जिनसे पता चलता है कि प्राचीन काल में भी इन दिनों ही जैसी ऋतु होती थी।

कुल गरमी जो साल भर में बाहर जाती है, वह ११×१०^{२४} (११ पर २४ सुन्ना) मन बढ़िया पत्थर के कोयले को जलाने से मिलती !

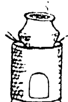
१३—क्या सदा एक सी गरमी आती है—इस बात की जाँच करने पर कि सूर्य से क्या सदा एक सी गरमी आती है पता चला है कि गरमी बराबर नहीं आती। कभी कभी साधारण गरमी के दशम अंश तक कमी बेशी हो जाती है; परन्तु इस बात की जाँच अब भी हो रही है। कुछ वर्षों में इस विषय पर अधिक ज्ञान प्राप्त करने की आशा की जा रही है। पुराने ज़मानों में आज की अपेक्षा कम या अधिक गरमी आती थी इस बात का पता लगाने की चेष्टा पुराने वृक्षों की जाँच करने से की गई है। बड़े वृक्षों के तनों को काटने से चित्र २१४ में दिखलाये गये आकार के छल्ले दिखलाई पड़ते हैं। एक एक छल्ला प्रति-वर्ष उगता है। इन छल्लों के गिनने से वृक्ष की उमर भी आसानी से जानी जा सकती है। कुछ वृक्ष ३,२०० वर्ष की आयु के भी मिले हैं। इनके छल्लों को देखने से पता चलता है कि तीन हज़ार वर्ष में सूर्य की गरमी इतना नहीं घटी बढ़ी है कि उससे वृक्षों के बढ़ने और मोटे होने में कोई अन्तर दिखलाई पड़े। हाँ, इन छल्लों से भी उस ११ वर्षीय चक्र का कुछ कुछ समर्थन होता है जिसका ज़िक्र आगे किया जायगा।

१४—वायु-मंडल का प्रभाव—पृथ्वी के नीचे स्थानों में क्यों गरमी पड़ती है और पहाड़ों पर क्यों सरदी पड़ती है, यद्यपि वे सूर्य के अधिक निकट हैं? इसे और अन्य बातों के समझने के लिए यह आवश्यक है कि पृथ्वी के वायु-मंडल के प्रभाव पर विचार किया जाय। वायु-मंडल के रहने से पहले तो हवा चलने के कारण गरम और ठंढे स्थानों के ताप-क्रम का अन्तर अधिक देर तक रहने नहीं पाता। गरम स्थान ठंढा होने लगता है और ठंढा स्थान गरम। इसके

अतिरिक्त वायु-मंडल ठीक उसी प्रकार काम देता है जिस प्रकार शीशा (प्रक्रम ११ देखिए)। वायु-मंडल-द्वारा पृथ्वी तक सूर्य की गरमी पहुँच जाती है; परन्तु पृथ्वी की गरमी बाहर नहीं जाने पाती। वायु में जल-वाष्प के बढ़ने से इस प्रकार का प्रभाव बढ़ जाता है। यही कारण है कि गरमी के दिनों में दिन भर धूप रहने के बाद रात को बदली हो जाने से बड़ी गरमी मालूम पड़ती है और अधिक वाष्प से युक्त पुरुआ (पूर्व दिशा से आई) हवा में रात इतनी ठंढी नहीं होती जितना सूखे पछुआ (पश्चिम दिशा से आई) हवा में।









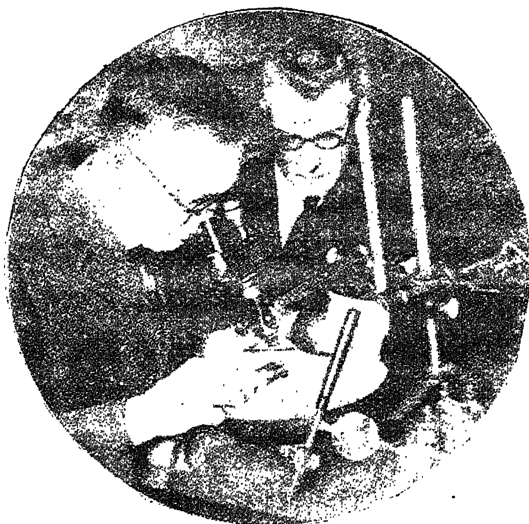
चित्र २१६—दो चार चिर-परिचित ताप-क्रम।

वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोग-शाला में प्रयोग करके गरम वस्तुओं के ठंढे होने के नियम का पता लगाया है। यह जानकर कि दिन में सूर्य से कितनी गरमी आती है और ठंढे होने के नियम से यह जान कर कि पृथ्वी से कितनी गरमी निकल जायगी पता लगा है कि यदि वायु-मंडल न होता तो पृथ्वी का तापक्रम –१५° फ़ा० हो जाता, जिससे समुद्र भी जम जाता।

अब हम समझ सकते हैं कि पहाड़ पर क्यों ठंढक पड़ती है। वहाँ धूप कुछ तेज़ अवश्य होती है, परन्तु इसलिए नहीं कि वह सूर्य के निकट है; सवा नौ करोड़ मील में दो चार मील घट जाने से क्या होता है। धूप कड़ी इसलिए होती है कि वहाँ का वायु स्वच्छ होता है। परन्तु रात्रि में पृथ्वी की गरमी बिना अधिक रुकावट के बाहर निकल जाती है। आय और व्यय का परता बैठाने पर फल यह होता है कि नीचे के स्थानों के हिसाब से वहाँ गरमी कम पड़ती है, क्योंकि आय के कुछ अधिक होने पर भी व्यय नीचे की अपेक्षा बहुत अधिक होता है।

ठंढा होने के नियम से पता चलता है कि किसी दिये हुए तापक्रम पर किसी वस्तु से कितनी गरमी निकलती है; और किसी वस्तु पर सूर्य की कितनी गरमी पड़ती है, इसका हिसाब लगाना भी सरल है। परन्तु प्रत्येक ग्रह, इत्यादि, को सूर्य से जितनी गरमी मिलती है ठीक उतनी ही बाहर भी जाती होगी, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो उस ग्रह का तापक्रम दिन पर दिन या तो बढ़ता जाता या घटता जाता और जब गरमी की आय और व्यय दोनों बराबर हो जाते तभी तापक्रम भी स्थायी हो जाता। ग्रहों की उत्पत्ति हुए इतना समय बीत गया है कि अवश्य ही उनका तापक्रम स्थायी हो गया होगा। इस प्रकार आय और व्यय

को बराबर मान लेने से हमें ग्रह के अव्यक्त तापक्रम का पता लगाने का एक मार्ग मिल जाता है। इस रीति से पता चला है कि मंगल के वायु-मंडल का ऊपरी भाग साधारणत: इतना ठंढा होगा कि वहाँ पारा भी जमने लगेगा, पूर्णमासी के चन्द्रमा पर खौलते हुए



[पापुलर सायंस से

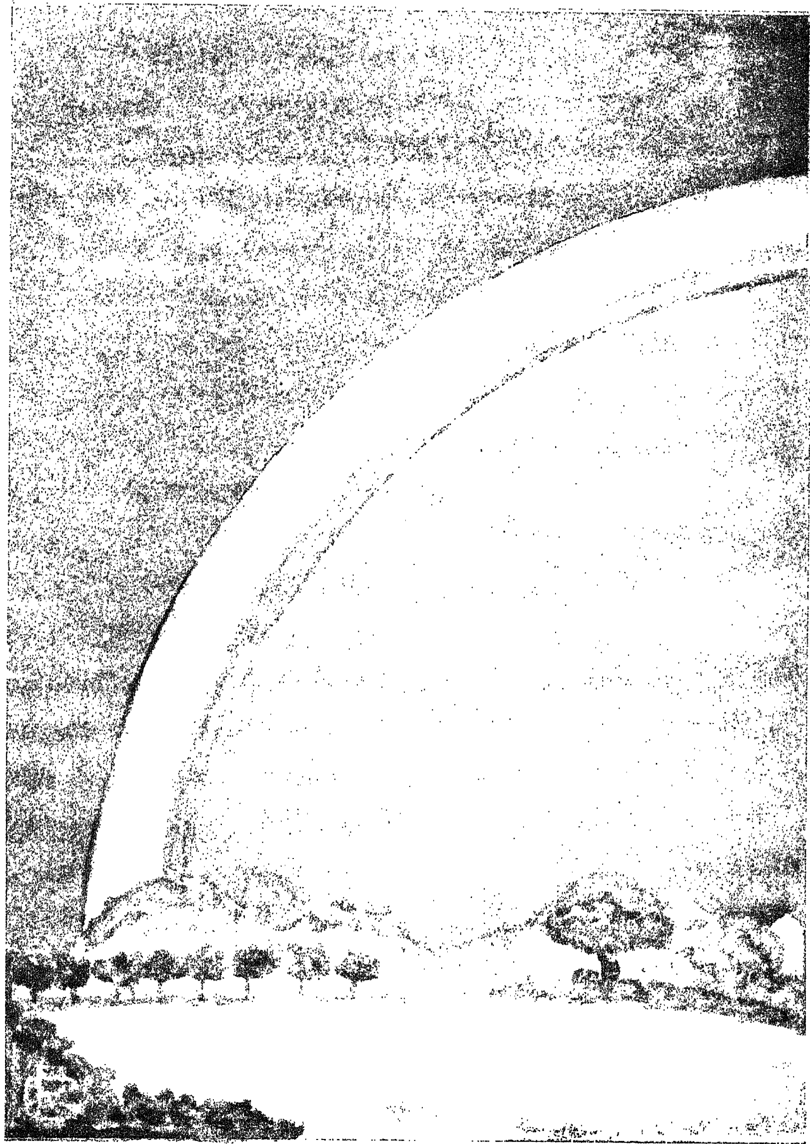
चित्र २१७—**बोलोमीटर बन रहा है।**

यह इतना सूक्ष्म यन्त्र है कि इसके ठीक बनने या न बनने की जाँच सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र द्वारा हो की जा सकती है।

पानी के समान तापक्रम होगा, शुक्र का तापक्रम इससे कुछ कम होगा और नेपचून पर इतनी ठंढक होगी कि वहाँ पर हवा भी जम जायगी।

१५—सूर्य का तापक्रम—सूर्य कितना गरम है इस बात का पता भी बड़ी युक्ति से लगाया गया है। आपने देखा होगा कि

आग की रोशनी लाल होती है। बिजली बत्ती में कम बिजली लगा कर यदि इसको थोड़ा ही गरम किया जाय तो यह लाल ही होकर रह जायगी। यदि इसमें थोड़ी और बिजली भेजी जाय तो यह अधिक गरम हो जायगी। इससे प्रकाश भी अधिक निकलेगा और साथ ही प्रकाश में पीलापन आ जायगा। गरमी और बढ़ाने से प्रकाश और अधिक श्वेत हो जायगा। अधिक गरमी बढ़ाने से प्रकाश में नीलापन आने लगता है। अब यह देखना चाहिए कि इस बात से सूर्य के ताप-क्रम जानने में किस प्रकार सहायता मिलती है। ऊपर की बात से पता चलता है कि किसी वस्तु का जैसे जैसे तापक्रम बढ़ता जायगा वैसे वैसे उसके प्रकाश का रंग बदलता जायगा। बात यह है कि (जैसा हम देख चुके हैं) श्वेत प्रकाश लाल, नारंगी, पीला, हरा इत्यादि कई रंगों के मिश्रण से बना है। तापक्रम कम रहने से लाल प्रकाश अधिक आता है, फिर नारंगी रंग का प्रकाश अधिक आता है, फिर पीले की पारी आती है, इत्यादि। इसलिए यदि हम किसी वस्तु से आये हुए प्रकाश को त्रिपार्श्व (prism) की सहायता से भिन्न भिन्न रंगों में विभाजित कर दें और प्रत्येक रंग के प्रकाश की तेज़ी को नापें तो हम बतला सकते हैं कि प्रकाश के उद्गमस्थान का ताप-क्रम क्या होगा। इस काम के लिए प्रकाश की तेज़ी को एक अत्यन्त सूक्ष्म यंत्र से नापते हैं जिसका वर्णन नीचे दिया जायगा। इस प्रकार के प्रयोगों से पता चला है कि पृथ्वी पर अधिक से अधिक गरमी जो (बिजली से) पैदा की जा सकती है, सूर्य उससे कहीं अधिक गरम है। अनुमान किया गया है कि सूर्य का तापक्रम ६०००° श० (6000°C) होगा। चित्र २१६ में दो चार चिर-परिचित घटनाओं के तापक्रम दिखलाये गये हैं। सच्चे सोने के पिघलने का तापक्रम केवल



इंद्र-धनुष

श्वेत प्रकाश कई भिन्न भिन्न रंग के प्रकाशों से बना है, जो सब इंद्र-धनुष में दिखलाई पड़ते हैं। सूर्य से आये प्रकाश को त्रिपार्श्व-द्वारा इन पृथक् पृथक् रंगों में तोड़ने (विश्लेषण करने) से सूर्य की रासायनिक बनावट के विषय में बहुत सी बातें जानी जा सकती हैं।

१०३७° श०* है। इसलिए यह समझना कि ६०००° का तापक्रम कितना भयानक होगा हमारे लिए कठिन है।

१६—सूर्य का ताप-क्रम जानने की दूसरी रीति— सूर्य के ताप-क्रम की गणना हम यों भी कर सकते हैं कि इससे जितनी गरमी बाहर निकलती है उसकी गणना कर ली जाय। फिर सूर्य के आकार पर ध्यान रख कर इस बात की गणना की जाय कि सूर्य का क्या ताप-क्रम होना चाहिए जिससे यह इतनी गरमी बाहर भेज सके। वैज्ञानिकों ने जाने हुए ताप-क्रम की वस्तुओं से, किस ताप-क्रम पर कितनी गरमी बाहर जाती है इस नियम का ज्ञान कर लिया है और इसकी सहायता से भी सूर्य का ताप-क्रम निकाला गया है। यह भी ६०००° श० के लगभग आता है।

उपरोक्त दोनों रीतियों से सूर्य की ऊपरी सतह ही का ताप-क्रम निकलता है। निस्सन्देह सूर्य के भीतर इससे अत्यन्त अधिक ताप-क्रम होगा। सूर्य के केन्द्र के ताप-क्रम के आगे तो ६०८०° श० के ताप-क्रमवाली ऊपरी सतह अत्यन्त ठंढी प्रतीत होगी!

---

* ताप-क्रम के नापने की दो प्रथायें हैं। एक में, जिसे फ़ारेनहाइट (Fahrenheit) कहते हैं, पिघलते हुए बर्फ़ का ताप-क्रम ३२° (बत्तीस डिगरी) माना जाता है और खौलते पानी का २१२°। दूसरी प्रथा में, जिसको शतांश या सेन्टीग्रेड (Centigrade) कहते हैं, पिघलते बर्फ़ का ताप-क्रम ०° माना जाता है और खौलते पानी का ताप-क्रम केवल १००° माना जाता है। शतांश ही प्रथा का व्यवहार विज्ञान में किया जाता है। परन्तु इँगलैंड और इसलिए भारतवर्ष में भी साधारण कार्यों के लिए, जैसे बुख़ार नापने के लिए या दिन की गरमी बतलाने के लिए, फ़ारेनहाइट का ही प्रयोग किया जाता है। यूरोप के अन्य देशों में साधारण व्यवहार में भी शतांश प्रथा प्रचलित है। १०४° फ़ा० का बुख़ार शतांश प्रथा में केवल ४०° श० हुआ। ६०००° श० = लगभग ११,०००° फ़ा०।

१७—बोलोमीटर—ऊपर जिस यंत्र का ज़िक्र किया गया है उसको बोलोमीटर कहते हैं। इस यंत्र से प्रकाश को गरमी में परिवर्तन करके नापते हैं। जब प्रकाश, चाहे यह किसी रंग का हो, किसी काले पदार्थ पर पड़ता है तब वह काला पदार्थ उस प्रकाश को सोख लेता है और उसमें गरमी पैदा हो जाती है। बोलोमीटर में काला किया हुआ प्लैटिनम (platinum) धातु का एक बहुत छोटा पत्र लगा रहता है। इसी पर प्रकाश या गरमी आकर पड़ती है। इससे इसका तापक्रम बढ़ जाता है। तापक्रम के बढ़ने से विद्युत्-धारा (बिजली) के लिए इसकी बाधा (resistance) बढ़ जाती है। इसलिए उतना ही वोल्ट (volt) लगाने पर इसमें से कम बिजली जाती है। इस बात का पता एक अत्यन्त सूक्ष्म विद्युत्-मापक (galvanometer) से लग जाता है। यह यंत्र इतना सूक्ष्म-दर्शी है कि इससे ५ मील की दूरी पर रक्खी हुई मोमबत्ती की गरमी नापी जा सकती है और $\frac{१}{१०,००,०००}$ डिगरी श० का तापक्रम-अन्तर नापा जा सकता है।

यद्यपि बोलोमीटर इतना आश्चर्यजनक है, तो भी यह हमारी आँखों के आगे मात हो जाता है। आँख की पुतली से जो प्रकाश हमारी आँखों के भीतर जाता है केवल उतने ही से हम अत्यन्त मंद तारे को देख सकते हैं। ऐसे मंद तारे का प्रकाश बोलोमीटर में इतनी कम गरमी पैदा करता है कि इस पर ज़रा सा भी असर नहीं पड़ता है। जब दस फ़ुट व्यास के दर्पण पर पड़नेवाली सब रश्मियाँ बोलोमीटर के लिए एकत्रित कर दी जाती हैं तब कहीं तारे की गरमी का पता चलता है।

इस यंत्र से चन्द्रमा की गरमी नापी गई है और इस आश्चर्यजनक बात का पता चला है कि सर्वग्रहण लगने पर खौलते हुए पानी के तापक्रम से ठंढा होते होते उग्रह होने तक चन्द्रमा तरल-वायु

(liquid air) के समान अत्यन्त ठंढा हो जाता है। वहाँ वायु-मंडल तो है ही नहीं जो चन्द्रमा के ठंढे होने में रुकावट डाले। यही कारण है कि वहाँ घंटे दो घंटे में तापक्रम इतना गिर जाता है।

१८—सूर्य में कहाँ से गरमी आती है—आधुनिक विज्ञान ने पता लगाया है कि शक्ति (energy) न तो उत्पन्न की जा सकती है और न इसका नाश ही किया जा सकता है। जब मिट्टी के तेलवाले इंजन से शक्ति पैदा की जाती है तब शक्ति उत्पन्न नहीं होती; केवल वह शक्ति जो मिट्टी के तेल में जड़रूप से छिपी रहती है इंजन से गति (motion) के रूप में प्रकट हो जाती है। जब इंजन से कोई काम नहीं लिया जाता तब शक्ति नष्ट नहीं हो जाती है। उस समय तेल कम ख़र्च होता है और जितना तेल ख़र्च होता है ठीक उसी के अनुसार शक्ति इंजन के कल-पुर्ज़ों की रगड़ और फट-फट शब्द करने में व्यय हो जाती है। फिर कल-पुर्ज़ों की रगड़ से शक्ति नष्ट नहीं होती। रगड़ से इनमें गरमी



[हेलमहोल्ट्स के ऑप्टिक्स से

चित्र २१८—प्रसिद्ध जरमन वैज्ञानिक हेल्महोल्ट्स (Helmholtz)।

पैदा हो जाती है और गरमी शक्ति का ही एक रूप है। फट-फट शब्द से हवा के परमाणु हिलने लगते हैं और इस प्रकार कुछ शक्ति हवा में चली जाती है। सारांश यह कि शक्ति न कहीं पैदा होती है और न कहीं नष्ट होती है। जितनी शक्ति इस विश्व में है उतनी ही रहती है, न घटती है और न बढ़ती है।

अब प्रश्न उठता है कि सूर्य में इतनी शक्ति कहाँ से आती है कि यह करोड़ों वर्ष से लगातार आश्चर्यजनक अधिक मात्रा में गरमी और प्रकाश बराबर भेज रहा है। यह तो प्रत्यक्ष है कि इसे शक्ति कहीं से बराबर मिला करती है, क्योंकि यदि यह अपने आदि शक्ति को ही बराबर व्यय किया करता तो दो तीन हज़ार वर्ष से अधिक न चमक सकता। यह बात भौतिक विज्ञानवाले ठंढा होने के नियम से तुरन्त सिद्ध की जा सकती है। परन्तु यहाँ तो कई हज़ार वर्ष का इतिहास उपस्थित है कि सूर्य समभाव से सदा चमकता रहा है।

फिर, स्वभावतः लोग सोचते होंगे कि सूर्य आग के समान जलती हुई वस्तुओं के कारण गरम रहता है, परन्तु यह सिद्धान्त ऊपरवाले सिद्धान्त से भी बुरा है, क्योंकि यदि कुल सूर्य बढ़िया पत्थर के कोयले का होता तो इसे इतनी गरमी पैदा करने के लिए कुल डेढ़ हज़ार वर्ष ही में जल कर भस्म हो जाना पड़ता।

एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने इस सिद्धान्त का प्रचार करना चाहा था कि सूर्य उल्काओं (meteors) के बराबर गिरते रहने से गरम रहता है। इस सिद्धान्त को कोई भी नहीं मान सकता, क्योंकि इसका मुँहतोड़ जवाब यह है कि सूर्य को काफ़ी गरम रखने के लिए उल्काओं की मूसलाधार वर्षा होनी चाहिए और गणना करने से पता चलता है कि यदि जगत् में वस्तुतः इतनी अधिक उल्कायें होतीं तो पृथ्वी पर भी वर्तमान की अपेक्षा कई करोड़ गुना उल्काओं को गिरना चाहिए था।

१८—हेल्महोल्ट्स का सिद्धान्त—१८५४ में प्रसिद्ध जरमन वैज्ञानिक हेल्महोल्ट्स (Helmholtz) ने बतलाया कि सूर्य अपने ही आकर्षण के कारण दबा जा रहा है। दबने से, जैसा सभी जानते हैं गरमी पैदा होती है। उदाहरण के लिए, जब साइकिल में हवा भरी जाती है तब पम्प गरम हो जाता है; गरम होने का एक कारण रगड़ भी है, परन्तु पम्प के भीतर हवा के बार बार दबने से भी गरमी पैदा होती है। सूर्य की तौल और नाप पर ध्यान रखते हुए, इस बात को देख कर कि इससे कितनी गरमी आती है अनुमान किया गया है कि यदि इसका व्यास प्रतिवर्ष २४० फुट घटता जाय तो यह ठंढा नहीं होने पायेगा। २४० फुट प्रतिवर्ष घटने से अन्तर इतना कम पड़ता है कि बड़े-से-बड़े दूरबीन से भी सूर्य के व्यास का अन्तर दस हज़ार वर्ष के पहले नहीं चल सकता। इसलिए सम्भव है कि इसी रीति से सूर्य अभी तक गरम बना हुआ है।



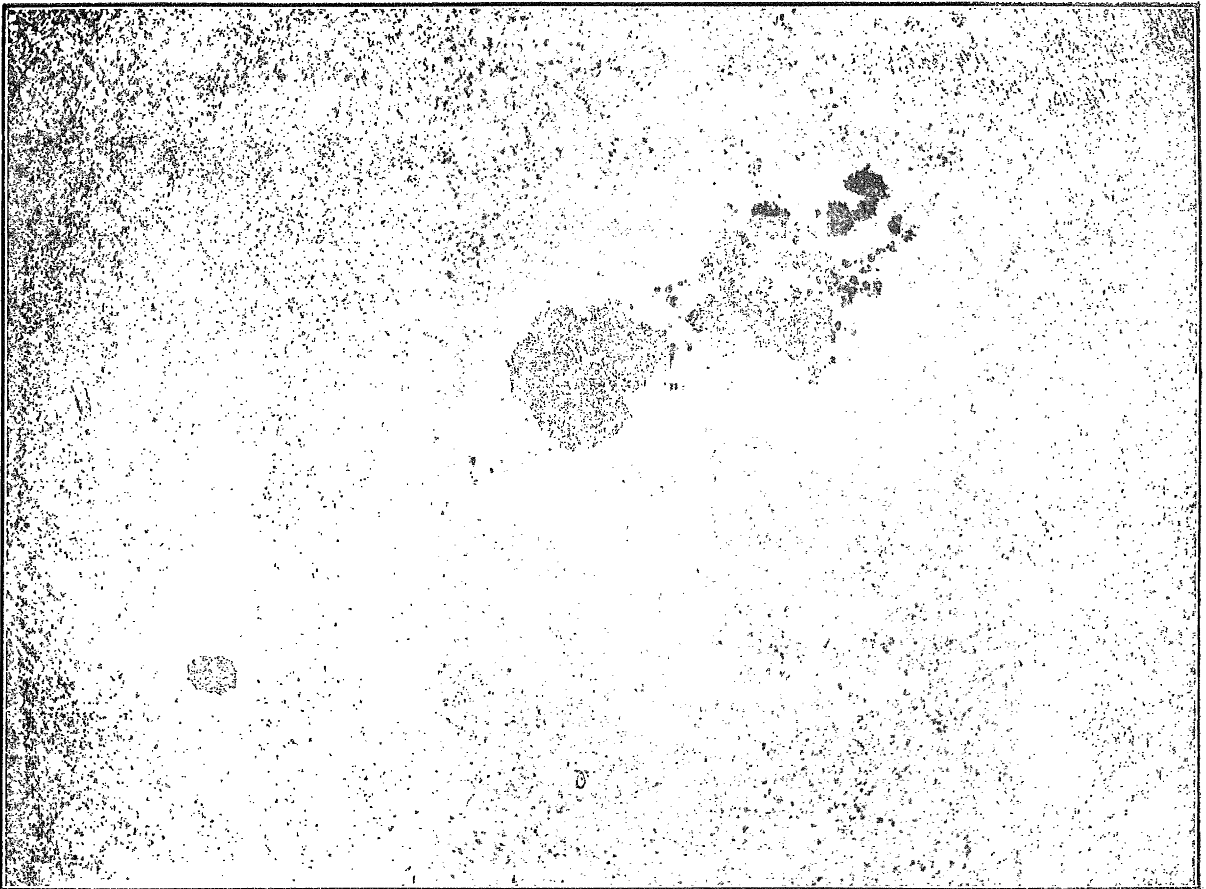
[पापुलर सायंस से

चित्र २१६— **आइन्सटाइन।**

प्रसिद्ध जरमन वैज्ञानिक, जिसके सापेक्षवाद ने वैज्ञानिक संसार में उथल-पुथल मचा दिया है।

परन्तु तर्क से जान पड़ता है कि यह सिद्धान्त भी पूर्णतया ठीक नहीं है। बात यह है कि यद्यपि हम सूर्य के व्यास में हज़ारों वर्ष में भी अन्तर नहीं जान सकते तो भी इस बात की गणना कर सकते हैं कि यदि सूर्य अनन्त दूरी से सिमिटता सिमिटता अपनी वर्तमान स्थिति में आया हो तो इसे इस क्रिया में कितने वर्ष लगे होंगे। इस गणना से उत्तर मिलता है कि इसमें सूर्य को दो करोड़ या बहुत हुआ तो ढाई करोड़ वर्ष लगे होंगे। यदि सिमिटने का सिद्धान्त ठीक है तो पृथ्वी दो ढाई करोड़ वर्ष से अधिक दिन की नहीं हो सकती। परन्तु नीचे दी गई युक्तियों से वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि पृथ्वी ढाई करोड़ वर्ष से अवश्य अधिक आयु की है। इसलिए जान पड़ता है कि सूर्य में गरमी या तो पूर्णतया किसी अन्य रीति से आती है या कम से कम इसका कुछ अंश अवश्य किसी अन्य रीति से आता है।

२०—पृथ्वी की आयु—पृथ्वी की आयु का अनुमान इस बात से किया गया है कि समुद्र का खारापन किस हिसाब से बढ़ रहा है। बरसाती पानी नदियों द्वारा बह कर समुद्र में जाता है। यह पानी साथ में खारी वस्तुओं को बहा ले जाता है। यदि मान लिया जाय कि समुद्र धीरे धीरे इन्हीं खारी वस्तुओं के पहुँचने से खारा हो गया है और यदि यह भी मान लिया जाय कि नदियाँ पुराने ज़मानों में भी उसी मात्रा में खारी चीज़ें बहाया करती थीं जितना अब, तो पृथ्वी की आयु का शीघ्र ही अनुमान किया जा सकता है, क्योंकि समुद्र में खारा पदार्थ कितना है यह मालूम है और इसका भी पता लगाया गया है कि नदियाँ कितना खारा पदार्थ समुद्र में प्रतिवर्ष ले जाती हैं। गणना करने से पता चलता है कि पृथ्वी की आयु किसी प्रकार ६ करोड़ वर्ष से कम नहीं हो सकती; बहुत सम्भव है यह ९ और १४ करोड़ वर्ष के भीतर हो। परन्तु



[जैनसन

चित्र २२०—सूर्य की सतह।

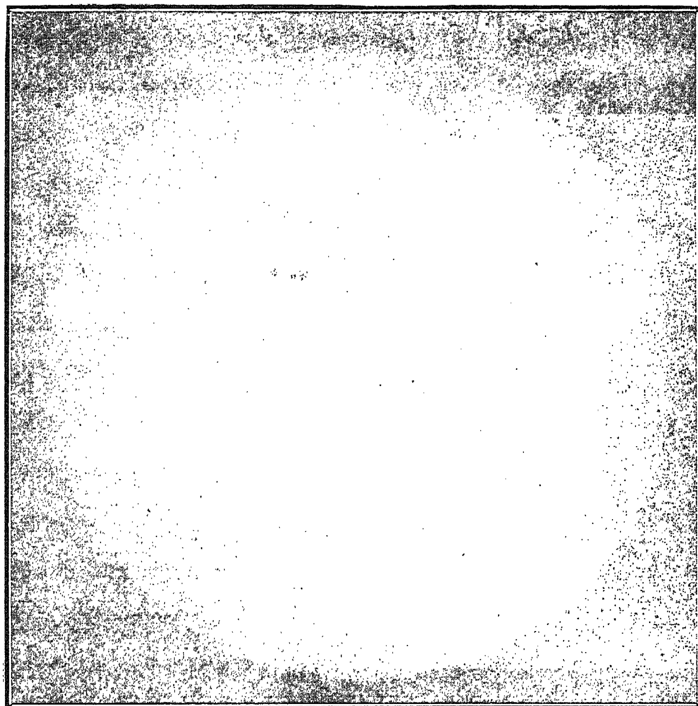
इस पर अनेक चावल के दाने के समान अत्यन्त चमकीले कण और दो चार बड़े "कलंक" दिखलाई पड़ते हैं।

शंका यह उत्पन्न होती है कि क्या समुद्र आरम्भ से ही खारा नहीं था ? वैज्ञानिकों का विश्वास है कि पहले पृथ्वी भी अत्यन्त गरम थी। पीछे धीरे धीरे यह ठंढी हुई। तब पानी के रूप में पृथ्वी पर जल-वाष्प के गिरने से समुद्र बन गया। इस सिद्धान्त से स्पष्ट है कि जैसे स्रवित (distilled) पानी में कोई वस्तु नहीं रहती, उसी प्रकार आरम्भ में समुद्र भी खारा नहीं रहा होगा। परन्तु यह मान लेना कि पहले भी नदियाँ उसी मात्रा में खारी वस्तुएँ बहा ले जाती रही होंगी जितना अब, बहुत संतोष-जनक नहीं है, क्योंकि शायद पहले पत्थरों में इतना लोना न लगता रहा होगा। इसलिए सम्भव है कि पृथ्वी की आयु १४ करोड़ वर्ष से अत्यन्त अधिक हो।

फिर, यह देख करके कि अधिकांश पत्थरों में तह पर तह जमी हुई है अनुमान किया जाता है कि ये पत्थर उस मिट्टी से बने होंगे जो पानी से कट कर और उसके साथ बह कर झीलों या समुद्रों में चली जाती है। इस बात की जाँच करके कि इन दिनों किस गति से मिट्टी समुद्र-तल में जम रही है पृथ्वी की आयु का अनुमान किया गया है। स्वभावतः, इस रीति से गणना करने में कोई पक्का परिणाम नहीं निकल सकता, परन्तु इतना निश्चय हो जाता है कि पृथ्वी की आयु १० करोड़ वर्ष से अवश्य अधिक होगी।

२१—रेडियम और पृथ्वी की आयु—परन्तु पृथ्वी की आयु का सच्चा पता रेडियम (radium) और रेडियम-रश्मि बिखरानेवाले पदार्थों (radio-active substances) की जाँच से लगता है। १८९६ में बेकरेल (Becquerel) को पता चला कि ऐसे पदार्थों में जिनमें यूरेनियम (uranium) है एक विचित्र गुण है। इनमें से ऐसी रश्मियाँ निकलती हैं जो काले और अपारदर्शक काग़ज़ या दफ़्ती को पार कर जाती हैं; क्योंकि उसने देखा कि ये रश्मियाँ अपारदर्शक काग़ज़ में लपेटे हुए फ़ोटोग्राफ़ी के प्लेट पर भी

अपना प्रभाव डाल सकती हैं। मैडम क्यूरी (Mme. Curie) ने इस रहस्य की पूरी जाँच की और इस जाँच में उन्हें एक और भी आश्चर्यजनक बात का पता लगा। उन्होंने देखा कि जिस खनिज



[रॉयल ऐस्ट्रो० सो०

चित्र २२१—सूर्य का फ़ोटोग्राफ़।

देखिए किनारे कम चमकीले हैं।

पदार्थ (ore) से यूरेनियम निकाला जाता है वह यूरेनियम से भी अधिक तेजस्वी है। उन्होंने अनुमान किया कि इसमें यूरेनियम के अतिरिक्त कोई यूरेनियम से भी बढ़ कर अन्य पदार्थ है। १८९८ में

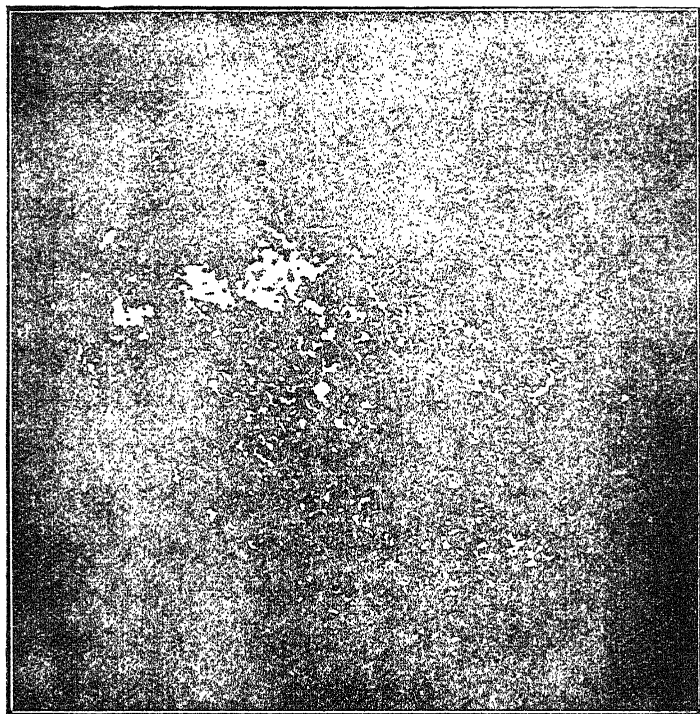
यह पदार्थ अलग किया गया और इसका नाम रेडियम रक्खा गया। इसकी प्राप्ति में इतना परिश्रम करना पड़ता है कि १ तोला रेडियम २३ लाख रुपये में बिकता है*। ज़हरबाद फोड़े की चिकित्सा में रेडियम विशेष रूप से लाभदायक है।

रेडियम के मिलने के थोड़े ही समय बाद एक दूसरी विचित्र बात का पता चला। रेडियम वहीं पाया जाता है जहाँ यूरेनियम मिलता है और जहाँ यूरेनियम मिलता है वहाँ रेडियम भी मिलता है। बहुत खोज के बाद पता चला कि यूरेनियम से हीलियम (helium) गैस निकलने पर एक नया पदार्थ बनता है, जिसमें से कुछ अधिक हीलियम निकल जाने से एक दूसरा नया पदार्थ बन जाता है। फिर इसमें से भी हीलियम के निकलने पर रेडियम बनता है। रेडियम से हीलियम निकलते निकलते कई एक भिन्न भिन्न पदार्थों के बनने के बाद सीसा (lead) रह जाता है। फिर इसमें से कुछ नहीं निकलता और न इसमें अपारदर्शक वस्तुओं में घुसनेवाली रश्मियाँ ही निकलती हैं।

अब देखना चाहिए कि इन बातों से पृथ्वी की आयु का पता कैसे लगाया गया है। कितने समय में कितने यूरेनियम से कितना सीसा और कितना हीलियम बनता है यह आधुनिक प्रयोगों से जान लिया गया है। इसलिए यूरेनियम देनेवाले पत्थरों में यूरेनियम और सीसा, या यूरेनियम और हीलियम, नापने से उस समय की गणना की जा सकती है जब यूरेनियम से हीलियम या सीसा ज़रा भी न बन पाया था। इस रीति में कठिनाई यह है कि हमको मानना पड़ता है कि आरम्भ में सीसा या हीलियम उपस्थित नहीं था और जो कुछ सीसा या हीलियम अब मिलता है सब यूरेनियम

* "The Pioneer" June 20, 1929, p. 21, colum 5.

से निकला है। हीलियम के लिए तो कोई विशेष संदेह नहीं है, परन्तु साधारणतः सीसा बहुत अधिक मात्रा में बिना यूरेनियम या हीलियम के भी मिलता है। तिस पर भी वैज्ञानिक लोग यूरेनियम-



[रॉयल ऐस्ट्रो० सो०

चित्र २२२—सूर्य के कैलसियम-बादल।

उसी दिन का (जिस दिन का चित्र २२१ है) लिया गया सूर्य के कैलसियम-बादलों का फ़ोटोग्राफ़ (अध्याय ६ देखिए)।

वाले पत्थरों की जाँच से अनुमान कर सकते हैं कि इसकी आदि अवस्था में स्वतंत्र सीसे के रहने की कोई सम्भावना है या नहीं। फिर, इस रीति में एक त्रुटि यह भी है कि मानना पड़ता है कि कुल

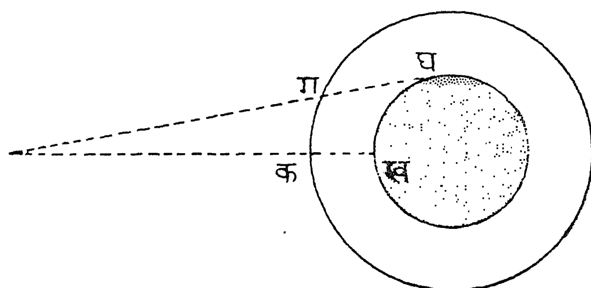
सीसा और हीलियम रेडियम-रश्मियों के निकलने ही के कारण बने हैं, गरमी या जल के कारण नहीं, परन्तु यहाँ भी भूगर्भ-विद्या-विद् (geologists) बतला सकते हैं कि अमुक पत्थर पर गरमी या पानी का प्रभाव पड़ा है या नहीं। इन सब बातों पर भली भाँति विचार करके इस रीति से यूरेनियम-युक्त पत्थरों की आयु लगभग १३० करोड़ वर्ष निकलती है। पृथ्वी अवश्य इन पत्थरों से अधिक पुरानी होगी।

२२—सूर्य की गरमी का आधुनिक सिद्धान्त—ऊपर की बातों से यह प्रत्यक्ष है कि सूर्य की कुल गरमी केवल सिकुड़ने से नहीं प्राप्त हो सकती। इधर वैज्ञानिकों ने शक्ति के एक नये ख़ज़ाने का पता लगाया है। जब यूरेनियम या रेडियम से हीलियम निकलता है तब साथ साथ भयानक गरमी भी निकलती है। एक रुपये भर रेडियम के बदलने में ८४ मन कोयले के जलने के समान गरमी पैदा होती है। मालूम नहीं कि सूर्य में रेडियम या यूरेनियम है या नहीं, परन्तु वहाँ हीलियम अवश्य है। वस्तुतः हीलियम का पता पहले सूर्य ही में लगा, पीछे से यह इस पृथ्वी पर पाया गया। इसी से तो इसका नाम हीलियम रक्खा गया (ग्रीक में हीलियोस = सूर्य)। इसी से वैज्ञानिकों का मत है कि सूर्य में रेडियम की तरह वस्तुओं से गरमी पैदा होती है। परन्तु यह मान लेने में कि सूर्य की कुल गरमी यूरेनियम या रेडियम से आती है अनेक कठिनाइयाँ हैं। हो सकता है कि सूर्य की विकराल गरमी के कारण वे पदार्थ जो यहाँ पर रेडियम ऐसे चैतन्य नहीं जान पड़ते, सूर्य पर रेडियम सा ही कार्य करते हों।

इसके अतिरिक्त वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि जिन जिन मौलिक पदार्थों को रसायन-वेत्ता (chemists) पहले बिलकुल भिन्न समझते थे वे एक दूसरे में बदले जा सकते हैं। इस प्रकार हाइड्रोजन

(hydrogen) का जब अन्य पदार्थों में रूपान्तर हो जाता है तब बहुत सी गरमी निकलती है। हो सकता है कि सूर्य में बहुत सी गरमी इस रीति से भी उत्पन्न होती हो।

परन्तु सबसे आश्चर्य-जनक बात आइन्स्टाइन (Einstein) का प्रसिद्ध सापेक्षवाद (Theory of Relativity) बतलाता है। पाठकों को स्मरण होगा कि सापेक्षवाद ने सारे जगत् में और



चित्र २२३—वायुमंडल का फल।

क ख की अपेक्षा ग घ बहुत अधिक है; इसलिए घ से आँख की ओर चला हुआ प्रकाश रास्ते ही में वायुमंडल के कारण, ख से चले हुए प्रकाश की अपेक्षा, अधिक धीमा हो जाता है।

विशेष कर वैज्ञानिक संसार में उथल-पुथल मचा दिया था और थोड़े ही दिन हुए (१९१९ में) सभी समाचार-पत्रों में इस सिद्धान्त के प्रमाणित हो जाने का समाचार और साथ ही साथ इसके सम्बन्ध की अनेक विचित्र बातें छपा करती थीं। सापेक्षवाद बतलाता है कि पदार्थ और शक्ति असल में एक ही हैं। एक सेर गरमी की बात करना वैसा ही न्याय-संगत है जैसे एक सेर लोहे की बात करना। परन्तु १ सेर गरमी सवा अरब मन पत्थर पिघला देगा!

यदि सूर्य की कुल गरमी इस सिद्धान्त के अनुसार पदार्थ के क्षय और इसके स्थान में शक्ति के प्रकट होने से आवे, तो भी



[विज्ञान परिषद की कृपा]

चित्र २२३ अ—मैडम क्यूरी।

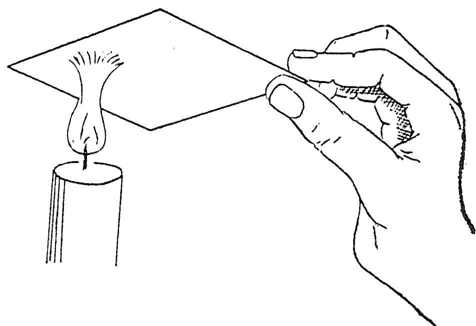
इसके रेडियम-सम्बन्धी आविष्कार बड़े प्रसिद्ध हैं।

पिछले दस खरब वर्षों में सूर्य का केवल सेर पीछे आधी रत्ती भर ही नाश हुआ होगा। इसलिए शायद यह हज़ारों अरब वर्ष से चमकता आ रहा है और हज़ारों शङ्ख वर्ष तक चमकता रहेगा।

अध्याय ६

सूर्य-कलंक

१—सूर्य का प्रकाश-मंडल—सूर्य का वह गोलाकार भाग जो हमको दिखलाई पड़ता है प्रकाश-मंडल (photosphere) कहलाता है। अच्छे दूरदर्शकों से देखने पर सूर्य सर्वत्र एक-रूप सफ़ेद नहीं दिखलाई पड़ता। इसमें छोटे छोटे अनेक अत्यन्त चमकीले कण दिखलाई पड़ते हैं। लैंग्ली इनकी तुलना मटमैले कपड़े पर बिखरे हुए हिम (snow) से करता था। कोई कोई इसकी उपमा चावल के दाने से देते हैं। अब सूर्य का फ़ोटोग्राफ़ सुगमता से लिया जा सकता है। इसके लिए १/१००० सेकंड का प्रकाश-दर्शन देना पड़ता है और इसलिए फ़ोकल-प्लेन-शटर* (focal plane shutter) और अत्यन्त मन्द (slow) प्लेट का प्रयोग करना पड़ता है। चित्र २२० में "चावल के दाने" स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। फ़ोटोग्राफ़ में जो भाग काले दिखलाई पड़ते हैं वे "चावल के दानों" की अपेक्षा ही काले जान पड़ते हैं। वस्तुतः वे इतने चमकीले



चित्र २२४—कालिख लगा हुआ शीशा बनाना।

यह सूर्यग्रहण के समय विशेष उपयोगी होगा।

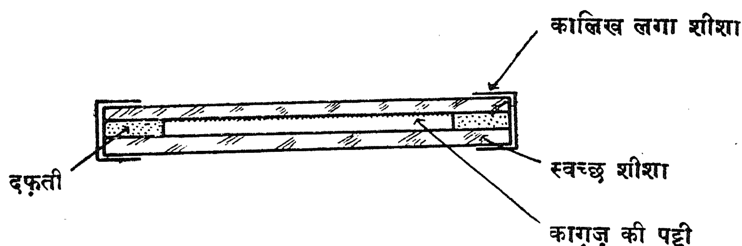
* देखिए हमारी बनाई "फ़ोटोग्राफ़ी" (इंडियन प्रेस), पृ० ३७।

हैं कि यदि हम उन्हें पास से देखते तो हमारी आँखें जल जातीं। अनुमान किया गया है कि "चावल के दाने" इस कम चमकीले अंशों से २० गुना अधिक चमकीले होंगे। क्षण क्षण पर कई एक फ़ोटोग्राफ़ लेने से पता चला है कि इन दोनों का व्यास ४०० मील से लेकर १,२०० मील तक होता है। हाँ, कभी कभी छोटे छोटे दाने भी दिखला जाते हैं जिनका व्यास १०० मील से अधिक न होता होगा। ये दाने साधारणतः गोल या दीर्घ-वृत्ताकार (अंडे की शकल के) होते हैं और कई एक दाने एक दूसरे से सिमट कर बड़े दाने बन जाते हैं। इन दानों का जीवन-काल अत्यन्त कम होता है। कुछ दो चार मिनट ठहर भी जाते हैं, परन्तु अधिकांश आधे मिनट भी नहीं टिकते। इन सभों की गति इधर-उधर प्रत्येक दिशा में हुआ करती है। कोई कोई तो प्रायः स्थिर ही रहते हैं। शून्य से लेकर २० मील प्रति सेकंड की गति उनमें पाई जाती है। कभी कभी तो इससे भी अधिक वेग से चलते हुए दाने दिखलाई पड़ते हैं। वस्तुतः, ऊँचे हवाई जहाज़ से देखने पर जिस प्रकार आँधी से मथा हुआ समुद्र दिखलाई पड़ता है, ठीक उसी प्रकार ये दाने भी, परन्तु बहुत बड़े पैमाने पर, दिखलाई पड़ते हैं।

२—सूर्य पर भी वायु-मण्डल है—चित्र २२१ में सूर्य का एक फ़ोटोग्राफ़ दिया जाता है। देखिए, किनारे बहुत कम चमकीले हैं। इससे प्रत्यक्ष है कि सूर्य पर वायु-मंडल अवश्य है क्योंकि वायु-मंडल के रहने ही से, जैसा चित्र २२३ से स्पष्ट है, किनारे कम चमकीले मालूम पड़ सकते हैं।

फ़ोटोग्राफ़ में किनारों का कम चमकीला होना बहुत बढ़ जाता है। इसका कारण यह है कि कम चमकीले भाग कुछ कुछ लाल वर्ण के हो जाते हैं। लाल हो जाने का कारण वैसा ही है जिससे डूबते समय कुल सूर्य-मंडल लाल दिखलाई पड़ने लगता है। अन्तर केवल

इतना ही है कि डूबते समय सूर्य से आये प्रकाश को पृथ्वी के वायु-मंडल की अधिक गहराई पार करने के कारण सूर्य हमको लाल दिखलाई पड़ता है, परन्तु सूर्य के किनारे हमको लाल इसलिए दिखलाई पड़ते हैं कि किनारे से आई रश्मियों को सौर-वायुमंडल की अधिक गहराई पार करनी पड़ती है। इस प्रकार किनारों के



चित्र २२५—कालिख लगे शीशे पर एक दूसरा शीशा बाँध देना चाहिए;
जिसमें हाथ लगने से इसकी कालिख न छूटे।

लाल हो जाने के कारण फ़ोटोग्राफ़ में किनारे काले उतरते हैं, क्योंकि जैसा सभी फ़ोटोग्राफ़र जानते हैं, लाल प्रकाश से फ़ोटो के प्लेट पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है (तभी तो फ़ोटोग्राफ़र अपनी अँधेरी कोठरी में लाल प्रकाश का उपयोग कर सकता है)। परन्तु लाल शीशे से, या धुयें से काला किये गये* शीशे से देखने पर किनारे प्रायः वैसे ही

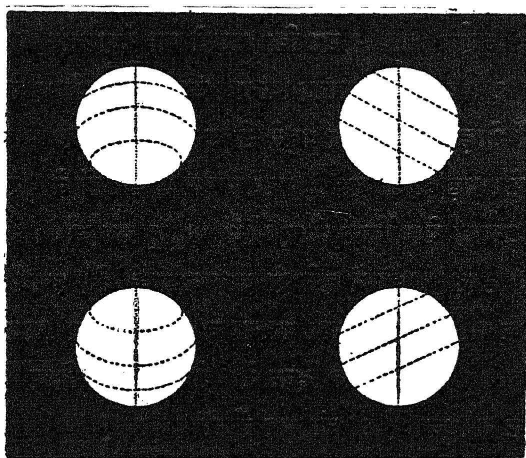
* ग्रहण इत्यादि के समय सूर्य को देखने के लिए ऐसा शीशा बहुत उपयोगी है। इसको बनाने के लिए २″ × ३″ के (या छोटे) शीशे को जलती हुई मोमबत्ती या दिये पर घुमाते रख कर इन पर इतना कालिख चढ़ जाने देना चाहिए जिससे सूर्य सुगमता से और बग़ैर आँखों को चकाचौंधी लगे देखा जा सके (चित्र २२४)। फिर इस पर शीशे की नाप का मोटा कागज़, जिसके बीच में १″ × २″ का छेद कटा हो रख कर ठीक पहले शीशे की नाप का दूसरा स्वच्छ शीशा रखना चाहिए। अब इन दोनों शीशों को चारों ओर से कागज़ की पट्टी से बाँध देने से (चित्र २२५) कालिख पर हाथ लग कर छूटने का भय नहीं रहेगा। फ़ोटो के गाढ़े नेगेटिव द्वारा भी सूर्य देखा जा सकता है।

दिखलाई पड़ते हैं जैसा कि केन्द्र। इसका कारण यह है कि किनारे ते पहले ही से लाल रहते हैं; वे लाल, या कालिख लगे शीशे से लाल ही रह जाते हैं; परन्तु मध्य के भाग, जा पहले श्वेत रहते हैं, शीशे द्वारा लाल दिखलाई पड़ते हैं और इसलिए मध्य और किनारे के भागों में अन्तर मिट जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि सूर्य को सूर्य और पृथ्वी के वायु-मंडलों के बिना देखा जा सकता ते सूर्य का रंग पीला के बदले हमको नीला दिखलाई देता। श्वेत प्रकाश, जैसा हम देख चुके हैं, कई रंगों से बना है। हमारा वायुमंडल लाल, नारंगी इत्यादि प्रकाशों की अपेक्षा नीले और बैंगनी प्रकाश को अधिक बिखरा देता है। इसलिए जब सूर्य से श्वेत प्रकाश हमारे वायु-मंडल में घुसता है तब यह इसके नीले और बैंगनी भाग को लाल, नारंगी इत्यादि भाग की अपेक्षा अधिक अंश में बिखरा देता है। यही कारण है कि आकाश, जो हमें इस बिखरे हुए प्रकाश से दिखलाई पड़ता है, नीला प्रतीत होता है। साथ ही, सूर्य के प्रकाश में लाल, नारंगी और पीला प्रकाश अधिक बच रहता है और इसलिए सूर्य हमको कुछ पीला, या सुबह शाम को, जब सूर्य के प्रकाश को हमारे वायु-मंडल में बहुत दूर तक चलना पड़ता है, कुछ नारङ्गी या लाल रङ्ग का, दिखलाई पड़ता है।

३—सूर्य-कलंक—चन्द्र-कलंक की बात ते सभी ने सुनी होगी, पर सूर्य-कलंक (sun-spots) के विषय में इने गिने ही लोग जानते होंगे, यद्यपि ये धब्बे कभी कभी बिना दूरदर्शक के भी दिखलाई पड़ जाते हैं। चीन देश के पुराने इतिहासों में सूर्य पर धब्बों के दिखलाई देने की बात लिखी है। सन १८८ ई० से लेकर सन् १६३८ तक में ६५ कलंकों की चर्चा है। साधारणतः इनको धब्बा ही बतला कर छोड़ दिया गया है, परन्तु पाँच बार इनकी शकल चिड़ियों की सी या उड़ती हुई चिड़ियों की सी बतलाई गई है; दो बार इनकी शकल

अंडे के समान और चार बार इनका रूप सेब ऐसा बतलाया गया है। आश्चर्य है कि इन धब्बों का ज़िक्र अन्य देश के लोगों ने नहीं किया।

यूरोप में सूर्य के धब्बों का पता पृथक् पृथक् तीन मनुष्यों को लगा—फ़ैब्रीसियस (Fabricius); शाइनर (Scheiner) और गैलीलियो (Galileo)। कहा जाता है जब सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ



चित्र २२६—सूर्य-कलंकों का मार्ग।

ये कभी सीधे, कभी नतोदर और कभी उन्नतोदर दिखलाई पड़ते हैं।

में शाइनर ने, जो पादरी था, बड़े पादरी को यह समाचार सुनाया कि मैंने सचमुच सूर्य पर कलंक देखे हैं तब बड़े पादरी ने कहा* "मैंने अरस्तू (Aristotle) की पुस्तकों को आदि से अन्त तक कई बार पढ़ डाला है और हम तुम्हें

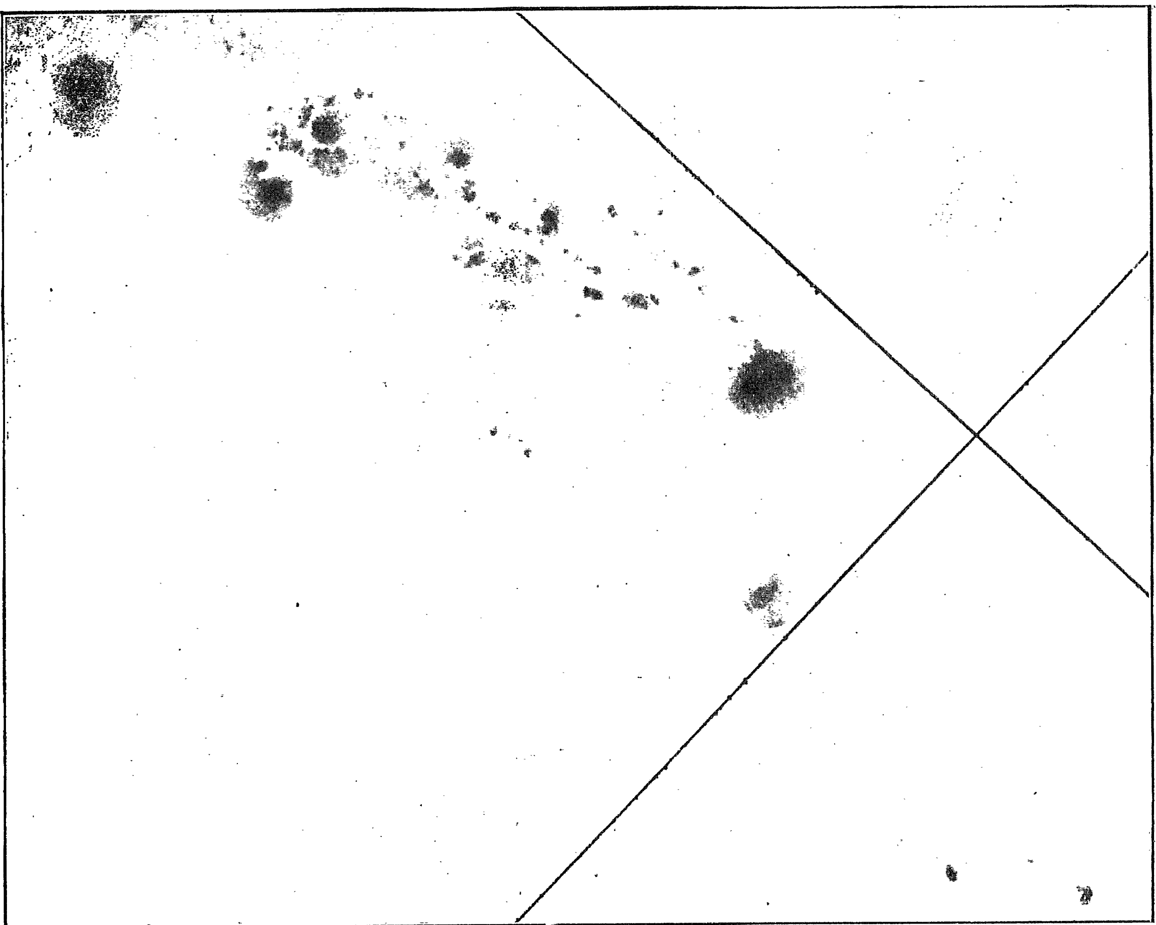
* White : Our Solar System and Stellar Universe, p. 10.

विश्वास दिलाते हैं कि तुम जो कहते हो उस प्रकार की किसी चीज़ का ज़िक्र अरस्तू ने नहीं किया है। जाओ भैया, शान्ति से बैठो। निश्चिन्त रहो कि जिसको तुम सूर्य-कलंक बतलाते हो वह तुम्हारे ऐनक की त्रुटि होगी या वह तुम्हारी आँखों का ही दोष होगा" !

शोक के साथ लिखना पड़ता है कि इस प्रकार का अंधविश्वास अभी भी भारतवर्ष से नहीं उठा है। कुछ ही वर्ष हुए, १९२५ में, काशी के ज्योतिषियों ने एक सभा की थी जिसमें यह निर्णय करना था कि काशी का देशान्तर (longitude) क्या है। इस बात की आवश्यकता उनको इसलिए पड़ गई कि देशान्तर में थोड़ा सा अन्तर पड़ने से उस साल किसी मास में एक तिथि का फेर पड़ जाता था। सभा में अनेक पंडितों ने पुरानी पुरानी पुस्तकों से प्रमाण पेश किये और मैं मैं, तू तू की नौबत भी आ गई, पर एक को छोड़ किसी ने हमारी बात न सुनी कि हमको देशान्तर के आधुनिक मान को स्वीकार करना चाहिए। और एक महाशय ने हमारी बात पर ध्यान भी दिया तो केवल इसी लिए कि वे यूरोप से लौटे भ्रष्ट नवयुवकों की जी भर हँसी उड़ावें !

४—गैलीलियो का आविष्कार—शाइनर का आविष्कार तो यों दब गया, परन्तु गैलीलियो के नये दूरदर्शक ने पुराने लोगों के विश्वास को कि सूर्य निष्कलंक है मिथ्या प्रमाणित कर दिया। उसने दो वर्ष तक लगातार इन कलंकों की जाँच करके सिद्ध कर दिया कि ये सचमुच धब्बे हैं। अन्य ज्योतिषियों ने भी यह बात मान ली।

चन्द्र-कलंक के समान सूर्य-कलंक स्थायी नहीं हैं। वे बदलते रहते हैं, नये कलंक उत्पन्न हुआ करते हैं और पुराने मिटते जाते हैं। बाज़ इतने बड़े होते हैं कि वे बिना दूरदर्शक के भी दिखलाई पड़ते हैं। बाज़ अत्यन्त छोटे होते हैं। बड़े कलंक बाज़ इतने बड़े



[ग्रिनिच-बेधशाला

चित्र २२७—सूर्य-कलंक ।

ये बीच में काले और किनारे पर कुछ कम काले दिखलाई पड़ते हैं ।

होते हैं कि उन पर दो ढाई दरजन पृथ्वी बिछा दी जा सकती है। कभी कभी सूर्य पर बहुत से कलंक दिखलाई पड़ते हैं, कभी कभी एक भी नहीं दिखलाई पड़ता। इन कलंकों को प्रतिदिन देखने से तुरन्त मालूम हो जाता है कि सूर्य अपने अक्ष (axis) पर घूमता है। परन्तु पृथ्वी जिस समतल (plane) में सूर्य के चारों ओर घूमती है उसके हिसाब से यह अक्ष लम्बरूप (खड़ा) नहीं है। इसलिए हम इन कलंकों के मार्ग को कभी ऊपर से देखते हैं, कभी सामने से और कभी नीचे से। इसी से इनका मार्ग कभी उन्नतोदर, कभी सीधा, और कभी नतोदर जान पड़ता है (चित्र २२६)। कलंक सब पूर्व से पश्चिम की ओर चलते हुए दिखलाई पड़ते हैं। और पृथ्वी के हिसाब से एक बार अपने अक्ष पर घूमने में सूर्य को लगभग सवा सत्ताईस दिन लगता है।

५—सूर्य-कलंक का स्वरूप—बड़े और अधिक दिन तक टिकनेवाले कलंक प्राय: गोल होते हैं। बीच में वे काले दिखलाई पड़ते हैं (चित्र २२७)। इस काले भाग को परिच्छाया (umbra) कहते हैं। यह काली मखमल के समान चिकना सा दिखलाई पड़ता है, परन्तु अच्छे दूरदर्शकों से और शान्त दिनों में यह काले बादल के समान जान पड़ता है। कभी कभी इसमें थोड़े से विन्दु अधिक काले रंग के दिखलाई पड़ते हैं, जिससे ऐसा जान पड़ता है जैसे बड़े से गड्ढे में कहीं कहीं खाई खुदी हो। प्रच्छाया के चारों ओर इससे कम काला एक किनारा दिखलाई पड़ता है जिसको "उपच्छाया" (penumbra) कहते हैं। इसमें बहुत सी रेखायें प्रच्छाया की ओर जाती हुई दिखलाई पड़ती हैं, जिससे इसकी बनावट फूस की छानी के समान मालूम पड़ती है। जहाँ प्रच्छाया और उपच्छाया मिलती हैं वहाँ फूस की छानी उधड़ी हुई सी जान पड़ती है और इस प्रकार एक झालर सी

दिखलाई पड़ती है। कलंक के चारों ओर (उपच्छाया के बाहर) सूर्य की सतह साधारण से अधिक चमकीली दिखलाई पड़ती है। जान पड़ता है जैसे इस चमकीले पदार्थ का किसी ने ढेर लगा दिया हो। कभी कभी यह श्वेत चमकीला पदार्थ खौल कर और उफना कर कलंक के ऊपर बहता हुआ सा जान



[लैंग्ली

चित्र २२८—लैंग्ली का खींचा सूर्य-कलंक का चित्र।

पड़ता है। या तो यह कलंक के आर पार "पुल" बाँध देता है या यह कलंक में गिरता हुआ सा जान पड़ता है। इस श्वेत और चमकीले पदार्थ का प्रत्येक भाग "मशाल" कहलाता है। "मशाल" को अँगरेज़ी में फैकुला (facula) कहते हैं। इस लैटिन

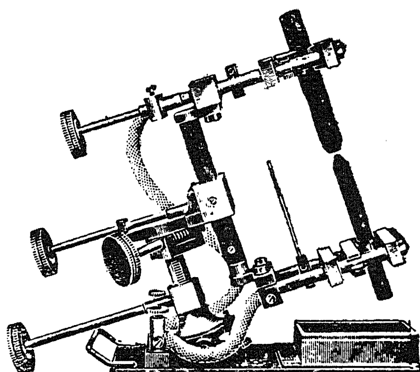
शब्द का अर्थ है "छोटा मशाल"। ये सूर्य के किनारों के पास अधिक स्पष्ट दिखलाई देते हैं और वस्तुतः ये सूर्य के बादल हैं। स्वरूप में ये पृथ्वी के उन बादलों के समान दिखलाई पड़ते हैं जो मछली के चोइटे की तरह होते हैं। ये "मशाल" सूर्य के वायु-मंडल की ऊपरी सतह में रहते हैं। इसलिए किनारे पर भी उनकी रोशनी कम नहीं होती। बीच में वे अत्यन्त चमकीले ज़मीन (back-ground) पर स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ते, पर वे ही बादल किनारे पर ख़ूब स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं, क्योंकि वहाँ की ज़मीन कम चमकीली होती है। प्रच्छाया और उपच्छाया वस्तुतः छाया नहीं हैं। सुभीते के लिए ही उनको प्रच्छाया और उपच्छाया का परिचित नाम दिया गया है। फ़ोटोग्राफ़ में इनका ब्योरा इतना स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ता है जितना दूरदर्शक द्वारा देखने से। इसलिए लैंग्ली ने जो चित्र हाथ से खींचा है उससे अच्छा चित्र फ़ोटो-ग्राफ़ी से नहीं खींचा जा सका है। इस चित्र में प्रच्छाया की बनावट बड़ी अच्छी तरह दिखलाई गई है (चित्र २२८)।

सभी कलंक गोलाकार नहीं होते हैं। साधारणतः कई एक कलंक एक झुंड में साथ दिखलाई पड़ते हैं। अकसर दो छोटे छोटे कलंक एक साथ दिखलाई पड़ते हैं, बढ़ते जाते हैं और एक दूसरे से हटते जाते हैं। कभी कभी ये एक दूसरे से इतनी तेज़ी से भागते हैं कि इनकी गति ८,००० मील प्रतिदिन तक पहुँच जाती है। इन दोनों के बीच छोटे छोटे अन्य कलंक उत्पन्न हो जाते हैं जो देर तक नहीं ठहरते। परन्तु कभी कभी बीच के कलंकों की संख्या बढ़ती ही चली जाती है। शायद इसी प्रकार के कलंक को चीनियों ने चिड़ियों के समान लिखा होगा।

प्रच्छाया सूर्य के प्रकाश-मंडल के सामने काला जान पड़ता है, पर है यह अत्यन्त चमकीला। इसके सामने बिजली की सबसे

तेज़ रोशनी (आर्क लैम्प, arc-lamp), जिसका प्रयोग सिनेमा दिखलाने के लिए किया जाता है (चित्र २२९,२३०), काला जान पड़ता है।

९—ग्यारह वर्षीय चक्र—"सूर्य और इसकी सतह के विषय में ज्ञान की वृद्धि का इतिहास—कम से कम जितना यूरोप-निवासियों से सम्बन्ध रखता है—भली भाँति परिमित तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है। संसार के आदि से सन् १६१० ई० तक लोग केवल इतना जानते थे कि सूर्य है। १६१० से १८२६ तक लोग इतना जानते थे कि कभी कभी सूर्य पर कलंक रहते हैं और सूर्य अपनी धुरी पर घूमता है। १८२६ में श्वाबे (Schwabe) ने नियमानुसार सूर्य की सतह की जाँच आरम्भ की। इसी से जितना कुछ हम अब जानते हैं उत्पन्न हुआ है"*। श्वाबे जरमन था और दवा बेचने का काम करता था। उसको ज्योतिष का शौक़ था। तीन वर्ष तक सूर्य के अध्ययन के बाद उसने अपनी दूकान बेंच दी जिसमें वह निश्चिन्त होकर अपने प्यारे विज्ञान का



[बेयर्ड ऐण्ड टैटलॉक

चित्र २२९—आर्क लैम्प।

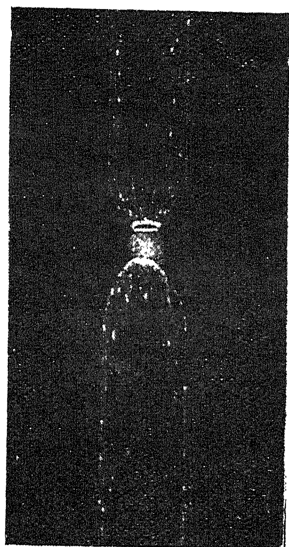
यह सिनेमा मशीनों में जलाई जाती है।

---

* Splendour of the Heavens, p. 110.

अध्ययन कर सके। ६ वर्ष तक वह लगातार सूर्य-कलंकों की संख्या गिनता रहा। तब उसे एक नई और आश्चर्यजनक बात का पता लगा कि सूर्य-कलंकों की संख्या नियमानुसार ग्यारह वर्ष के चक्र में घटा बढ़ा करती है। इस ग्यारह वर्ष के काल को "सूर्य-कलंक चक्र" (sun-spot cycle) या "एकादशवर्षीय चक्र" (eleven year cycle) कहते हैं। १८५७ में रॉयल ऐस्ट्रोनॉमिकल सोसायटी का स्वर्णपदक श्वाबे को दिया गया। उस समय सोसायटी के सभापति ने अपने भाषण में कहा था "बारह वर्ष श्वाबे ने अपनी संतुष्टि के लिए व्यय किया। ६ वर्ष उसे औरों को संतोष दिलाने में और इसके ऊपर १३ वर्ष उसको सबको विश्वास दिलाने में लगा। ३० वर्ष तक सूर्य डेसाउ (Dessau, श्वाबे का निवासस्थान) के क्षितिज के ऊपर, बग़ैर श्वाबे के सदैव-तत्पर दूरदर्शक से मुक़ाबला हुए, अपना मुख नहीं दिखला सका। और पता चलता है कि साधारणतः साल में यह मुठभेड़ ३०० बार होती थी। इसलिए, यदि यही मान लिया जाय कि दिन भर में श्वाबे एक ही बार देखता रहा होगा, तो उसने सूर्य की जाँच ९,००० बार की होगी। इस क्रिया में उसे ४,७०० कलंक-समूह मिले। मेरा विश्वास है कि यह भक्ति और धैर्य का—यदि ज़िद का अर्थ दूसरा न होता तो मैं इसे ज़िद कहता—एक ऐसा उदाहरण है जिसकी बराबरी करनेवाला ज्योतिष के इतिहास में दूसरा कोई न मिलेगा। एक आदमी के धैर्य ने वह वस्तु प्रकट की जो २०० वर्ष तक ज्योतिषियों के संदेह से भी छिप छिप कर बच गई थी! हम आशा करते हैं कि यह उदाहरण निष्फल न जायगा। यह कहने की लोगों में आदत पाई गई है कि ज्योतिष में अब कुछ रहा नहीं। उनका अभिप्राय यह है कि ज्योतिष में जो कुछ जानने योग्य था सब जाना जा चुका है। निःसंदेह, सबसे अधिक त्रुटि-रहित विज्ञान होने के कारण एक प्रकार से अन्य

विज्ञानों की अपेक्षा इसमें कम काम बच गया है; परन्तु डेसाउ का ज्योतिषी हमें सिखलाता है कि अब भी बहुतेरी खानें हैं जिनमें ख़ज़ाना भरा पड़ा है; हाँ, यह अवश्य सत्य है कि वे बहुत गहरी गड़ी हैं और उनके पाने के लिए अधिक परिश्रम और अधिक सावधानी की आवश्यकता है। मेरे ध्यान में ऐसा कोई भी विषय नहीं आता जिससे यथार्थ परिणाम निचोड़ना इतना अधिक निराशाजनक हो जितना ये सूर्य-कलंक उस समय थे जब श्वाबे ने प्रथम उन पर चढ़ाई की"।



[ग्रेगरी-हैंडले की फ़िज़िक्स से

चित्र २३०—आर्क लैम्प का वह भाग जहाँ से रोशनी निकलती है।

कृत्रिम प्रकाशों में आर्क लैम्प की रोशनी सबसे अधिक तेज़ होती है। तिस पर भी सूर्य-कलंकों की रोशनी से यह बहुत मन्द होती है।

सभापति महाशय के ध्यान में भी न आया कि थोड़े ही दिनों में ज्योतिष में इतने रत्न हाथ लगेंगे कि उनको यथायोग्य स्थान में रखते रखते वर्षों लग जायँगे। ज्योतिष मृतप्राय विज्ञान नहीं है; यह स्फूर्ति और नवीन जीवन से लबालब भरा है।

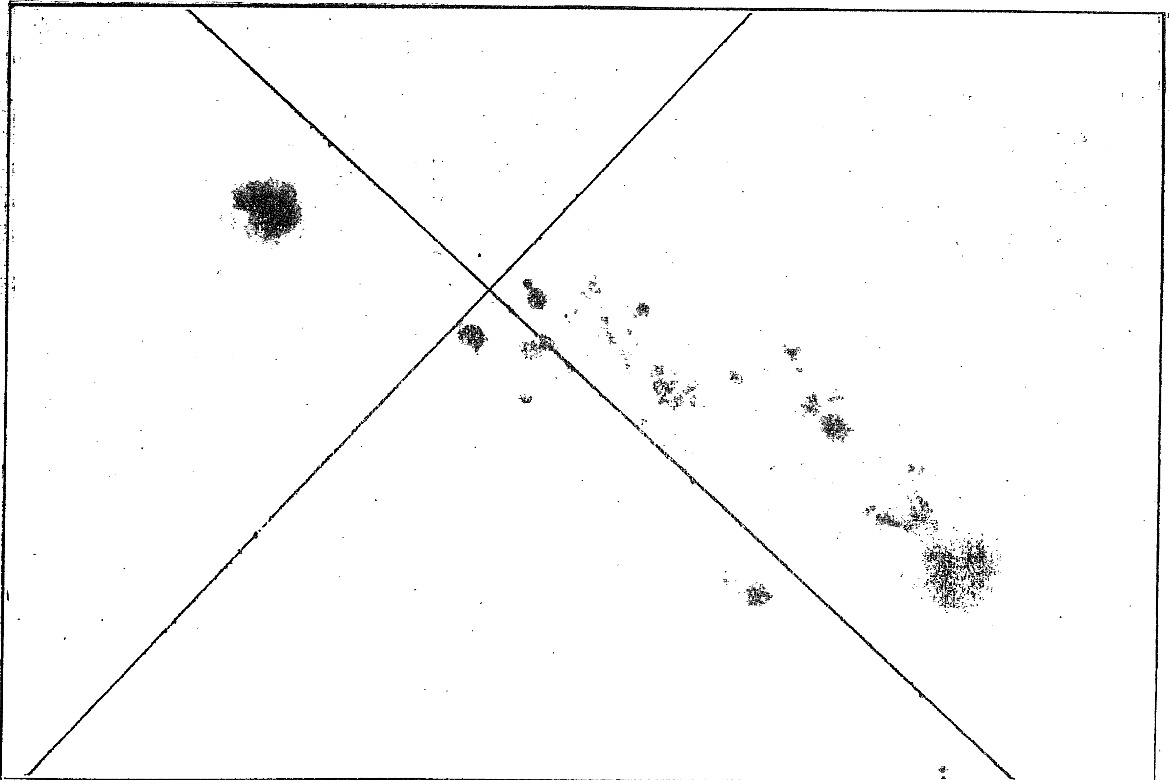
७—प्रतिदिन फ़ोटोग्राफ़ लेने का आयोजन—कुछ दिन पीछे इँगलैंड के राजज्योतिषी एअरी (Airy) ने ग्रिनिच (Greenwich) में प्रतिदिन सूर्य का फ़ोटो लेना जारी कर दिया। इस ख़्याल से कि जिस दिन ग्रिनिच में बदली रहे उस दिन नागा न जाय, भारतवर्ष के कोदईकैनाल (Kodaikanal) बेधशाला में भी, जो मद्रास के समीप है, और दक्षिण अफ़्रीका के सरकारी



[ग्रिनिच-बेधशाला

चित्र २२१—ग्रिनिच की बेधशाला।

यहाँ प्रतिदिन (आकाश के स्वच्छ रहने पर) सूर्य-कलंकों का फ़ोटोग्राफ़ लिया जाता है।



[ग्रिनिच-बेधशाला

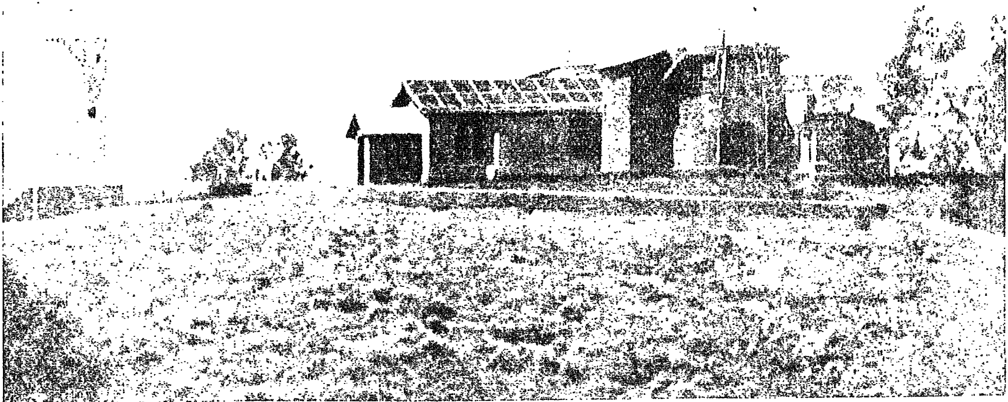
चित्र २३२—सूर्य-कलंक।

ग्रिनिच-बेधशाला का लिया फ़ोटोग्राफ़। दो समकोण पर मिलती हुई रेखायें सूर्य के केन्द्र को दिखलाने के लिए खींची गई हैं।

बेधशाला में, जो केप ऑफ़ गुड होप (Cape of Good Hope) में है, प्रतिदिन सूर्य का फ़ोटोग्राफ़ लिया जाता है। ये फ़ोटोग्राफ़ उसी नाप के लिये जाते हैं जिस नाप के ग्रिनिच में। इन फ़ोटोग्राफ़ों में सूर्य का व्यास ८ इंच उतरता है। इनके अतिरिक्त फ़्रांस के म्युडन (Meudon) बेधशाला, और अमेरिका के यरकिज़ और माउन्ट विलसन बेधशालाओं में भी, सूर्य के विषय में बराबर अनुसंधान किया जाता है। ग्रिनिच में एक फ़ोटोग्राफ़ प्रतिदिन नापा जाता है जिससे कलंकों की संख्या, क्षेत्र-फल, स्थिति इत्यादि का पता चलता है।

८—कलंकों के विषय में अन्य बातें—कलंकों का जीवन-काल साधारणतः कम होता है; बाज़ों का तो इतना कम होता है कि वे एक ही दो दिन में मिट जाते हैं, परन्तु अधिकांश अधिक दिन तक चलते हैं। बाज़ बाज़ महीने डेढ़ महीने तक चलते हैं। एक बार एक कलंक १८ महीने तक लगातार दिखलाई देता रहा। कलंकों का अन्त अधिकतर अत्यन्त चमकीले "पुल" के बन जाने से होता है (प्रक्रम ५ देखिए)। इन पुलों के निर्माण की गति बड़ी तेज़ होती है। कभी कभी पुल का सिरा १,००० मील प्रतिघंटे के हिसाब से आगे बढ़ता है।

सूर्य-कलंक गड्ढे हैं या उभड़े हुए हैं, इस प्रश्न का उत्तर अभी तक किसी को नहीं मालूम। इन दिनों भी इस प्रश्न को हल करने के लिए खोज की जा रही है। डेढ़ सौ वर्ष से ऊपर हुए होंगे कि एक ज्योतिषी ने प्रमाणित किया था कि सूर्य कलंक गड्ढे हैं, क्योंकि उसने देखा कि घूमने के कारण ये चित्र २३५ में दिखलाई गई रीति से शकल बदलते रहते हैं। इस चित्र को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि कलंक अवश्य गड्ढे हैं, परन्तु ऐसे कलंक और नहीं देखे गये हैं जो स्पष्ट गड्ढे जान पड़ें; इतना ही नहीं, कुछ कलंक तो उभरे से जान पड़ते हैं।



[कोदईकैनाल

चित्र २३३—कोदईकैनाल (मद्रास) की बेधशाला ।

यहाँ भी प्रति दिन सूर्य कलंकों का फ़ोटोग्राफ़ लिया जाता है ।

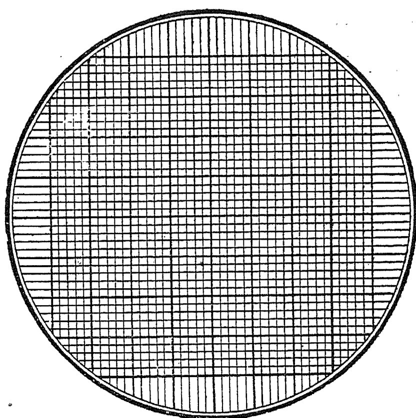
ऊपर बतलाया गया है कि कलंक-चक्र ११ वर्ष का है, परन्तु यह औसत (average) मान है। ये चक्र सात से लेकर सत्तरह वर्ष के पाये गये हैं। मालूम नहीं कि भविष्य के चक्रों को भी लेकर औसत निकालने पर ११ वर्ष का ही चक्र आयेगा या नहीं। हो सकता है कि सूर्य-कलंकों का बढ़ना-घटना केवल स्थूलरूप से ही चक्र-बद्ध हो।

ऐसा नहीं होता कि कलंकों की संख्या चक्र के आधे समय तक बढ़ा करे और फिर आधे समय तक घटा करे। हमेशा इनकी संख्या और क्षेत्रफल शीघ्र (लगभग साढ़े चार वर्ष में) बढ़ कर महत्तम मान तक पहुँच जाता है; फिर धीरे धीरे (लगभग साढ़े छः वर्ष में) घट कर लघुत्तम तक पहुँचता है।

८—एक विचित्र बात—इन कलंकों में एक विचित्र बात यह है कि ये सूर्य के बहुत उत्तर या दक्षिण भाग में नहीं पाये जाते। ये चित्र २३६ में काले रँगे भाग ही में दिखलाई पड़ते हैं। फिर, जब लघुत्तम का समय व्यतीत हो जाता है तब कलंक मध्य-रेखा से दूर पर, उत्तर और दक्षिण दोनों ओर, बनते हैं और उनका जन्मस्थान धीरे धीरे मध्य रेखा की ओर चलते चलते दूसरे लघुत्तम आने के समय तक मध्य-रेखा के समीप पहुँच जाता है।

श्वाबे के आविष्कार से आज सौ वर्ष से अधिक बीत गया, परन्तु अभी तक निश्चितरूप से मालूम नहीं हुआ कि कलंक क्या हैं, क्यों वे ११ वर्ष के चक्र में घटते बढ़ते हैं, पहले उनका जन्म मध्य रेखा से दूर पर क्यों होता है, और फिर उनका जन्मस्थान धीरे धीरे मध्य रेखा के पास क्यों खिसकता जाता है। अकसर देखा जाता है कि जिस स्थान पर कलंक जन्म लेकर मिट जाते हैं ठीक उसी स्थान पर दूसरे कलंक जन्म लेते हैं, मानों इनका कारण सूर्य तल

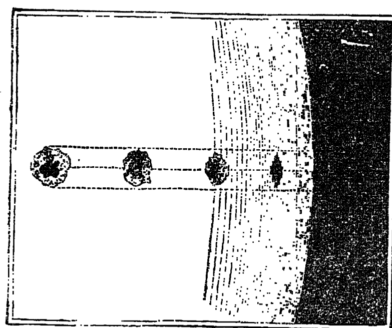
से बहुत गहरे में छिपा रहता है; ऊपर का कलंक मिट जाता है, परन्तु उसकी जड़ नहीं मिटती। हाल में एक नया सिद्धान्त निकला है, जो इस बात को अच्छी तरह समझाता है। इसकी चर्चा बाद में की जायगी।



चित्र २३४—कलंक नापने की जाली।

सूर्य के फ़ोटोग्राफ़ों को नापने के लिए उन पर इस प्रकार की शीशे पर खिंची जाली रख दी जाती है और तब कलंकों की स्थिति लिख ली जाती है।

१०—सूर्य-कलंक और सांसारिक घटनायें—प्रोफ़ेसर मिचेल लिखते हैं* "कई बार वास्तविक चेष्टा की गई है कि सूर्य-कलंक और अन्य घटनाओं के बीच, चाहे वे सूर्य-सम्बन्धी हों, चाहे पृथ्वी-सम्बन्धी, नाता जोड़ा जाय। सूर्य-सम्बन्धी घटनाओं से जो नाते जोड़े गये हैं ननकी नींव अधिकतर पक्की है, परन्तु पृथ्वी-सम्बन्धी नाते



[हीथ के अटलस से

चित्र २३५—क्या सूर्य-कलंक गड्ढे हैं?

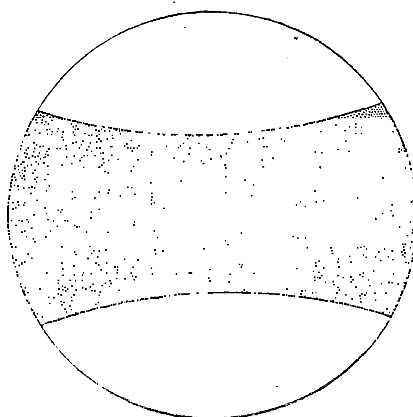
इस चित्र से तो ऐसा ही जान पड़ता है; परन्तु इसका पक्का प्रमाण अभी तक नहीं मिला है।

* Mitchell : Eclipses of the Sun, p. 121.

बाज़ बाज़ बिलकुल ख़याली जान पड़ते हैं। यदि यूनाइटेड स्टेट्स (अमेरिका) के किसी एक स्थान, जैसे लुई में, साधारण से अधिक गरमी पड़ती है, या यदि शायद उसी समय उत्तरी फ़्रांस में ख़ूब सरदी पड़ने लग गई है और यदि संयोगवश सूर्य पर एक-बड़ा सा कलंक-समूह है तो कोई ज्योतिषी, अकसर कोई छद्म-ज्योतिषी, अवश्य मिल जाता है जो दैनिक समाचारपत्रों को सूचित करता है कि यह सूर्य-कलंक ही गरमी (या सरदी) का कारण है। भारतवर्ष के दुर्भिक्ष, आयरलैंड के आलू की फ़सल, इँगलैंड में बाजरे की दर, मॉरिशस द्वीप की जल-वर्षा, और न्यूयार्क की कम्पनियों का हानि-लाभ, इन सभों की जाँच गणित से की गई है और इनमें से हर एक के विषय में सिद्ध किया गया है कि उनका भी उतार-चढ़ाव ग्यारह वर्ष में होता है और इसलिए उनका भी सम्बन्ध सूर्य-कलंकों से अवश्य है। कई बार कहा गया है कि 'अंक कभी झूठ नहीं बोलते'। यह बिलकुल सत्य है कि अंक स्वयं झूठी बातें नहीं बतलाते, परन्तु इन अंकों पर जो अर्थ मढ़ा जाता है वे अनेक और भिन्न भिन्न हैं। प्रत्येक बड़े कारबार का मैनेजर अच्छी तरह जानता है कि यदि उसकी कम्पनी में दो वर्षों में लगभग एक-सा लाभ हो तो भी उसके लिए यह अत्यन्त सरल है कि एक वर्ष वह लाभ बतला कर पूरा सूद (dividends) दे, और दूसरे वर्ष नफ़ा को कारबार में उन्नति करने या दफ़्तर को बढ़ाने के खाते में डाल कर, सूद कम कर दे या घाटा दिखला कर सूद एक पैसा भी न दे। × × × यह बिलकुल सम्भव है, सम्भव ही नहीं यह शायद सत्य भी है, कि जल-वायु और वृष्टि का सम्बन्ध सूर्य के तेज से (जिसका पता कलंकों से लगता है) है; और हो सकता है, अन्य विषय भी कलंकों से सम्बन्ध रखते हों—परन्तु इस सम्बन्ध को प्रमाणित कर देना 'दूसरी बात है'। सरदी गरमी या वर्षा

'हुक्म के मुताबिक' तैयार नहीं किये जा सकते। ये अनेक प्रकार के भिन्न भिन्न बातों पर निर्भर हैं और इसलिए उन सब कारणों में से जो जल-वायु पर प्रभाव डालते हैं सूर्य के फल को पृथक् करना कठिन और प्राय: असम्भव है"।

प्रोफ़ेसर मिचेल ने जिन व्यक्तियों पर कठोर कटाक्ष किया है उनमें शायद वे रूसी (Russian) प्रोफ़ेसर भी हैं, जिनका नाम इतना टेढ़ा है कि उसका हिन्दी-भाषियों के मुख से उच्चरित होना असम्भव सा ही है और जिनका कहना है कि "अपने कुकर्म के लिए अपराधियों का उत्तरदायित्व सूर्य-कलंक-महत्तम के निकटता पर निर्भर है। × × × सूर्य से आये हुए ऋणाणु (electrons) मनुष्य की इच्छा और मनोवृत्ति-सम्बन्धी केन्द्रों में आश्चर्यजनक विकार कर देते हैं, और एक प्रकार से वह अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं रह जाता"*।



चित्र २३६—सूर्य का नक़शा।

केवल काले किये हुए भागों में ही कलङ्क पाये जाते हैं।

---

* Popular Science Monthly, Jan. 1928, p. 46.

यदि अपराधी सब इसी दलील से छुटकारा पा जाया करते तो इस संसार की आज क्या दशा होती !

११—चुम्बक-सम्बन्धी विषयों पर कलंकों का प्रभाव--ग्रिनिच में वर्षों से जो फ़ोटोग्राफ़ लिये और अध्ययन किये गये हैं उनसे पता चला है कि पृथ्वी की कुछ घटनायें सूर्य-कलंकों से अवश्य सम्बन्ध रखती हैं। सभी जानते हैं कि कुतुबनुमा उत्तर की दिशा को सूचित करता है, परन्तु साधारण लोग इसे नहीं जानते हैं कि इसकी सुई ठीक ठीक उत्तर दिशा में नहीं रहती। परन्तु सच्ची बात यही है। पहले पहल इस बात का पता प्रसिद्ध कोलम्बस को लगा था, जिसने अमेरिका का आविष्कार किया था। इतना ही नहीं, शुद्ध उत्तर दिशा और चुम्बकीय (अर्थात् कुतुबनुमा से जाना गया) उत्तर दिशा में जो अन्तर रहता है वह प्रतिदिन चक्र-बद्ध (periodic) रीति से घटता-बढ़ता रहता है। सबेरे कम और तीसरे पहर अधिक हो जाता है। ग्रिनिच के फ़ोटोग्राफ़ों से पता लगा है कि इस घटने बढ़ने पर सूर्य-कलंकों का प्रत्यक्ष अन्तर पड़ता है। कभी कभी, जब सूर्य पर बहुत से कलंक रहते हैं, तब कुतुबनुमे की सुई की दिशा बिलकुल अनियमित रूप से बदलने लगती है। इन घटनाओं को चुम्बकीय आँधी (magnetic storms) कहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ घटनायें और भी हैं जिन पर कलंकों का प्रभाव पड़ता है। जैसे उत्तर और दक्षिण ध्रुवों के पास आकाश में रात्रि समय विशेष प्रकार की रोशनी दिखलाई पड़ती है जो सदा नाचा करती है, रूप बदलती रहती है और बहुत सुन्दर जान पड़ती है (चित्र २३७,२३८)। उत्तर में इसे "उत्तरी प्रकाश" (Aurora Borealis, औरोरा बोरियालिस) कहते हैं। देखा गया है कि चुम्बकीय आँधी के साथ साथ यह प्रकाश भी बहुत बढ़ जाता है।

१९२१ में १३ मई को सूर्य के केन्द्र के पास कई कलंक थे। इनके कारण ऐसे प्रबल औरोरा उत्पन्न हुए जो प्राय: सारे पृथ्वी पर दिखलाई पड़े। उस समय तार भेजना कठिन हो गया, क्योंकि तारों पर आकाशीय बिजली का बहुत असर पड़ा। जिस समय औरोरा सबसे अधिक बढ़ा हुआ था उस समय अमेरिका और यूरोप-वाला एक केबुल (Cable, समुद्र के नीचे नीचे जानेवाला तार) जल गया।



[रॉयल सोसायटी

चित्र २३७—उत्तरी प्रकाश।

इस प्रकार की रोशनी पृथ्वी के उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव के समीपवर्ती देशों में दिखलाई पड़ती है। इतना निश्चय है कि इनका सूर्य-कलंकों से कोई सम्बन्ध अवश्य है।

प्रोफ़ेसर डोगलस (Prof. Douglass) का कथन है कि पुराने वृक्षों की जाँच से (पृष्ठ २३४ और चित्र २१४ देखिए) पता चलता है कि आज से हज़ारों वर्ष पहले भी सूर्य-कलंक-चक्र उसी प्रकार चल रहा था जैसा इन दिनों।

१२—सूर्य का घूमना—ऊपर बतलाया गया है कि सूर्य अपने अक्ष पर घूमता है और यह बात कलंकों की गति से जानी

गई है, परन्तु विचित्र बात यह है कि मध्य रेखा के पासवाले कलंक शीघ्रगामी हैं। यदि कई एक कलंकों को एक पंक्ति में खड़ा कर दिया जाय और वे एक साथ ही चलना आरम्भ कर दें तो जब तक उत्तर और दक्षिण के कलंक अपने पुराने स्थान पर पहुँचेंगे तब तक मध्यवाले कलंक आगे निकल जायँगे (चित्र २३९)। अभी तक नहीं मालूम कि इसका क्या कारण है। इसके अतिरिक्त मध्य रेखा से एक ही दूरी पर स्थित कलंक भी ठीक एक ही नियत काल में चक्कर नहीं लगाते। उनकी गति कभी शीघ्र, कभी मन्द, कभी ज़रा दक्षिण की ओर और कभी ज़रा उत्तर की ओर हो जाती है। इसलिए हज़ारों कलंक के भ्रमण-काल के औसत को सूर्य का भ्रमण-काल माना जाता है।

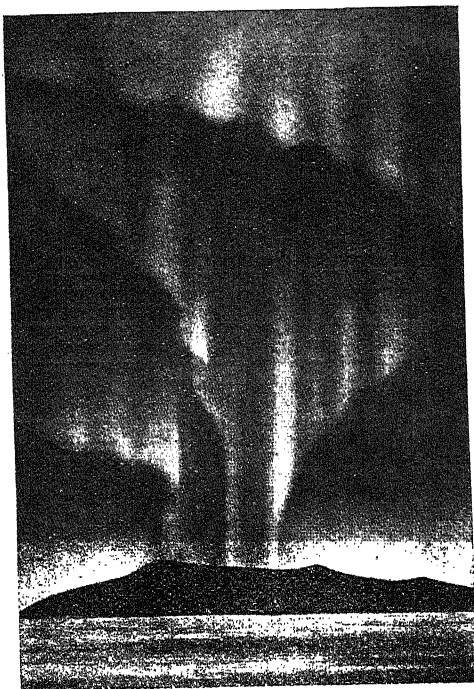
ऊपर "मशालों", अर्थात् सूर्य-मंडल पर दिखलाई देनेवाले चमकीले बादलों का ज़िक्र किया गया है। इनकी गति से भी सूर्य का भ्रमण-काल निकाला गया है। इनसे निकला समय कलंकों से निकले समय का समर्थन करता है।

आगे चल कर बतलाया जायगा कि कैलसियम वाष्प (calcium vapour) के बादलों का चित्र कैसे लिया जा सकता है। सूर्य के भ्रमण-काल को इनसे भी नापने पर वही परिणाम मिलता है।

अन्त में, अगले अध्याय में जो रीति बतलाई जायगी, उस रीति से रश्मि-विश्लेषक यंत्र का प्रयोग करके, सूर्य का भ्रमण-काल मध्य रेखा के पास से लेकर उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों तक नापा गया है। इससे पता चलता है कि ध्रुव के पास का पदार्थ एक चक्कर लगभग ३४ दिन में लगाता है; मध्य रेखा से ६०° की दूरी पर भ्रमण-काल ३१ दिन है और ४०° पर भ्रमण काल केवल साढ़े सत्ताइस दिन है। इससे स्पष्ट है कि सूर्य ठोस

नहीं है, कम से कम वह भाग जो हमें दिखलाई पड़ता है ठोस नहीं है।

१३—क्या सूर्य-बिम्ब बिलकुल गोल है—वैज्ञानिकों का विश्वास है कि सूर्य-मंडल पूर्णतया गोल है। यह नारंगी के समान चिपटा नहीं है। इस विषय पर प्रोफ़ेसर मिचेल की समालोचना पढ़ने योग्य है*। इतना बतलाकर कि आउवर्स (Auwers) ने १०० ज्योतिषियों की १५,००० नापों का औसत लेकर सूर्य के व्यास का निर्णय किया था, परन्तु तिस पर भी पीछे कुछ ज्योतिषियों को शंका हुई कि सूर्य शायद ज़रा सा चिपटा है, वे लिखते हैं:—



[रॉयल सोसायटी

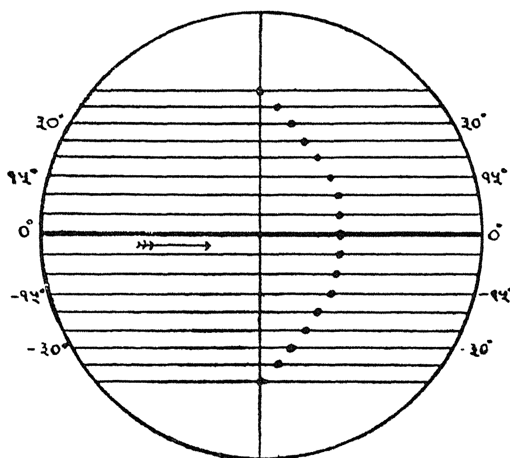
चित्र २३८—**उत्तरी प्रकाश**।

इनका स्वरूप क्षण क्षण बदलता है। पिछले चित्र से तुलना कीजिए।

"इन नापों से पता चला कि एक मनुष्य की नाप दूसरे से काफ़ी भिन्न होती है। इन अन्तरों का (जिन्हें व्यक्तिगत समी-

* Mitchell, Eclipses of the Sun, p. 124.

करण, personal equation, कहते हैं) भविष्य के सब बेधों पर विचित्र प्रभाव पड़ा, जिसकी बराबरी ज्योतिष-सम्बन्धी खोज के किसी अन्य विभाग में नहीं हो सकी। फल यह हुआ कि सौर-व्यास का नापना एक प्रकार से बिलकुल बन्द हो गया। किसी ज्योतिषी को क्या लाभ होगा यदि वह सूर्य-व्यास को वर्षों तक नापे और इसके पीछे हज़ारों घंटे जी तोड़ कर परिश्रम करे और बुद्धि लगावे, और अन्त में उसे केवल इसी बात का पता लगे कि उसका मान प्रचलित मान से भिन्न है! ज्योतिष-संसार में इस अन्तर को लोग इस बात का प्रमाण न समझेंगे कि प्रचलित मान अशुद्ध है, अथवा सूर्य का व्यास बदल रहा है; वे तो शायद इसे

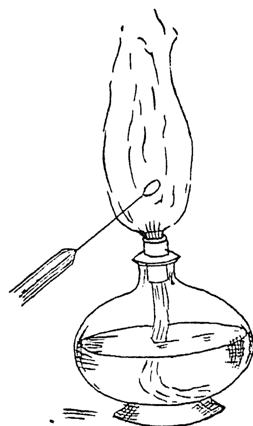


चित्र २३९—सूर्य का घूमना।

यदि सब सूर्य-कलंकों को बीचवाली रेखा में खड़ा कर दिया जाय और वे साथ ही छूटें तो वे अपनी पुराने स्थानों पर साथ ही न पहुँचेंगे; बीचवाले कलंक आगे बढ़ जायँगे।

इस बात का प्रमाण समझेंगे कि उस मनुष्य का मान, यद्यपि यह अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ निकाला गया है, व्यक्तिगत समीकरण के कारण ही अशुद्ध हो गया है। बहुत पाने पर भी ज्योतिषी अपने निपुण अनुसंधानों के कठिन परिश्रम पर नाम-मात्र ही इनाम पाता है। और, वह भी तो मनुष्य ही है। स्वभावतः, वह विज्ञान-संसार

में यह घोषित कर देने के बदले कि वह ग़लत वेध करनेवाला है अन्य कोई पारितोषिक चाहता है। और बड़े आश्चर्य की बात है कि यह इस बीसवीं शताब्दी के सभ्य समय की दशा है, जब प्रतिवर्ष लाखों रुपया सूर्य-सम्बन्धी अनुसंधानों में ख़र्च किया जाता है। एक प्रकार से ज्योतिष कह रहा है कि पुराने यंत्रों से निकाले गये, आज से आधी शताब्दी पूर्व के, कार्य में कोई उन्नति नहीं की जा सकती—और इसलिए हम मान लेंगे कि सूर्य गोलाकार है और घटता बढ़ता नहीं है।



चित्र २४०—**स्पिरिट-लैम्प।**

धातुओं का रश्मि-चित्र देखने के लिए प्लैटिनम के तार पर उनके उपयुक्त क्षारों को लेकर गरम करना चाहिए।

"क्या कोई अन्य रीति नहीं है? फ़ोटोग्राफ़ी से सहायता क्यों न ली जाय? निस्सन्देह, अनेक युक्तियों से सम्पूर्ण आधुनिक ज्योतिष प्रत्येक कठिनाई को जीत सकता है। वस्तुत:, फ़ोटोग्राफ़ी की रीति में कोई भी बड़ी कठिनाई नहीं है, क्योंकि सूर्य के अत्यन्त सुन्दर फ़ोटोग्राफ़ प्रतिदिन खींचे जाते हैं। × × × किसी अथक परिश्रमी के लिए कई लाख सूर्य के नेगेटिव तैयार हैं। उसे केवल इन्हें नापना और अध्ययन करना रह गया है जिससे पता चले कि सूर्य गोल है या नहीं।"

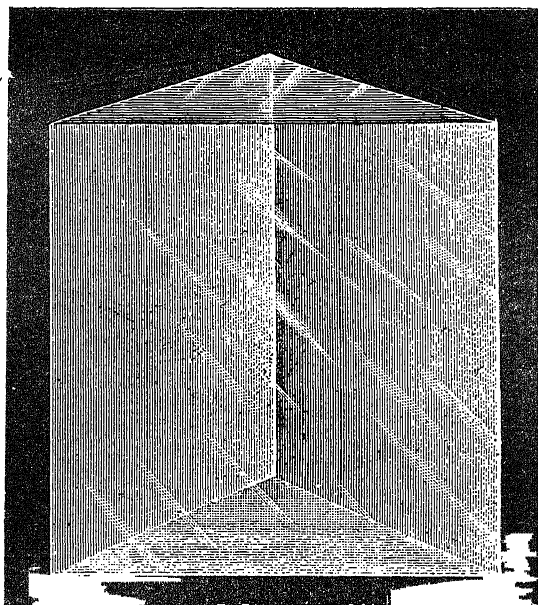
अध्याय ७

रश्मि-विश्लेषण

१—नवीन ज्योतिष—जो कुछ हम दूरदर्शक और कैमेरा से आकाशीय पिंडों के विषय में सीख सकते हैं, वह वस्तुतः आश्चर्यजनक है ; क्योंकि इन यंत्रों और गणित की सहायता से हम उनकी स्थिति, गति, दूरी, आकार, नाप, वज़न और चमक का पता लगा सकते हैं, चाहे वे हमसे करोड़ों मील दूर क्यों न हों। परन्तु ये सब अद्भुत कार्य शीशे के उस टुकड़े की करामात के आगे, जिसे त्रिपार्श्व कहते हैं और जो शोभा के लिए झाड़-फ़ानूस में लगाया जाता है, मन्द पड़ जाते हैं । दूरदर्शक से वर्षों देखने पर भी सूर्य या नक्षत्रों की ऊपरी बनावट ही दिखलाई देगी, परन्तु इस त्रिपार्श्व से इनकी रासायनिक बनावट, तापक्रम और वेग का भी पता चलता है। सारे विज्ञान में सूर्य और ताराओं की रासायनिक बनावट का पता लगाने से बढ़कर अद्भुत कार्य कोई दूसरा न होगा। अभी १०० वर्ष भी नहीं हुए यह मानुषिक शक्ति के बाहर समझा जाता था, परन्तु इस "नवीन ज्योतिष" (the "New Astronomy") ने "अपने आविष्कारों से निराले ढंग पर दिखला दिया है कि मनुष्य के मस्तिष्क में अद्भुत योग्यता और उत्पादक शक्ति है और प्रकट कर दिया है कि मनुष्य में प्रायः असीम शक्ति है। अपनी इस पृथ्वी से, जिसको ज्योतिष बतलाता है कि यह विश्व के असंख्य पिंडों के मध्य में केवल एक तुच्छ विन्दु-प्राय कण है, मनुष्य सूर्य तक पहुँच सका है और सूर्य की रासायनिक और भौतिक बनावट का पता लगा सका है और उसका यह ज्ञान उतना ही पक्का है जितना

किसी रासायनिक का होता यदि उसे सूर्य-पदार्थ की बानगी ला कर दे दी जाती और वह उसकी सूक्ष्म परीक्षा करता''* ।

२—मौलिक और यौगिक पदार्थ; सूर्य की बनावट— इस संसार में हज़ारों पदार्थ हैं, परन्तु रासायनिकों ने जाँच करके



[बेअर्ड ऐंड टैटलॉक

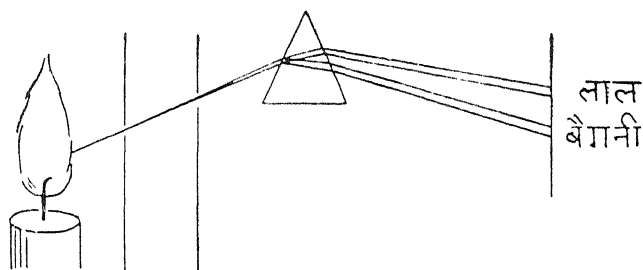
चित्र २४१—त्रिपार्श्व ।

इस सरल यंत्र ने हमको अनेकों बातें सिखलाई हैं ।

पता लगाया है कि ये थोड़े से मौलिक पदार्थों के मिलने से बने हैं । जैसे, पानी यौगिक पदार्थ है; यह दो गैसों से बना है, ओषजन और हाइड्रोजन (oxygen और hydrogen) । यदि पानी

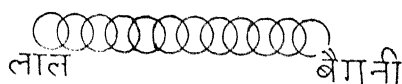
* Mitchell: Eclipses of the Sun.

में से बिजली की धारा भेजी जाय तो ये दोनों गैसें पृथक् पृथक् हो जायँगी। इसी प्रकार नमक, सोडियम (sodium) धातु और क्लोरीन (chlorine) गैस के योग से बना है। मौलिक पदार्थों की संख्या केवल ८७ है। जिस प्रकार केवल इने-गिने अक्षरों के



चित्र २४२—"अशुद्ध" रश्मि-चित्र कैसे बनता है।

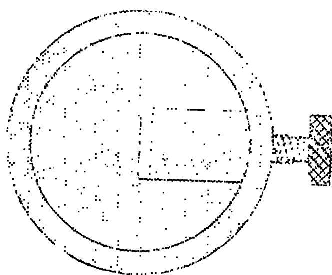
योग से हज़ारों भिन्न भिन्न शब्द बने हैं, उसी प्रकार इन्हीं मौलिक पदार्थों से पृथ्वी के सब पदार्थ बने हैं। साधारणतः, अधिक गरमी से यौगिक पदार्थ टूट जाते हैं और उनके मौलिक पदार्थ अलग अलग हो जाते हैं। सूर्य की भयानक गरमी में बहुत कम पदार्थ यौगिक रूप में रह सकते होंगे। हम त्रिपार्श्व या रश्मि-विश्लेषक यंत्र-द्वारा किसी विशेष मौलिक पदार्थ का सूर्य पर उपस्थित रहना या न रहना तुरन्त बतला सकते हैं।



चित्र २४३—अशुद्ध रश्मि-चित्र।

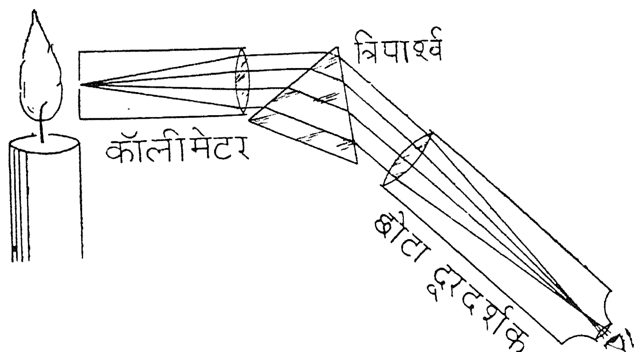
यह समझना कि इस यंत्र से यह काम कैसे किया जाता है, अत्यन्त सरल है। आपने देखा होगा कि आतिशबाज़ी में जो महताबियाँ जलाई जाती हैं उनमें से कोई लाल जलती

हैं कोई हरी । स्ट्रॉन्शियम (strontium) नाम के मौलिक पदार्थ की किसी भी क्षार के रहने से महताबी लाल जलेगी और जब कभी महताबी स्ट्रॉन्शियम की ज्वाला के समान लाल जले तो आप समझ सकते हैं कि इसमें स्ट्रॉन्शियम अवश्य है। इसी प्रकार बेरियम से हरा, ताँबे से नीला-हरा, सोडियम (मामूली नमक) से पीला प्रकाश उत्पन्न होता है। इन रंगों को देखने के लिए शुद्ध



चित्र २४४—शिगाफ़।

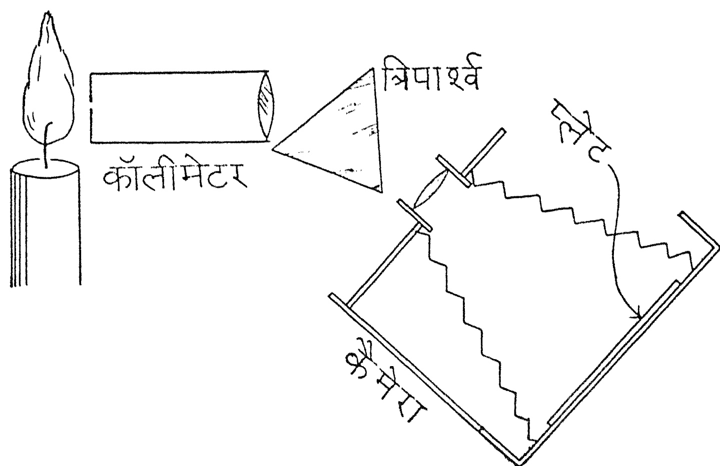
शराब या मेथिलेटेड स्पिरिट का लैम्प या स्टोव (stove) जलाना चाहिए (चित्र २४०), क्योंकि शराब या स्पिरिट की लौ में प्रकाश नहीं रहता। इसकी लौ में उपरोक्त पदार्थ के किसी भी क्षार को रखने



चित्र २४५—रश्मि-विश्लेषक यंत्र की बनावट।
सरलता के लिए एक ही रंग की रश्मियाँ दिखलाई गई हैं।

से, विशेषकर उनके क्लोराइड-क्षार से, लौ रंगीन हो जायगी। आप जब कभी किसी लौ को ठीक इन्हीं रंगों की देखें तो आप बेरियम, ताँबा या सोडियम का उपस्थित रहना निश्चित कर सकते हैं।

३—भिन्न-भिन्न पदार्थों की पहचान—यदि कहीं प्रत्येक मौलिक पदार्थ से ज्वाला विशेष रंग की रंग जाती तो इन पदार्थों की पहचान में कैसी सुगमता होती! सौभाग्य-वश, प्रत्येक मौलिक पदार्थ को ज्वाला में छोड़ने से वस्तुतः भिन्न-भिन्न रंग का प्रकाश निकलता है, परन्तु कठिनाई इतनी ही रह जाती है कि बिचारी आँखें इतने प्रकार के रंगों का अन्तर सहज में नहीं बतला

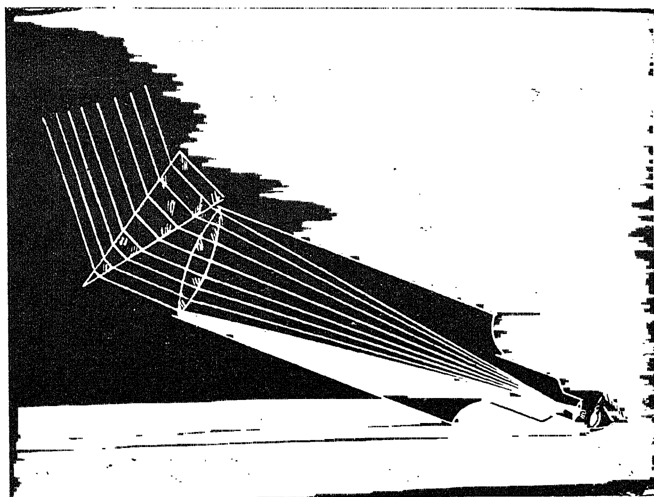


चित्र २४६—रश्मि-विश्लेषक कैमेरा।

सकतीं, और यदि कहीं दो या अधिक मौलिक पदार्थों से साथ ही प्रकाश आता हो तब तो वे पूर्णतया लाचार हो जाती हैं।

यहाँ रश्मि-विश्लेषक यंत्र अथवा इस यंत्र का प्राण—वही ऊपर बतलाया गया शीशे का त्रिपार्श्व—हमारी सहायतार्थ पहुँचता है। इसका कार्य समझने के लिए एक साधारण उदाहरण लीजिए। मान लीजिए कि किसी मिश्रण में छोटे बड़े, मोटे और बारीक, १०० मेल की चीज़ें मिली हैं और बतलाना है कि इनमें कौन-कौन सी चीज़ें हैं।

यदि १०० चलनियों से, जो क्रमशः एक से एक बारीक हों, हम चालते चले जायँ तो ये वस्तुएँ अलग अलग हो जायँगी और हम सहज ही में बतला सकेंगे कि इनमें क्या क्या चीज़ें हैं। इसी प्रकार यदि हमको कोई ऐसी वस्तु मिल जाय जो प्रकाश के अवयवों को पृथक् पृथक् कर दे तो हम देखते ही बतला सकेंगे कि किस

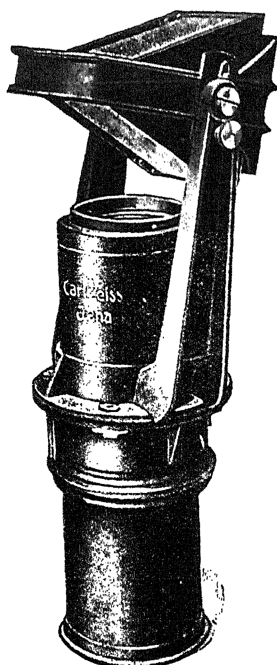


चित्र २४७—प्रधान ताल के सामने लगनेवाला त्रिपार्श्व।

प्रधान ताल के सामने त्रिपार्श्व लगाने से तारात्रों का शुद्धि-रश्मि चित्र लिया जा सकता है। सरलता के ख्याल से एक ही रंग की रश्मियाँ दिखलाई गई हैं।

विशेष प्रकाश में किस किस रंग के प्रकाश हैं। परन्तु ठीक यही काम तो त्रिपार्श्व करता है। हम देख चुके हैं कि श्वेत प्रकाश की रश्मियाँ त्रिपार्श्व में घुस कर दूसरी ओर निकलने पर अपने भिन्न-भिन्न अवयवों में विभक्त हो जाती हैं, अर्थात्, रश्मियों का "विश्लेषण" हो जाता है और त्रिपार्श्व की दूसरी ओर "रश्मि-विश्लेषण चित्र" या "रश्मि-चित्र" (spectrum) बन जाता है।

रश्मि-चित्र को देखने ही से हम बतला सकते हैं कि प्रकाश में किस किस रंग की रश्मियाँ हैं। उदाहरण के लिए, सोडियम या नमक से आये प्रकाश में पीले भाग में दो रेखायें दिखलाई पड़ती हैं और शेष भाग काला रह जाता है अर्थात् यहाँ प्रकाश नहीं रहता है (रंगीन चित्र देखिए)। इसी प्रकार स्ट्रॉन्शियम को स्पिरिट-लैम्प की लौ में रखने से भिन्न रीति का रश्मि-चित्र मिलता है, जिसमें लाल रंगवाले भाग में एक चटक रेखा रहती है और कुछ रेखायें अन्य भागों में रहती हैं। यदि अब सोडियम और स्ट्रॉन्शियम साथ ही जलाये जायँ तो भी उनकी पहचान करने में कुछ कठिनाई न पड़ेगी, क्योंकि अबकी बार रश्मि-चित्र में सोडियम की रेखायें अपने स्थान पर और स्ट्रॉन्शियम की रेखायें अपने स्थान पर दिखलाई पड़ेंगी। इनके स्थान भिन्न भिन्न होने के कारण ज़रा भी गड़बड़ी न होगी। इसी रीति से अन्य मौलिक पदार्थों का भी पता लग सकता है।



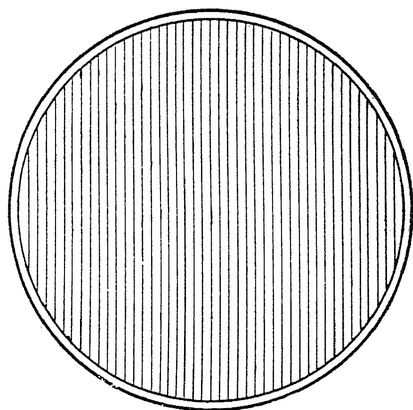
[जाइस कम्पनी

चित्र २४८—प्रधान ताल के सामने रखने के लिए विपार्श्व।

४—रश्मि-विश्लेषक यंत्र—

यदि चित्र २४२ में दिखलाई रीति से कार्य किया जाय तो बहुत सूक्ष्मता नहीं आ सकती, क्योंकि वस्तुतः एक रश्मि नहीं, बहुत सी रश्मियाँ पर्दे के छेद से निकल पड़ती हैं। फल यह होता है कि रंग सब पृथक् पृथक् नहीं पड़ते। वे एक दूसरे पर चढ़ जाते हैं (चित्र २४३)। इस लिए बीच के

रंगों में लीपापोती हो जाती है। इस प्रकार के रश्मि-चित्र को "अशुद्ध" रश्मि-चित्र (impure spectrum) कहते हैं। शुद्ध (pure) रश्मि-चित्र के लिए प्रकाश की रश्मियों को एकत्रित करना पड़ता है और इसके लिए एक ताल लगाना पड़ता है। यंत्र के इस भाग को कॉलीमेटर (collimator) कहते हैं (चित्र २४५)। गोल छिद्र के बदले लम्बे छिद्र या "शिगाफ़" का प्रयोग किया जाता है (चित्र २४४), जिसमें रश्मि-चित्र काफ़ी चौड़ा उतरे। इस यंत्र के जबड़ों को पेच से चला कर शिगाफ़ की चौड़ाई इच्छानुसार छोटी की जा सकती है। रश्मि-चित्र को परदे पर पड़ने देने के बदले त्रिपार्श्व की दूसरी ओर छोटा सा दूरदर्शक लगा दिया जाता है। इससे रश्मि-चित्र स्पष्ट और बड़ा दिखलाई पड़ता है। जब फ़ोटोग्राफ़ लेना होता है तब क़लम को दूसरी ओर कैमेरा लगा दिया जाता है (चित्र २४६)।

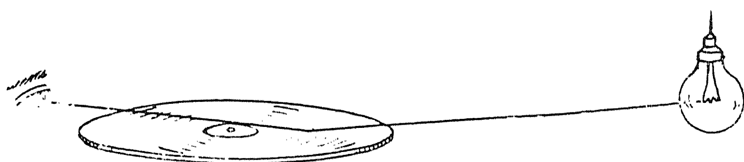


चित्र २४६—जाली।

अधिकांश जालियाँ चौकोर होती हैं।

तारे विन्दु-सदृश दिखलाई पड़ते हैं। वे अत्यन्त दूर भी हैं जिससे उनकी रश्मियाँ समानान्तर ही रहती हैं। इस कारण से उनके लिए कॉलीमेटर की आवश्यकता नहीं पड़ती (चित्र २४७)। केवल दूरदर्शक के सामने बड़ा सा त्रिपार्श्व लगा दिया जाता है। इस प्रकार का त्रिपार्श्व चित्र २४८ में दिखलाया गया है।

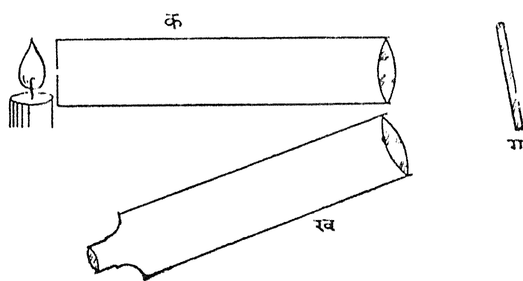
५—जाली—त्रिपार्श्व के बदले जाली (grating) का भी उपयोग किया जा सकता है। इसका आकार चित्र २४९ में दिख-



चित्र २५०—ग्रामोफ़ोन रेकॉर्ड से रश्मि-चित्र का बनना।

रात्रि के समय तेज़ प्रकाश और आँख के बीच किसी तवे को रख कर, इसमें प्रकाश की परछाहीं को देखने पर परछाहीं रंगीन दिखलाई पड़ेगी, अर्थात्, इसकी सरल परछाहीं नहीं, बल्कि एक रश्मि-चित्र दिखलाई पड़ेगा।

लाई गई जाली का सा, परन्तु बहुत बारीक़ होना चाहिए। इस प्रकार की जाली का बनाना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि सब लकीरों को बिलकुल ठीक स्थान में पड़ना चाहिए। ज़रा सी भी

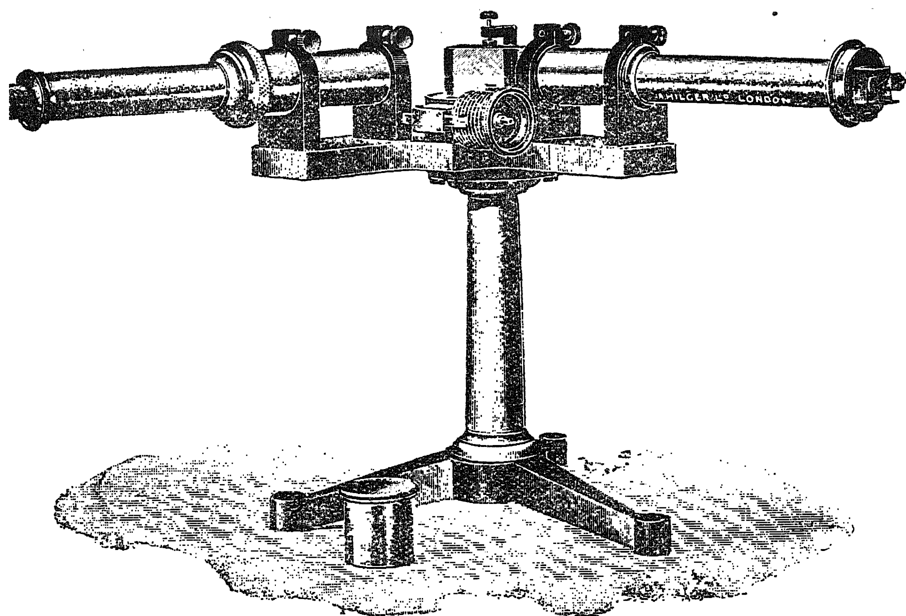


चित्र २५१—नतोदर जाली कैसे काम में लाई जाती है।

क, कॉलीमेटर; ख, दूरदर्शक; और ग, जाली है।

त्रुटि रह जाने पर यह बेकाम हो जायगी। अमेरिका के प्रोफ़ेसर रोलैंड ने एक ऐसी मशीन बनाई थी जिसकी सहायता से वे

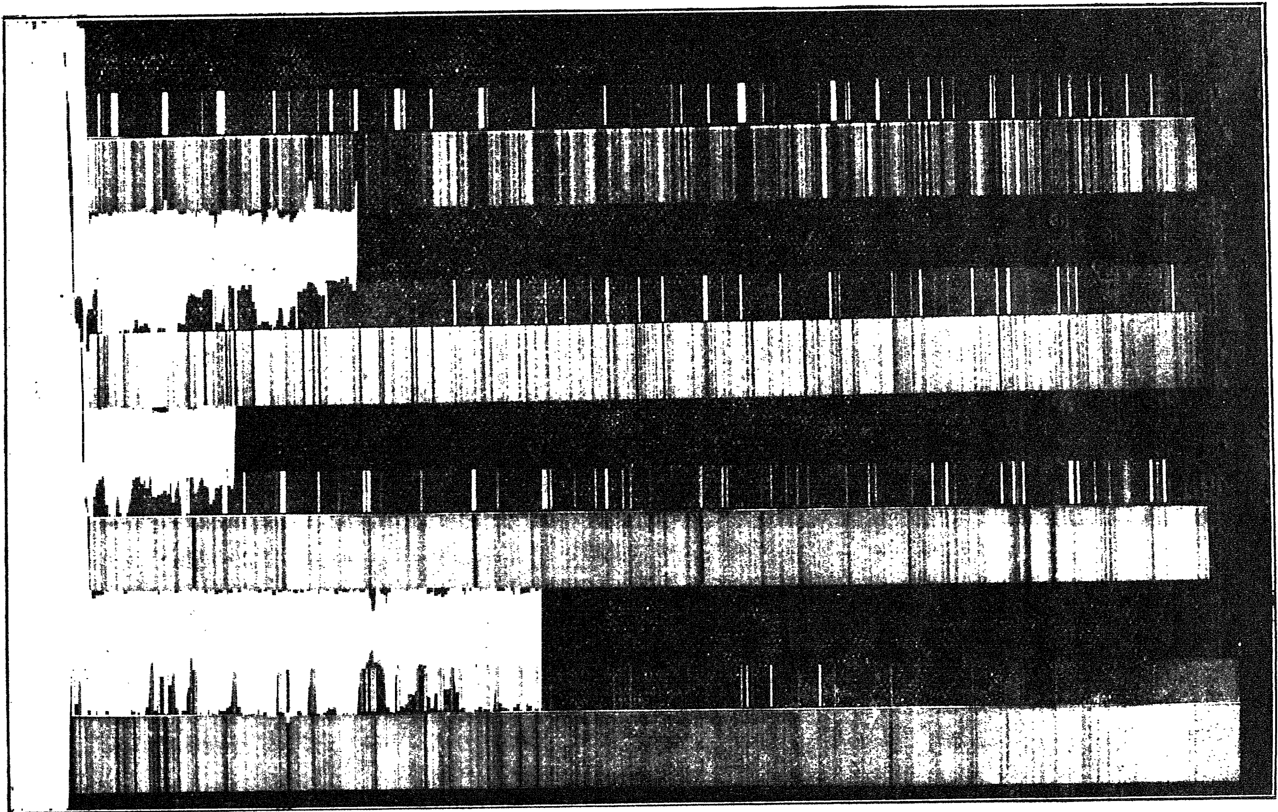
इस कठिन काम को कर सकते थे। ऐसी जाली शीशे पर सोने की क़लई करके उस पर बारीक़ लकीरों को खींच कर बनाई जा सकती है, परन्तु ख़ूब पॉलिश किये फूल-धातु के दर्पण पर अत्यन्त बारीक़ लकीरें खींची जा सकती हैं। रोलैंड की सबसे अच्छी जालियाँ इसी प्रकार बनती थीं।



[ऐडम हिलंग

चित्र २५२—रश्मि-विश्लेषक-यंत्र।

इन जालियों से क्यों रश्मियों का विश्लेषण हो जाता है इसका कारण भौतिक-विज्ञान की पुस्तकों में मिलेगा, परन्तु इस बात की परीक्षा कि ऐसी जालियों से वस्तुतः रश्मियों का विश्लेषण हो जायगा, सरलता से की जा सकती है। ग्रामोफ़ोन के तवों

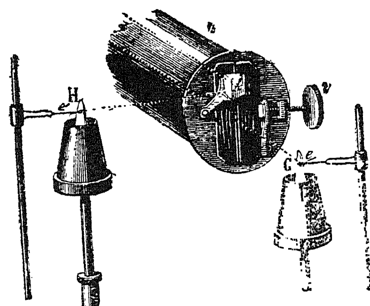


[माउन्ट विलसन

चित्र २५३—तुलना करने के लिए अज्ञात रश्मि चित्र के ऊपर जाने हुए पदार्थों का रश्मि-चित्र लिया जाता है।

(records) पर रेखायें खिंची रहती हैं। रात्रि के समय तेज़ प्रकाश और आँख के बीच में किसी तवे को रख कर, इसमें प्रकाश की परछाईं को देखिए। तवे को इतना तिरछा रखना चाहिए कि आँख लगभग इसको धरातल में आ जाय (चित्र २५०)। आप देखेंगे कि प्रतिबिम्ब इन्द्र-धनुष के समान रंगीन दिखलाई देता है। तवे में रेखायें न होतीं तो साधारण प्रतिबिम्ब दिखलाई देता।

चित्र २५१ में जाली-युक्त रश्मि-विश्लेषण यन्त्र के मुख्य अवयव दिखलाये गये हैं और चित्र २५२ में इस यन्त्र का फ़ोटोग्राफ़ दिखलाया गया है, परन्तु जिस दर्पण पर जाली खींची जाती है उसे ज़रा सा नतोदर बनाने से कॉलीमेटर की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस प्रकार, जब फ़ोटोग्राफ़ लेना रहता है तो प्रकाश की रश्मियों को कहीं भी शीशे को पार नहीं करना पड़ता। इससे बहुत लाभ होता है, क्योंकि शीशा रश्मि-चित्र के एक भाग (परा-कासनी भाग ultra-violet rays) के लिए अ-पार दर्शक है।



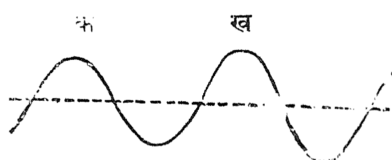
[गैनो की फ़िज़िक्स से

चित्र २५४—तुलना करनेवाले रश्मि चित्र कैसे लिये जाते हैं।

जाली से रश्मि-चित्र ख़ूब बड़ा बनता है। इसी कारण सूर्य के लिए जाली का ही उपयोग किया जाता है। तारात्रों में इतना प्रकाश नहीं रहता कि उनका बड़ा रश्मि-चित्र बनाया जा सके। इस कारण उनके लिए त्रिपार्श्व का ही प्रयोग किया जाता है।

६—जाली बनाने की कठिनाइयाँ—रोलैन्ड की बाज़ जालियों में प्रति इंच २०,००० रेखायें हैं। इतनी बारीक़ रेखाओं

को खींचने के लिए हीरे की क़लम को छोड़ अन्य कोई उपाय नहीं है। यदि जाली ३ इंच × ६ इंच हो तो हीरे की क़लम को कुल मिला कर २०,००० × ३ × ६ इंच या लगभग ६ मील चलना पड़ेगा। यदि इतने में हीरा ज़रा सा भी घिस जाय या टूट जाय तो पहले का सब परिश्रम व्यर्थ हो जायगा। कुल मिला कर इस क्रिया में पाँच या छः दिन लगातार काम करना पड़ता है। इतने समय तक जिस कोठरी में काम किया जाता है उसका तापक्रम एक-सा रहना चाहिए। जिस पेंच से हीरा आवश्यकतानुसार ज़रा सा आगे बढ़ाया जाता है उसको अत्यन्त सच्चा होना चाहिए। एक इंच में यदि दो लाख भाग किया जाय तो इस ज़रा सी दूरी का बल भी इन रेखाओं में नहीं पड़ने पाता। रॉलैन्ड ही ऐसा था कि इस कार्य को सफलता से कर सकता था। उसने अपने कार्य-क्रम को छिपा नहीं रक्खा था, तिस पर भी उसकी जाली के समान सच्ची जाली केवल हाल ही में बन सकी है।

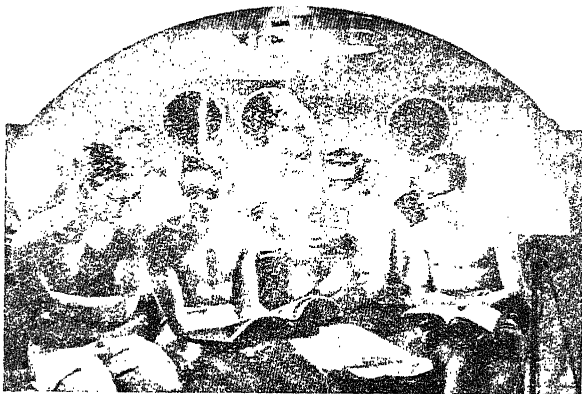


चित्र २५५—लहर-लम्बान।

दूरी क ख को "लहर-लम्बान" कहते हैं।

७—एक जाली—रॉलैन्ड की जालियों के सौन्दर्य का पता एक उदाहरण से लग जायगा। एडिनबरा की सरकारी बेधशाला (Royal Observatory) में पॉलिश किये हुए फूल की बनी एक जाली ५½ इञ्च × ४ इञ्च की है। इसके प्रत्येक इंच में १४,४३८ रेखायें हैं। प्रत्येक जाली से कई एक रश्मि-चित्र बनते हैं जिनमें से किसी एक की जाँच की जाती है। इस जाली से तीसरा रश्मि-चित्र ७ फ़ुट लम्बा बनता है! रश्मि-चित्र

तो शिगाफ़ का ही भिन्न भिन्न रंगों में खिंचा हुआ चित्र है, परन्तु शिगाफ़ की चौड़ाई एडिनबरा के यंत्र में केवल $\frac{१}{१०००}$ इंच है। इसलिए यह यंत्र श्वेत प्रकाश को लगभग ८४ हज़ार क़िस्म के रंगों में विभाजित कर देता है! क्या कोई आश्चर्य है कि इस यंत्र से प्रत्येक मौलिक पदार्थ की पहचान सुगमता से हो सकती है?



[पापुलर सायंस से

चित्र २५६—परा-कासनी या अल्ट्रावॉयलेट रश्मियों से चिकित्सा की जा रही है।

८—तुलनात्मक रश्मि-चित्र—अज्ञात रश्मि-चित्रों की पूरी जाँच सुगमता से करने के लिए अकसर अज्ञात रश्मि-चित्र के साथ किसी जाने हुए पदार्थ का रश्मि-चित्र भी साथ ही लिया जाता है। सुभीते के लिए अज्ञात चित्र से सट कर, इसके ऊपर या नीचे, या ऊपर नीचे या दोनों ओर, किसी जाने हुए पदार्थ का रश्मि-चित्र ले लिया जाता है (चित्र २५३)। इस कार्य के लिए शिगाफ़ के ऊपर या नीचे के भाग के सामने, या ऊपर नीचे दोनों

भागों के सामने, छोटे छोटे दर्पण का कार्य करनेवाले त्रिपार्श्व (पृष्ठ ९३ देखिए) लगा दिये जाते हैं। एक बगल में जिस जाने हुए पदार्थ का रश्मि-चित्र लेना होता है उसे स्पिरिट लैम्प, गैस-बरनर (burner) या बिजली के आर्क लैम्प में जलाते हैं, या उसमें से बिजली की ज़ोर से चिनगारी निकालते हैं या उसमें बिजली दौड़ा कर उसे प्रदीप्त करते हैं (चित्र २५४)। यह प्रकाश त्रिपार्श्व से मुड़ जाता है और इस तरह शिगाफ़ के भीतर घुस जाता है, और उसका रश्मि-चित्र अज्ञात रश्मि-चित्र से सट कर बन जाता है।



[एक जरमन पुस्तक से

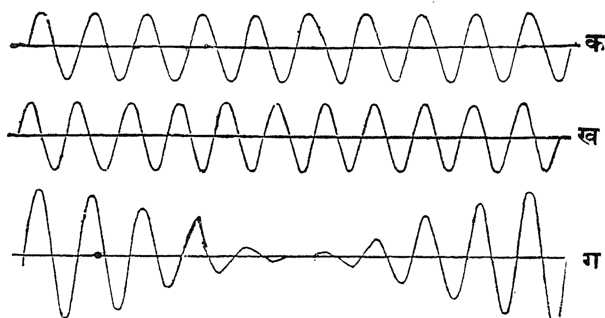
चित्र २५७—एक्स-रश्मि फ़ोटोग्राफ़।

एक्स-रश्मियों से शरीर के भीतर की हड्डियों का फ़ोटो लिया जा सकता है।

यहीं पर यह भी देख लेना अच्छा होगा कि रश्मि-विश्लेषक यंत्र की परीक्षा कितनी सूक्ष्म है। "यदि नमक के एक ग्रेन (=आधी रत्ती) का १८ करोड़ भाग कर दें और उसका केवल एक भाग जो इतना छोटा होगा कि दिखलाई देने का कौन कहे हमारी कल्पना-शक्ति

में भी नहीं आ सकता, किसी लौ में पड़ जाय, तो रश्मि-विश्लेषक यंत्र इसको तुरन्त दिखला देगा !"*

९—प्रकाश क्या है—रश्मि-विश्लेषण के विषय में और कुछ जानने के पहले यह देख लेना अच्छा होगा कि प्रकाश है क्या। प्रकाश का रहस्य पुराने ज़माने से लेकर आज तक मनुष्य को



चित्र २४८—दो लहरों के साथ चलने से क्या होता है। क, पहली लहर; ख, दूसरी लहर; ग, इन दोनों लहरों के संयोग से बनी लहर। इसका अच्छा चित्र आगे दिया गया है।

ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसकाता रहा है। तुलसीदासजी ने लिखा है :—

जहँ बिलोकि मृग-शावक-नयनी।
जनु तहँ बरस कमल-सित-श्रयनी ॥

यह तो कवि की कल्पना है, परन्तु वस्तुत: कई देशों के पुराने विद्वानों का मत था कि हमारी आँखों में से ही प्रकाश निकल कर वस्तुओं के रूप रंग की जानकारी हमको कराता है; किन्तु यह

* Agnes M. Clerk : History of Astronony during the 19th Century, p. 132.

सिद्धान्त सच्चा नहीं हो सकता क्योंकि यदि यह सत्य होता तो हमको अँधेरे में भी दिखलाई देना चाहिए था।

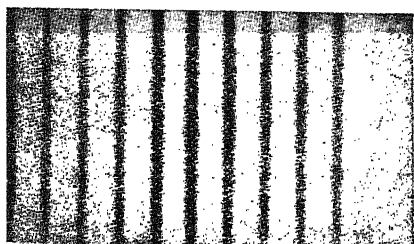
बहुत तर्क-वितर्क के बाद न्यूटन आदि ने निश्चय किया कि प्रकाश देनेवाली वस्तु से असंख्य छोटे छोटे कण निकलते हैं, जो हमारी आँखों में घुसते हैं और इस प्रकार हमको वस्तुओं का ज्ञान कराते हैं। परन्तु यह सिद्धान्त भी बहुत सी बातों के विरुद्ध है। आधुनिक वैज्ञानिकों का मत है कि प्रकाश एक प्रकार की लहर है। जैसे जल के बिना आगे बढ़े ही उसकी लहरें आगे बढ़ जाती हैं, उसी प्रकार किसी पदार्थ के आगे बढ़े बिना ही प्रकाश-



चित्र २९१—दो प्राय: समान लहर-लम्बाई के लहरों के साथ चलने का परिणाम।

लहर आगे बढ़ती है, परन्तु इसमें विशेषता यह है कि ये लहरें शून्य में भी चलती हैं। "शून्य में लहर चलती है," यदि इसको सत्य मानने में जी हिचकता हो तो हम भी इस शताब्दी के आरम्भवाले वैज्ञानिकों की भाँति मान सकते हैं कि एक अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ, ईथर (ether), सर्वत्र व्याप्त है—शून्य में भी, शीशे में भी और लोहे में भी—और इसी ईथर में लहरें चलती हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि चुम्बकीय, विद्युतीय और प्रकाश की लहरें सब एक ही हैं। बहुत बड़ी और अत्यन्त छोटी लहरों से हमारी आँखों पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता और इसलिए उनको प्रकाश नहीं कहते। "बड़ी" और "छोटी" लहरों से

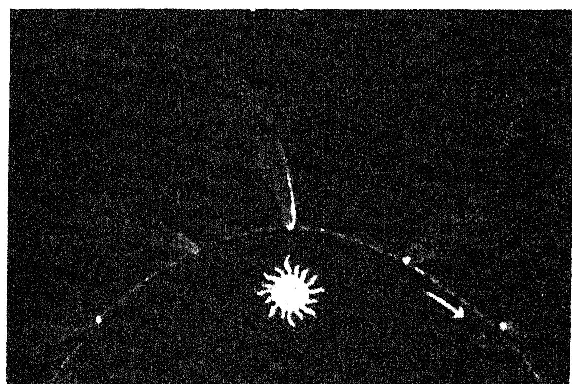
समझना चाहिए कि इन लहरों का "लहर-लम्बान" अधिक है या कम; और "लहर-लम्बान" से किसी एक लहर की चोटी से समीपवर्ती दूसरी लहर की चोटी तक की दूरी को समझना चाहिए (चित्र २५५)। बीस पचीस लाख सेन्टीमीटर से लेकर १० सेन्टीमीटर तक की लहरें (लगभग ढाई सेन्टीमीटर का एक इंच होता है) तो वे ही हैं जिनसे आकाशवाणी या रेडियो (broad-casting or radio) या बेतार की ख़बरें सुनी जाती हैं। रेडियो की धूम अब इतनी मची हुई है कि आपने भी इसका नाम सुना होगा। शायद आपने यह भी सुना होगा कि कलकत्ते से आनेवाली लहरों की लहर-लम्बाई ३७०.४ मीटर(=३७०४० सेन्टीमीटर) और बम्बई-वाली की ३५७.१ मीटर है। इनसे छोटी, १० से लेकर ०.०३ सेन्टीमीटर तक की लहरें अभी तक किसी काम में नहीं लाई गई हैं। उनसे भी छोटी ०.००००८ सेन्टीमीटर तक की लहरें गरमी की लहरें हैं। ये "परा-लाल" (infra-red) लहरें कहलाती हैं। ०.००००८ सेन्टीमीटर से लेकर ०.००००४ सेन्टीमीटर तक की लहर-लम्बाई-वाली रश्मियाँ हमको प्रकाश देती हैं। इनमें से बड़ी लम्बाईवाली तो लाल रश्मियाँ हैं और कमवाली बैंगनी। नारंगी, पीली, हरी इत्यादि रश्मियों की लहर-लम्बाइयाँ इन्हीं के बीच हैं। बैंगनी प्रकाश से भी छोटी लहरवाली रश्मियाँ एक सीमा तक



[एडसर की लाइट से

चित्र २६०—इन्टरफ़ियरेन्स से बनी धारियाँ।

"परा-कासनी" या अल्ट्रवॉयलेट (ultra-violet) रश्मियाँ कहलाती हैं। ये वे ही रश्मियाँ हैं जिनके उपयोग से डाक्टर लोग कई असाध्य रोगों को अच्छा करने का इन दिनों दावा रखते हैं (चित्र २५६)। इनसे भी छोटी लहर-लम्बाईवाली रश्मियाँ प्रसिद्ध एक्स-रश्मियाँ (X-rays) हैं, जिनसे शरीर के भीतर की हड्डियाँ, और यदि गोली इत्यादि शरीर में घुसी हो तो उसका भी, फ़ोटो लिया जा सकता है (चित्र २५७)।



चित्र २६१—पुच्छल तारा की पूँछ।
प्रकाश के दबाव के कारण यह सूर्य से सदा विपरीत दिशा में रहती है।

१०—लहरें—आवाज़ भी लहरों ही के द्वारा चलती है, परन्तु इसके लिए हवा चाहिए। इसकी लहरें हवा में चलती हैं। हवा न रहे तो हमको शब्द सुनाई न दे; इसलिए आवाज़ और प्रकाश की लहरों में बड़ा अन्तर है। परन्तु तिस पर भी प्रकाश-सम्बन्धी कुछ बातों को समझाने के लिए हम आवाज़ की लहरों की उपमा दिया करेंगे, क्योंकि इसमें सुविधा होती है। प्रकाश की लहरों का किसी चित्र में अङ्कित करना सरल नहीं है।

इस बात का कि प्रकाश लहर है पक्का प्रमाण इंटरफ़ियरेन्स (interference) से मिलता है। इन्टरफ़ियरेन्स क्या है यह यों समझा जा सकता है। पानी में यदि कोई लहर (क, चित्र



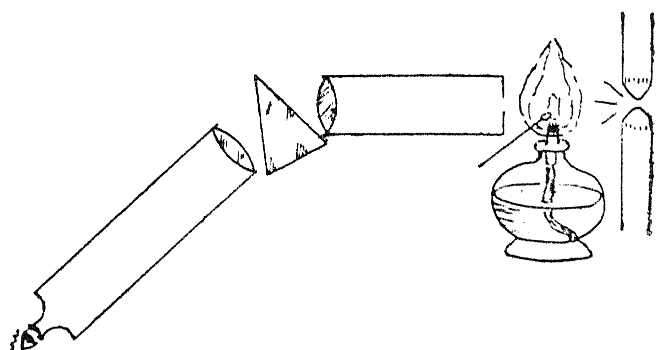
[स्मिथसोनियन रिपोर्ट से

चित्र २६२—जोज़ेफ़ फ्राउनहोफ़र।

यह बचपन में अत्यन्त निर्धन था। टूटे मकान के गिर पड़ने से इसकी जान हो क़रीब क़रीब जा चुकी थी; परन्तु भाग्य-वश यह बच गया और अपने कठिन परिश्रम से प्रसिद्ध वैज्ञानिक हो गया।

२५८) चले और साथ ही दूसरी लहर (ख) उससे ज़रा सी छोटी लहर-लम्बान की चले तो आप देखेंगे कि इन दोनों लहरों की चोटियाँ या गड्ढे कहीं कहीं साथ पड़ते हैं और उनके

मध्य में एक की चोटी दूसरे के गड्ढे पर पड़ती है। फल यह होता है कि इन लहरों के संयोग से उत्पन्न हुई लहर कहीं बहुत बलवान् और कहीं एकदम क्षीण दिखलाई पड़ती है (चित्र २५८ ग और २५९)। ठीक यही बात हारमोनियम बजाने में देखी जाती है। इसके स, रे, ग, म कोमल या तीव्र परदों के दबाने से जो सुर निकलते हैं उन सबों की लहर-लम्बान ज़रा ज़रा भिन्न होती है। एक परदे को दबाने से लगातार आवाज़ अSSSSSS निकलेगी, परन्तु यदि इसके दो पास के परदे साथ दबाये जायँ तो थरथराती हुई आवाज़ निकलेगी



चित्र २६३—काली रेखाओंवाला रश्मि-चित्र कैसे बनता है।

अ-अ-अ-अ-अ-अ-अ-अ। कुछ कुछ इसी प्रकार प्रकाश के दो सटे हुए उद्गम-स्थानों से, जैसे कोई प्रकाशित शिगाफ़ और दर्पण में इसके प्रतिबिम्ब से, प्रकाश और छाये की धारियाँ बन जाती हैं (चित्र २६०)। इस बात का उपयोग माइकलसन (Michaelson) ने अत्यन्त सुन्दर रीति से ताराओं का व्यास नापने के लिए किया है।

वैज्ञानिकों ने ऐसी भी पहचान निकाली है जिससे पता लग सकता है कि प्रकाश किसी असली उद्गम-स्थान से आ रहा है या मुड़कर किसी दर्पण से, या दर्पण की सी अन्य वस्तु से।



[कैम्पबेल के स्टेलर मोशंस से

चित्र २६४—डॉपलर;

इसके नियम से और रश्मि-विश्लेषक यन्त्र की सहायता से ताराओं की गति जानी जा सकती है।

इसका समझना ज़रा कठिन है, इसलिए इस पर अधिक यहाँ नहीं लिखा जायगा।

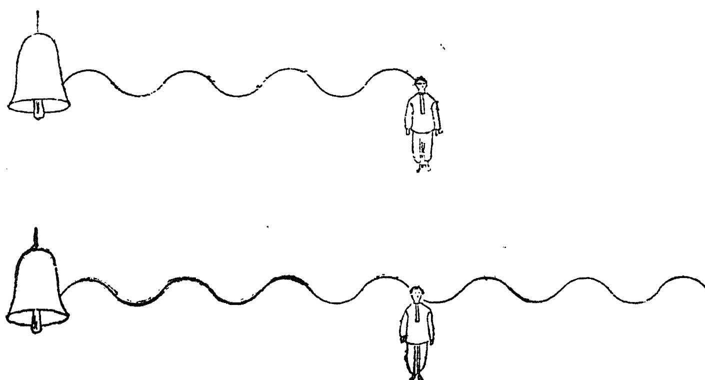
प्रकाश का भी दबाव पड़ता है, यद्यपि यह बहुत कम होता है। प्रकाश के इसी दबाव के कारण पुच्छल ताराओं की पूँछ सूर्य से सदा विपरीत दिशा में रहती है (चित्र २६१)।

पहले बतलाया गया था कि श्वेत प्रकाश सात रंगों से बना है, बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पोला, नारंगी और लाल; परन्तु अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि ७ नहीं, ७ हज़ार भी नहीं, असंख्य रंगों से श्वेत प्रकाश बना है, क्योंकि रश्मि-चित्र में जितनी रेखायें खींची जा सकती हैं उतनी ही इन रंगों की संख्या है और स्पष्ट है कि छोटे से रश्मि-चित्र में भी असंख्य रेखायें खींचो जा सकती हैं, कम से कम रेखा-गणित तो यही बतलाता है। ऐसी अवस्था में रंगों के नाम लेने से काम नहीं चल सकता, उनका वर्णन करने के लिए उनकी लहर-लम्बान बतलानी पड़ती है। लहर-लम्बान बहुत छोटी होती है, इंच में नाप बतलाने से हमेशा किसी टेढ़े से भिन्न (कसर) का प्रयोग करना पड़ेगा। इसलिए वैज्ञानिकों ने एक सेन्टीमीटर के १० लाखवें भाग को एक नई इकाई मान ली है। स्वीडेन के प्रसिद्ध वैज्ञानिक आँगस्ट्रेम का नाम चिरस्थायी रखने के लिए यह इकाई आँगस्ट्रेम कही जाती है। यह लिखने के बदले कि सोडियम के पीले प्रकाश की लहर, लम्बान ०·००००५८९६ सेन्टीमीटर है, लिखा जाता है कि इसकी लहर-लम्बान ५८९६ आँ० (5896 A.) है। आँगस्ट्रेम पहले ज्योतिषी और पीछे भौतिक विज्ञान का प्रोफ़ेसर था और इसने सौर रश्मि-चित्र की एक बड़ी सी चित्रावली छापी थी, जिसमें लहर-लम्बाइयाँ दी हुई थीं।

११—"नवीन ज्योतिष" का जन्म; फ्राउन होफ़र— त्रिपार्श्व से रश्मि-चित्र देखने का आविष्कार जगत्-प्रसिद्ध ज्योतिषी केपलर ने किया था, परन्तु उस समय ज्योतिष में इसका प्रयोग

नहीं किया जा सकता था। पीछे न्यूटन ने रश्मि-चित्रों के विषय में तर्क और प्रयोग से बहुत सी बातों का पता चलाया, तो भी "नवीन ज्योतिष" का जन्म फ्राउनहोफ़र (Fraunhofer) से हुआ।

जोज़ेफ़ फ्राउनहोफ़र के जीवन-आरम्भ ही में एक प्राय: प्राणघातक दुर्घटना हो गई। चौदह वर्ष की अवस्था में अनाथ फ्राउनहोफ़र जरमनी के म्युनिश (Munich) शहर की एक गली में टूटे फूटे मकान में



चित्र २६५ और २६६—स्थिर रहने से प्रति १/६० सेकंड ३ लहरें कान में घुसती हैं।

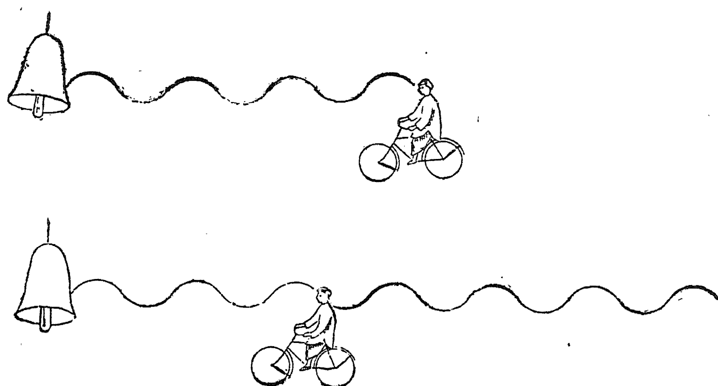
दूसरा चित्र पहले के १/६० सेकंड बाद की दशा को अंकित करता है।

रहा करता था। एक दिन मकान भहरा पड़ा और इसके रहनेवाले इसी में दब गये। दूसरे सब तो मर गये, परन्तु जब फ्राउनहोफ़र ईंट पत्थर के नीचे से निकाला गया तो उसमें थोड़ा सा जीवन शेष था। चोट बड़ी गहरी लगी थी। वहाँ के शासनकर्त्ता ने फ्राउनहोफ़र पर तरस खाकर उसको १८ डूकाट (=लगभग

सवा सौ रुपया) दिया । कुछ रुपयों से तो उसने पुस्तकें और एक शीशे पर शान चढ़ाने की चक्की ख़रीदी, परन्तु बाक़ी सब रुपया अपनी जान छुड़ाने के लिए उसे अपने मालिक को दे देना पड़ा। इस जल्लाद ने फ्राउनहोफ़र को उसके माँ बाप के मर जाने पर अपने यहाँ दर्पण बनाने के कारख़ाने में नौकर रख लिया था और उसे बड़ी बुरी तरह रखता था । छुटकारा पाकर फ्राउनहोफ़र को बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं, परन्तु उसने हिम्मत न हारी और वह बराबर पुस्तकें पढ़ कर अपना ज्ञान बढ़ाता रहा । पाँच वर्ष के बाद उसे चश्मा, दूरदर्शक, आदि के बनाने के एक कारख़ाने में जगह मिल गई । अब वह दूरदर्शकों को त्रुटिरहित बनाने में जीजान से भिड़ गया । ११ वर्ष बाद वह ९½ इंच व्यास का दूरदर्शक बना सका जो उस समय एक अत्यन्त अद्भुत वस्तु थी और जिससे उसका नाम सारे वैज्ञानिक संसार में फैल गया ।

"शुद्ध" (pure) रश्मि-चित्र बनाने के लिए तालों के उपयोग करने की युक्ति पहले पहल फ्राउनहोफ़र ने निकाली । उसने बड़े आश्चर्य के साथ देखा कि सूर्य के शुद्ध रश्मि-चित्र में सैकड़ों काली काली रेखायें हैं (रङ्गीन चित्र देखिए) । ७५४ रेखाओं को वह स्वयं गिन सका । पीछे रॉलैन्ड ने अपनी जाली से १४,००० रेखाओं की गिनती की । इन सब रेखाओं को अब उनके आविष्कारक के नाम पर "फ्राउनहोफ़र रेखायें" कहते हैं । फ्राउनहोफ़र ने जालियाँ भी बनाईं । पहले तो दो पेंच पर समानान्तर और अत्यन्त बारीक तार बाँध कर वह जालियाँ बनाता था, परन्तु पीछे शीशे पर सोने की क़लई करके, उस पर वह रेखायें खींचता था । वह इंच में ९०० तक रेखायें खींच सका था । इससे अधिक रेखाओं के खींचने से कुल क़लई ही उड़ जाती थी । जालियों से बनी रश्मि-चित्रों में भी वे ही काली रेखायें दिखलाई पड़ती थीं ।

इन काली रेखाओं का पता लगते ही लोग सोचने लगे कि इनका क्या अर्थ है। इस प्रश्न को हल करने के लिए बहुत से वैज्ञानिकों ने चेष्टा की; परन्तु फ्राउनहोफ़र के आविष्कार के कहीं ४५ वर्ष बाद जाकर इसका पता लगा। इस कार्य का करनेवाला जरमनी का एक दूसरा प्रसिद्ध वैज्ञानिक किरशॉफ़ (Kirchhoff) था। नीचे दिये गये नियम किरशॉफ़ के आविष्कारों के बल पर बने हैं।



चित्र २६७ और २६८—घंटी की ओर चलते रहने से प्रति $\frac{1}{60}$ सेकंड चार लहरें कान में घुसती हैं।

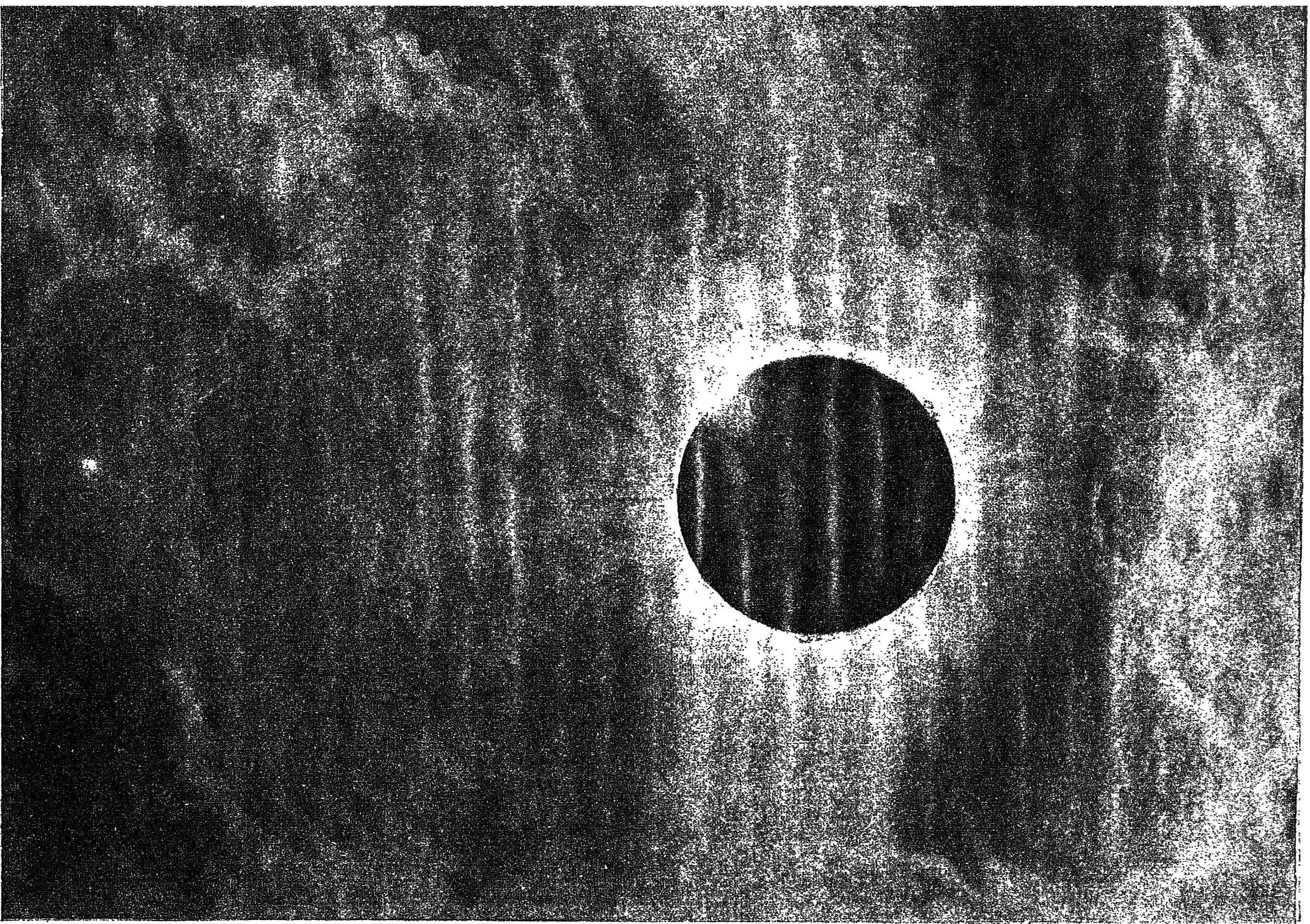
अर्थात् स्थिर रहने की अपेक्षा अब लहरों की संख्या एक अधिक हो जाती है।

१२—रश्मि-विश्लेषण के नियम—(१) यदि कोई ठोस या तरल पदार्थ, या ख़ूब दबाव में पड़ी हुई गैस काफ़ी गरम की जाय तो उससे प्रकाश निकलता है। इस प्रकाश का रश्मि-चित्र अटूट रहता है (अर्थात्, इसमें काली काली रेखायें नहीं रहतीं)। इसके उदाहरण मोमबत्ती और बिजली के प्रकाश के रश्मि-चित्र हैं (रङ्गीन चित्र देखिए)। रश्मि-चित्र में सबसे अधिक तेजयुक्त भाग कौन है यह प्रकाश देनेवाली वस्तु

के ताप-क्रम पर निर्भर है। जैसे, कम ताप-क्रम पर लाल भाग में सबसे अधिक तेज होगा; अधिक तापक्रम से नारंगी या पीले भाग में तेज अधिक होगा; और भी अधिक तापक्रम पर क्रमशः हरे, नीले इत्यादि भागों में सबसे अधिक तेज होगा। इसी सिद्धान्त के बल पर तो सूर्य का ताप-क्रम नापा गया है। रश्मि-चित्र के भिन्न भिन्न भागों का तेज बोलोमीटर (पृष्ठ २४०) से नापा जा सकता है। ऊपर के नियम का उलटा नियम (converse proposition) भी सही है, अर्थात् जब कभी हम देखें कि रश्मि-चित्र अटूट है तो हम समझ सकते हैं कि प्रकाश किसी गरम ठोस या तरल पदार्थ से, या ख़ूब दबाव में पड़ी हुई गैस से, आ रहा है और इस बात से कि रश्मि-चित्र के किस भाग में सबसे अधिक तेज है हम प्रकाश के उद्गम-स्थान का ताप-क्रम भी जान सकते हैं।

(२) दूसरा नियम यह है कि जब किसी गैस से, जो साधारण या कम दबाव में है, प्रकाश निकलता है तो इसके रश्मि-चित्र में कई एक चमकती हुई रेखायें रहती हैं। उदाहरण के लिए स्पिरिटलैम्प में नमक छोड़ने से जो प्रकाश मिलता है उसको लीजिए। लौ में पड़ने से सोडियम गैस के रूप में हो जाता है; दबाव भी साधारण वायु-मंडल का रहता है। हम देख चुके हैं कि इसके रश्मि-चित्र में दो चमकीली लकीरें होती हैं (रंगीन चित्र देखिए)। बाज़ बाज़ वस्तुओं के रश्मि-चित्र में बहुत सी चमकीली रेखायें होती हैं, जैसे लोहे के रश्मि-चित्र में इनकी संख्या २,००० से भी अधिक है।

रश्मि-चित्र में चमकीली रेखाओं की स्थिति उस गैस पर निर्भर है जिससे प्रकाश आ रहा है। जैसे रश्मि-चित्र में जहाँ पर सोडियम की दो रेखायें बनती हैं ठीक वहीं पर अन्य किसी भी पदार्थ की रेखायें न पड़ेंगी।

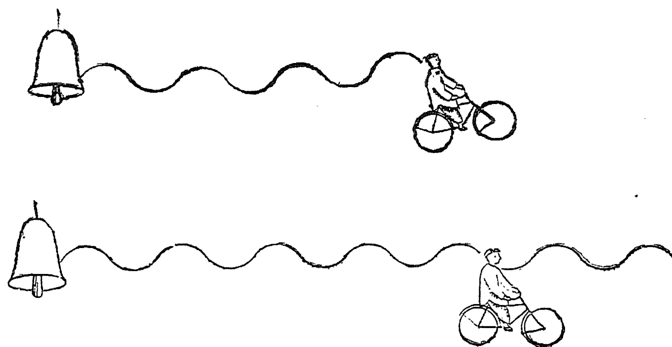


सर्व सूर्य-ग्रहण, ८ जून, १९१०।

कोलम्बिया यूनीवर्सिटी प्रेस की कृपा] [एच० आर० बटलर

इस चित्र में कॉरोना, रक्त ज्वालायें और बेली-मनका बड़ी सुन्दर रीति से अंकित किए गये हैं।

इस नियम का भी उलटा नियम ठीक है। जब कभी रश्मि-चित्र में केवल चमकती हुई रेखायें ही रहें तब हम समझ सकते हैं कि प्रकाश किसी कम दबाववाली गैस से आ रहा है और हम रेखाओं की स्थिति से बतला सकते हैं कि किन किन गैसों से प्रकाश आ रहा है।



चित्र २६६ और २७०—**घंटी से दूर जाते रहने से प्रति $\frac{1}{60}$ सेकंड २ लहरें कान में घुसती हैं।**

अर्थात्, स्थिर रहने की अपेक्षा अब लहरों की संख्या एक कम हो जाती है। यही प्रसिद्ध डॉपलर-नियम है।

जैसे, किसी अज्ञात उद्‌गमस्थान से आये हुए प्रकाश के रश्मि-चित्र में यदि दो चमकीली रेखायें ठीक उसी स्थान में हों जहाँ सोडियम की रेखायें पड़ती हैं तो हम निश्चय रूप से कह सकते हैं कि प्रकाश के उद्‌गम-स्थान में सोडियम अवश्य है।

गैस के दबाव को उत्तरोत्तर बढ़ाने से रेखायें मोटी हो जाती हैं और फिर रश्मि-चित्र लगातार (अटूट) हो जाता है*।

---

* सरलता के लिए गैस के तापक्रम, घनत्व, विद्युतीय और चुम्बकीय दशाओं का सूक्ष्म अन्तर यहाँ पर छोड़ दिया गया है।

१३—रश्मि-विश्लेषण का तीसरा नियम—तीसरे नियम से सौर-रश्मि-चित्र की काली रेखाओं का भेद मिलता है। यह नियम यों है। यदि किसी ठोस या तरल पदार्थ या ख़ूब दबाव में पड़े गैस का प्रकाश इससे कुछ कम गरम गैस में से होकर निकले तो रश्मि-चित्र में काली रेखायें दिखलाई पड़ेंगी। इन रेखाओं को छोड़ अन्य स्थानों में रश्मि-चित्र अटूट रश्मि-चित्र की तरह होगा। काली रेखायें ठीक उसी जगह होंगी जहाँ केवल उस कम गरम गैस के रह जाने से चमकीली रेखायें पड़तीं। जैसे, उस रश्मि-चित्र में जो स्पिरिटलैम्प में सोडियम (या नमक) छोड़ने से बनता है, दो पीली रेखायें रहती हैं। यदि अब पहले आर्कलैम्प रक्खा जाय, फिर इसके सामने नमकवाला स्पिरिटलैम्प रक्खा जाय और तब स्पिरिटलैम्प की लौ को पार करके आये हुए आर्कलैम्प के प्रकाश का रश्मि-चित्र देखा जाय (चित्र २६४) तो इसमें दो काली रेखायें ठीक उसी स्थान में दिखलाई पड़ेंगी जहाँ पहले सोडियम की दो चमकीली रेखायें थीं।

इसका कारण उदाहरणों से स्पष्ट किया जा सकता है। जैसे, सितार के दो तार यदि एक ही सुर देते हों तो एक के बजाने से दूसरा भी बजने लगता है। पहले तार की कुछ शक्ति को दूसरा तार ले लेता है और बजने लगता है। इसी प्रकार ऊपर के प्रयोग में स्पिरिटलैम्पवाला सोडियम (जो आर्क की अपेक्षा ठंढा है) आर्कलैम्प के उन लहरों को ले लेता है जिनसे इसका "सुर" मिला है। इसी लिए आर्कलैम्प की वह विशेष लहर मंद पड़ जाती है और रिश्मि-चित्र में काली रेखा दिखलाई पड़ती है। वस्तुतः यह रेखा काली नहीं है। यह चटक ज़मीन पर काली जान पड़ती है। पीछे के आर्कलैम्प को उठाते ही यह चमकीली जान पड़ने लगती है।

[डा० बेकर, एडिनबरा

चित्र २७१—रश्मि-चित्र की रेखाओं पर उद्गम-स्थान की गति का प्रभाव ।

इस चित्र में वस्तुतः दो रश्मि-चित्र दिखलाये गये हैं। ऊपरवाला रश्मि-चित्र सूर्य के पूर्वी किनारे का है और नीचे-वाला पश्चिमी किनारे का। सूर्य के घूमते रहने से इन दो किनारों में से एक हमारी ओर आता है और एक हमसे दूर जाता है। इसलिए डॉपलर-नियमानुसार रश्मि-चित्र की रेखायें विचलित हो जाती हैं, एक दाहिनी ओर और एक बाईं ओर। यह बात इस चित्र में स्पष्ट है। जो रेखायें ऊपर और नीचे के दोनों रश्मि-चित्रों में एक ही स्थान में हैं वे हमारी पृथ्वी के वायु-मंडल के कारण उत्पन्न हुई हैं।

रेडियो में भी तो यही सिद्धान्त लागू है। यदि आपका रेडियो-यंत्र कलकत्ते से आनेवाली लहरों के "सुर" में मिला है तो आपके यंत्र में भी लहरें उत्पन्न हो जायँगी। इन लहरों का प्रवर्द्धन करने और उन्हें आवाज़ की लहरों में बदलने से कलकत्ते का पूरा "प्रोग्राम" (programme) आप सुन सकते हैं।

इस नियम का उलटा बतलाता है कि यदि किसी चमकीले रश्मि-चित्र में काली रेखायें पड़ी हों तो समझना चाहिए प्रकाश किसी संतप्त ठोस या तरल वस्तु या ख़ूब दबाव में पड़ी हुई गैस से चल कर किसी अपेक्षाकृत ठंढी गैस में से होकर आ रहा है। यह कौन सी गैस है इसका पता काली रेखाओं की स्थिति से किया जा सकता है।

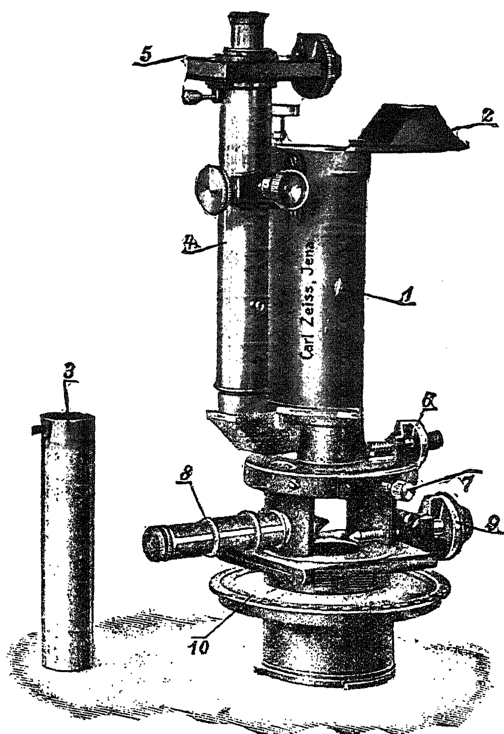
यही नियम है जो सौर-रश्मि-चित्र की काली रेखाओं का रहस्य बतलाता है। इसी के बल से सूर्य की बनावट आसानी से पृथ्वी पर बैठे ही बैठे जानी जा सकती है।

ये किरशॉफ़ के नियम कहलाते हैं। जब इनका पता लगा तब ज्योतिषी, रसायनज्ञ और भौतिक विज्ञानवाले एक दूसरे से आगे निकल जाने के लिए ख़ूब अनुसंधान करने लगे। बीस वर्ष के भीतर ही १० नये मौलिक पदार्थों का पता लगा।

सूर्य के विषय में जिन बातों का पता लगा है उनकी चर्चा अगले अध्याय में की जायगी।

१४—डॉपलर का नियम—ताराओं की गति और सूर्य का घूमना इत्यादि डॉपलर के बतलाये नियम से जाना जाता है। आपने देखा होगा कि स्टेशन पर खड़े रहने पर जब डाक-गाड़ी सीटी देती हुई आती है और सर्र से निकल जाती है तब सीटी का स्वर बदल जाता है; आती हुई गाड़ी के स्वर की अपेक्षा जाती हुई गाड़ी का स्वर नीचा हो जाता है। यही बात दो मनुष्य साइकिल

पर चढ़ कर और घंटी बजाते हुए एक दूसरे को पार करने पर देख सकते हैं। यदि कहीं पर सीटी या हारमोनियम का एक सुर बजता हो और कोई मोटर पर तेज़ी से आवे और निकल जाय, तब भी यही बात देखने में आवेगी। जब सुनने-वाले और आवाज़ के उद्गम-स्थान की दूरी घटती रहती है—चाहे सुननेवाला चले, चाहे उद्गमस्थान चले; चाहे दोनों चलें—तब स्वर कुछ तीव्र हो जाता है। जब दूरी बढ़ने लगती है तब स्वर कुछ मंद पड़ जाता है। इसका कारण यहाँ दिये हुए चित्रों से आसानी से समझ में आ जायगा। जब मनुष्य चलता नहीं रहता तब, मान लीजिए, उसे प्रत्येक

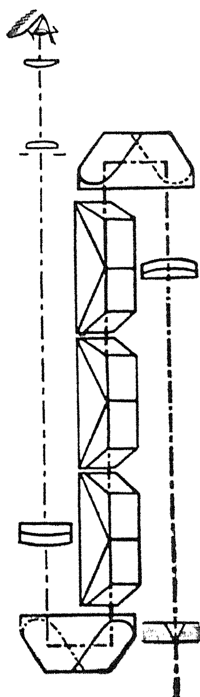


[ज़ाइस कंपनी

चित्र २७२—दूरदर्शक में लगाने योग्य रश्मि-विश्लेषकयंत्र।

१/६० सेकंड में घंटी से चली ३ लहरें मिलती हैं (चित्र २६५ और २६६)। यदि वह अब घंटी की ओर दौड़े तो प्रति १/६० सेकंड उसे ३ से अधिक लहरें मिलेंगी और इसलिए उसे सुर पहले से ऊँचा मालूम पड़ेगा (चित्र २६७, २६८)। यदि वह घंटी से दूसरी ओर

दौड़ता तो उसके पास तक एक सेकंड में ३ से कम ही लहर पहुँच सकेंगी (चित्र २६९ और २७०)। इसलिए उसे स्वर अब पहले से नीचा जान पड़ेगा। यही नियम प्रकाश के लिए भी लागू है। मान लीजिए कि किसी स्थिर स्थान से सोडियम का प्रकाश आ रहा है। रश्मि-चित्र में दो रेखायें किसी निश्चित स्थान पर पड़ेंगी। अब यदि सोडियम-प्रकाश का कोई उद्‌गम-स्थान काफ़ी वेग से हमारी ओर आ रहा है तो एक सेकंड में पहले की अपेक्षा हमको अधिक लहरें आती हुई जान पड़ेंगी, अर्थात् हमको लहरों की लम्बाई पहले से ज़रा सी कम जान पड़ेगी। इसलिए रश्मि-चित्र में सोडियम की रेखायें बैंगनी छोर की तरफ़ ज़रा सी हटी जान पड़ेंगी (चित्र २७१)। यदि उद्‌गम-स्थान दूसरी ओर जाता होता तो ये रेखायें लाल छोर की तरफ़ ज़रा सी हटी हुई दिखलाई देतीं। इस नियम को डॉपलर का नियम कहते हैं और इससे केवल इतना ही नहीं कि प्रकाश का उद्‌गम-स्थान हमारी ओर आ रहा है या हमसे दूर जा रहा है, परन्तु यह भी कि वह किस वेग से निकट या दूर आ या जा रहा है, बतलाया जा सकता है, क्योंकि वेग जितना ही अधिक होता है, रेखायें उतनी ही अधिक हटती हैं।

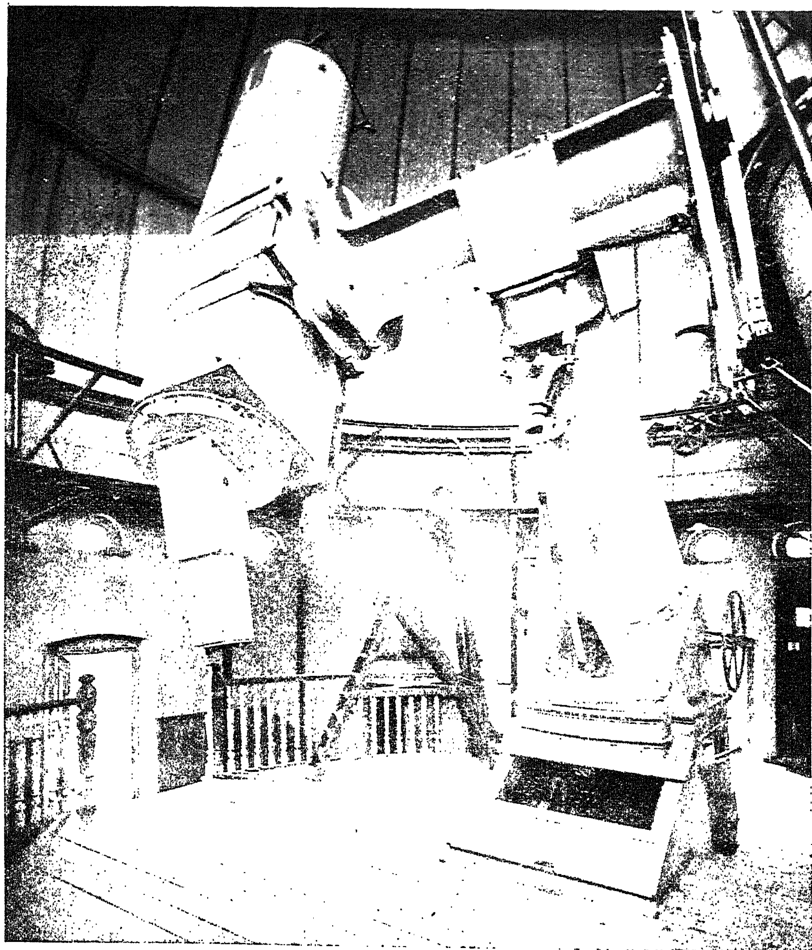


[जाइस कंपनी

चित्र २७३—रश्मि-विश्लेषक यंत्र।

पिछले चित्र में दिखलाये गये यन्त्र के भीतर प्रकाश-रश्मियों का मार्ग।

× × × × ×

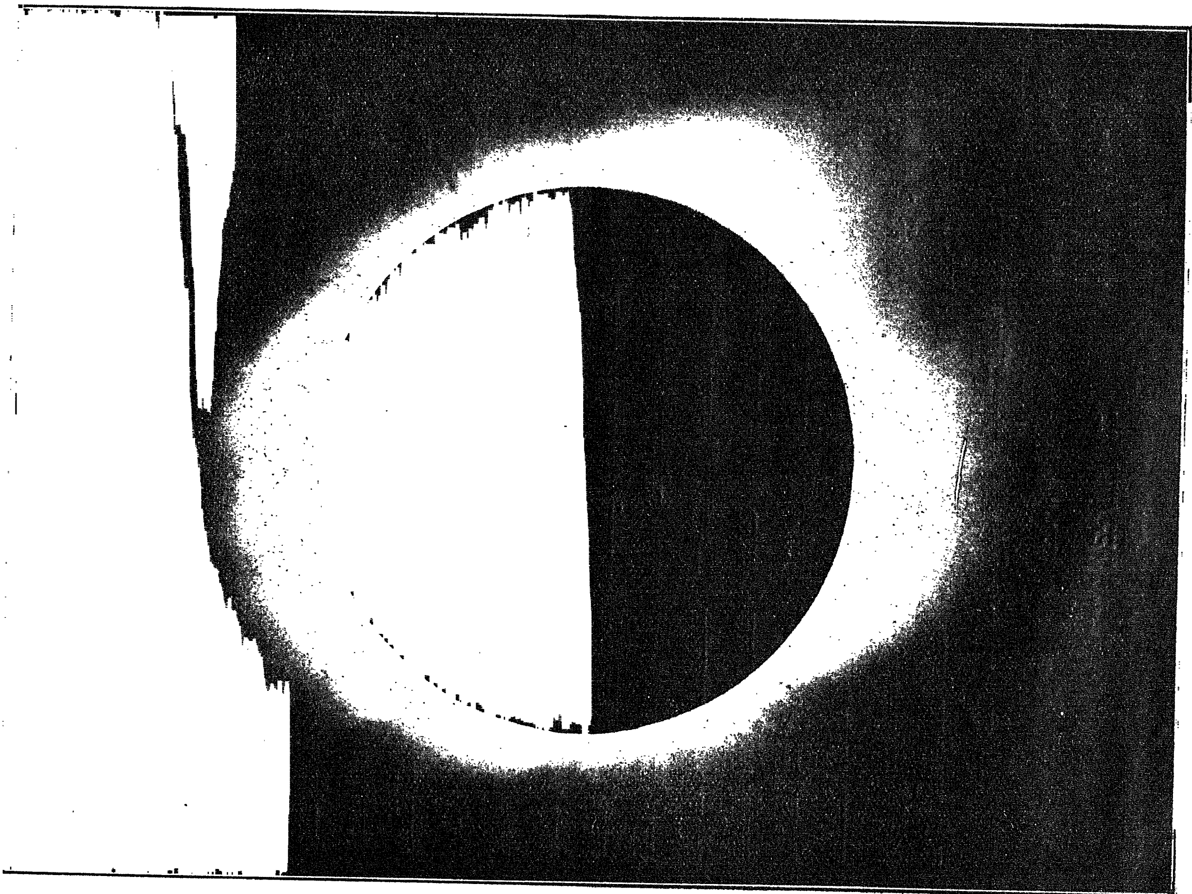


[ग्रिनिच-बेधशाला

चित्र २७४—ग्रिनिच की सरकारी बेधशाला का एक रश्मि-विश्लेषक-युक्त दूरदर्शक।

रश्मि-विश्लेषण अत्यन्त विस्तृत विषय है। इस छोटे से अध्याय में इसकी मोटी मोटी बातें सरसरी तौर से समझा दी गई हैं। ज्योतिष के कई विभागों में रश्मि-विश्लेषण ने बहुत सहायता पहुँचाई है और इसकी चर्चा आवश्यकतानुसार उचित स्थानों पर फिर की जायगी। इससे रासायनिक बनावट और गति के अतिरिक्त तारात्रों की दूरी का भी पता चलता है; शनि के छल्ले ठोस हैं या असंख्य छोटे छोटे टुकड़ों के समूह हैं इसका भी पता लगता है। "तिनके के समान, जिनसे पता चलता है कि हवा किधर से बह रही है, या चित्र-लिपि के समान, जिनमें प्राचीन काल का इतिहास छिपा पड़ा है, रश्मि-चित्र की रेखायें सावधान और सूक्ष्म जाँच पर इतना ज्ञान प्रदान करती हैं जितना आलसी लोगों के ध्यान में भी नहीं आया होगा और जो देखने में अप्राप्य जान पड़ता है। विज्ञान का विरला ही कोई विभाग उस विस्तार से अधिक आश्चर्यजनक होगा जिस विस्तार तक शङ्ख-महाशङ्ख मीलों से भी दूर आकाशीय पिंडों का रश्मि-चित्र से प्राप्त ज्ञान पहुँच गया है"* ।

* Abbot: The Sun, p. 45.



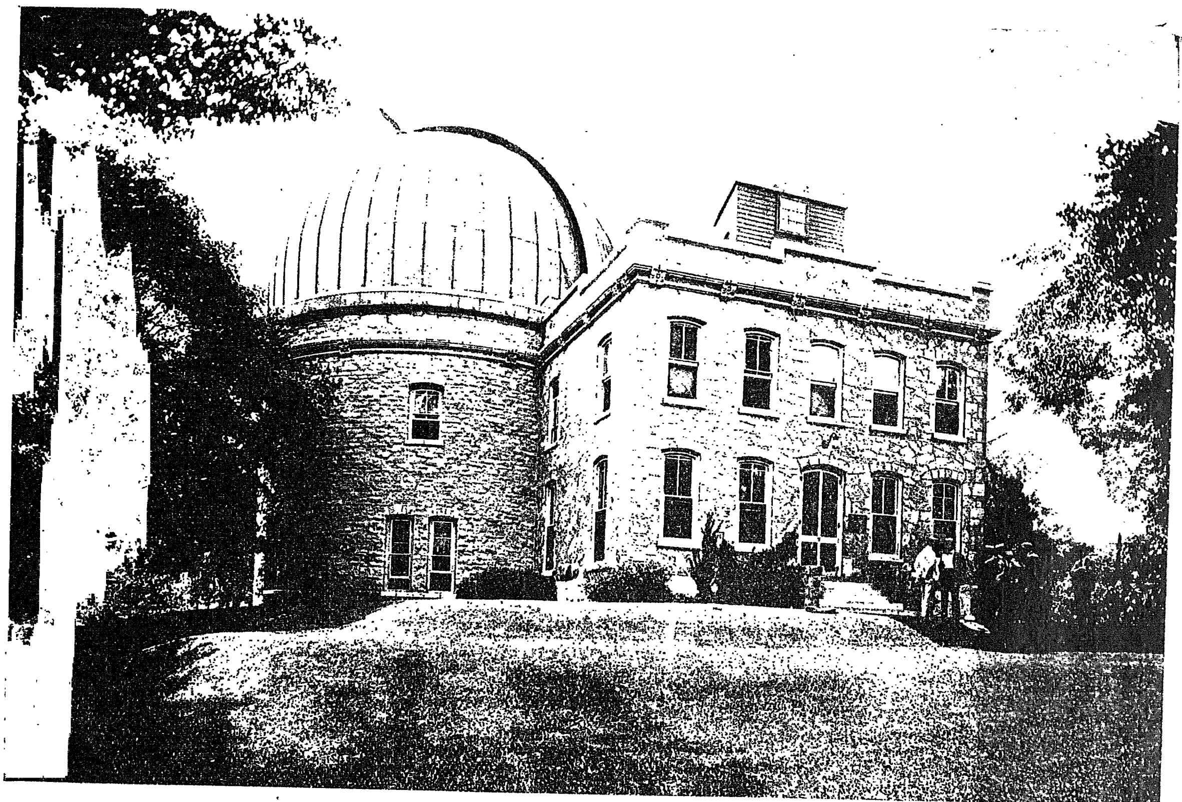
[स्प्राउल-बेधशाला-पार्टी, १० सितम्बर, १९२३

चित्र २७९—कॉरोना ।
सर्व-सूर्य-ग्रहण में सूर्य काले चन्द्रमा से ढक जाता है और इसके चारों ओर "तेज का अद्वितीय मुकुट, जिसे कॉरोना कहते हैं, दिखलाई पड़ता है।"

अध्याय ८

सूर्य-ग्रहण

१—**सूर्य की रासायनिक बनावट**—पिछले अध्याय में बतलाये हुए रश्मि-विश्लेषण के नियमों से स्पष्ट है कि सूर्य के रश्मि-चित्र की काली काली रेखायें हमको यह बतलाती हैं कि सूर्य के भीतर अत्यन्त गरम ठोस या तरल पदार्थ या अत्यन्त अधिक दबाव में पड़ी हुई गैस है और इसके चारों ओर इससे कुछ ठंढी गैसों की तह है। सूर्य की हलकी घनत्व—जैसा हम देख चुके हैं यह पृथ्वी से चार गुना हलका है—वहाँ की भयानक गरमी और आश्चर्य-जनक आकर्षण, और इनके अतिरिक्त अन्य कई बातें भी, यह बतलाती हैं कि सूर्य भीतर से बाहर तक वायव्य (gaseous) ही होगा। आवेष्टन, जिसके कारण रश्मि-चित्र में काली रेखायें उत्पन्न होती हैं, केन्द्र से अपेक्षाकृत ठंढा होगा। इस वेष्टन को पलटाऊ तह (reversing layer) कहते हैं, क्योंकि यह इन रेखाओं को पलट कर चमकीली के बदले काली बना देती है। इन काली रेखाओं की स्थितियों की तुलना जाने हुए पदार्थों की चमकीली रेखाओं से करने पर निश्चित रूप से पता चल जाता है कि इस तह में कौन कौन से मौलिक पदार्थ हैं। पिछले अध्याय में बतलाई गई रीति से फ़ोटोग्राफ़ लेने पर दोनों रश्मि-चित्र एक के ऊपर एक पड़ते हैं (चित्र २५३, पृष्ठ २९०) परन्तु तिस पर भी इसका पता लगाना खेल नहीं है कि सूर्य-रश्मि-चित्र की चौदह पन्द्रह हज़ार रेखाओं में से कौन सी रेखा किस पदार्थ की है। साधारण मनुष्यों को तो बहुत सी रेखायें एक सी लगेंगी। जैसे "धोबी ही गदहों की पहचान कर सकता है," उसी तरह



[स्प्राउल-बेधशाला

चित्र २७६—**स्प्राउल-बेधशाला।**

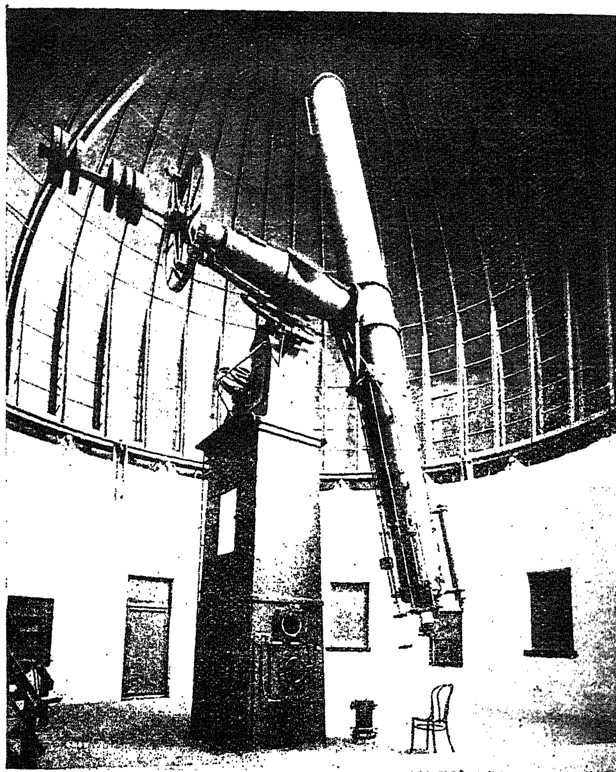
यहीं की पार्टी ने यरबैनिस, मेक्सिको, में पिछला चित्र लिया था।

अनुभवी ज्योतिषी ही इन रेखाओं की उत्पत्ति बतला सकता है। इन रेखाओं की पहचान करने में ज्योतिषियों को वर्षों लगे हैं। अब भी बहुत सी दुर्बल रेखाओं की जाँच नहीं हुई है। सम्भव है भविष्य में इन सबका भी पता चल जाय कि ये किन किन पदार्थों से उत्पन्न हुए हैं और कदाचित् उन पदार्थों की सूची जिनका सूर्य में उपस्थित रहना प्रमाणित हो चुका है बढ़ेगी। अभी तक सूर्य में कुल ४९ पदार्थों का पता चला है। बलिष्ठ रेखाओं में से प्राय: सभी का पता चल गया है और हज़ारों दुर्बल रेखाओं की भी उत्पत्ति मालूम हो गई है। बलिष्ठ रेखाओं में मुख्य आठ दस रेखायें हाइड्रोजन, सोडियम और कैलसियम की हैं।

रेखाओं के कालेपन और चौड़ाई से इसका भी कुछ अनुमान किया जा सकता है कि अमुक पदार्थ सूर्य में कम या अधिक मात्रा में है, परन्तु इन सब बातों की अब भी जाँच हो रही है। अभी तक केवल मोटी ही मोटी बातों का ज्ञान हुआ है, परन्तु जहाँ तक पता चलता है, सूर्य में वे ही पदार्थ अधिक हैं जो पृथ्वी में बहुतायत से पाये जाते हैं। शायद सूर्य की रासायनिक बनावट ठीक पृथ्वी ही की सी है।

उन मौलिक पदार्थों के विषय में जिनकी रेखायें सौर-रश्मि-चित्र में नहीं मिली हैं यह न समझ लेना चाहिए कि वे सूर्य पर हैं ही नहीं। कुछ तो भारी होने के कारण पलटाऊ तह में टिक नहीं सकते; कुछ मौलिक पदार्थों का पता पृथ्वी पर अभी हाल ही में लगा है और उनकी रेखाओं के विषय में अभी पूरा ज्ञान नहीं हुआ है; कुछ की रेखायें नीले और बैंगनी प्रकाश में पड़ती हैं और इसलिए हमारे वायु-मंडल में ही मिट जाती होंगी। वस्तुत:, अभी काफ़ी प्रमाण नहीं मिला है जिससे शंका की जाय कि कोई मौलिक पदार्थ सूर्य में सचमुच नहीं है।

हमारे वायु-मंडल के कारण भी सौर-रश्मि-चित्र में कुछ रेखायें आ जाती हैं, परन्तु उनका पहचान यों हो जाता है कि



[स्प्राउल-बेधशाला

चित्र २७७—स्प्राउल-बेधशाला का प्रधान दूरदर्शक।

अधिकतर ताराओं की दूरी, गति इत्यादि की खोज में इसका उपयोग किया जा रहा है।

वे सुबह, शाम, जब सूर्य की रश्मियाँ हमारे वायु-मंडल को बहुत दूर से पार करती आती हैं, दोपहर की अपेक्षा अधिक

शक्तिमान् होती हैं। इसके अतिरिक्त दूसरी पहचानें भी हैं (चित्र २७१ देखिए)।

सूर्य के विषय में बहुत सी बातें सूर्य के सर्व-ग्रहण के समय मालूम हुई हैं, इसलिए यहाँ पर इन ग्रहणों के विषय में भी कुछ कहना अनुचित न होगा।

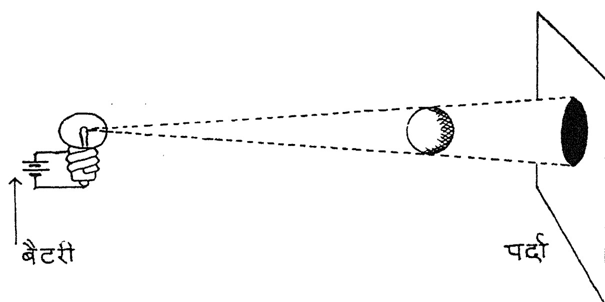
२—**सूर्य-ग्रहण**—"सब अद्भुत विज्ञानों में से कोई भी विज्ञान ऐसा नहीं है जिसका सम्बन्ध ऐसे परम रमणीय दृश्य से हो जैसा सब विज्ञानों का राजा, ज्योतिष, उस क्षण प्रकट करता है जब पृथ्वी क्रमशः अंधकार की चादर में लिपट जाती है और जब दिन के मुस्कराते हुए मंडल के चारों ओर तेज का अद्वितीय मुकुट, जिसे कॉरोना (corona) कहते हैं, दिखलाई पड़ता है।"* ज्योतिषी जिस सूक्ष्मता से ठीक ठीक सैकड़ों वर्ष पहले बतला देता है कि ग्रहण, कहाँ और कितने घंटे, मिनट और सेकंड पर लगेगा—यह भी कुछ कम आश्चर्यजनक नहीं है।

सूर्य का ग्रहण इसलिए लगता है कि पृथ्वी पर देखनेवाला चन्द्रमा की छाया में पड़ जाता है। छाया, चाहे यह किसी भी रीति से बनी हो, प्रायः हमेशा ही अतीक्ष्ण होती है। बीच में यह काली होती है; परन्तु उसका छोर धीरे धीरे प्रकाश में मिल जाता है। इसका कारण यह है कि प्रकाश देनेवाली वस्तु विन्दु सरीखी नहीं होती। यदि किसी एक विन्दु से प्रकाश आता हो तो छाया का छोर ऐसा तीक्ष्ण होगा, जैसे कोई काले कागज़ को काट कर सफ़ेद कागज़ पर चिपका दे। छोटे विस्तार के प्रकाश को, जैसे छोटी सी बिजली की बत्ती को, दूर पर रखने से छाया प्रायः पूर्णतया तीक्ष्ण पड़ती है (चित्र २७८)। परन्तु यदि इस प्रकार की दो बत्तियाँ अगल बगल रख दी जायँ (चित्र २७९) तो छाया चित्र २८० में

---

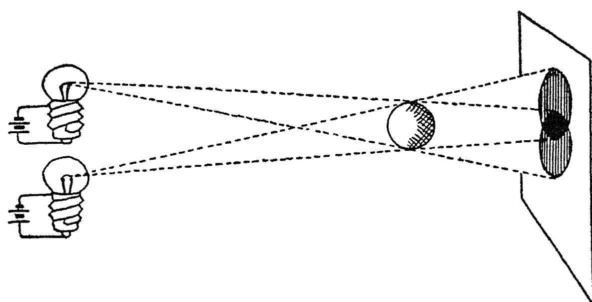
* Mitchell: Eclipses of the Sun, p. xv.

दिखलाये गये आकार की होगी। बीच का भाग, जहाँ दोनों में से किसी भी बत्ती की रोशनी नहीं पहुँचती है, बहुत काला होगा,



चित्र २७८—प्रच्छाया।

छोटे विस्तार के प्रकाश को दूर पर रखने से छाया तीक्ष्ण पड़ती है

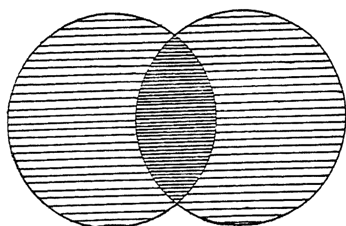


चित्र २७९—प्रच्छाया और उपच्छाया।

दो बत्तियों के रहने से बीच में प्रच्छाया और अगल बगल उपच्छाया बनती है।

परन्तु बगल के भाग इतने काले न होंगे। वहाँ एक बत्ती की रोशनी पहुँचती है, एक की नहीं। इसी प्रकार, यदि दो के बदले हज़ारों बत्तियों का एक गोला बना दिया जाय, या, जो वही बात है, कोई

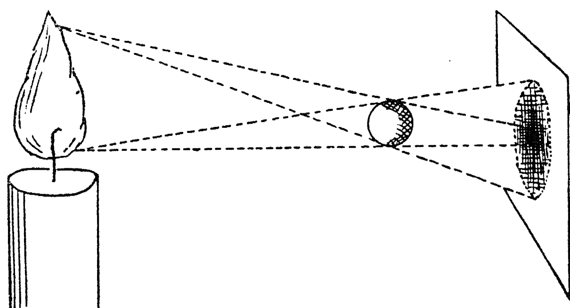
विस्तृत प्रकाश रख दिया जाय (चित्र २८१) तो जो छाया पड़ेगी उसका मध्यभाग काला रहेगा। इस काले भाग में उस विस्तृत प्रकाश के किसी भी विन्दु की रोशनी नहीं पहुँच पाती। ज्यों ज्यों हम इस काले भाग से दूर हटते हैं, त्यों त्यों छाया कम काली हो जाती है, क्योंकि इन स्थानों पर क्रमशः प्रकाश के अधिकाधिक भागों से रोशनी पड़ती है। ज्योतिष में बीच के काले भाग को प्रच्छाया (umbra) कहते हैं, कम काले भाग को उपच्छाया (penumbra) कहते हैं। उपच्छाया हलकी होते होते प्रकाश में मिल जाती है।



चित्र २८०—दो बत्तियों से बनी छाया।

बीच में प्रच्छाया और अगल बगल उपच्छाया है।

सूर्य के प्रकाश में चन्द्रमा के कारण रुकावट पड़ जाने से जो छाया

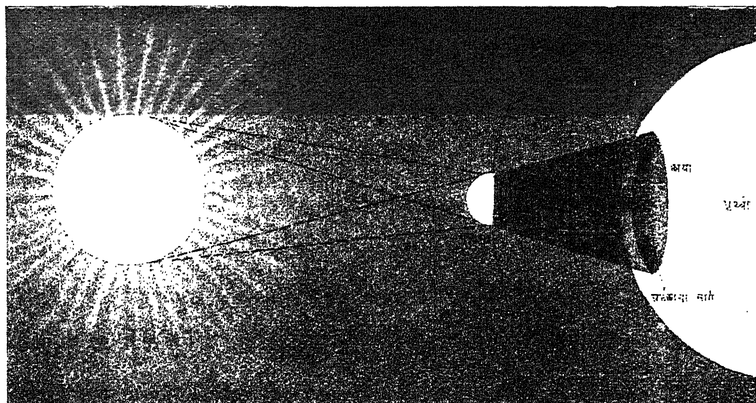


चित्र २८१—मोमबत्ती से बनी छाया।

बीच में प्रच्छाया और चारों ओर उपच्छाया है।

बनती है उसमें भी यही बात देखने में आती है। यदि आकाश शून्य

होने के बदले हलके धुयें से भरा होता तो हमको चन्द्रमा से बनी प्रच्छाया और उपच्छाया चित्र २८२ में दिखलाई गई रीति से आकाश में अकसर दिखलाई पड़ती। बीच का सूच्याकार भाग प्रच्छाया और तुरही के आकार का भाग उपच्छाया है। चाहे हमको प्रच्छाया और उपच्छाया दिखलाई दें या न, वे



[गोरखप्रसाद

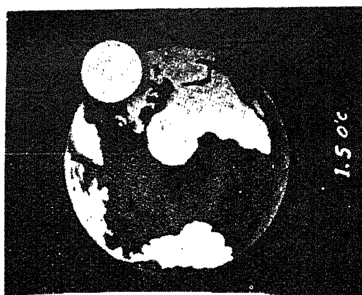
चित्र २८२—चन्द्रमा की प्रच्छाया और उपच्छाया।

यदि प्रकाश हलके धुएँ से भरा होता तो हमको प्रच्छाया और उपच्छाया वस्तुतः इसी प्रकार दिखलाई पड़तीं।

बनती हैं सदा इसी भाँति की। और जब जब ये पृथ्वी पर पड़ती हैं, तब तब सूर्य-ग्रहण लगता है। छाया के बाहर स्थित लोगों को ग्रहण नहीं दिखलाई देता, उपच्छाया में स्थित लोगों को साधारण ग्रहण (छाया से न्यूनाधिक दूरी के अनुसार कम या अधिक ग्रास का), और प्रच्छाया में स्थित लोगों को सर्व-ग्रहण दिखलाई पड़ता है। कितने लोग आश्चर्य करते हैं कि क्यों कहीं से ग्रहण दिखलाई पड़ता है और कहीं से नहीं। अब आपने

देख लिया होगा कि इसका उत्तर बहुत सरल है । चित्र २८४ में साधारण ग्रहण में लिया गया सूर्य का फोटोग्राफ़ दिखलाया गया है । ऐसे ग्रहणों से सूर्य की बनावट के बारे में कोई बात नहीं जानी जा सकती और इसलिए हमको उनसे यहाँ पर कोई प्रयोजन नहीं ।

सूच्याकार छाया की नोक कभी पृथ्वी तक पहुँच जाती है, कभी नहीं भी पहुँचती, क्योंकि सूर्य से न तो पृथ्वी की, और न चन्द्रमा की, दूरी स्थिर है। यदि प्रच्छाया (umbra) पृथ्वी तक पहुँच गई तब तो सर्वग्रहण लगता है, नहीं तो नहीं। प्रच्छाया के बाद जो उलटा सूच्याकार भाग बनता है उसमें





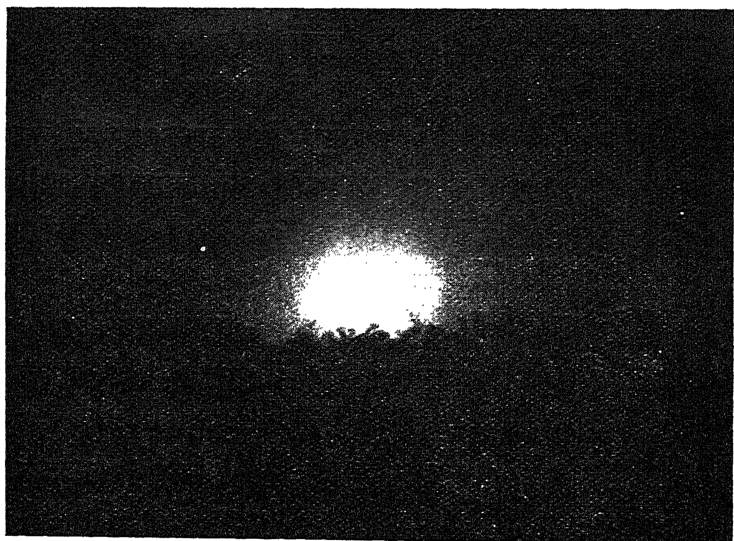




चित्र २८३—सूर्य-ग्रहण में चन्द्रमा का मार्ग । [फ़्लाउ

सूर्य-ग्रहण में, सूर्य से देखने पर, चन्द्रमा इस चित्र में दिखलाई गई रीति से चलता दिखलाई पड़ेगा । चन्द्रमा के नीचे पड़े स्थानों से सूर्य में ग्रहण लगा हुआ दिखलाई पड़ेगा ।

यदि पृथ्वी का कोई भाग पड़े तो वहाँ से "वलयाकार" ग्रहण दिखलाई पड़ेगा। वलयाकार ग्रहणों में बीच में काला चन्द्रमा और चारों ओर सूर्य का वह भाग दिखलाई पड़ता है जो चन्द्रमा



[फ़ोटो, गोरखप्रसाद

चित्र २८४—साधारण ग्रहण, ९ मई १९२९।

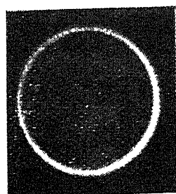
सर्व-सूर्य-ग्रहण की अपेक्षा साधारण ग्रहण बहुत अधिक संख्या में दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु इन ग्रहणों से सूर्य की बनावट के विषय में कुछ नहीं सीखा जा सकता। इसी लिए ज्योतिष में इनका विशेष आदर नहीं होता।

से ढक नहीं जाता (चित्र २८५)। इन ग्रहणों से भी कोई विशेष बात नहीं सीखी जा सकती।

जब बड़ी छाया पड़ने के लिए सब बातें अनुकूल होती हैं तब भी छाया की चौड़ाई केवल १८५ मील होती है। इसी के भीतर स्थित लोग सर्वग्रहण देख सकते हैं। यही कारण है कि यद्यपि सभी

व्यक्ति सूर्य और चन्द्रग्रहण के देखने का अवसर पाते हैं, थोड़े ही से भाग्यवान् व्यक्ति घर बैठे सर्व-सूर्य-ग्रहण देख सकते हैं।

छाया पृथ्वी पर स्थिर नहीं रहती। चन्द्रमा की गति और पृथ्वी के घूमने के कारण छाया, यदि यह भूमध्य रेखा के पास हुई तो, एक हज़ार मील प्रति घंटे से कुछ अधिक वेग से पश्चिम से पूर्व की ओर दौड़ती है। भूमध्य रेखा से दूरस्थ स्थानों में छाया और भी अधिक वेग से चलती है। कभी कभी यह वेग ५,००० मील प्रति घंटे से भी बढ़ जाता है।



[लॉकियर

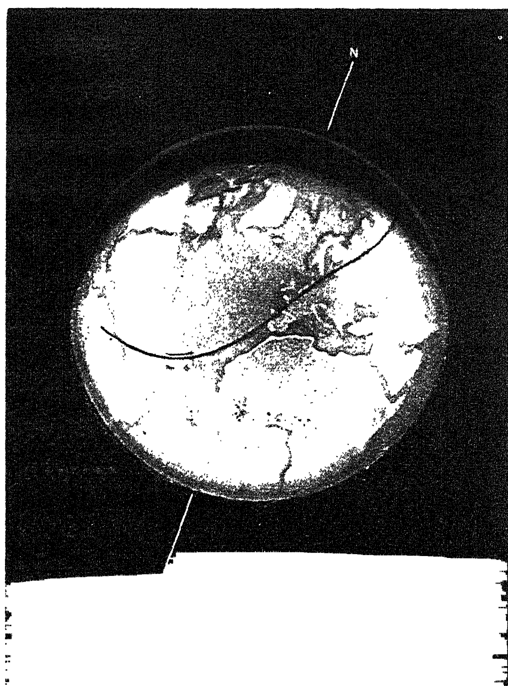
चित्र २८५—वलयाकार ग्रहण। सर्व-ग्रहण की तरह ये भी कम अवसरों पर दिखलाई पड़ते हैं; परन्तु इनसे भी कोई विशेष बात नहीं सीखी जा सकती।

इसी कारण सर्वग्रहण किसी एक स्थान में बहुत थोड़ी ही देर तक दिखलाई पड़ता है। इसका अधिक से अधिक मान साढ़े सात मिनट है, परन्तु ६ मिनट का सर्वग्रहण भी असाधारण लम्बा समझा जाता है। साधारण ग्रहण के आरम्भ होने के लगभग एक घंटे बाद सर्वग्रास लगता है। इसी प्रकार सर्वग्रहण के लगभग एक घंटे बाद उग्रह होता है।

चित्र २८६ में पृथ्वी पर किस आकार की छाया पड़ सकती है यह दिखलाया गया है।

३—पुराने ग्रहण—सबसे प्राचीन ग्रहण, जिसका वर्णन संसार के प्राचीन ग्रंथों में मिलता है, चीन का वह ग्रहण है जो २२ अक्टूबर २१३७ ई० पू० में लगा था। उस देश के शू-चिंग नाम के ग्रंथ में इसकी चर्चा है। अत्यन्त प्राचीन होने के लिए ही यह ग्रहण नहीं प्रसिद्ध है। इसके कारण दो राज-ज्योतिषियों का सर उतार लिया गया था, इस बात के लिए भी यह प्रसिद्ध है, और

शायद इसी कारण से शू-चिङ्ग में इसका वर्णन भी आ गया है। इन दोनों अभागे राज-ज्योतिषियों का नाम "ही" और "हो" था। वे गणित अध्ययन करने के बदले सुरापान में मस्त रहने लगे



[ऐबे मोरो

चित्र २८६—पृथ्वी पर चन्द्रमा की छाया।

काली रेखा छाया-केन्द्र का मार्ग दिखलाती है। छाया १,००० से लेकर ५,००० मील प्रतिघंटे तक के वेग से दौड़ती है।

और ग्रहण बतलाना ही भूल गये। फल यह हुआ कि ग्रहण अचानक आ पहुँचा और लोग पूजा-पाठ न कर सके। इसलिए रुष्ट होकर वहाँ के सम्राट् चुङ्ग-क्याङ्ग ने उनका सर धड़ से अलग करवा दिया।

चीन देश के पुराने ग्रंथों में कई सौ ग्रहणों की चर्चा है। बैबिलोनिया और मिस्र देश (ईजिप्ट) के भी कई पुराने ग्रहणों का वर्णन मिला है। इनमें से एक में तो सर्वग्रहण की स्पष्ट चर्चा की गई है, जैसे "(अमुक सम्राट् के) सातवें वर्ष के 'सीवान' महीने की छब्बीसवीं को दिन बदल कर रात्रि हो गई और आकाश में अग्नि (दिखलाई पड़ा) ......"। बाइबल (Bible) में भी एक सर्व-सूर्य-ग्रहण की चर्चा है "मैं सूर्य को दोपहर में ही अस्त कर दूँगा और बादल रहित दिन में पृथ्वी में अंधकार कर दूँगा।" (आमोस, अध्याय ८, पैरा ७)। इस ग्रहण को निनेवाह (Ninevah) का ग्रहण कहते हैं। उपरोक्त, और लैटिन ग्रीक इत्यादि प्राचीन पुस्तकों में वर्णित, सभी ग्रहणों की अब जाँच की गई है। इनसे चन्द्रमा की गति का पक्का पता लगा है और प्राचीन इतिहास की तिथियाँ निश्चित



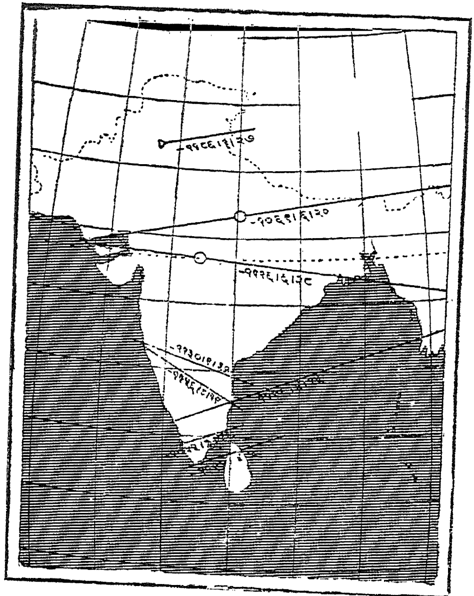
[यरकिज़ बेधशाला की कृपा से प्राप्त

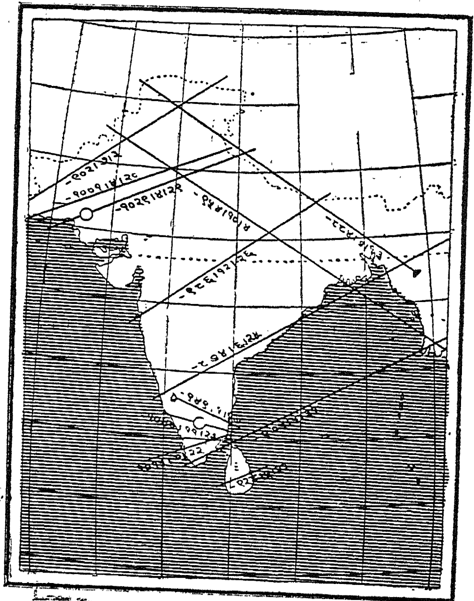
चित्र २८७—अपोलज़र।

इसने बड़े आश्चर्यजनक परिश्रम से सन् १२०७ ई० पू० से सन् २१६१ तक के (प्रायः साढ़े तीन हज़ार वर्षों के!) सभी ग्रहणों की गणना की थी।

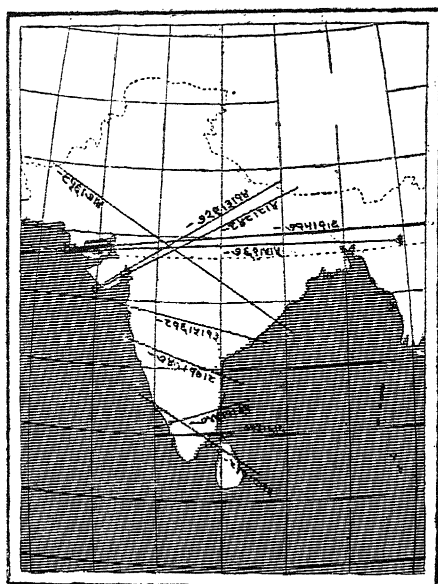
की गई हैं। उदाहरण के लिए, निनेवाह के ग्रहण की आधुनिक जाँच से पुराने प्रचलित तिथियों में २४ वर्ष की अशुद्धि पाई गई है।

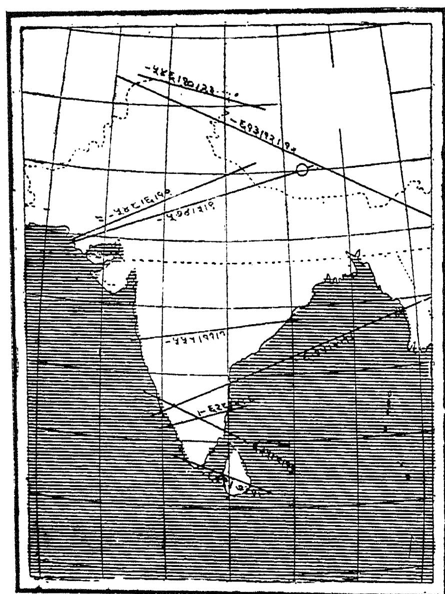
पुराने समयों में युद्ध के बीच में ग्रहण हो जाने के कारण कभी कभी संधि, कभी कभी भगदड़ और भीषण प्राण-हत्या हो गई है। परन्तु चतुर लोग इनसे न घबड़ाते थे। प्लुटार्क ने "पेरिकिल्स की जीवनी" में लिखा है, "समस्त नाविक सेना तैयार थी और पेरिकिल्स अपनी नौका पर था जब एक सूर्य-ग्रहण लगा। एकाएक अँधेरा हो जाना लोगों ने अशकुन मान लिया और मल्लाह सब बिलकुल





चित्र २८८-२८९





चित्र २९०-२९१

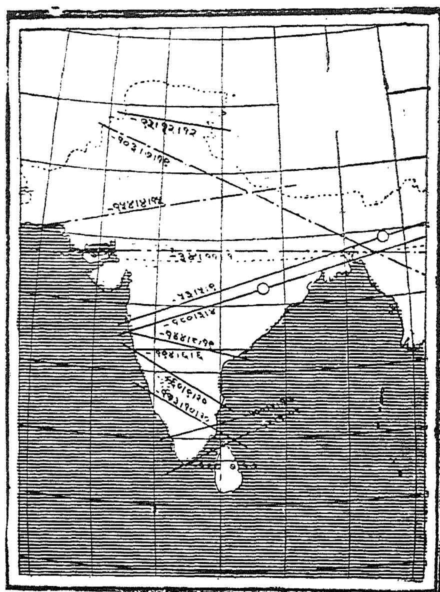
घबड़ा गये। पेरिकिल्स यह देख कर कि कर्णधार अत्यन्त आश्चर्य और द्विविधा में पड़ गया है, अपना चादर उठाया और इससे अपनी आँख को ढक कर पूछा कि इस क्रिया में कोई भयानक बात है, या यह भी कोई अशकुन है? जब उसको उत्तर मिला कि नहीं तो पेरिकिल्स ने पूछा "तब इसमें और ग्रहण में क्या अन्तर है, सिवाय इसके कि हमारी चादर से कोई बड़ी वस्तु सूर्य को ढक लिये है?"

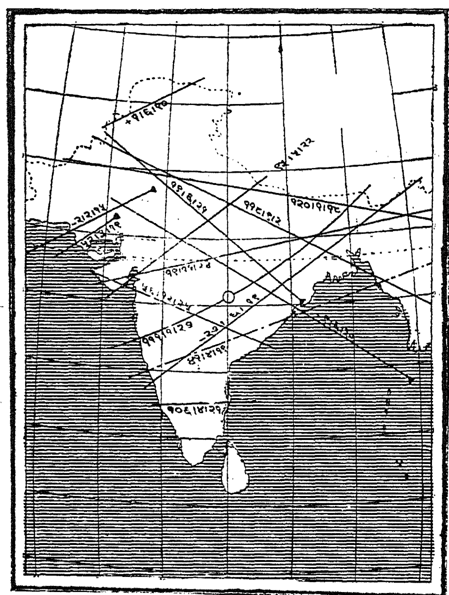
भारतवर्ष के पुराने इतिहासों और धर्म-ग्रंथों में ग्रहणों की कहाँ कहाँ चर्चा की गई है इसकी सूची अभी देखने में नहीं आई। इन सबकी आधुनिक रीति से जाँच करना अत्यन्त रोचक

और शिक्षाप्रद होगा। अपोल्ज़र (Oppolzer) ने आश्चर्यजनक परिश्रम से सन् १२०७ ई० पू० से सन् २१६१ के सभी ग्रहण जो हुए हैं या होनेवाले हैं उनकी गणना की है*। सर्व और वलयाकार ग्रहणों के मार्गों को भी नक़्शों में दिखलाया है। यह पुस्तक अब सुलभ नहीं है, इसलिए खोज करनेवालों के सुभीते के लिए भारतवर्ष के सर्व-सूर्य-ग्रहणों का मार्ग यहाँ दिये गये नक़्शों में दिखला दिया गया है। ग्रहणों की गणना करने की सामग्री उक्त पुस्तक में, या पिल्लाई की बनाई

चित्र २९२-२९३

* Oppolzer, Canon der Finsternisse.



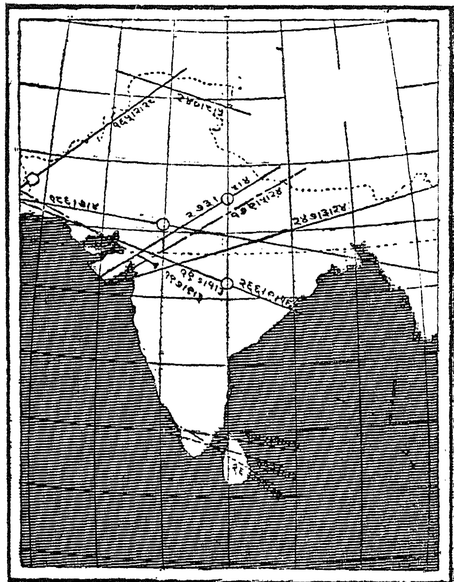


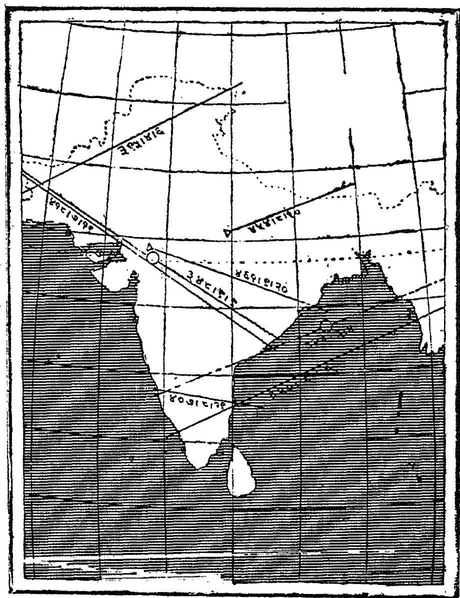
चित्र २६४-२६५

पुस्तक (Indian Chronology में मिलेगी।

भारतवर्ष का अगला सर्व-सूर्य-ग्रहण १६५४ में दिखलाई पड़ेगा, परन्तु उस घड़ी सूर्य के अस्त होने का समय निकट रहने के कारण यह ख़ूब अच्छी तरह नहीं देखा जा सकेगा। १६ फ़रवरी १६८० का सर्व-सूर्य-ग्रहण दक्षिण भारतवर्ष के कई स्थानों से अच्छी तरह देखा जा सकेगा (नक़शा देखिए)।

४—सर्व-सूर्य-ग्रहण का दृश्य— प्रकृति के समस्त रमणीय और चित्ताकर्षक दृश्यों में सर्व-सूर्य-ग्रहण सबसे बढ़कर बतलाया जाता है। सर्वग्रास के लगभग दस मिनट पहले अँधेरा मालूम होने लगता है। बची खुची रोशनी सूर्य के किनारे से ही आने





चित्र २६६-२६७

के कारण दूसरे ही रङ्ग को हो जाती है और इसलिए आकाश और पृथ्वी दोनों विचित्र रङ्ग के हो जाते हैं। तापक्रम घट जाता है और एकाएक ठंढक मालूम पड़ने लगती है। फूलों की पँखुरियाँ बन्द होने लगती हैं, मानों रात्रि आ रही हो। चिमगादड़ अपने बसेरों से निकल कर इधर-उधर फड़फड़ाने लगते हैं, परन्तु अन्य पक्षी घबरा कर गिरते भहराते अपने घोंसलों की ओर दौड़ते हैं, या कहीं आड़ पा कर अपना सर पंख के नीचे दबा कर पड़ रहते हैं। मवेशी पंक्ति-बद्ध होकर और सींग ऊपर उठा कर एक घेरे में खड़े हो जाते हैं, मानों किसी भयानक

शत्रु से मुक़ाबला करना है। मुर्ग़ी के बच्चे दौड़ कर अपनी माँ के पंख के नीचे छिप जाते हैं और कुत्ते दुम दबा कर अपने मालिक के पैर में लिपट जाते हैं। मनुष्य स्वयं, यद्यपि वह अँधेरा होने का कारण जानता है—इतना ही नहीं वह इस घटना के समय की गणना वर्षों पहले से कर लेता है—इस अशान्ति से बच नहीं सकता। उसके भी हृदय में एक प्रकार का भय उत्पन्न हो जाता है।

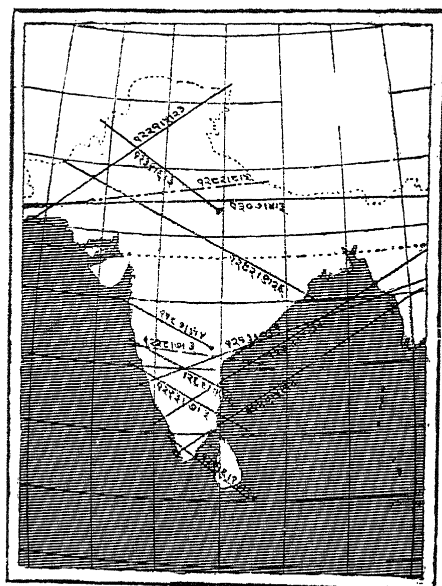
यदि देखनेवाला ऊँचे से दूरस्थ क्षितिज को देख सकता है तो सर्वग्रास के क्षण भर पहले चन्द्रमा की छाया, कभी कभी बिलकुल स्पष्ट रूप में, आँधी की तरह डरावनी वेग से

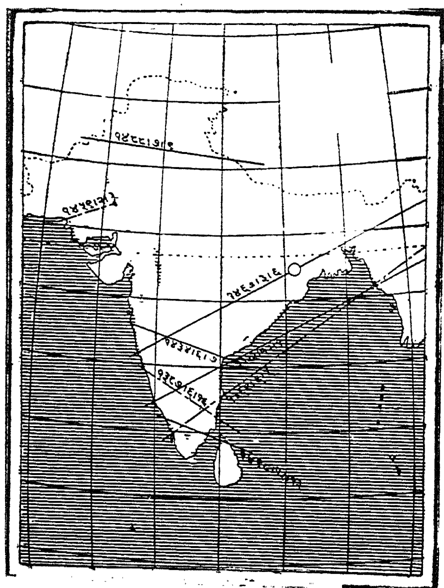
चित्र २९८ २९९

आती दिखलाई पड़ती है। सूर्य अब चन्द्राकार क्षीण रेखा-सा प्रतीत होता है, परन्तु मिटने के पहले यह प्रज्वलित मणियों के समान कई टुकड़ों में बँट जाता है। इनके मिटते ही, ऐसा एकाएक अँधेरा हो जाता है कि मनुष्य चौंक जाता है। सूर्य इतना चमकीला है और सर्वग्रास के दो एक सेकंड पहले इसका ज़रा ज़रा जो भाग दिखलाई पड़ता है वह आँखों को इतनी चकाचौंध कर देता है कि सर्वग्रास के बाद सहज में कोई वस्तु दिखलाई नहीं पड़ती, परन्तु क्षण भर में आँखें ठीक हो जाती हैं और तब पता लगता है कि बहुत अँधेरा नहीं है।

अब अत्यन्त अनुपम सौन्दर्य और प्रभावशाली

चित्र २००-२०१

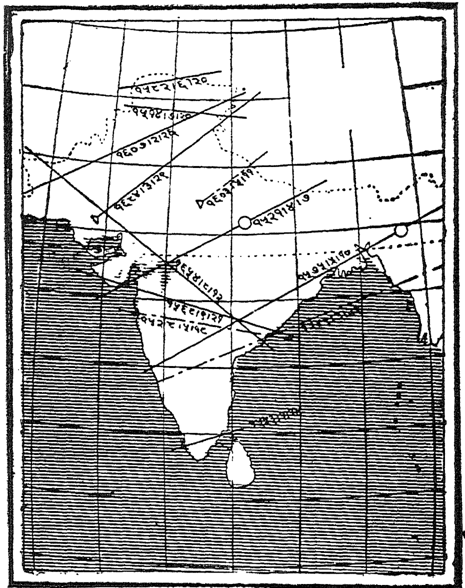


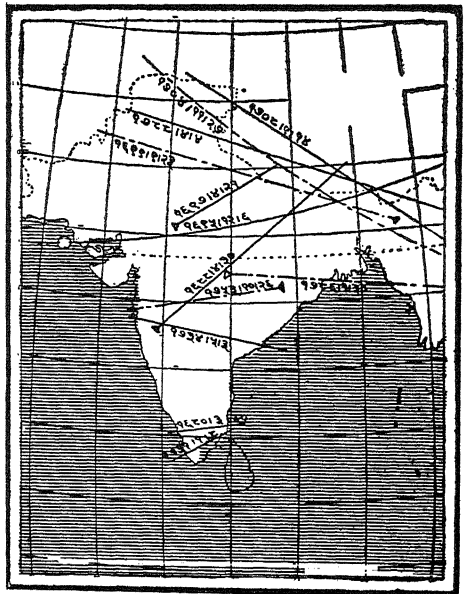


चित्र २०२-२०३

वैभव का दृश्य आँखों के सामने खिल पड़ता है। चन्द्र-मंडल, स्याही से भी काला, अधर में लटकता हुआ दिखलाई पड़ता है और इसके चारों ओर मोती के समान झलकता हुआ कोमल प्रकाश का मुकुट दिखलाई पड़ता है (रंगीन चित्र देखिए)। इस मुकुट के अतिरिक्त स्थान स्थान पर रक्त-वर्ण ज्वाला की जिह्वायें, अत्यन्त अनोखे आकारों की, काले चन्द्रमंडल के पीछे से लपकती हुई दिखलाई पड़ती हैं। जिस "वर्ण-मंडल" से ये ज्वालायें लपकती हैं, वह अत्यन्त दीप्तिमान और चन्द्र-मंडल से सटा हुआ दिखलाई पड़ता है। आकाश में नक्षत्र भी दिखलाई देने लगते हैं।

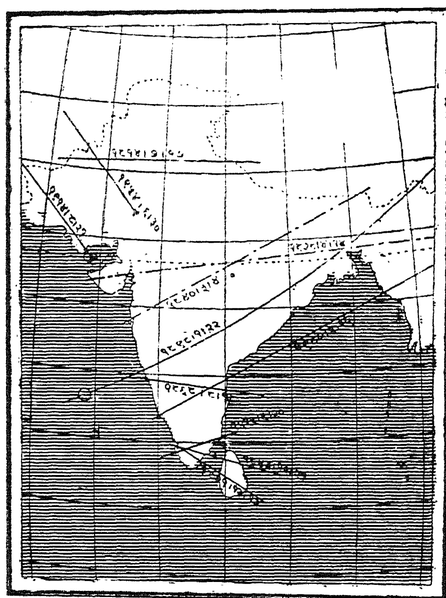
सूर्य के फिर निकलने के पहले, इसके वायुमंडल का सबसे नीचे का भाग स्पात के समान श्वेत वर्ण का चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है। तब, एकाएक चकाचौंध पैदा करनेवाला प्रकाश-मंडल निकल पड़ता है। तुरन्त सब जगह प्रकाश भर जाता है और मुकुट (कॉरोना) प्राय: छिप जाता है। केवल एक आध मिनट तक इसकी जड़ ही अँगूठी की भाँति दिखलाई पड़ती रह जाती है। प्रकाश-प्रसरण (irradiation) के कारण सूर्य का प्रथम भाग अपने असली आकार की अपेक्षा बहुत बड़ा दिखलाई पड़ता है; इसलिए





चित्र २०४-२०५

सूर्य हीरे की अँगूठी के समान जान पड़ता है (चित्र ३०७)।



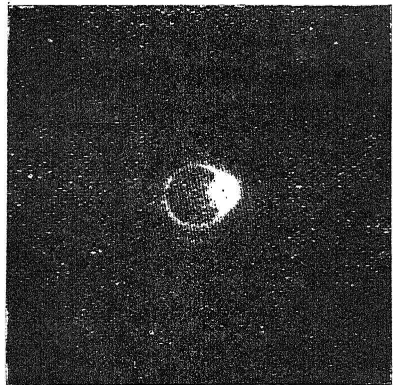
चित्र ३०६ ।

चित्र २७४-२६२—भारतीय सर्व-सूर्य-ग्रहणों में छाया-केन्द्र का मार्ग। ये अपोलज़र के नक़्शों के आधार पर बने हैं। प्रत्येक रेखा पर तारीख़ लिखी है; पहले सन्, फिर महीना, अन्त में तारीख़ है। जैसे, ८६६। ६। १६ से तात्पर्य है, १६ जून, सन् ८६६ ई०। १५८२। १२। २५ और इसके बाद की तिथियाँ ग्रेगरी-प्रथानुसार हैं। इसके पहले की तिथियाँ जूलियस प्रथानुसार हैं। △ से सूर्योदय, इसी आकार के स्याही से भरे हुए चिह्न से सूर्यास्त और ○ से मध्याह्न समझना चाहिए।

एक मिनट में कॉरोना इत्यादि का लेश-मात्र भी नहीं रह जाता और कुल तमाशा ख़तम हो जाता है।

५--ज्योतिषियों की सम्मति—सर्व-ग्रास लगने के पहले जो प्रज्वलित मणियों के आकार के सूर्य के टुकड़े दिखलाई पड़ते हैं वे बेलीमनका (Baily's beads) कहलाते हैं, क्योंकि वैज्ञानिक संसार का ध्यान पहले-पहल इनकी ओर बेली ने आकर्षित किया था। बेली का पेशा ज्योतिष नहीं था। वह कम्पनी के हिस्से और हुन्डी इत्यादि की दलाली करता था और भाग्यवश उसे धनोपार्जन करने में अच्छी सफलता हुई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि वह

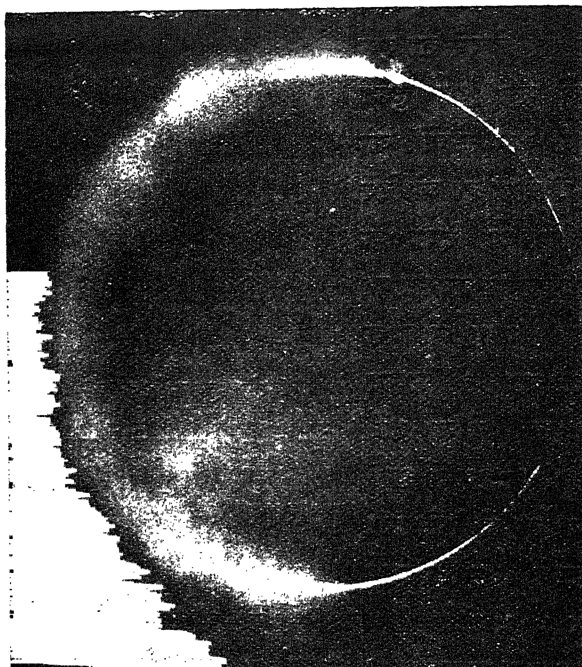
अपने शेष जीवन को ज्योतिष में, जिसका अध्ययन करना उसने अपने मनोविनोद के लिए आरम्भ किया, लगा सका। उसका काम उस ऋण का अनेकों में से केवल एक उदाहरण है जो विज्ञान को अव्यवसायी (amateur) ज्योतिषियों से मिला है। उसके १८३६ के ग्रहण को देखने का एक महत्त्वपूर्ण फल यह हुआ कि उसने उन लोगों को जिनकी जीविका ही ज्योतिष है यह दिखला दिया कि सर्व-सूर्य-ग्रहण के अवसर पर केवल ग्रास और मोक्ष के समय को नापने के सिवाय और भी देखने योग्य बातें होती हैं। १८४२ के सर्व-ग्रहण के वर्णन में बेली लिखता है "मनकाये स्पष्ट दिखलाई पड़ीं। × × × नीचे की सड़कों से घोर करतल-ध्वनि होने से मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ और उसी क्षण एक अत्यन्त तेजमय और सौन्दर्य-पूर्ण घटना को देखकर, जिसकी कल्पना करना भी कठिन है, मेरी नसों में बिजली दौड़ गई; क्योंकि उसी क्षण चन्द्रमा का काला मंडल एका-एक कोरोना या एक प्रकार के प्रकाशमय तेज से घिर गया × × × ; हाँ, मैंने सर्व-ग्रास में चन्द्रमा के चारों ओर प्रकाशमय चक्र देखने की आशा अवश्य की थी, परन्तु किसी भी पूर्व ग्रहणों के वर्णन से, जिसको मैंने पढ़ा था, ऐसा रमणीय दृश्य, जैसा हमारे सामने आया, देखने की आशा न की थी। × × × अत्यन्त शोभायमान और



[रसेल-डुगन-स्टिवर्ट की ऐस्ट्रॉनोमी से

चित्र ३०७—उग्रह होते समय सूर्य हीरे की अँगूठी के समान दिखलाई पड़ता है।

आश्चर्यजनक यद्यपि यह अपूर्व दृश्य वस्तुतः था और यद्यपि इसकी प्रशंसा किये बिना कोई रह नहीं सकता था, तो भी मुझे यह स्वीकार करना पड़ता है कि साथ ही इसको अद्भुत और विचित्र रूप में कुछ ऐसी बात थी जिससे डर लगता था।"



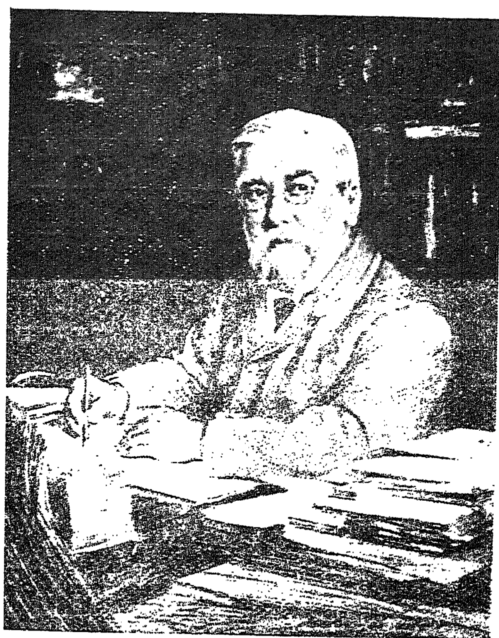
[पेरिस-बेधशाला

चित्र ३०८—उग्रह।

उग्रह आरम्भ होने के क्षण भर बाद "हीरे की अँगूठी" बिगड़ कर ऐसी हो जाती है (पिछले चित्र से तुलना कीजिए)।

ऐरागो (Arago) ने इसी ग्रहण के विषय में लिखा है—"जब सूर्य का एक पतला सा धागा रह गया और पृथ्वी पर इससे अति मंद प्रकाश आने लगा तब एक प्रकार की खलबली सबमें

प्रविष्ट हो गई। सबको अपने पड़ोसियों से अपने मन की बात प्रकट करने के लिए प्रबल इच्छा हुई। इसी लिए एक गहरा कलरव उठा; यह उसके सदृश था जो आँधी के बाद दूर के समुद्र से आता है। जैसे



[लॉकयर वेधशाला

चित्र ३०९—सर नॉर्मन लॉकयर।

इन्होंने सूर्य-सम्बन्धी कई खोजें की थीं और "भूत और भविष्य ग्रहणों" नाम की अंग्रेज़ी पुस्तक (और अन्य पुस्तकें भी) लिखी थीं।

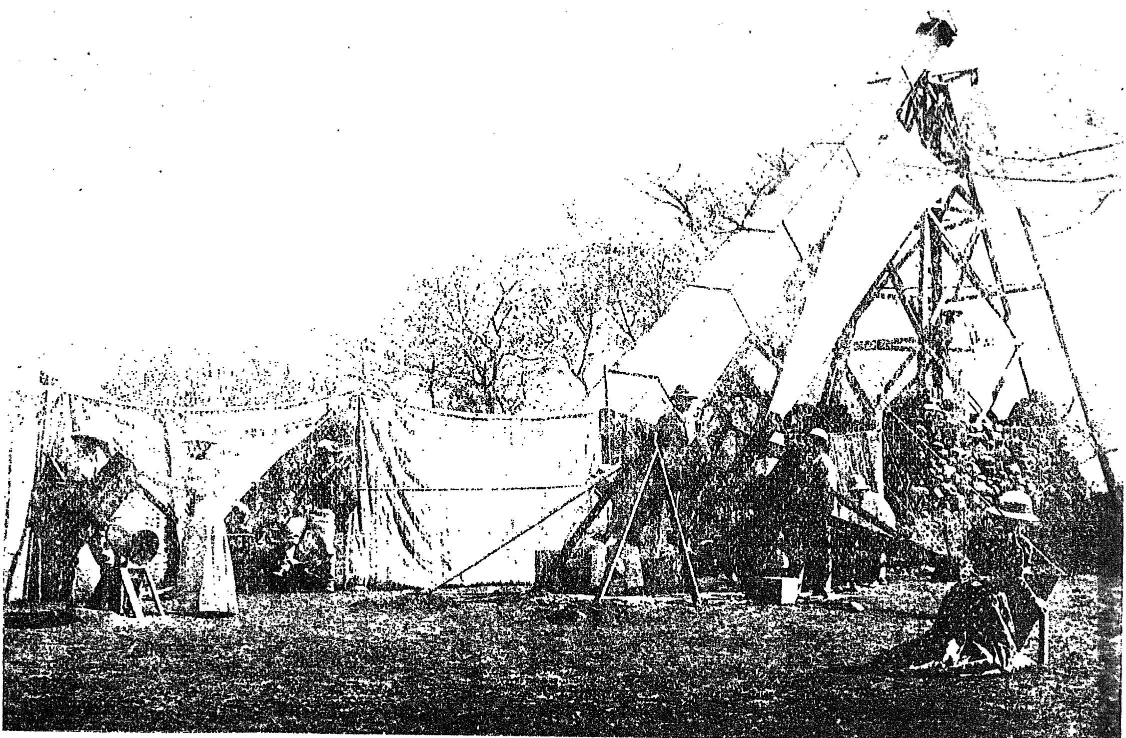
जैसे सूर्य-कला घटती गई तैसे तैसे यह कलरव बढ़ता गया। अन्त में सूर्य का लोप हो गया और इस समय एक-दम सन्नाटा छा गया। दृश्य के सौन्दर्य ने जवानी के आवेश को जीत लिया। × × ×

आकाश में भी पूर्ण सन्नाटा राज्य करता था, चिड़ियों ने भी गाना बंद कर दिया था।"

मिलन (इटली) में सर्व ग्रास का स्वागत महा कोलाहल से किया गया जिसके साथ यह भी ध्वनि गूँज रही थी "ज्योतिषियों की जय हो", मानो उन्होंने ही जनता के मनोविनोद के लिए यह सुन्दर तमाशा तैयार किया था!

भारतीयों पर सर्वग्रहण का क्या प्रभाव पड़ता है यह लॉकियर (Lockyer) के मुँह से सुनिए। "भारतवर्ष के एक ग्रहण में, वहाँ के देशवासी मुझे और अन्य ज्योतिषियों को चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये और हम लोगों के सब काम को प्रायः बन्द ही कर दिया। ग्रहण में अपने प्रिय देवता को राहु राक्षस से भक्षण होते देख वे चिल्ल-पों और रोने-धोने से वायु को चीरने लगे, विशेषकर जब उन्होंने देखा कि राहु ही की जीत हुई जा रही है। उनकी उत्तेजना बढ़ती ही गई और वे पास में पड़ी हुई पुआल जला कर होम करने ही जा रहे थे। यदि ऐसा किया गया होता तो धुएँ से सूर्य का एक और ग्रहण लग जाता और कुछ भी करना असम्भव हो जाता, परन्तु अग्नि देख ली गई और बुझा दी गई और धुएँ का बादल धीरे धीरे बिखर गया; परन्तु उनका रोना-चिल्लाना जारी ही रहा, क्योंकि दुष्ट राहु अपनी इच्छा की पूर्त्ति किये बिना हटनेवाला न था।"

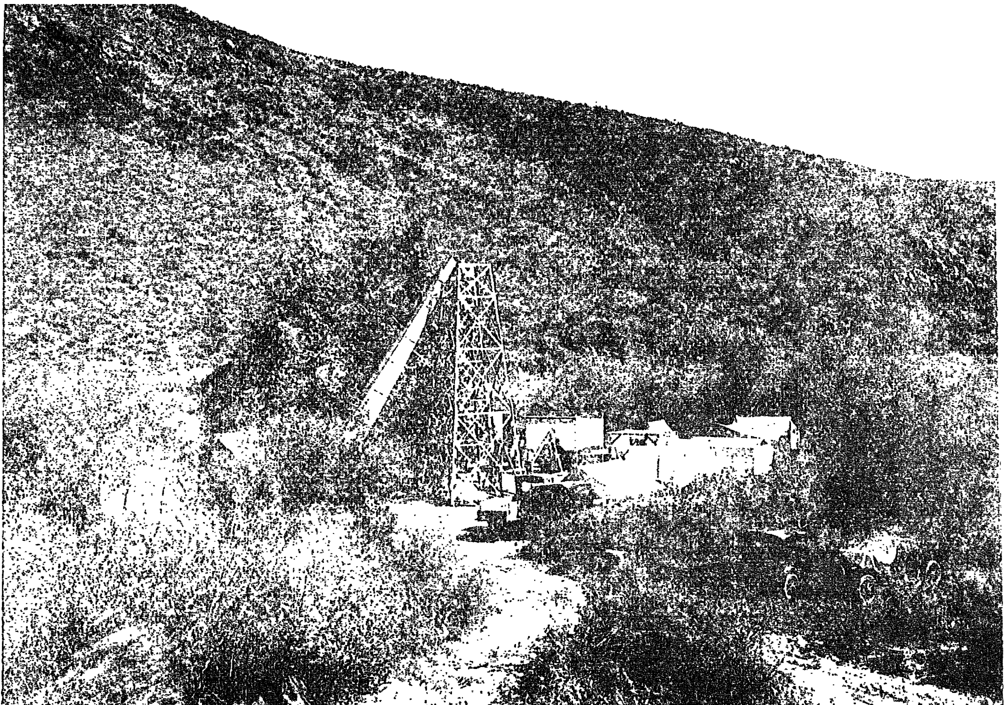
६—सर्व-सूर्य-ग्रहण के समय ज्योतिषी क्या करते हैं—सर्व-सूर्य-ग्रहण ज्योतिषियों के लिए बड़ा त्यौहार है। इसके लिए महीनों से तैयारी की जाती है। इसमें धन भी अधिक व्यय होता है, जो किसी लखपती या करोड़पती की उदारता से या सरकार की कृपा से मिल जाता है। सर्वग्रहण साधारणतः पाँच ही छः मिनट के लिए लगता है। इसलिए बहुत पहले से लोग निश्चय



[लिक-बेधशाला

चित्र ३१०—लिक-बेधशाला की ग्रहण-पार्टी।

लिक-बेधशाला, अमरीका, की वह ग्रहण-पार्टी जो जिउर (भारतवर्ष) में सन् १८९८ में आई थी।

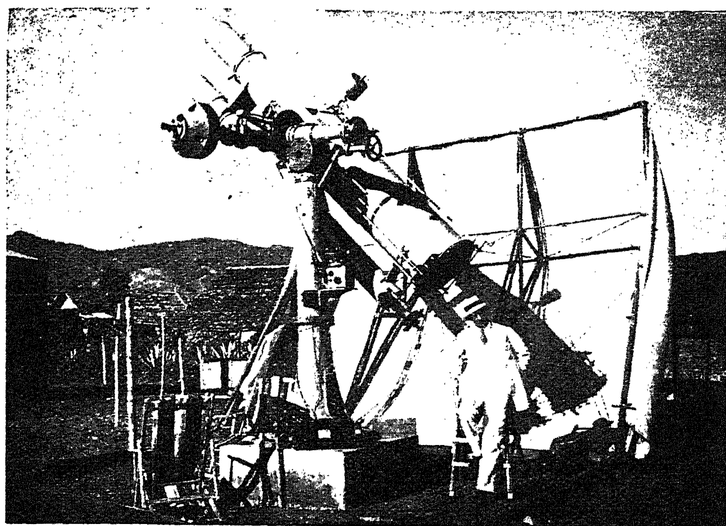


[लिक-बेधशाला

चित्र ३११—लिक-बेधशाला की ग्रहण-पार्टी।

सितम्बर १९२३, इन्समोंड (दक्षिण कैलीफ़ोरनिया) के पास।

कर लेते हैं कि ग्रहण के समय क्या क्या और किस प्रकार काम किया जायगा । वर्षों पहले से चन्द्रमा के छाया-मार्ग में स्थित स्थानों की जाँच की जाती है, जिससे पता लग जाय कि ग्रहण के समय वहाँ स्वच्छ या मेघाच्छन्न आकाश रहने की सम्भावना है ।



[ज़ाइस कम्पनी की कृपा से प्राप्त

चित्र ३१२—जरमन-ग्रहण-पार्टी ।

आइन्स्टाइन इन्स्टिट्यूट, पॉट्सडाम (जरमनी) की ग्रहण-पार्टी, उत्तरी सुमात्रा, मई १९२९ ।

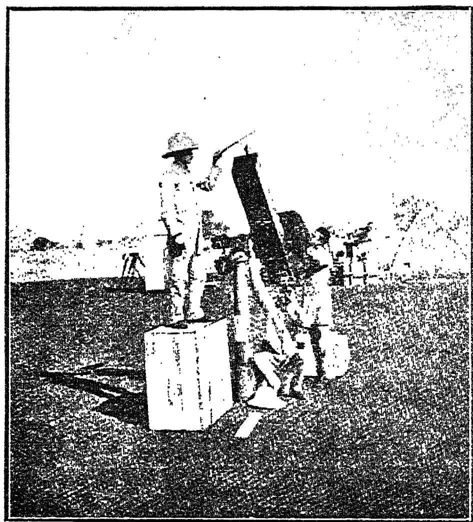
फिर जल-वायु के अध्ययन करनेवालों (meteorologists) के रिपोर्ट पर, और उस स्थान तक पहुँचने और वहाँ रहने के सुभीते पर विचार करके निश्चय किया जाता है कि किस किस वेधशाला से ज्योतिषी कहाँ कहाँ जायँगे । यथासम्भव प्रयत्न किया जाता है कि ज्योतिषियों के समूह भिन्न भिन्न स्थानों पर अपना डेरा डालें, ताकि

एक स्थान पर बादलों से काम बिगड़ जाने पर दूसरे स्थान में कुछ प्रत्यक्ष फल मिले। तब भी, कभी कभी ग्रहण-मार्ग का अधिकांश जल हो पर पड़ जाता है और एक ही दो टापू या वीरान स्थान इसके भीतर पड़ते हैं। ऐसी दशा में लाचार होकर ज्योतिषियों को वहाँ ही जाना पड़ता है और एक बार ऐसा भी हुआ था कि एक ही बादल के टुकड़े से सब ज्योतिषियों को निराश होना पड़ा और महीनों का कठिन परिश्रम मिट्टी हो गया।

इधर स्थान तय हुआ करता है, उधर ज्योतिषी लोग अपना अपना कार्य-क्रम निश्चित करते हैं। अनेक बार ग्रहण के अवसर पर उपयोग करने के लिए विशेष यंत्र बनाने पड़ते हैं। इन यंत्रों की पहले पूरी जाँच की जाती है और उनकी छोटी से छोटी त्रुटि मिटाई जाती है। ग्रहण के समय सफलता प्राप्त करने के लिए प्रयोगशाला और बेधशाला में महीनों नये नये प्रयोग किये जाते हैं।

स्थान निश्चित हो जाने पर, सब सामान ठीक हो जाने पर, और रुपये-पैसे, पासपोर्ट, रेल और जहाज़ इत्यादि, यात्रा-सम्बन्धी सब बातों का प्रबन्ध हो जाने पर, ज्योतिषी-सेना का अग्रभाग यत्रों को लेकर कार्य-क्षेत्र में पहले पहुँचता है। कभी कभी इन यात्राओं में पृथ्वी की आधी प्रदक्षिणा करनी पड़ती है। कभी कभी बड़े ही बीहड़ स्थानों में जाना पड़ता है। आवश्यकतानुसार शिविर तैयार होता है और यंत्र आरोपित किये जाते हैं (चित्र ३१०-१२)। तब यंत्रों की पूरी जाँच की जाती है। इतने में इस सेना के शेष ज्योतिषी भी आ पहुँचते हैं। अब ग्रहण-काल में क्या क्या करना होगा उसका पूरा अभ्यास किया जाता है। समय बचाने के ख़्याल से एक ओर एक व्यक्ति प्लेटों से भरे प्लेट-घरों को देने के लिए, एक व्यक्ति दूरदर्शक के एक सिरे पर प्लेट लगाने के लिए, एक दूरदर्शक के दूसरे सिरे पर प्रकाश-दर्शन (एक्सपोज़र, exposure)

देने के लिए और एक व्यक्ति बगल में प्रकाश-दर्शन पाये प्लेटों को लेने के लिए खड़े होते हैं। किसी दूरदर्शक से कॉरोना और रक्त-ज्वालाओं के कई एक बड़े फ़ोटोग्राफ़ लिये जायँगे, जिनमें कॉरोना के हलके और चमकीले भागों को अच्छी तरह दिखलाने के लिए किसी में दो चार सेकंड का, किसी में इससे अधिक और किसी में एक दो मिनट का प्रकाश-दर्शन दिया जायगा। किसी दूरदर्शक से सूर्य के चारों ओर के आकाश का फ़ोटोग्राफ़ लिया जायगा। इनमें कॉरोना और सूर्य तो छोटे पैमाने पर उतरेंगे, परन्तु आस-पास के ग्रह नक्षत्र अच्छी तरह आ जायँगे। इसका अभिप्राय नये ग्रह का आविष्कार या सापेक्षवाद की सत्यता की जाँच हो सकती है। किसी किसी त्रिपार्श्व लगे दूरदर्शकों से पल्टाऊ तह, वर्णमंडल और कॉरोना का रश्मि-चित्र लिया जायगा। किसी से, अन्य यंत्रों का उपयोग करके, फ़ोटोग्राफ़ इस अभिप्राय से लिया जायगा कि पता लगे कि कॉरोना का प्रकाश कहाँ



[नायगमवाला

चित्र ३१३—महाराज तख़्तसिंहजी बेधशाला, पूना, की ग्रहण-पार्टी।

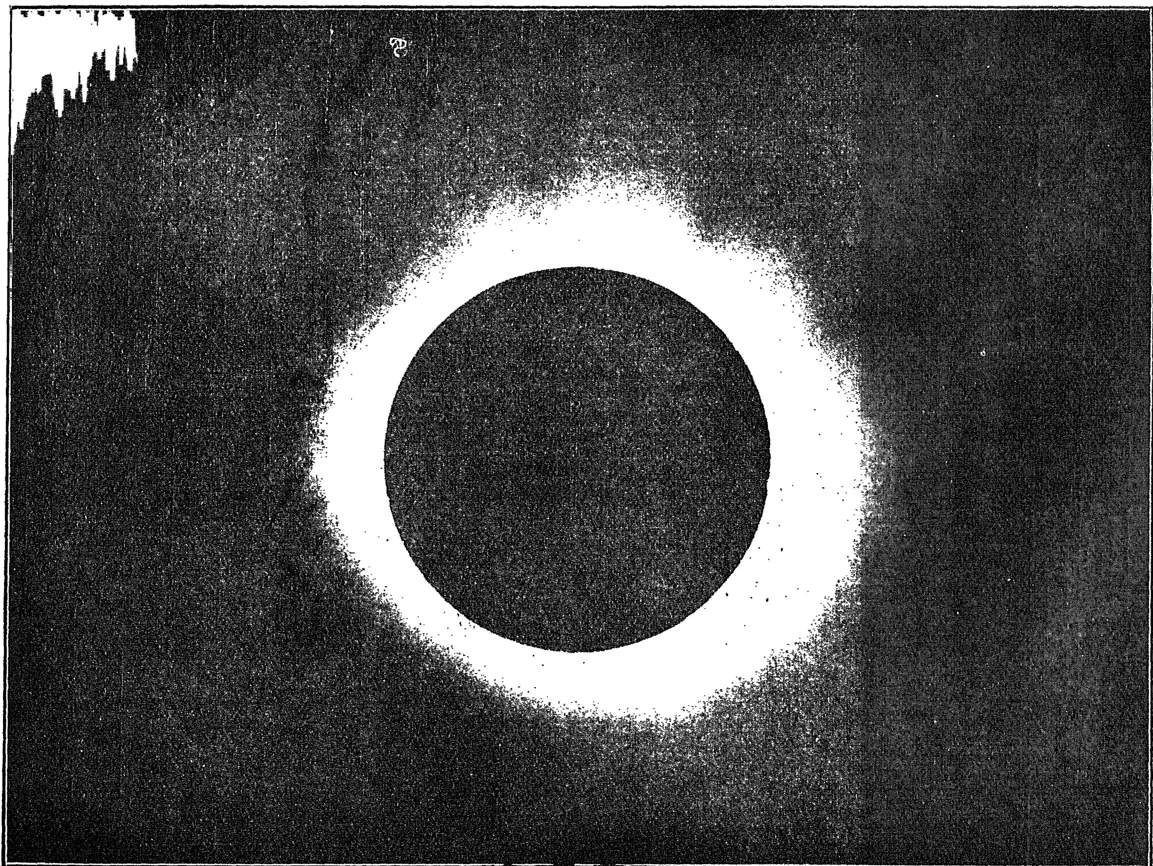
जिउर (पश्चिम भारतवर्ष), जनवरी १८९८।

तक सूर्य का ही प्रकाश है जो परिवर्तित (reflect) होकर आ रहा है। कहीं कहीं तापक्रम, इत्यादि नापने का प्रबन्ध किया जा रहा है। यथा-सम्भव यही चेष्टा की जाती है कि प्रत्येक कार्य में फ़ोटोग्राफ़ी से ही काम लिया जाय, क्योंकि सर्व-ग्रहण के दो चार मिनटों में ऐसी हड़बड़ी रहती है कि सूक्ष्म ब्योरों का अच्छी तरह देखना असम्भव हो जाता है।

अभी ग्रहण लगने को कई दिन हैं। परन्तु अभी से सब क्रियाओं का रिहर्सल (पूर्वाभ्यास) जारी है। एक ज्योतिषी घड़ी लिए बैठा रहता है। वह "रेडी" (ready) और फिर "गो" (go) बोलता है और तब प्रतिसेकंड एक, दो, तीन, चार,...पुकारता जाता है। "गो" सुनते ही सब कार्य पूर्व निश्चय के अनुसार आरम्भ हो जाते हैं। दाहिनी हाथवाला व्यक्ति प्लेट देता है। ज्योतिषी उसे दूरदर्शक-कैमेरे में लगाता है और प्लेट-घर का ढकना खींचता है। क्षण भर ठहरने के बाद, कि यंत्र की थरथराहट मिट जाय, दूरदर्शक के सिरे पर खड़ा व्यक्ति इशारा पाते ही प्रकाश-दर्शन देता है और तब ज्योतिषी प्लेट-घर के ढकने को बन्द करके इसे बाईं ओरवाले व्यक्ति को दे देता है। इस प्रकार प्रतिदिन कई बार रिहर्सल किया जाता है। छोटी से छोटी बात भी पहले से सोच ली जाती है, जिसमें समय पर कोई गड़बड़ी न होने पावे। प्लेट इत्यादि लेने-देने, प्रकाश-दर्शन देने, इत्यादि के लिए जहाज़ के नाविक या स्थानीय लोगों में से स्वयंसेवक चुन लिये जाते हैं और अभ्यास करा करा कर उनको निपुण बना दिया जाता है।

अन्त में ग्रहण का दिन भी आ जाता है।

यदि आकाश स्वच्छ रहा तब तो सभी प्रसन्नचित्त रहते हैं। तिस पर भी हृदय में शंका बनी रहती है कि कहीं ऐन मौक़े पर बदली न हो जाय। परन्तु यदि कहीं बदली रही तो फिर इसकी



[ऐस्टन

चित्र ३१४—सुमात्रा, १४ जनवरी, १९२६, के सर्व-सूर्य-ग्रहण में कॉरोना का फ़ोटोग्राफ़।

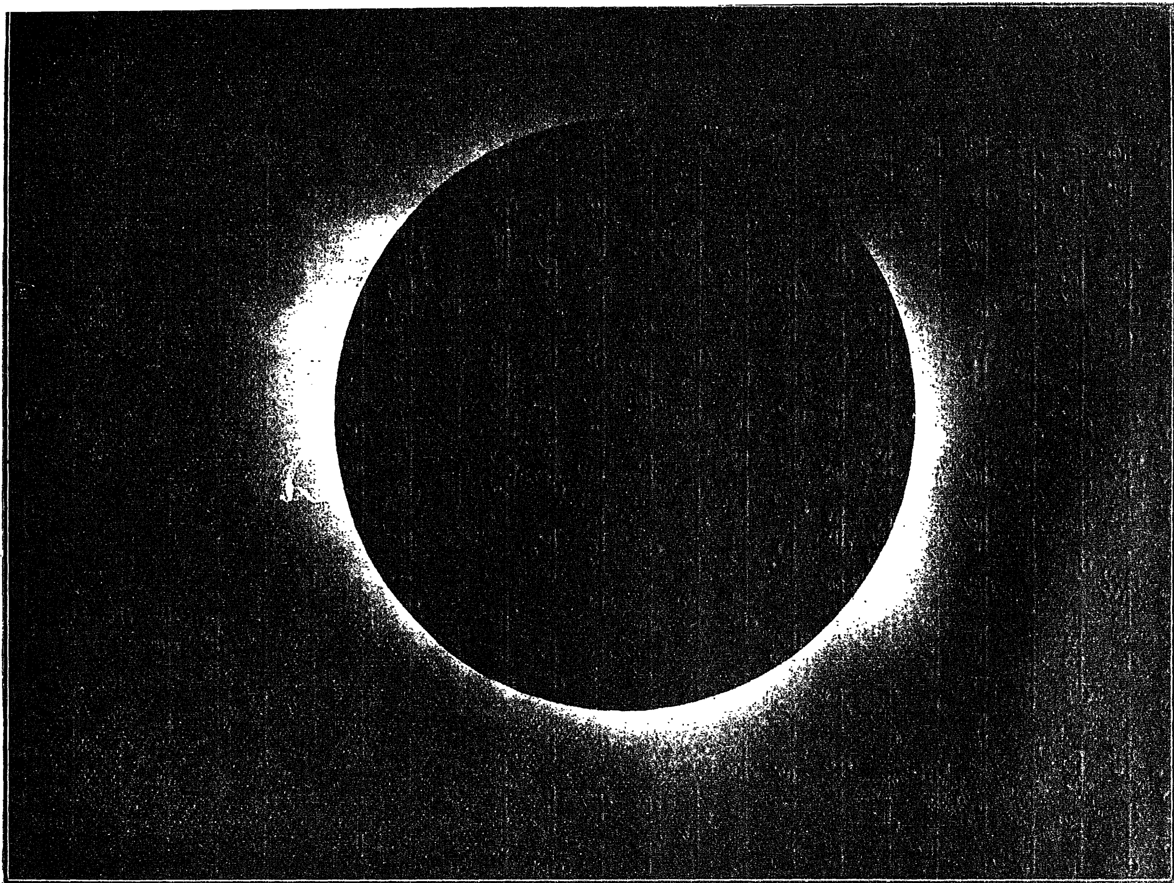
प्रत्येक सर्व-सूर्य-ग्रहण में कॉरोना का फ़ोटोग्राफ़ लेना एक मुख्य काम होता है।

चर्चा छोड़ कर दूसरी कोई बात सूझती ही नहीं। बदली हो चाहे न हो प्रोग्राम सब पूरा किया जाता है; बदली रहने पर इस आशा से कि शायद कहीं बीच में दो चार सेकंड के लिए बादल हट जाय और एक दो फ़ोटोग्राफ़ ठीक उतर आये। मरता क्या न करता!

मान लीजिए बादल नहीं है। साधारण ग्रहण आरम्भ होता है। सब सामान दुरुस्त है। लोग अपने अपने स्थान पर मुस्तैद हैं। धीरे धीरे—उत्सुक ज्योतिषियों को जान पड़ता है मानों चींटी की चाल से भी धीरे धीरे—चन्द्रमा सूर्य को ढके चला जाता है। ग्रहण की इस ढिलाई से ज्योतिषियों को दम मारने की फ़ुरसत मिल जाती है; परन्तु इतने पर भी सभी व्यग्र-चित्त रहते हैं, विशेष करके सर्व-ग्रास के दो चार मिनट पूर्व, जब प्रतीक्षा करने के सिवाय और कुछ करना नहीं रहता है। शायद सौ दफ़े उसी बात को ज्योतिषी सोच चुका है और फिर सोच रहा है कि सब चीज़ बिलकुल दुरुस्त है या नहीं। उनमें से शायद कुछ ने पिछली रात में स्वप्न देखा होगा कि ग्रहण आरम्भ हो रहा है और उनके पास कुछ भी तैयार नहीं है "और मैं कह सकता हूँ" प्रोफ़ेसर टरनर लिखते हैं "कि बुरे स्वप्नों में से यह अत्यन्त दुखदायी स्वप्न है" *।

इस प्रकार जब अन्य लोग प्रकृति का सौन्दर्य देखने में लिप्त रहते हैं, ज्योतिषी बिचारे को प्लेट-घरों पर निगाह रखना पड़ता है। प्लेट को जब प्रकाश-दर्शन मिलता रहता है, उस समय उसे इस अनुपम दृश्य को देखने के लिए कुछ सेकंड मिल जाते हैं। एक बार एक ज्योतिषी, जिसे समय पुकारने का कार्य सौंपा

Turner, A voyage in Space, London, 1915, p. 240; प्रोफ़ेसर टरनर ने यह स्वप्न अवश्य देखा होगा!



[जैकसन

चित्र ३१५—रक्त ज्वाला।

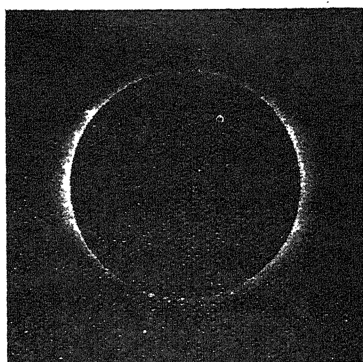
ग्रहण के समय लिया गया फ़ोटोग्राफ़, ६ मई १६२६। प्रकाश-दर्शन १० सेकंड। बाईं ओर एक सुन्दर रक्त ज्वाला दिखलाई पड़ रही है।

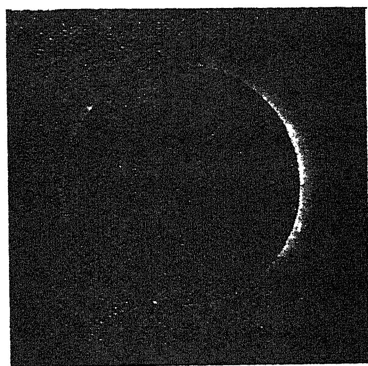
गया था, अत्यन्त त्याग के साथ सूर्य की ओर पीठ करके बैठा, जिसमें कॉरोना के अद्भुत सौन्दर्य से उसके गिनने में गड़बड़ी न पड़ जाय ! जिस ग्रहण को देखने के लिए उसने हज़ारों मील की यात्रा की थी, उसको क्षण भर के लिए भी न देख पाया । ज्योतिषियों के शत्रु केवल बादल ही नहीं होते । १८८६ के ग्रहण में एक ग्रहण-पार्टी को स्वयंसेवकों की सहायता लेने के कारण अनेक विपत्तियाँ झेलनी पड़ीं । मुख्य दूरदर्शक ठीक सूर्य की ओर नहीं था, इससे प्लेट पर कोई चित्र ही नहीं आया । ऐन मौक़े पर दूसरे दूरदर्शक की धुरी ही टूट गई । तीसरे में स्वयंसेवक महाशय तमाशा देखते रह गये और प्रकाश-दर्शन देना ही भूल गये । एक दूरदर्शक के सामने भीड़ को रोकने के लिए जो कॉन्स्टेबुल बुलाये गये थे वे ही सर्व-ग्रास के समय खड़े हो गये । शेष यंत्रों से जो प्लेट लिये गये थे उनको चुंगीवाले सरकारी कर्मचारियों ने ज़ब्त कर लिया । बहुत लिखा-पढ़ी करने पर—सरकारी मामला तो सभी जानते हैं बहुत धीरे धीरे चलता है—जब ये प्लेट नौ महीने बाद मिले भी तो इतने दिन रक्खे रहने के कारण वे बहुत ख़राब हो गये थे ! इन सब बातों पर तो ख़ूब हँसी आती, परन्तु ज्योतिषियों को निराशा और हानि देख कर तरस आता है ।

७—ग्रहणों से क्या सीखा गया है—१८४२ के ग्रहण में, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है, रक्त-ज्वालाओं और कॉरोना का विचित्र स्वरूप अच्छी तरह से देखा गया । इसके एक ही वर्ष बाद श्वाबे का आविष्कार (पृष्ठ २६३ देखिए) छपा । इन दोनों कारणों से लोगों में सूर्य-सम्बन्धी अनुसंधान में विशेष उत्साह उत्पन्न हो गया । इस पर बहुत विवाद बढ़ा कि रक्त ज्वालायें और कॉरोना सूर्य के हैं या वे चन्द्रमा के वायु-मंडल के कारण दिखलाई पड़ते हैं । इससे सर्व-सूर्य-ग्रहणों के विषय में ज्योतिषियों में ऐसी

रुचि बढ़ी कि उन्होंने ठान लिया कि चाहे सर्व-ग्रास कितना ही कम समय तक क्यों न हो और चाहे उसे देखने के लिए कितनी ही दूर क्यों न चलना पड़े, उन्हें देखना अवश्य चाहिए।

परन्तु कुछ वर्षों तक ठीक पता न चल सका कि ज्वालायें और कॉरोना सूर्य के हैं या चन्द्रमा के। अन्त में १८६० के ग्रहण में फ़ोटोग्राफ़ी से यह निश्चय हुआ कि ये वस्तुत: सूर्य के हैं, क्योंकि चन्द्रमा के साथ ये चलते नहीं दिखलाई पड़ते, बल्कि चन्द्रमा उनको क्रमश: ढकता है (चित्र ३१६-३१७)।



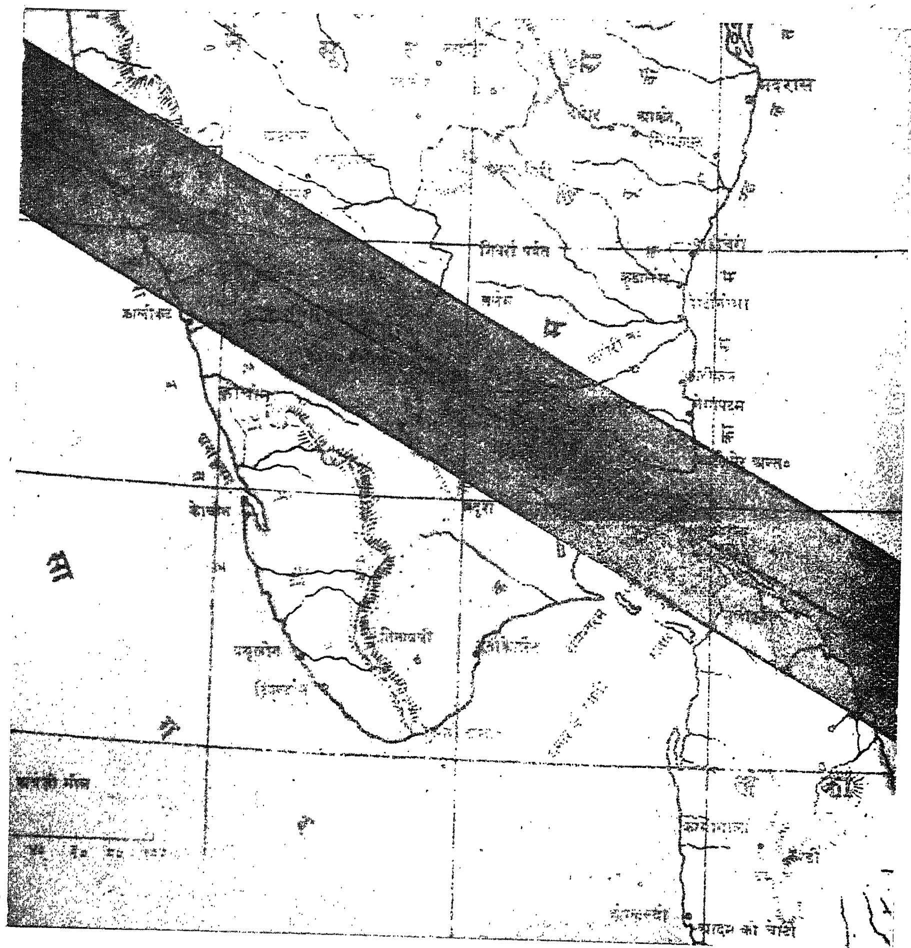


[लिक बेधशाला

चित्र ३१६ और ३१७—रक्त ज्वालायें और कॉरोना।

इन चित्रों की तुलना करने से पता चलता है कि रक्त ज्वालायें और कॉरोना सूर्य में हैं, चन्द्रमा में नहीं। ये चित्र एक ही ग्रहण के हैं और एक दूसरे से थोड़ा समय बाद लिया गया था।

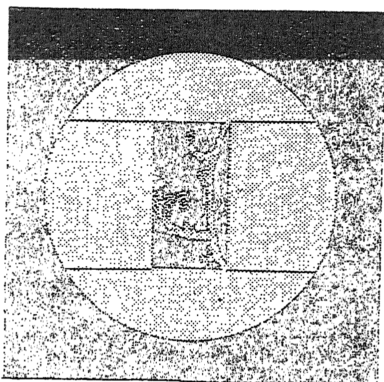
इसी समय रश्मि-चित्रों का भी भेद खुला क्योंकि किरणफ़ों के नियमों का (पृष्ठ ३०५) इसी समय आविष्कार हुआ। इससे सर्व-ग्रहणों के पीछे भौतिक-विज्ञानवाले भी पड़ गये। अगला ग्रहण भारतवर्ष, मलय प्रायद्वीप और सियाम में, १८ अगस्त १८६८ को पड़ा (नक़शा ३१८ देखिए)। ग्रहण-पथ पर दो पार्टियाँ ब्रिटेन से, दो फ़्रान्स से, एक जरमनी से और एक स्पेन से पहुँचीं। फ़्रान्स से जैन्सन



चित्र २१८—सन् १८६८ के सर्व-सूर्य-ग्रहण का मार्ग।

काले रंगे प्रदेश में सर्व-सूर्य-ग्रहण दिखलाई दिया था।

(Janssen) नाम के ज्योतिषी ने गन्टूर (मद्रास प्रेसीडेन्सी) में डेरा डाला। सबसे अधिक सफलता उसी को प्राप्त हुई। उसने देखा कि रक्त ज्वालाओं का रश्मि-चित्र चमकीली रेखाओं से बना है, जिससे सिद्ध हो गया कि ये गरम गैस हैं। यह भी मालूम हुआ कि इनका मुख्य भाग हाइड्रोजन है।



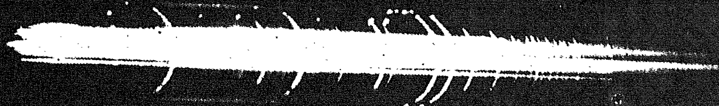
चित्र २१९—दिन में रक्त-ज्वालायें।

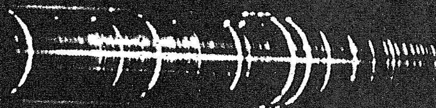
पर्याप्त संख्या में त्रिपार्श्वों का प्रयोग करके और शिगाफ़ को भरपूर खोल देने से दिन में ही रक्त ज्वालायें देखी जा सकती हैं।

जैनसन को ये रेखायें इतनी चमकीली दिखलाई पड़ीं कि उसे एक नई बात सूझी। वह सोचने लगा कि ये रक्त ज्वालायें बिना ग्रहण के भी क्यों नहीं दिखलाई पड़तीं। उसने निश्चय किया कि अवश्य इसका वही कारण है जिससे तारे दिन में नहीं दिखलाई पड़ते। परन्तु दिन के प्रकाश को दूरदर्शक से फैला कर इतना फीका किया जा सकता है कि दिन ही में तारे दिखलाई पड़ने लगते हैं (पृष्ठ १६३ देखिए)। क्या सूर्य की रोशनी किसी युक्ति से इस प्रकार हलकी नहीं की जा सकती कि रक्त-ज्वालाओं का लाल प्रकाश कम न होने पावे और इसलिए वे दिखलाई देने लगें? उसने निश्चय किया कि यह सरल है। यदि कई एक त्रिपार्श्वों के प्रयोग से सूर्य का रश्मि-चित्र बहुत फैला दिया जाय तो स्वभावतः इसकी रोशनी फीकी हो जायगी। परन्तु चमकीली लाल रेखा तो रेखा है। रश्मि-चित्र की लम्बाई दस गुनी हो जाने से रेखा की मोटाई, जो एक ही लहर-लम्बाई की

रश्मियों से बनी रहती है, प्राय: उतनी, ही रह जायगी। इन्हीं विचारों का फल यह हुआ कि वह दूसरे ही दिन बिना ग्रहण के भी इन रेखाओं को देख सका। उधर लॉकियर साहब ने (जिनका नाम राहु राक्षस के सम्बन्ध में पहले आ चुका है) इँगलैंड में घर पर बैठे ही बैठे यही बातें सोच डालीं और रक्त ज्वालाओं के रश्मि चित्र को बिना ग्रहण के ही देखने में समर्थ हुए। गंटूर (मद्रास प्रेसीडेन्सी) से जैनसन का और इँगलैंड से लॉकियर का पत्र पेरिस (Paris) के विज्ञान-परिषद् में साथ ही पहुँचा। इससे इस घटना का स्मारक एक स्वर्ण-पदक बनाया गया जिसमें दोनों व्यक्तियों की मूर्तियाँ थीं।

जैनसन और लॉकियर के आविष्कार से ज्वालाओं की पारी पारी एक एक रेखा देखी जा सकती थी। पीछे एक ज्योतिषी ने बतलाया कि शिगाफ़ को भरपूर खोल देने से ये ज्वालायें समूची की समूची देखी जा सकती हैं (चित्र ३१९)। पाठक को स्मरण होगा कि पतली सी शिगाफ़ इसलिए लगाई जाती है जिसमें रश्मि-चित्र में भिन्न भिन्न रंग एक दूसरे पर चढ़ कर लीपा-पोती न कर दें। परन्तु जहाँ एक ही रेखा की बात है वहाँ तो इसका कुछ भय नहीं रहता। इसलिए शिगाफ़ को खोल कर उसको चौड़ा कर देने से ज्वालायें बिना ग्रहण के ही देखी जा सकती हैं, या उनका फ़ोटोग्राफ़ लिया जा सकता है। इसी प्रकार वर्ण-मंडल का भी, जिसकी बनावट इन ज्वालाओं की सी है और जिसमें से ही ये ज्वालायें निकलती हैं, अध्ययन किया जा सकता है। इस आविष्कार से और पीछे रश्मि-चित्र-सौर-कैमेरा (spectro-heliograph) से, इन ज्वालाओं और वर्ण-मंडल के विषय में बहुत सी बातें सीखी गई हैं। इसलिए अब इनके अध्ययन के लिए ग्रहणों की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती।

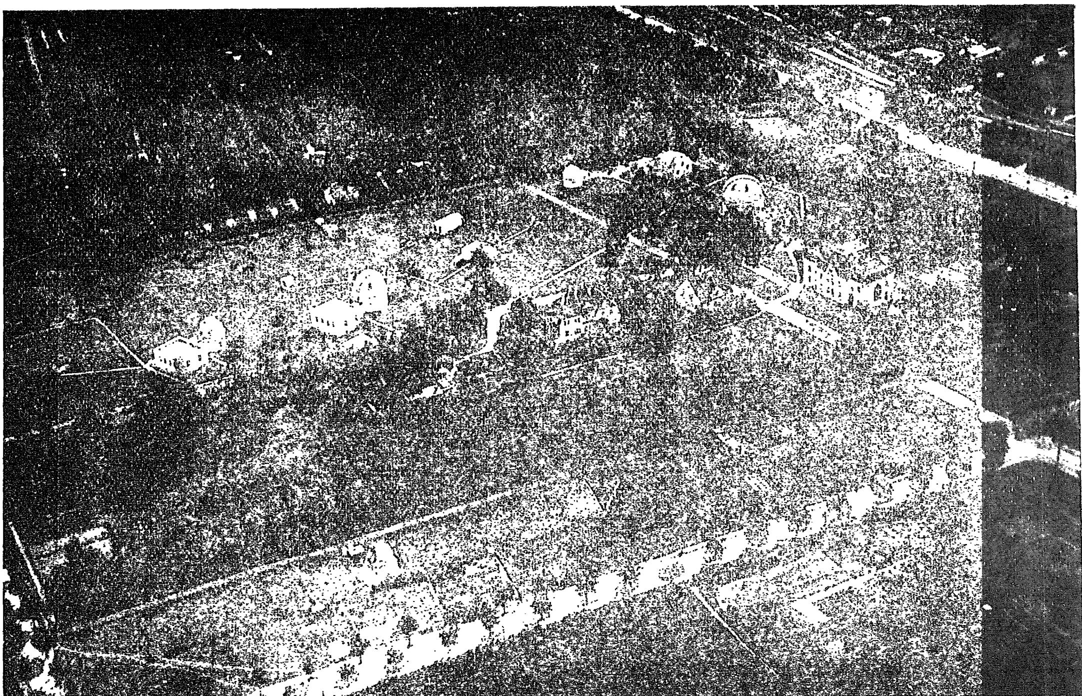




[हामबुर्गर-बेधशाला

चित्र ३२०—झलक-रश्मि-चित्र।

सर्व-सूर्य-ग्रहण, यकमक (लैपलैन्ड), जून १९२७। इन फ़ोटोग्राफ़ों को हामबुर्गर-बेधशाला, जरमनी, की ग्रहण-पार्टी ने लिया था।



[हामबुर्गर-बेधशाला

चित्र ३२१—हामबुर्गर-बेधशाला, जरमनी;

जहाँ से एक दल जून १९२७ के सर्व-सूर्य-ग्रहण के लिए यकमक, लैपलैन्ड, गया था।

इसके बाद कॉरोना की पारी आई। कॉरोना किस पदार्थ से बना है? यह अपने प्रकाश से चमकता है कि प्रकाश-मंडल के प्रकाश से? इत्यादि, प्रश्नों को हल करने के लिए ज्योतिषी अग्रसर हुए। १८६९ के ग्रहण में पता चला कि कॉरोना का रश्मि-चित्र लगातार, परन्तु फीका, है और इसमें एक चमकीली हरी रेखा है।



[हामबुर्गर-बेधशाला

चित्र २२२—हामबुर्गर-बेधशाला, जरमनी, का एक भीतरी दृश्य।

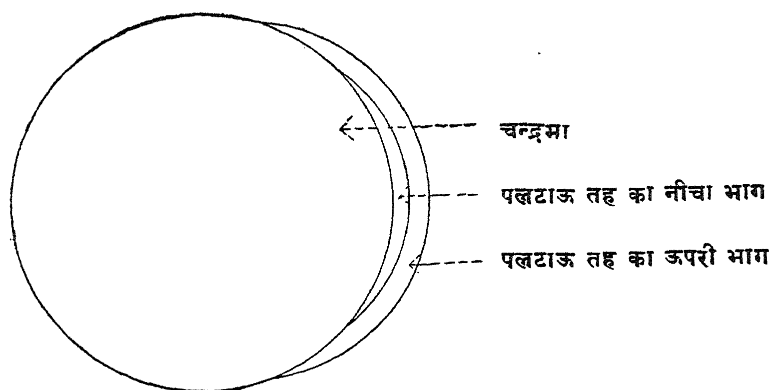
इस स्थान पर बेधशाला से शहर भर में शुद्ध समय भेजने के यन्त्र रक्खे हैं।

उस पदार्थ को, जिसकी यह रेखा है, बहुत खोज की गई, परन्तु कुछ पता न चला कि यह किस पदार्थ के कारण दिखलाई पड़ता है। ज्योतिषियों ने इस अज्ञात पदार्थ का नाम कॉरोनियम (coronium) रख दिया है और आज तक भी इसके विषय में कुछ पता नहीं लग सका है।

१८७० के ग्रहण में अमेरिका के प्रोफ़ेसर यंग (Young) ने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आविष्कार किया। जैसा रश्मि-विश्लेषण के नियमों से प्रत्यक्ष है, यदि सौर-रश्मि-चित्र की काली रेखायें सचमुच "पलटाऊ तह" के कारण होती हैं, तो ग्रहण के समय, जब प्रकाश-मंडल छिप जाता है और केवल पलटाऊ तह ही द्वितीया की चन्द्रमा की भाँति दिखलाई पड़ती है, इससे चमकीली रेखाओंवाला रश्मि-चित्र मिलना चाहिए। इस रश्मि-चित्र को देखने की पहले भी चेष्टा की गई थी, परन्तु सफलता प्राप्त नहीं हुई थी; क्योंकि यह तह पतली है और शिगाफ़ के तनिक भी इधर-उधर रहने से वांच्छित रश्मि-चित्र नहीं मिलता। प्रोफ़ेसर यंग अपनी निपुणता और सौभाग्य से पूर्णतया सफल हुए। इस दृश्य का वर्णन उन्होंने अपनी पुस्तक* में यों किया है—"चन्द्रमा ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है और सूर्य की बची हुई कला को अधिकाधिक पतला करता जाता है, रश्मि-चित्र की काली रेखायें अधिकतर ज्यों की त्यों रह जाती हैं, हाँ ये कुछ अधिक काली हो जाती हैं। परन्तु सर्व-ग्रास लगने के एक दो मिनट पहले इनमें से दो चार मिटने लगती हैं और बाज़ रेखायें ज़रा ज़रा चमकीली मालूम होने लगती हैं। परन्तु ज्यों ही सूर्य छिप जाता है त्यों ही, सारे रश्मि-चित्र भर में, लाल में, हरे में, बैंगनी में, सब जगह, सौ-सौ, हज़ार-हज़ार चमकीली रेखायें चमक उठती हैं, जिससे मनुष्य प्रायः चौंक जाता है; ऐसी अकस्मात् जैसे पटाख़ेदार बाण से चिनगारियाँ निकल पड़ती हैं; और वैसी ही क्षणभंगुर भी, क्योंकि सब कुछ दो ही तीन सेकंड में समाप्त हो जाता है"। इस रश्मि-चित्र का प्रोफ़ेसर यंग ने "झलक-रश्मि-चित्र" (flash spectrum) नाम रक्खा।

* Young, The Sun, p. 83

इस रश्मि-चित्र के दिखलाई पड़ने के समय सूर्य-कला इतनी क्षीण हो जाती है कि शिगाफ़ की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। दूरदर्शक के सामने एक त्रिपार्श्व लगा देने से काम चल जाता है। स्वभावत:, रश्मि-चित्र की रेखायें कला के समान चन्द्राकार होंगी (चित्र ३२०), परन्तु इससे कोई हानि नहीं होती; बल्कि लाभ ही होता है, क्योंकि रश्मि-चित्र में इन चन्द्राकार रेखाओं को



चित्र ३२३—ग्रहण के समय जब "पलटाऊ तह" चन्द्राकार दिखलाई पड़ती है तब उसके ऊँचे भाग ही ख़ूब लम्बे दिखलाई पड़ते हैं।

सूर्य के समीपवाले भाग इतने लम्बे नहीं होते।

लम्बाई की जाँच करने से पता चल जाता है कि वे कौन कौन से पदार्थ हैं जो पलटाऊ तह के ऊँचे (सूर्य से दूरवाले) भागों में पाये जाते हैं, कौन कौन से पदार्थ इसके केवल नीचे भागों ही में पाये जाते हैं, क्योंकि जैसा चित्र ३२३ से स्पष्ट है पलटाऊ तह के ऊँचे भागों की लम्बाई अधिक होती है और इसी लिए रश्मि-चित्र में भी उनकी रेखायें लम्बी दिखलाई पड़ती हैं। इसी प्रकार नीचेवाले भागों के पदार्थों की रेखायें रश्मि-चित्र में छोटी उतरती हैं।

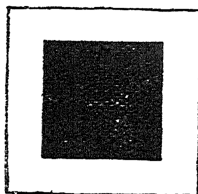
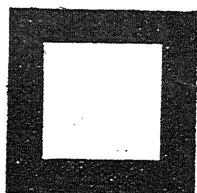
२२ जनवरी १८९८ को भारतवर्ष में फिर सर्व-ग्रहण पड़ा। सबसे बड़ा दल सर नॉरमन लॉकियर को मात-हती में था। ये पश्चिम किनारे पर विजियादुग में ठहरे थे। राहु राक्षसवाली बात इसी ग्रहण के सम्बन्ध में लिखी गई है। प्रोफ़ेसर टरनर (Turner), जिनकी पुस्तक से पहले एक दो अवतरण आ चुके हैं, सहदोल नामक स्थान में थे। नेवाल, जिनका दिया हुआ दूरदर्शक केमब्रिज में अब भी है, फूल-गाँव में और लिक-बेधशाला की पार्टी (चित्र ३१०) जिउर में डेरा डाले हुए थी। आकाश सर्वत्र निर्मल रहा और झलक-रश्मि-चित्र, कॉरोना, इत्यादि, के बहुत अच्छे चित्र आये।

इसके बादवाले ग्रहणों को एक एक करके वर्णन करने की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है। रक्त ज्वाला, कॉरोना, इत्यादि के आधुनिक सिद्धान्त में इन ग्रहणों से सीखी बातें आ जायँगी।

१९१८ वाले ग्रहण में, जिसका रंगीन चित्र दिया गया है, जहाँ चित्रकार बैठा था वहाँ सूर्य हलके बादलों के पीछे था, जैसा चित्र में दिखलाई पड़ता है; परन्तु इस स्थान से थोड़ी दूर पश्चिम जहाँ लिक-बेधशाला से प्रोफ़ेसर कैम्पबेल (Campbell) आये थे "सौभाग्यवश ठीक मौक़े पर और ठीक स्थान पर बादल थोड़ा सा फट गया। बादलों में से सूर्य सर्व-ग्रास के केवल आधे मिनट पहले दिखलाई पड़ने लगा और सर्व-ग्रास बीतने के एक मिनट से कम समय में ही बादलों ने फिर सूर्य को ढक लिया"। कैसा संयोग!

८—बेली मनका और छाया-धारियाँ—बेली मनका क्यों दिखलाई पड़ते हैं और ये हैं क्या? इनका कारण है प्रकाश-प्रसरण (irradiation)। इसके कारण चमकीली चीज़ें बड़ी

दिखलाई पड़ती हैं। चित्र ३०९ में दिखलाये गये काले और सफ़ेद चौखूटों से भी इसका कुछ पता चलता है। सफ़ेद चौखूटा बड़ा है या छोटा ? देखने में सफ़ेद चौखूटा बड़ा जान पड़ता है, परन्तु वस्तुतः दोनों बराबर हैं। किन्तु प्रकाश-प्रसरण का सबसे स्पष्ट पता ख़ूब

चित्र ३२४—दाहिनी हाथवाला सफ़ेद चौखूटा बड़ा है कि बाईं हाथवाला काला ?



[लेखक की "फ़ोटोग्राफ़ी" से

चित्र ३२५— जलने (गरम होने) पर बिजलीबत्ती का तार मोटा प्रतीत होता है।

यद्यपि यह प्रायः पहले ही सा रह जाता है, जैसा काले शीशेद्वारा देखने से प्रमाणित किया जा सकता है।

चमकीली वस्तुओं को देखने से लगता है। उदाहरणार्थ, बिजली-बत्ती का तार वस्तुतः बहुत पतला होता है, परन्तु जलने (गरम होने) पर वह बहुत मोटा जान पड़ता है (चित्र ३२५), यद्यपि यह प्रायः पहले ही सा रह जाता है, जैसा काले शीशे द्वारा देखने से प्रमाणित किया जा सकता है।

चन्द्रमा का किनारा पहाड़-पहाड़ियों की वजह से चिकना के बदले टूटा फूटा या दाँतीदार दिखलाई पड़ता है (रङ्गीन चित्र देखिए)। इसी से सूर्य की क्षीण कला कई टुकड़ों में टूट जाती है। अत्यन्त प्रकाश-मय होने के कारण ये अपने

असल आकार से बड़े और गोलाकार मनका की तरह दिखलाई पड़ते हैं। यही बेली मनकों की उत्पत्ति है।

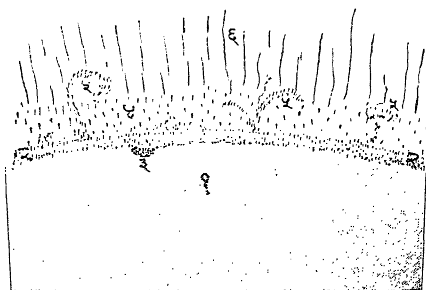
ग्रहण के समय, सर्व-ग्रास के आरम्भ होने के दो चार मिनट पहले, लहर के समान और झिलमिल करती हुई, परछाईं की धारियाँ दिखलाई पड़ती हैं। ये धारियाँ वायु-मंडल में भिन्न भिन्न घनत्व की धाराएँ रहने के कारण पड़ती हैं। प्रतिदिन ये नहीं दिखलाई पड़तीं, क्योंकि सूर्य के बिम्ब के बड़े होने से ये परछाइयाँ एक दूसरे पर चढ़ कर मिट जाती हैं; परन्तु ग्रहण के समय सूर्य पतला दिखलाई पड़ता है और इसलिए ये परछाइयाँ मिटने नहीं पातीं। मिट्टी के तेलवाली लालटेन को तेज़ और मन्द करके बेड़ी स्थिति में रक्खे हुए तार की परछाईं देखने से पता चल जायगा कि यह कारण सच है।



अध्याय ९

सूर्य की बनावट

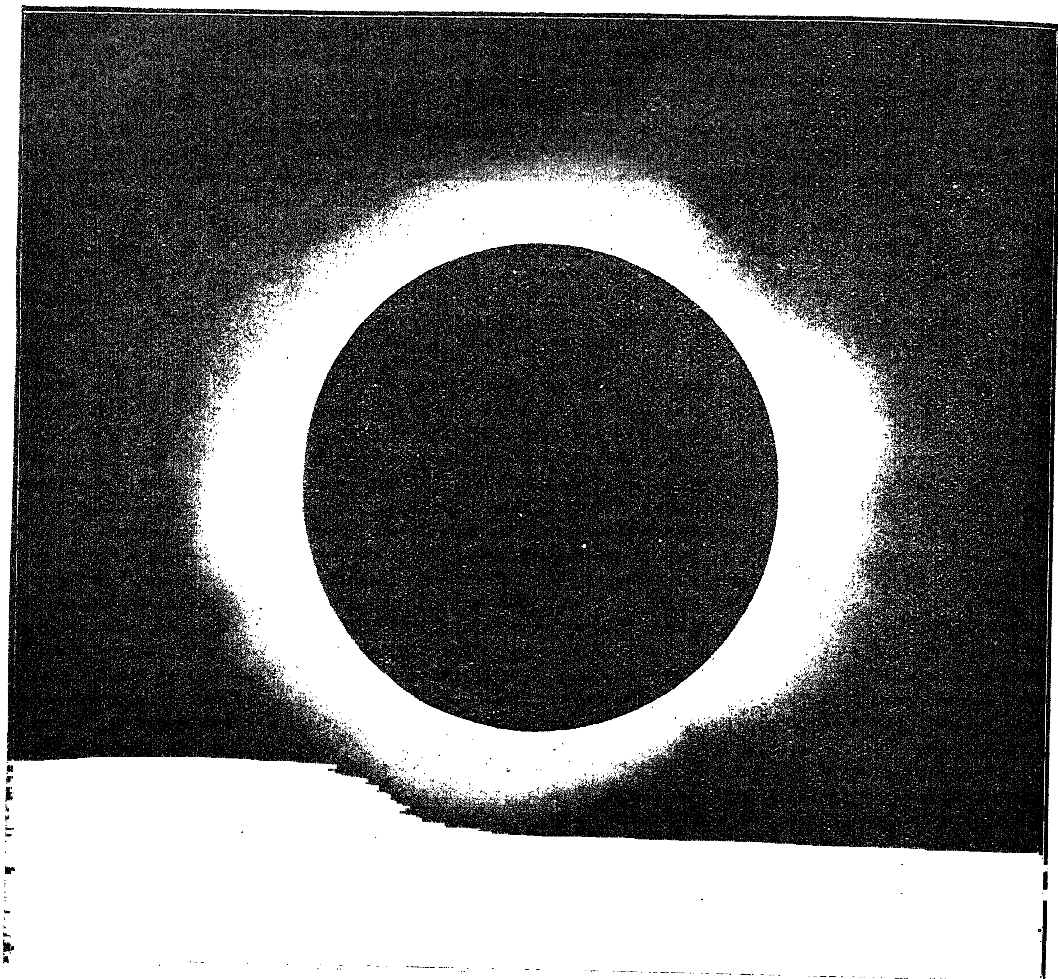
१—सूर्य की बनावट—पिछले अध्याय से स्पष्ट है कि सूर्य का जो भाग हमको प्रतिदिन दिखलाई पड़ता है और जो प्रकाश-मंडल कहलाता है अत्यन्त गर्म और दबी हुई गैसों से बना है। इसके भीतर देखने का कोई उपाय नहीं है; परन्तु इसकी ऊपरी सतह की पूरी जाँच की गई है। इसी पर सूर्य-कलंक दिखलाई पड़ते हैं। प्रकाश-मंडल देखने में ठीक गोल जान पड़ता है और इसका किनारा चिकना जान पड़ता है जिससे अनुमान होता है कि सूर्य पर गड्ढे नहीं हैं; परन्तु यह इतनी दूर है कि वहाँ के सौ दो सौ मील के गड्ढे हमको दिखलाई न पड़ेंगे।



चित्र ३२६—सूर्य की भीतरी बनावट का कल्पित चित्र।

यदि सूर्य को काट कर दो फाँक कर दिया जाय तो क्या दिखलाई पड़ेगा। १—प्रकाश-मंडल; २—पलटाऊ तह; ३—सूर्य-कलंक; ४—वर्ण-मंडल; ५—सूर्योन्नत या रक्त ज्वालायें; ६—कॉरोना।

प्रकाश-मंडल के ऊपर गैसों की एक तह है जो इतनी गरम नहीं है। इसको पलटाऊ तह कहते हैं (चित्र ३२६); और, जैसा चन्द्रमा की गति और इस बात से कि झलक-रश्मि-चित्र दो ही तीन सेकंड तक दिखलाई पड़ता है पता चलता है, इसकी ऊँचाई



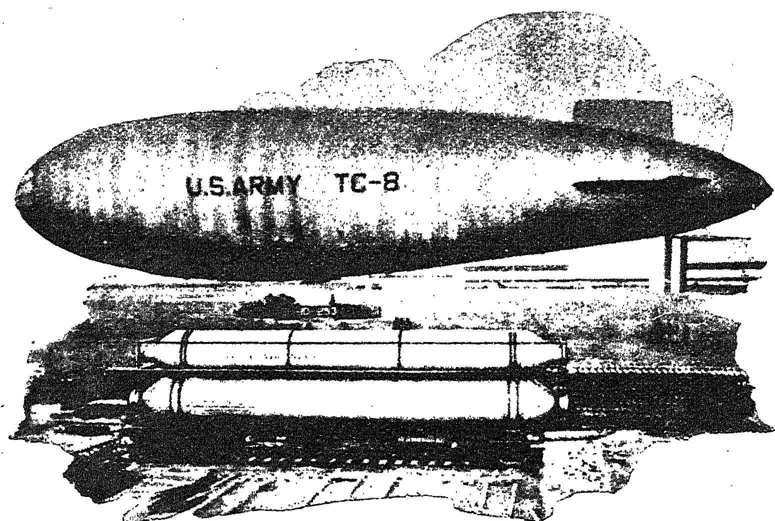
[हामबुर्गर-वेधशाला

चित्र २२७—कॉरोना।

प्रत्येक सर्व-ग्रहण में कॉरोना का अध्ययन किया जाता है। इसके लिए फ़ोटोग्राफ़ी बहुत सहायता देती है; परन्तु फ़ोटोग्राफ़ी के प्रयोग के लिए अभी कुल एक घंटा समय मिला है और इतने ही में लाखों रुपया व्यय कर दिया गया है, तो भी कॉरोना का भेद अभी तक नहीं खुला है।

५०० और १,००० मील के बीच में है। इस तह में पृथ्वी पर पाये जानेवाले बहुत से पदार्थ हैं।

पलटाऊ तह के बाहर दस पाँच हज़ार मील गहरा एक तह गैसों की है जो सर्व-ग्रहण के समय चटक लाल रङ्ग की झालर की सदृश



[पापुलर सायंस से

चित्र ३२८—हीलियम।

इसका आविष्कार पहले सूर्य में हुआ था, और अब यह हवाई जहाज़ों के भरने में काम आता है।

दिखलाई पड़ती है। अपने चटक रङ्ग के कारण यह "वर्ण-मंडल" कहलाती है। ग्रहण के समय इसकी ऊपरी सतह से लाल रङ्ग की ज्वालाएँ लपकती हुई दिखलाई पड़ती हैं। ये ज्वालाएँ सूर्योन्नत ज्वालाएँ (protuberances) कहलाती हैं।

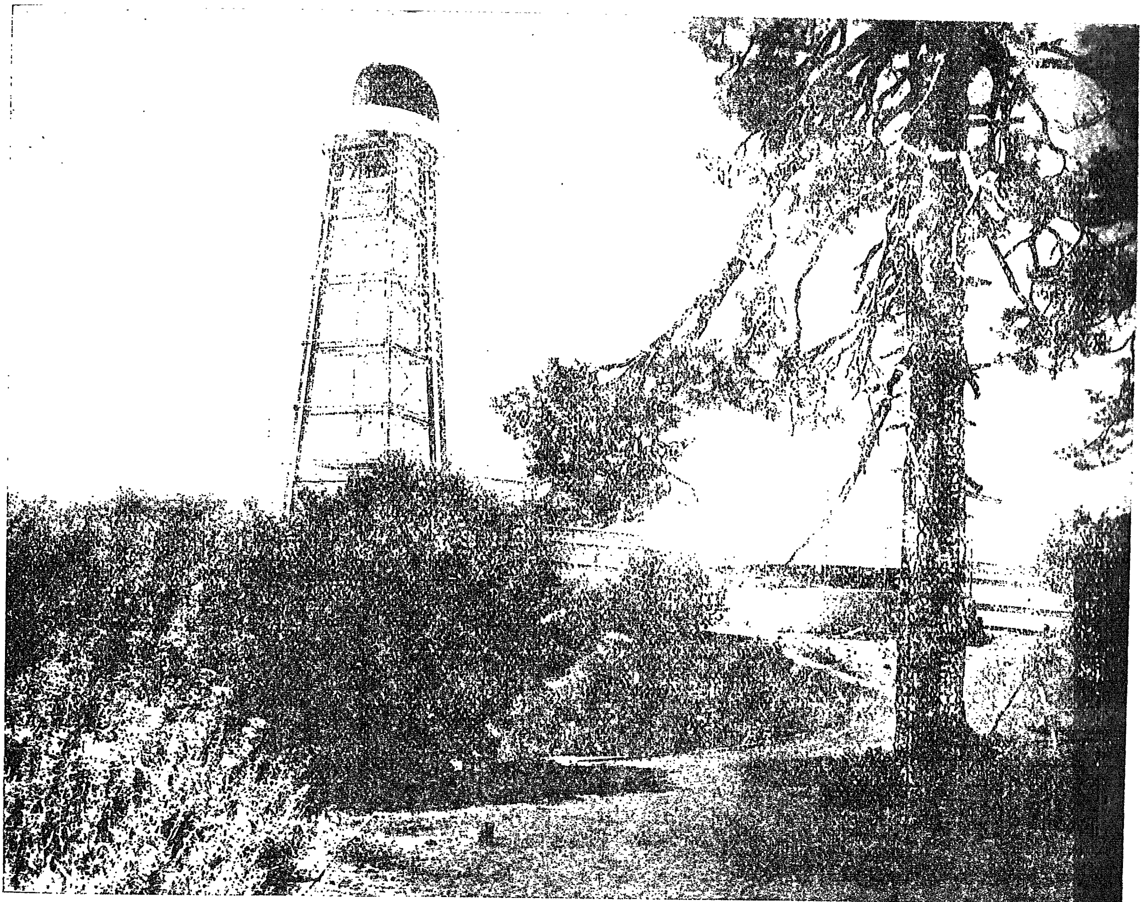
सबके ऊपर सूर्य का कॉरोना या मुकुट है जो अनियमित आकार का होता है और सूर्य की ऊपरी सतह से बीस पचीस

लाख मील ऊपर तक दिखलाई पड़ता है और क्रमशः काले आकाश में मिट जाता है।

सर्व-ग्रहण में वर्णमंडल और कॉरोना से लगभग सप्तमी की चाँदनी इतना प्रकाश रहता है।

२—हीलियम—१८६८ वाले भारतीय ग्रहण में जैनसन ने देखा था कि सूर्योन्नत ज्वाला के रश्मि-चित्र में एक चटक पीली रेखा है जो पृथ्वी पर के ज्ञात पदार्थों में से किसी के कारण नहीं उत्पन्न हो सकती। ज्योतिषियों ने उस अज्ञात पदार्थ का, जिसके कारण शायद रेखा दिखलाई पड़ती थी, हीलियम (Helium) नाम रक्खा, क्योंकि ग्रीक में हीलियस का अर्थ है सूर्य। इस ग्रहण के सत्ताइस वर्ष बाद प्रसिद्ध रसायनज्ञ रैमज़े (Ramsay) ने उस खनिज पदार्थ में जिसमें यूरेनियम मिलता है रश्मि-विश्लेषक यंत्र की ही सहायता से हीलियम का पता पाया। पीछे हीलियम और रेडियम का सम्बन्ध मालूम हुआ (पृष्ठ २४८)। यूरोपियन महायुद्ध के अन्तिम वर्ष में पता लगा कि यह गैस अमेरिका के बाज़ बाज़ कुओं में से बहुतायत से निकलती है। यह अत्यन्त हलकी होती है और किसी प्रकार इसमें आग नहीं लगाई जा सकती।

यूरोपियन युद्ध में जरमनी के विशालकाय, गैस से भरे, ज़ेपलिन (Zepplin) नामक हवाई जहाज़ों के मारे लन्डनवासियों की नाकों दम हो गया था। डर के मारे रात्रि के समय कहीं भी बाहर प्रकाश न जलाया जाता था और जब ज़ेपलिनों से बम के गोले गिरने लगते थे तब लोग सुरङ्गों में घुस जाते थे। परन्तु इन ज़ेपलिनों में एक भारी दोष था। शत्रु की एक भी पटाखेदार गोली लग जाने से इसमें भरा हुआ हाइड्रोजन गैस जल उठता था और ज़ेपलिन क्षण भर में भस्म होकर नीचे गिर पड़ता था।



[माउन्ट विलसन

चित्र ३२९—माउन्ट विलसन का छोटा अट्टालिका-दूरदर्शक ।

सूर्य की फ़ोटोग्राफ़ी में इसका उपयोग किया जाता है ।

इधर जब अमरीका युद्ध में शामिल हुआ तब उसने हीलियम को ही हवाई जहाज़ों में भरना आरम्भ किया, जिससे हवाई जहाज़ और भी शक्तिशाली अस्त्र हो गये। सूर्य में इसके पहले-पहल पता लगने को अभी ५० वर्ष भी नहीं हुआ था और इसका इस प्रकार उपयोग होने लगा! कौन पहले बतला सकता था कि सूर्य के अध्ययन से एक लाभ यह भी होगा!

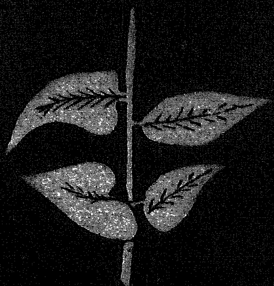
३—रश्मि-चित्र-सौर-कैमेरा—१८९० में, अमेरिका के हेल (Hale) और फ्रांस के डेलान्डर्स (Deslandres) ने सूर्य का चित्र एक रंग की रश्मियों से लेने के लिए एक विशेष प्रकार का कैमेरा बनाया, जिससे लिये गये चित्र हमको बहुत सी बातें सिखलाती हैं। इसका सिद्धान्त सुगमता से यों समझा जा सकता है:—

लाल शीशे द्वारा देखने से केवल वे ही वस्तुएँ हमें दिखलाई पड़ती हैं जिनसे लाल प्रकाश भी कुछ आता है। इसी प्रकार हरे शीशे से देखने पर हमको केवल वे ही वस्तुएँ दिखलाई पड़ती हैं जिनसे हरा प्रकाश भी कुछ आता है। ऐसी वस्तुएँ जिनसे कुछ भी हरा प्रकाश नहीं आता काली लगेंगी। उदाहरण के लिए, यहाँ दिये गये रंगीन चित्र को शुद्ध लाल शीशे से देखने पर केवल लाल फूल ही दिखलाई पड़ेगा और इसी को हरे शीशे से देखने पर केवल हरी पत्तियाँ ही दिखलाई पड़ेंगी।

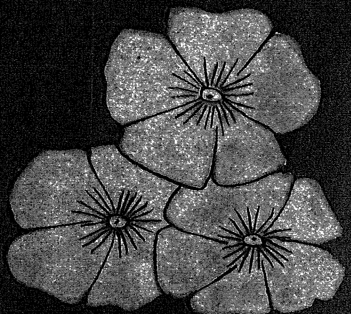
यदि यही कार्य-क्रम सूर्य के साथ भी उपयोग किया जाय और सूर्य को ऐसे शीशे द्वारा देखा जाय जिससे केवल लाल प्रकाश ही आता हो तो हमको सूर्य पर की वे ही वस्तुएँ दिखलाई पड़ेंगी जिनसे लाल प्रकाश निकलता है, जैसे कि सूर्योन्नत-ज्वालायें, परन्तु कठिनाई यह है कि अभी तक कोई भी ऐसा शीशा नहीं बन सका है जिससे केवल एक रंग का (अर्थात् केवल एक लहर-



फूल और पत्ती



वही, हरे शीशे-द्वारा

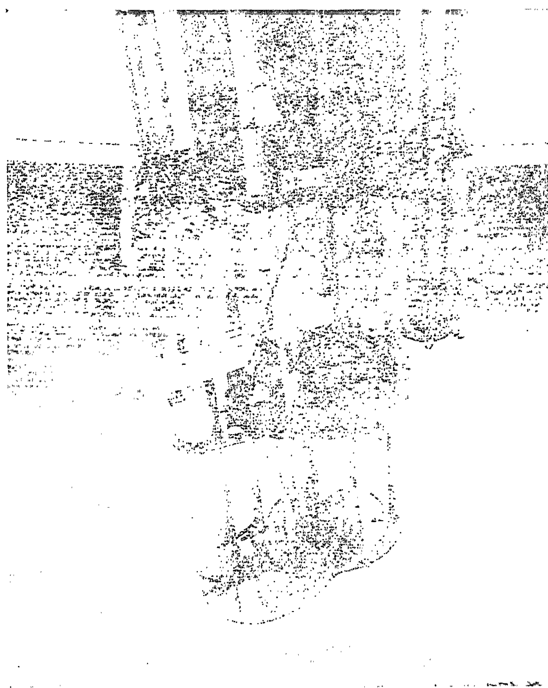


वही, लाल शीशे-द्वारा

लाल शीशे द्वारा-हरा नहीं दिखलाई पड़ता; हरे शीशे-द्वारा लाल नहीं दिखलाई पड़ता। इस सिद्धान्त के बल पर एक ऐसा यंत्र बनाया जाता है जिससे सूर्य में कहाँ कहाँ पर कैलसियम या हाइड्रोजन है यह जाना जा सकता है।

पृ० ३७०

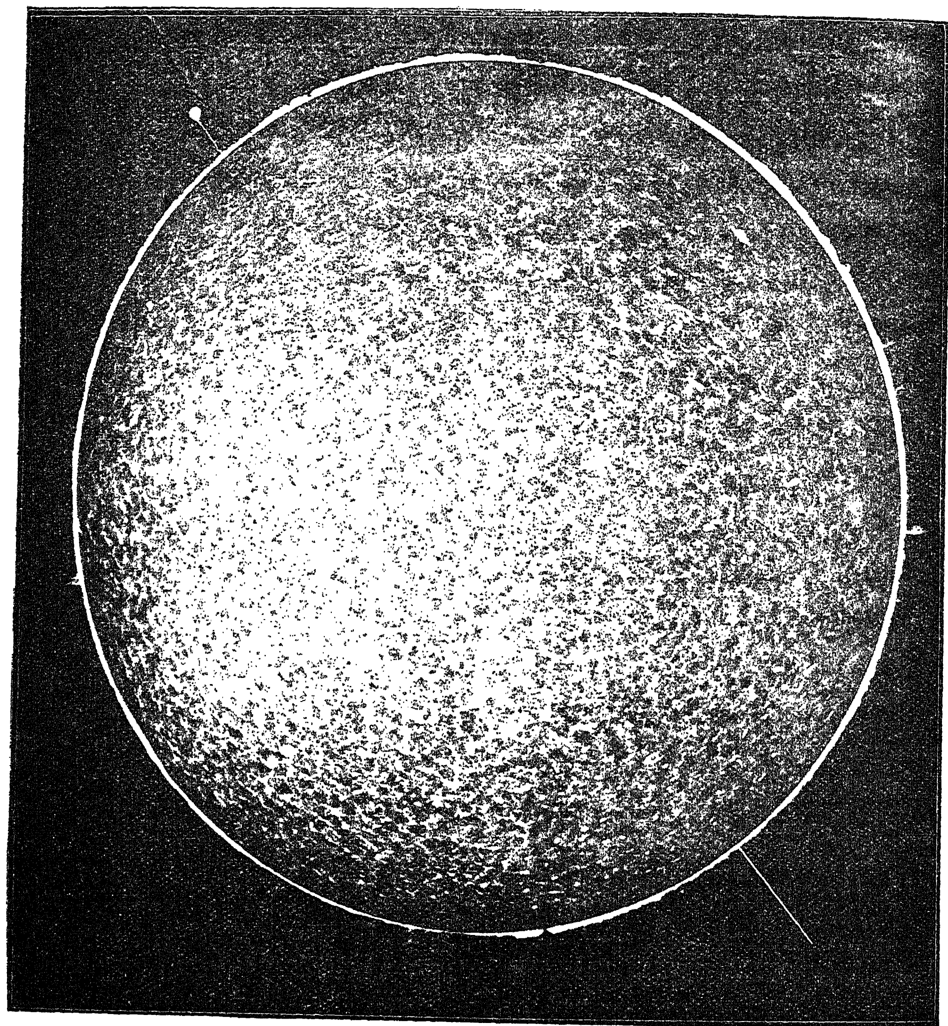
लम्बाई का, पृष्ठ ३०२ देखिए) प्रकाश निकले। सभी लाल शीशों में से लाल, और प्राय: लाल, और शायद थोड़ा सा नारंगी रंग का भी प्रकाश पार हो जायगा।



[यरकिज़-वेधशाला

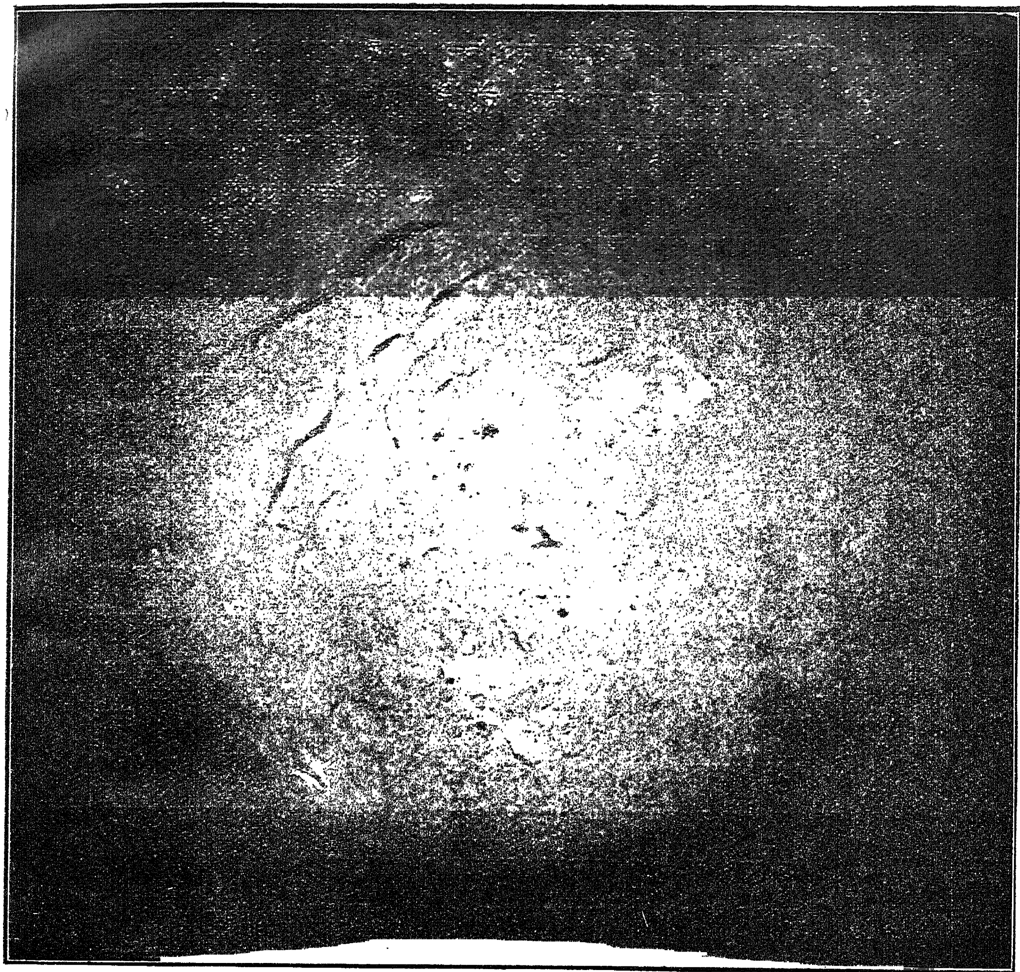
चित्र २३०—रश्मि-चित्र-सौर-कैमेरे के साथ यरकिज़ का ४० इंचवाला प्रसिद्ध दूरदर्शक।

इस कठिनाई को हेल और डेलैन्डर्स के रश्मि-चित्र-सौर-कैमेरे में बड़ी सफ़ाई से मिटा दिया गया है। रश्मि-चित्र को फ़ोटो के प्लेट पर समूचा नहीं पड़ने देते। प्लेट के सामने एक अपारदर्शक परदा लगा देते हैं जिसमें एक लम्बा, परन्तु बहुत



[एवरशेड

चित्र २२१—कैलसियम के प्रकाश से लिये गये फ़ोटोग्राफ़ में कैलसियम के बादल कहाँ कहाँ और किस आकार के हैं यह दिखलाई पड़ता है ।



[एवरशेड

चित्र २३२—हाइड्रोजन के बादल।

हाइड्रोजन के प्रकाश से लिये गये फ़ोटोग्राफ़ में हाइड्रोजन के बादल कहाँ कहाँ और किस आकार के हैं यह दिखलाई पड़ता है।

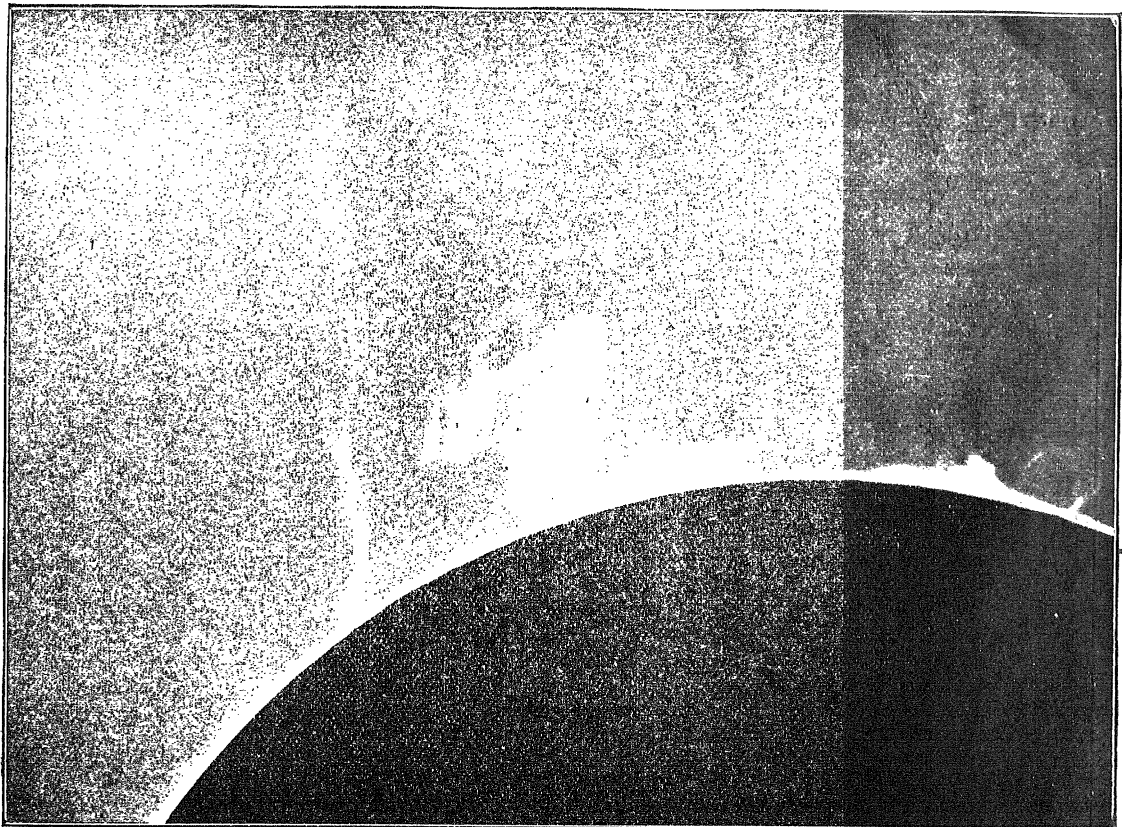
सँकरा शिगाफ़ कटा रहता है। जिस रंग के प्रकाश से फ़ोटोग्राफ़ खींचना रहता है सौर-रश्मि-चित्र के उसी रंग को इस शिगाफ़ में घुस कर प्लेट तक पहुँचने देते हैं। यदि प्लेट और शिगाफ़-युक्त परदा स्थायी रहें तो स्पष्ट है कि प्लेट पर पूरे सूर्य का चित्र नहीं उतरेगा; केवल इसकी एक सँकरी धज्जी का चित्र उतरेगा, जिसकी चौड़ाई शिगाफ़ की चौड़ाई के बराबर होगी।

परन्तु यदि सूर्य की मूर्ति को आगे बढ़ने दिया जाय और साथ ही उसी वेग से प्लेट को भी आगे बढ़ाया जाय तो स्पष्ट है कि सूर्य का समूचा चित्र प्लेट पर उतर आयेगा और हमारा यह अभिप्राय कि सूर्य का फ़ोटोग्राफ़ केवल एक रङ्ग के प्रकाश से लिया जाय सिद्ध हो जायगा। इसी को रश्मि-चित्र-सौर-कैमेरा कहते हैं। चित्र ३३० में इस प्रकार का एक यंत्र यरकिज़ के प्रसिद्ध ४० इंच-वाले दूरदर्शक में लगा हुआ दिखलाया गया है। परन्तु इस प्रकार का सबसे बड़ा कैमेरा स्थायी दूरदर्शक से ही बन सकता है। हेल ने १५० फ़ुटवाले अट्टालिका-दूरदर्शक में ७५ फ़ुट का रश्मि-विश्लेषक यंत्र जोड़ कर एक बृहत्काय यन्त्र तैयार किया है, जिससे उसके सब आविष्कार हुए हैं (चित्र १२२)।

इस यंत्र से कैलसियम के प्रकाश से लिया गया एक फ़ोटो-ग्राफ़ चित्र ३३१ में और हाइड्रोजन के प्रकाश में लिया गया फ़ोटो चित्र ३३२ में दिखलाया गया है। प्रकाश-मंडल की मूर्त्ति को अपारदर्शक परदे से ढक देने से सूर्य के चारों ओर सूर्योन्नत-ज्वालाओं का चित्र भी इस यंत्र से सुगमता से लिया जा सकता है (चित्र ३३३)। *

---

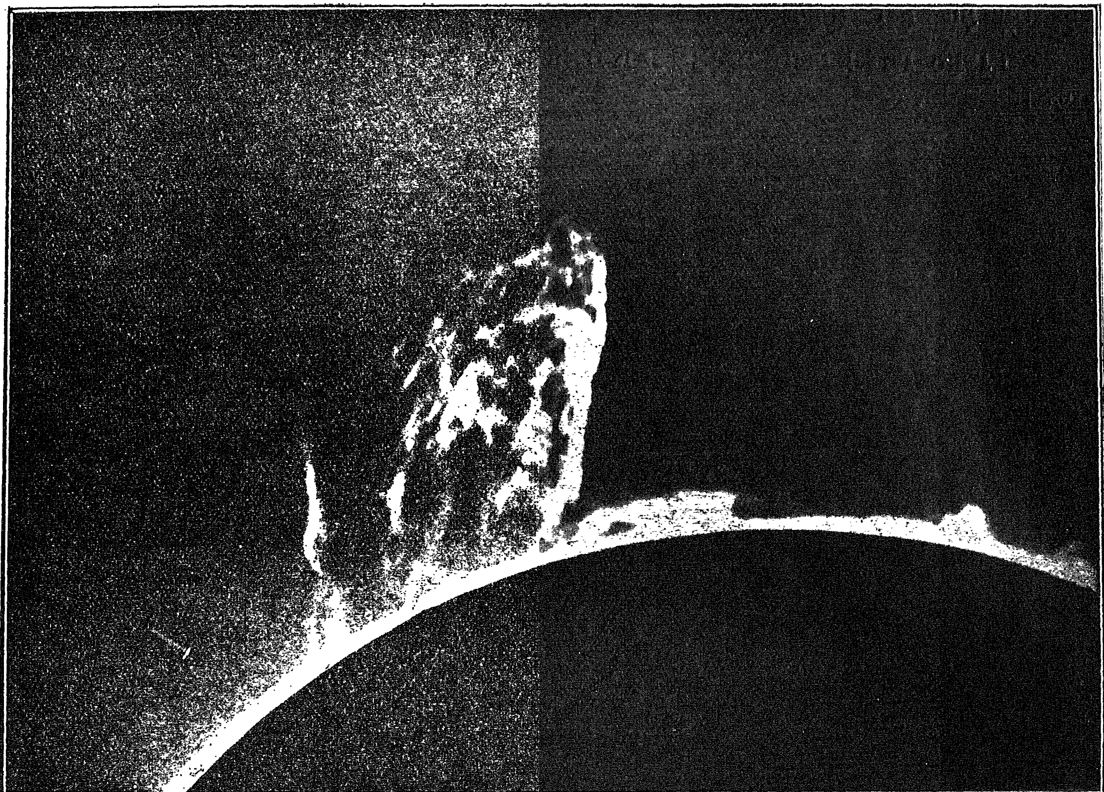
* इनों चित्र में जो कई एक हलकी समानान्तर रेखायें दिखलाई पड़ती हैं वे यंत्र की गति में त्रुटियों के कारण पड़ जाती हैं; सूर्य से उनका कोई सरोकार नहीं है।



[एवरशेड

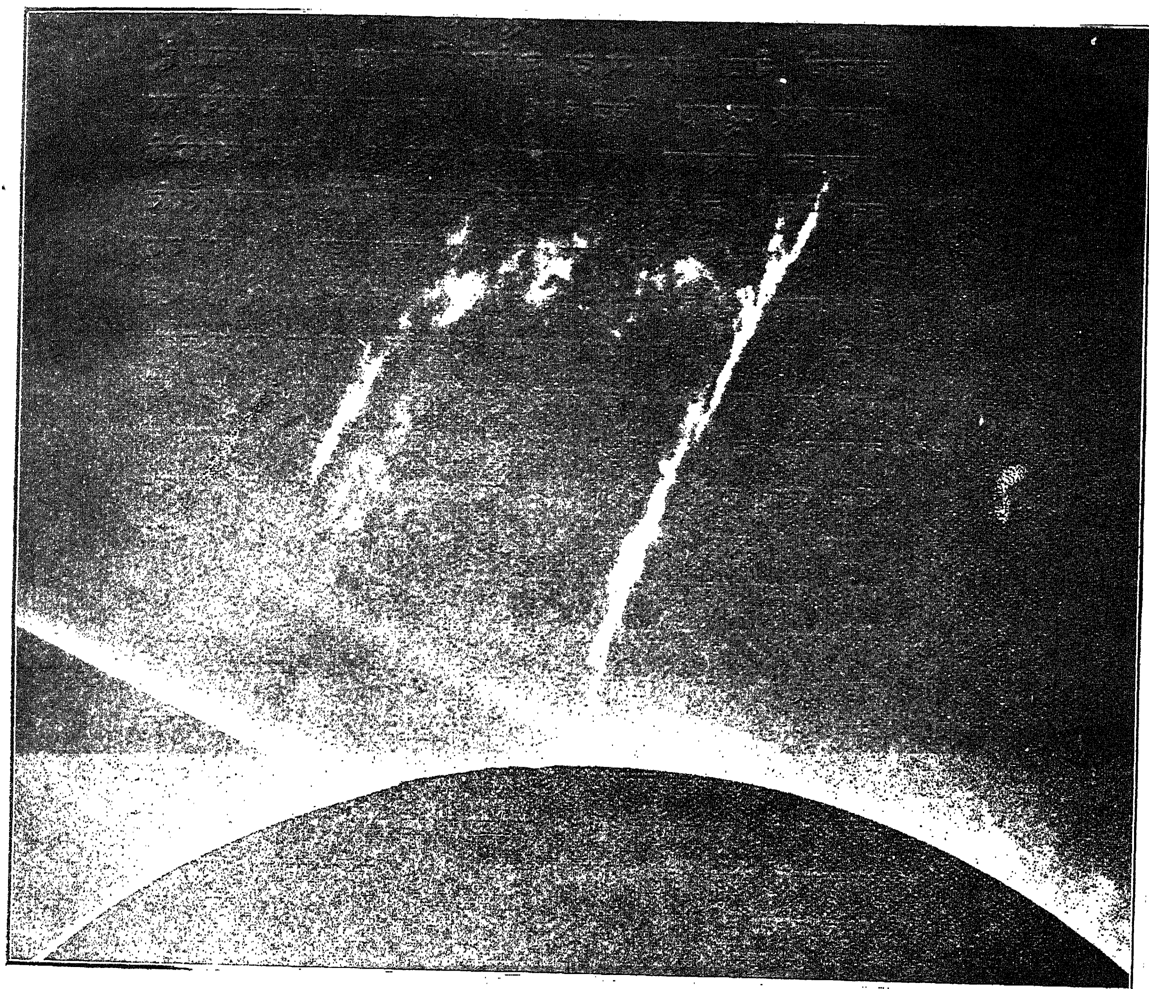
चित्र ३३३—रश्मि-चित्र-सौर-कैमेरे से लिया गया सूर्योन्नत-ज्वालाओं का फ़ोटो।

आगे इसी ज्वाला के दो फ़ोटोग्राफ़, जो यथाक्रम १५ और ३० मिनट बाद लिये गये थे, दिये जाते हैं। इनको देखने से आप समझ सकते हैं कि ये ज्वालायें किस भयानक वेग से उठती हैं। इन चित्रों के पैमाने पर पृथ्वी केवल सरसों के बराबर होगी!



[एवरशेड

चित्र ३३४—वही सूर्योन्नत-ज्वाला १५ मिनट बाद।



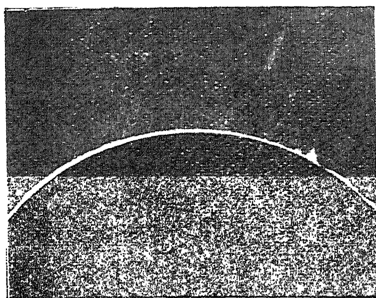
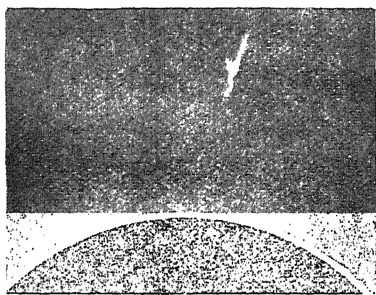
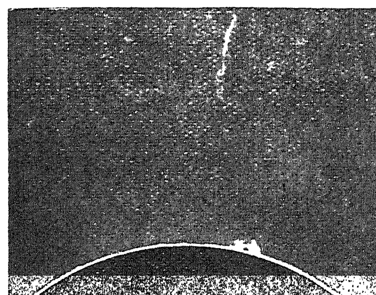
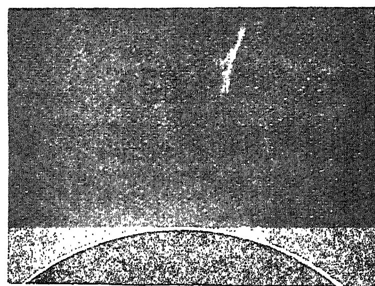
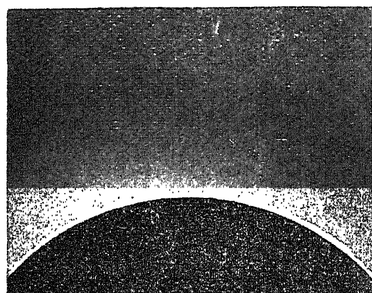
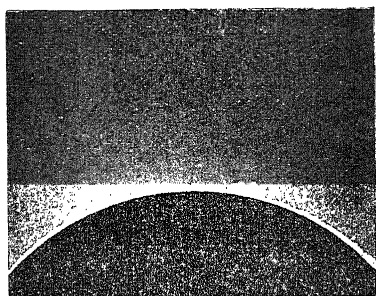
[डाक्टर रॉयड्स

चित्र ३३५—वही सूर्योन्नत-ज्वाला, ३० मिनट बाद।

इस ज्वाला के कुछ भाग ५ लाख मील दूर तक पहुँच गये और वे २८० मील प्रति सेकंड के वेग से चलते दिखलाई पड़े।

४—शान्त और उद्गारी ज्वालायें—सूर्योन्नत ज्वालायें मोटी तौर पर दो जातियों में अलग की जा सकती हैं, शान्त और उद्गारी (चित्र ३३६)। शान्त ज्वालाओं में अधिकतर हाइड्रोजन हीलियम और कैलसियम रहता है। ये इतने चमकीले नहीं होते जितनी उद्गारी ज्वालायें। इसके अतिरिक्त उनकी स्थिति और आकार में बहुत ही धीरे धीरे अन्तर पड़ता है। जब तक वे दिखलाई देते हैं वे प्रायः एक ही रूप के रहते हैं। सूर्य के घूमने से वे इसके पीछे जाकर छिप जाते हैं; परन्तु सूर्य के आधा चक्कर लगा लेने पर जब बाज़ बाज़ दूसरी ओर निकलते हैं, तब भी वे पहचाने जा सकते हैं। सौर-वायु-मंडल में बादल के समान ये जान पड़ते होंगे। वैज्ञानिकों का मत है कि ये शायद प्रकाश के दबाव के कारण (पृष्ठ ३०२ देखिए) गिरने नहीं पाते। उद्गारी ज्वालाओं का उनके प्रतिकूल ही स्वभाव होता है। ये साधारणतः जीवित सूर्य-कलंकों के सम्बन्ध में ही दिखलाई पड़ते हैं। इनमें हाइड्रोजन, हीलियम, और कैलसियम के अतिरिक्त लोहा, मैगनीशियम, सोडियम, इत्यादि भी रहते हैं। ये ज्वालायें कलंकों में से नहीं, उनसे सटे हुए बाहर के भाग से, निकलती हैं। ये शान्त ज्वालाओं की अपेक्षा बहुत अधिक चमकीली होती हैं। कभी कभी ये ५ लाख मील तक ऊपर पहुँच जाती हैं।

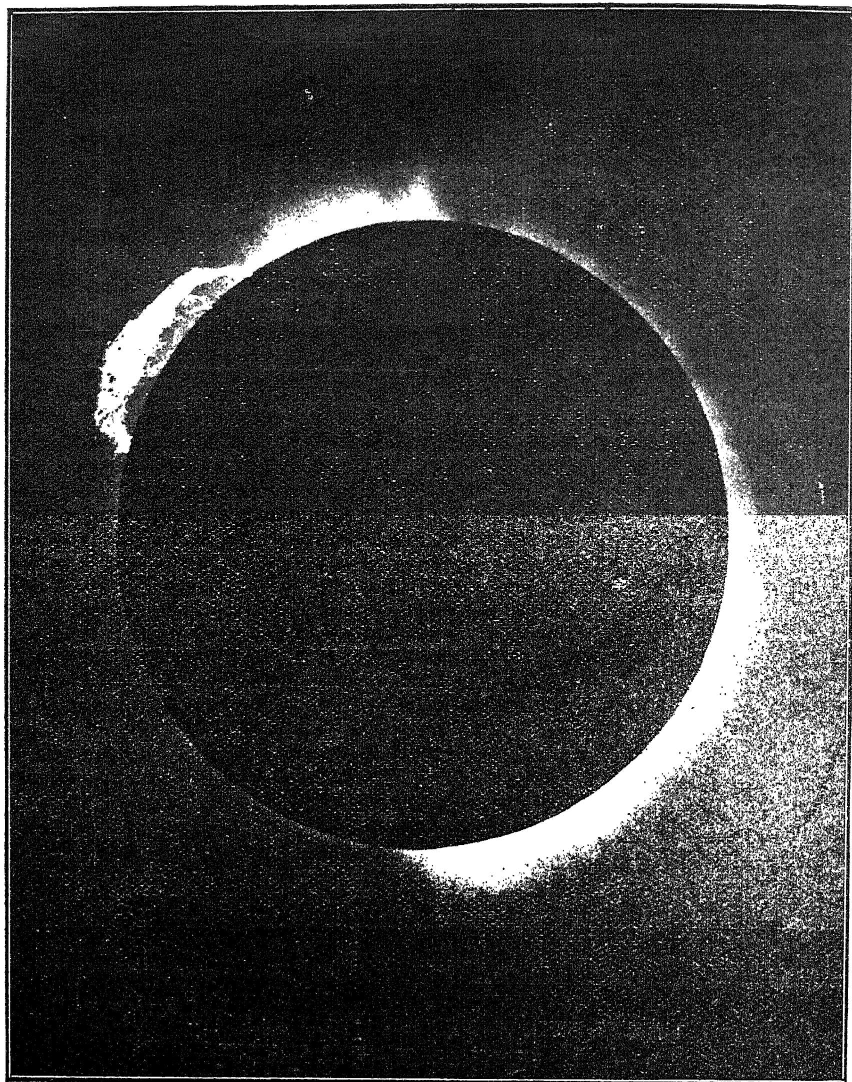
५—रश्मि-चित्र-सौर-कैमेरों से क्या सीखा गया है— जब सूर्य का फ़ोटोग्राफ़ सौर-रश्मि-चित्र के चमकीले भाग के किसी भी रंग की रश्मियों से लिया जाता है तब चित्र वैसा ही उतरता है जैसे श्वेत प्रकाश से लिया गया साधारण फ़ोटोग्राफ़। परन्तु जब किसी फ्राउनहोफ़र रेखावाले प्रकाश से चित्र लिया जाता है, विशेषकर कैलसियम या हाइड्रोजन से उत्पन्न हुई काली रेखा

[कोदईकैनाल

चित्र २३६—एक उद्गारी ज्वाला के ६ फ़ोटोग्राफ़ ।

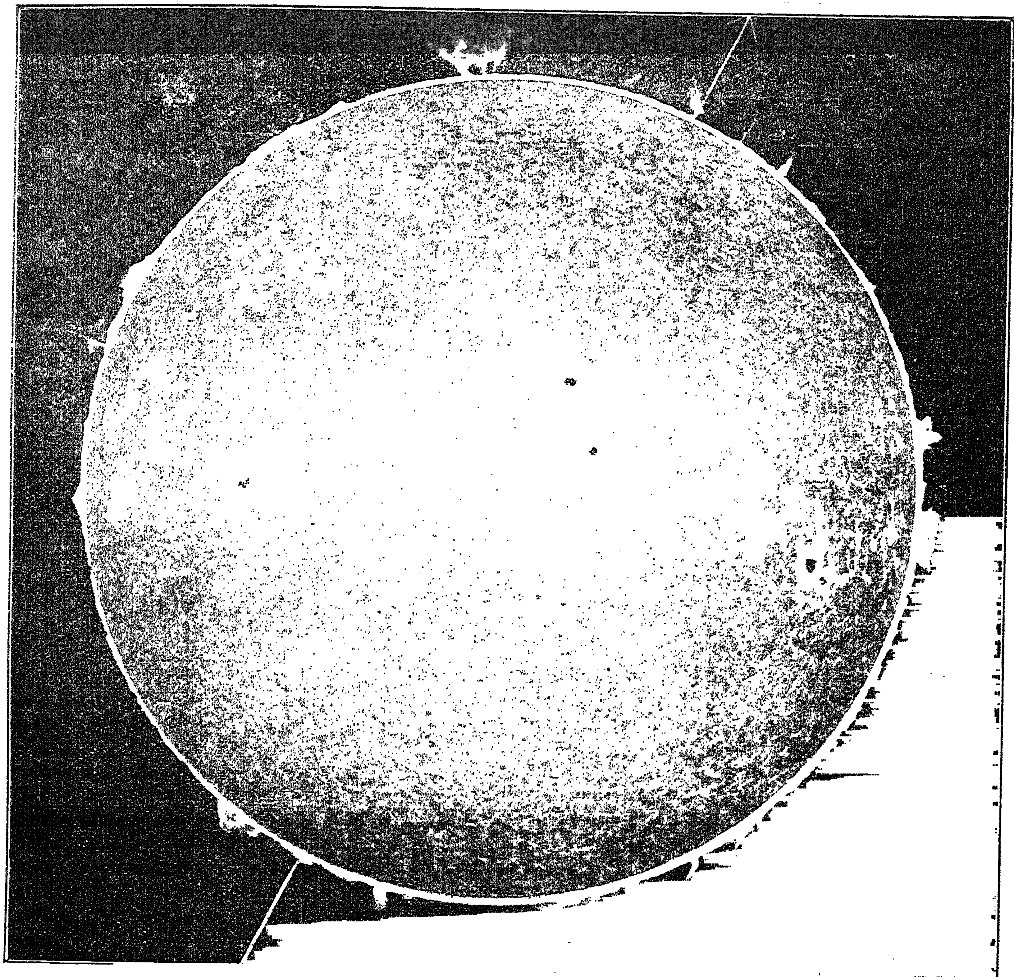
अन्तिम ज्वाला का ऊपरी सिरा सूर्य के छोर से साढ़े पाँच लाख मील ऊपर पहुँच गया है। सूर्य के किनारे पर एक शान्त ज्वाला है जो आदि से अन्त तक प्रायः एक सी रह गई है। अन्तिम चित्र प्रथम के केवल सवा घंटे बाद लिया गया था।



[क्रॉमलिन

चित्र २२७—असाधारण बड़ी सूर्योन्नत-ज्वाला।

इस चित्र के पैमाने पर पृथ्वी राई से भी छोटी होगी। इस बात से पाठक इस ज्वाला के आकार का कुछ अनुमान कर सकते हैं।



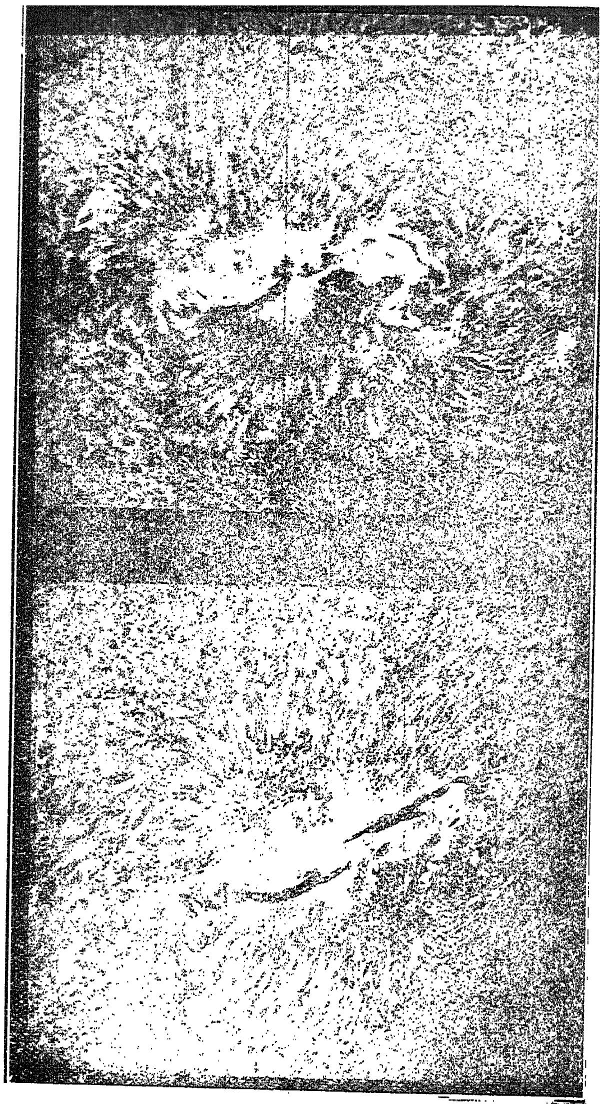
[एवरशेड

चित्र २३८—कैलसियम-बादल।

कैलसियम प्रकाश से लिया गया फ़ोटो किसी फ्राउनहोफ़र रेखा से लिये गये फ़ोटोग्राफ़ से बिलकुल भिन्न होता है। यह चित्र कैलसियम धातु की एक रेखा से लिया गया था।

के प्रकाश से, तब इन चित्रों का स्वरूप ही दूसरा हो जाता है (चित्र ३० की तुलना चित्र ३३८ से कीजिए)। जैसा हम देख चुके हैं फ्राउनहोफ़र रेखायें रश्मि-चित्र के अन्य अत्यन्त प्रकाशमय भागों के सामने काली मालूम पड़ती हैं, परन्तु वे हैं वस्तुत: बहुत चमकीली। इसलिए उनके प्रकाश से फ़ोटोग्राफ़ लेना सरल है। कैलसियम और हाइड्रोजन इन दोनों के चित्रों में बादल दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु कई बातों से पता चलता है कि हाइड्रोजन के बादल बहुत ऊँचे पर बनते हैं। हाइड्रोजन के बादलों में यह विचित्रता है कि उनकी शकल (फ़ोटोग्राफ़ों में ये बादल काले काले दिखलाई पड़ते हैं) धनुषाकार होती है, जिससे भँवर या बवंडर का ख़्याल होता है (चित्र ३३९-३४०)। यही बात इससे भी मालूम होती है कि ये बादल सूर्य-कलंक के चारों ओर घूमते हुए दिखलाई पड़ते हैं और काफ़ी नज़दीक होने से उन्हें सूर्य-कलंक चूस भी लेता है। सूर्य-कलंक स्वयं पहले भी घूमते हुए देखे गये थे। तब समझा जाता था कि यह अत्यन्त असाधारण घटना है, परन्तु रश्मि-चित्र-सौर-कैमेरे के आविष्कार के बाद यह घटना असाधारण नहीं जान पड़ती।

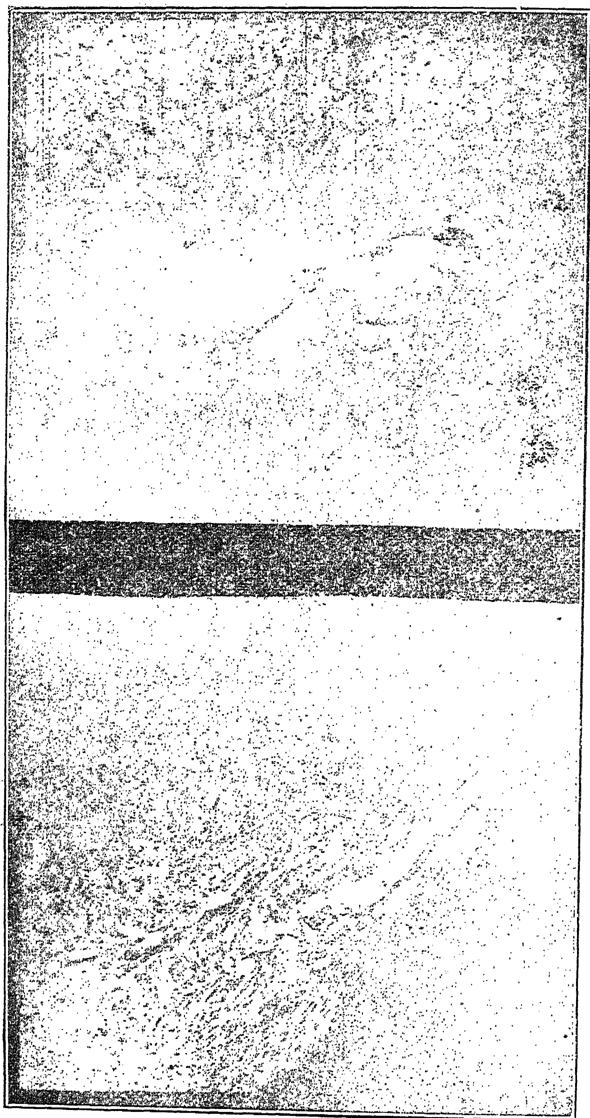
९—**चुम्बकत्व**—सभी जानते हैं कि चुम्बक लोहे को खींचता है। बड़े बड़े विद्युत्-चुम्बकों से इन दिनों मनों लोहा उठाया जाता है। यदि प्रकाश इस प्रकार के बलवान चुम्बकों के बीच से होकर आवे तो हमको इस बात का पता इसके रश्मि-चित्र से लग जायगा, क्योंकि, जैसा हॉलैन्ड के वैज्ञानिक ज़ीमैन (Zeeman) को पहले पहल १८९६ में पता चला था, इसका परिणाम यह होता है कि बाज़ फ्राउनहोफ़र रेखायें टूट कर एक को दो या तीन, कभी कभी ९ तक हो जाती हैं। ठीक यही बात सूर्य-कलंकों से आये प्रकाश में पाई गई है। इसलिए यह निश्चय है कि सूर्य-कलंकों में अत्यन्त



[माउन्ट विलसन

चित्र २२९—हाइड्रोजन के बादल।

अगले चित्र से तुलना कीजिए।

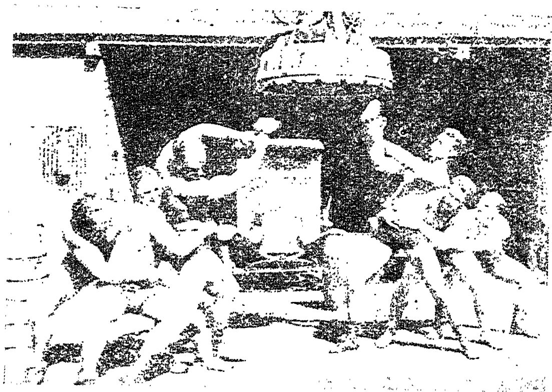


[माउन्ट विलसन

चित्र ३४०—क्या सूर्य-कलंक बवंडर हैं ?

इन चित्रों से तो यही जान पड़ता है; पिछले चित्र से भी तुलना कीजिए। काले हाइड्रोजन के बादल को इस कलंक ने १०,००० मील की दूरी से चूस लिया।

बलवान् चुम्बकीय क्षेत्र है। सूक्ष्म माप करने से रश्मि-चित्र-सौर-कैमेरा के आविष्कारक हेल (Hale) को पता चला है कुल सूर्य एक बड़ा सा चुम्बक है। सभी विज्ञान से जानकारी रखनेवाले लोग जानते हैं कि पृथ्वी भी चुम्बक है। तभी तो यह कुतुबनुमे की सुई को उत्तर-दक्षिण दिशा में कर देती है। एक वैज्ञानिक कहता है कि हो सकता



[पापुलर सायंस से

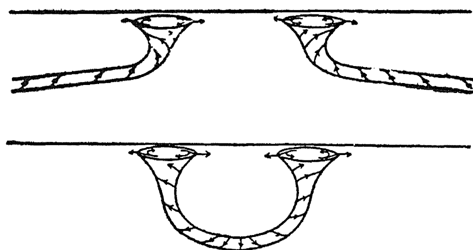
चित्र २४१—एक **छोटा सा भी विद्युत्-चुम्बक ६ पहलवानों से अधिक बलवान् होता है।**

देखिए चुम्बक इन सब पहलवानों को लोहे के साथ साथ खींचे ले जा रहा है।

है पृथ्वी और सूर्य अपने घूमने के कारण चुम्बक हैं और शायद सभी घूमनेवाले पिंड चुम्बक होते होंगे।

७—सूर्य-कलंकों का नया सिद्धान्त—सूर्य-कलंकों का एक नया सिद्धान्त हेल ने दिया है जिसके सत्य होने की बहुत सम्भावना है। इस सिद्धान्त के अनुसार सूर्य-कलंक तुरहीनुमा भँवर या बवंडर हैं जिनमें से भीतर की गैसें चक्कर मारती हुई

ऊपर और बाहर निकलती हैं। दो पास के कलंक एक ही भँवर के दो सिरे हैं (चित्र ३४२,३४३)। इस सिद्धान्त से कलंक के सम्बन्ध में देखी गई प्राय: सभी बातों का कारण समझ में आ जाता है। तुरही के मुँह पर फैलने के कारण गैस ठंढी हो जाती होगी* और इसी लिए कलंक काला मालूम पड़ता होगा। पड़ोस के सूर्य-कलंक सदा दो विपरीत दिशा में चक्कर लगाते जान पड़ते हैं (चित्र ३३, पृष्ठ ३९)। इसका कारण भी चित्र ३४२ और ३४३ से स्पष्ट हो जायगा। डॉपलर के नियम से सूर्य-कलंकों में से गैस निकलती और फैलती हुई भी देखी जा सकती है। इसका पता पहले पहल मद्रास के पासवाली कोदईकैनाल (Kodaikanal) वेधशाला के भूतपूर्व डाइरेक्टर, एवरशेड (Evershed), को लगा था।



[रसेल-डुगन-स्टिवर्ट की ऐस्ट्रो० से

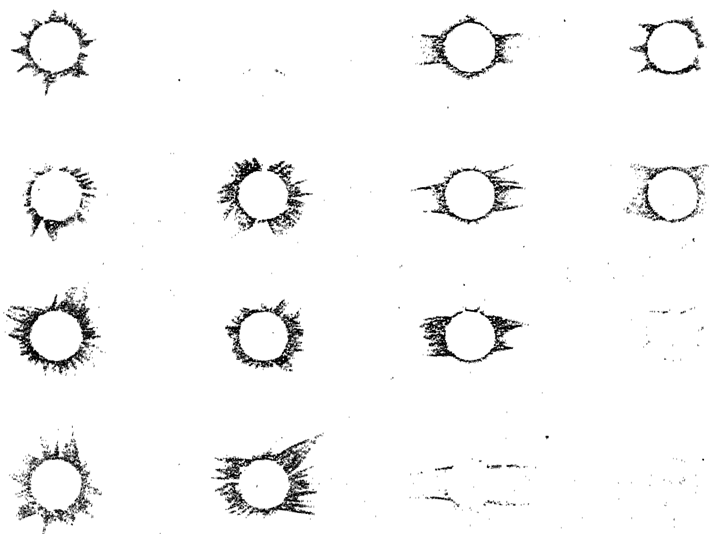
चित्र ३४२,३४३—सूर्य-कलंक भँवर या बवंडर हैं।

८—कॉरोना।—अब तक भी कॉरोना का फ़ोटोग्राफ़ केवल सर्व-ग्रहण के समय ही लिया जा सकता है। बड़े बड़े वैज्ञानिकों ने अनेक चेष्टा की कि किसी प्रकार इसका फ़ोटो प्रतिदिन लिया

---

* हम देख चुके हैं कि दबने के कारण गैस गरम हो जाती है (पृ० २४३)। इसी प्रकार फैलने से गैस ठंढी भी हो जाती है। बर्फ़ बनाने की मशीनें इसी बात पर निर्भर हैं। पहले से भरी हुई साइकिल की हवा को निकलने देकर आप इस बात की सत्यता का प्रमाण पा सकते हैं।

जा सके, जैसे ज्वालाओं का लिया जाता है; परन्तु इसमें कोई सफलता न हो सकी। प्रत्येक प्रकार के प्लेट और प्रकाश-छनने



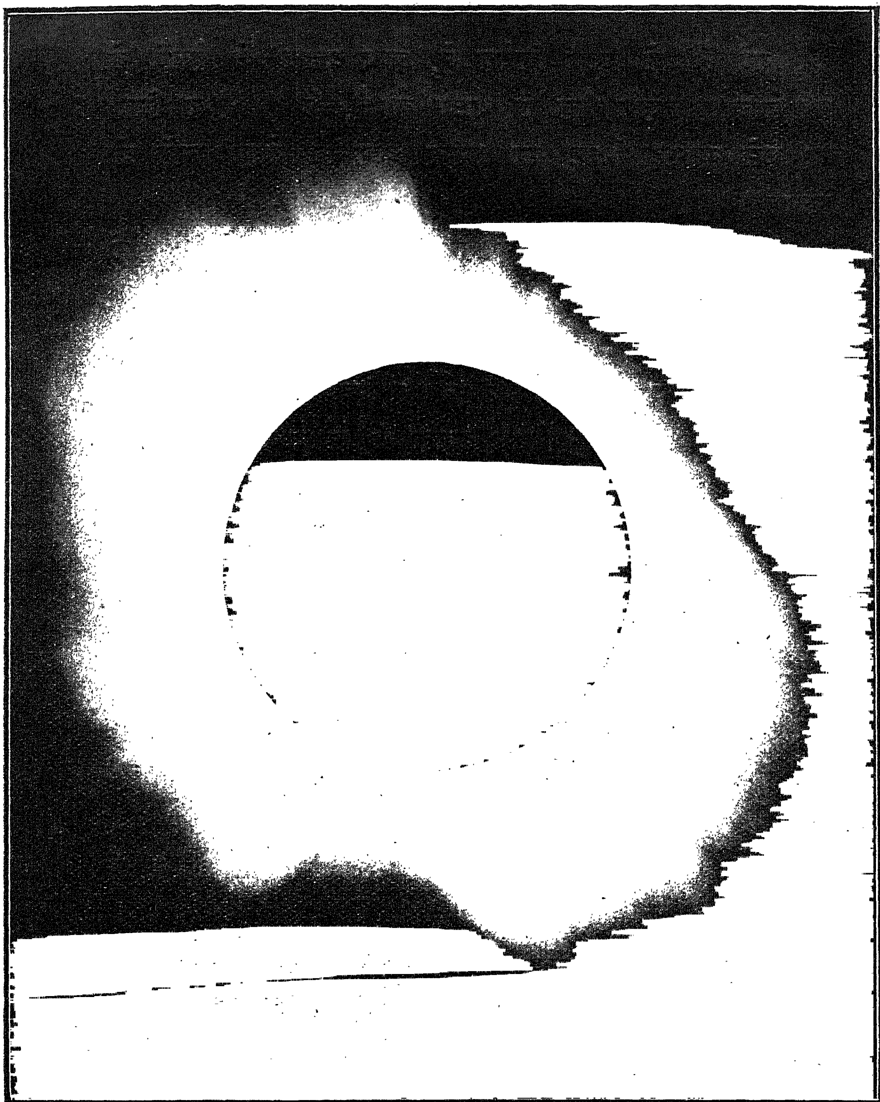
[ब्रिटिश ऐस्ट्रोनॉमिकल ऐसोसिएशन

चित्र २४४—कॉरोना का स्वरूप भी ११-वर्षीय सूर्य-कलंक-चक्र के साथ बदलता रहता है।

प्रथम स्तम्भ में महत्तम कलंक के समय के चार कॉरोना दिखलाये गये हैं, दूसरे में जब कलंक घट रहे थे उस समय के, तीसरे में लघुत्तम कलंक समय के और चौथे में जब कलंकों की संख्या बढ़ रही थी तब के कॉरोना दिखलाये गये हैं।

(colour-filter, अर्थात्, लेन्ज़ के सामने लगे हुए रंगीन शीशे) का उपयोग किया गया, ऊँचे ऊँचे पहाड़ों से फ़ोटोग्राफ़ लिये गये, हवाई जहाज़ से भी फ़ोटो लिये गये, परन्तु कुछ परिणाम न

निकला। हवाई जहाज़ों पर उड़नेवाले इतने स्वच्छ हवा में पहुँच जाते हैं कि चमकीले ताराओं का फ़ोटोग्राफ़ दिन में ही उतर आता है, परन्तु कॉरोना का फ़ोटोग्राफ़ न उतरा, क्योंकि यह वस्तुतः बहुत मन्द प्रकाश देता है। इसलिए ग्रहणों को छोड़ कर कॉरोना की जाँच करने का कोई उपाय नहीं है। परन्तु ग्रहण में भी तो दो चार ही मिनट समय मिलता है। फ़ोटोग्राफ़ी के उपयोग के आरम्भ से आज तक कुल मिलाकर मुश्किल से एक घंटे का समय मिला होगा और इतने ही में ज्योतिषियों ने बहुत कुछ किया और सीखा है। कोई उलहना नहीं दे सकता कि ज्योतिषी आलस्य में बैठे रहे हैं। १८७० में प्रसिद्ध जैन्सन (Janssen) जरमन-शत्रु-सेना से घिरे हुए पेरिस शहर से ग्रहण देखने के लिए गुब्बारे में उड़ कर भागा। जरमनों की गोलियों से तो वह बच गया, परन्तु निष्ठुर बादलों के आगे उसकी एक न चली। पादरी पेरी (Father Perry) को एक ग्रहण-यात्रा में इतनी मुसीबतें झेलनी पड़ी थीं कि उसने सौगंध खा ली कि अब फिर कभी यात्रा न करेंगे, परन्तु फिर ग्रहण लगने पर आँधी और लहरों से मुक़ाबला करता हुआ करगुलन (Kerguelen) टापू पर जा डटा। इसके थोड़े ही दिन बाद दूसरे ग्रहण की छावनी में बुख़ार से उसने प्राण ही गँवा दिये। मरने के पहले यह वीर पुरुष दुर्बल रहने पर भी ग्रहण के कार्य-क्रम में शरीक़ हुआ और सर्व-ग्रहण के अन्त में यह देख कर कि सब कार्य निर्विघ्न और इच्छानुसार हो गया है तीन बार जयध्वनि करवाई, यद्यपि स्वयं कमज़ोरी के कारण वह उसमें भाग न ले सका। दूर से दूर और उजाड़ से उजाड़ स्थान पर भी ग्रहण लगने पर अवसर हाथ से जाने नहीं दिया गया है। न्यूकॉम्ब उत्तर-पश्चिमी कैनाडा (Canada) के एक ग्रहण के लिए प्रायः ६ सप्ताह डोंगी में यात्रा की। "सूर्य-ग्रहण" (Eclipses of the Sun) नाम की पुस्तक, जिससे ऊपर कई अवतरण



[क्रॉमालिन

चित्र २४९—उस समय का कॉरोना जब कलङ्कों के सबसे कम बनने का समय रहता है।

ऐसे कॉरोना में कॉरोना-रश्मियाँ चारों ओर फैली रहने के बदले दो ओर दूर तक फैली रहतीं हैं।

दिये गये हैं, के लेखक मिचेल ने, चार ग्रहणों के देखने के लिए चालीस हज़ार मील की यात्रा की है, जिसमें कुल मिला कर उसे ग्यारह मिनट का समय वैज्ञानिक खोज करने को मिला है।

परन्तु इतना परिश्रम करने पर भी कॉरोना का भेद अभी नहीं खुला है।

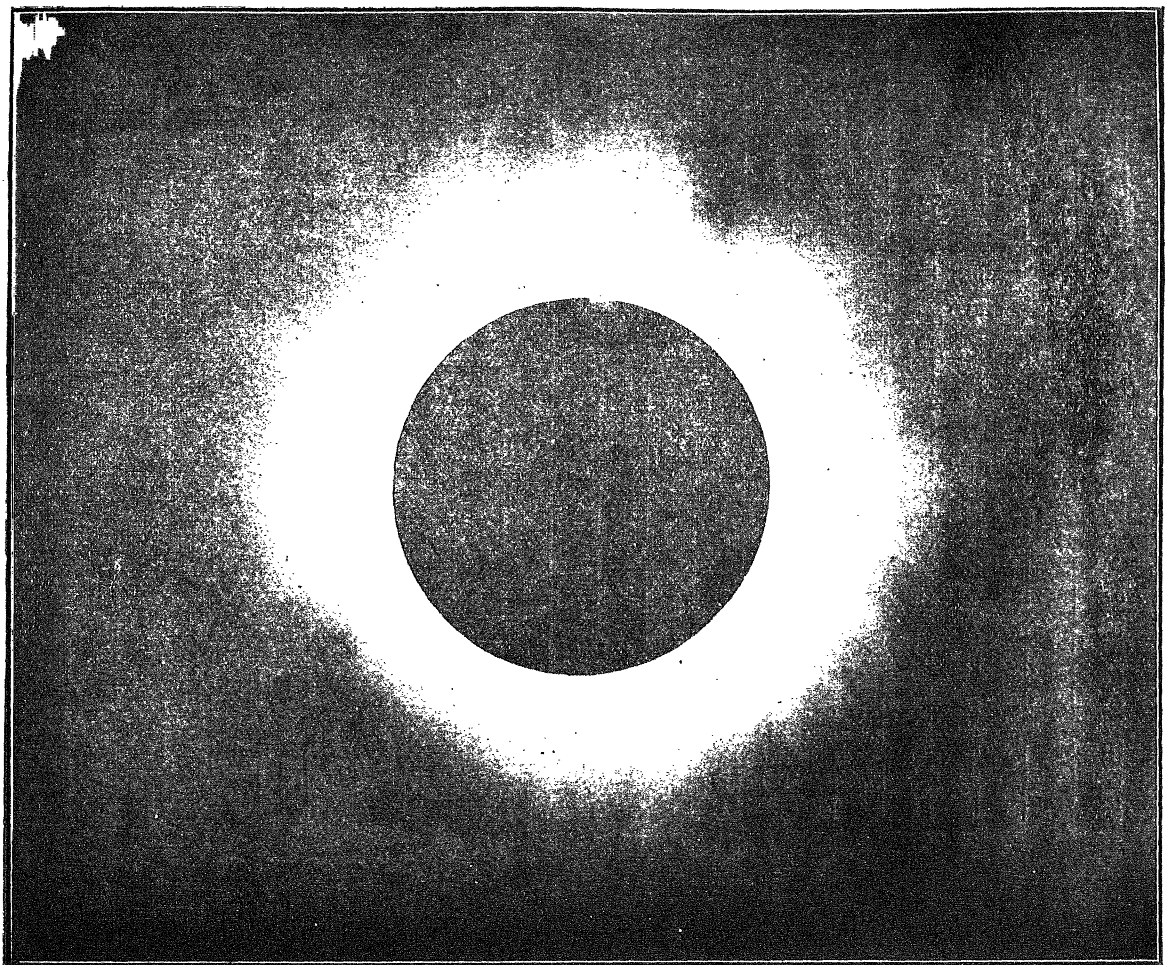
बराबर फ़ोटोग्राफ़ों के लेते रहने से इतना पता लगा है कि कॉरोना का स्वरूप भी ११ वर्षीय सूर्य-कलंक-चक्र के साथ बदलता रहता है (चित्र ३४४)। कम कलंक के समय में सूर्य के मध्य रेखा के पास कॉरोना की रश्मियाँ (streamers) लम्बी और ध्रुवों के पास की रश्मियाँ छोटी होती हैं (चित्र ३४५)। अधिक कलंक के समय कॉरोना का आकार प्रायः गोल होता है (चित्र ३४६)। इस प्रकार आकार क्यों बदलता है और कॉरोना की सीधी और धनुषाकार रश्मियों का क्या अर्थ है इसका अभी कुछ पता नहीं लगा है।

भिन्न भिन्न स्थानों से फ़ोटोग्राफ़ लेने पर, जिनके बीच की दूरी को तय करने में चन्द्र-छाया को एक-आध घंटे लग जाते हैं, इतना पता अवश्य लगा है कि कॉरोना की रश्मियाँ आतिशबाज़ी की चरखी के समान शीघ्रता से चलती नहीं रहतीं।

अभी तक "कॉरोनियम" (पृष्ठ ३५९) का पता नहीं चला। हीलियम के पता चलाने में वैज्ञानिकों को २७ वर्ष लग गये। तो क्या कॉरोनियम इतना गया गुज़रा है कि केवल एक घंटे की मुलाक़ात में अपना पता बतला दे!

कॉरोना की घनत्व अति सूक्ष्म होगी। प्रोफ़ेसर न्यूकॉम्ब लिखते हैं* "१८४३ का बड़ा पुच्छल तारा सूर्य के बहुत पास से

* Newcomb: Popular Astronomy (1887), p. 265.



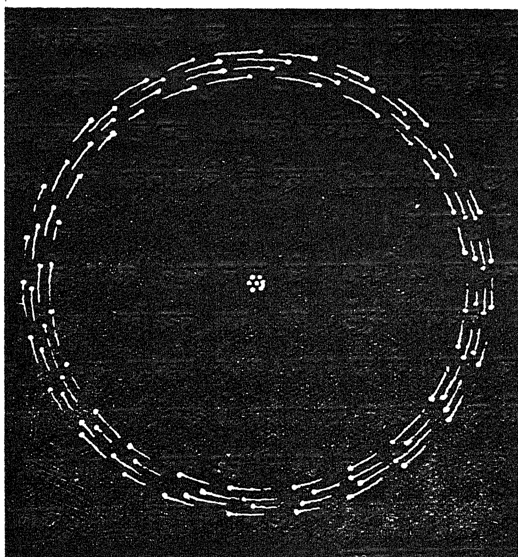
[ऐस्टन

चित्र ३४६—**कलंक-महत्तम के समय का कॉरोना।**

इसमें रश्मियाँ चारों ओर फैली रहती हैं; पिछले चित्र से तुलना कीजिए।

निकल गया और इसलिए ठीक कॉरोना के बीच से यह गया। सूर्य के पास इसका वेग ३५० मील प्रति सेकंड था (इस वेग से चलें तो आप प्रयाग से कलकत्ता सवा सेकंड में ही पहुँच जायँगे), और लगभग इसी वेग से यह कॉरोना में कम से कम ३,००,००० मील चला होगा। जब यह कॉरोना से निकला तो देखने में इसे कुछ भी हानि नहीं पहुँची थी। इसकी कल्पना करने के लिए कि यदि अति सूक्ष्म वायु-मंडल से भी इसकी मुठभेड़ हो जाती तो क्या होता, हमको केवल इतना ही स्मरण रखना काफ़ी है कि उल्कायें हमारे वायु-मंडल में ५० से १०० मील की ऊँचाई पर भी एक ही क्षण में वायु की रगड़ से पूर्णतया भस्म हो जाती हैं। इतनी ऊँचाई पर हमारा वायु-मंडल इतना क्षीण होता है कि यह सूर्य के प्रकाश को भी नहीं बिखरा सकता। उल्काओं का वेग २० से ४० मील प्रति सेकंड होता है। अब यह स्मरण रखिए कि रुकावट और गरमी वेग के वर्ग के हिसाब से बढ़ती हैं (दूने वेग पर चौगुनी गरमी, तिगुने वेग पर नौ गुनी गरमी, इत्यादि होती है)। किसी वस्तु की, या पुच्छल तारा के समान वस्तु-समूह की, क्या गति होगी, यदि यह अति सूक्ष्म वायु-मंडल के कई लाख मील को ३०० मील प्रति सेकंड से भी अधिक वेग से पार करे? और यह वायु-मंडल कितना सूक्ष्म होगा जब उस पुच्छल तारा के नाश को कौन कहे, इसकी गति भी ज़रा सी कम नहीं हुई। अवश्य ही, इतना क्षीण कि इसको बिलकुल अदृश्य होना चाहिए"। स्वीडन के प्रसिद्ध वैज्ञानिक अर्हेनियस (Arrhenius) ने गणना किया है कि कॉरोना के ढाई गज़ लम्बे, ढाई गज़ चौड़े, और ढाई गज़ ऊँचे स्थान में केवल एक अत्यन्त सूक्ष्म कण होगा। उसका कहना है कि ये कण सूर्य के आकर्षण से सूर्य में जा गिरते, परन्तु उन पर प्रकाश का दबाव इतना पड़ता है कि वे ऊपर ही टिके रह जाते हैं।

यह भी समझ में नहीं आता कि कॉरोना में प्रकाश कहाँ से आता है, क्योंकि इसके ऊपरी भाग सूर्य से करोड़ मील दूर हैं। इतना निश्चय है कि कुछ प्रकाश तो सूर्य का ही है और कॉरोना से बिखर कर आता है। परन्तु बाक़ी प्रकाश ? वह कहाँ से



चित्र २४७—परमाणुओं की बनावट का कल्पित चित्र।

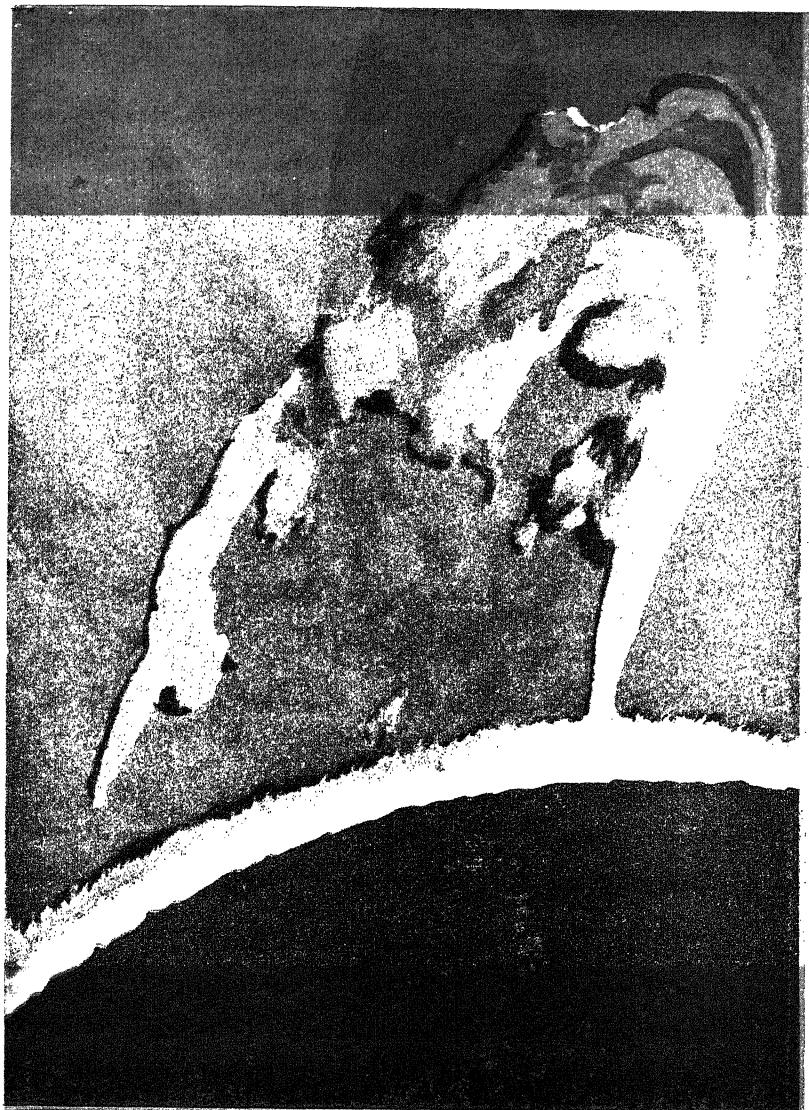
बीच में धनाणु रहता है और चारों ओर ऋणाणु चक्कर मारा करते हैं।

आता है ? इतनी कम घनत्व का पिण्ड ठंढा क्यों नहीं हो जाता। यही कठिनाइयाँ नीहारिकाओं के सम्बन्ध में भी उठती हैं, क्योंकि उनमें भी कुछ ऐसी विस्तृत और कम घनत्व की नीहारिकायें हैं कि उनके प्रकाश के विषय में कोई सिद्धान्त निश्चय करना कठिन है।

९—पदार्थ की बनावट—एक ओर तो ज्योतिषियों को पता चल रहा है कि कोई कोई आकाशीय पिंड हमसे इतनी दूर हैं कि शीघ्रगामी प्रकाश को भी वहाँ से आने में लाख वर्ष लगता होगा (सूर्य ऐसे दूरस्थ पिंड से आने में तो प्रकाश को केवल ८ मिनट लगता है), दूसरी ओर उनका कार्य संसार की छोटी से छोटी कल्पनायोग्य वस्तुओं से पड़ रहा है, जो, ऐसा विश्वास किया जाता है, इतने छोटे हैं कि राई सी छोटी वस्तु में भी उनकी संख्या शंख महाशंख से भी अत्यन्त अधिक होगी। इन छोटी वस्तुओं का ज्ञान, जिन्हें ऋणाणु (electrons) कहते हैं, वैज्ञानिकों को पिछले पचीस तीस वर्षों में हुआ है।

रेडियम के आविष्कार से जान पड़ने लगा जैसे विज्ञान के पुराने सब नियम झूठे पड़ गये, क्योंकि इसमें से बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के ही गरमी और प्रकाश निकला करता था। कई दिशाओं से इस प्रश्न पर आक्रमण करने पर यह पता चला कि रेडियम मौलिक पदार्थ होने पर भी टूट कर नये मौलिक पदार्थों में बदला करता है। यह एक बिलकुल नई बात थी। साथ ही अन्य कई नई बातों का पता चला।

रासायनिक लोगों को उन्नीसवीं शताब्दी से ही विश्वास है कि किसी भी पदार्थ को यदि हम छोटे टुकड़ों में बाँटते चले जायँ तो अंत में हमको एक ऐसा टुकड़ा मिलेगा जिसे हम और बारीक नहीं कर सकते। उस टुकड़े को तोड़ने से वह पदार्थ अपने मौलिक अवयवों में टूट जायगा। कल्पित टुकड़ों को अणु (molecule) कहते हैं। ये स्वयं एक या अधिक मौलिक पदार्थों के एक या अधिक परमाणुओं (atoms) से बनते हैं। जैसे, दो परमाणु हाइड्रोजन और एक परमाणु ओषजन (oxygen) के योग से पानी का एक अणु बनता है। इसी प्रकार हाइड्रोजन के दो



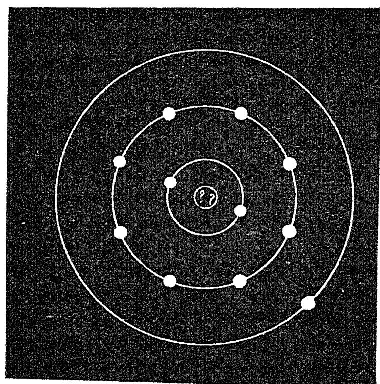
रक्त ज्वालायें

सर्व सूर्य-ग्रहण के समय ये ज्वालायें सूर्य से निकलती हुई दिखलाई पड़ती हैं। ये लाखों मील की ऊँचाई तक पहुँच जाती हैं।

पृ० ३९४

परमाणुओं से हाइड्रोजन गैस का एक अणु बनता है। पहले समझा जाता था कि परमाणु तोड़ा नहीं जा सकता; इससे छोटी कोई वस्तु है ही नहीं। इस सिद्धान्त से वैज्ञानिक लोग, जब तक रेडियम के विचित्र व्यवहार का पता नहीं चला था, सब प्रकार से संतुष्ट थे।

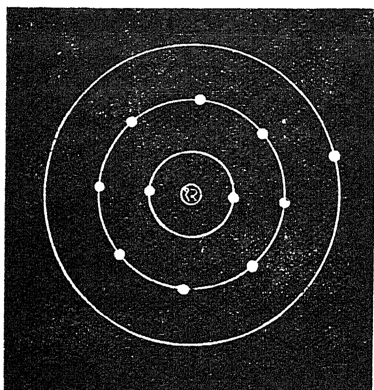
परन्तु रेडियम विषयक अनुसंधानों का परिणाम यह हुआ है कि वैज्ञानिकों का अब विश्वास है कि ठोस से ठोस पदार्थ के भी परमाणु, यदि वे किसी प्रकार काफ़ी बड़े किये जा सकते तो, ठोस नहीं दिखलाई पड़ेंगे। प्रत्येक परमाणु की बनावट इस प्रकार है कि बीच में एक समूह बिजली के धनाणुओं (elementary positive charges) की है और उनसे कुछ कम ऋणाणु (electrons) इसके चारों ओर चक्कर लगाया करते हैं (चित्र ३४७)। इनकी संख्या एक, या एक से अधिक (९२ तक), हो सकती है (चित्र ३४८-३५०)। ठीक उसी प्रकार और उन्हीं नियमों से बद्ध होकर, जैसे और जिन नियमों से सूर्य के चारों ओर ग्रह चक्कर लगाते हैं, यदि केवल एक ही ऋणाणु चक्कर लगाता है तब हाइड्रोजन का परमाणु बनता है। दो रहने से हीलियम, तीन रहने से लीथियम, इत्यादि।



चित्र ३४८—सोडियम परमाणु का कल्पित चित्र।

बीच में धनाणु है, जिसकी बिजली की मात्रा ११ है। इसके चारों ओर ११ ऋणाणु चक्कर लगाते हैं।

८२ रहने से सीसा (lead), ८८ रहने से रेडियम और ९२ रहने से यूरोनियम बनता है। गरम करने से, या अल्ट्रावॉयलेट प्रकाश या एक्स-रश्मियाँ या बिजली लगने से, सभी वस्तुओं से बाहरवाले ऋणाणु निकाले जा सकते हैं। रेडियम इत्यादि से साधारण दशा में ही ये ऋणाणु निकला करते हैं, ठीक वैसे ही जैसे कुछ वस्तुओं को पिघलाने के लिए बहुत आँच की आवश्यकता पड़ती है और कुछ साधारण तापक्रम में ही पिघले रहते हैं।

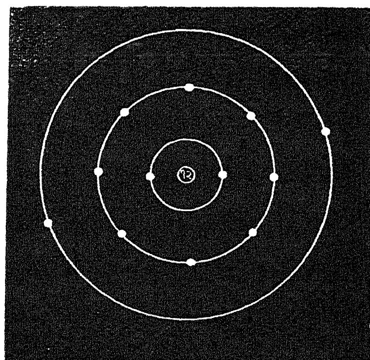


चित्र ३४९—मैगनीशियम परमाणु का कल्पित चित्र।

बीच में धनाणु है, जिसकी बिजली की मात्रा १२ है। इसके चारों ओर १२ ऋणाणु चक्कर लगाते हैं।

१०—परमाणुओं की नाप—तेल की छोटी सी एक बूँद को पानी पर छोड़ देने से यह बहुत दूर तक फैल जाती है। बूँद की नाप जान कर और यह देखकर कि तेल कितनी दूर तक फैल गया, यह जानना सरल है कि तेल की तह की मोटाई क्या होगी। इसी प्रकार, ज़रा सा नील (या बुकनीवाला रंग) एक हौज़ पानी में छोड़ देने से कुल पानी में रंग आ जाता है। पहले रंग को नाप लेने से और पीछे हौज़ के पानी को नाप लेने पर पता चलता है कि एक बूँद हौज़ के पानी में असली रंग किस मात्रा में उपस्थित होगा। इस प्रकार के प्रयोगों से हम अपने को विश्वास दिला सकते हैं कि तेल और नील के अणु चाहे जितने बड़े हों, कम से कम वे १/१०,००,००,००० इंच से कम व्यास के होंगे। अन्य

प्रयोगों से अणु के व्यास का और भी निश्चित रूप से पता चला है। परमाणु तो इनसे भी छोटे होते हैं। वे इतने छोटे हैं कि यदि सरसों के बराबर हाइड्रोजन गैस का चित्र पृथ्वी के आकार का खींचा जाय तो इसके एक एक परमाणु केवल टेनिस के गेंद (tennis ball) के समान होंगे (चित्र ३५१)। और ऋणाणु? वह तो इतना छोटा होता है कि यदि परमाणु स्वयं इतने बड़े पैमाने पर अंकित किया जाय कि इसका व्यास इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के विज़ियानगरम् हॉल के समान हो जाय तो ऋणाणु केवल छोटे छर्रे के समान होंगे (चित्र ३५२)।



चित्र ३५०—"आयोनाइज़्ड" मैगनीशियम का कल्पित चित्र।

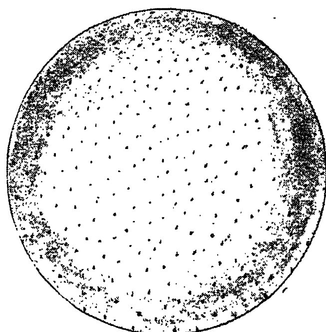
पिछले चित्र की अपेक्षा इसमें एक ऋणाणु कम है।

यह तो हुई ऋणाणुओं के डील-डौल की बात। अब उनके वेग का हाल सुनिए। सर ऑलिवर लॉज का कहना है कि रेडियम की आधी रत्ती के सत्तरवें भाग से, एक सेकंड में, राइफ़ल के छर्रों के वेग के हज़ार गुने वेग से ३ करोड़ ऋणाणु छटकते हैं। प्रोफ़ेसर ली बॉन ने गणना किया है कि एक साधारण छर्रे को ऋणाणु के वेग से चलाने के लिए साढ़े तेरह लाख बोरा बारूद लगेगा! वे प्रमाण देते हैं कि एक ताँबे की छोटी सी पाई के ऋणाणुओं में ८ करोड़ घोड़े की शक्ति है! इस प्रकार, साधारण पदार्थों के एक दो सेर में करोड़ों मन से भी अधिक कोयले की शक्ति रहती है।*

* Outlines of Science, Edited by J. A. Thompson, p. 198.

परन्तु अफ़सोस, अभी तक वैज्ञानिकों को इसका पता नहीं है कि इस शक्ति से लाभ कैसे उठाया जाय। तो क्या हम इससे कभी भी लाभ नहीं उठा सकेंगे? सुनिए सर विलियम ब्रैग (Sir William Bragg) क्या कहते हैं। "मेरा यह विचार है कि भविष्य में हमारी आवश्यकतायें परमाणुओं की शक्ति से पूरी होंगी। हो सकता है कि परमाणुओं को सीधा करने और जोतने में हज़ार वर्ष लग जायँ, हो सकता है कल ही हमारे हाथों में





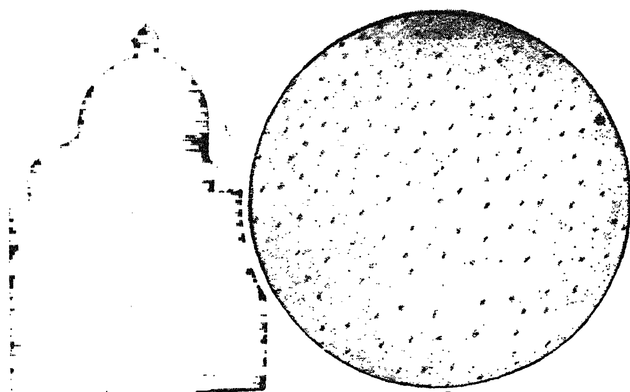
चित्र ३९१—यदि सरसों के बराबर हाइड्रोजन गैस का चित्र पृथ्वी के आकार का खींचा जाय तो इसके एक एक परमाणु केवल टेनिस के गेंद के समान होंगे।

उनकी रास आ जाय। यही तो भौतिक विज्ञान की विशेषता है कि अनुसंधान और 'आक्समिक' आविष्कार साथ साथ चलते हैं।"

प्राचीन काल के पारस पत्थर के लुप्त हुए बहुत दिन हो गये, परन्तु प्रोफ़ेसर सॉडी के कथनानुसार इस नवीन युग में "सफलता-पूर्वक एक धातु से दूसरी बना लेने की आशायें दिन पर दिन बढ़ती ही जाती हैं। * * * परन्तु अब हम निश्चय रूप से जानते हैं कि परमाणुओं की असीम शक्ति-राशि पर आधिपत्य पा जाने के मुक़ाबले

में, जो इस क्रिया में सफल होने से अवश्य ही मिलेगा, सोना बना लेने का महत्त्व बहुत कम रहेगा।"*

११—आयोनाइज़ेशन—साधारण (कड़े रबड़ की बनी) कंघी को अपने सर के सूखे बालों पर रगड़ने से उसमें बिजली पैदा हो जाती है और वह कागज़ के नन्हें नन्हें टुकड़ों को आकर्षित कर सकती है। इस प्रयोग को सभी कर सकते हैं। यदि बिजली से भरी कंघी से ऐसे तार को छू



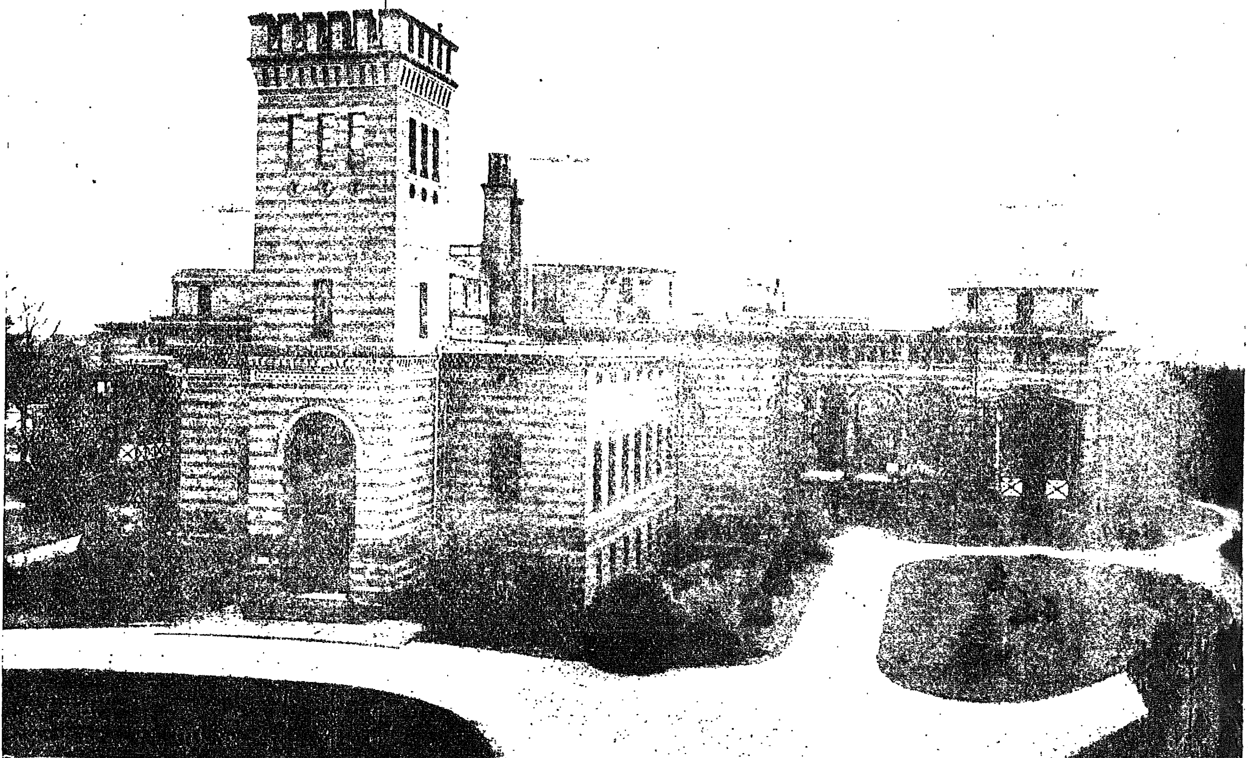
चित्र २४२—यदि परमाणु स्वयं इतने बड़े पैमाने पर अंकित किया जाय कि इसका व्यास इलाहाबाद-विश्व-विद्यालय के विजियानगरम् हॉल के समान हो जाय तो ऋणाणु केवल छोटे छर्रे के समान होंगे।

दिया जाय जिसके नीचे दो सोने के वर्क लगे हों तो दोनों वर्क फैल जायँगे (चित्र ३५४)। यह तार बोतल में लटकाया रहता है जिसमें वर्क पर हवा न लगे और तार किसी ऐसी वस्तु से न छू जाय जिसके द्वारा बिजली निकल कर पृथ्वी में मिल जाय। बोतल के काग से यह तार अवश्य छू गया है, परन्तु इस काग या शीशे-

* Professer Soddy: Nature, Nov. 6, 1919.

द्वारा बिजली कहीं जा नहीं सकती। छू देने के बाद कंघी को हटा लेने पर भी वर्क फैले रहेंगे, क्योंकि बिजली के कहीं जाने का रास्ता नहीं है। परन्तु यदि इस यंत्र को, जिसे विद्युत्-प्रदर्शक (gold-leaf electroscope) कहते हैं, अँगुली से छू दिया जाय, या इस पर एक्स-रश्मि (पृष्ठ २९८ देखिए) डाला जाय, या इसके पास कहीं ज़रा रेडियम रख दिया जाय, तो वर्क तुरन्त गिर कर सट जायँगे, क्योंकि छूने से छूनेवाले के शरीर-द्वारा बिजली निकल जाती है और एक्स-रश्मि या रेडियम-रश्मि से आस-पास के वायु के परमाणुओं का इस प्रकार से विन्यास हो जाता है कि उसके द्वारा बिजली चल सकती है। यह विन्यास रासायनिक विन्यास से भिन्न है। इस विन्यास को आयोनाइज़ेशन (ionisation) कहते हैं और कहा जाता है कि वायु आयोनाइज़्ड (ionised) हो गया। ज्वालाओं से भी आयोनाइज़ेशन हो जाता है। विद्युत्-प्रदर्शक पर रेडियम के इस प्रकार प्रभाव डालने के कारण, यह यन्त्र रेडियम की अति सूक्ष्म मात्रा का भी पहचान बहुत अच्छी तरह कर सकता है। अभी हाल ही में (१९२९ में) एक अस्पताल का ज़रा सा रेडियम, जो छोटी सी नलिका में बन्द था, कहीं रास्ते में खो गया था। समाचार-पत्रों में छपा था कि डाक्टर और प्रोफ़ेसर लोग इस मेल के कई विद्युत्-प्रदर्शक लेकर उसकी खोज कर रहे थे!

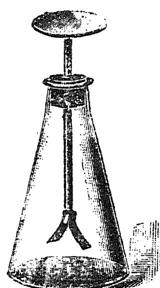
१२—प्रकाश का नया सिद्धान्त—कुछ वर्ष हुए पुराने सिद्धान्तों की अनेक कठिनाइयों को दूर करने के लिए जरमन वैज्ञानिक प्लाङ्क (Planck) ने एक अत्यन्त आश्चर्यजनक सिद्धान्त वैज्ञानिकों के सामने उपस्थित किया, जिससे कुछ घटा बढ़ाकर प्रसिद्ध प्रकाश का मात्रा-सिद्धान्त (quantum theory of light) बना है। जैसे एक कौड़ी से लेकर "अरब खरब लों द्रव्य" हो सकता है, परन्तु किसी दो व्यक्तियों के द्रव्य में एक कौड़ी से कम का



चित्र २९३—पॉट्सडाम-बेधशाला ।

यह बरलिन के पास है । यहाँ भी रश्मि-विश्लेषण-सम्बन्धी अनेक खोज किये जाते हैं ।

अन्तर नहीं हो सकता, क्योंकि आधी कौड़ी, पाव कौड़ी, इत्यादि होती ही नहीं हैं, इसी प्रकार इस नये सिद्धान्त के अनुसार शक्ति (energy) भी एक जानी हुई मात्रा से ही घट बढ़ सकती है। इससे कम मात्रा की शक्ति एक पदार्थ से दूसरे में आ-जा नहीं सकती, जिससे यह भी विचित्र परिणाम निकलता है कि यदि कोई वस्तु गिर रही है तो इसका वेग एक रस (लगातार) नहीं बढ़ता, रह रह कर झटके झटके से बढ़ता है। हाँ, ये झटके इतने सूक्ष्म होते हैं कि उनका किसी साधारण रीति से पता नहीं चल सकता।



[बेयर्ड ऐंड टैटलॉक

चित्र ३२४—सोने के वर्कवाला विद्युत-प्रदर्शक।

१९१३ में बोर (Bohr) ने परमाणुओं की बनावट का एक सिद्धान्त बनाया और गणित से उसको सच्चा सिद्ध किया। वैज्ञानिकों में इसका बहुत आदर है, क्योंकि यह बहुत सी जानी हुई बातों को, जिनके कारण का कोई पता न चलता था, बड़ी ख़ूबी से समझा देता है। बोर ने अन्य बातों के साथ यह भी बतलाया कि बीच के धनाणु-समूह के चारों ओर ऋणाणु मनमानी दूरी पर चक्कर नहीं लगा सकते। उनकी दूरियाँ नियमबद्ध हैं। इनके मार्गों का व्यासार्ध केवल १ या ४ या ९ या १६, इत्यादि हो सकता है। इस प्रसंग में स्मरण रखना चाहिए कि एक मार्ग से दूसरे में जाने से प्रकाश या गरमी निकलती है।

इस सिद्धान्त से ऐसी टेढ़ी बातों का भी कारण मालूम हो जाता है कि रश्मि-चित्र में रेखायें क्यों वहीं वहीं पड़ती हैं जहाँ वे वस्तुतः पड़ती हैं; क्यों सोडियम रश्मि-चित्र में दो ही रेखायें हैं और लोहे में दो हज़ार से भी अधिक।

ऊपर की बातें इतनी ब्योरे के साथ विशेषकर इसलिए लिखी गई हैं कि हम अपने देश के जगत्-विख्यात डाक्टर मेघनाथ साहा के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त को थोड़ा सा समझा सकें।

डाक्टर साहा ने १९२० में यह सिद्ध किया कि निम्नलिखित समीकरण से हम बतला सकते हैं कि किसी विशेष गैस में किसी दिये हुए दबाव और तापक्रम पर कितना गैस आयोनाइज़्ड हो जायगा :—

$$\frac{द\ य^{२}}{१-य^{२}} = त$$

यहाँ **द** = दबाव, **य** = वह भिन्न जो बतलाता है कि कुल गैस का कितना भाग आयोनाइज़्ड हो गया है और **त** केवल गैस और उसके तापक्रम पर निर्भर है।

इस समीकरण से ज्योतिषियों की अनेक उलझनें सुलझ गई हैं और इसी लिए डाक्टर साहा का नाम प्रसिद्ध है। इसके निकलने के पहले इँगलैंड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर नॉरमन लॉकियर का, जिनका ज़िक्र दो तीन बार पहले भी आ चुका है, सिद्धान्त था कि अधिक तापक्रम से रश्मि-चित्र की रेखायें मोटी हो जाती हैं। इस सिद्धान्त से यह असम्भव परिणाम निकलता था कि वर्णमंडल में क्रमशः ऊपर की ओर तापक्रम बढ़ता ही जाता है! डाक्टर साहा के सिद्धान्त से अब रेखाओं के मोटी होने के शुद्ध कारण का पता लगा है। क्रमशः ऊपर बढ़ने से दबाव कम होता जाता है और इसलिए आयोनाइज़ेशन क्रमशः अधिक होता जाता है और अधिक अयोनाइज़ेशन के कारण रेखायें मोटी होती जाती हैं। इस समस्या को हल करने के अतिरिक्त डाक्टर साहा का सिद्धान्त वर्णमंडल, सूर्य, सूर्य-कलंक और पलटाऊ तह के रश्मि-चित्रों के सूक्ष्म अन्तरों को, प्रोफ़ेसर मिचेल के कथनानुसार, "सुन्दर और स्पष्ट रीति से"*

* Mitchell: Eclipses of the Sun.

समझाता है। ताराओं के रश्मि-चित्र से उनकी दूरी नापने में भी डाक्टर साहा का सिद्धान्त बहुत सहायता देता है।

१३—नवीन भौतिक विज्ञान और सूर्य की बनावट—कैसे आश्चर्य की बात है कि विशालकाय सूर्य-नक्षत्रों के

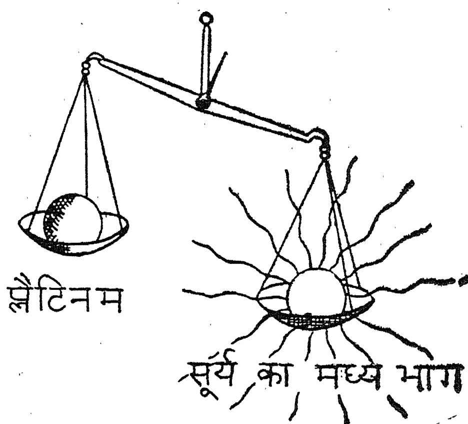


चित्र २५५—डाक्टर मेघनाथ साहा।
इनके आयोनाइज़ेशन सिद्धान्त ने इनको वैज्ञानिक संसार में प्रसिद्ध कर दिया है।

अध्ययन में नन्हें नन्हें अणुओं का अध्ययन करना पड़ता है और साथ ही बड़े बड़े नक्षत्रों से छोटे से परमाणुओं की नाप का पता चलता है! परन्तु परमाणुओं की बनावट का आधुनिक सिद्धान्त

सूर्य की भीतरी बनावट की जाँच करने में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

सरल गणना से देखा जा सकता है कि सूर्य के केन्द्र पर दबाव, घनत्व और तापक्रम सभी बहुत अधिक होंगे। वहाँ प्रतिवर्ग इंच पर २०,००,००,००,००० मन का दबाव होगा और तापक्रम ४,००,००,०००° श० होगा। भीतर से बाहर तक सब गैस ही गैस होगी। परन्तु परमाणुओं के सब ऋणाणु वहाँ के अत्यन्त अधिक गरमी के कारण निकल गये होंगे। इसलिए ये बहुत छोटे हो गये होंगे और इनके खूब दब जाने के कारण मध्य भाग गैस होते हुए भी ठोस पदार्थों से अधिक ठस और भारी हो गया होगा। एडिङ्गटन (Eddington) के गणनानुसार शायद यह भाग पानी की अपेक्षा २८ गुना भारी होगा! पृथ्वी पर सबसे भारी पदार्थ प्लैटिनम है, पर यह पानी की अपेक्षा केवल २१ गुना ही भारी है।



चित्र २५६—सूर्य का भीतरी भाग।

यह गैस है, परन्तु तिस पर भी यह प्लैटिनम से सवाई भारी होगी।

अध्याय १०

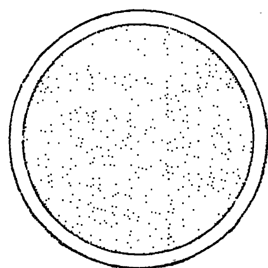
चन्द्रमा

१—**चन्द्रमा**—सूर्य के बाद आकाशीय पिंडों में चन्द्रमा ही सबसे प्रकाशमय और महत्त्वपूर्ण वस्तु है। यदि आकाश में से दो चार सौ नक्षत्र मिट जायँ, या सब ग्रह मिट जायँ, तो साधारणतः किसी को पता भी न लगेगा, परन्तु यदि रात्रि का प्रकाशदाता और कवियों का प्यारा चन्द्रमा मिट जाय तो शीघ्र ही इसका पता सबको लग जायगा और सबसे अधिक हानि तो व्यापार को होगी, क्योंकि बिना चन्द्रमा के ज्वार-भाटा बहुत कम हो जायगा और जहाज़ बन्दरगाह में आ न सकेंगे।

चन्द्रमा केवल कवियों को ही सुन्दर नहीं लगता। इसकी शान्त मूर्त्ति बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी को रोचक जान पड़ती है। बादलों के पीछे दौड़ते हुए और उनके साथ आँखमिचौली खेलते हुए चन्द्रमा को देख कर, बचपन में किसे यह जानने की इच्छा न हुई होगी कि यह क्या है, क्यों इतनी तेज़ी से दौड़ रहा है, क्यों घटता बढ़ता है और क्यों इसके चारों ओर कभी कभी रंगीन चक्र दिखलाई पड़ने लगता है। बड़े होने पर भी, यह जानने की इच्छा कि यह क्या है तृप्त नहीं होती। लड़कपन में "बुढ़िया चरख़ा कात रही है" या कोई "मृग" है ऐसा समझ कर संतोष हो जाया करता था, परन्तु बड़े होने पर वही काले काले धब्बों के विषय में रामचन्द्रजी की तरह हमारे चित्त में भी प्रश्न उठता है।

"कह प्रभु शशि-महँ मेचकताई।
कहहु काह निज निज मति भाई" ॥

प्राचीन काल में चन्द्रमा ही के कारण यदि ज्योतिर्विज्ञान का आरम्भ हुआ हो तो कोई आश्चर्य नहीं। इतना तो निश्चय है कि आधुनिक समय में चन्द्रमा की गति और उसके कारण उत्पन्न हुए ज्वार-भाटा के सम्बन्ध में अनेक अनुसंधान हुए हैं जिनसे गणित-ज्योतिष की बहुत उन्नति हुई है। परन्तु चन्द्र-सम्बन्धी सब पहेलियों का उत्तर आज भी नहीं मिल सका है।

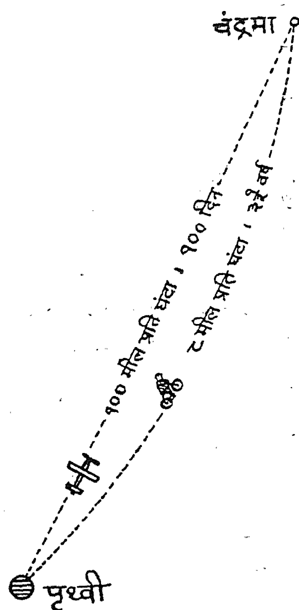


चित्र ३२७—चन्द्रमा कभी छोटा, कभी बड़ा दिखलाई पड़ता है।

इसका कारण यह है कि यह वृत्त में नहीं, दीर्घवृत्त में चलता है। इससे इसकी दूरी, और इसलिए नाप भी, घटा-बढ़ा करती है। इस चित्र में चन्द्रमा के लघुत्तम और महत्तम नापों की तुलना की गई है।

२—दूरी, नाप, वज़न, इत्यादि—जिस रीति से क्षेत्र-मापक (सरवेयर) अगम्य वस्तुओं की दूरी नापता है, ठीक उसी प्रकार की रीति से चन्द्रमा की भी दूरी नापी जा सकती है। पता चला है कि चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर वृत्त में नहीं, दीर्घ-वृत्त में (मोटे हिसाब से), परिक्रमा करता है। इसलिए इसकी दूरी घटा-बढ़ा करती है। इसकी मध्यम दूरी ढाई लाख मील से कुछ कम है। सूर्य की दूरी के हिसाब से चन्द्रमा हमारे बिलकुल पास है, परन्तु तिस पर भी यदि कोई चन्द्रमा की ओर सीधे १०० मील प्रति घंटे के वेग से लगातार उड़ सकता तो उसे वहाँ तक पहुँचने में तीन महीने से अधिक समय लग जाता (चित्र ३५८)। देखने में चन्द्रमा सूर्य के बराबर ही जान पड़ता है, परन्तु वस्तुतः यह है बहुत छोटा। केवल समीप होने के कारण यह सूर्य के बराबर बड़ा दिखलाई पड़ता है। जिस रीति से सूर्य

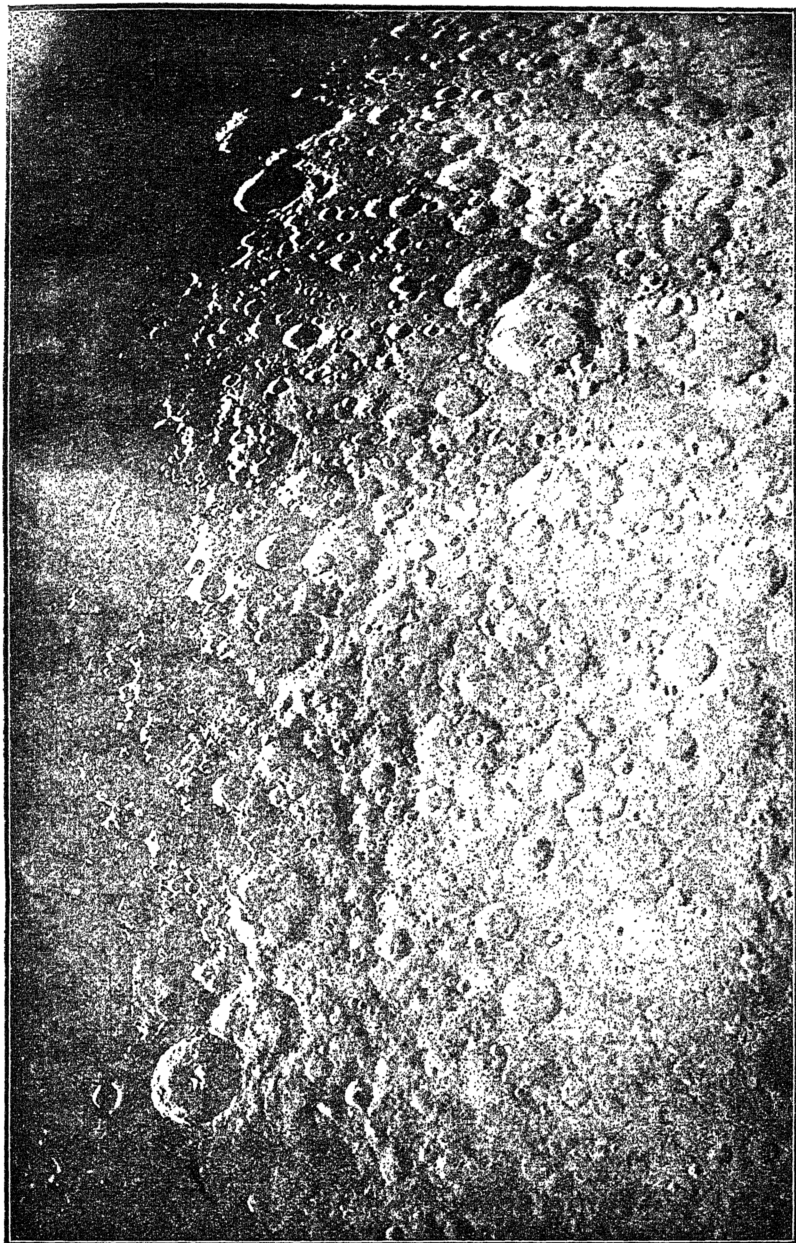
की नाप का पता चला था (चित्र २०२, पृष्ठ २१३), उसी रीति से पता चलता है कि चन्द्रमा का व्यास दो हज़ार मील से कुछ अधिक है (ठीक ठीक इसका व्यास २४६ गज़ कम २,१६० मील है)। इसलिए लगभग साढ़े तीन चन्द्रमाओं को एक पंक्ति में बैठाने से पृथ्वी के व्यास की बराबरी की जा सकेगी। चन्द्रमा का क्षेत्रफल उत्तर और दक्षिण अमेरिका के सम्मिलित क्षेत्रफलों से कुछ कम ही है। उनचास चन्द्रमाओं को पिघला कर एक गोला बनाने पर कहीं पृथ्वी के बराबर गोला बन सकेगा, परन्तु इस गोले की तौल पृथ्वी से बहुत कम होगी, क्योंकि चन्द्रमा के तौलने का उपाय भी गणितज्ञों ने निकाल लिया है और उन्हें यह पता चला है कि चन्द्रमा पृथ्वी की अपेक्षा केवल $\frac{3}{5}$ ही गुना घना है। ८१ चन्द्रमा मिल कर ही पृथ्वी की तौल की बराबरी कर सकते हैं।



चित्र ३४८—चन्द्रमा हमसे लगभग ढाई लाख मील दूर है।

रात-दिन लगातार ८ मील प्रति घंटे के हिसाब से चलते रहने पर वहाँ तक पहुँचने में ३½ वर्ष लग जायगा।

सूर्य पर हमने देखा था कि आकर्षण इतना अधिक है कि वहाँ मनुष्य अपने बोझ से कुचल जायगा, परन्तु चन्द्रमा पर उलटी ही दशा है। वहाँ पर आकर्षण पृथ्वी के आकर्षण का छठा अंश ही है। यदि हम वहाँ पहुँच सकते और वहाँ के वायु-रहित "वायु-मंडल"

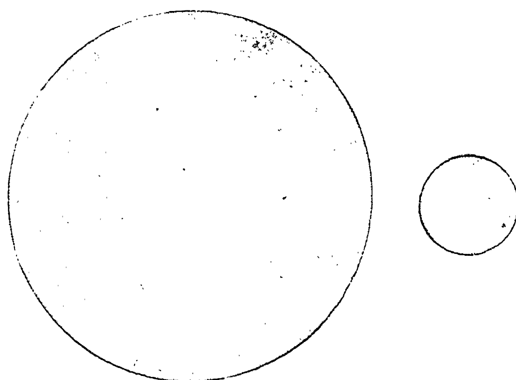


[यराकिज़-बेधशाला

चित्र ३२१—चन्द्रमा; थियोफ़िलस के आस-पास।

थियोफ़िलस नीचे और बाईं ओर के कोने में दिखलाई पड़ रहा है।

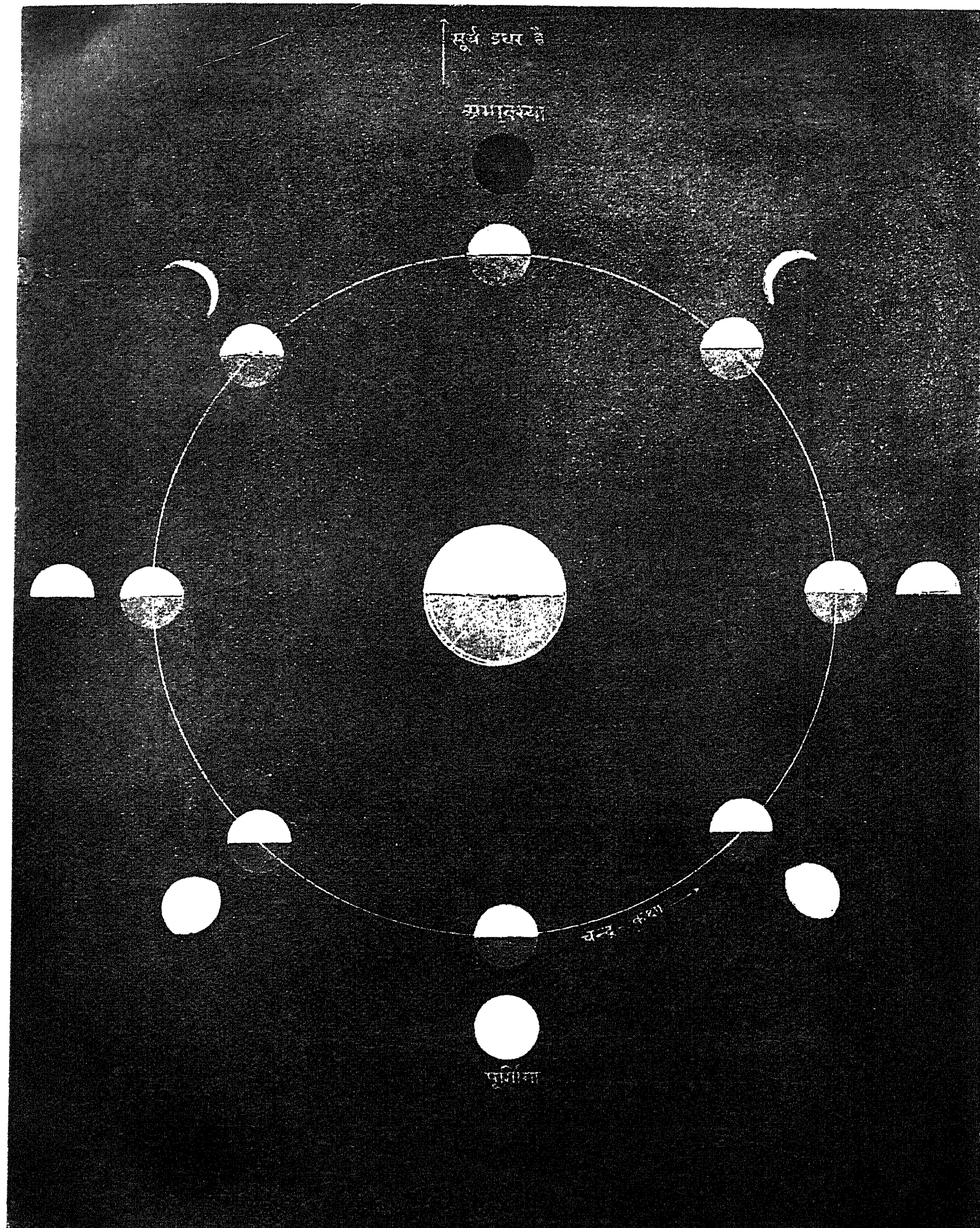
में जोते रह जाते तो हम विचित्र ढंग से लड़खड़ाते चलते। पैर बढ़ाने पर यह दो ढाई फ़ुट पर पड़ने के बदले शायद कई गज़ पर पड़ता या अधिक सम्भव है हमें मालूम होता कि हम गिरे जा रहे हैं और हम डर के मारे बैठ जाते। ऊपर नीचे झूलनेवाले चरखे में नीचे की ओर गिरते समय जैसा हमें मालूम होता है वैसा ही हमें चन्द्रमा पर भी मालूम देता। यदि कहीं चन्द्रमा में भी प्राणी होते और पृथ्वी से वहाँ माल भेजने का सुभीता होता तो यहाँ से भेजा गया एक मन माल कमानीवाली तराज़ू से तौलने पर वहाँ पौने सात सेर भी न उतरता!



चित्र ३६०—चन्द्रमा और पृथ्वी के आकारों की तुलना।

लगभग साढ़े तीन चन्द्रमाओं को एक पंक्ति में बैठाने से पृथ्वी के व्यास की बराबरी की जा सकेगी।

३—चन्द्र-कला—चन्द्रमा के विषय में सबसे प्रत्यक्ष बात यह है कि यह घटता-बढ़ता रहता है—इसमें कलायें दिखलाई पड़ती हैं। इसका कारण समझना सरल है। यदि हम किसी गेंद को आधा काला और सफ़ेद रँग दें और इस प्रकार रँगे हुए गेंद को दूर रख कर भिन्न भिन्न स्थितियों से देखें तो इसका सफ़ेद भाग हमको ठीक चन्द्र-कला सा ही, किसी स्थिति से क्षीण, किसी से अधिक मोटा, दिखलाई पड़ेगा। जिस किसी को इस बात को समझने में ज़रा भी कठिनाई पड़े उसे अवश्य गेंद को रङ्ग कर देख लेना चाहिए

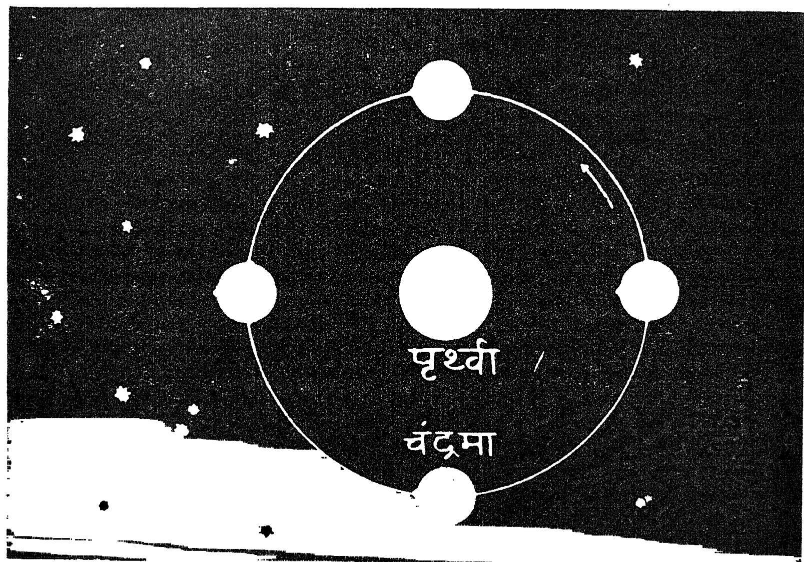


चित्र ३६१—चन्द्रमा में कलायें क्यों दिखलाई पड़ती हैं।

बीच में पृथ्वी है। वृत्त पर चन्द्रमा है। इस वृत्त पर कहाँ रहने से कैसी चन्द्रकला पृथ्वी पर दिखलाई पड़ेगी यह वृत्त के बाहर बने चित्रों से सूचित किया गया है।

अब देखना चाहिए कि इससे चन्द्र-कलाओं के समझने में हमको क्या सहायता मिल सकती है।

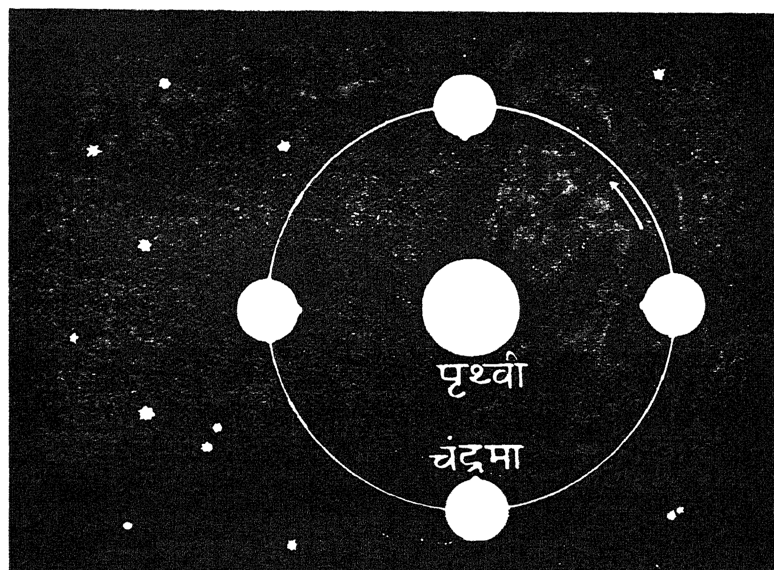
चन्द्रमा गरम नहीं है कि यह सूर्य के समान चमके। इसके जिन भागों पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है, हमको केवल वे ही भाग



चित्र ३६२—यदि चन्द्रमा इस रीति से पृथ्वी-प्रदक्षिण करता तो ज्योतिषी कहते कि यह अपनी धुरी पर नहीं घूमता है।
स्पष्टता के लिए चन्द्रमा पर एक बड़ा सा पहाड़ बना दिया गया है।

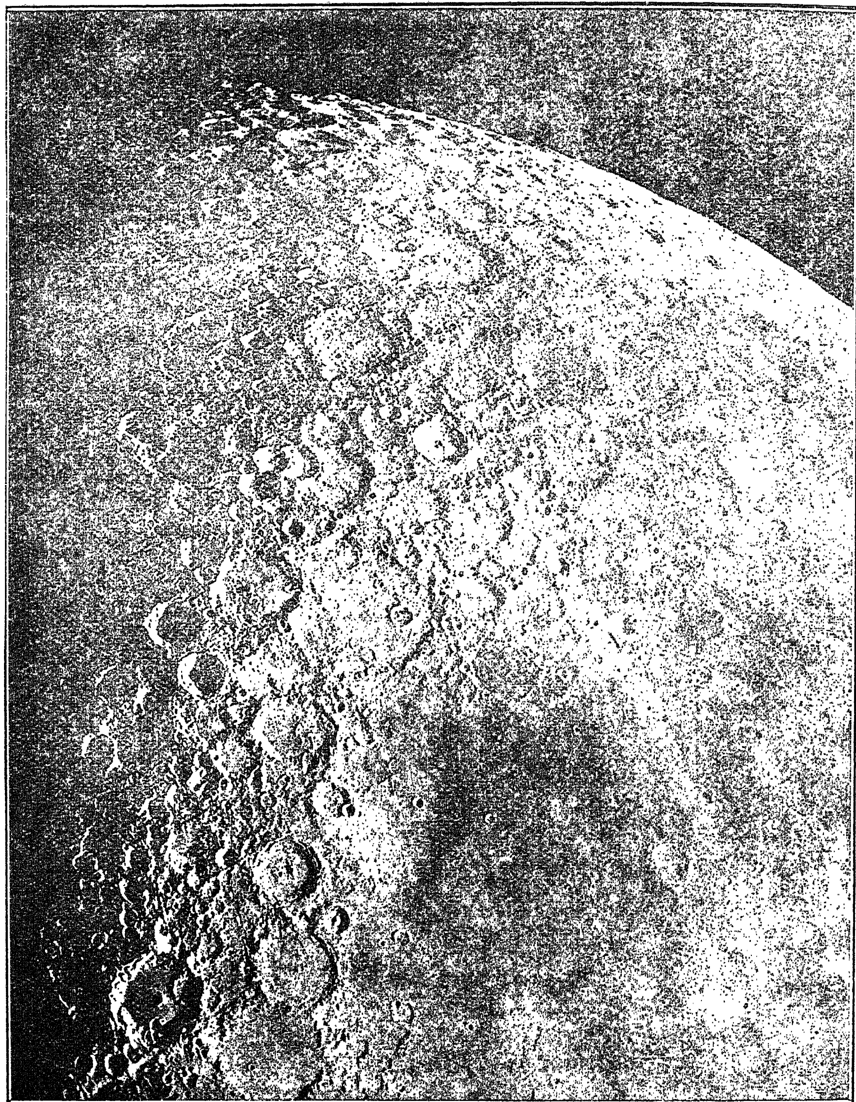
दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा का ठीक आधा भाग प्रकाशित हो जाता है और इसलिए यह ऊपर बतलाये अधरँगे गेंद के सदृश समझा जा सकता है। अब स्पष्ट हो गया होगा कि चन्द्रमा में कलायें (phases) क्यों दिखलाई पड़ती हैं। चित्र ३६१ से यह भी स्पष्ट हो जायगा कि किस स्थिति में कौन सी कला दिखलाई पड़ती है।

इस ज़माने में भी, जब ज्योतिष का ज्ञान इतनी सुगमता से मिल जाता है, चित्रकार द्वितीया के चन्द्रमा को कभी कभी ऊँचे आकाश में अंकित कर देते हैं या इसके शृङ्गों को क्षितिज की ओर दिखला देते हैं या दोनों शृङ्गों के बीच तारा बना देते हैं; परन्तु, ज़रा सा विचार करने पर पता चलेगा कि ये सब बातें असम्भव हैं।



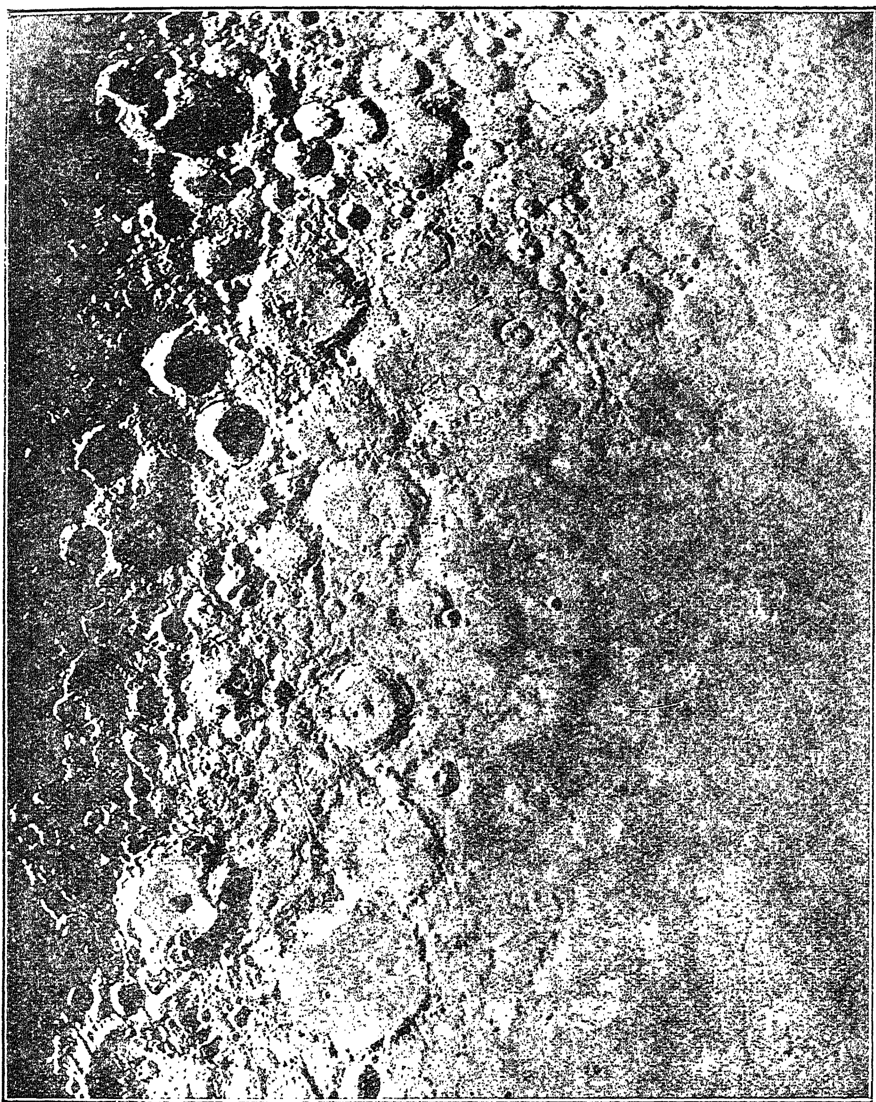
चित्र ३६३—चन्द्रमा इस रीति से पृथ्वी-प्रदक्षिण करता है। इसलिए ज्योतिषी कहते हैं कि चन्द्रमा अपनी धुरी पर घूम भी रहा है।

४—चन्द्रमा अपनी अक्ष पर घूमता है—चन्द्रमा का एक ही मुख हम देख सकते हैं। दूसरी ओर क्या है यह कभी नहीं देखा जा सकता, क्योंकि चन्द्रमा सदा पृथ्वी ही की ओर मुँह करके घूमता है। इसी बात को ज्योतिषी यों कहते हैं कि चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है और साथ ही यह अपनी धुरी पर भी घूमता



[माउन्ट विलसन; १०० इंचवाला दूरदर्शक

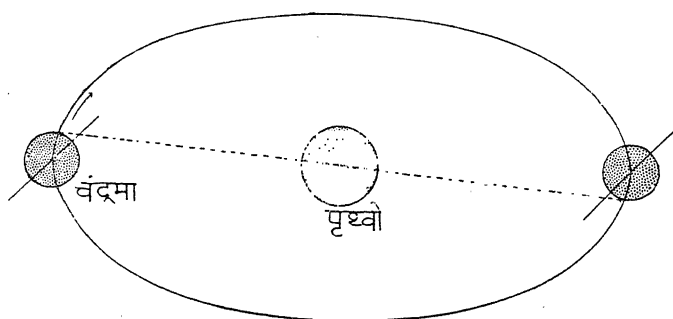
चित्र २६४—चंद्रमा; दक्षिण ध्रुव के समीपवर्ती भाग।



[माउन्ट विलसन; १०० इंच

चित्र २६४—चंद्रमा; टाइको से टालिमेयस तक।

है । एक बार घूमने और एक चक्कर लगाने में ठीक एक ही समय लगता है; इसी लिए चन्द्रमा का एक ही मुख हमको दिखलाई पड़ता है । क्यों ज्योतिषी ऐसा कहते हैं यह समझना सरल और रोचक है, इसी लिए यहाँ इसे समझा दिया जाता है । यदि चन्द्रमा चित्र ३६२ में दिखलाई गई रीति से पृथ्वी-प्रदक्षिणा करता तो ज्योतिषी कहते कि चन्द्रमा अपनी धुरी पर घूमता नहीं है; इसका कारण यह है कि नक्षत्रों के हिसाब से चन्द्रमा सचमुच नहीं घूम रहा है ।

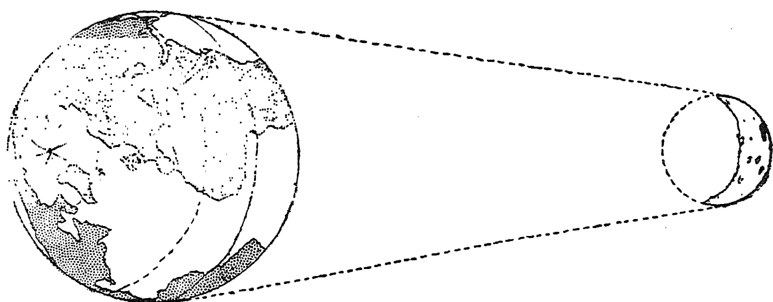


चित्र ३६६—चन्द्र-पृष्ठ का कभी हम ऊपर का कुछ भाग अधिक और कभी नीचे का कुछ भाग अधिक देख पाते हैं ।

स्पष्टता के लिए धुरी यथार्थ से अधिक तिरछी दिखलाई गई है ।

परन्तु चन्द्रमा चित्र ३६३ में दिखलाई गई रीति से पृथ्वी-प्रदक्षिणा करता है । इसलिए ज्योतिषी कहते हैं कि चन्द्रमा अपनी धुरी पर घूम रहा है। नक्षत्रों के हिसाब से चन्द्रमा वस्तुतः घूम रहा है, क्योंकि यदि दाहिनी ओर की दिशा को पूर्व कहा जाय तो स्पष्ट है कि चन्द्रमा के केन्द्र से इसके ऊपर दिखलाये गये पहाड़ तक जानेवाली रेखा कभी पश्चिम, कभी दक्षिण, कभी पूर्व और कभी उत्तर की ओर हो जाती है । चन्द्रमा के केन्द्र को पृथ्वी के केन्द्र से जोड़नेवाली

रेखा के हिसाब से चन्द्रमा चित्र ३६३ में अवश्य नहीं घूम रहा है। यही कारण है कि साधारणतः लोग समझते हैं कि चन्द्रमा अपनी धुरी पर नहीं घूम रहा है। परन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि पृथ्वी-चन्द्रमावाली रेखा तो स्वयं घूम रही है, उसके हिसाब से दिशा बतलाना ठीक नहीं है। ऊपर का प्रश्न वैसा ही है जैसे रेल-गाड़ी में एक मक्खी चुपचाप बैठी हो और कोई प्रश्न करे कि मक्खी चल रही है या नहीं। गाड़ी के हिसाब से मक्खी अवश्य स्थिर है, चल नहीं रही है। इसलिए कहा जा सकता है कि मक्खी चल नहीं



चित्र ३६७—पृथ्वी के घूमने के कारण भी हम अगल-बगल के भागों को कुछ अधिक दूर तक देख सकते हैं।

रही है। परन्तु इस पर कोई पूछ बैठे कि यदि मक्खी चलती नहीं है तो आख़िर यह एक स्टेशन से दूसरे पर कैसे पहुँच जाती है तो क्या उत्तर दीजिएगा?

५—चन्द्रमा की पीठ नहीं देखी गई है—हम चन्द्रमा की कुल सतह का केवल आधा ही नहीं, आधे से कुछ अधिक देख पाते हैं। इसका कारण यह है कि चन्द्रमा की धुरी इसके मार्ग के धरातल से समकोण नहीं बनाती। इससे कभी हम ऊपर का कुछ भाग अधिक और कभी नीचे का कुछ भाग अधिक देख पाते हैं

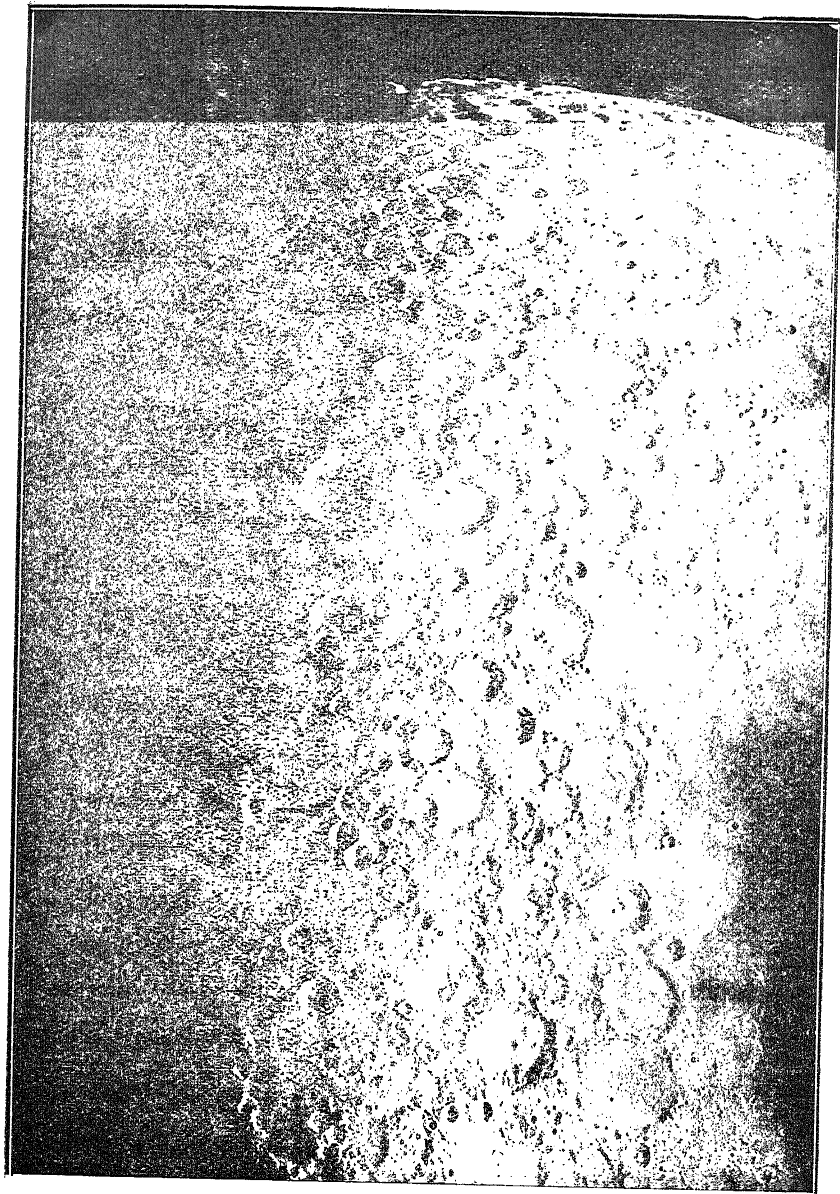
(चित्र ३६६)। इसी प्रकार चन्द्रमा के प्रदक्षिणा करने की गति के एक-समान न होने के कारण हम कभी एक बगल कभी दूसरे बगल का कुछ भाग अधिक देख पाते हैं। पृथ्वी के घूमने के कारण भी हम अगल बगल के भागों को कुछ अधिक दूर तक देख सकते हैं (चित्र ३६७)।

इस प्रकार कुल मिला कर चन्द्रमा का १०० में ५९ भाग हमको कभी न कभी दिखलाई पड़ जाता है।

६—**नक़्शा**—चन्द्रमा पर जो काले काले धब्बे दिखलाई पड़ते हैं और जो सुबह शाम चन्द्रमा के कम चमकीला होने के कारण अधिक स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं, केवल यहाँ ही नहीं, यूरोप में भी पहले "शशि महँ प्रगट भूमि कै झाई" कह कर समझाये जाते थे, परन्तु ये धब्बे चन्द्रमा पर स्थायीरूप से, सदा निश्चित स्थानों पर ही, दिखलाई देते हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि वस्तुतः ये पृथ्वी के प्रतिबिम्ब नहीं हो सकते। यदि वे ऐसे होते तो आकाश में भिन्न भिन्न स्थानों पर पहुँचने पर और इसलिए पृथ्वी के भिन्न भिन्न भागों का प्रतिबिम्ब होने पर इनका स्वरूप बदलना चाहिए था।

गैलीलियो के दूरदर्शक-सम्बन्धी आविष्कार के बाद इस प्रकार का सब सन्देह मिट गया। गैलीलियो ने स्पष्ट रूप से देखा और इस बात की घोषणा की कि चन्द्रमा पर पहाड़, पहाड़ियाँ इत्यादि हैं, जिनसे चन्द्रमा का बिम्ब सपाट नहीं दिखलाई पड़ता। काले धब्बों को उसने समुद्र समझ लिया, क्योंकि छोटे दूरदर्शक से इनके भीतर कोई पहाड़ इत्यादि दिखलाई नहीं पड़ते।

गैलीलियो ने स्वयं चन्द्रमा का नक़्शा बनाया, वह इतना भद्दा है कि अब वह किसी काम का नहीं है। उस समय से आज तक चन्द्रमा के कई नक़्शे और चित्रावलियाँ बनी और छपी हैं, परन्तु संसार के सबसे बड़े (१०० इंचवाले) दूरदर्शक से लिये गये

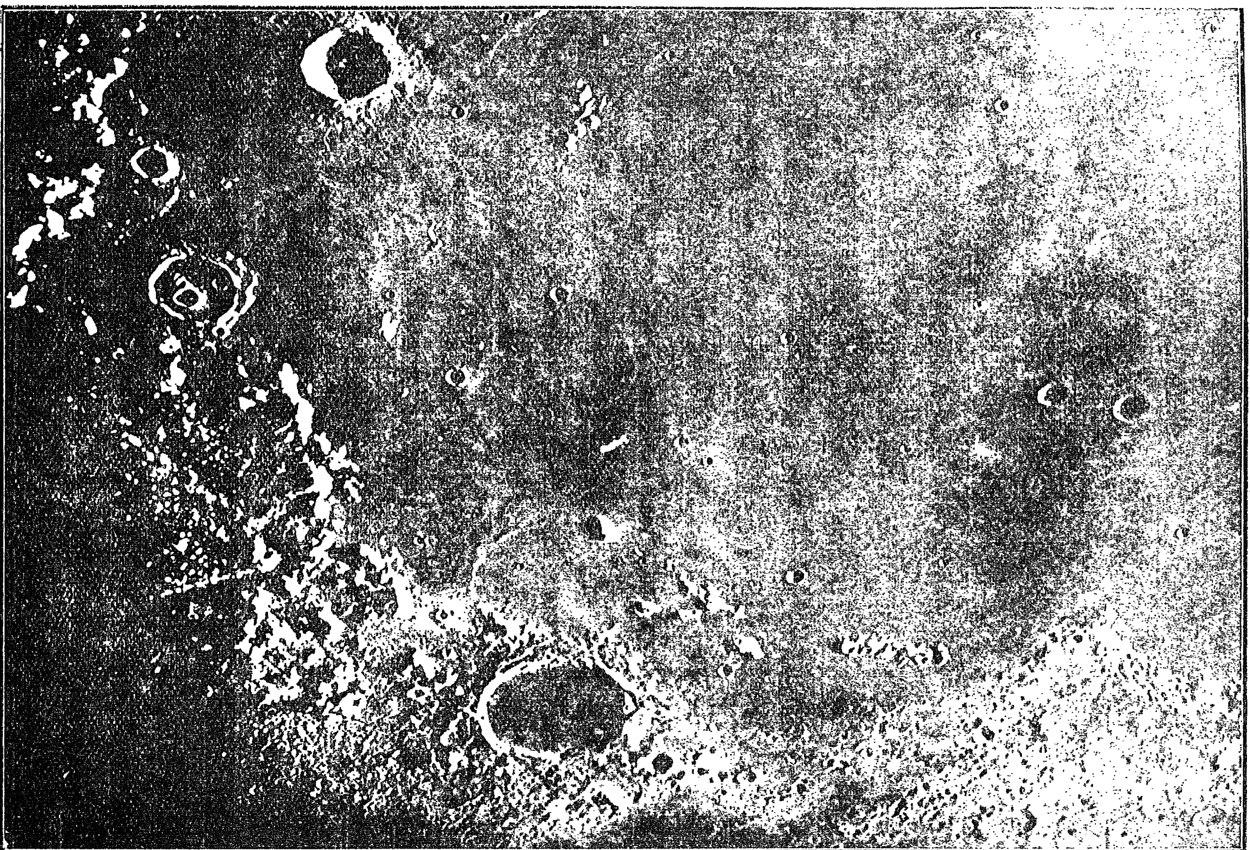


[हेल

चित्र २६८—चन्द्रमा; दक्षिण ध्रुव से हिपारकस तक।

फ़ोटोग्राफ़ों में जो सचाई और सुन्दरता आती है वह किसी नक़शे में नहीं आ सकती; परन्तु, दुःख है कि इस दूरदर्शक से इने गिने ही फ़ोटोग्राफ़ लिये गये हैं, सो भी केवल यह देखने के लिए कि दूरदर्शक शुद्ध बना है अथवा नहीं। यह दूरदर्शक लगातार अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों में (विशेष कर नक्षत्र-सम्बधी अनुसंधानों में) लगा रहता है और इसलिए चन्द्र-फ़ोटोग्राफ़ी के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। इस दूरदर्शक से लिये गये कुछ फ़ोटोग्राफ़ यहाँ दिखलाये जाते हैं (चित्र ३६४, ३६५, ३६८, ३६९, ३७० और ३८८)।

चन्द्रमा के पहाड़, पहाड़ियों, इत्यादि का नाम विचित्र ढंग से रक्खा गया है। बड़े बड़े मैदानों को पुराने लोगों ने गैलीलियो के मतानुसार समुद्र मान कर "शान्ति सागर" Mare Tranqilitaits), "वर्षा सागर" (Mare Imbrium) "प्रशान्त सागर" (Mare Serenitatis), "रस सागर" (Mare Humorum), "संकट सागर" (Mare Crisium), "अमृत सागर" (Mare Nectaris), इत्यादि, नाम रख दिया है। चन्द्रमा के दस पर्वत-श्रेणियों में से अधिकांश का नाम वही रक्खा गया है जो पृथ्वी के पर्वतों का है, जैसे अपेनाइन्स (Apennines), ऐल्प्स (Alps), कॉकेशस, इत्यादि। दो चार का नाम ज्योतिषियों या गणितज्ञों के नाम से भी प्रसिद्ध हैं, जैसे लाइबनिज़ (Leibnitz) पहाड़, डैलम्बर्ट (D'Alembert) पहाड़, इत्यादि। ज्वालामुखी पहाड़ों के मुख के समान बड़े बड़े "ज्वालामुखों" (crater) को प्राचीन और मध्य-कालीन ज्योतिषियों और दार्शनिकों का नाम दिया गया है, जैसे प्लेटो (Plato), आर्किमिडीज़ (Archimedes, टाइको (Tycho), कोपरनिकस (Copernicus), केपलर (Kepler), इत्यादि। सैकड़ों छोटे छोटे ज्वालामुखों को आधुनिक ज्योतिषियों का नाम दिया गया है। मालूम नहीं भविष्य के ज्योतिषियों को कहाँ स्थान मिलेगा।



[माउन्ट विलसन; १०० इंच

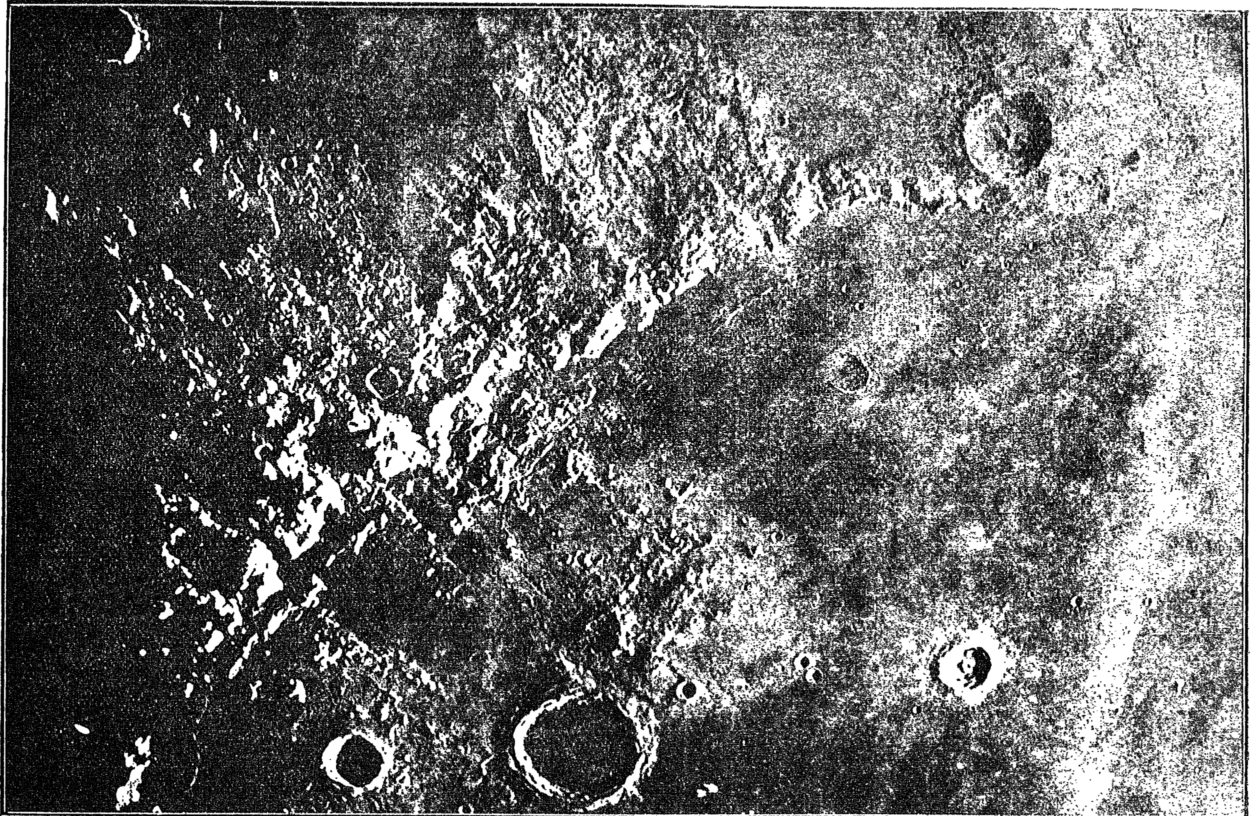
चित्र ३६१—चंद्रमा; इम्ब्रियम "सागर"।

ऊपर, केन्द्र से कुछ बाईं ओर, अरिस्टिलस है, नीचेवाला बड़ा ज्वालामुख प्लेटो है। देखिए सागर जल-रहित है। इसमें कई एक नन्हे नन्हे ज्वालामुख छिटके हुए हैं। इसके बीच में पड़ी चोटियों की लम्बी लम्बी परछाइयाँ स्पष्ट और सुन्दर दिखलाई पड़ रही हैं।

चन्द्रमा का छोटा सा एक नक़्शा यहाँ दिया जाता है जिसकी सहायता से चन्द्रमा के मुख्य मुख्य लक्षणों की पहचान की जा सकती है (चित्र ३७१)।

७—**चन्द्रमा की आकृति**—दूरदर्शक से देखने पर, विशेषत: यदि यह आठ दस इंच व्यास का हो, चन्द्रमा अत्यन्त सुन्दर जान पड़ता है। पहिली बार चन्द्रमा को दूरदर्शक द्वारा देखने पर प्रत्येक व्यक्ति अवश्य इसके सौन्दर्य से मुग्ध हो जाता है। जिन्हें असली बातों का पता नहीं है वे समझते हैं कि पूर्णिमा का चन्द्रमा सबसे सुन्दर लगता होगा, परन्तु यह बात सत्य नहीं है। द्वितीया से लेकर द्वादशी या त्रयोदशी तक यह अधिक सुन्दर जान पड़ता है और तब भी इसका वही भाग जो प्रकाशित और अप्रकाशित भागों की संधि के पास पड़ता है। बात यह कि वहाँ सूर्य का प्रकाश तिरछी दिशा से पड़ता है और इसलिए परछाइयाँ लम्बी पड़ती हैं और सुगमता से देखी जा सकती हैं। पूर्णिमा के दिन एक तो प्रकाश अधिकांश भागों में खड़ा पड़ता है और फिर हम इसको उसी दिशा से देखते हैं जिस दिशा से प्रकाश आता है (यह बात चित्र ३६१ पृष्ठ ४११ से स्पष्ट हो जायगी)। इसलिए जो साया पड़ती भी है वह हमको नहीं दिखलाई पड़ती। साया के दिखलाई न पड़ने से चन्द्रमा सर्वत्र प्राय: एक सा चमकीला दिखलाई पड़ता है और इसलिए यह सुन्दर नहीं जान पड़ता।

दूरदर्शक से चन्द्रमा को देखते समय, या यहाँ दिये गये फ़ोटोग्राफ़ों की जाँच करते समय देखना चाहिए कि कैसी सुन्दर रीति से ज्वालामुखों का एक भाग धूप में चमकता है और दूसरी ओर परछाईं, स्पष्ट और काली, दिखलाई पड़ती है। छोटे छोटे ज्वालामुख ठीक चेचक के दाग़ की तरह स्पष्ट गड्ढे जान पड़ते हैं। बाज़ के मध्य में और कहीं कहीं "सागरों"



[माउन्ट विलसन; १०० इंच

चित्र २७०—चन्द्रमा, अपेनाइन्स पर्वत और इम्ब्रियम सागर।

दहिनी और नीचेवाले आधे भाग में इम्ब्रियम सागर है। बाईं और ऊपरवाले भाग में अपेनाइन्स है। नीचेवाला सबसे बड़ा ज्वालामुख आर्किमिडीज़ है। यह चित्र संसार के सबसे बड़े दूरदर्शक से लिया गया है। देखिए छोटे से छोटा ब्योरा कितना स्पष्ट और सुन्दर दिखलाई पड़ता है।

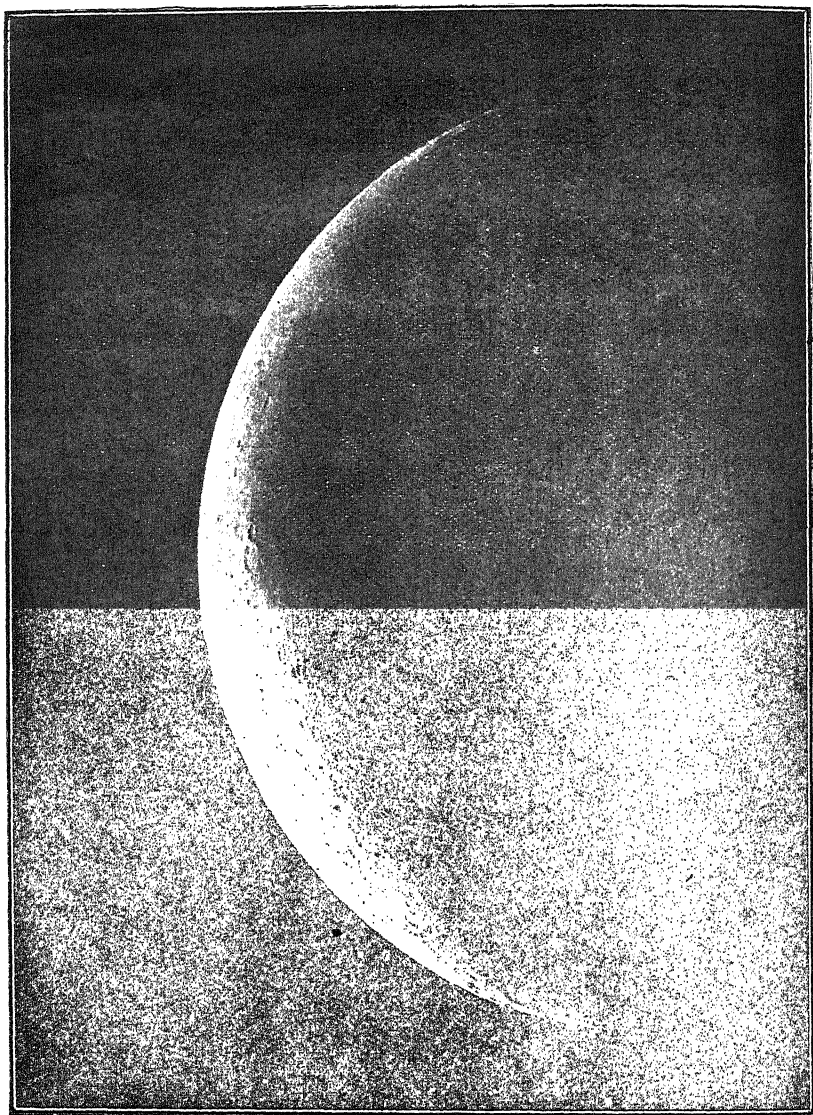
के तल में भी, कोई चोटी पृथक् दिखलाई पड़ती है और इसकी परछाईं भी स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है। कहीं कहीं अप्रकाशित भाग की ऊँची ऊँची चोटियाँ सूर्य के प्रकाश में पड़कर चमकती दिखलाई पड़ती हैं, यद्यपि उनके जड़ तक अभी तक रोशनी नहीं पहुँची है और इसके वहाँ तक पहुँचने में घंटे दो घंटे लगेंगे। इन पहाड़-पहाड़ियों की करकराती तीक्ष्णता में, उनके स्वच्छ प्रकाश में और उनकी काली काली परछाइयों में जो सौन्दर्य दूरदर्शक में दिखलाई पड़ता है, उसका दशम अंश भी यहाँ दिये गये चित्रों में नहीं लाया जा सकता।

अपने दूरदर्शक से गैलीलियो जिन आश्चर्य-जनक आकाशीय दृश्यों को देख सका था उनके वर्णन को वह चन्द्रमा ही से आरम्भ करता है। उसने लिखा है "चतुर्थी या पञ्चमी को, जब चन्द्रमा हमको चमकते हुए शृङ्गों के साथ दिखलाई पड़ता है, प्रकाशित और अप्रकाशित भागों की संधि अटूट नहीं दिखलाई पड़ती, जैसा इसको त्रुटि-रहित गोलाकार पिंड के लिए होना चाहिए। यह संधि तो एक टेढ़ी-मेढ़ी और टूटी-फूटी रेखा होती है, क्योंकि कई एक मसों के समान उभड़े और चमकते हुए विन्दु प्रकाशित भागों की हद के बाहर बढ़ कर अप्रकाशित भाग में आ जाते हैं और उधर साये के कुछ टुकड़े प्रकाशित भाग में घुस जाते हैं। × × ×

"फिर, केवल इतना ही नहीं कि प्रकाश और साये की हद टेढ़ी और टूटी दिखलाई पड़े, यह भी दिखलाई पड़ता है, और इसी से अधिक आश्चर्य होता है, कि कई एक चमकीले विन्दु चन्द्रमा के काले भाग में, प्रकाशित सतह से बिलकुल टूटे हुए और बिलकुल पृथक् दिखलाई पड़ते हैं और ये उससे कुछ कम दूर पर नहीं होते। ये विन्दु थोड़ी देर में धीरे धीरे आकार और चमक में बढ़ते हैं

चित्र ३७१—चन्द्रमा का नक़शा।

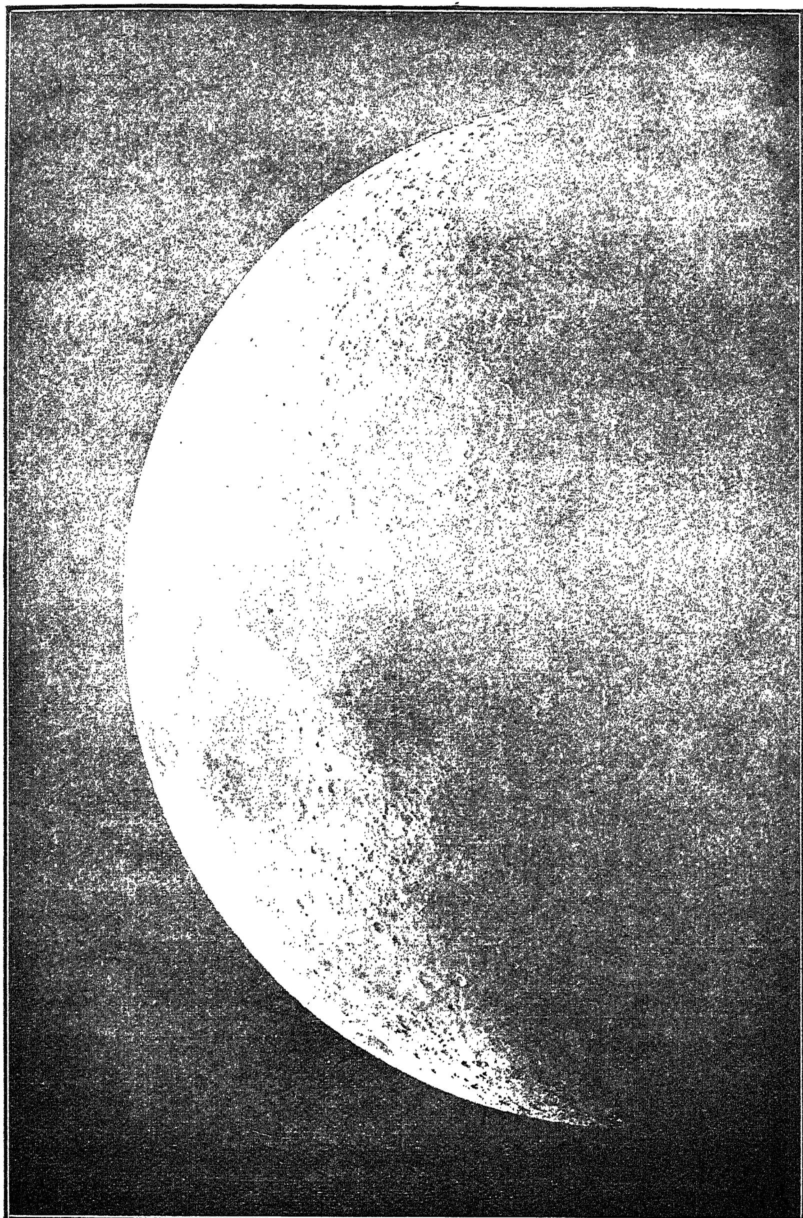
इससे चन्द्रमा के मुख्य मुख्य लक्षणों की पहचान सुगमता से की जा सकती है।



[मेलॉट; ग्रिनिच

चित्र ३७२—चन्द्रमा।

अमावस्या के २६ दिन बाद का चित्र।

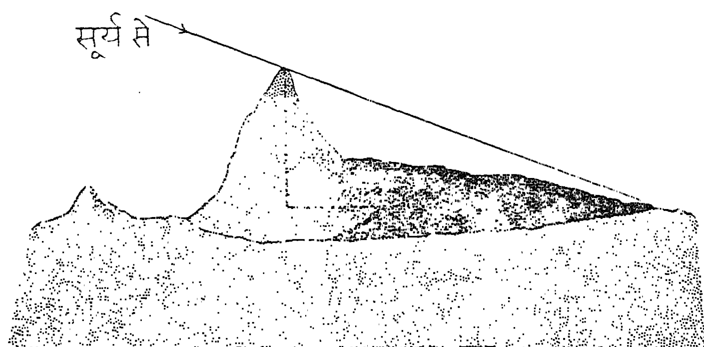


[पेरिस-बेधशाला

चित्र २७३—चन्द्रमा।

अमावस्या के ९ दिन २३ घंटे बाद का चित्र।

और घंटे दो घंटे बाद शेष चमकीले भाग में मिल जाते हैं जो अब पहले से कुछ बड़ा हो जाता है, परन्तु इतने समय में दूसरे, एक यहाँ और एक वहाँ, प्रकाश पाकर निकल पड़ते हैं, जैसे ये उग आवें। फिर ये बढ़ते हैं और अन्त में उसी प्रकाशित सतह में जा मिलते हैं जो अब और भी बड़ी हो गई रहती है। अब, क्या पृथ्वी पर सूर्योदय के पहले यह नहीं होता कि समथल मैदान साये में ही पड़ा रहे और सबसे ऊँचे पहाड़ की चोटियाँ सूर्य की रश्मियों

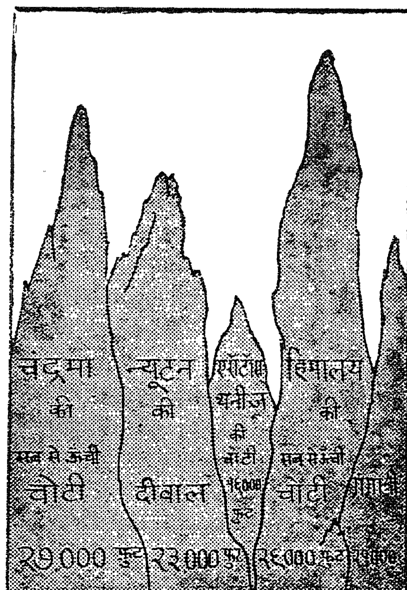


चित्र २७४—चन्द्रमा के पहाड़ों की उँचाई उनकी परछाईं नापने से जानी जा सकती है।

से प्रकाशित हो जायँ? थोड़े समय बाद क्या प्रकाश कुछ अधिक नहीं फैलता, जब पहाड़ के मध्य और चोटी से मोटे भागों को रोशनी मिलती है? और अन्त में, जब सूर्य उग आता है तो क्या मैदान और चोटी के प्रकाशित भाग नहीं मिल जाते हैं? परन्तु जान पड़ता है कि चन्द्रमा की चोटियों और गड्ढों की विशालता, नाप में और विस्तार में, पृथ्वो की उँचाई-नीचाई को मात कर देती है"।

८—पहाड़ों की उँचाई—गैलीलियो का अनुमान ठीक था। चन्द्रमा के पहाड़ यहाँ के पहाड़ों से साधारणतः ऊँचे हैं और

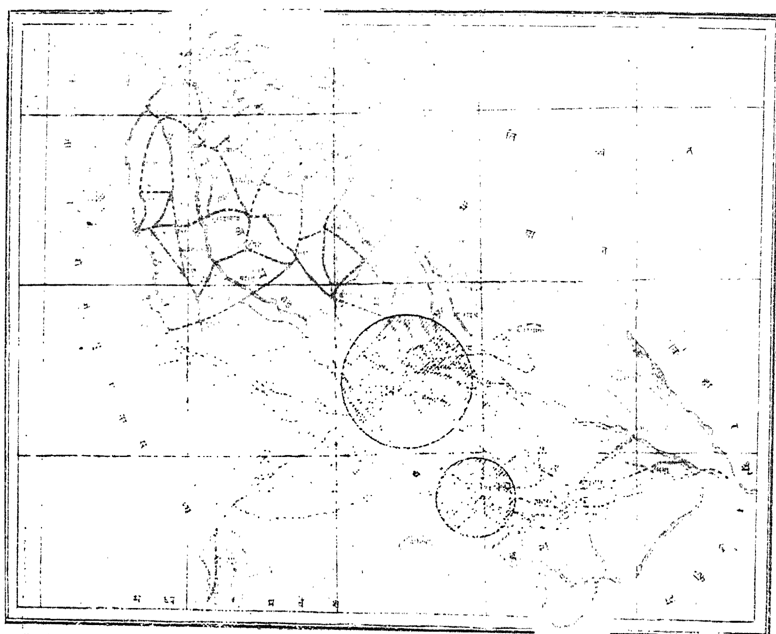
इसलिए, चन्द्रमा के छोटे आकार पर ध्यान रखते हुए कहना पड़ता है कि चन्द्रमा की सतह बहुत ही नीची ऊँची है। पहाड़ों की उँचाई उनकी परछाईं नापने से जानी जाती है (चित्र ३७४)। फ़ोटोग्राफ़ में छाया को नापने से, और फ़ोटोग्राफ़ के पैमाने को जान कर, तुरन्त बतलाया जा सकता है कि परछाईं कितनी लम्बी है। फिर, सूर्य के दिशा का ज्ञान रहता ही है। इसलिए चन्द्रमा के उस पहाड़ पर से क्षितिज (horizon) की अपेक्षा सूर्य कितना ऊँचा दिखलाई देता होगा इसकी भी गणना सुगमता से की जा सकती है। तब सरल रेखागणित (या त्रिकोणमिति) से पहाड़ की उँचाई तुरन्त मालूम हो जाती है। बाज़ चोटियाँ २७,००० फ़ुट तक ऊँची हैं (चित्र ३७५)।



चित्र ३७५—चन्द्रमा और पृथ्वी के पर्वत-शिखरों की उँचाई की तुलना।

८—चन्द्रमा के पहाड़ इत्यादि—चन्द्रमा पर जो वस्तुएँ दिखलाई पड़ती हैं वे पाँच जातियों में बाँटी जा सकती है :—(१) "ज्वाला-मुख" जो पृथ्वी के ज्वालामुखी पहाड़ों के समान दिखलाई पड़ते हैं; (२) मैदान, जिनको गैलीलियो ने समुद्र समझा था; (३) पहाड़, जो पृथ्वी के पहाड़ों के ही समान हैं; (४) दरार, जो पहाड़ या मैदानों के फट जाने

से बन गये हैं। कई एक दरार मीलों लम्बे हैं; (५) चमकीली धारियाँ जो बाज़ ज्वालामुखों से निकलती हैं और अक्सर सैकड़ों मील लम्बी होती हैं।



चित्र ३७६—**चन्द्रमा के कुछ ज्वालामुखों की नाप।**

इस चित्र में चन्द्रमा के दो ज्वालामुखों, हिपारकस और कोपरनिकस, की तुलना संयुक्त-प्रान्त से की गई है।

ज्वालामुख प्याले या थालियों के समान और सब नाप के होते हैं। बाज़ तो इतने छोटे हैं कि वे बड़े से बड़े दूरदर्शक में मुश्किल से दिखलाई पड़ते हैं और बाज़ का व्यास १०० मील से भी अधिक है (चित्र ३७६)। इनकी संख्या कुल मिला कर ३०,००० से अधिक है। इनकी दीवालों की उँचाई भी २०,००० फ़ुट तक



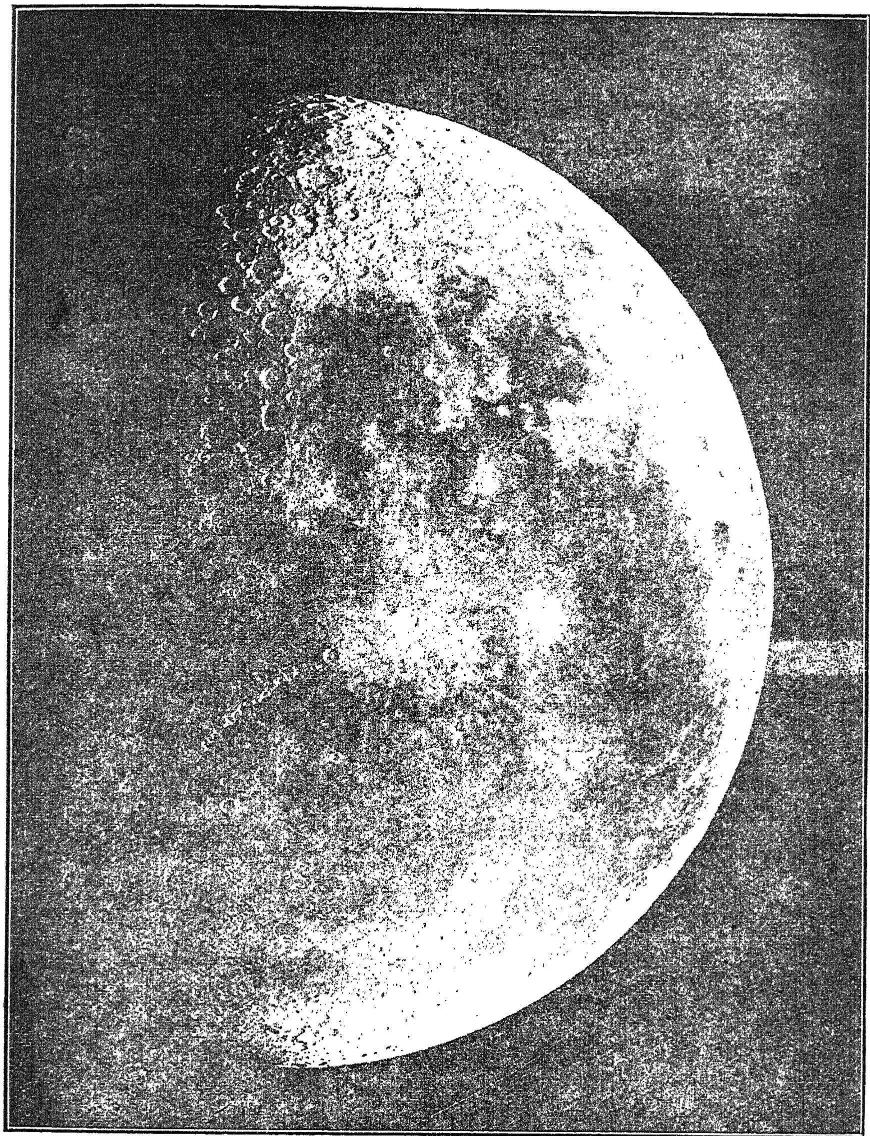
[पेरिस-बेधशाला

चित्र ३७७—**चन्द्रमा।**

अमावस्या के ६ दिन २३ घंटे बाद का चित्र।

होती है। बहुत से ज्वालामुखों के मध्य में एक चोटी दिखलाई पड़ती है, परन्तु बाज़ में ये चोटियाँ नहीं भी रहतीं, बाज़ में इनका लेश-मात्र ही रहता है। पहाड़ सब पृथ्वी के पहाड़ों के समान ही हैं। चन्द्रमा में सबसे बड़ा पहाड़ अपेनाइन्स है जो साढ़े चार सौ मील लम्बा है। मैदान पूर्णतया समथल नहीं होते। जैसा फ़ोटो-ग्राफ़ों को देखने से भी पता चलता है, उनमें मेंड़ और टीले भी दिखलाई पड़ते हैं। बीच बीच में थोड़े से ज्वालामुख भी छिटके रहते हैं। चमकीली धारियाँ पूर्णिमा के दिन ख़ूब अच्छी तरह दिखलाई पड़ती हैं (चित्र ३९, पृष्ठ ४९)। ये न तो पहाड़ों की तरह उभरी हैं और न दरारों की तरह गड्ढे हैं, क्योंकि इनको साया नहीं पड़ती। इनकी उत्पत्ति अभी तक ठीक ठीक मालूम नहीं है, परन्तु कुछ लोगों का मत है कि ये अत्यन्त प्राचीन काल में दरार फटने से और फिर भीतर से हलके रंग के पदार्थों के निकल कर इन दरारों के भर देने से बनी होंगी। टाइको नाम के ज्वालामुख से जो धारियाँ निकलती हैं वे बहुत लम्बी और स्पष्ट हैं। इनकी चौड़ाई आठ दस मील होती है। दरार की तरह ये धारियाँ भी मैदान, पहाड़, ज्वालामुख, इत्यादि को पार करती चली जाती हैं और न उनकी चौड़ाई में और न उनके रंग में अन्तर पड़ता है।

१०—दूरदर्शक से चन्द्रमा कितना बड़ा दिखलाई पड़ता है—चन्द्रमा सब आकाशीय पिंडों से निकट है; इसलिए स्वभावत: लोग यह जानना चाहते हैं कि यदि चन्द्रमा पर मनुष्य होते तो क्या वे, या उनके मकानात, हमारे बड़े बड़े दूरदर्शकों में दिखलाई पड़ते। सबसे बड़े दूरदर्शक (१०० इंचवाले) से चन्द्रमा इतना बड़ा दिखलाई पड़ता है जैसे यह ५० मील पर रख दिया जाय और हम उसको बिना दूरदर्शक के देखें। साथ ही वायु-मंडल से उत्पन्न हुई



[पेरिस-बेधशाला।

चित्र ३७८—चन्द्रमा।

अमावस्या के २० दिन १९ घंटे बाद का चित्र।

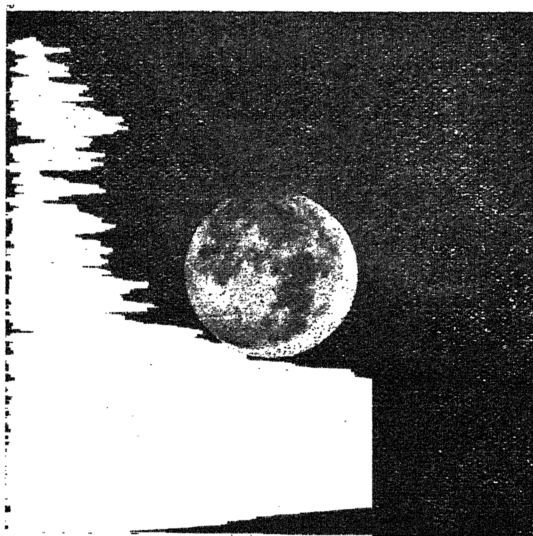
अस्थिरता भी बहुत बढ़ जाती है और चन्द्रमा हमको इस दूरदर्शक-द्वारा इस प्रकार दिखलाई पड़ता है जैसे हम इसको कई मील गहरे बहते हुए पानी द्वारा देखते हों। इसलिए स्पष्ट है कि चन्द्रमा की दो चार गज़ लम्बी चौड़ी वस्तुएँ हमको नहीं दिखलाई पड़ सकतीं। साधारण मकानात भी नहीं दिखलाई पड़ सकते। हाँ, यदि वहाँ बड़े बड़े शहर होते तो वे हमको अवश्य दिखलाई पड़ते। परन्तु यह जानने के लिए कि वहाँ मनुष्य के समान प्राणी रहते हैं या नहीं हमको शहर, इत्यादि, ऐसे लक्षणों के खोजने की कोई आवश्यकता नहीं है। जैसा आगे बतलाया जायगा। हम तर्क-शक्ति से देख सकते हैं कि वहाँ कोई प्राणी न होंगे।

बड़े दूरदर्शकों की सहायता न मिलने पर भी हम चन्द्रमा के प्रत्यक्ष भाग के पहाड़-पहाड़ियों को पृथ्वी की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानते हैं, क्योंकि अफ़रीका और उत्तरी एशिया के विषय में अब तक भी हमको पूर्ण ज्ञान नहीं है। हाँ, हवाई जहाज़ों से फ़ोटो-ग्राफ़ी की उन्नति देखकर ऐसा जान पड़ता है कि शीघ्र ही यह बात झूठी पड़ जायगी।

११—चन्द्रमा से पृथ्वी भी चन्द्रमा के समान दिखलाई पड़ती होगी—आपने देखा होगा कि वायु-मंडल के स्वच्छ रहने पर अकसर द्वितीया, तृतीया को चमकता हुआ चन्द्रमा धनुषाकार तो दिखलाता ही है, परन्तु साथ ही चन्द्रमा का अप्रका-शित भाग भी मन्द मन्द चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है (चित्र ३७९)। शायद आपने यह भी देखा होगा कि नवीन चन्द्रमा इस मन्द प्रकाशवाले चन्द्रमा से बड़े व्यास का जान पड़ता है और शायद आपने इस पर आश्चर्य भी किया होगा।

नवीन चन्द्रमा बड़ा तो प्रकाश-प्रसरण (irradiation) के कारण दिखलाई पड़ता है (पृष्ठ ३६३ देखिए)। जैसे सब चमकीली

वस्तुएँ अपने असली आकार से बड़ी जान पड़ती हैं, उसी प्रकार यह नवीन चन्द्रमा भी कुछ बड़ा जान पड़ता है। अब रह गई अप्रकाशित भाग के दिखलाई पड़ने की बात। उसका कारण यह है कि द्वितीया या तृतीया को, जब हमें चन्द्रमा क्षीण दिखलाई पड़ता है, तब पृथ्वी का प्रकाशित भाग चन्द्रमा की



[यरकिज़-वेधशाला

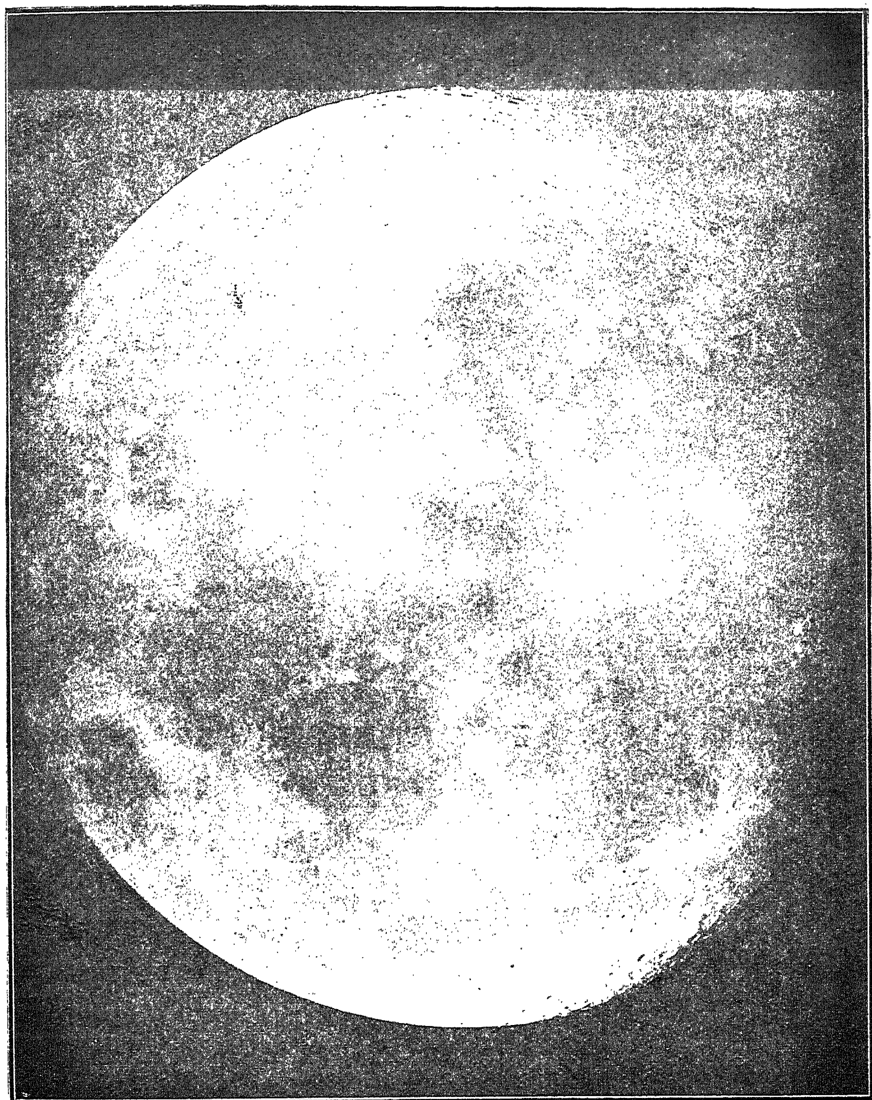
चित्र २७९—द्वितीया या तृतीया को चन्द्रमा के प्रकाशित भाग के साथ इसका शेष भाग भी मन्द प्रकाश से चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है।

ओर रहता है। यह बात चित्र ३६१ की जाँच करने से स्पष्ट हो जायगी। इसलिए सूर्य के प्रकाश के उस भाग का जो पृथ्वी पर से बिखर कर चन्द्रमा तक पहुँचता है, एक अंश फिर वहाँ से बिखर कर हमारे पास आता है और इसी प्रकाश से शेष चन्द्रमा

फीका सा हमको दिखलाई पड़ता है। जैसे जैसे चन्द्रमा बढ़ता जाता है, वैसे वैसे पृथ्वी के प्रकाशित भाग का उत्तरोत्तर छोटा अंश चन्द्रमा की ओर मुख करता जाता है और साथ ही चन्द्रमा की बड़ी कला से चकाचौंध भी लगने लगती है। परिणाम यह होता है कि तृतीया या चतुर्थी के बाद चन्द्रमा का अप्रकाशित भाग हमको नहीं दिखलाई देता।

ऊपर कही बात और चित्र ३६१ से स्पष्ट है कि जिस प्रकार चन्द्रमा हमको घटता बढ़ता दिखलाई देता है, उसी प्रकार चन्द्रमा पर पृथ्वो भी घटती बढ़ती कला दिखलायेगी। परन्तु जितना बड़ा चन्द्रमा हमको दिखलाई पड़ता है उससे क्षेत्रफल में १३ गुनी बड़ी पृथ्वी चन्द्र-वासियों को दिखलाई पड़ेगी (हाँ, यदि कोई चन्द्रवासी हो, तो !)। चन्द्रमा हमको तो पूर्व में उगता और पश्चिम में अस्त होता हुआ दिखलाई पड़ता है, परन्तु चन्द्रमा पर पृथ्वी सदा प्राय: एक ही दिशा में दिखलाई पड़ेगी (इसका कारण चित्र ३६३ से स्पष्ट है)। केवल जिन कारणों से हमको चन्द्रमा का कभी ऊपर और कभी नीचे का, या कभी इस बगल और कभी उस बगल का भाग अधिक दिखला जाता है, उसी कारण से चन्द्रवासियों को पृथ्वी ज़रा सी कभी ऊपर, कभी नीचे, कभी इस बगल, कभी उस बगल, डाँवाडोल होती हुई दिखलाई पड़ेगी। "पृथ्वी-पूर्णिमा" के दिन वहाँ कैसा सुन्दर, शीतल और शुभ्र प्रकाश पड़ता होगा !

१२—**क्या चन्द्रमा में वायु-मंडल है**—चन्द्रमा पर वायु-मंडल नहीं है। यदि होगा भी तो वह अत्यन्त सूक्ष्म और प्राय: नहीं के बराबर होगा। इसका प्रमाण यह है कि चन्द्रमा पर सब परछाइयाँ तीक्ष्ण और अत्यन्त काली जान पड़ती हैं। यदि वहाँ सूक्ष्म वायु-मंडल भी होता तो कुछ प्रकाश मुड़ कर अप्रकाशित भाग के हद पर अवश्य पहुँचता। यहाँ पर सूर्य के डूबते ही



[पेरिस-बेधशाला

चित्र २८०—**चन्द्रमा।**

अमावस्या के १२ दिन १२ घंटे बाद का चित्र। इसमें टाइको और केपलर नामक ज्वालामुखों से श्वेत-रश्मियाँ चारों ओर फैलती हुई अत्यन्त स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ रही हैं।

एकाएक पूरा अंधकार नहीं हो जाता। वायु के रहने से वहाँ भी यही दशा होती, परन्तु वहाँ तो सूर्य के डूबते ही घोर अंधकार हो जाता होगा, क्योंकि वहाँ की धूप से सटे हुए साये भी बिलकुल काले जान पड़ते हैं। जैसे ख़ूब तेज़ जलती हुई बिजली की रोशनी के बुझते ही यहाँ पर रात्रि में अँधेरा हो जाता है, वहाँ पर भी सूर्य के डूबने से ऐसा ही जान पड़ता होगा। इसके अतिरिक्त एक प्रबल प्रमाण यह है कि जब चन्द्रमा चलते चलते किसी तारे को ढक लेता है, तब तारा एकाएक छिप जाता है। यदि चन्द्रमा पर वायु-मंडल होता तो इसका प्रकाश धीरे धीरे कम होता। यह पहले लाल हो जाता और तब मिटते मिटते मिटता, परन्तु दूरदर्शक से देखने पर भी नक्षत्र अ त तक अपनी पूरी चमक से चमकता रहता है और तब, एकाएक, बिना किसी सूचना के, ग़ायब हो जाता है।

प्रश्न अब यह उठता है कि चन्द्रमा का वायु-मंडल कहाँ गया; या, क्या इस पर पहले से ही वायु-मंडल नहीं था ? यह अत्यन्त अनहोनी बात जान पड़ती है कि चन्द्रमा में पहले ही से वायु-मंडल न रहा हो; क्योंकि जहाँ तक अनुमान किया जाता है जिस प्रकार पृथ्वी बनी होगी उसी प्रकार और उन्हीं पदार्थों से चन्द्रमा भी बना होगा। सच पूछिए तो, एक सिद्धान्त के अनुसार, चन्द्रमा पृथ्वी ही से निकला है। इसलिए अब यह देखना चाहिए कि वहाँ का वायु-मंडल क्या हो गया।

सभी जानते हैं कि गैस बहुत दूर तक फैलती है। एक बूँद इत्र रख देने से इसकी ख़ुशबू सारी कोठरी में फैल जाती है। इसका कारण वैज्ञानिक लोग यह बतलाते हैं कि गैसों के अणु पृथक् पृथक् रहते हैं; वे सदा अति वेग से चलते रहते हैं और एक दूसरे से टकराया करते हैं। गैस जितनी ही दबी रहती है



[पेरिस-वेधशाला

चित्र २८१—चन्द्रमा।

अमावस्या के १६ दिन १२ घंटे बाद का चित्र। इस चित्र में "सागर" सब स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ रहे हैं। इनका नाम पृष्ठ ४२९ पर दिये गये नक़्शे से जाना जा सकता है। इस पर भी ध्यान दीजिए कि ज्वालामुख केवल प्रकाश और अंधकार की संधि ही पर अच्छी तरह दिखलाई पड़ रहे हैं।

उतना ही इसके अणु एक दूसरे से अधिक टकराते हैं और इसलिए गैस में फैलने की प्रवृत्ति अधिक बढ़ती है। जब गैस बहुत फैल जाती है तब उसके अणुओं की एक दूसरे से मुठभेड़ कम हो जाती है और इसलिए गैस और अधिक नहीं फैलती। गणना करने से पता चलता है कि चन्द्रमा के कम आकर्षण के कारण वहाँ पर गैस फैलते फैलते समय पाकर एक-दम शून्य आकाश में निकल जायगी। पृथ्वी पर वहाँ की अपेक्षा ६ गुने अधिक आकर्षण के कारण गैस के अणु पृथ्वी से बँधे रहते हैं। ख़्याल किया जाता है कि इसी कारण पृथ्वी पर वायु-मंडल है और चन्द्रमा पर नहीं है। इसका परिणाम यह होगा कि चन्द्रमा से देखने पर केवल आँखों को धूप से आड़ में कर लेने पर दिन ही में सब तारे दिखलाई पड़ेंगे। सूर्य का कॉरोना भी दिखलाई पड़ेगा। वायु के अभाव का एक विचित्र फल यह भी होगा कि वहाँ कोई शब्द न उत्पन्न होगा और न सुनाई पड़ेगा। नेसमिथ ने लिखा है, "चन्द्रमा पर पूर्ण निःशब्दता का राज्य है। उस वायु-रहित संसार में हज़ारों तोप दागे जायँ या हज़ारों नगाड़े बजें, परन्तु उनसे कोई आवाज़ नहीं निकलेगी। वहाँ ओंठ हिला करें और जिह्वायें बोलने की चेष्टा किया करें, परन्तु इनकी कोई भी क्रिया चन्द्रलोक की भीषण निःशब्दता को नहीं तोड़ सकती।"

१३—चन्द्रमा का प्रकाश और ताप-क्रम—वायु-मंडल के अभाव में रात्रि के समय चन्द्रमा पर ऐसी भयानक सरदी पड़ती होगी जिसकी कल्पना करना असम्भव है। वहाँ का ताप-क्रम —१००° श० हो जाता होगा। वहाँ का दिन हमारे आधे महीने के बराबर होता है। इसलिए लगातार १४ दिन तक धूप में तपने से वहाँ के पत्थर खौलते हुए पानी से भी अधिक गरम हो जाते होंगे। यह कोरा अनुमान ही नहीं है। सर्व-चन्द्र-ग्रहण के समय धूप से तपी हुई चन्द्रमा की भूमि पर पृथ्वी की छाया पड़ते ही ज्योतिषी



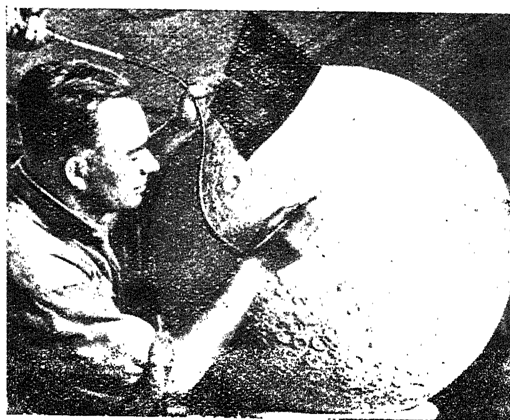
गिन कम्पनी की कृपा] [एच० आर० बटलर

चन्द्रमा का एक दृश्य

चन्द्रमा के किसी ज्वालामुख से पृथ्वी कैसी दिखलाई पड़ेगी। आकाश में बड़ा सा चन्द्रमा की तरह दिखलाई पड़ता हुआ पिण्ड पृथ्वी है।

पृ० ४४०

दूरदर्शक से बनी चन्द्रमा की मूर्ति में एक अत्यन्त सुकुमार बोलोमीटर (bolometer, पृष्ठ २०४ देखिए) रख कर इसके ताप-क्रम को नाप लेता है। कुछ समय तक ताप-क्रम नापते रहने से चन्द्रमा किस गति से ठंढा होता है यह भी ज्ञात हो जाता है। पता चला



[पापुलर सायंस से

चित्र ३८२—चन्द्रमा की मूर्त्ति बनाई जा रही है।

इसमें आधुनिक फ़ोटोग्राफ़ों की सहायता से प्रत्येक ज्वालामुख, पर्वत, इत्यादि शुद्ध स्थान में और सच्चे आकार का खोदा जायगा। सुभीते के लिए खुदाई का काम बिजली की बरमी से किया जाता है।

है कि पहले चन्द्रमा खौलते हुए पानी से भी अधिक गरम रहता है। फिर यह घंटे भर में ही अत्यन्त ठंढा हो जाता है। चन्द्रलोक कैसा भयानक स्थान होगा! धूप रहने पर खौलते पानी से भी अधिक तप्त और सूर्यास्त होने पर बर्फ़ से कई गुना अधिक ठंढा!

इस डर से कि चन्द्रमा से बिखरे सौर प्रकाश के कारण चन्द्रमा के निजी ताप-क्रम का पता नहीं चलेगा, बिना ग्रहण लगे यह प्रयोग नहीं किया जा सकता।

चन्द्रमा से जो प्रकाश हमको मिलता है वह सूर्य का ही प्रकाश है। केवल यह चन्द्रमा की सतह से मुड़ कर पृथ्वी तक आता है। इसलिए रश्मि-विश्लेषक-यंत्र से चन्द्रमा के अध्ययन में कुछ सहायता नहीं मिलती।

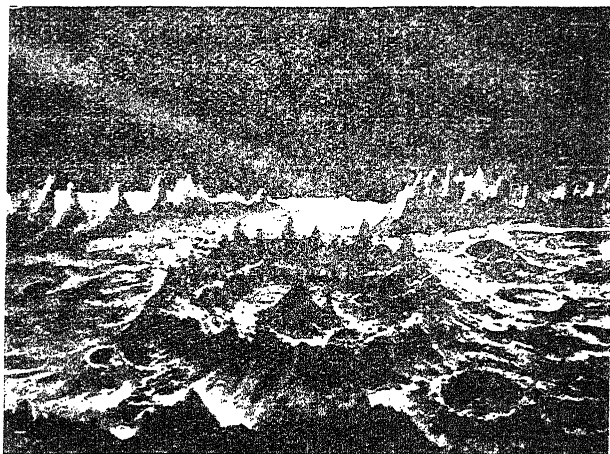


[अबे मोरो

चित्र ३८३—चन्द्रमा के एक दरार का कल्पित चित्र।

देखने में इतना नहीं जान पड़ता, परन्तु वस्तुत: सूर्य के प्रकाश से पूर्णिमा के भी चन्द्रमा का प्रकाश ५ लाख गुना कम है जैसा कि फ़ोटोग्राफ़ लेने से अनुमान किया जा सकता है। इस हिसाब से यदि कुल आकाश पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान चमकीला हो जाता तो भी हमको सूर्य के प्रकाश का पाँचवाँ भाग ही प्रकाश मिलता। यह देख कर कि सूर्य का प्रकाश चन्द्रमा पर कितना पड़ता है और

चन्द्रमा से कितना प्रकाश बाहर जाता है अनुमान किया गया है कि चन्द्रमा की सतह साधारणतः गाढ़े भूरे रङ्ग के पत्थरों के समान होगी। हाँ, चन्द्रमा के एक दो भाग जो हमें बहुत चमकीले दिखलाई पड़ते हैं, सफ़ेद बालू के समान अवश्य होंगे और साथ ही कुछ भाग स्लेट के रङ्ग के भी होंगे।



[अबे मारो

चित्र २८४—चन्द्रमा के ज्वालामुख का कल्पित चित्र।

चित्रकार ने चन्द्रमा के पृष्ठ का बेतरह विषम होना अच्छी तरह दिखलाया है।

१४—चन्द्रमा के ज्वालामुखों की उत्पत्ति—अभी तक यह निश्चित रूप से तय नहीं हो सका है कि चन्द्रमा के ज्वालामुखों की क्या उत्पत्ति है। अधिकांश लोग यह मानते हैं कि ये ज्वालामुखी पहाड़ों के मुख हैं। इनका कहना है कि ज्वालामुखी पर्वतों से बहुत ज़ोर से निकलने के कारण पिघले पत्थर पहले बहुत

दूर तक पहुँच गये; ये ही दीवाल से हो गये। पीछे जो पिघला पत्थर निकला वह धीरे से फैल गया। इसी लिए ज्वालामुख के भीतर की भूमि प्राय: समथल दिखलाई पड़ती है। अधिक पीछे से निकला पिघला पत्थर फैल भी न सका, बीच ही में रह गया; इन्हीं से ज्वालामुख के भीतर की चोटियाँ बन गईं। कम आकर्षण-शक्ति के कारण स्वभावत: चन्द्रमा के ज्वालामुखी पहाड़ों से निकला पदार्थ बहुत ऊँचा जा सकता रहा होगा। इसी कारण से वहाँ के पहाड़ इतने ऊँचे हैं। कुछ लोगों का मत है कि सम्भवत:, अत्यन्त प्राचीन समय में, जब चन्द्रमा बहुत गरम और पिघला हुआ था, बुल-बुले उठे होंगे और उन्हीं के फूट जाने से वृत्ताकार ज्वालामुख बन गये होंगे। पहाड़, इत्यादि, अवश्य उसी प्रकार बने होंगे जैसे वे पृथ्वी पर बने थे। श्वेत धारियों के बनने की रीति के सम्बन्ध में क्या माना जाता है यह पहले बतलाया जा चुका है। हाल में रङ्गीन प्रकाश-छननों (colour-filters), अर्थात् रंगीन शीशों को लेन्ज़ के सामने लगाकर भिन्न भिन्न रंगों के प्रकाश से फ़ोटोग्राफ़ लेने पर एक दो स्थानों में गंधक के रहने का कुछ प्रमाण मिला है, क्योंकि पृथ्वी के ज्वालामुखी पहाड़ से निकले पत्थर पर साधारण गंधक रख कर फ़ोटोग्राफ़ लेने से नारंगी प्रकाश से लिये गये फ़ोटोग्राफ़ में गंधक दिखलाई नहीं पड़ता, बैंगनी प्रकाश से लिये फ़ोटोग्राफ़ में यह कुछ काला और अल्ट्रा-वॉयलेट (पृष्ठ २६८ देखिए) प्रकाश से लिये फ़ोटोग्राफ़ में यह बहुत काला दिखलाई पड़ता है; और ठीक यही बात चन्द्रमा के कुछ स्थानों के विषय में भी सत्य पाई गई है। इससे और भी सम्भावना दृढ़ हो जाती है कि चन्द्रमा के ज्वालामुखों की उत्पत्ति ज्वालामुखी पर्वतों से सम्बन्ध रखती है। इतना निश्चय है कि चन्द्रमा पर कोई भी जीते ज्वालामुखी नहीं हैं।

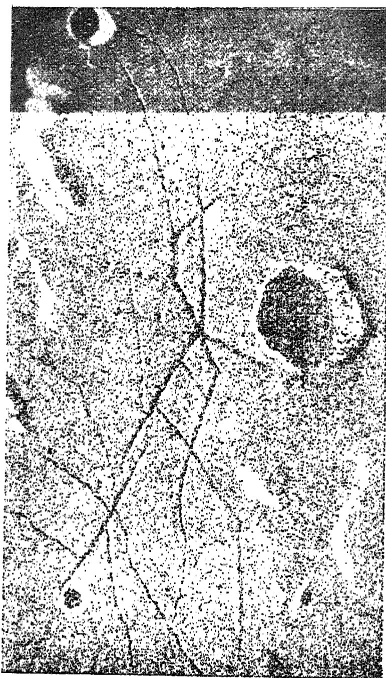


[यरकिज़-बेधशाला

चित्र ३८९—चन्द्रमा; "शान्तिसागर"।

जिसे लोग पहले सागर समझते थे वह वस्तुतः सागर नहीं है, जैसा इस चित्र से स्पष्ट है।

अन्य ज्योतिषियों का मत है कि ज्वालामुखों का ज्वालामुखी पर्वतों से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। उनका कहना है कि ये ज्वालामुख इतने बड़े हैं—कुछ तो १०० मील से अधिक व्यास के हैं और उनके भीतर खड़े होने से उनकी दीवालें उसी प्रकार नहीं दिखलाई पड़ेंगी जैसे हमको प्रयाग से हिमालय नहीं दिखलाई पड़ता—कि इनका ज्वालामुखियों से बनना असम्भव है। पृथ्वी पर के ज्वालामुख तो दस मील के भी नहीं होते। उनका सिद्धान्त है कि चन्द्रमा पर उल्कापात के कारण ये ज्वालामुख बन गये हैं। वहाँ वायु-मंडल तो है नहीं जो उल्काओं की प्रचंडता को गद्दे की भाँति कम कर दे और उनको भस्म कर डाले। इसलिए वहाँ बड़े बड़े उल्का भीषण वेग से गिरते होंगे। चोट की गरमी से पत्थर पिघल जाते होंगे और इस प्रकार दीवारयुक्त गड्ढे बन जाते होंगे। लोहे के चादर में गोला मारने से ठीक चन्द्रमा के ज्वालामुख की भाँति गड्ढे बनते भी हैं। परन्तु इस सिद्धान्त को सत्य मानने में कई एक कठिनाइयाँ हैं। क्या बार बार जहाँ पहले कोई बड़ा सा उल्का गिरा ठीक उसी

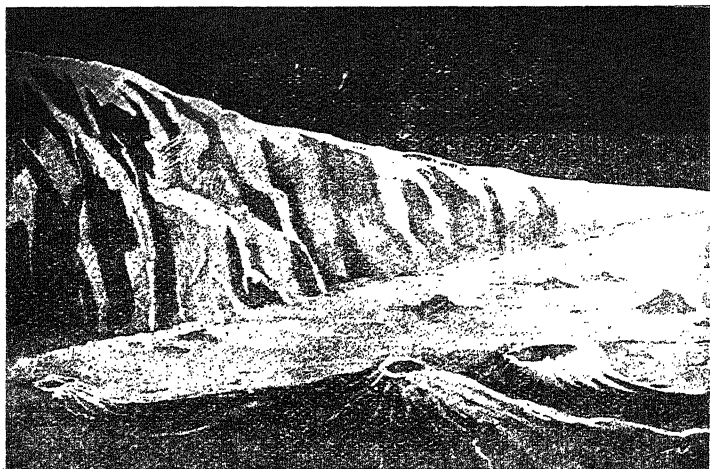


[क्रीगर

चित्र ३८६—चन्द्रमा के कुछ दरार।

बगल में ट्रीसनेकर ज्वालामुख है।

के केन्द्र में एक छोटा सा उल्का जाकर गिरा! कहीं कहीं ज्वालामुखों की माला सी बन गई है, तो क्या उल्का भी श्रेणीबद्ध होकर साथ ही चन्द्रमा पर टूट पड़े? और यदि वस्तुतः उल्कापात ही से ये ज्वालामुख बने हैं तो कुछ उल्के तिरछे क्यों नहीं गिरे? चन्द्रमा के सभी ज्वालामुखों की दीवालें सीधी ही दिखलाई पड़ती हैं और



[अबे मोरो

चित्र २८७—चन्द्रमा की "सीधी दीवाल" का कल्पित चित्र।
यह लगभग ९०० फ़ुट ऊँचा है।

इससे यह परिणाम निकलता है कि यदि उल्का-सिद्धान्त ठीक है तो सब उल्के खड़ी दिशा में गिरे होंगे। अन्त में, यदि यह सिद्धान्त वस्तुतः ठीक है तो अब भी उल्कापात के कारण नये नये ज्वालामुख क्यों नहीं बनते?

१५—चन्द्रमा में पौधे हैं—प्रोफ़ेसर डब्ल्यू० एच० पिकरिङ्ग (W. H. Pickering) का कहना है कि चन्द्रमा में पौधे



[माउन्ट विलसन

चित्र २८८—**चन्द्रमा; कोपरनिकस के आस पास।**

यह चित्र माउन्ट विलसन के १०० इंच वाले दूरदर्शक से लिया गया है।

उगते हैं, परन्तु १४ दिन में ही वे उगते हैं, बड़े होते हैं और मिट जाते है । उन्होंने देखा है कि चन्द्रमा के एक आध स्थानों का रंग बदलता है । वहाँ सूर्य के उदय होने के बाद, अर्थात् उनके प्रकाश में आने के बाद, उनका रङ्ग बदलने लगता है और वे कुछ काले हो चलते हैं। कहीं कहीं ज़रा ज़रा धुँधलापन भी दिखलाई पड़ता है । इन सबका अर्थ प्रोफ़ेसर पिकरिङ्ग यह निकालते हैं कि चन्द्रमा में अब भी कहीं कहीं एक आध कोने में, जहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता है, जल और जल-वाष्प रह गये हैं। काले होने का अर्थ वह यह लगाते हैं कि वहाँ पौधे उगते हैं और फिर मर जाते हैं । अन्य ज्योतिषियों का मत है कि भिन्न भिन्न दिशा से प्रकाश पड़ने के कारण रंग बदलने का भ्रम सा होता है और चन्द्रमा में पौधे नहीं उगते। ईश्वर जाने, कौन सी बात सत्य है। हाँ, जब बड़े बड़े दूरदर्शक चन्द्रमा की ओर झुकेंगे तब शायद कुछ और पता चलेगा ।

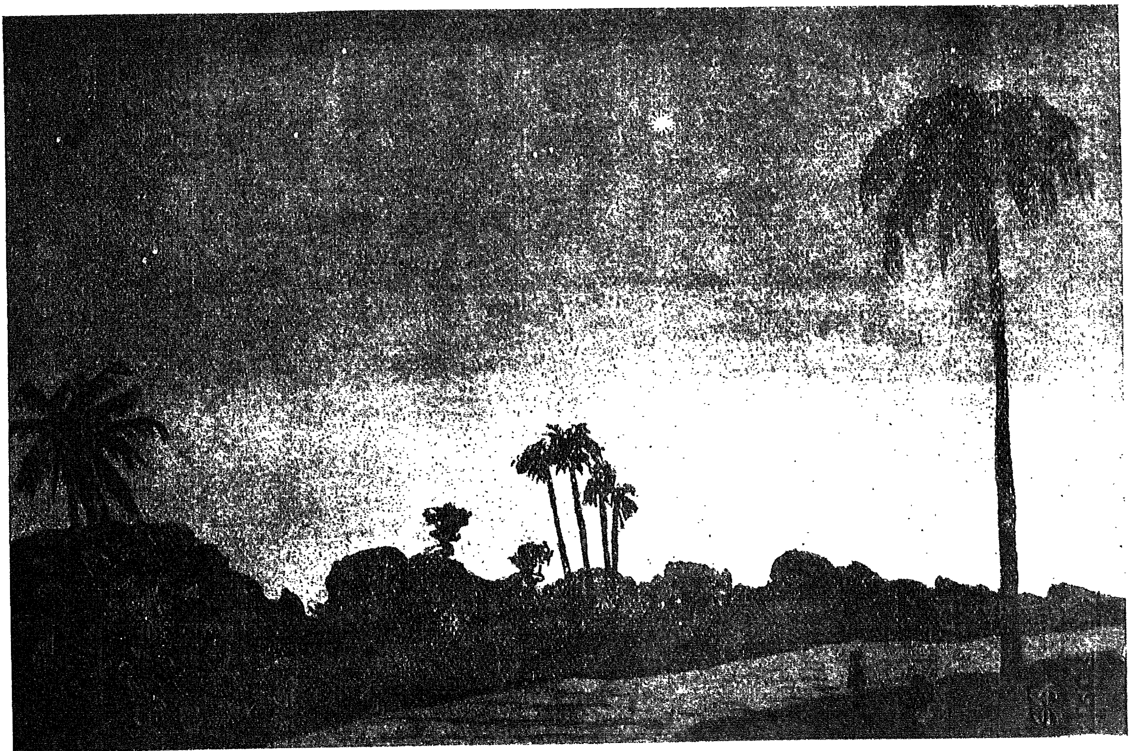
फ़ोटोग्राफ़ी के प्रयोग के बाद से चन्द्रमा के पहाड़-पहाड़ियों, इत्यादि में कोई स्थायी परिवर्तन होते नहीं देखा गया है। पुराने चित्र इतने भद्दे और अशुद्ध हैं कि उनके आधार पर कोई बात नहीं स्थिर की जा सकती ।

अध्याय ११

सौर-परिवार और इसके दो सदस्य, बुध और शुक्र।

१—**ग्रह**—किसने, संध्या के बाद, पश्चिम में चमकते हुए अत्यन्त तेजस्वी और सुन्दर शुक्र पर ध्यान नहीं दिया होगा? सूर्य और चन्द्रमा के बाद, कभी कभी दिखलाई पड़नेवाले पुच्छल तारात्रों को छोड़, आकाश में सबसे अधिक चित्ताकर्षक पिण्ड-ग्रह ही हैं। देखने में ये तारे ऐसे ही लगते हैं, परन्तु अपनी चमक के कारण अत्यंत प्राचीन काल से ही ये देखनेवाले के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करते रहे होंगे। यही कारण है कि उनका पता कब लगा, यह कोई नहीं जानता। हाँ, यह निश्चय है कि प्राचीन ग्रंथों में भी उनकी चर्चा है।

ग्रह अपनी चमक और स्थिर ज्योति के ही कारण तारात्रों से न्यारे नहीं हैं—तारे सब लुपलुप किया करते हैं—उनकी गति भी विचित्र है। तारे और ग्रह सभी पूर्व में उगते हैं, चन्द्रमा और सूर्य की तरह पश्चिम की ओर चलते हैं और फिर पश्चिमीय क्षितिज के नीचे डूब जाते हैं। यह तो उनकी सामान्य गति है। प्रतिदिन वे ऐसा करते हैं। परन्तु तारे एक दूसरे की अपेक्षा नहीं चलते। सप्तर्षि शाम को जैसे दिखलाते हैं, ठीक उसी स्थिति में वे मध्यरात्रि में नहीं दिखलाई देंगे (चित्र १०८ और १०९, पृष्ठ १०७-८); परन्तु एक दूसरे के हिसाब से वे नहीं चलते। उनकी आकृति वैसी ही रह जाती है। अब शुक्र की गति को देखिए। तारीख़ ५ जूलाई से तारीख़ २३ सितम्बर तक की इसकी गति चित्र ३९० में दिखलाई गई है। यह गति तारात्रों के हिसाब से है। इसके



चित्र ३८१—किसने, संध्या के बाद, पश्चिम में चमकते हुए अत्यन्त तेजस्वी और सुन्दर शुक्र पर ध्यान नहीं दिया होगा ?

अतिरिक्त प्रतिदिन सब तारे और साथ में शुक्र भी पूर्व से पश्चिम को जाया करते हैं, परन्तु हमको इससे यहाँ पर कुछ प्रयोजन नहीं है; जैसे किसी रेलगाड़ी में पाँच आदमी स्थिर बैठे हों और एक बालक इधर से उधर एक मनुष्य से दूसरे के पास जाता हो तो बैठे हुए मनुष्यों के हिसाब से वह बालक कैसे चलता है यह जानने के लिए इससे कुछ प्रयोजन नहीं रहता कि गाड़ी चलायमान है या स्थिर।

[पापुलर ऐस्ट्रॉनोमी से

चित्र २६०—**ताराओं के हिसाब से शुक्र की गति।**

हम देखते हैं कि ग्रह ताराओं के बीच चला करते हैं। कभी वे आगे चलते हैं और कभी वे पीछे हटते हैं और इन दोनों गतियों के बीच कभी कभी वे स्थिर भी जान पड़ते हैं, पर साधारणतः वे चलते ही रहते हैं। इसी लिए उनको अरबी में सैयारा कहते हैं, जिसका अर्थ है सैर करने या चलनेवाला।

२—ग्रहों की नाप और दूरी—प्राचीन काल में सात ग्रह माने जाते थे। रवि, सोम (चन्द्रमा), मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर। यूरोप में भी ये ही सात ग्रह माने जाते थे, परन्तु अब कोपरनिकस (Copernicus) मतानुसार सूर्य स्थिर समझा जाता है, पृथ्वी ग्रह मानी जाती है और चन्द्रमा ग्रह (planet) के बदले उपग्रह (satellite) माना जाता है। शेष पुराने ग्रहों के अतिरिक्त दो नये ग्रहों का भी पता लगा है, वारुणी (Uranus

यूरेनस) और वरुण (Neptune नेपच्यून)* । इनके अतिरिक्त डेढ़ हज़ार से अधिक नन्हे नन्हे ग्रहों का पता चला है जिनको "अवान्तर ग्रह" (asteroids) कहते हैं। सौर-परिवार में इनके अतिरिक्त पुच्छल तारे भी शामिल हैं। ये सब सूर्य के आकर्षण



[बेरी की हिस्ट्री से

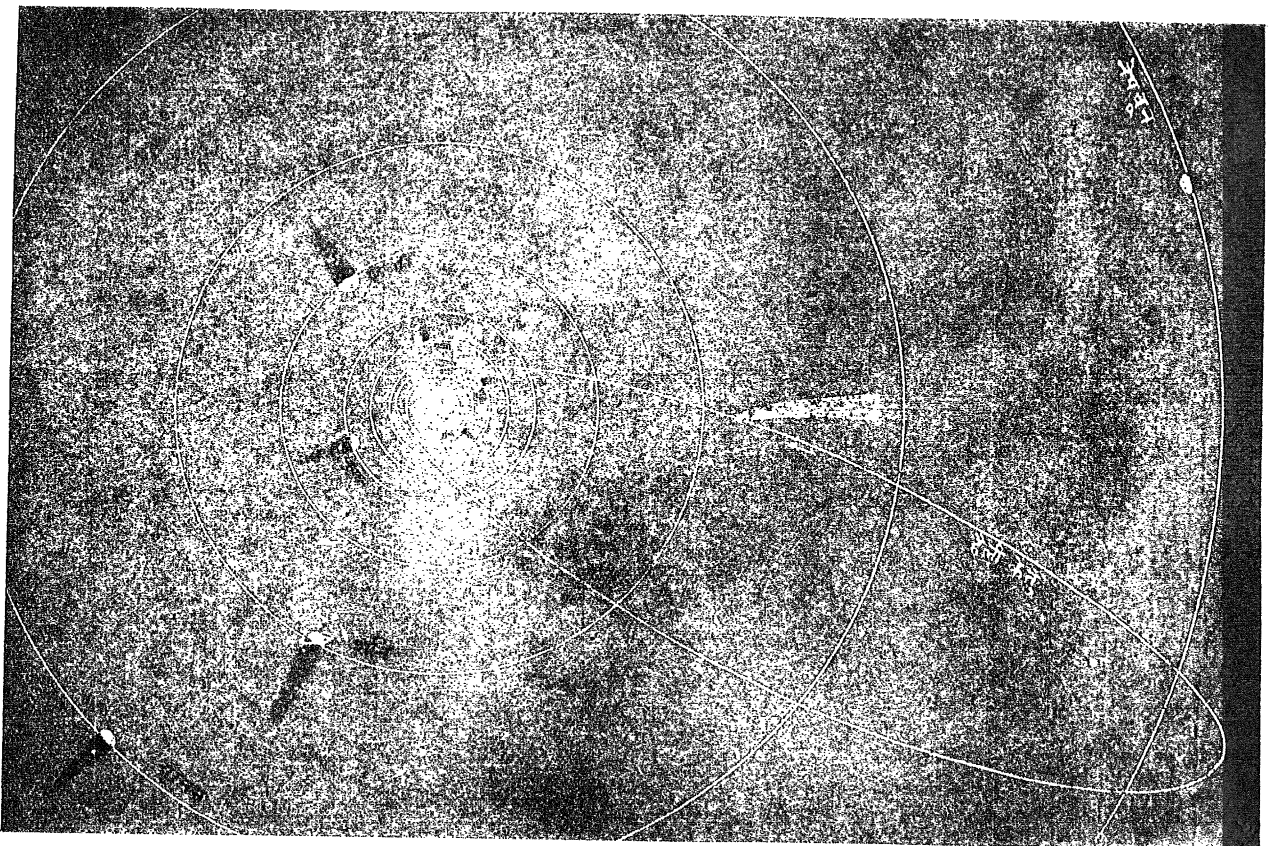
चित्र २६१—कोपरनिकस (१४७३-१५४३)।
इसने ही यह सिद्धान्त निकाला कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी इसकी प्रदक्षिणा करती है।

के कारण दीर्घ वृत्ताकार रेखा में चलते हैं और सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं।

---

* १६३० में एक नेपच्यून से भी दूरस्थ ग्रह का पता चला है (अध्याय १५ देखिए)।

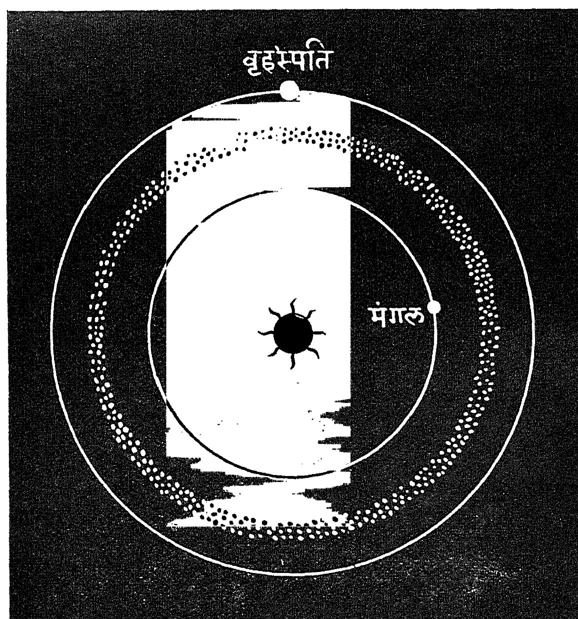
सूर्य के सबसे पास बुध (Mercury) है (चित्र ३९२)। इसके बाद चमकदार और सुन्दर शुक्र (Venus)। फिर पृथ्वी और इसका उपग्रह चन्द्रमा। इसके बाद मंगल (Mars) है, जिस पर मनुष्यों के रहने या न रहने का तर्क-वितर्क समाचारपत्रों में भी हुआ करता है। तब बृहस्पति (Jupiter) की पारी आती है, जो चमक में केवल शुक्र से ही मात होता है। इसके बाद शनिश्चर (Saturn), अपनी धीमीचाल से चला करता है। इससे भी दूर वारुणी (Uranus यूरेनस) है, जिसका पता हरशेल ने अपने दूरदर्शक से लगाया था और अंत में है वरुण (नेपच्यून Neptune) जिसका पता, जैसा पीछे बतलाया जायगा, ले-वेरियर और ऐडम्स ने अपने गणित-द्वारा पाया था। मंगल और बृहस्पति के बीच छोटे छोटे अवान्तर ग्रह हैं (चित्र ३९३), यद्यपि इनमें से बाज़ मंगल की कक्षा के भीतर भी कभी कभी आ जाते हैं चित्र ३९२। किसी पैमाने के अनुसार नहीं बना है, क्योंकि एक ही नक़शे में पैमाने के अनुसार सब ग्रह नहीं दिखलाये जा सकते। इनकी शुद्ध दूरी और नाप का सच्चा चित्र ध्यान में लाने के लिए यूरेनस के आविष्कारक के सुपुत्र सर जॉन हरशेल की दी हुई उपमा बहुत अच्छी है। "अच्छी तरह से समथल की हुई भूमि चुन लीजिए। इस पर दो फ़ुट व्यास का एक गोला रख दीजिए। यह तो सूर्य को सूचित करेगा। बुध एक दाना राई से निरूपित हो जायगा और यह १६४ फ़ुट व्यास के वृत्त पर रहेगा। शुक्र, एक दाना मटर के समान, २४८ फ़ुट व्यास के वृत्त पर; पृथ्वी भी मटर के बराबर ४३० फ़ुट के वृत्त पर; मंगल बड़े आलपीन के सर के बराबर, ६५४ फ़ुट के वृत्त पर; अवान्तर ग्रह बालू के कण के समान, १००० से १२०० फ़ुट की कक्षा में; बृहस्पति एक न बहुत बड़े, न बहुत छोटे, नारंगी के बराबर, लगभग १/२ मील के वृत्त पर; शनि छोटे नारंगी के समान, ४/५ मील के वृत्त पर;



चित्र ३६२—सौर-परिवार।

इस चित्र में दिखलाये गये सदस्यों के अतिरिक्त सौर-परिवार में डेढ़ हज़ार से अधिक नन्हे नन्हे ग्रह हैं, जिनको "अवान्तरग्रह" कहते हैं।

वारुणी (यूरेनस) छोटी लीची के बराबर, डेढ़ मील से भी बड़े वृत्त पर; और वरुण (नेपच्यून) बड़ी लीची के बराबर, क़रीब ढाई मील के वृत्त पर। रहा इस विषय का सच्चा बोध काग़ज़ पर वृत्तों को खींच कर कराना, या इससे भी बुरा, लड़कों के उन खिलौनों से



चित्र २६३—मंगल और बृहस्पति के बीच छोटे अवान्तरग्रह हैं।

जिनको 'ऑरेरी'* (orrery) कहते हैं। इन उपायों पर विचार करना ही व्यर्थ है। हम पहले देख चुके हैं कि ऊपर के पैमाने पर निकट-तम तारा ११,००० मील पर होगा!

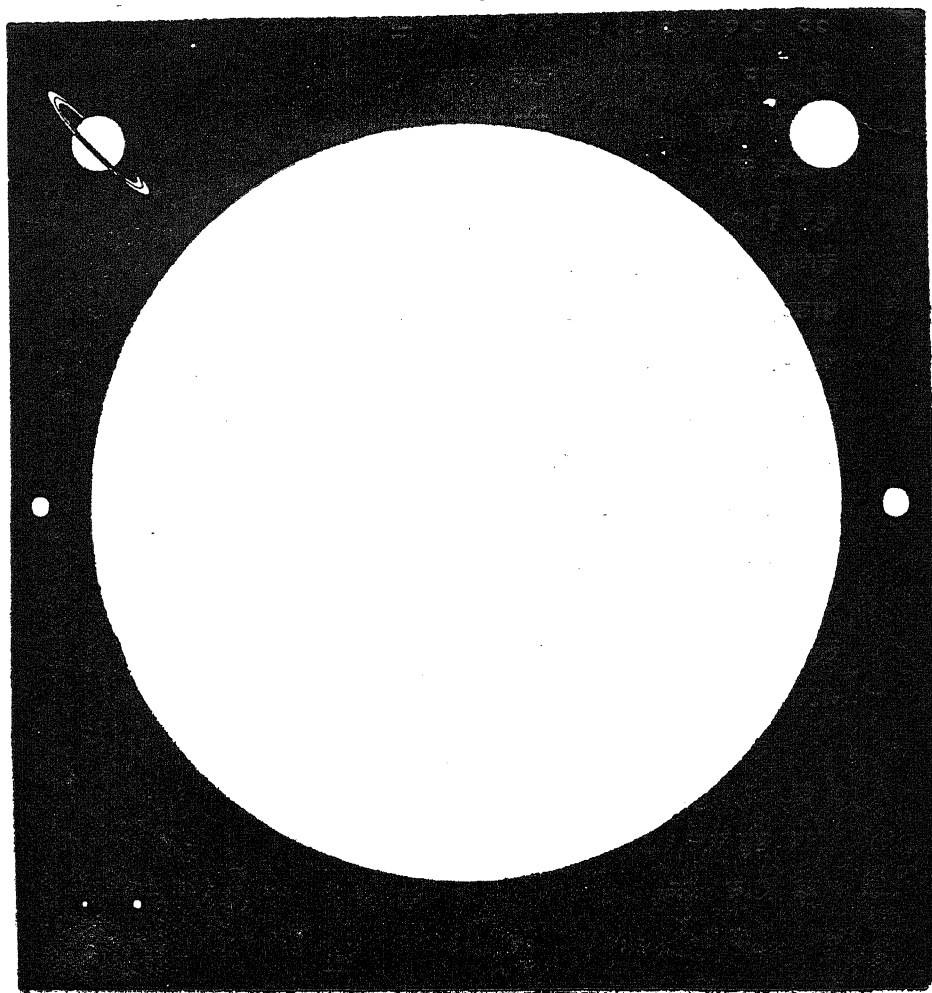
* "ऑरेरी" एक यंत्र है जिसमें दाँतीदार पहियों द्वारा ग्रह और थोड़े से उपग्रहों की मूर्त्तियों को सूर्य की मूर्त्ति के चारों ओर चक्कर लगवाया जाता है।

"पृथ्वी की तौल ६,००,००,००, ००,००,००,००,००,००,००० टन (= १६००० शंख मन) है। यदि कल्पना में न आनेवाली इस तौल को १ पाउण्ड (आध सेर) से निरूपण किया जाय तो सूर्य १५० टन (=४,००० मन) का होगा, बृहस्पति ३१० पाउण्ड; शनि ९३ पाउण्ड; वरुण १७ पाउण्ड; वारुणी १४ पाउण्ड; शुक्र १३ आउन्स (=६ १/२ छटाँक), मंगल १ १/२ आउन्स, बुध १ आउन्स और चन्द्रमा ३ ड्राम (= ३/१६ आउन्स) से कुछ अधिक।"* इससे आप देख सकते हैं कि बृहस्पति अन्य ग्रहों के सम्मिलित तौल से भी भारी है और सूर्य सब ग्रहों के योग से ७५० गुना भारी है।

इन ग्रहों पर आकर्षण-शक्ति कितनी है इसका अनुमान इससे किया जा सकता है कि डेढ़ मन का आदमी बृहस्पति पर साढ़े तीन मन, शनि पर पौने दो मन, शुक्र पर सवा मन, वारुणी और वरुण पर भी लगभग इतना ही, बुध और मंगल पर आधे मन से कुछ ऊपर, चन्द्रमा पर १० और साधारण अवान्तर ग्रहों पर केवल दो चार छटाँक का

चित्र ३६४—ग्रहों की सापेक्षिक दूरी।

* Gregory: The Vault of Heaven, p. 91.



[चेम्बर्स की ऐस्ट्रॉनोमी से

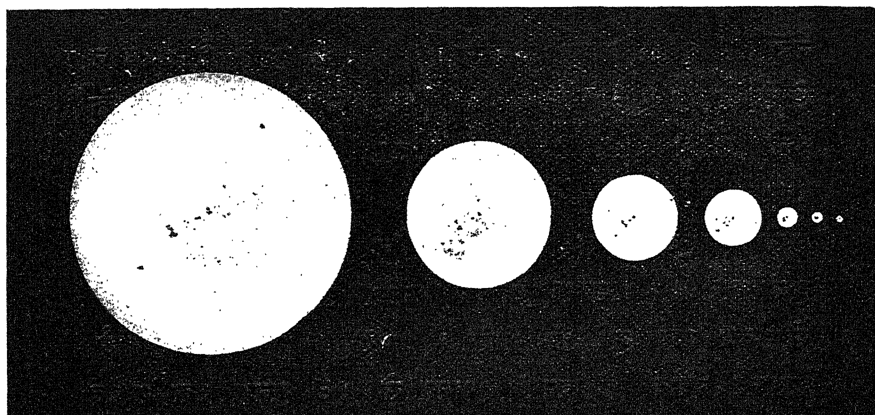
चित्र ३१९—ग्रहों का सापेक्षिक आकार (डील-डौल)।
बीच में सूर्य है; ऊपर वाले दाहिने कोने में बृहस्पति और बायें में शनि हैं; इनसे नीचे पृथ्वी और शुक्र हैं।

जान पड़ेगा। हाँ, उसकी तौल कमानीदार काँटे पर करनी होगी; साधारण तराज़ू से तौलने पर कुछ पता न चलेगा क्योंकि बाँटों का भी वज़न उसी हिसाब से घटता बढ़ता जायगा।

ग्रहों का सापेक्षिक आकार चित्र ३९५ में दिखलाया गया है। इससे प्रत्यक्ष है कि बड़े ग्रहों के मुक़ाबले में पृथ्वी बिलकुल छोटी है और सब ग्रह मिल कर भी सूर्य के सामने कुछ नहीं हैं। बृहस्पति का आयतन (Volume) पृथ्वी के आयतन से डेढ़ हज़ार गुना अधिक होगा। अनुमान किया जाता है कि ग्रहों के घनत्व में भी बहुत अन्तर है। शनि तो पानी में उतराने लगेगा (यदि उसके लिए काफ़ी बड़ा समुद्र मिल सके)! पृथ्वी कुल मिला कर पानी से लगभग साढ़े पाँच गुनी भारी है। यद्यपि पृथ्वी की ऊपरी सतह के पत्थर पानी से केवल ढाई गुने ही भारी हैं, परन्तु भीतर का पदार्थ, अत्यन्त दबाव के कारण, पानी से १० गुना तक शायद भारी होगा। शुक्र कुल मिला कर पानी से पँचगुना भारी, बुध इससे कुछ हल्का, मंगल साढ़े तीन गुना और चन्द्रमा सवा तीन गुना भारी है। शेष ग्रह और भी हलके हैं। यूरेनस सवा गुना, बृहस्पति भी केवल सवा गुना, नेपच्यून पानी से ज़रा-सा भारी और शनि पानी से हलका है।

सभी जानते हैं कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है; इसी से तो प्रति २४ घंटे में एक दिन एक रात हुआ करते हैं। अन्य ग्रह भी अपनी धुरियों पर घूमते हैं और उन पर भी दिन-रात हुआ करते हैं, परन्तु उनके एक दिन-रात में २४ घंटे नहीं लगते। चन्द्रमा पर, जैसा हम देख चुके हैं, लगभग चौदह दिन का एक दिन और इतने ही दिन

की एक रात होती है। मंगल के दिन-रात हमारे दिन-रात से कुछ (लगभग ४१ मिनट) बड़े, परन्तु बृहस्पति और शनि के दिन-रात केवल दस और सवा दस घंटे के ही होते हैं। शेष ग्रहों के विषय में अभी कुछ निश्चित रूप से मालूम नहीं है।



बुध से — शुक्र से — पृथ्वी से मंगल, बृहस्पति शनि और यूरेनस से

चित्र २६६—भिन्न भिन्न ग्रहों से सूर्य का सापेक्षिक आकार।

स्पष्ट है कि जो ग्रह सूर्य के निकट हैं उनको अधिक प्रकाश और गरमी मिलती होगी; हाँ, उनके वायु-मंडल के भिन्न भिन्न दशा के कारण ग्रहों का तापक्रम इस गरमी के अनुपात में होने के बदले बिलकुल दूसरा ही हो सकता है। गणना से हम देख सकते हैं कि बुध को पृथ्वी की

अपेक्षा ७ गुनी गरमी मिलती होगी और नेपच्यून को केवल नाममात्र ।

३—ग्रहों को नापना और तौलना—पूछना ही क्या है, ज्योतिषी ग्रहों पर जाकर उनके व्यास, तौल, आकर्षण, दिन-रात इत्यादि का पता नहीं लगाता। वह अपने बेधशाला में बैठा ही बैठा सब जान लेता है। जैसे, सूर्य की दूरी जानने पर (पृष्ठ २११) ग्रहों की दूरी केपलर के प्रसिद्ध नियमों-द्वारा जानी जा सकती है। दूरी जान कर और फ़ोटोग्राफ़ में उसके व्यास को नाप कर ज्योतिषी तुरन्त बतला सकता है कि ग्रह का असली व्यास क्या है, क्योंकि दूरदर्शक की फ़ोकल-लम्बाई को जानने से वह अपने फ़ोटोग्राफ़ों का पैमाना जानता है। सूर्य और पृथ्वी की तौलों की तुलना कैसे की जाती है यह अध्याय ५ में बतलाई जा चुकी है। इससे सूर्य की तौल मालूम हो जाती है। फिर ग्रहों के उपग्रहों की गति की सूक्ष्म जाँच करने से पता चल जाता है कि उपग्रह पर कितना आकर्षण ग्रह का



[स्प्लेंडर ऑफ़ दि हेवंस से

चित्र २६७—"ज्योतिषी ग्रहों पर जाकर उनके व्यास इत्यादि का पता नहीं लगाते हैं।"

प्राचीन समय से लोग चन्द्र-लोक की यात्रा का वर्णन करते आये हैं। ऊपर का चित्र एक पुराने चित्रकार का बनाया है, परन्तु चित्रकार ने इस पर ध्यान नहीं दिया कि सूर्य के पास पूर्णमासी का चन्द्रमा नहीं दिखलाई पड़ता।

और कितना सूर्य का पड़ता है। इस प्रकार ग्रह और सूर्य की तौलों की तुलना की जा सकती है। वस्तुतः, इस रीति से पृथ्वी और सूर्य की भी तुलना का जा सकती है और की गई है, परन्तु इस रीति को भली भाँति समझाना कठिन है,



[बेरी की हिस्ट्री से

चित्र ३१८—केपलर।

इसने तीन नियमों का आविष्कार किया था जिसके बल पर ग्रहों की स्थिति बतलाई जा सकती है।

इसलिए यह पहले नहीं दिया गया था और यहाँ पर भी केवल इसकी चर्चा करके इसको हम छोड़ देते हैं। तौल और व्यास जानने से ग्रह पर कितना आकर्षण होगा इसकी गणना तुरन्त न्यूटन के नियम (पृष्ठ २१६) से की जा सकती है। शुक्र और बुध के कोई

उपग्रह नहीं हैं। इसलिए उनकी तौल ठीक ठीक नहीं मालूम है, परन्तु उनकी तौल का अनुमान इसे देख कर कि वे पृथ्वी को अपने मार्ग से कितना विचलित कर देते हैं किया गया है। ग्रहों



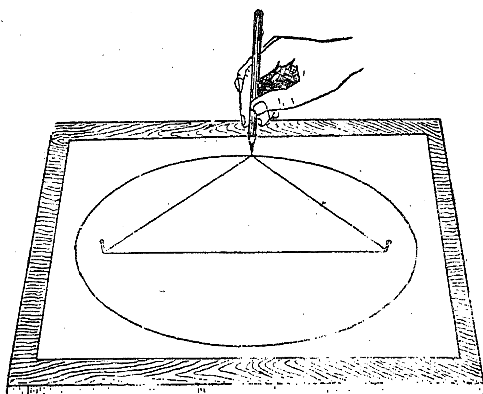
[बेरी की हिस्ट्री से

चित्र ३६१—टाइको ब्राहे (१५४६-१६०१)।

इसी के बेधों के आधार पर केपलर के तीनों नियम बने थे। केपलर का पहला नियम यह है कि सब ग्रह दीर्घ-वृत्त में चलते हैं और सूर्य इन दीर्घ-वृत्ताकार कक्षाओं की नाभि पर स्थित है।

के धब्बों इत्यादि को देखते रहने से उनके भ्रमण-काल और इसलिए उनके दिन-रात के समय का पता लग जाता है।

कैपलर ने इसका पता लगाया कि ग्रह वृत्त में नहीं दीर्घवृत्त में चलते हैं। दीर्घवृत्त चपटे वृत्त को कहते हैं। उनके खींचने की सरल रीति यह है कि समथल भूमि में दो कीलें गाड़ दी जायँ और उनको तागे की एक माला पहना दी जाय। अब इस माले के किसी



[लेखक की "फ़ोटोग्राफ़ी" से

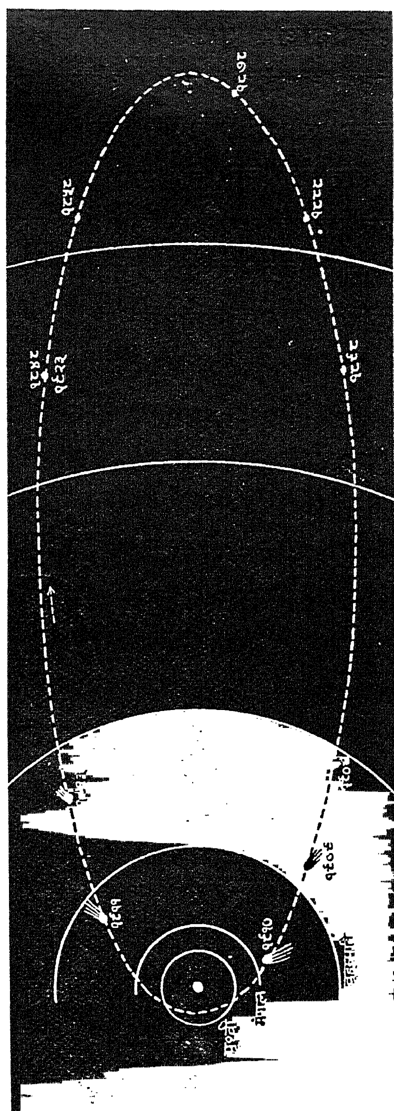
चित्र ४००—दीर्घवृत्त कैसे बनता है।

यदि समथल भूमि में दो कीलें गाड़ दी जायँ और उनको तागे की एक माला पहना दी जाय तो इस माले के किसी विन्दु को तान कर चारों ओर घुमाने से दीर्घवृत्त बन जायगा।

एक विन्दु को तान कर चारों ओर घुमाने से दीर्घवृत्त (ellipse) बन जायगा (चित्र ४००)। जिन विन्दुओं पर कीलें गड़ी रहती हैं वे विन्दु दीर्घ-वृत्त की नाभियाँ (foci) कहलाती हैं। एक नाभि (focus) पर सूर्य रहता है। ग्रह सदा दीर्घवृत्त पर रहता है। इससे प्रत्यक्ष है कि सूर्य से ग्रहों की दूरी घटती बढ़ती रहती है; और इसलिए ग्रहों से देखने पर सूर्य का आकार भी घटता बढ़ता दिखलाई पड़ता है क्योंकि पास से चीज़ें बड़ी और दूर से छोटी दिखलाई पड़ती हैं। और कुछ न लिखे रहने पर सूर्य से ग्रह की दूरी को इसकी मध्यम दूरी समझनी चाहिए। पृथ्वी की कक्षा

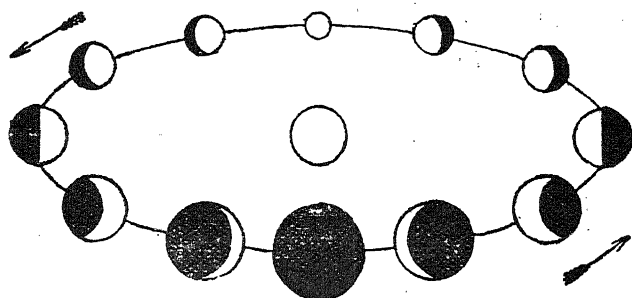
प्रायः गोल है, परन्तु बुध की कक्षा कुछ अधिक चपटी है। पुच्छल ताराओं की कक्षायें बहुत चपटी होती हैं (चित्र ४०१)।

४—ग्रह-कला— चन्द्रमा की तरह ग्रह भी अपने प्रकाश से नहीं चमकते। सूर्य की रोशनी से वे प्रकाशित होते हैं और इसलिए उनमें भी चन्द्रमा की तरह कलायें दिखलाई पड़ती हैं। भारतवर्ष की तरह पहले यूरोप में भी विश्वास था कि पृथ्वी ही स्थिर है, और सूर्य और अन्य ग्रह इसकी परिक्रमा करते हैं। पोलैंड के संन्यासी कोपरनिकस (Copernicus) ने, जिसका नाम बहुत प्रसिद्ध है, पहले पहल यह बतलाया कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी तथा अन्य ग्रह इसको परिक्रमा



चित्र ४०१—हैली पुच्छल तारा की कक्षा।

करते हैं। उसको इस सिद्धान्त पर इतना विश्वास था कि उसने इसके आधार पर इसकी भी घोषणा कर दी कि बुध और शुक्र में चन्द्रमा की तरह कलायें दिखलाई पड़ेंगी। दूरदर्शक के अभाव में इसका प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिल सका और उसके मरने के कहीं ६० वर्ष बाद गैलीलियो ने अपने नये दूरदर्शक से शुक्र की कलाओं को पहले पहल देखा। गैलीलियो निश्चयरूप से यह जानने के लिए कि ये कलायें घटती बढ़ती हैं कुछ समय चाहता था, परन्तु साथ ही डरता भी था कि कहीं कोई दूसरा हमारे पहले ही इसका आविष्कार



चित्र ४०२—शुक्र की कलायें।

बीच में सूर्य है। इसके चारों ओर शुक्र चलता है। अपनी कक्षा में कहाँ कहाँ शुक्र पर किस प्रकार रोशनी पड़ती है और हमको कैसी कलायें दिखलाई पड़ती हैं यह अंकित किया गया है।

करके घोषणा न कर दे। इसलिए उसने अपने आविष्कार को निम्न-लिखित पहेली के रूप में प्रकाशित किया।

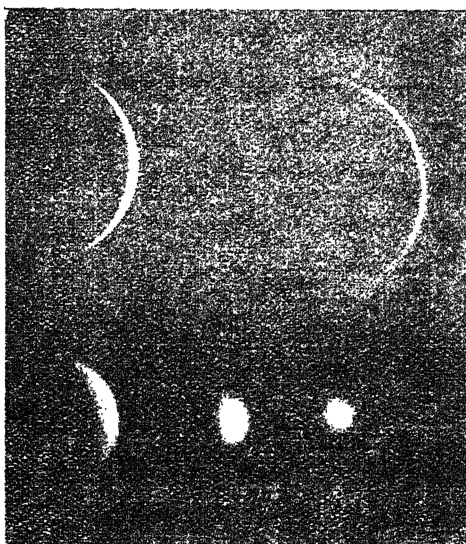
"Haeclimmatura a me jam frustra leguntur o. y."

(इन कच्ची चीज़ों को मैंने गर्व के साथ तोड़ा है)।

इन्हीं अक्षरों को दूसरे क्रम में लिखने से, जैसा गैलीलियो ने पीछे बतलाया, उसके आविष्कार का वर्णन हो जाता था:—

Cynthinae figuras aemulatur mater amorum"

(शुक्र चन्द्रमा की कलाओं की नक़ल करता है)। ये कलायें क्यों दिखलाई पड़ती हैं यह चन्द्रमा की कलाओं के कारण को समझने से (पृष्ठ ४१२) और चित्र ४०२ को जाँच करने से स्पष्ट हो जायगा। ध्यान देने योग्य बात है कि शुक्र (और अन्य ग्रहों)



[रसेल-डुगन-स्टिवर्ट की एस्ट्रॉनोमी से

चित्र ४०३—जब शुक्र हमको धनुषाकार दिखलाई पड़ता है उस समय यह निकट रहने के कारण सामान्य से बहुत बड़ा दिखलाई पड़ता है।

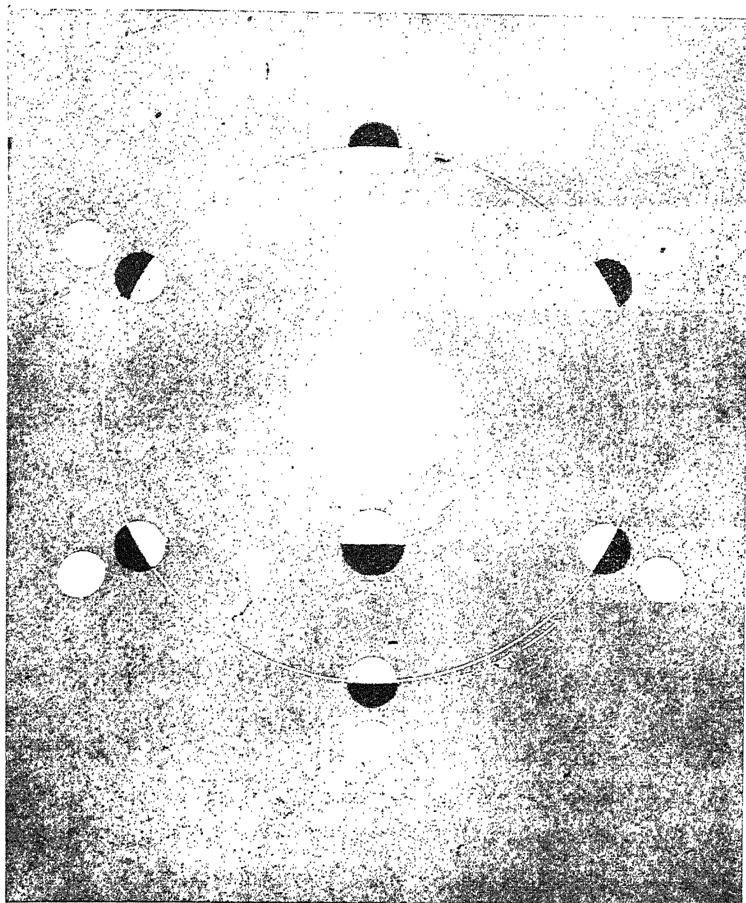
की दूरी हमसे बहुत घटती बढ़ती रहती है। यह दूरी सूर्य से शुक्र और पृथ्वी की दूरियों के अन्तर से लेकर उनके योग के बराबर तक हो सकती है। इसी लिए शुक्र (और अन्य ग्रह) हमको सदा एक नाप के नहीं दिखलाई पड़ते। शुक्र की कला हमको धनुषाकार

उस समय दिखलाई पड़ती है जब ग्रह हमारे बहुत समीप रहता है। इसलिए जब यह हमको धनुषाकार दिखलाई पड़ता है, उस समय यह सामान्य से बहुत बड़ा दिखलाई पड़ता है (चित्र ४०३)। शुक्र के व्यास के छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े मानों में इस कारण अन्तर लगभग ६ गुना पड़ जाता है।

बुध भी धनुषाकार दिखलाई पड़ने के समय बड़ा दिखलाई पड़ता है, परन्तु इसमें इतना अन्तर नहीं पड़ता।

बुध और शुक्र पृथ्वी की कक्षा के भीतर पड़ते हैं। मंगल इत्यादि ग्रह, जो पृथ्वी की कक्षा के बाहर रहते हैं, हमको कभी भी धनुषाकार नहीं दिखलाई पड़ते। इसका कारण चित्र ४०४ से स्पष्ट हो जायगा। प्रत्यक्ष है कि जब पृथ्वी से देखने पर सूर्य और ग्रह विपरीत दिशा में दिखलाई पड़ते हैं उस समय ग्रह हमसे निकटतम स्थिति में रहता है और साथ ही हमको इसका पूरा मंडल भी दिखलाई पड़ता है। इसलिए इन ग्रहों की सतह की जाँच इसी स्थिति में ख़ूब अच्छी तरह हो सकती है। इसका एक कारण यह भी है कि जब ये ग्रह इस स्थिति में (जिसे षड्भान्तर, opposition कहते हैं) आते हैं तब अर्ध रात्रि को, जब सूर्य ठीक नीचे रहता है, वे आकाश में क्षितिज से ख़ूब ऊँचे पर रहते हैं।

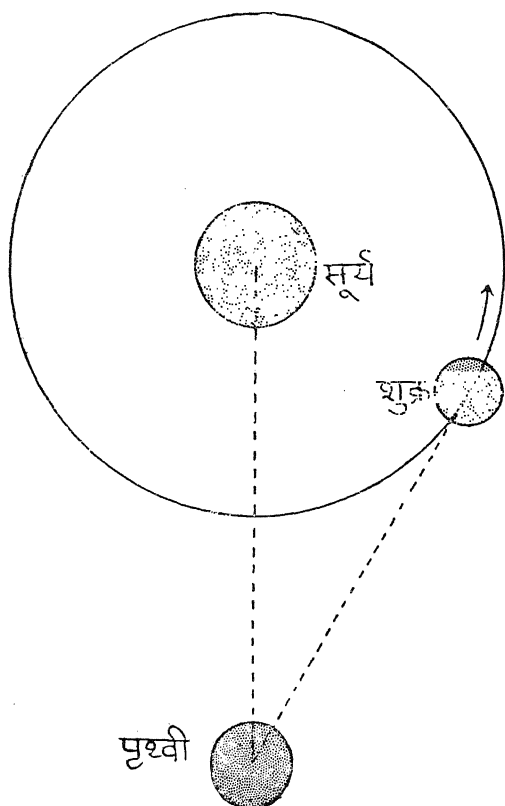
५—शुक्र केवल प्रातःकाल और संध्या-समय देखा जा सकता है—चित्र ४०५ से स्पष्ट है कि पृथ्वी से देखने पर शुक्र (या बुध) सूर्य से बहुत दूर नहीं जा सकता। सूर्य और शुक्र के बीच की दूरी अधिक से अधिक उस कोण के बराबर हो सकती है जो चित्र में दोनों विन्दुमय रेखाओं के बीच बना है। जब शुक्र सूर्य से पूरब की दिशा में रहता है तब सूर्य के अस्त होने पर, पश्चिमीय आकाश में, यह हमको दिखलाई पड़ता है और जब यह सूर्य से पश्चिम रहता है तब सूर्य के पहले अस्त होता है;



चित्र ४०४—मंगल की कलायें।

मंगल इत्यादि ग्रह जो पृथ्वी की कक्षा के बाहर रहते हैं हमको कभी भी धनुषाकार नहीं दिखलाई पड़ते। मंगल-कक्षा में किस जगह ग्रह के किस भाग पर रोशनी पड़ती है यह दिखलाया गया है और बाहरी वृत्त में ग्रह पृथ्वी पर से कैसा जान पड़ता है यह दिखलाया गया है।

इसलिए उन दिनों यह, सूर्य के प्रकाश के कारण, न तो दिन को दिखलाई पड़ता है और न शाम को। परन्तु सबेरे यह सूर्य के पहले



चित्र ४०९—सूर्य और शुक्र के बीच की दूरी अधिक से अधिक उस कोण के बराबर हो सकती है जो चित्र में दोनों विन्दुमय रेखाओं के बीच बना है।

उगता है और इसलिए उन दिनों यह सबेरे पूर्वीय आकाश में दिखलाई पड़ता है। जब सूर्य और शुक्र के बीच की दूरी अधिक-से-अधिक

होती है, तब भी शुक्र सूर्यास्त के लगभग चार घंटे भीतर ही अस्त होता है या सूर्योदय के चार घंटे भीतर ही उदय होता है। यही कारण है कि शुक्र हमेशा या तो पश्चिमीय क्षितिज से कुछ ऊँचे या पूर्वीय क्षितिज से कुछ ऊँचे पर दिखलाई पड़ता है। कभी भी यह मध्य आकाश में नहीं दिखलाई पड़ता।

बुध तो सूर्य के और भी निकट है। इसलिए जिस दिन यह सूर्य से अधिक से अधिक दूरी पर रहता है, उस दिन भी सूर्यास्त से लगभग दो घंटे में ही अस्त होता है, या सूर्योदय के लगभग दो घंटे पहले उदय होता है। सूर्यास्त के आध घंटे बाद तक पश्चिमीय आकाश बहुत प्रकाशमान रहता है, इसलिए उस समय बुध को देखना कठिन है। फिर क्षितिज के समीप आकाश के धुँधले होने के कारण (इसी धुँधलेपन से तो सूर्य डूबते समय लाल और तेजहीन हो जाता है), अस्त होने के आधे घंटे पहले ही से बुध नहीं दिखलाई पड़ता। इसलिए सबसे अधिक अनुकूल दिनों में भी बुध को कोरी आँखों से देखने के लिए पूरे एक घंटे का भी समय नहीं मिलता। सबेरे के समय भी यही हालत रहती है। यों तो बुध महत्तम तेज़ी के समय वास्तव में सबसे चमकीले तारात्रों से भी चमकीला दिखलाई पड़ता है, परन्तु सदा सूर्य से लाल हुए आकाश में दिखलाई पड़ने के कारण बुध को देखना इतना सहज नहीं है। प्राचीन ज्योतिषियों ने कमाल किया था जो उन्होंने पहचान लिया कि बुध तारा नहीं, ग्रह है। साधारण मनुष्यों में से बहुत कम ने इसे देखा होगा। शहर के रहनेवालों को इसका देखना और भी कठिन है, क्योंकि गर्द के कारण क्षितिज के पास का आकाश कभी भी सचमुच स्वच्छ नहीं दिखलाई देता। कहा जाता है कि कोपरनिकस मरते दम तक बुध को न देख सका यद्यपि उसने इसके लिए कई बार कोशिश की। लोगों का

अनुमान है कि उसके शहर की नदी से जो वाष्प उठा करता था उसी के कारण यह बात हुई होगी। बुध को देखने का सबसे अच्छा समय बरसात के बाद है, जब वायु के धुल जाने के कारण आकाश खूब स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगता है। ऐसा दिन चुनना चाहिए जब बुध सूर्य से लगभग महत्तम दूरी पर हो।* ऐसे समय

---

* हो सकता है कि हमारे कुछ पाठक बुध और अन्य ग्रहों को देखना और पहचानना चाहें। उनके सुभीते के लिए नीचे एक सारिणी दी जाती है, जिसमें मंगल इत्यादि बाहरी ग्रहों के सूर्य से विपरीत दिशा में आने की (अर्थात् उनके षड्भान्तर की) तिथि और शुक्र और बुध के सूर्य से पूरब की ओर सबसे अधिक दूरी पर पहुँचने की तिथि दी हुई है। अन्य तिथियों को जानने के लिए इन तिथियों के सामने दिये हुए युतिकाल को आवश्यकतानुसार १, या २, या ३, या ४, इत्यादि से गुणा करके जोड़ देना चाहिए।

सारिणी

ग्रह	सूर्य से विपरीत दिशा (षड्भान्तर) में पहुँचने की तिथि। इस तिथि को ग्रह मध्य रात्रि में यामोत्तर वृत्त पर (अर्थात् क्षितिज से महत्तम ऊँचाई पर) दिखलाई पड़ेगा।	सूर्य से पूरब की ओर महत्तम दूरी पर पहुँचने की तिथि इस समय ग्रह शाम को दिखलाई पड़ेगा।	युतिकाल
बुध	. . . . .	१२ सितम्बर १९२९	० साल ३ महीना २४·२ दिन
शुक्र	. . . . .	७ फ़रवरी १९२९	१ साल ७ महीना ५·७ दिन
मंगल	२१ दिसम्बर १९२८	. . . . .	२ साल १ महीना १८·७ दिन
बृहस्पति	३ दिसम्बर १९२९	. . . . .	१ साल १ महीना ३·१ दिन
शनि	१८ जून १९२९	. . . . .	१ साल ० महीना १२·६ दिन

उदाहरण। बुध १९४२ में लगभग १४ सितम्बर को सबसे अधिक दूरी पर पूर्व दिशा में पहुँचेगा क्योंकि १२ सितम्बर १९२९ के बाद ३ महीना २४·२

पर यह क्षितिज से थोड़ा ऊपर, चमकते हुए तारे की तरह आसानी से देखा जा सकता है।

९—भ्रमण और प्रदक्षिणा—ग्रहों की सूर्य-प्रदक्षिणा और अक्ष-भ्रमण (अपनी धुरी पर घूमना) अनियमित नहीं है। ध्रुव-तारा से देखने पर सभी ग्रह सूर्य के चारों ओर घड़ी की सुइयों के चलने की दिशा में चक्कर लगाते दिखलाई पड़ेंगे। केवल इतना ही नहीं, इन ग्रहों के उपग्रह भी प्रायः सभी उसी दिशा में ग्रहों का चक्कर लगाते दिखलाई पड़ेंगे। ग्रह और सूर्य भी अपनी धुरी पर उसी दिशा में घूमते हैं। यह बात कि इन सभों के चक्कर लगाने और घूमने की दिशा एक है सूचित करती है कि शायद सूर्य, ग्रहों और उपग्रहों की उत्पत्ति एक प्रकार हुई है। लापलास (Laplace) ने एक ऐसा सिद्धान्त खड़ा भी किया है जिससे इन सबके एक ही दिशा में घूमने की बात समझाई जा सकती है। उसका कहना था कि सूर्य और इसके परिवार के सब सदस्य एक ही कुंडलाकार नीहारिका (spiral nebula) (चित्र १२६, पृष्ठ १२५ देखिए) से उत्पन्न हुए हैं। यह नीहारिका घूम रही थी, इसी से सूर्य और ग्रह

दिन × ४१ बराबर है १२ सितम्बर १९२९ के बाद १३ साल ० महीना २ दिन; अर्थात्, यह तिथि १४ सितम्बर १९४२ है। इसी प्रकार मंगल १९४३ में लगभग २ दिसम्बर को सूर्य से विपरीत दिशा में पहुँचेगा क्योंकि २१ दिसम्बर १९२८ + (२ साल १ महीना १८·७ दिन) × ७ = २ दिसम्बर १९४३। बुध महत्तम दूरी पर पहुँचने के दस दिन पहले से लेकर दस दिन बाद तक अच्छी तरह देखा जा सकता है। बरसात के बाद सितम्बर अक्टूबर में बुध सबेरे के समय सबसे अच्छा दिखलाई पड़ता है, क्योंकि सितम्बर अक्टूबर में बुध की कक्षा पूर्वी क्षितिज को समकोण बनाती हुई काटती है, परन्तु पश्चिमीय क्षितिज को तिरछी काटती है। पूर्व में सूर्य से महत्तम दूरी पर पहुँचने के लगभग ४२ दिन बाद यह पश्चिम की ओर महत्तम दूरी पर पहुँच कर प्रातःकाल दिखलाई पड़ता है।

एक ही दिशा में घूमते हैं, परन्तु हम यहाँ पर इस सिद्धान्त की पूरी जाँच न करेंगे। ग्रहों की कक्षायें सब लगभग एक ही धरातल में भी हैं, केवल अवान्तर ग्रहों की कुछ कक्षायें इस धरातल में नहीं हैं, परन्तु इन ग्रहों के अत्यन्त छोटे होने के कारण उनकी कक्षा पर अन्य पिंडों का बहुत प्रभाव पड़ता होगा।



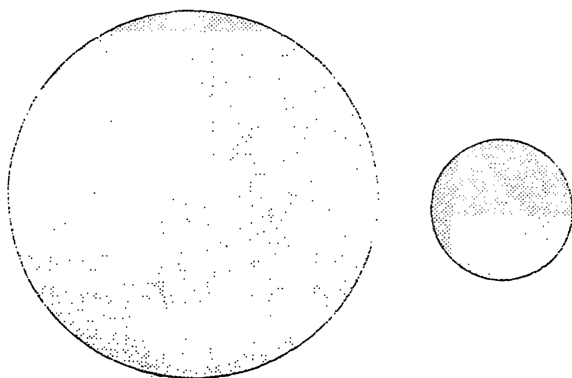
[आउटलाइन्स ऑफ़ सायंस से

चित्र ४०६—**लापलास (१७४६-१८२७)**।

प्रसिद्ध फ़्रेन्च ज्योतिषी और गणितज्ञ। इसका सिद्धान्त था कि सौर-परिवार की उत्पत्ति नीहारिका से हुई है (चित्र १२६, पृष्ठ १२५ देखिए)।

७—**परिक्षेपण-शक्ति**—श्वेत बादलों पर प्रकाश के पड़ने से प्रकाश के १०० भाग में से लगभग ७५ भाग लौट आता है (अर्थात्, परिक्षिप्त हो जाता है)। शेष २५ भाग को बादल सोख

लेता है और वह गरमी के रूप में बदल जाता है। काले पत्थरों पर पड़ने से १०० में से शायद ५ भाग ही लौटेगा। शेष को पत्थर ही सोख लेगा। हम कहते कि श्वेत बादलों की परिक्षेपण-शक्ति (albedo) बहुत अधिक ($\frac{७५}{१००}$ या ·७५) है, काले पत्थरों का बहुत कम ($\frac{५}{१००}$ या ·०५)। परिक्षेपण-शक्ति से भी बहुत सी बातों का पता



चित्र ४०७—पृथ्वी और बुध की नापों की तुलना।
बुध पृथ्वी की अपेक्षा नाप में बहुत छोटा है।

चलता है। यदि किसी ग्रह की परिक्षेपण-शक्ति बादलों के समान हुई तो ऐसा समझा जा सकता है कि वह ग्रह बादलों से ढका हुआ है। परिक्षेपण-शक्ति के कम रहने से बादलों का न रहना प्रमाणित होता है। इस रीति से पत्थरों के रंग का भी कुछ अनुमान किया जा सकता है।

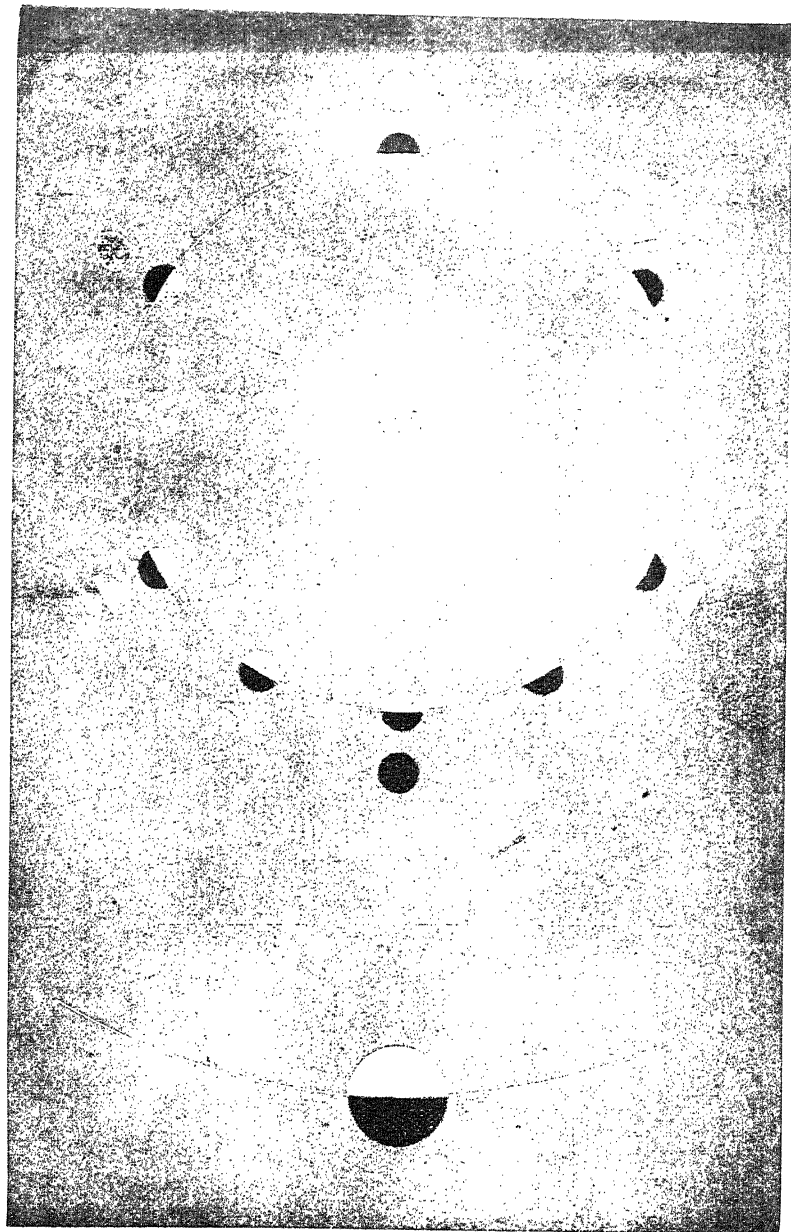
सूर्य से ग्रह पर कितना प्रकाश पड़ता होगा इसकी गणना करके और यह देख कर कि ग्रह से कितना प्रकाश पृथ्वी तक आता है, ग्रहों की परिक्षेपण-शक्ति का अनुमान किया जाता है।

एक बात और है जिससे पता लग सकता है कि किसी ग्रह की सतह समथल या बहुत ऊँचो-नीची है। चन्द्रमा से जितना प्रकाश हमको पूर्णिमा के समय मिलता है उसके आधे से बहुत कम प्रकाश हमको उस समय मिलता है जब चन्द्रमा अर्ध-वृत्ताकार हमको दिखलाई पड़ता है। इसका कारण यह है कि जिस समय चन्द्रमा अर्ध-गोलाकार हमको दिखलाई पड़ता है उस समय, वहाँ की ऊँची-नीची सतह से बहुत सी परछाइयों के बनने के कारण, हमको बहुत सी परछाइयाँ दिखलाई पड़ती हैं और इसलिए हमको प्रकाश कम मिलता है। इसलिए कला के बढ़ने के साथ साथ प्रकाश किस नियम से बढ़ता है इसकी जाँच करने से सतह समथल है या बहुत ऊँची-नीची, इसका भी पता लग जाता है।

उपरोक्त दोनों रीतियों से ग्रहों के विषय में सीखी गई बातों की चर्चा इन ग्रहों के वर्णन के प्रसंग में मिलेगी।

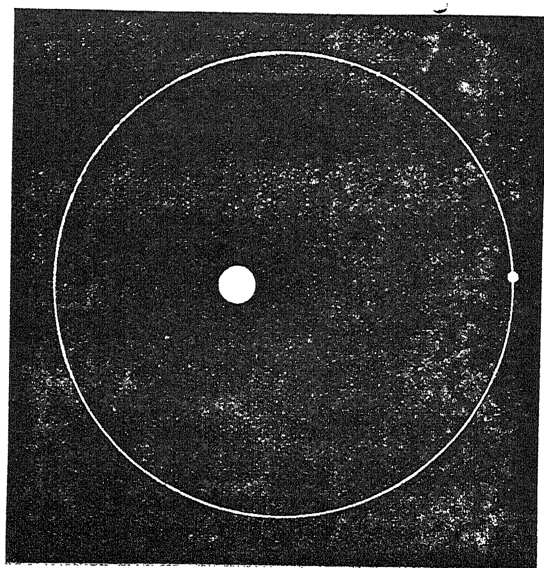
८—**बुध**—हम देख चुके हैं कि यह ग्रह ख़ूब चमकीला होने पर भी सुगमता से नहीं देखा जा सकता, क्योंकि यह सूर्य के पास ही रहता है और केवल सूर्यास्त के थोड़ी देर बाद या सूर्योदय के कुछ देर पहले दिखलाई पड़ता है। प्राचीन यूरोपीय ज्योतिषियों की पहले यह धारणा थी कि प्रातःकाल और सायंकाल को दिखलाई पड़नेवाले ग्रह भिन्न भिन्न हैं और इसलिए उस ज़माने में इसी ग्रह के दो नाम पड़ गये थे। सायंकाल को दिखलाई पड़नेवाले ग्रह का नाम उन्होंने "मरक्युरी" (Mercury) रक्खा था, जो अब भी प्रचलित है, परन्तु प्रातःकाल दिखलाई पड़ने पर इसी का नाम अपोलो (Apollo) रक्खा गया था।

बुध अन्य ग्रहों से कई बातों में न्यारा है। सूर्य से अन्य ग्रहों को अपेक्षा यह सबसे कम दूरी पर है, इसको सबसे अधिक प्रकाश और गरमी मिलती है, इसका वेग सबसे अधिक है, (अवान्तर ग्रहों को



चित्र ४०८—बुध में भी कलायें दिखलाई पड़ती हैं।
इसका कारण इस चित्र से स्पष्ट हो जायगा (चित्र ४०४ से तुलना कीजिए)।

छोड़ कर) इसकी कक्षा सबसे अधिक दीर्घाकार (चपटी) और सूर्य के मार्ग के हिसाब से सबसे अधिक तिरछी है । यह सबसे अधिक (फिर अवान्तर ग्रहों को छोड़ कर) हलका है और व्यास में भी सबसे छोटा है, यहाँ तक कि यह शनि और बृहस्पति के बड़े उपग्रहों से भी छोटा है ।



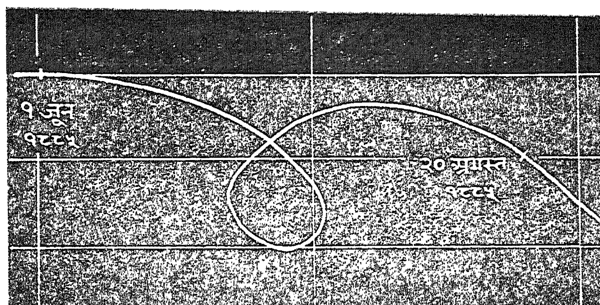
चित्र ४०६—बुध कभी सूर्य के निकट और कभी इससे अधिक दूर चला जाता है ।

ऊपर का नक़्शा पैमाने पर बना है ।

कक्षा के अधिक दीर्घवृत्ताकार होने के कारण, बुध कभी सूर्य के निकट और कभी इससे दूर चला जाता है (चित्र ४०६) । इसका फल यह होता है कि बुध को कभी कम, कभी अधिक गरमी मिलती है । इसमें अन्तर यहाँ तक पड़ता है

कि पास आ जाने पर बुध को लघुत्तम गरमी की दुगुनी गरमी मिलने लगती है।

दूरदर्शक से बुध दिन में ही देखा जा सकता है। दूरदर्शक के ताल पर सूर्य की रश्मियाँ न पड़ें इसका उचित प्रबन्ध कर देने पर बुध दिन में रात से भी अच्छी तरह देखा जा



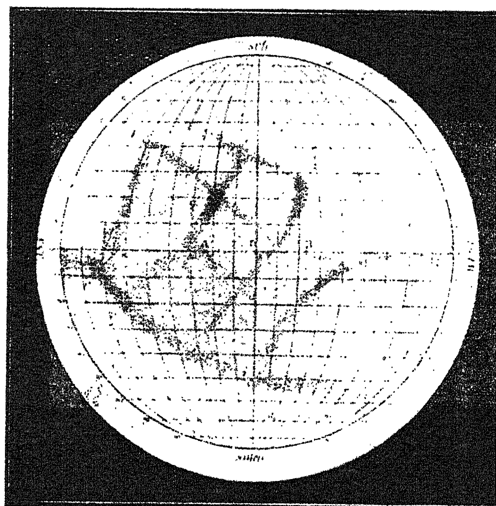
चित्र ४१०—सन् १८८५ में तारात्र्या के बीच बुध का प्रत्यक्ष मार्ग।

देखिए ताराओं के हिसाब से बुध कभी आगे चलता है और कभी पीछे; कभी मार्गी रहता है और कभी वक्री।

सकता है। परन्तु बुध में बड़ी कठिनाई से और हमारे वायु-मंडल के अत्यन्त स्वच्छ रहने पर, थोड़ी सी रेखायें या धब्बे देखे जा सकते हैं। इटली के ज्योतिषी शायापरेली (Schiaparelli) ने, लगभग ४० वर्ष हुए, कुछ स्थायी रेखाओं के देखने की घोषणा की (चित्र ४११), परन्तु इन रेखाओं का देखना अत्यन्त कठिन है और दूसरे ज्योतिषी ठीक इसी प्रकार का नक़शा नहीं बनाते। इन्हीं रेखाओं को घंटों तक बेध करने से पता चला कि जैसे चन्द्रमा का सदा एक ही मुख पृथ्वी की ओर रहता है,

वैसे ही बुध का भी एक ही मुख सदा सूर्य की ओर रहता है (चित्र ४१२)।

९—बुध का वायु-मंडल—बुध के कम आकर्षण के कारण वहाँ किसी वायु-मंडल के न होने की ही सम्भावना है। पहले जो कुछ वायु-मंडल रहा होगा वह उड़ गया होगा (पृष्ठ ४३८ देखिए)। आगे बतलाया जायगा कि जब शुक्र चन्द्राकार रहता

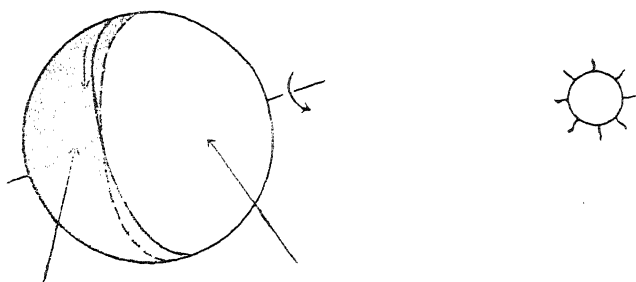


[शायापरेली

चित्र ४११—**शायापरेली के मतानुसार बना बुध का नक़शा।**

है तब वायु-मंडल के कारण इसके शृङ्ग कुछ बढ़ जाते हैं और जब शुक्र सूर्य के सामने आ जाता है तब इसका वायु-मंडल दिखलाई पड़ने लगता है। बुध में ये सब लक्षण एक भी नहीं देखे गये हैं। इसलिए बुध में वायु-मंडल के न होने का समर्थन भी हो जाता है।

बुध की परिक्षेपण-शक्ति बहुत कम है; प्रकाश के १०० भाग से यह केवल सात भाग लौटाता है। इससे पता चलता है कि बुध बादलों से ढका नहीं है। इसके पत्थर चन्द्रमा से भी गाढ़े रंग के होंगे। कला और प्रकाश-वृद्धि के सम्बन्ध से पता चलता है कि बुध में भी चन्द्रमा ही की तरह से पहाड़ इत्यादि होंगे। इस ग्रह के छोटे और दूर होने के कारण हम इसके पहाड़ों को देख नहीं सकते।



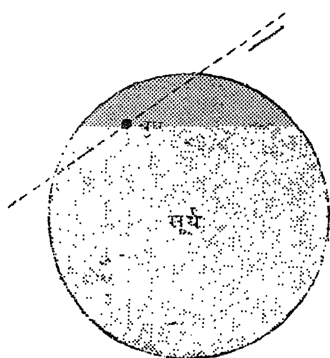
चित्र ४१२—शायापरेली का मत है कि बुध का एक ही मुख सदा सूर्य की ओर रहता है।

इसका परिणाम यह होगा कि सदा धूप में रहनेवाले भाग में भयानक गरमी पड़ती होगी। वहाँ सीसा पिघल जायगा, साथ ही दूसरे भाग में भयानक सरदी पड़ती होगी।

यदि यह बात सत्य है—और इसके सत्य होने की बहुत सम्भावना जान पड़ती है—कि बुध का एक ही मुख सदा सूर्य की ओर रहता है तो इस मुख पर बड़ी गरमी पड़ती होगी। इसके ताप-क्रम को नापने की चेष्टा भी की गई है और पता चलता है कि यहाँ का ताप-क्रम इतना है कि सीसा गल जायगा। बुध का वह भाग, जहाँ सूर्य की रोशनी कभी नहीं पहुँचती, बहुत ठंढा होगा।

गरम और ठंढे देशों के बीच एक भाग ऐसा होगा जहाँ कभी सूर्य के दिखलाई पड़ जाने के कारण और कभी छिप जाने के कारण (पृष्ठ ४१७-१८ पर दिया गया कारण यहाँ भी लागू है) कभी बहुत सरदी कभी बहुत गरमी पड़ती होगी।

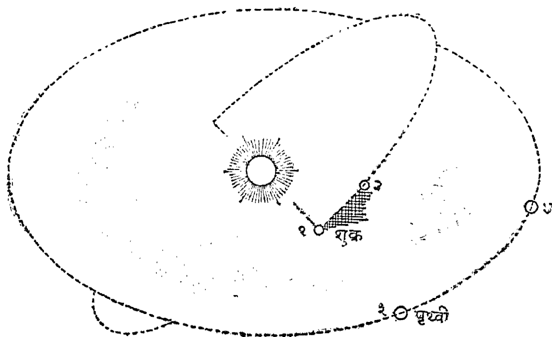
१०—**रवि-बुध-गमन**—चित्र ४०८, पृष्ठ ४७७, से जान पड़ता है कि प्रत्येक चक्कर में बुध एक बार सूर्य और पृथ्वी के बीच में आ जाता होगा, और इसलिए यह चमकते हुए सूर्य पर काले से धब्बे की तरह दिखलाई पड़ता होगा, परन्तु यह बात सत्य नहीं है, क्योंकि बुध की कक्षा सूर्य के मार्ग से तिरछी रहती है और इसलिए बुध कभी सूर्य के ऊपर से कभी इसके नीचे से निकल जाता है, और यह सूर्य के विम्ब पर नहीं दिखलाई पड़ता (चित्र ४१४)। जब यह सूर्य के सामने पड़ जाता है तब यह छोटे से कलंक की तरह, परन्तु बिना उपच्छाया (पृष्ठ २६०) के दिखलाई पड़ता है। कोरी आँख से इस समय बुध नहीं दिखलाई पड़ता, परन्तु छोटे से दूरदर्शक से भी काम चल जायगा। कालिख लगे या रंगीन शीशे से आँखों को बचाने का प्रबन्ध अवश्य कर लेना चाहिए (पृष्ठ २५५)। सूर्य के विम्ब पर बुध के आ जाने को रवि-बुध-गमन (transit of mercury) कहते हैं। यह घटना विज्ञान के लिए बहुत महत्त्व की नहीं है, केवल इससे बुध का मार्ग अधिक अच्छी तरह जाना जा सकता



चित्र ४१३—१४ नवम्बर १६०७ के रवि-बुध-गमन में बुध का मार्ग।

है, तिस पर भी इसको देखने से साधारण जनता का मनोविनोद होता है। इसलिए यहाँ पर भविष्य के उन रवि-बुध-गमनों की तिथियाँ दे दी जाती हैं जो इस शताब्दी में दिखलाई पड़ेंगे।

१९३७	मई १०	१९७०	मई ९
१९४०	नवम्बर १२	१९७३	नवम्बर ९
१९५३	नवम्बर १३	१९८६	नवम्बर १२
१९६०	नवम्बर ६	१९९९	नवम्बर २४

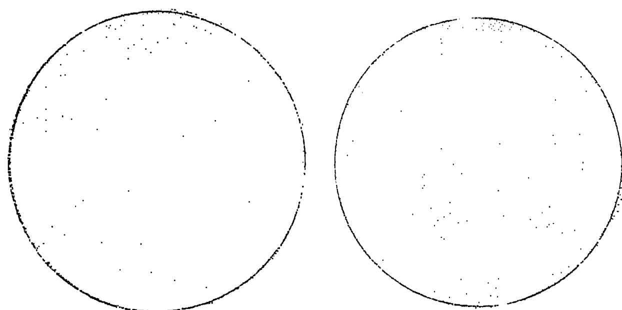


चित्र ४१४—शुक्र की कक्षा (और बुध की भी) सूर्य के मार्ग से तिरछी है;

इसलिए शुक्र कभी सूर्य के ऊपर से, कभी इसके नीचे से निकल जाता है और इसलिए प्रत्येक युति पर रवि-शुक्र-गमन नहीं दिखलाई पड़ता। जब शुक्र १ पर रहेगा और पृथ्वी २ पर, तब गमन दिखलाई पड़ेगा; जब शुक्र ३ पर रहेगा और पृथ्वी ४ पर तब गमन नहीं दिखलाई पड़ेगा।

११—शुक्र—शुक्र के अत्यन्त अधिक चमक और सौन्दर्य के कारण इस पर प्रायः सभी ने ध्यान दिया होगा। बुध की तरह यह भी प्रातःकाल और सायंकाल को ही, परन्तु सूर्योदय या सूर्यास्त

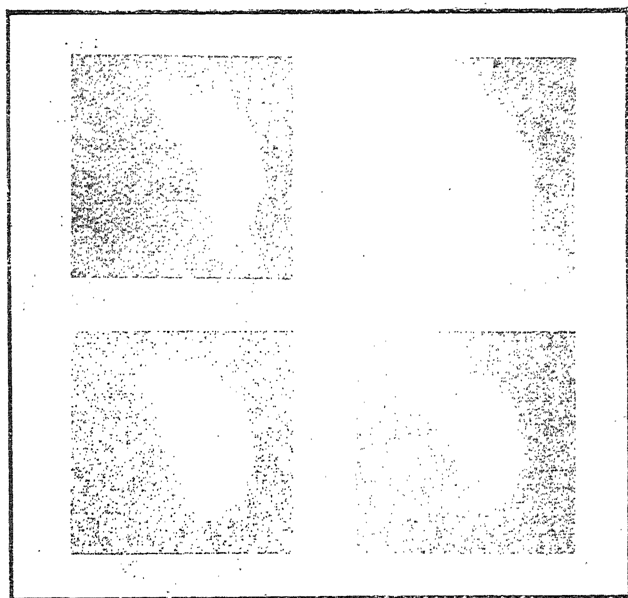
के ४ घंटे पहले या बाद तक देखा जा सकता है। बुध की तरह इसके भी दो नाम पड़ गये थे। फ़ॉसफ़ोरस और हेसपेरस (Hesperus)। यह प्रातःकालीन तारा (Morning Star) और सायंकालिक तारा (Evening Star) इन दो नामों से भी प्रसिद्ध था। यह इतना चमकदार है कि रात्रि के समय इससे परछाईं पड़ती है। सबसे चमकदार यह उस समय नहीं रहता जब इसका पूर्ण-मंडल हमको दिखलाई पड़ता है, क्योंकि उस समय यह हमसे बहुत दूर रहता है (चित्र ४०२ पृष्ठ ४६६)। इसी प्रकार यह हमको उस समय



चित्र ४१५—पृथ्वी और शुक्र की नापों की तुलना।
शुक्र पृथ्वी से थोड़ा ही छोटा है।

भी सबसे चमकीला नहीं दिखलाई पड़ता है जब यह हमसे निकटतम दूरी पर रहता है, क्योंकि उस समय इसकी कला एक-दम क्षीण, प्रायः नहीं के समान, रहती है। सबसे चमकदार यह इस समय के ३६ दिन पहले या पीछे जान पड़ता है। उस समय इसका आकार पंचमी के चन्द्रमा की तरह रहता है, रात्रि में इससे ख़ूब स्पष्ट परछाईं पड़ती है और दिन में भी यह देखा जा सकता है। शुक्र को दिन में देखने के लिए ऐसा दिन चुनना चाहिए

जब शुक्र सबेरे दिखलाई पड़ता हो और यह खूब चमकीला हो। किसी मकान की आड़ से इसको इस प्रकार देखना चाहिए कि यह स्वयं तो दिखलाई पड़े, परन्तु सूर्य न दिखलाई पड़े। थोड़ी



[लिक वेधशाला

चित्र ४१६—भिन्न भिन्न प्रकाशों में शुक्र का फ़ोटोग्राफ़।

बाईं ओर के दो फ़ोटोग्राफ़ परा-कासनी प्रकाश से और दाहिनी ओर के दो फ़ोटोग्राफ़ उपरक्त (गरालाल) प्रकाश से लिये गये हैं। यद्यपि इस रीति से मंगल के बारे में नई बातों का पता लगा है, तो भी शुक्र के विषय में ऐसे फ़ोटोग्राफ़ सहायता नहीं दे सके हैं, क्योंकि ये फ़ोटोग्राफ़ सभी ब्योरा-रहित हैं।

थोड़ी देर पर (या बराबर) इसको देखते रहने से यह कहाँ है इसका अन्दाज़ रहेगा और यह बहुत देर तक दिखलाता रहेगा। एक बार खो जाने से फिर इसको देख लेना कठिन हो जायगा, इसलिए

इसका ध्यान रखना चाहिए कि किस स्थिति से यह मकान के किसी विशेष भाग के ज़रा सा ऊपर दिखलाई पड़ता है। अवश्य ही, जैसे-जैसे शुक्र आकाश में उठता जायगा तैसे-तैसे मकान के अधिक पास से इसे देखना होगा। इस रीति से शुक्र दस ग्यारह बजे दिन तक देखा जा सकता है।

चन्द्रमा, एक दो अवान्तर ग्रहों, और एक आध पुच्छल ताराओं को छोड़, सब आकाशीय पिंडों में से शुक्र सबसे अधिक हमारे निकट आ जाता है, परन्तु तो भी यह अच्छी तरह देखा नहीं जा सका है क्योंकि जब यह पास आता है तब यह चन्द्राकार दिखलाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त शुक्र पर कुछ ऐसी वस्तु है भी नहीं जो अच्छी तरह देखी जा सके। जहाँ तक जान पड़ता है यह सफ़ेद बादलों से ढका है; इसी से इसकी सतह कभी देखी नहीं जा सकती। बिना दूरदर्शक के यह इतना सुन्दर जान पड़ता है कि दूरदर्शक से अत्यन्त सुन्दर दिखलाई पड़ने की आशा होती है, परन्तु दूरदर्शक द्वारा देखने से निराशा ही होती है। हाँ, जो पहले पहल इसे दूरदर्शक से देखते हैं, उन्हें इसकी कलाओं पर आश्चर्य अवश्य होता है।

अत्यन्त चमक के कारण आँखों को चकाचौंध सी हो जाती है, इसलिए इसकी सतह की जाँच के लिए इसको दूरदर्शक-द्वारा दिन में ही देखना अच्छा है। साधारणत: इस ग्रह पर कोई रेखा या धब्बा नहीं दिखलाई पड़ता। जब यह चन्द्राकार दिखलाई पड़ता है तब भीतर की सीमा तीक्ष्ण नहीं रहती, क्रमश: इसकी चमक मिटते मिटते मिट जाती है। इससे घने वायु-मंडल का बोध होता है। परन्तु कभी कभी हलके रंग के और भद्दे धब्बे दिखलाई पड़ जाते हैं, जो स्थायी नहीं होते। शायद बादलों के हट जाने या कम हो जाने से कहीं कहीं धब्बे दिखलाई पड़ने लगते होंगे।

१२—भ्रमण-काल—मिस क्लार्क का कहना है कि श्रेटर (Schroeter) जरमनी का हरशेल था*। श्रेटर (१७४५-१८१६) हरशेल के समान भाग्यशाली नहीं था, परन्तु उसका भी जीवन-



[मोर्संकृत "मार्स" से

चित्र ४१७—**शायापरेली**।

इसने ग्रह-सम्बन्धी बहुत से आविष्कार किये, परन्तु विशेष रूप से मंगल की नहरों को देखने के लिए यह प्रसिद्ध है।

चरित्र रोचक है। गटिङ्गन विश्वविद्यालय में क़ानून अध्ययन करने के बाद वह लिलियनटाल में चीफ़ मैजिस्ट्रेट हो गया। वहाँ उसने

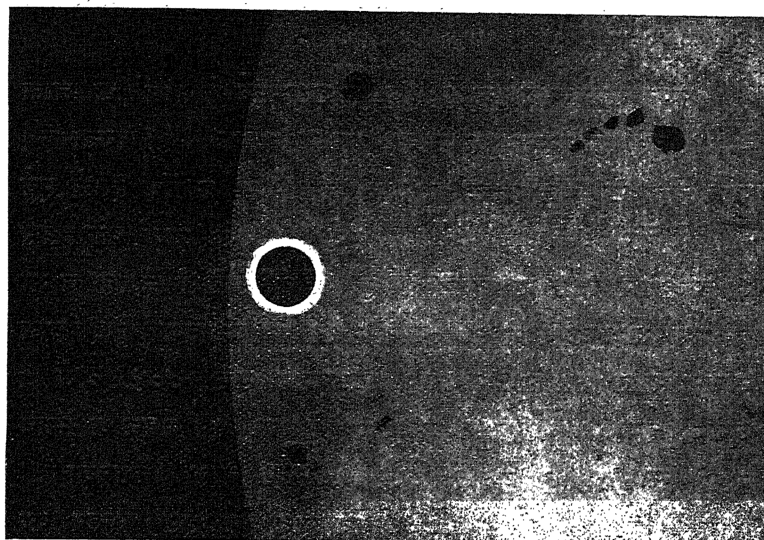
---

* Agnes M. Clerke, A Popular History of Astronomy (1908) p. 243.

एक छोटी सी निजी वेधशाला बनवा ली और अवकाश के समय में वह बराबर ज्योतिष के पीछे पड़ा रहता था। चन्द्रमा की जाँच उसने पूरी तरह से की और शुक्र इत्यादि की भी जाँच की। प्रसिद्ध ज्योतिषी बेसेल (Bessel) ने क्रियात्मक ज्योतिष की शिक्षा इसी की वेधशाला में पाई थी। परन्तु श्रेंटर का अंत अत्यन्त शोचनीय रहा। १८१३ में, फ्रेंच लोगों ने उसके शहर को जीत लिया और लूटमार के बाद आग लगा दी। श्रेंटर की सब रचनायें और पुस्तकें जल गईं। वेधशाला बच गई थी, परन्तु शत्रु इसमें भी पिल पड़े और तोड़-फ़ोड़ कर सब सत्यानाश कर दिये। इसी रंज में वह दुर्बल हो गया और तीन वर्ष में उसकी मृत्यु हो गई।

श्रेंटर ने शुक्र पर धब्बे (चित्र २५ पृष्ठ ३१) और उनकी गति को देख कर यह निश्चय किया कि शुक्र अपनी धुरी पर २३ घंटे २१ मिनट में घूमता है। इसके बाद कई दूसरे ज्योतिषियों ने इसका थोड़ा-बहुत समर्थन किया, परन्तु १८९० में शायापरेली (Schiaparelli) ने प्रकाशित किया कि बहुत सम्भव है शुक्र भी बुध की तरह बराबर एक ही मुख सूर्य की ओर किये रहता है। रश्मि-विश्लेषक यंत्र (पृष्ठ २८६) से केवल इतना पता लग सका है कि शुक्र इतनी तेज़ी से नहीं घूमता कि इसका एक भ्रमण साढ़े तेइस ही घंटे में हो जाय, परन्तु शुक्र के छोटे होने के कारण इस यंत्र से भी इसके ठीक भ्रमण-काल का पता नहीं चल सका है। ताप-क्रम नापने से भी पूरा पता तो नहीं चला है, परन्तु अँधेरे भागों का ताप-क्रम बहुत कम नहीं जान पड़ता है, जिससे शुक्र के सदा सूर्य की ओर एक ही मुख फेरने की बात में शंका पड़ जाती है। आशा है थोड़े ही वर्षों में इसके भ्रमण-काल का अधिक अच्छा पता चल सकेगा।

१३—शुक्र का वायु-मंडल इत्यादि—शुक्र की आकृति से ही पता चलता है कि इस पर वायु-मंडल है, क्योंकि इसके प्रकाशित कला और अप्रकाशित काले भाग की संधि तीक्ष्ण नहीं होती। शुक्र की परिक्षेपण-शक्ति $\frac{७५}{१००}$ है, जिससे सम्भावना होती



चित्र ४१८—जब शुक्र सूर्य के सामने आ जाता है तब इसके चारों ओर प्रकाश का घेरा दिखलाई पड़ता है।

है कि शुक्र सफ़ेद बादलों से ढका है (पृष्ठ ४७४)। १९१० में मिथुन राशि के एक तारे को शुक्र ने ढक लिया था। इस अवसर पर छिपने के ढाई सेकंड पहले ही से तारे का प्रकाश घटने लगा, जिससे पता चलता है कि शुक्र पर ७० मील तक वायु-मंडल है। फिर, जब शुक्र सूर्य के सामने आ जाता है, अर्थात् शुक्र-रवि-गमन के अवसर पर, तब इसके चारों ओर प्रकाश का घेरा दिखलाई पड़ता है (चित्र

४१८)। यह भी इस सिद्धान्त पर कि शुक्र पर वायु-मंडल है, अच्छी तरह समझाया जा सकता है। फिर, गणना के अनुसार जितना शृङ्ग (horns) दिखलाई देना चाहिए उससे कुछ अधिक ही दिखलाई पड़ता है। यह भी वायु-मंडल के रहने का फल है (चन्द्राकार कला के दोनों नुकीले भागों को शृङ्ग कहते हैं)।

समय समय पर शुक्र भी बुध की तरह सूर्य के सामने आ जाता है और उस समय सूर्य-शुक्र-गमन (Transit of Venus) लगता है। पहले यह घटना बड़े महत्त्व की मानी जाती थी, क्योंकि इससे सूर्य की दूरी नापी जा सकती थी। अब सूर्य की दूरी नापने की इससे भी अच्छी रीतियाँ निकली हैं; परन्तु यदि ये रीतियाँ निकली न भी होतीं तो भी शुक्र-गमन से वर्तमान समय के ज्योतिषी कोई लाभ न उठा सकते, क्योंकि आगामी शुक्र-गमन सन् २००४ ई० में ८ जून को लगेगा। पिछला गमन १८८२ में लगा था। गमन के समय नापने से शुक्र का व्यास लगभग ७६०० मील निकलता है। अन्य समय यह व्यास ७८०० निकलता है। इस अन्तर का कारण प्रकाश-प्रसरण (irradiation) है (पृष्ठ ३६३ देखिए); क्योंकि गमन के समय अत्यन्त चमकीले सूर्य के सामने पड़ने से प्रकाश-प्रसरण के कारण शुक्र अपने वास्तविक आकार से छोटा लगता है। इसी प्रकार काले आकाश के सामने अधिक चमक के कारण शुक्र अपने वास्तविक आकार से बड़ा जान पड़ता है। ऊपर के दोनों मानों का मध्य-मान (mean) असली व्यास के बराबर है।

१४—क्या शुक्र पर भी प्राणी हैं?—यह प्रश्न अत्यन्त चित्ताकर्षक है कि क्या अन्य आकाशीय पिंडों में भी प्राणी निवास करते हैं। हम देख चुके हैं कि सूर्य आग के गोले से भी गरम है,

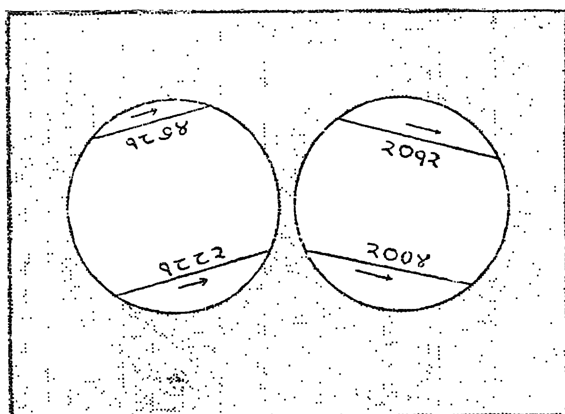


[स्प्लेंडर ऑफ़ दि हेवंस से

चित्र ४१९—रवि-शुक्र-गमन ।

एक फ्रेंच चित्रकार का बनाया हुआ कल्पित चित्र । यूरोप के पुराने साहित्य में शुक्र को लोगों ने सौन्दर्य की देवी माना है । इसी लिए चित्रकार ने इसको देवी के रूप में अंकित किया है ।

और चन्द्रमा और बुध पर न तो वायु है न पानी। इसलिए इन पिंडों पर जीवधारियों के होने की कोई सम्भावना नहीं है। हाँ, यदि पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रह पर जीव हैं तो शुक्र पर उनके होने की सबसे अधिक सम्भावना है। यह सत्य है कि सूर्य के पास होने के कारण शुक्र को पृथ्वी की अपेक्षा दुगुनी गरमी मिलती है, परन्तु घने वायु-मंडल और बादलों के कारण शुक्र की सतह पर जीवधारियों के रहने के लिए सब बातें अनुकूल हो सकती हैं। तिस



चित्र ४२०—चार रवि-शुक्र-गमनों में शुक्र का मार्ग।

पर भी मंगल-निवासियों पर लोग जितना ध्यान देते हैं उसके मुक़ाबले में शुक्र-निवासियों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया है। बात यह है कि, जैसा अगले अध्याय में बतलाया जायगा, मंगल पर बादलों के न रहने से उस पर कई एक बातें ऐसी दिखलाई पड़ती हैं जिनसे वहाँ के प्राणियों की कारीगरी प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ने का शक होता है। इसी से मंगल के पीछे लोग इतने पड़े रहते हैं।

यद्यपि इस बात की कई बार अफ़वाह उड़ चुकी है कि शुक्र के भी उपग्रह देखे गये हैं, परन्तु अभी तक इन उपग्रहों का कोई प्रमाण नहीं मिला है। यदि वस्तुतः शुक्र के कोई छोटा उपग्रह हो भी और यह मंगल के उपग्रहों की तरह अपने प्रधान ग्रह के बहुत पास हो, तो उसका देखना, शुक्र के चमक के कारण, अत्यन्त कठिन होगा।

——

अध्याय १२

अवान्तर ग्रह इत्यादि

१—आकाशीय पुलिस—बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति और शनि की कक्षाओं के नक़शे को देखने पर मंगल और बृहस्पति के बीच बहुत अधिक ख़ाली स्थान जान पड़ता है और ऐसा प्रतीत होता है जैसे इनके बीच में भी किसी ग्रह को रहना चाहिए। यह बात इतनी प्रत्यक्ष है कि केपलर ने, ग्रहों की दूरी के सम्बन्ध में जाँच करते समय, मंगल और बृहस्पति के बीच में एक ग्रह स्थापित करना चाहा था, जो छोटे होने के कारण हमको दिखलाई नहीं पड़ता। उधर लैम्बर्ट ने मज़ाकन कहा कि इस शून्य में पहले जो ग्रह रहे होंगे उनको शायद कोई भारी पुच्छल तारा अपने आकर्षण-पाश से बाँध कर और अपना दास बना कर समेट ले गया होगा।

१७७२ में विट्टनवर्ग (जरमनी) के एक प्रोफ़ेसर टिटियस (Titius) ने बतलाया कि यदि हम ०, ३, ६, १२, २४, इत्यादि संख्याओं में, जिनमें पहली दो संख्यायें ० और ३ हैं और शेष ३ को दुगुना करते चले जाने से लिखी जा सकती हैं, ४ जोड़ दें तो ग्रहों की सापेक्षिक दूरी निकल आयेगी। इस प्रकार निकली दूरी और वास्तविक दूरी में बहुत कम अन्तर है, जैसे—

	०	३	६	१२	२४	४८	९६	१९२	३८४
	४	४	४	४	४	४	४	४	४
जोड़	४	७	१०	१६	२८	५२	१००	१९६	३८८
वास्तविक दूरी	३·९	७·२	१०·०	१५·२	२६·५	५२·०	९५·४	१९१·९	३००·७

ग्रह का नाम बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, अवान्तर ग्रह, बृहस्पति शनि वारुणी वरुण

जिस समय टिटियस ने इस नियम का आविष्कार किया था, उस समय न तो अवान्तर ग्रहों का पता था, और न वारुणी और वरुण का ही। इसलिए मंगल और बृहस्पति के बीच एक ख़ाली स्थान पड़ता था। बोडे (Bode), जो पीछे कई वर्षों तक जरमन ज्योतिषियों का नेता रहा, उसी समय अपना कार्य आरम्भ कर रहा



[ऐस्ट्रॉनोमी फ़ॉर ऑल से

चित्र ४२१—सीरिस नामक अवान्तर ग्रह के आविष्कार का स्मारक-चित्र।

था। उसने तुरन्त मान लिया कि इस ख़ाली स्थान में कोई ग्रह अवश्य है और इस बात पर बहुत ज़ोर दिया। इसी से ऊपर का नियम टिटियस के नाम से नहीं, बोडे के नाम से प्रसिद्ध है और बोडे का नियम कहा जाता है। जब यूरेनस का आविष्कार हुआ और पता चला कि इसकी दूरी भी बोडे के नियम के अनुकूल है तब लोगों की धारणा और भी दृढ़ हो गई। अन्त में कुछ जरमन ज्योतिषियों ने मिल कर २४ सदस्यों की एक परिषद् स्थापित की

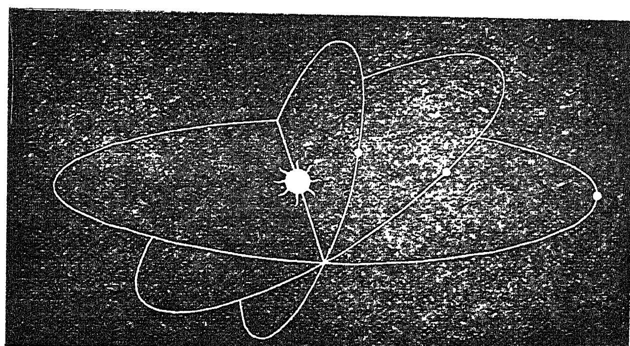
जिसे वे मज़ाकन "आकाशीय पुलिस" कहा करते थे। राशिमंडल को २४ भागों में बाँट कर, प्रत्येक सदस्य ने एक एक भाग अपने ज़िम्मे ले लिया और उसकी अच्छी तरह से खाना-तलाशी लेने की ठानी कि कहीं अभियुक्त उसी के हलके में तो नहीं छिपा है। परन्तु यश इनके भाग्य में नहीं लिखा था। इधर कार्य अच्छी तरह आरम्भ भी न हो पाया था, उधर ख़बर लगी कि किसी दूसरे ही व्यक्ति ने चाहे हुए ग्रह को देख लिया है।

२—नये ग्रह का आविष्कार—पियाज़ी (Piazzi), जिसने १८ वर्ष की ही आयु में संन्यास धारण कर लिया था, सिसिली के वायसराय को एक बेधशाला बनवाने के लिए राज़ी कर लिया। बेधशाला वायसराय के महल के एक अट्टालिका में बनी और पियाज़ी तीन वर्ष तक फ्रांस और इँगलैंड में ज्योतिष अध्ययन करके अपनी बेधशाला में काम करने लगा। ९ वर्ष तक वह एक नक्षत्र-सूची बनाने में लगा रहा। उसने उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दिवस के सायंकाल में, जब उसे यह ज़रा भी ख़बर न थी कि ज्योतिषी-जासूसों की जरमन-सेना ने उसके लिए भी एक स्थान ख़ाली रख छोड़ा है, एक आठवीं श्रेणी* का तारा देखा जो एक पुरानी नक्षत्र-सूची में बतलाये गये स्थान से दूसरी जगह था। दो तीन दिन देखने से स्पष्ट हो गया कि यह नक्षत्र नहीं है; ग्रह होगा, या जैसा पियाज़ी ने अधिक सम्भव समझा, बिना पूँछवाला केतु होगा। पियाज़ी इसे सवा महीने तक सावधानी से देखता रहा और वह तब बहुत बीमार पड़ गया। इतना अच्छा हुआ कि पियाज़ी ने अपने आविष्कार की सूचना बाहर भेज दी थी। परन्तु २४ जनवरी की भेजी चिट्ठी बोडे

---

* प्रथम श्रेणी के तारे सबसे चमकीले होते हैं। दूसरी के उससे कम, इत्यादि। छठीं श्रेणी तक के तारे कोरी आँख से देखे जा सकते हैं। शेष के लिए दूरदर्शक चाहिए।

को २० मार्च को मिली। उन दिनों अशान्ति के कारण चिट्ठियों का पहुँचना इतना सरल न था। इसी बीच में एक युवा जरमन दार्शनिक, हेगेल ने एक निबंध छपवाया था जिसमें उसने "अकाट्य" प्रमाणों से "सिद्ध" कर दिया था कि सात से अधिक ग्रह हो ही नहीं सकते और वे सब जो नये ग्रह की खोज में लगे हैं पागल हैं!



चित्र ४२२—यदि अवान्तर ग्रह एक बड़े ग्रह के टूटने से बने होते तो प्रत्येक की कक्षा एक ही विन्दु से जाती।

बोडे के हाथ में पत्र के आते ही सब जगह नये ग्रह के मिलने का समाचार शीघ्र फैल गया, परन्तु साथ ही डर यह भी लगा था कि यह ग्रह फिर से सदा के लिए अन्तर्धान न हो जाय। बात यह थी कि अब वह सूर्य के इतना निकट पहुँच गया था कि दिखलाई नहीं पड़ता था और कुछ महीने बाद उसको देख पाने के लिए उसके मार्ग का ठीक ठीक पता चाहिए था। पियाज़ो ने उसे केवल सवा महीने तक ही देखा था, और उस समय सवा महीने की गति से किसी ग्रह का मार्ग नहीं बतलाया जा सकता था। कई एक

गणितज्ञों ने चेष्टा की कि मार्ग की गणना करें, पर उनका उत्तर ऐसा ऊटपटांग निकलता था कि सब लोग निराश हो गये। इस अवसर पर गाउस (Gauss) ने, जो उस समय केवल २४ वर्ष का था, और जिसकी अब संसार के इने-गिने प्रसिद्ध ज्योतिषियों और गणितज्ञों में गणना होती है, बिलकुल नयी और अत्यन्त सुन्दर रीति से नये ग्रह की कक्षा की गणना की और नवम्बर तक वह बतला सका कि अब वह ग्रह कहाँ होगा। परन्तु अब एक नई विपत्ति यह पड़ी कि बादल और पानी के कारण आकाश ही नहीं दिखलाई पड़ता था। अन्त में, वर्ष के अन्तिम दिवस की रात्रि में आकाश स्वच्छ हो गया और वह ग्रह जिसका आविष्कार वर्ष के प्रथम दिवस में हुआ था आज फिर, प्राय: उसी स्थान में जहाँ गाउस ने बतलाया था, दिखलाई पड़ा। पियाज़ी के इच्छानुसार नये ग्रह का नाम सिसिली की ग्राम-देवी के नाम पर सीरिस (Ceres) रक्खा गया।

३—अन्य अवान्तर ग्रहों का आविष्कार—कुछ ही दिनों बाद एक दूसरा अवान्तर ग्रह भी देखा गया। गाउस से फिर सहायता माँगी गई और शीघ्र पता लगा कि यह अवान्तर ग्रह भी सीरिस ही के समान, प्राय: उतनी ही दूरी पर, सूर्य की प्रदक्षिणा करता है। इसके बाद लोगों का ख़्याल हुआ कि शायद पहले यहाँ कोई साधारण ग्रह था जिसके फूट जाने से ये छोटे छोटे टुकड़े बन गये हैं। यदि यह बात सच्ची है तो, जैसा चित्र ४२२ में दिखलाया गया है, प्रत्येक टुकड़े की कक्षा उस विन्दु से होकर जायगी जहाँ असली ग्रह फटा था। संयोगवश ५ वर्ष में दो और ग्रह मिले जिनसे इस बात का समर्थन हुआ। परन्तु पीछे अन्य ग्रहों का पता चला जिनके लिए यह बात सत्य नहीं है। चौथे अवान्तर ग्रह के आविष्कार के बाद वर्षों तक खोज होती रही पर कोई नया ग्रह नहीं मिला। अन्त में, चौथे ग्रह के आविष्कार के लगभग

४० वर्ष बाद, एक उप-पोस्टर-मास्टर के १५ वर्ष का कठिन परिश्रम सफल हुआ। फिर तो नये ग्रह दनादन मिलने लगे। अब तक



[स्प्लेंडर ऑफ़ दि हेवंस से

चित्र ४२३—मैक्स वोल्फ़,

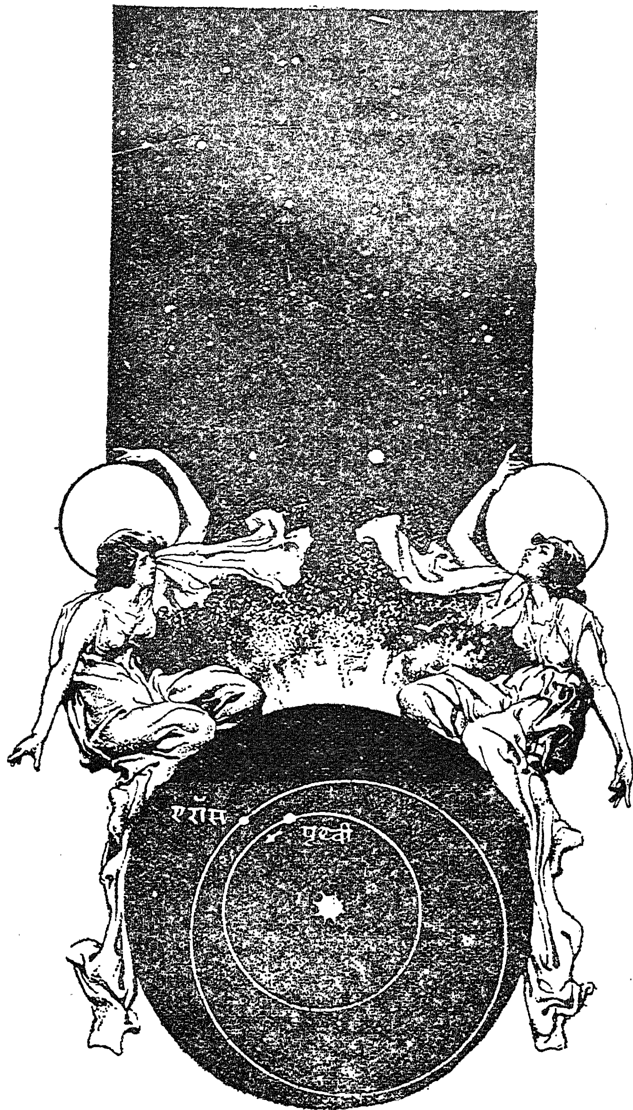
जिसकी बतलाई हुई रीति से सैकड़ों अवान्तर ग्रहों का पता चला है।

क़रीब पौने दो हज़ार अवान्तर ग्रहों का पता लगा है। आठ दस नये ग्रहों का हर साल ही पता लगा करता है। १८४७ से अब

तक कोई भी ऐसा वर्ष नहीं गया है जिसमें एक दो नये अवान्तर ग्रह न मिले हों। बाज़ वर्षों में तो सौ-सौ ग्रह मिले हैं।

इधर अधिक ग्रहों के पता लगने का कारण यह है कि हाइडेलबर्ग के जरमन ज्योतिषी मैक्स वोल्फ़ (Max Wolf) ने इनका पता लगाने के लिए एक नवीन रीति निकाली है। आकाश के जिस स्थान में ग्रहों के रहने की शंका होती है उसका फ़ोटोग्राफ़ लेते समय दूरदर्शक इस अन्दाज़ से चलाया जाता है कि अज्ञात ग्रह का चित्र स्पष्ट उतरे। नक्षत्रों के हिसाब से ग्रह चलते रहते हैं। उनके वेग का अनुमान कर लिया जा सकता है। दूरदर्शक को इसी वेग से चलाने पर ग्रहों का चित्र तो तीक्ष्ण उतरता है, परन्तु तारे खिँच कर लम्बे हो जाते हैं, जैसे सिनेमा में जब दौड़ती हुई मोटरगाड़ी स्पष्ट दिखलाई पड़ती है तो पीछे की स्थिर चीज़ें अस्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं। इस रीति से अत्यन्त मन्द प्रकाशवाले अवान्तर ग्रहों का भी पता चल जाता है क्योंकि फ़ोटोग्राफ़ को कई घंटे का प्रकाश-दर्शन दिया जा सकता है (पृष्ठ १३४ देखिए)। इसके पहले ताराओं का फ़ोटोग्राफ़ साधारण रीति से लिया जाता था, जिससे अवान्तर ग्रहों का चित्र खिंच कर लम्बा उतरता था और नक्षत्रों का तीक्ष्ण (चित्र ४२४); परन्तु लम्बी रेखा में प्रकाश के बँट जाने के कारण इस रीति से केवल चमकीले अवान्तर ग्रहों का ही फ़ोटो उतरता था।

४—अवान्तर ग्रहों का नामकरण—इन अवान्तर ग्रहों का नामकरण-संस्कार बड़ा विचित्र है। जब किसी नये ग्रह का पता लगता है और इसकी कक्षा की गणना करने से ज्ञान हो जाता है कि यह वस्तुतः नया ग्रह है तब बरलिन (जरमनी) के रेख़ेन-इन्स्टिट्यूट (Recheninstitut) का अध्यक्ष इस ग्रह के लिए एक स्थायी नम्बर डाल देता है। बरलिन का रेख़ेन-इन्स्टिट्यूट ही संसार भर



[पॉपुलर सायंस से

चित्र ४२४—एरॉस का आविष्कार।

नक्षत्रों का तीक्ष्ण फ़ोटोग्राफ़ लेने पर अवान्तर ग्रह, अपनी गति के कारण, लम्बे उतरते हैं और इसी लिए उनकी पहचान हो जाती है, इस चित्र में एरॉस ऊपर के सिरे से प्रायः सटा हुआ दिखलाई पड़ रहा है। नीचे यह दिखलाया गया है कि उस समय एरॉस पृथ्वी के समीप था। केन्द्र में सूर्य है और वृत्तों से एरॉस और पृथ्वी की कक्षायें दिखलाई गई हैं।

के लिए अवान्तर ग्रह-विषयक अनुसंधानों का केन्द्र है। वहाँ से नम्बर पड़ जाने के बाद आविष्कारक इस ग्रह का एक नाम रख देता है। पहले देवी-देवताओं के नाम रक्खे जाते थे, परन्तु इनके नामों की सूची प्रायः समाप्त हो जाने के बाद तरह तरह के नाम रक्खे जाने लगे हैं। ग्रहों के नाम केवल आविष्कारकों के शहर, कॉलेज या मित्रों ही के अनुसार नहीं पड़े हैं, परन्तु जहाज़, पालतू कुत्ते और दिल-पसन्द मिठाइयों के अनुसार भी रख दिये गये हैं!

१८९८ तक इतने अवान्तर ग्रहों का पता लग गया था और उनका हिसाब रखने में इतना बखेड़ा होता था कि ज्योतिषी लोग उन्हें छोड़ ही देनेवाले थे। इतने में एक ऐसे अवान्तर ग्रह का पता लगा जो मंगल से भी अधिक हमारे पास आ जाता है। इस ग्रह का नाम एरॉस (Eros) रक्खा गया।

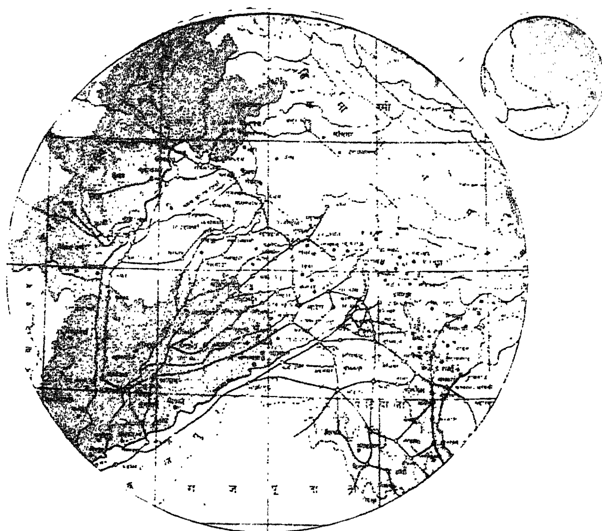
एरॉस के आविष्कार से तुरन्त अवान्तर ग्रहों में ज्योतिषियों की रुचि बहुत बढ़ गई, क्योंकि ऐसे ग्रहों से जो एरॉस की तरह हमारे बहुत पास चले आते हैं सूर्य की दूरी बड़ी सूक्ष्मता से नापी जा सकती है। अभी तक एरॉस से अधिक पास आनेवाला कोई अवान्तर ग्रह नहीं मिला है।

आज तक इतने अधिक अवान्तर ग्रहों का पता लगा है कि सबकी कक्षायें अच्छी तरह नहीं निकाली गई हैं। लगभग सौ ग्रहों की कक्षाओं का अच्छा ज्ञान है। इन ग्रहों के खो जाने का कुछ भी डर नहीं है, परन्तु शेष का पता रखना, बिना अत्यन्त कठिन परिश्रम किये, असम्भव सा जान पड़ता है।

सूर्य से सब अवान्तर ग्रहों की दूरी एक नहीं है। इनमें से सबसे कम दूरी एरॉस की है। यह पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से डेढ़ गुने दूरी पर है। सबसे अधिक दूरी हिडाल्गो (Hidalgo) नाम के ग्रह की है जो पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से लगभग पौने छः गुने दूरी

पर है। सब अवान्तर ग्रहों की दूरियों का औसत प्रायः वही है जो बोडे के नियम से निकलता है।

५—बोडे का नियम—बोडे का नियम इस बात में सच्चा निकला, इसमें सन्देह नहीं। इस नियम से वरुण (नेपच्यून) के

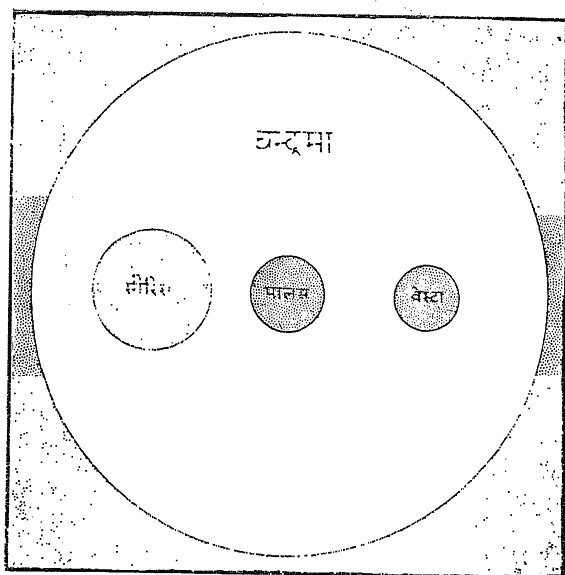


चित्र ४२९—**सबसे बड़ा अवान्तर ग्रह, सीरिस, पंजाब से बड़ा न होगा।**

बड़ा वृत्त सीरिस को और छोटा जूनो को पैमाने के अनुसार सूचित करता है।

आविष्कारकों को भी बड़ी सहायता मिली थी, परन्तु जैसा सरल गणना से देखा जा सकता है, वरुण के लिए यह नियम झूठा पड़ जाता है। क्या वस्तुतः कोई कारण है जिसकी वजह से बोडे का नियम प्रायः सत्य निकलता है? इस प्रश्न का उत्तर अभी नहीं मालूम हुआ। न्यूकॉम्ब (Newcomb) का मत है कि संयोग से ही ग्रहों

की दूरी ऐसी है जिससे उनके विषय में बोडे का नियम लगभग सत्य सा जान पड़ता है। वे लिखते हैं* "यह सत्य है कि कई चतुर मनुष्य समय समय पर ग्रहों की दूरी, वज़न, भ्रमण-काल इत्यादि के बीच सम्बन्ध निकालने बैठते हैं, और शायद ऐसा भविष्य में भी



चित्र ४२३—तीन सबसे बड़े अवान्तर ग्रहों की चन्द्रमा से तुलना।

हुआ करेगा, क्योंकि वे सम्बन्ध जो—कम या अधिक सचाई से—पूर्णाङ्कों से सूचित किये जा सकते हैं, बहुत से हैं। परन्तु इससे प्रकृति का कोई नियम सूचित नहीं होता। यदि हम किसी प्रकार की चालीस या पचास संख्याओं को ले लें—जैसे वे वर्ष जिनमें

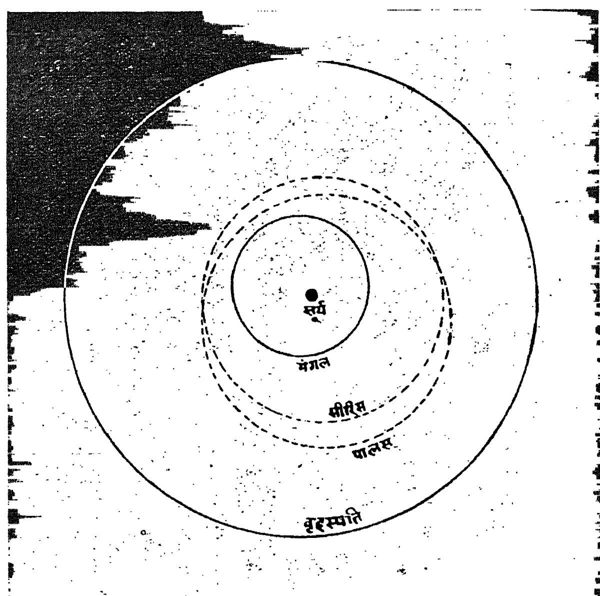
* Newcomb : Popular Astronomy, 1878, p. 236.

कुछ व्यक्तियों का जन्म हुआ था; या उनके जीवन के किसी विशेष घटना का समय; या वर्ष, महीने और दिन में उनकी आयु; या जिन मकानों में वे रहते हैं उनका नम्बर; इत्यादि—तो हमको इन संख्याओं में इतने विचित्र सम्बन्ध मिलेंगे जितने ग्रहों में भी नहीं मिले हैं। सचमुच, विश्व-इतिहास के मुख्य नाटक-पात्रों के जीवन के वर्षों में निकले सम्बन्ध पाठकों को याद होंगे, क्योंकि ये कभी कभी समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में छपा करते हैं।"

६—अवान्तर ग्रहों का व्यास इत्यादि—अवान्तर ग्रह इतने छोटे हैं कि उनके व्यास का नापना कठिन है। दो चार जो बड़े हैं उनका व्यास नापा गया है। शेष का व्यास उनकी चमक के आधार पर आँका गया है। सबसे बड़ा अवान्तर ग्रह, सीरिस (Ceres), जिसका आविष्कार पियाज़ी ने किया था, ४८० मील व्यास का है। पन्द्रह सोलह ग्रह १०० मील से अधिक व्यास के होंगे। शेष छोटे हैं। अधिकांश दस बीस मील के हैं। कुछ १० मील से भी छोटे हैं। ऐलिन्डा (Alinda) ३ मील का ही है। भविष्य में इनसे भी छोटे ग्रहों के मिलने की सम्भावना है। ३ मील व्यास का संसार! वहाँ की बादशाहत क्या मज़े की होगी! (हाँ, यदि वहाँ रहने का सब बन्दोबस्त हो)।

यदि ये अवान्तर ग्रह पृथ्वी ही ऐसे घने हों, तो सबसे बड़े अवान्तर ग्रह पर भी इतनी कम आकर्षण-शक्ति होगी कि बन्दूक़ दागने से गोली लौट कर फिर वहाँ न गिरेगी। वहाँ यदि मनुष्य होते तो सहज ही में लिखा संदेश बन्दूक़ से दागकर वे पृथ्वी पर भेज सकते। छोटे छोटे अवान्तर ग्रहों पर से तो हाथ से ही ढेला फेंकने पर वह सदा के लिए निकल जायगा। अनुमान किया जाता है कि सब अवान्तर ग्रहों की तौल कुल मिला कर पृथ्वी के १/१००० वें अंश के बराबर होगी। अवान्तर ग्रह सब इतने

छोटे हैं कि वे बिना दूरदर्शक के देखे नहीं जा सकते; केवल एक, जिसका नाम वेस्टा (vesta) है पृथ्वी के समीप आने पर कोरी आँख से अत्यन्त मंद तारे की तरह दिखलाई पड़ जाता है। चार



चित्र ४२७—सीरिस और पालस नामक अवान्तर ग्रहों की कक्षायें।

ये दोनों प्रायः एक ही नाप की हैं और ये एक दूसरे में कड़ी की भाँति फँसी हैं।

सबसे बड़े अवान्तर ग्रहों की चमक और व्यास से पता चलता है कि इनकी परिक्षेपण-शक्ति चन्द्रमा के ही समान या कुछ अधिक होगी। उनकी कला और प्रकाश के बढ़ने के सम्बन्ध से पता चलता है कि उनकी सतह चन्द्रमा से भी अधिक ऊँची-नीची होगी। बहुतेरे

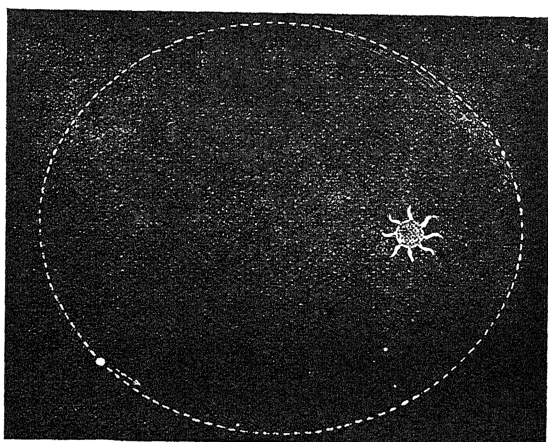
गोलाकार भी न होंगे। उनकी कम आकर्षण-शक्ति से निश्चय है कि उन पर वायुमंडल न होगा। इनमें से बाज़ की कक्षायें बहुत चपटी हैं। चित्र ४२८ में ऐलिन्डा (Alnida) नाम के ग्रह की कक्षा पैमाने से खींच कर दिखलाई गई है। इनकी कक्षायें एक दूसरे में ऐसी उलझी हुई हैं कि यदि ये छड़ की बनी होतीं तो एक के उठाने से सब उठ आतीं और उनके साथ मंगल और बृहस्पति की कक्षायें भी फँस आतीं।

एरॉस है तो बहुत नन्हा सा, परन्तु जैसा पहले बतलाया जा चुका है यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। जब यह हमसे निकटतम दूरी पर आ जाता है तब इसकी दूरी सवा करोड़ मील से थोड़ी ही अधिक रहती है, परन्तु अफ़सोस है कि यह अनुकूल दशा कभी कभी ही उपस्थित होती है और अभाग्यवश जिस समय पर यह पहले पहल देखा गया था तब वह इस अनुकूल स्थिति में से निकल आया था। आविष्कार के बाद इसकी दूरी १९०१ में सबसे कम हो गई थी, परन्तु तो भी यह तीन करोड़ मील पर था। उस समय इसके हज़ारों बेध किये गये, फ़ोटोग्राफ़ी से भी और आँख से भी; और परिणाम यह हुआ कि इसके पहले सूर्य की जितनी दूरियाँ अन्य रीतियों से निकली थीं उनसे बहुत शुद्ध दूरी इस रीति से निकली। १९३१ में इससे भी अच्छा अवसर मिलेगा। उस साल ३० जनवरी को एरॉस लगभग डेढ़ करोड़ मील की दूरी पर रहेगा।

एरॉस शायद केवल १५ मील व्यास का होगा। जब यह निकटतम दूरी पर आ जायगा तब छोटे दूरदर्शकों से भी तारे के समान देखा जा सकेगा। एरॉस पर ५ घंटे १६ मिनट में ही एक दिन एक रात हो जाते हैं। यह बात उसकी सतह के चिह्नों को देख कर नहीं जानी गई है, परन्तु इस बात से समझा गया है कि उसका प्रकाश इतने समय में नियमानुसार घटा-बढ़ा करता है,

जिससे पता चलता है कि इसके सब भाग एक ही रंग के नहीं हैं और यह उक्त समय में अपनी धुरी पर एक भ्रमण कर लेता है।

७—अवान्तर ग्रहों की उत्पत्ति—जैसा पहले लिखा जा चुका है, अवान्तर ग्रहों के आविष्कार के बाद लोगों की यह धारणा हुई कि ये किसी ग्रह के पड़ाके की भाँति फूटने पर बन गये हैं।



चित्र ४२८—ऐलिण्डा (Alinda) की कक्षा।

देखिए यह कितनी चपटी है।

हमको इस बात के सत्य होने का प्रमाण मिल जाता, यदि इन सबकी कक्षायें एक ही विन्दु में एक दूसरे को काटतीं, परन्तु कक्षायें इस प्रकार से स्थित नहीं हैं। अन्य ज्योतिषियों ने बतलाया कि फूटने के वर्षों बाद तक बृहस्पति, इत्यादि, ग्रहों के आकर्षण के कारण यह लक्षण मिटते मिटते मिट जायगा; इसलिए कक्षाओं की स्थिति से अब कुछ पता नहीं लग सकता।

अवान्तर ग्रहों की उत्पत्ति का एक दूसरा सिद्धान्त (लापलास का नीहारिका-सिद्धान्त) यह है कि सूर्य और सब ग्रह अत्यन्त दूर तक विस्तृत गैस के अणुओं या छोटे छोटे कणों के सिमटने से बने हैं। जिन कणों के बँध जाने से एक अच्छा सा ग्रह बन जाता, वे किसी प्रकार पूर्णतया बँध नहीं पाये और इस तरह अवान्तर ग्रह बन गये। कुछ दिनों तक यही सिद्धान्त अधिक प्रचलित था, परन्तु अब कुछ प्रमाण ऐसे मिले हैं जिनसे पड़ाके की तरह फूटने की ही बात सत्य जान पड़ती है; क्योंकि यदि मान लिया जाय कि अवान्तर ग्रह एक ही बड़े से ग्रह के फूटने से बने हैं और यदि उनकी कक्षाओं पर बृहस्पति इत्यादि का क्या प्रभाव पड़ता है इसकी सूक्ष्म गणना की जाय तो पता चलता है कि एक तो ग्रहों की मध्यम दूरी में और दूसरे इन कक्षाओं और बृहस्पति की कक्षा के बीचवाले कोण में विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा। इन दोनों लक्षणों के अतिरिक्त एक लक्षण और भी है। अब देखना चाहिए कि वास्तविक कक्षाओं में ये लक्षण मिलते हैं या नहीं। जापानी ज्योतिषी हीरायामा (Hirayama) ने सिद्ध किया है कि अवान्तर ग्रहों की पाँच जातियाँ हैं। प्रत्येक जाति के ग्रहों की कक्षाओं पर ये तीनों लक्षण इस सौन्दर्य से घटित होते हैं कि आश्चर्य होता है। इससे बहुत सम्भव है कि प्रत्येक जाति के ग्रह एक एक बार के फूटने से बन गये हैं, परन्तु इस सिद्धान्त में भी थोड़ी सी कठिनाइयाँ अभी नहीं सुलझ सकी हैं जिससे अभी बिलकुल निश्चय नहीं हो सका है कि कब, कहाँ, कैसे और कितनी ज़ोर से ये ग्रह टूटे।

८—**पृथ्वी**—पृथ्वी के सम्बन्ध में कुछ बातों के लिखने का उचित स्थान यही जान पड़ता है, इसलिए वे यहाँ दी जाती हैं।*

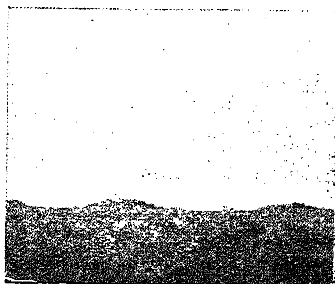
---

* यह प्रकरण रसेल-डुगन-स्टेवार्ट के पुस्तक के आधार पर लिखा गया है।

पृथ्वी की परिक्षेपण-शक्ति क्या है इसका पता बहुत दिनों तक नहीं चल सका था, परन्तु अब हम जानते हैं कि यह $\frac{४५}{१००}$ के लगभग है, जो बादल से ढके शुक्र और वायुमंडल-रहित चन्द्रमा के परिक्षेपण-शक्ति के बीच में है और इसलिए जो धारणा परिक्षेपण-शक्ति और वायुमंडल के सम्बन्ध के विषय में की गई है वह ठीक जान पड़ती है। पृथ्वी की परिक्षेपण-शक्ति का अनुमान द्वितीया या तृतीया के चन्द्रमा के प्रकाशित भाग की चमक नाप कर की गई है, क्योंकि जैसा हम देख चुके हैं (पृष्ठ ४३४) यह चमक पृथ्वी से गये प्रकाश के कारण उत्पन्न होती है। इस चमक के नापने से यह भी पता चलता है कि पूर्णिमा का चन्द्रमा जितना चमकीला हमको जान पड़ता है उसकी अपेक्षा पृथ्वी चन्द्रमा पर ४० गुनी चमकदार जान पड़ती होगी। शुक्र से पृथ्वी, उस समय जब इन दोनों के बीच की दूरी सबसे कम रहती है, अत्यन्त चमकदार दिखलाई पड़ती होगी, क्योंकि उस समय पृथ्वी का पूर्ण विम्ब शुक्र से दिखलाई पड़ता होगा। जितना चमकीला शुक्र अपने महत्तम तेज के समय हमको दिखलाई पड़ता है उससे छः गुनी चमकदार पृथ्वी जान पड़ती होगी। चन्द्रमा भी वहाँ से वैसा ही चमकदार दिखलाई पड़ता होगा जैसा यहाँ से बृहस्पति; और वह पृथ्वी के इधर उधर आन्दोलन करता हुआ जान पड़ता होगा, परन्तु चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच की दूरी वहाँ उतनी ही जान पड़ती होगी जितना यहाँ चन्द्रमा का व्यास हमको दिखलाई पड़ता है। इसलिए शुक्र से (और अन्य ग्रहों से भी) पृथ्वी और चन्द्रमा ग्रह और उपग्रह के बदले खूब चमकीले युग्म-ग्रह जान पड़ते होंगे, और पृथ्वी का रंग कुछ नीला और चन्द्रमा कुछ पीला जान पड़ता होगा।

चन्द्रमा से देखने पर पृथ्वी सूर्य की अपेक्षा से १३ गुनी बड़ी दिखलाई पड़ेगी। और इसमें सबसे अधिक चमकीली वस्तु बादल ही

होंगे, जो बादलरहित स्थानों की अपेक्षा तिगुने चमकीले दिखलाई पड़ेंगे। पृथ्वी पर कटिबंध सी धारियाँ दिखलाई पड़ेंगी, क्योंकि भूमध्यरेखा के पास, जहाँ अकसर ही वर्षा हुआ करती है, प्राय: लगातार बादलों के रहने से एक चमकती सी धारी दिखलाई पड़ेगी। इसके उत्तर और सहारा, अरब, मध्य-एशिया इत्यादि, रेगिस्तानों के कारण, जो सभी कर्क-रेखा के पास हैं, एक काली सी धारी दिखलाई पड़ेगी। दक्षिण में भी इसी प्रकार मकर-रेखा के पासवाले रेगिस्तानों के कारण एक काली रेखा दिखलाई पड़ेगी। इन रेखाओं के बाहर, उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों तक, कम बादलों-वाला प्रदेश दो टोपियों के समान दिखलाई पड़ेगा। जहाँ जहाँ बादल न रहेंगे वहाँ वहाँ देश, पहाड़, समुद्र इत्यादि दिखलाई पड़ेंगे। बादलों के हटते बढ़ते रहने के कारण चन्द्रमा का धैर्य-युक्त ज्योतिषी धीरे धीरे यहाँ के सब देशों का स्वरूप जान जायगा। पृथ्वी के बड़े बड़े बवंडर (साइक्लोन cyclone) भी वहाँ से कलंक की तरह दिखलाई पड़ेंगे। इनकी गति के कारण इन धब्बों की सहायता



चित्र ४२६—वायु के नीले प्रकाश के कारण दूरस्थ दृश्य का ब्योरा दिखलाई नहीं पड़ता।

यदि कैमेरे के लेन्ज़ पर लाल प्रकाश-छनना लगाकर नीले प्रकाश को काट दिया जाय तो दृश्य के असली ब्योरे फ़ोटो में उतर सकते हैं। हाँ, तब पैनक्रोमैटिक प्लेट का उपयोग करना पड़ेगा, क्योंकि साधारण प्लेटों पर लाल प्रकाश काम नहीं करता। अगला चित्र देखिए।

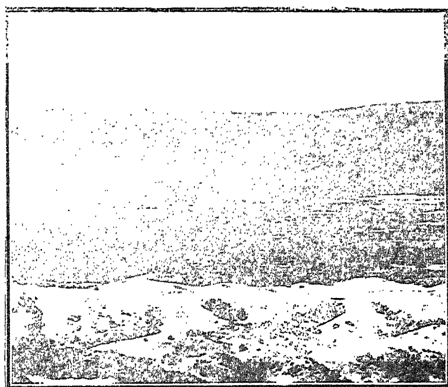
से पृथ्वी का भ्रमण-काल २४ घंटे से कम हो निकलेगा, परंतु भूमध्यरेखा के पास, जहाँ के बादल पूर्व से पश्चिम को ओर अकसर बहा करते हैं, पृथ्वी का भ्रमण-काल २४ घंटे से अधिक निकलेगा।

रेगिस्तानों को छोड़ कर अन्य स्थानों में इने-गिने अवसरों पर ही १००० वर्ग मील का स्थान बादलों से मुक्त मिलेगा। इसलिए पृथ्वी के अध्ययन में बाहरी ज्योतिषियों को (यदि वे वस्तुतः होते हों तो) बड़ी कठिनाई पड़ेगी। बादल-रहित स्थान में भी आकाश के नीले प्रकाश के कारण बहुत सा ब्योरा छिप जायगा। इसका कारण यह है कि सूर्य के प्रकाश का १०० में ४० भाग हमारे वायुमंडल से बिखर जाता है। शेष ६० पृथ्वी की सतह तक पहुँचता है। इस ६० में से सफ़ेद बालू पर पड़ने से भी चौथाई से कम ही भाग लौटने पाता है, जिसका एक अंश फिर वायुमंडल में ही रुक जाता है। इस प्रकार पहले के १०० भाग प्रकाश में से शायद १० भाग से भी कम पृथ्वी की सतह से लौटेगा; ४० से अधिक भाग नीले आकाश से लौटेगा। इसलिए नीले आकाश के प्रकाश से पृथ्वी पर के अधिकांश ब्योरे छिप जायँगे। यही कठिनाई पहाड़ों पर से दूरस्थ दृश्य को देखते समय भी उठती है (चित्र ४२९)। हाँ, लाल प्रकाश-छनना लगा कर प्रैनक्रोमैटिक* (Panchromatic) प्लेटों पर फोटोग्राफ़ लेने से ये ब्योरे बहुत कुछ देखे जा सकेंगे (चित्र ४३०)। समुद्र में सूर्य का प्रतिबिम्ब शायद अत्यन्त चमकीला दिखलाई पड़ेगा। इसके बाद बर्फ़ से ढके उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश और ऊँचे

---

* ऐसे प्लेट जिन पर लाल प्रकाश का भी प्रभाव पड़ता है पैनक्रोमैटिक कहलाते हैं।

पहाड़ स्पष्ट दिखलाई पड़ेंगे। स्पष्टता में इनके बाद रेगिस्तानों की बारी आयेगी जो कुछ लाली या पीलापन लिये दिखलाई पड़ेंगे। समुद्र, जहाँ सूर्य का प्रतिविम्ब न पड़ता रहेगा, और जंगल, सबसे गहरे रंग के दिखलाई पड़ेंगे। दोनों में नीलापन रहेगा क्योंकि प्रकाश का अधिकांश नीले आकाश से ही जायगा। खेत और सबज़ीवाले देश कुछ हलके और ज़रा हरे रंग के दिखलाई पड़ेंगे, परन्तु उनके

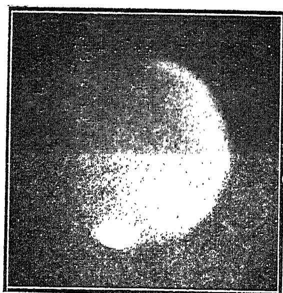


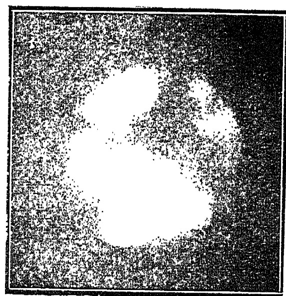
चित्र ४३०—परन्तु यदि लाल प्रकाश-छनना लगा कर फ़ोटो खींचा जाय तो सब ब्योरे दिखलाई पड़ते हैं।

पिछले चित्र से तुलना कीजिए।

छोटे-छोटे ब्योरे नहीं दिखलाई पड़ेंगे। चन्द्रमा से पृथ्वी के अप्रकाशित भाग में स्थित लन्दन, न्यूयॉर्क, इत्यादि, बड़े-बड़े शहर अपने रात्रि के जगमगाते प्रकाश के कारण कुछ कुछ चमकते हुए दिखलाई पड़ेंगे। चित्र ४३३ में चन्द्रमा से पृथ्वी कैसी दिखलाई पड़ेगी, यह दिखलाने की चेष्टा की गई है।

८—राशि-चक्र-प्रकाश—सूर्य के अस्त होने और संधि-प्रकाश (twilight) के मिट जाने के बाद, अँधेरी रात में, आकाश के उस भाग में जहाँ सूर्य थोड़ी देर पहले अस्त हुआ है एक मन्द मन्द प्रकाश दिखलाई पड़ता है जिसे राशि-चक्र-प्रकाश (Zodiacal Light) कहते हैं। यह क्षितिज के हिसाब से खड़ा नहीं रहता, कुछ तिरछा रहता है और नीचे चौड़ा ऊपर सँकरा होता है



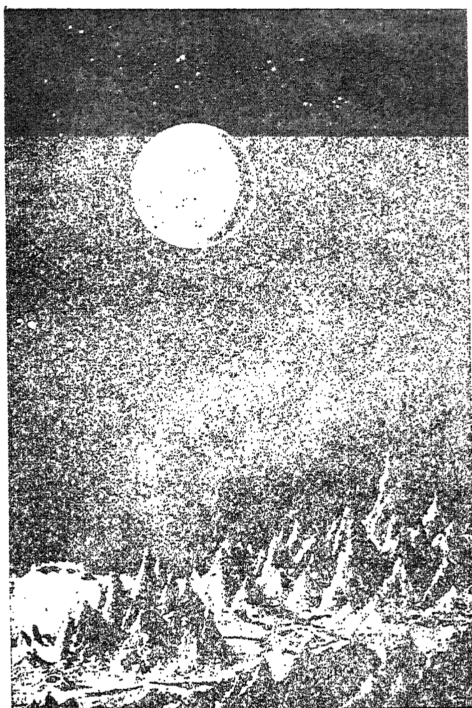


चित्र ४३१ और ४३२—नीले और लाल प्रकाशों से लिये गये मंगल के फ़ोटोग्राफ़।

इनको चित्र ४२९ और ४३० से तुलना करने पर तुरन्त स्पष्ट हो जाता है कि मंगल पर भी वायुमंडल अवश्य है (यरकिज़ बे०)।

(चित्र ४३४)। पृथ्वी के वायुमंडल के कारण यह उत्पन्न नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसी हालत में यह क्षितिज के हिसाब से खड़ा रहता। राशि-चक्र, जिसमें मेष, वृष, मिथुन, इत्यादि राशि हैं, सूर्य के वार्षिक मार्ग को कहते हैं और इस प्रकाश की मध्य रेखा सूर्य का मार्ग ही है (चित्र ४४१)। इससे सम्भावना यही होती है कि राशि-चक्र-प्रकाश और हमारे वायुमंडल में कोई सम्बन्ध नहीं है, इसका सम्बन्ध सूर्य से होगा। इसी तरह सूर्योदय के कुछ

काल पहले पूर्व दिशा में भी राशि-चक्र-प्रकाश दिखलाई पड़ता है (चित्र ४३८-४०)।

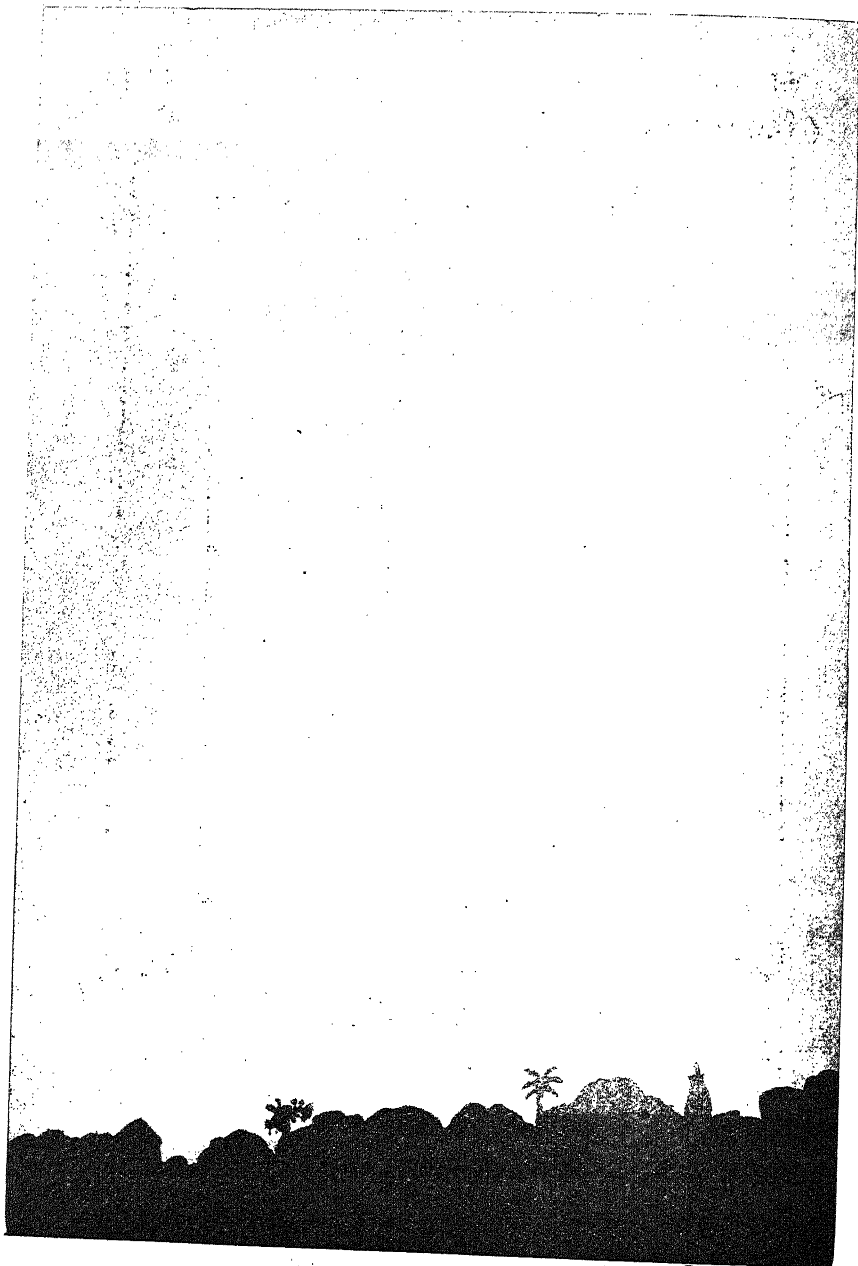


[अबे मोरो

चित्र ४२२—चन्द्रमा का एक कल्पित दृश्य।

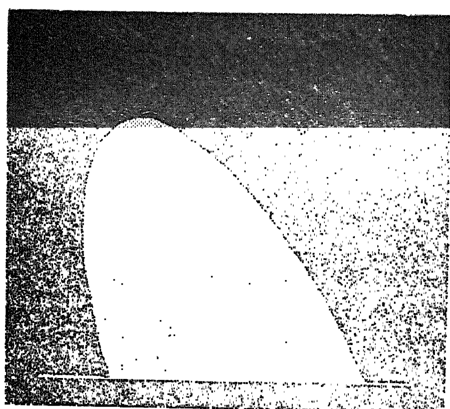
चन्द्रमा से पृथ्वी कैसी दिखलाई पड़ेगी।

यह प्रकाश अँधेरी रात में, वायु के स्वच्छ रहने पर सुगमता से देखा जा सकता है। अपने सबसे अधिक चमकीले भाग में यह आकाश-गंगा से भी अधिक चमकीला दिखलाई पड़ता है। यंत्रों से



चित्र ४३४—सायंकाल में राशि-चक्र-प्रकाश।

देखने पर पता चलता है कि यह प्रकाश छोटे कणों से परावर्तित (reflect) होकर आता है। इससे पता चलता है कि सूर्य के चारों ओर लिट्टी या बाटी के रूप में बहुत दूर तक छोटे-छोटे कण फैले हैं। इनका मध्य धरातल सूर्य का मार्ग है। सूर्य के पास ये कण कसरत से हैं, पर ज्यों ज्यों दूरी बढ़ती जाती है त्यों त्यों घनता कम होती जाती है। ध्रुव तारे से देखने पर यह चित्र ४४२ में दिखलाये गये आकार का जान पड़ेगा। पृथ्वी को यह प्रकाश एक किनारे से



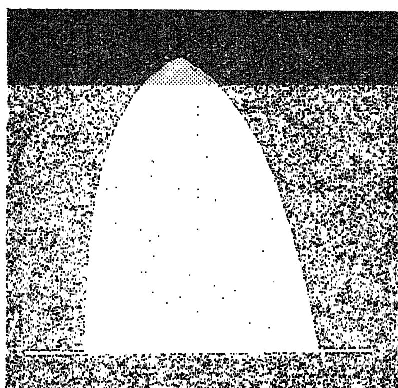
चित्र ४३५—राशि चक्र-प्रकाश, संध्या-काल।

जून और दिसम्बर में राशि-चक्र-प्रकाश की स्थिति।

दिखलाई पड़ता है, इसी से यह यवाकार (जौ की शकल का) दिखलाई पड़ता है। पूर्णतया स्वच्छ रात्रियों में इस प्रकाश का वह भाग भी, जो चित्र ४४२ में पृथ्वी की बाईं ओर बना है, आकाश में दिखलाई पड़ता है। इन रात्रियों में सायं-काल को राशि-चक्र-प्रकाश पश्चिम की ओर तो दिखलाई पड़ता ही है, साथ ही यह वहीं समाप्त नहीं हो जाता, लगातार सँकरी

धारी-सा पूर्व क्षितिज तक दिखलाई पड़ता है। प्रात:काल के थोड़ा पहले भी इसी प्रकार राशि-चक्र-प्रकाश पूर्णतया स्वच्छ रात्रियों में पूर्व से पश्चिम तक दिखलाई पड़ता है।

राशि-चक्र-प्रकाश को उत्पन्न करने के लिए इतने कम कणों की आवश्यकता है कि आश्चर्य होता है। गणना करने से पता चलता है कि सामान्य रीति से यदि पाँच पाँच मील पर सरसों बराबर कण हों और यदि वे साधारण पत्थर के समान कम चमकीले भी हों,

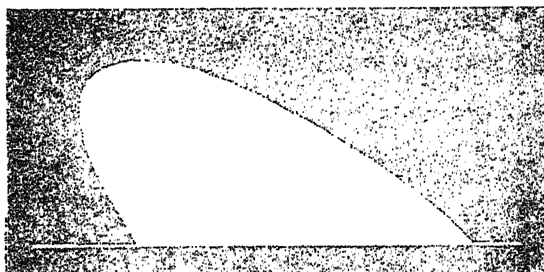


चित्र ४२६—राशि-चक्र-प्रकाश, संध्याकाल।
मार्च में राशि-चक्र-प्रकाश की स्थिति।

तो भी काम चल जायगा। पृथ्वी के आस पास में इसकी घनता इससे बहुत कम होगी। स्पष्ट है कि इतना बिखरा हुआ पदार्थ ग्रहों और पुच्छल तारात्रों की गति में कोई बाधा नहीं डाल सकता।

१०—क्या बुध और सूर्य के बीच में कोई नया ग्रह है?—एक ज़माना था जब ज्योतिषियों को संदेह हो गया था कि बुध और सूर्य के बीच में कोई नया ग्रह है और इसकी खोज के लिए बड़े बड़े प्रयत्न किये गये थे। इसका इतिहास यों है।

बुध ठीक आकर्षण-नियमानुसार नहीं चलता। हाँ, जैसा आकर्षण के नियम से निकलता है बुध अवश्य सूर्य के चारों ओर दीर्घ-वृत्त में चलता है, परन्तु इस दीर्घ-वृत्त के दीर्घ-व्यास की दिशा गणना से प्राप्त गति की अपेक्षा बहुत अधिक वेग से बदलती है। पहले लोगों ने समझा कि उन कणों के आकर्षण से, जिनसे राशि-चक्र-प्रकाश दिखलाई पड़ता है, यह गति उत्पन्न हुई होगी, परन्तु गणना करने से पता चला कि राशि-चक्र-प्रकाश में इतना कम पदार्थ है कि



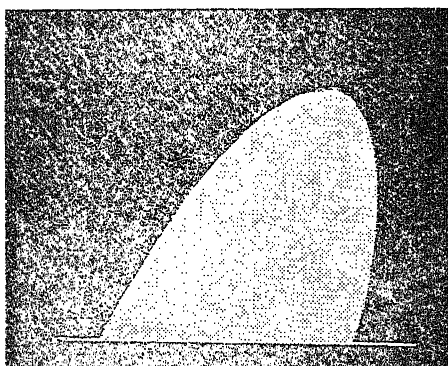
चित्र ४२७—राशि-चक्र-प्रकाश, संध्याकाल।

सितम्बर में राशि-चक्र-प्रकाश की स्थिति।

बुध-कक्षा पर उसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा। फिर नेपच्यून का आविष्कार करनेवाला प्रसिद्ध फ्रेंच राज-ज्योतिषी लेवेरियर (Leverrier) ने बतलाया कि यह गति शायद एक नये ग्रह के कारण होती होगी जो सूर्य और बुध के बीच में होगा। लेवेरियर को बात की सूचना पाने पर, एक वैद्य, डाक्टर लेकारबो (Lescarbault) ने उसके पास पत्र भेजा कि मैंने वस्तुतः इस ग्रह को सूर्यबिम्ब पर गमन करते हुए देखा है। इसकी ख़बर पाते ही लेवेरियर ने निश्चय किया कि डाक्टर लेकारबो से स्वयं मिलना चाहिए और इसलिए

वह उसके घर पहुँचा। इस मुलाकात का निम्नलिखित वर्णन पाठकों को मनोरंजक प्रतीत होगा :—

'उस विनीत और गर्वरहित डाक्टर के घर पहुँचने पर लेवेरियर ने अपना नाम बतलाने से इनकार कर दिया, और बिलकुल रूखे स्वर से और इस प्रकार जैसे वह कोई बड़ा अफ़सर हो, पूछना आरम्भ किया "तो वह व्यक्ति आप ही हैं, जनाब, जो बुध-सूर्य के

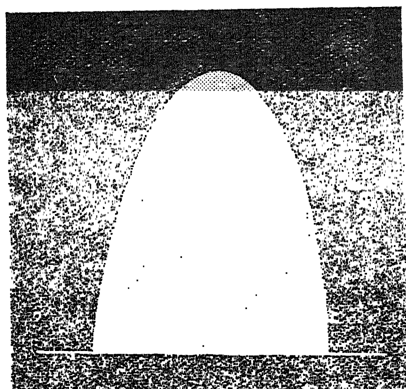


चित्र ४३८—राशि-चक्र-प्रकाश, प्रातःकाल।

जून और दिसम्बर में राशि-चक्र-प्रकाश की स्थिति।

बीचवाले ग्रह को देखने का दावा करते हैं, और जिसने अपने वेधों को ९ महीने तक गुप्त रखने का जुर्म किया है? मैं कहे देता हूँ कि मैं इसी अभिप्राय से आया हूँ कि मैं आपके दावे का फ़ैसला करूँ और प्रमाणित कर दूँ कि या तो आप धोखा दे रहे हैं या आपको कोई भ्रम हो गया था। सच सच बतलाइए कि आपने क्या देखा था। डाक्टर ने तब सब समझाया कि उसने क्या क्या देखा था और अपने आविष्कार का पूरा पूरा

ब्यौरा दिया। ग्रह और सूर्य-विम्ब के स्पर्श-समय को नापने के प्रसंग में ज्योतिषी ने पूछा कि आपने किस ज्योतिष-घड़ी का उपयोग किया था। उत्तर में डाक्टर को एक बड़ी सी और बहुत पुरानी घड़ी को जेब से निकालते देखकर उसको स्वभावतः बड़ा आश्चर्य हुआ, विशेषकर जब उसे पता लगा कि इसमें सेकंड-वाली सुई नहीं है। डाक्टर ने कहा कि यह घड़ी हमारे व्यवसाय-

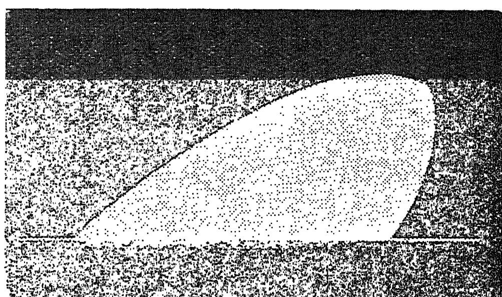


चित्र ४२६—राशि-चक्र प्रकाश, प्रातःकाल।

सितम्बर में राशि-चक्र-प्रकाश की स्थिति।

सम्बन्धी कार्यों में हमारी चिरसंगिनी रही है, परन्तु यह पदवी ज्योतिष के सूक्ष्म वेध के लिए किस काम की समझी जा सकती थी। परिणाम यह हुआ कि लेवेरियर, जिसे अब ऐसा विश्वास हो रहा था कि सब अवश्य या तो भ्रम या धोखेबाज़ी है कुछ क्रोध के साथ बोल उठा "क्या? उस सड़ी घड़ी से, जिससे केवल मिनटों का ही ज्ञान हो सकता है, तुम सेकंडों को नापने का दावा रखते हो? मेरे सन्देह, मैं देखता हूँ, ठीक थे। इस पर लेकारबो ने

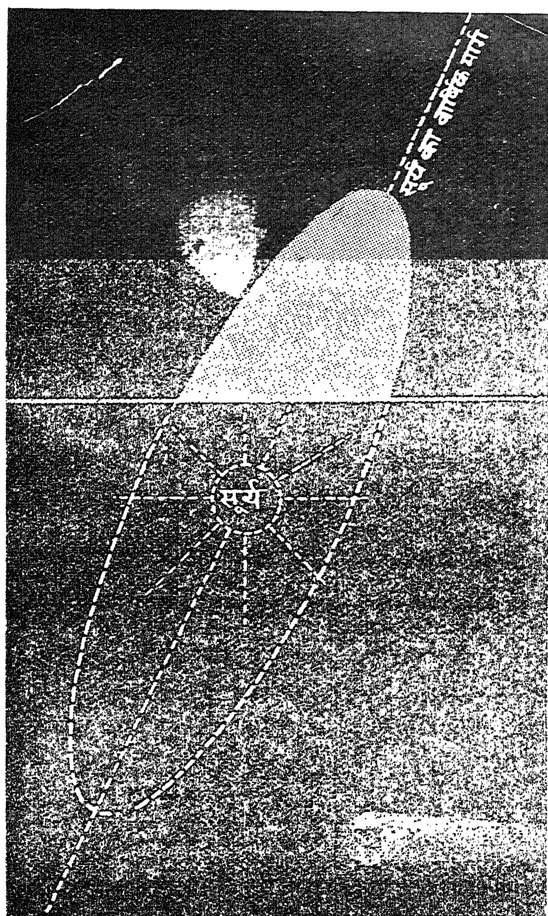
उत्तर दिया कि मेरे पास एक लंगर (pendulum, दोलक) भी है जिससे मैं सेकंडों को गिन सकता हूँ। इसको उसने निकाला। यह हाथीदाँत का एक गेंद था, जिसमें रेशम की डोर लगी थी। दीवाल पर गड़ी हुई कील से लटका देने पर देखा गया कि यह लगभग ठीक ठीक एक सेकंड में झूलता है। लेवेरियर को समझ में न आया कि इन सेकंडों की गिनती कैसे होती है, परन्तु लेकारबो ने कहा कि मेरे लिए इसमें कुछ भी कठिनाई नहीं है, क्योंकि नाड़ी देखने और गिनने की मेरी पुरानी आदत है और यही अभ्यास लंगर के लिए भी मेरी सहायता करता है। इसके बाद



चित्र ४४०—राशि-चक्र-प्रकाश, प्रातःकाल।
मार्च में राशि-चक्र-प्रकाश की स्थिति।

दूरदर्शक की जाँच हुई और ठीक पाया गया। ज्योतिषी ने फिर असली रजिस्टर की फ़रमायश की और यह भी कुछ देर तक खोजने के बाद पेश किया गया। रजिस्टर तेल और अफ़ीम से बे-तरह गंदा हो गया था। इस रजिस्टर में दर्ज किये हुए और पत्र में लिखे गये समयों में कई मिनटों का अन्तर निकला; जिस पर ज्योतिषी ने कहा, सब झूठा है। नाक्षत्र समय और साधारण समय में अन्तर होने

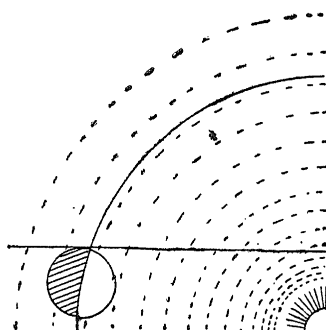
के कारण यह द्विविधा भी मिट गई। लेवेरियर ने फिर यह जानना



चित्र ४४१—राशि-चक्र-प्रकाश की मध्य रेखा सूर्य का मार्ग ही है।

चाहा कि डाक्टर नाक्षत्र समय कैसे नाप लेता था। छोटे से यामोत्तर यंत्र दिखलाने पर इस शंका का भी समाधान हुआ। दूसरे

प्रश्न भी कई एक पूछे गये। सबका संतोष-पूर्ण उत्तर मिला।*
ख़ैर, लेवेरियर को विश्वास हो गया कि लेकारबो ने वस्तुतः नये ग्रह को ही देखा था। इसका नाम वल्कन (Vulcan) रक्खा गया, परन्तु इसके बाद वर्षों तक वल्कन फिर नहीं दिखलाई पड़ा। लोगों को फिर डाक्टर लेकारबो की ईमानदारी पर शक होने लगा, परन्तु ज्योतिषियों ने बतलाया कि इस प्रकार का भ्रम औरों को भी कभी कभी हो जाता है।



चित्र ४४२—राशि-चक्र-प्रकाश ध्रुव तारे से कैसा दिखलाई पड़ेगा।

नये ग्रह की धूम मिटी जा रही थी, तब तक फिर एक व्यक्ति ने नये ग्रह को देखा। ग्रिनिच के फ़ोटोग्राफ़ में भी यह दिखलाई पड़ा, परन्तु इसकी गति की जाँच करने से पता चला कि यह सूर्य-कलंक है, हाँ यह असाधारण गोल और उपच्छाया-रहित है। फिर १८७८ के सर्व-सूर्य-ग्रहण के अवसर पर कल्पित ग्रह सूर्य के छिप जाने के बाद सूर्य से थोड़ी ही दूर पर दिखलाई पड़ा। यह रक्तवर्ण था और दूरदर्शक में नक्षत्र की तरह विन्दु-सरीखा नहीं, परन्तु ग्रह के

* १८६० के नॉर्थ ब्रिटिश रेव्यू से।

समान, छोटे से विम्ब के साथ, दिखलाई पड़ता था। केवल एक ही व्यक्ति ने नहीं, प्रोफ़ेसर वाटसन (Watson) और प्रोफ़ेसर स्विफ़्ट (Swift) दोनों ने इसे भिन्न भिन्न स्थानों से देखा। परन्तु लेवेरियर के गणनानुसार इसे जहाँ होना चाहिए था उससे बिलकुल दूसरे ही स्थान में यह था। पीछे लोगों को विश्वास हो गया कि दोनों प्रोफ़ेसरों ने केवल किसी तारे को देखा था। हड़बड़ी में इसकी सूरत वैसी ही दिखलाई पड़ी, जैसी ग्रह की होती है। वही बात है, "जाकर रही भावना जैसी,...।"

अब यह निश्चय है कि बुध और सूर्य के बीच कोई भी तीस मील से बड़ा अज्ञात ग्रह नहीं है, क्योंकि सूर्य का फ़ोटोग्राफ़ प्रतिदिन लिया जाता है और यदि कोई ३० मील से बड़ा ग्रह होता तो वह अवश्य दिखलाई पड़ता, परन्तु ऐसा ग्रह इन फ़ोटोग्राफ़ों में कभी भी नहीं दिखलाई पड़ा है। शुक्र सवा सौ वर्ष में दो बार और बुध सौ वर्ष में बारह-तेरह बार सूर्य-विम्ब के सामने आ पड़ता है। इससे भी समीपवर्ती ग्रह क्या इतने दिनों में एक बार भी सूर्य-विम्ब पर न दिखलाई पड़ता? साधारणतः, इसको प्रति दूसरे तीसरे वर्ष सूर्य-विम्ब पर दिखलाई पड़ना चाहिए था। इतना ही नहीं, प्रत्येक सर्व-सूर्य-ग्रहण के समय इतने फ़ोटोग्राफ़ लिये गये हैं। इधर हाल में कितने ऐसे लिये गये हैं जिनमें बहुत छोटे छोटे तारे भी दिखलाई पडते हैं, परन्तु किसी में भी कोई ग्रह या अज्ञात तारा नहीं दिखलाई पड़ा है।

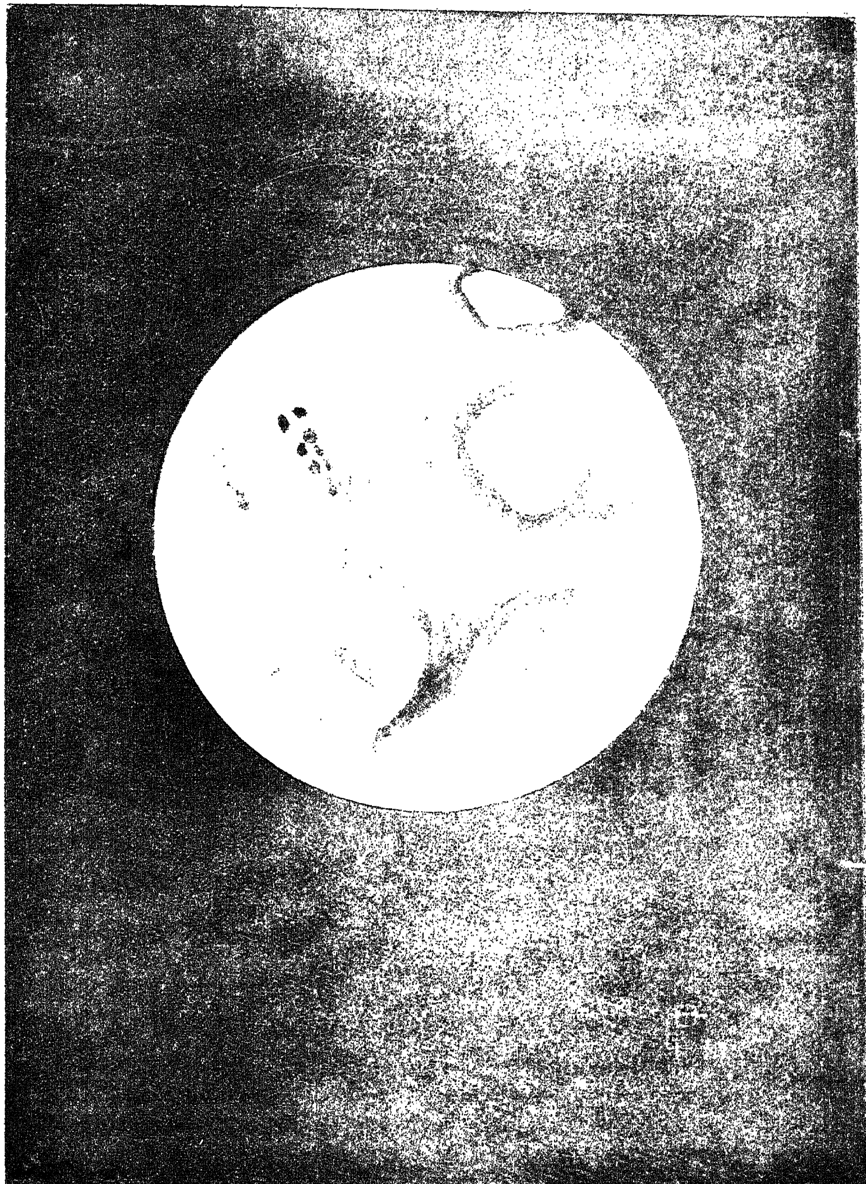
अब आइन्स्टाइन (Einstein) के प्रसिद्ध सापेक्षवाद (Theory of Relativity) से बुध-कक्षा के घूमने का कारण भी मालूम हो गया है, जिससे सिद्धान्त से भी सूर्य और बुध के बीच में किसी ग्रह के रहने की सम्भावना नहीं रह जाती।

———

अध्याय १३

मंगल

१—*मंगल*—अंगारे के समान चमकता हुआ यह ग्रह हमको विशेष रूप से हर दूसरे साल स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। इसके ख़ूनी रङ्ग के कारण प्राचीन यूरोपीय ज्योतिषियों ने इसको समर-देवता मार्स (Mars) का नाम दे दिया था और वही नाम अब तक रह गया है। इसकी कक्षा कुछ अधिक चपटी है और सूर्य से इसकी दूरी तेरह करोड़ से लेकर साढ़े पन्द्रह करोड़ मील तक घटा बढ़ा करती है। इसलिए प्रत्येक चक्कर में जब यह पृथ्वी से निकटतम दूरी पर आता है (अर्थात् षड्भान्तर के समय), तब वह हमसे समान ही दूरी पर नहीं रहता (चित्र ४४३)। जब यह हमारे अत्यन्त पास आ जाता है तब इसकी दूरी साढ़े तीन करोड़ मील से कुछ कम हो जाती है, परन्तु साधारणतः इसकी दूरी इससे अधिक ही रहती है। बाज़ चक्करों में यह निकटतम दूरी पर आने पर भी हमसे सवा छः करोड़ मील पर रहता है। इसका फल यह होता है कि प्रति दूसरे वर्ष (वस्तुतः २ वर्ष १ महीना १८.७ दिन पर) जब मंगल सूर्य से विपरीत दिशा में पहुँचता है और इस प्रकार उस विशेष चक्कर में वह निकटतम दूरी पर आ जाता है तो वह हमको एक सा बड़ा नहीं दिखलाई पड़ता (चित्र ४४४)। १५ या १७ वर्ष में एक बार यह हमको विशेष रूप से बड़ा दिखलाई पड़ता है। १९२४ में यह हमको सबसे बड़ा दिखलाई पड़ा था। यही कारण है कि उस वर्ष मंगल की धूम समाचार-पत्रों में भी मची थी, क्योंकि आशा की जाती थी कि इतना समीप आ

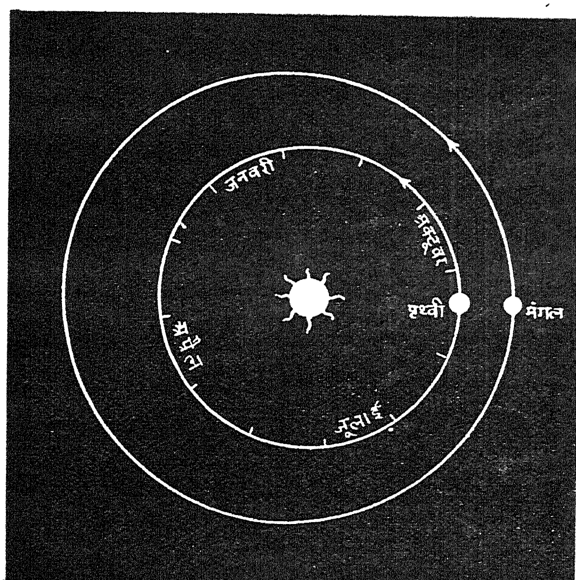


मंगल

चित्र में ऊपर की ओर जो छोटा सा सफ़ेद भाग दिखलाई पड़ता है वह बर्फ़ से ढका हुआ मंगल का दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश है। कुछ ज्योतिषियों का अनुमान है कि मंगल में नहरें खुदी हैं जिनमें इस बर्फ़ के गलने से मिला पानी पम्प-द्वारा दूसरे भागों तक भेजा जाता है।

जाने और इसलिए बड़ा दिखलाई पड़ने के कारण हम मंगल के विषय में बहुत कुछ नई बातें जानेंगे।

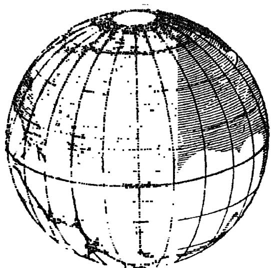
जब मंगल हमको बड़ा दिखलाई पड़ता है उस समय, सूर्य से विपरीत दिशा में रहने के कारण, यह सूर्यास्त के समय उगता है

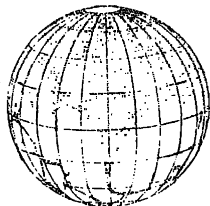


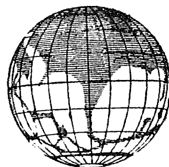
चित्र ४४३—प्रत्येक चक्कर में जब मंगल पृथ्वी से निकटतम दूरी पर आता है तब वह समान ही दूरी पर नहीं रहता।

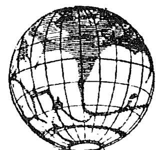
१९२४ में पृथ्वी और मंगल की दूरी बहुत कम हो गई थी। फिर ऐसा सुअवसर १५ या १७ वर्ष में आवेगा।

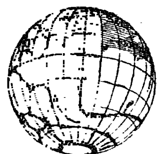
और सूर्योदय के समय डूबता है और इसलिए रात भर दिखलाई पड़ता है। इसलिए इस समय मंगल की ख़ूब जाँच की जा सकती है।

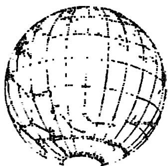


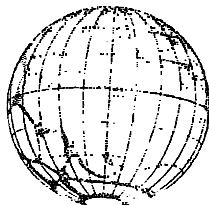


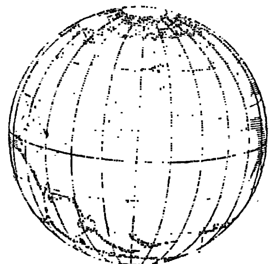










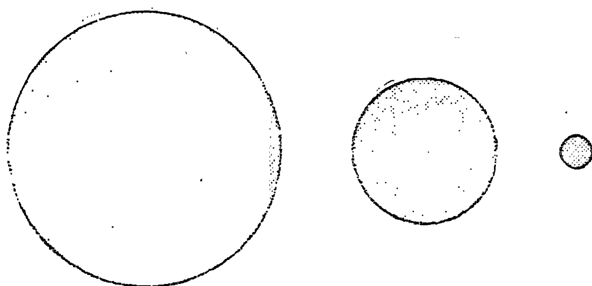


[फ्लैमेरियन

चित्र ४४४—भिन्न भिन्न वर्षों के षड्भान्तरों (oppositions) में मंगल का सापेक्षिक आकार।

प्रति दूसरे वर्ष मंगल हमारे बहुत पास चला आता है और इसलिए बड़ा दिखलाई पड़ता है, परन्तु १५ या १७ वर्ष में एक बार यह सबसे अधिक बड़ा दिखलाई पड़ता है।

प्रत्येक चक्कर में जब मंगल और सूर्य प्रायः एक ही दिशा में आ जाते हैं, तब मंगल की दूरी हमसे बहुत अधिक हो जाती है (चित्र ४०४ पृष्ठ ४६६ पर ध्यान दीजिए)। उस समय मंगल हमको बहुत छोटा दिखलाई पड़ता है (चित्र ४४५), परन्तु अत्यन्त छोटा दिखलाई पड़ने के समय भी मंगल ध्रुव-तारा की अपेक्षा डेढ़ गुना चमकदार रहता है। अनुकूल षड्भान्तर के समय,



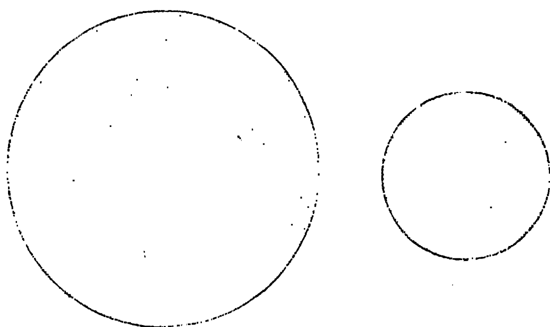
चित्र ४४५—१६२४ में मंगल के सबसे बड़े और सबसे छोटे आकारों की तुलना।

जब सूर्य और मंगल प्रायः एक ही दिशा में रहते हैं उस समय मंगल हमको बहुत छोटा दिखलाई पड़ता है। जब सूर्य और मंगल विपरीत दिशा में (अर्थात्, षड्भान्तर में) रहते हैं उस समय मंगल हमको बहुत बड़ा दिखलाई पड़ता है।

जब यह हमसे लघुत्तम दूरी पर रहता है, मंगल हमको ध्रुव-तारा की अपेक्षा ५५ गुना चमकदार, परन्तु तो भी तारे ही की तरह विन्दु सरीखा, दिखलाई पड़ता है। उस समय शुक्र को छोड़ मंगल सब ग्रहों से चमक में बढ़ जाता है।

मंगल का व्यास केवल ४२१५ मील है और वहाँ की आकर्षण-शक्ति पृथ्वी की अपेक्षा केवल लगभग तिहाई है। "सचमुच, हमारे

सरलतम कार्य भी वहाँ परम अद्भुत जान पड़ेंगे। मंगल पर, जिसकी सतह पर आकर्षण-शक्ति पृथ्वी की शक्ति का केवल तीन-अष्टमांश ही है, निजी अनुभव विचित्र रूप का होगा। वहाँ पर सब चीज़ें अप्राकृतिक रीति से हलकी लगेंगी, सीसा भी केवल पत्थर के समान, पत्थर पानी के समान हलका जान पड़ेगा। हर एक वस्तु किसी दूसरी वस्तु में परिवर्तित हो गई हुई जान पड़ेगी। मंगल तुरन्त भार-



चित्र ४४६—पृथ्वी और मंगल की नापों की तुलना।

पृथ्वी की अपेक्षा मंगल छोटा है।

रहित, वायु-सम, संसार जान पड़ेगा, क्योंकि न्यूनतम शक्ति से वहाँ पर हम असम्भव जान पड़नेवाले कार्य कर डालेंगे। हमारी शक्ति वहाँ पर सतगुनी जान पड़ेगी। फिर, वहाँ सब काम में समय लगेगा। पानी भूलते भटकते धीरे धीरे बहेगा और गिरती हुई वस्तुएँ सुन्दर विनय के साथ नीचे उतरेंगी। जब हमारा पागलों का सा प्रथम आश्चर्य मिट जायगा, तब हमें अवश्य मंगल जैसा सपाट है, वैसा ही सुस्त भी जान पड़ेगा।"*

---

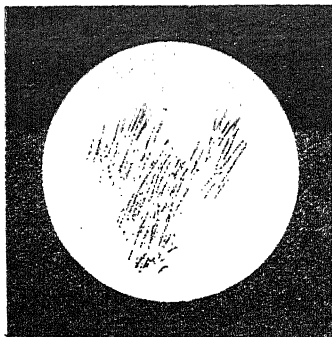
* Lowell : Mars as the Abode of Life से।

जैसा पहले बतलाया गया है, मंगल में भी कलाएँ दिखलाई पड़ती हैं, परन्तु यह धनुषाकार कभी नहीं दिखलाई पड़ सकता। न्यूनतम कला के समय भी यह शुक्ल पक्ष की एकादशी के चन्द्रमा के समान होता है।

मंगल की परिक्षेपणशक्ति (Albedo) $\frac{१५}{१००}$ है जिससे पता चलता है कि मंगल में शुक्र के समान बादल नहीं हैं। कला और प्रकाश के बढ़ने के सम्बन्ध से पता चलता है कि मंगल की सतह ऊँची-नीची नहीं, बल्कि समथल है (पृष्ठ ४७६ देखिए)।

मंगल भी अपनी धुरी पर घूमा करता है। इसके भ्रमण-काल का बहुत शुद्ध पता लग सका है, क्योंकि इस पर स्थायी चिह्न हैं जो लगभग ३०० वर्ष पहले देखे गये थे। उस समय से अब तक यह ग्रह लगभग एक लाख बार अपनी धुरी पर घूमा होगा। एक लाख भ्रमण-काल में यदि कुछ मिनटों की अशुद्धि भी हो जाय तो एक भ्रमण-काल में नाम-मात्र की ही अशुद्धि पड़ेगी। इसलिए इस ग्रह के भ्रमण-काल का हमको बहुत सूक्ष्म ज्ञान है। यह समय २४ घंटे ३७ मिनट २२·५ सेकंड है। इसकी धुरी इसकी कक्षा से लगभग उतनी ही तिरछी है जितनी पृथ्वी की धुरी पृथ्वी की कक्षा से। इसलिए जिस प्रकार पृथ्वी पर भूमध्यरेखा, कर्क और मकररेखा, आर्कटिक (Arctic) और ऐन्टार्कटिक (Antarctic) रेखायें होती हैं, उसी प्रकार वहाँ भी ऐसी रेखायें होती होंगी, और जैसे यहाँ जाड़े और गरमी की ऋतुएँ होती हैं, वहाँ भी होती होंगी; परन्तु, हाँ, वहाँ से सूर्य के अधिक दूर होने के कारण सरदी अधिक पड़ती होगी। पानी बरसता होगा या नहीं यह वहाँ समुद्र इत्यादि के रहने पर निर्भर है। फिर, वहाँ का वर्ष यहाँ का लगभग दूना है; इसलिए सब ऋतुएँ यहाँ की दुगुनी लम्बी होती होंगी।

हम देख चुके हैं कि दीर्घ-वृत्त में चलने के कारण पृथ्वी कभी सूर्य के समीप और कभी दूर चली जाती है, परन्तु पृथ्वी की कक्षा प्रायः गोल है और इसलिए दूरी थोड़ी मात्रा में ही घटती बढ़ती है। इसका परिणाम यह होता है कि दूरी के घटने बढ़ने का प्रभाव ऋतुओं पर बहुत कम पड़ता है। दिसम्बर के महीने में पृथ्वी सूर्य के सबसे पास रहती है, तो भी उत्तरी देशों में उस समय जाड़ा रहता है, क्योंकि उस समय उत्तर में सूर्य की रश्मियाँ तिरछी आती हैं। परन्तु मंगल की कक्षा अधिक दीर्घ-वृत्ताकार है और सूर्य से दूरी घटने बढ़ने के कारण वहाँ ऋतुओं पर इसका अधिक प्रभाव पड़ता है। जब मंगल सूर्य से अधिक निकट रहता है उस समय उसके दक्षिणी गोलार्ध में गरमी पड़ती रहती है और फिर जब मंगल सूर्य से दूर रहता है उस समय दक्षिण गोलार्ध में सरदी पड़ती रहती है। इसलिए उत्तर की अपेक्षा मंगल के दक्षिण गोलार्ध में अधिक सरदी और अधिक गरमी भी पड़ती है। हमने पहले ही देखा है कि मंगल उसी समय अच्छा दिखलाई पड़ता है जब यह हमारे बहुत पास आ जाता है। उस समय मंगल का दक्षिणी ध्रुव हमारी ओर झुका रहता है। इसलिए हम मंगल के दक्षिणी ध्रुव के बारे में अधिक ज़ानते हैं।



[हायगेन्स

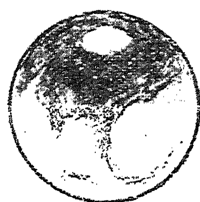
चित्र ४४७—मंगल का प्रथम चित्र।

इसको हायगेन्स ने खींचा था। इसके खींचने का समय मालूम है; इसलिए इसकी सहायता से मंगल का भ्रमण-काल अत्यन्त सूक्ष्मता से ($\frac{1}{100}$ सेकंड तक) निकाला जा सका है।

ज्योतिष-सम्बन्धी दूरदर्शकों में सब चीज़ें उलटी दिखलाई पड़ती हैं, और जैसी वे दूरदर्शक में दिखलाई पड़ती हैं वैसा ही उनका चित्र भी खींचा जाता है। इसलिए यहाँ पर जितने चित्र दिये गये हैं वे सब उलटे हैं। उनमें दक्षिणी ध्रुव ऊपर की ओर है।

२—दूरदर्शक में मंगल का स्वरूप—छोटे दूरदर्शकों में भी मंगल बहुत सुन्दर जान पड़ता है, परन्तु जो लोग पहले से मंगल के विषय में पुस्तकें पढ़ कर और चित्र देखकर दूरदर्शक से इस ग्रह को देखते हैं उन्हें बड़ी निराशा होती है। उन्हें उम्मेद रहती है कि मंगल में नहर दिखलाई पड़ेंगे। शायद इस बुनियाद पर कि वहाँ बड़े बुद्धिमान व्यक्तियों की एक जाति निवास करती है, वे कुछ और भी देखने की आशा रखते हैं; परन्तु दूरदर्शक में केवल आध इंच का, परन्तु अत्यन्त चमकीला, वृत्त दिखलाई पड़ता है। इस ख्याल से कि जन्तु-विज्ञान (Zoology) के विशेष ज्ञान के कारण मंगल पर जीवधारियों के रहने के लक्षण ज्योतिषियों की अपेक्षा उनको अधिक सुगमता से मिलेंगे और इस बूते पर कि उन्होंने सूक्ष्म-दर्शक यंत्र (microscope) से वर्षों तक सूक्ष्म ब्यौरे के देखने का





चित्र ४४८—बड़े से बड़े दूरदर्शक में भी मंगल एक रुपये से छोटा दिखलाई पड़ता है।

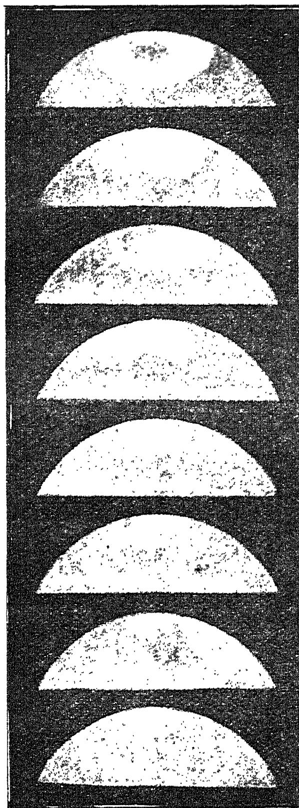
इसके अतिरिक्त, हमारे वायुमंडल के कारण, यह खौलता हुआ सा जान पड़ता है; ऐसी दशा में इसके पृष्ठ पर नहर, शहर, इत्यादि को देखने की क्या आशा की जा सकती है?

अभ्यास किया था और इसलिए उन्हें मंगल पर अधिक ब्यौरे दिखलाई पड़ेंगे, जन्तु-शास्त्र के प्रोफ़ेसर, ई० एस० मॉर्स (E. S. Morse), मंगल-सम्बन्धी आविष्कारों के लिए संसार भर में सबसे प्रसिद्ध लॉवेल वेधशाला (Lowell Observatory) के दूरदर्शक से महीने भर तक बेध करते रहे; परन्तु 'प्रथम बार', वे लिखते हैं *, 'जब मैंने मंगल के सुन्दर विम्ब को इस विशाल दूरदर्शक से देखा, कल्पना कीजिए कि मुझे कितना आश्चर्य और झुँझलाहट हुई। एक भी रेखा नहीं! एक भी चिह्न नहीं! जो वस्तु मुझे दिखलाई पड़ी उसकी तुलना केवल पिघले सोने से भरी घरिया के खुले मुँह से की जा सकती थी। ज़रा सी बदरंगी कहीं यहाँ, कहीं वहाँ, और पल भर के लिए क्षणभंगुर दाग़, परन्तु एक भी निश्चित रेखा या कलंक नहीं दिखलाई पड़ता था।'

बात यह है कि चित्रों में इन रेखाओं और धब्बों को बिना काफ़ी चटक दिखलाये काम नहीं चल सकता, शुद्ध रूप से फीका रहने पर वे दिखलाई ही न देंगे। इसलिए पाठक को ध्यान रखना चाहिए कि इन चित्रों में रेखाएँ, इत्यादि अपने असली स्वरूप से बहुत अधिक चटक और स्पष्ट बनी रहती हैं। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ये चित्र संसार के सबसे बड़े दूरदर्शकों से अनेक वर्षों तक बराबर बेध करते रहने पर सबसे अनुकूल समय पर जो कुछ सिद्धहस्त ज्योतिषियों को दिखलाई पड़ जाता है उसका चित्र है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि संसार के बड़े-से-बड़े दूरदर्शक से उस समय भी, जब मंगल हमको सबसे बड़ा दिखलाई पड़ता है, यह नौ इञ्च की दूरी पर रक्खा हुआ एक पैसे के बराबर दिखलाई पड़ता है (चित्र ४४८), परन्तु यह भी हमारे वायुमंडल के कारण

* Morse : Mars and its Mystery, Boston 1906, p. 80.

इस प्रकार से काँपता हुआ, जैसे इसके और हमारी आँखों के बीच



चित्र ४४९—मंगल के दक्षिणी ध्रुव पर स्थित बर्फ़ की टोपी गरमी में पिघल कर छोटी हो जाती है।

में शीरे की एक धारा बह रही हो।

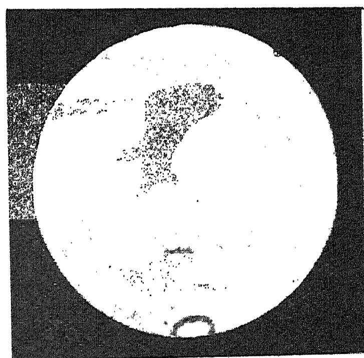
साधारणतः, दूरदर्शक में मंगल का विम्ब नारंगी रंग का जान पड़ता है जिस पर मैले हरे रंग के चिह्न दिखलाई पड़ते हैं। विम्ब के ऊपर या नीचे के भाग में (कभी कभी दोनों ओर) श्वेत और अत्यन्त चमकीला गोल टुकड़ा दिखलाई पड़ता है।

लोगों ने पहले नारंगी या लाल रङ्ग के भागों को महाद्वीप और मैले भागों को समुद्र समझ लिया था और उनका नाम भी वैसा ही रख दिया गया। परन्तु अब यह निश्चय है कि वहाँ समुद्र नहीं हैं। तो भी मैले भाग अब भी अपने पुराने नामों से सूचित किये जाते हैं। लाल भाग रेगिस्तान समझे जाते हैं। उत्तर और दक्षिण भागों की चमकीली टोपी (cap) बर्फ़ है, यह भी अब निश्चय है, क्योंकि जब मंगल के दक्षिण गोलार्ध में जाड़ा रहता है तब यह टोपी बहुत बड़ी हो जाती है और जब वहाँ गरमी पड़ने लगती है तब यह पिघल कर छोटा हो जाता है (चित्र ४४९)। यही हाल उत्तरी-ध्रुव टोपी (North Polar-cap) का भी है। मंगल में कोई पहाड़ नहीं जान पड़ते क्योंकि यदि वे दो हज़ार फ़ुट भी ऊँचे होते तो वे हमको अवश्य कभी न कभी दिखलाई पड़ते।

मैले या हरे भाग समुद्र नहीं हैं क्योंकि यदि वे वस्तुतः समुद्र होते तो उनमें सूर्य का प्रतिविम्ब दिखलाई पड़ता, परन्तु सूर्य के प्रतिविम्ब को कौन कहे, उनमें अब रेखायें दिखलाई पड़ती हैं, वही रेखाएँ जो नहर (canals) कहलाती हैं। इसके अतिरिक्त ऋतु के अनुसार उनका रंग भी बदलता है।

३—नहर—१८७७ में इटली के मिलन (Milan) शहर का ज्योतिषी शायापरेली (Schiaprelli) ने एक अत्यन्त आश्चर्यजनक बात के आविष्कार की सूचना दी। उसका दूरदर्शक केवल पौने नौ इंच व्यास का था, तिस पर भी उसको मंगल के विम्ब पर कई एक रेखायें दिखलाई दीं। इनका नाम उसने कैनाली (canali) रक्खा

जिसका अर्थ है "नाला" (channel), परन्तु समान उच्चारण होने के कारण इस इटैलियन शब्द का अर्थ इँगलैंड और अमरीका में लोगों ने कैनाल (canal) अर्थात् "नहर" लगाया। नहरें कृत्रिम वस्तु हैं, इसलिए शायापरेली की घोषणा से लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ। मंगल पर नहरें! क्या वहाँ भी पी० डब्ल्यू० डी० विभाग है? लोगों ने शायापरेली का घोर विरोध किया, परन्तु दो वर्ष पीछे जब मङ्गल फिर पृथ्वी के पास आया शायापरेली ने देखा कि बाज़ बाज़ नहरें दोहरी हैं और सैकड़ों मील तक रेल की पटरी की तरह समानान्तर चली जाती हैं। अब इनके विरोधियों को पूरा विश्वास हो गया कि शायापरेली को किसी प्रकार अवश्य धोखा हो गया है, क्योंकि शायापरेली से कहीं अधिक बड़े दूरदर्शकों से उनको इकहरी नहरें भी नहीं दिखलाई पड़ती थीं, दोहरी तो दूर रही। कहीं ११ वर्ष बाद ये नहरें दूसरों को दिखलाई पड़ीं। नाइस (Nice), फ़्रांस, के पेरोटिन (Perrotin) ने अपने ३० इंच के दूर-दर्शक से और लिक वेधशाला के लोग वहाँ के ३६ इंचवाले दूर-दर्शक से थोड़ी सी रेखायें देख सके। उनको भी इनमें से कुछ दोहरी दिखलाई पड़ीं। अब यह निश्चय हो गया कि शायापरेली को भ्रम नहीं हुआ था। १८९२ में पिकरिङ्ग (Pickering) ने देखा कि ये नहरें केवल लाल रंगिस्तानों में ही नहीं, साँवले स्थलों में भी

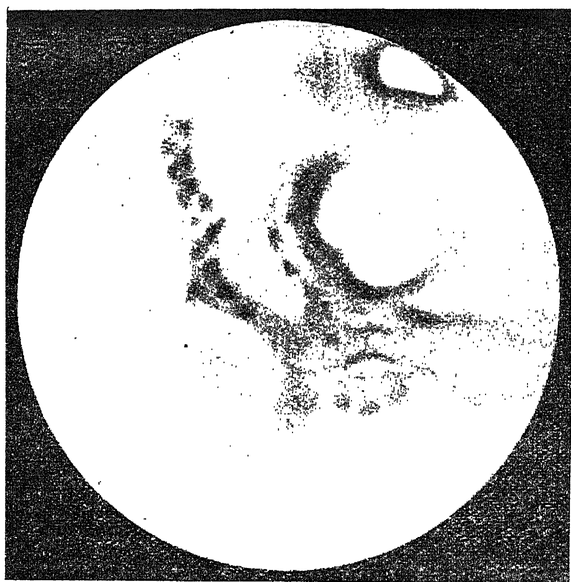


[पिकरिङ्ग

चित्र ४५०—पिकरिङ्ग का खींचा हुआ मंगल का चित्र।

देखिए इसकी "नहरें" बहुत चौड़ी हैं।

दिखलाई पड़ती हैं, जिन्हें लोग अब तक समुद्र समझते थे। जहाँ नहरें एक दूसरे से मिलती हैं वहाँ मैले हरे गोलाकार धब्बे दिखलाई पड़ते हैं; ये रेगिस्तान की हरी-भूमि (oasis) कहलाते हैं। लॉवेल (Lowell) ने अनेक नई नहरों और धब्बों का पता लगाया



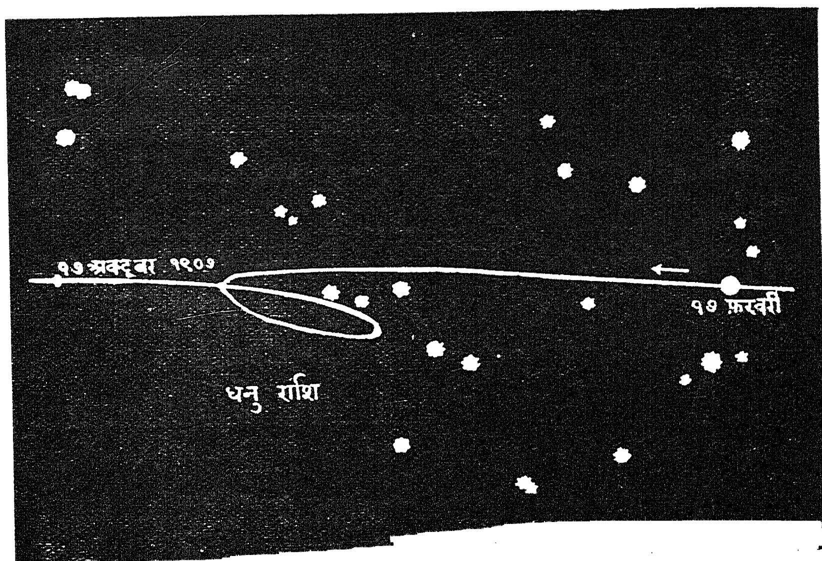
[ऐन्टोनियाडी

चित्र ४४१—म्यूडन (पेरिस के पास) के बड़े दूरदर्शक की सहायता से खींचा गया मंगल का चित्र।

इसको ऐन्टोनियाडी ने खींचा था। देखिए, चित्रकार को एक भी "नहर" नहीं दिखलाई पड़ी।

और देखा कि इन नहरों की रंगत ऋतु के अनुसार बदलती रहती है। ऐसा जान पड़ता है जैसे नहरेंवस्तुत: बहुत पतली होती हैं और हमको दिखलाई नहीं पड़तीं। जो कुछ हमको दिखलाई पड़ती है

वह लगभग १०० फ़ुट चौड़ी और कई सौ (कभी कभी हज़ार से भी अधिक) मील लम्बी नहर के दोनों ओर की ज़मीन है। यह पहले गाढ़े भूरे रंग की रहती है। वहाँ ग्रीष्म ऋतु के आते ही बर्फ़ पिघलने लगता है। बर्फ़ की टोपी के किनारे पानी के रहने का प्रमाण



चित्र ४४२—सन् १९०७ में तारात्रों के बीच मंगल का मार्ग।

देखिए कुछ समय तक यह भी वाममार्गी था।

भी पिकरिंग को पोलैरिस्कोप (Polariscope) नामक यंत्र से मिला है। यह पानी नहरों में बहता है या शायद बहाया जाता है। इससे नहर के दोनों ओर वनस्पति या फ़सल उग आती है जो हमें हरी या श्याम वर्ण रेखाओं की तरह दिखलाई पड़ती है। इन रेखाओं का रंग ५० मील प्रतिदिन के हिसाब से बदलता चला जाता है

जिससे जान पड़ता है कि नहरों में पानी इसी वेग से आगे बढ़ता है। कुछ महीने बाद रेखाओं का रंग फिर पहले जैसा हो जाता है जिससे ज्ञात होता है कि वहाँ की फ़सल इतने समय में तैयार



[मोर्स के मार्स से

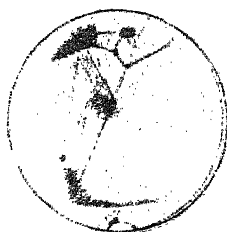
चित्र ४५३—लॉवेल।

इसने अपने ख़र्च से ७००० फ़ुट ऊँचे पहाड़ पर बड़ी सी बेधशाला बनवाई और मंगल-सम्बन्धी खोजों में बहुत समय लगाया। इसका सिद्धान्त था कि मङ्गल में भी बुद्धिमान् प्राणी हैं।

हो जाती है। एक गोलार्ध में समाप्त हो जाने पर दूसरे गोलार्ध में गरमी शुरू होती है और फिर उधर से रेखाओं का रंग बदलना आरम्भ होता है। नहरों के मिलने के स्थान पर, यदि ऊपर का

सिद्धान्त ठीक है तो, स्वभावत: दूर तक खेती होती होगी या घास-पात उगते होंगे। लॉवेल का ख़्याल है कि मंगल में अत्यन्त बुद्धिमान प्राणी रहते हैं, उन्होंने ही इन नहरों को खोदा है। ये प्राकृतिक नाले नहीं हैं, जैसा शायापरेली ने पहले समझा था। ये अवश्य नहरें हैं और इनमें पानी पम्प द्वारा चलाया जाता है; क्यों वे ऐसा समझते हैं यह इसी अध्याय में आगे बतलाया जायगा।

मंगल पर कुछ रेखायें हैं यह अब सभी मानते हैं; ऋतु अनुसार इनका थोड़ा बहुत बदलना भी बहुतेरे मानते हैं; परन्तु अन्य बातें निर्विवाद नहीं हैं।



[लॉवेल

चित्र ४५४—लॉवेल का खींचा मंगल का एक नक़शा।

४—नहरों का स्वरूप—दूरदर्शक से देखने पर कुछ लोगों को नहरें स्पष्ट, सीधी, और पतली दिखलाई पड़ती हैं और कुछ को ये मोटी, भद्दी, टूटी फूटी, अतीक्ष्ण और अस्पष्ट जान पड़ती हैं; विवाद का मूल कारण यही है।

ऐरीज़ोना (Arizona), यूनाइटेड स्टेट्स, अमरीका, में समुद्रतल से ७,००० फ़ुट की ऊँचाई पर एक बेधशाला है जिसमें प्रसिद्ध दूरदर्शक बनानेवाला ऐल्वनक्लार्क के हाथ का बना २४ इञ्च का दूरदर्शक है। यहाँ का वायुमंडल अत्यन्त स्वच्छ रहता है और इस बेधशाला को विशेष करके मंगल अध्ययन के लिए ही डाक्टर परसिवल लॉवेल (Percival Lowell) ने अपने ख़र्च से बनवाया और यहाँ उन्होंने वर्षों तक मंगल के विम्ब की जाँच की और इसके हज़ारों नक़शे खींचे। उनका कहना है कि जब देखने के लिए सब बातें अनुकूल रहती हैं तब नहरें बहुत पतली, केवल १५ या या २० मील चौड़ी, ख़ूब गहरे रंग की, बिलकुल सीधी, और सब

जगह एक ही चौड़ाई और एक ही रंग की दिखलाई पड़ती हैं। हाँ, वायु के स्वच्छ न रहने से ये अस्पष्ट या टूटी फूटी जान पड़ती हैं। उनका यह भी कहना है कि कृत्रिम जाली की तरह ये नहरें ग्रह को चारों ओर से ढके हैं। जहाँ नहरें मिलती हैं उन स्थानों में ४ या ६ नहरें, कभी कभी १४ तक, नियमानुसार ठीक एक ही स्थान पर मिलती हैं (चित्र ४५५)। लॉवेल ने ४०० से अधिक नहरों को देखा है और उनका नक़शा खींचा है।

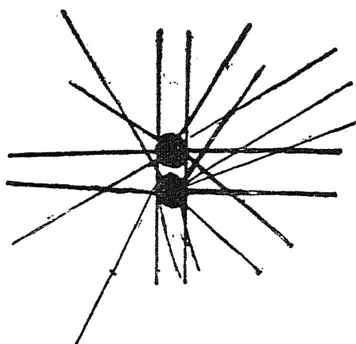
अपनी तीव्र दृष्टि के लिए प्रसिद्ध बारनार्ड (Barnard) का अनुभव इसके बिलकुल विपरीत था। उसने भी वर्षों तक, और प्रसिद्ध ४० इञ्चवाले दूरदर्शक से, मंगल की जाँच की थी। उसका कहना है कि जाल की तरह सर्वत्र फैली हुई, पतली रेखाओं के समान नहरें कोई भी नहीं दिखलाई पड़तीं। हाँ, कभी कभी छोटे, अतीक्ष्ण, अस्पष्ट, रेखायें उन काले काले कलंकों के बीच दिखलाई पड़ती हैं जो मंगल-विम्ब पर बहुतायत से हैं। इसके अतिरिक्त दो लम्बी, अस्पष्ट समानान्तर धारियाँ भी दिखलाई पड़ती हैं।

फ्रांस का ऐन्टोनियाडी (Antoniadi), जिसने म्यूडेन (Meuden) के ३२ इंचवाले दूरदर्शक से मंगल को देखा है, कहता है कि इस बड़े दूरदर्शक से बहुत से छोटे छोटे व्यौरे दिखलाई पडते हैं, जो शायद लॉवेल के छोटे दूरदर्शक से रेखाओं की तरह दिखलाई पड़ते होंगे। इस प्रसंग में कुछ जरमन ज्योतिषियों का कहना है कि* 'एक सिद्धान्त जो देखने में सच्चा, और १६०६ वाले अनुकूल षड्भान्तर के बेधों के अनुसार बहुत सम्भव जान पड़ता

---

* Newcomb-Engelmann : Populäre Astronomie, edited by Drs. Ludendorff, Eberhard, Freundlich, & Kohlschüter.

है यह है कि ग्रह की सतह पर बहुत से छोटे और बड़े, रङ्ग और कालेपन में नाममात्र ही चटक, और सूरत और शकल में अत्यन्त अस्पष्ट, वस्तु हैं, जो हमारे दूरदर्शकों की सहायता से पृथक् पृथक् नहीं देखे जा सकते। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य की आँखें इन पृथक् पृथक्, परन्तु दिखलाई पड़ने की सीमा पर स्थित वस्तुओं की एक जुड़ी हुई चित्र बनाती हैं, जिसमें, उदाहरणार्थ, दो बहुत दूर न रहनेवाले साँवले विन्दु आँखों से, इच्छा न रहने पर भी, जुड़े हुए और एक रेखा में बँधे हुए दिखलाई पड़ते हैं। इस बात को अधिक अच्छी तरह समझने के लिए केवल एक आधुनिक हाफ़टोन चित्र पर ध्यान देने की आवश्यकता है। यदि हम इसकी जाँच एक खूब बड़ा दिखलानेवाले आतिशी-शीशे (सूक्ष्म-दर्शक ताल) से करें, तो चित्र छोटे बड़े बहुत से विन्दुओं में खो जाता है और हमको उस चित्र का कुछ भी नहीं पता चलता है, जो इसी हाफ़टोन को कोरी आँख से देखने पर दिखलाई पड़ता था। यह कि इसी प्रकार आँखों को अच्छी तरह न दिखलाई पड़नेवाली वस्तुएँ अकसर न्यूनाधिक चौड़ी, और सीधी धज्जी की तरह दिखलाई पड़ती हैं जानी हुई बात है। इस विषय के सम्बन्ध में किये गये कई एक प्रयोग नहरों की उपरोक्त उत्पत्ति का समर्थन करते हैं। इनसे यह भी स्पष्ट समझ में आ जाता है कि क्यों



[लॉवेल

चित्र ४५५—कहीं कहीं १४ नहरें ठीक एक ही विन्दु पर जा मिलती हैं।

यह भी लॉवेल का खींचा है।

एक समय पर भिन्न-भिन्न देखनेवालों को ये नहरें भिन्न-भिन्न रूप की दिखलाई पड़ती हैं। और क्यों छोटे दूरदर्शकों में ही कई गुनी अच्छी तरह दिखलाई पड़ती हैं। इस सिद्धान्त में यह भी लाभ है



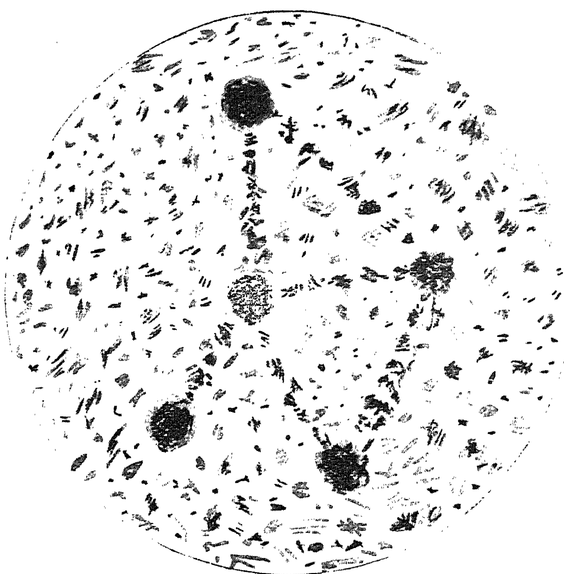
[स्प्लेंडर ऑफ़ दि हेवंस से

चित्र ४२६—बारनार्ड ।

इसने संसार के बड़े बड़े दूरदर्शकों से वर्षों बेध किया था और हज़ारों फ़ोटोग्राफ़ उतारे थे। इस पुस्तक के बहुत से फ़ोटोग्राफ़ इसी के लिए हुए हैं। इसका कहना था कि मंगल में नहरें नहीं हैं।

कि, जैसा कई बार हुआ है, नहर दिखलाई पड़ने की कुल बात को झूठा कह कर अपनी जान यह नहीं बचाता।' ग्रिनिच के मिस्टर मॉन्डर का भी यही कहना है। इनकी बातों का समर्थन

यहाँ दिये गये दो चित्रों से होता है। यदि चित्र ४५७ को काफ़ी दूर से (जैसे ५० फ़ुट से) देखा जाय तो यह चित्र ४५८ सा जान पड़ेगा। सच्ची बात चाहे जो हो, परन्तु यदि मंगल पर केवल पृथक् पृथक् कलंक ही बिखरे हैं तो भी प्रश्न यह रह जाता है कि क्या

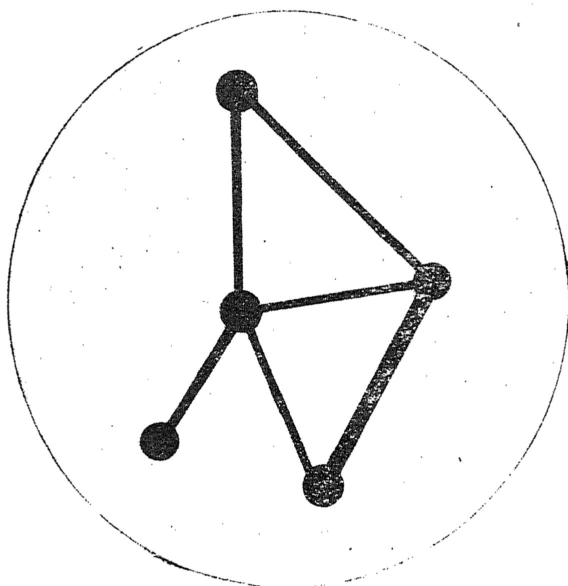


चित्र ४५७—क्या मंगल की नहरें केवल माया-जाल हैं ?

इस चित्र को ४० या ५० फ़ुट की दूरी से आप अपने मित्र को दिखलावें तो उन्हें अवश्य भ्रम हो जायगा और इसमें अगले चित्र की तरह नहरें दिखलाई पड़ेंगी।

कारण है कि ये कलंक ऐसे नियमानुसार बिखरे हैं कि उनसे बुद्धि-बल से बनाये गये नहरों की तरह शकल बनी हुई दिखलाई पड़ती है।

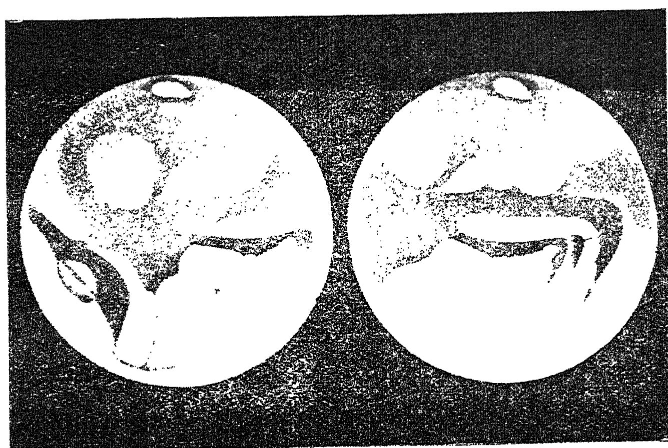
पिकरिङ्ग ने नहरों की तुलना धुँधली धारियों से की है, जिनकी चौड़ाई १५० मील तक हो सकती है। डेलोगे (Desloges) ने कुछ नहरों को सीधा देखा है (चित्र ४५९), परन्तु उसके मतानुसार कुछ नहरें बहुत चौड़ी हैं जो स्थिर वायुमंडल में अच्छी तरह दिखलाई पड़ने के क्षण में कई एक छोटे छोटे कलंकों में बँट जाती



चित्र ४५८—यदि पहले चित्र को काफ़ी दूर से देखा जाय तो वह इस चित्र के समान जान पड़ेगा।

हैं। इस प्रकार शायापरेली के नहर-सम्बन्धी आविष्कार का फ्रांस के पेरोटिन और थॉलन, इँगलैण्ड के विलियम्स (Williams) जिनका दूरदर्शक छोटा था, हारवार्ड (Harvard) के पिकरिङ्ग, और सबसे बढ़ कर लॉवेल समर्थन करते हैं; परन्तु बड़े बड़े दूरदर्शकवाले, जैसे ३२ इंच दूरदर्शक से ऐन्टोनियाडी, ३६ इंच के यंत्र से लिक

के ज्योतिषी, ४० इञ्चवाले से बारनार्ड और माउन्ट विलसन के ६० इञ्च के दर्पण-युक्त दूरदर्शक से हेल (Hale) सबने उन पतली, सीधी और सर्वत्र फैली हुई रेखाओं को नहीं देखा जिसके बल पर लॉवेल ने मंगल पर जीवधारियों के होने का दावा किया है। लॉवेल का कहना है कि हमारा वायुमंडल इतना अस्थिर रहता है कि बड़े



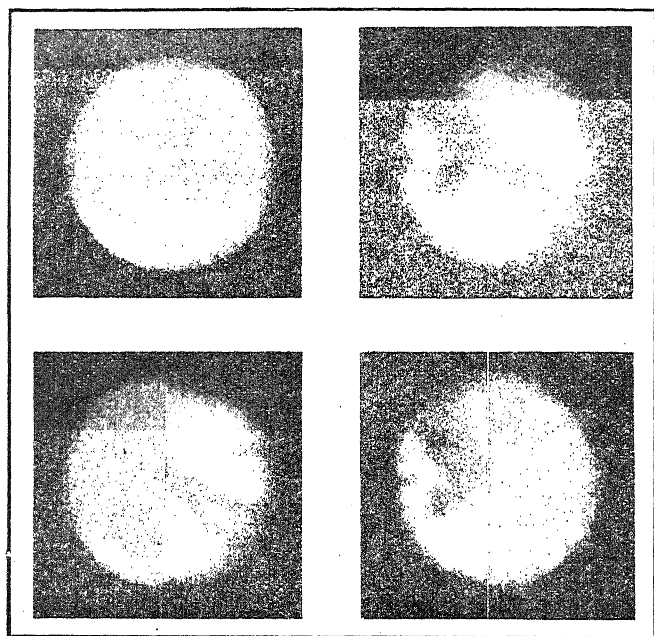
[डेलोगे

चित्र ४२१—मङ्गल की नहरें।

एक फ्रेंच ज्योतिषी के अनुसार।

दूरदर्शकों से प्रकाश तो अवश्य बढ़ता है, परन्तु सूक्ष्म ब्यौरे मिट जाते हैं; इसी से बड़े दूरदर्शकों में नहरें नहीं दिखलाई पड़तीं। परन्तु इस बात के मानने में खटका यह लगता है कि क्या कभी क्षण भर के लिए भी हमारा वायुमंडल इतना स्थिर नहीं हो जाता कि इनमें भी वही ब्यौरे दिखलाई पड़ जायँ? इधर नहरों

के अस्तित्व के माननेवालों का कहना है कि यदि चोर को दस ने चोरी करते प्रत्यक्ष देखा है तो क्या उनकी गवाही की भी आवश्यकता है जिन्होंने उसे चोरी करते नहीं देखा ? लेकिन सब देखने-

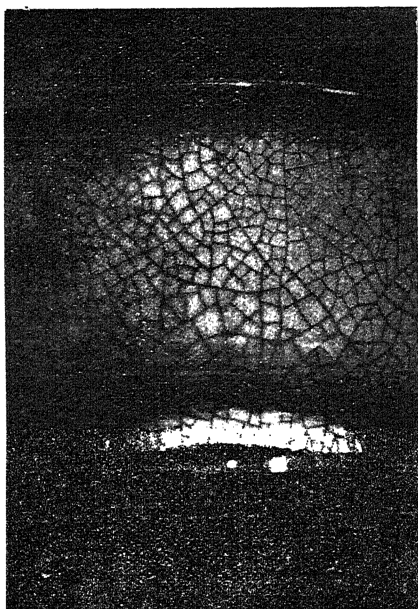


[राइट; लिक बे०

चित्र ४६०—**मंगल का नीले और लाल प्रकाश में फ़ोटोग्राफ़।**
स्पष्ट है कि मंगल पर भी नीला वायुमंडल है।

वालों की गवाही एक सी नहीं होती। एक ही रात्रि को एक ही दूरदर्शक से दो भिन्न भिन्न, परन्तु दोनों ख़ूब अनुभवी द्रष्टाओं के नक़शे भिन्न भिन्न होते हैं, जैसा लॉवेल और पिकरिंग के साथ

हुआ है। जान पड़ता है यहाँ भी "निजी समीकरण" (Personal equation) वाली बात है। एक देखनेवाला, जब तक उसको रेखायें स्पष्ट रूप से सीधी और पतली न दिखलाई पड़ें, उनको सीधी और पतली नहीं कहेगा और दूसरा जब तक वह रेखाओं को स्पष्ट रूप से भद्दी और टूटी-फूटी या टेढ़ी-मेढ़ी न देख ले उनको सीधी और पतली ही कहेगा। शायद यही बात इन रेखाओं के एक ही स्थान पर मिलने और जाल की तरह बिछे रहने के सम्बन्ध में भी लागू है।



[मोर्स के मार्स से

चित्र ४६१—चीनी मिट्टी के बरतनों के ऊपर की रोगन के चिटकने पर भी अनियमित रेखायें बनती हैं।

हो सकता है, लॉवेल की आँखें असाधारण तेज़ हों। हो सकता है, मन की भावना के कारण उसको भ्रम हो जाता हो। परन्तु यह निश्चय है कि बहुत से ज्योतिषी जाली के समान नियमानुसार सीधी और पतली नहरों का होना नहीं मानते।

× × × ×

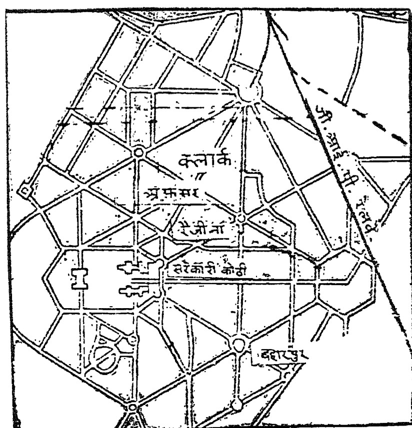
अभी तक यह मामला तय नहीं हुआ। जहाँ तक जान पड़ता है, १०० इञ्चवाले दूरदर्शक को इतनी फ़ुरसत नहीं है कि वह

मंगल की उलझनों को सुलझाने बैठे। देखना चाहिए कि भविष्य का २०० इञ्चवाला दूरदर्शक क्या करेगा।

५—फ़ोटोग्राफ़ी—स्वभावतः ख़्याल आता है कि क्या फ़ोटोग्राफ़ लेकर ये बातें तय नहीं की जा सकतीं? परन्तु आँख से देखते रहने पर क्षण भर के लिए भी वायुमंडल के स्थिर हो जाने से बहुत से ब्योरे दिखलाई पड़ जाते हैं। फ़ोटोग्राफ़ तो प्रकाश-दर्शन-समय तक भली-बुरी जैसी भी दशा वायु-मंडल की हुई सबके परिणामों को जोड़कर तैयार होता है। इसलिए इसमें उतना ब्यौरा नहीं दिखलाई पड़ता जितना आँख से। तिस पर भी फ़ोटोग्राफ़ों में वे साँवले स्थान जो समुद्र के नाम से प्रसिद्ध हैं बड़ी अच्छी तरह दिखलाई पड़ते हैं (चित्र २७ पृष्ठ ३३)। उन पर दो चार मुख्य मुख्य रेखायें भी दिखलाई पड़ती हैं।

६—मङ्गल का वायुमण्डल—मंगल पर वायुमंडल अवश्य होगा क्योंकि मंगल की आकर्षण-शक्ति भारी गैसों को रोक रखने के लिए काफ़ी है। इसलिए वहाँ करबन द्विओषिद (Carbon dioxide), जिससे पौधे इत्यादि, बढ़ते और मोटे होते हैं; ओषजन (Oxygen) जिससे मनुष्य, जानवर इत्यादि जीते हैं, और नत्रजन (Nitrogen), जिसके रहने से ओषजन की शक्ति इतनी कम हो जाती है कि हम इससे जल कर भस्म नहीं हो जाते, वहाँ रह सकते हैं। पानी की भाप के हलका होने के कारण इसका अधिकांश उड़ गया होगा, परन्तु यह वहाँ होगा अवश्य, क्योंकि बर्फ़ की टोपियों के जमने और पिघलने से वहाँ पानी और पानी की भाप का रहना सिद्ध हो जाता है। रश्मि-विश्लेषक यन्त्र से जाँच करने पर भी पता चलता है कि वहाँ जल-वाष्प और ओषजन हैं, क्योंकि सूर्य का जो प्रकाश मंगल के वायुमंडल में घुस कर उसकी सतह से परावर्तित होकर फिर वायुमंडल को पार करता हुआ हमारे पास

आता है उसमें इन गैसों की रेखायें दिखलाई पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त जब मंगल में एकादशी के चन्द्रमा की भाँति कला दिखलाई पड़ती है इस समय प्रत्यक्ष कला, गणना से निकली कला की अपेक्षा, कुछ अधिक होती है जिससे केवल इतना ही नहीं पता चलता है कि मंगल पर भी वायुमंडल है, किन्तु वहाँ के वायुमंडल की घनता का भी अन्दाज़ लगता है। अनुमान किया जाता है कि पृथ्वी के समुद्रतल पर स्थित वायुमंडल की अपेक्षा वहाँ का वायुमंडल लगभग पँचगुना हलका होगा। मंगल पर बादल भी कभी कभी दिखलाई पड़ते हैं। ये दो जातियों के होते हैं; एक तो सफ़ेद, जो अवश्य असली बादल हैं; दूसरे पीले, जो रेगिस्तान के बवंडर (Cyclone) से जान पड़ते हैं। एक बार जब मंगल में कला दिखलाई पड़ रही थी उस समय इसके प्रकाशित और अप्रकाशित भागों की सन्धि पर सफ़ेद बादल दिखलाई पड़ा, जिस पर इसके ऊँचे होने के कारण निस्संदेह धूप पड़ रही थी, यद्यपि इसके नीचे की भूमि पर अभी धूप नहीं पहुँच पाई थी। जिस प्रकार चन्द्रमा के अप्रकाशित भाग में चमकती हुई चोटियाँ दिखलाने लगती हैं (पृष्ठ ४२४) उसी प्रकार यह बादल



चित्र ४६२ —नई दिल्ली की सड़कें।

इनका नियम-बद्ध होना इनके कृत्रिम जन्म को सूचित करता है।

भी दिखला रहा था। समाचार-पत्रों ने, जो हमेशा रोमांचकारी ख़बरों की ताक में बैठे रहते हैं, इस घटना को यों प्रसिद्ध कर दिया कि मंगल-निवासी बहुत सी आग जला कर और धुआँ करके हम लोगों को संदेशा भेज रहे हैं!

बादलों के रहने से भी वायुमंडल के रहने का समर्थन होता है, परन्तु इसका सबसे प्रत्यक्ष प्रमाण मंगल का लाल और नीले प्रकाश में (लेन्ज़ के ऊपर लाल या नीला प्रकाश-छनना लगा कर) फ़ोटोग्राफ़ लेने से होता है। नीले प्रकाश छनने से इसके वायुमंडल की कुल रोशनी प्लेट तक पहुँचती है, लाल प्रकाश से यह कट जाती है। इसी से नीले प्रकाश में लिये फ़ोटोग्राफ़ में मंगल की सतह का एक ब्यौरा भी नहीं दिखलाई पड़ता है (चित्र ४६०)। लाल प्रकाश में लिये फ़ोटोग्राफ़ में वायुमंडल के प्रकाश के कट जाने से सब ब्योरा दिखलाई पड़ने लगता है। इन फ़ोटोग्राफ़ों को चित्र ४२६, ४३० (पृष्ठ ५११, ५१३) पर दिये गये फ़ोटोग्राफ़ों से तुलना करने पर मंगल पर वायुमंडल का रहना आश्चर्यजनक रीति से स्पष्ट हो जायगा।

७—**तापक्रम**—पहले समझा जाता था कि मंगल इतना ठंढा होगा कि वहाँ वनस्पति या जन्तु जीवित नहीं रह सकते; परन्तु लॉवेल की गणना से और पीछे तापक्रम को सचमुच नापने से पता चला कि यह सत्य नहीं है। बर्फ़ का पिघलना ही सूचित करता है कि वहाँ का तापक्रम पिघलते हुए बर्फ़ से अधिक होगा। अनुमान किया जाता है कि दिन में वहाँ का तापक्रम लगभग ५०° फ़ा० हो जाता होगा। रात्रि को क्या होता होगा, इसका ठीक पता नहीं, परन्तु सम्भव है कि वहाँ रात्रि होते ही वायुमंडल का जल-वाष्प जम कर बादल बन जाता हो जिसके कारण रात को इतनी सरदी न पड़ने पाती हो कि पौदे मर जायँ।

८—मंगल के भिन्न भिन्न लक्षणों का अर्थ—उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव की सफ़ेद टोपी को अब सभी बर्फ़ मानते हैं, यद्यपि पहले इसमें भी झगड़ा था। वे रेखायें जो नहर के नाम से प्रसिद्ध हैं और जिनको लॉवेल और उनके समर्थक वस्तुतः नहर समझते हैं अरेनियस (Arrhenius) के मतानुसार दरार हैं। दरार के आस



[मोर्स के मार्स से

चित्र ४६३—पोर्टोरिको, अमरीका, में कपड़े से ढकी हुई तम्बाकू की फ़सल।

मंगल के सफ़ेद स्थान क्या ऐसे ही खेत हैं ?

पास, और साँवली भूमि में भी, कुछ नमक के समान ऐसे क्षार हैं जो जल-वाष्प को पाकर पसीजते हैं। अरेनियस का कहना है कि इस पसीजने के कारण उनके रङ्ग में अन्तर दिखलाई पड़ता है। इस प्रकार के क्षार-युक्त रेगिस्तान हमारी पृथ्वी पर भी हैं। एक ज्योतिषी

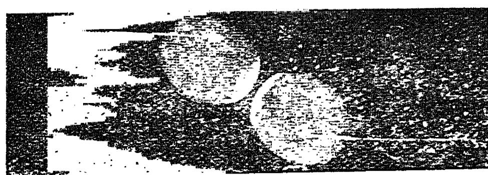
का कहना है कि ये चिह्न सदा एक ही रूप में रहते हैं, परन्तु मंगल के वायुमंडल की स्वच्छता ऋतुओं के अनुसार बदला करती है, इसी लिए ये चिह्न भी ऋतुओं के अनुसार स्पष्ट या अस्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं, जिसका अर्थ लॉवेल और उनके समर्थक वनस्पति का उप-जना और मिटना बतलाते हैं। लॉवेल का कहना है कि प्राकृतिक दरार नियमानुसार केन्द्रों से निकलते हुए कभी भी नहीं जान पड़ते। गीली भूमि के सूखने पर बने बड़े बड़े दरार से लेकर चीनी मिट्टी के बरतनों के रोगन चटकने के चिह्न (चित्र ४६१) सब एक ही रूप से अनियमित होते हैं। इसके विपरीत, रेल की पटरियाँ या मनुष्य की बनाई सड़कें नियमित और सीधी होती हैं और वे एक ही केन्द्र में जाकर मिल भी सकती हैं (चित्र ४६२)।

इतना निश्चय है कि उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव पर दो चार ही इंच बर्फ़ जमती होगी। इसका पता इस बात की गणना करने से लगता है कि मंगल पर सूर्य की गरमी कितनी पहुँचती है और इसलिए वहाँ एक ऋतु में कितनी बर्फ़ पिघल सकती है। कम ही बर्फ़ रहने के कारण वहाँ जल की कमी अवश्य होती होगी और यदि मंगल में सचमुच कोई बड़ी बुद्धिमान् जाति रहती है तो उसने इस पानी का पूरा सदुपयोग करने के लिए नहरें अवश्य बनाई होंगी। पृथ्वी पर भी तो हज़ारों मील नहरें बनी हैं। मिस्र देश में नील (Nile) नदी की नहरें और उनके पास की भूमि अन्य ग्रहों से वैसी ही ऋतु के अनुसार रङ्ग बदलती दिखलाई पड़ती होंगी जैसा लॉवेल इत्यादि को मंगल पर दिखलाई पड़ती है। मंगल पर कुछ सफ़ेद गोलाकार दाग़ दिखलाई पड़ते हैं; ठीक पता नहीं कि वे क्या हैं। वनस्पति-सिद्धान्तवाले उन्हें रूई की या अन्य किसी सफ़ेद वस्तु की फ़सल मानते हैं। मोर्स ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि हो सकता है जैसे अमरीका के कुछ किसान बेहद कड़ी धूप या पाले से अपने खेत

को बचाने के लिए उसको कपड़े या काग़ज़ से ढक देते हैं (चित्र ४६३) वैसे ही शायद मंगलनिवासी भी करते होंगे।*

९—क्या मंगल पर जीव हैं? क्या मंगल पर जीव हैं, इस प्रश्न की विवेचना बड़ी ख़ूबी से डाक्टर लॉवेल ने अपनी पुस्तक Mars as the Abode of Life ("जीव के निवासस्थान की हैसियत में मंगल") में विस्तारपूर्वक किया है। उनकी युक्तियों का सारांश यहाँ दिया जाता है।

हमारा सौर-परिवार दो तारात्रों के टकराने या बहुत पास से चले जाने के कारण बना होगा (चित्र ४६४-४६८)। पास से निकल



चित्र ४६४—दो तारे चलते चलते पास पहुँच गये और आकर्षण के कारण उनकी शकल बदल गई।

जाने का भी फल वही होगा। भीषण आकर्षण के कारण एक या दोनों तारे टूट फूट गये होंगे और उनमें बड़ी गरमी पैदा हुई होगी। अब भी तो आकाश में यह घटना रह रह कर दिखलाई पड़ जाती है जिससे नवीन तारे (Novae) बन जाते हैं। टुकड़े आकर्षण के कारण एक दूसरे में जा भिड़े होंगे जिससे और भी गरमी बढ़ी होगी। जो जितना ही बड़ा गोला बना होगा उसमें उतनी ही अधिक गरमी आई होगी। इस प्रकार सूर्य और ग्रह बन गये होंगे। [बृहस्पति

* E. W. Morse : Mars and its mystery, p. 50.

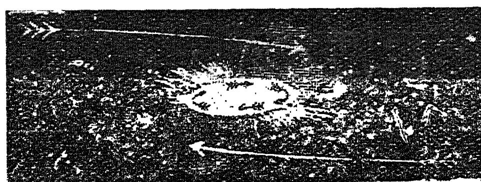
के आकर्षण के कारण बहुत से टुकड़े जुटने नहीं पाये होंगे; वे ही अवान्तर ग्रह बन गये होंगे]। सूर्य, अत्यन्त बड़ा होने के कारण, अभी ठंढा नहीं हो पाया है, बृहस्पति जो अन्य ग्रहों में सबसे बड़ा है अभी तक गरम है। मंगल पृथ्वी से छोटा है, इसलिए अब यह पृथ्वी से बहुत ठंढा है। उत्पत्ति के समय पृथ्वी आग के गोले के समान गर्म और पिघली हुई रही होगी और मंगल भी क़रीब ऐसा ही परन्तु कुछ ठंढा रहा होगा। उसी समय सूर्य के आकर्षण से उठे ज्वार-भाटा के कारण पृथ्वी का एक भाग निकल पड़ा होगा और वही चन्द्रमा हो गया होगा। पृथ्वी का



चित्र ४६५—ये दोनों लड़ गये।

एक भाग होने के कारण चन्द्रमा इतना गरम था कि ठंढा होते होते बहुत से पहाड़ इत्यादि बन गये, नहीं तो छोटा होने के कारण यह पहले ही से इतना गरम न होने पाता। पृथ्वी पर भी इसी प्रकार पहाड़ बने होंगे। मंगल पर कम गरमी के कारण पहाड़ इत्यादि न बनने पाये होंगे। पृथ्वी जब इतनी ठंढी हो गई कि जल-वाष्प वर्षा के रूप में गिरने लगा, तब इसमें जीव आपसे आप रासायनिक संयोग से उत्पन्न हुआ होगा। डारविन (Darwin) के प्रसिद्ध विकाश (Evolution) सिद्धान्त के अनुसार इस सरलतम जीव से उत्तरोत्तर अधिक टेढ़े जीव बने होंगे, अन्त में बन्दर और तब उनसे मनुष्य बने होंगे। इस बात के बहुत से प्रमाण हैं जो

जीव-विकाश-सिद्धान्त (Theory of Evolution) की पुस्तकों में मिलेंगे। लॉवेल का कहना है कि मंगल पर भी यही घटनायें हुई होंगी। हाँ, वह पहले ही से पृथ्वी की अपेक्षा कुछ ठंडा था और छोटा होने के कारण वह कुछ अधिक वेग से ठंढा भी हुआ होगा। इसलिए वहाँ पर बन्दर और मनुष्योंवाला ज़माना बहुत पहले ही गुज़र चुका होगा। जैसे जैसे समय बीतता गया होगा, कम आकर्षण के कारण जलवाष्प शून्य आकाश में उड़ता गया होगा और कुछ जल भूमि के भीतर ही घुस गया होगा। पृथ्वी पर भी तो अब आज से करोड़ों वर्ष पहले की अपेक्षा कम जल बरसता है;



चित्र ४६६—लड़ने का परिणाम यह हुआ कि उनके बीच तीसरा पिंड बनने लगा।

और दिन पर दिन जल कम हुआ जा रहा है। पृथ्वी पर भी, ऐसा प्रमाण मिलता है, समुद्र छिछले हो गये हैं और जो भूमि पहले समुद्र के नीचे थी वह अब ऊपर निकल आई है, जिससे उसमें अब भी समुद्री जीव-जन्तु की हड्डियाँ मिलती हैं। इसी प्रकार मंगल में भी धीरे धीरे समुद्र सूखता गया होगा। भूमि बढ़ती गई होगी, साथ ही साथ पानी की शिकायत बढ़ती गई होगी। इधर डारविन के सिद्धान्तानुसार वहाँ के मनुष्यों का और भी विकाश हुआ होगा। वे और भी बुद्धिमान् हो गये होंगे। धीरे धीरे उन्होंने अपना भविष्य पहचान कर नहर बनाना आरम्भ किया होगा। अब

मंगल पर समुद्र सब सूख गये हैं। शायद वहाँ के साँवले भाग समुद्र के पेंदे होंगे।

लॉवेल का कहना है कि पानी आपसे आप इन नहरों में बह नहीं सकता, क्योंकि ध्रुव प्रदेश वहाँ कुछ ऊँचे पर नहीं है; फिर मध्य-रेखा के पास नहरों का रंग उत्तर से दक्षिण की ओर और पीछे दूसरे गोलार्ध में गरमी पड़ने पर विपरीत दिशा में बदलते देखा गया है, जिससे पता चलता है कि पानी ऊँचाई नीचाई के कारण नहीं बहता। इसलिए वहाँ बड़े बड़े पम्प लगे होंगे जो मार्स-निवासियों के विलक्षण बुद्धिमान् होने के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

लॉवेल का कहना है कि यह सिद्ध है कि मंगल पर जीवित रहने के लिए काफ़ी गरमी पड़ती है, हाँ शायद उसी प्रकार वहाँ रहना पड़ता होगा जैसे यहाँ एसकिमो (Eskimo) लोग रहते हैं। परन्तु एक आपत्ति लोग यह करते हैं कि मंगल पर वायुमंडल इतना पतला है कि वहाँ पर सब प्राणियों का फेफड़ा फट जायगा। इसका उत्तर लॉवेल ने यों दिया है कि कुछ ही वर्ष पहले लोग समझते थे कि समुद्र के पेंदे के पास कोई मछलियाँ या अन्य जन्तु नहीं रह सकते, क्योंकि वहाँ पानी का इतना दबाव पड़ता है कि सब जन्तु मर जायँगे और वहाँ इतना अंधकार होगा कि कुछ दिखलाई न पड़ेगा। परन्तु खोज करने पर पता चला कि वहाँ बहुत से जानवर रहते हैं। वहाँ की मछलियों की बनावट ऐसी होती है कि ऊपर आने से वे मर जाती हैं। फिर वहाँ ऐसी भी मछलियाँ होती हैं जो जुगनू की तरह अपनी लालटेन आप लिये फिरती हैं। तो क्या ऐसे जीवधारी नहीं बन सकते जो पतले वायु में रह सकें? अवश्य बन सकते होंगे। यहीं पर देखिए समुद्र से १६,००० फ़ुट ऊँचे तिब्बत (Tibet) में मनुष्य रहते ही हैं। ऐन्डीज़ (Andes) पहाड़ पर भी रहते हैं। इन स्थानों में वायु का दबाव साधारण का केवल आधा ही है।

माना कि मंगल में साधारण का केवल पाँचवाँ अंश दबाव है, तो क्या जैसे जैसे करोड़ों वर्षों में वहाँ का वायुमंडल क्षीण होता गया तैसे तैसे प्रकृति के नियम और डारविन के सिद्धान्त के अनुसार क्षीण वायु में रहनेवाले व्यक्तियों का विकाश न हुआ होगा ?

थोड़े में, समझिए कि लॉवेल का तर्क हमारे उस प्राचीन कवि का सा है जिसने कहा था—

"जब दाँत न थे तब दूध दिये,
जब दाँत हुए क्या अन्न न दैहै ?"



चित्र ४६७—तीसरा पिंड अभी तक अपने जन्मदाताओं से पृथक् नहीं हुआ।

केवल अन्तर इतना ही है कि लॉवेल ने परमेश्वर का नाम लेकर विज्ञान का माथा हेठा नहीं किया है।

यह तो हुई कल्पना की बात। इसके सच्चे होने का सबूत इस बात से मिलता है कि लॉवेल ने जिन नहरों को देखा है वे ऐसी सीधी, पतली, नियमानुसार बनी हैं कि वे प्रकृति की बनाई हुई नहीं हो सकतीं।

परन्तु यदि बारनार्ड, ऐन्टोनिआडी, इत्यादि, की बात सत्य है कि मंगल में असली नहरें हैं ही नहीं तो सब कल्पनाओं की जड़ ही कट जाती है। हाँ, घास-पात होते हों तो हों।

लॉवेल का विचार है कि समय पाकर पृथ्वी भी मंगल की तरह समुद्र-रहित हो जायगी। उधर मंगल धीरे धीरे चन्द्रमा की तरह निर्जीव हो जायगा। पृथ्वी भी अन्त में इसी दशा पर पहुँच जायगी, परन्तु घबड़ाने की कोई बात नहीं है, इसमें प्राय: असंख्य वर्ष लगेंगे।

लॉवेल का सिद्धान्त है तो बहुत रोचक, परन्तु इस पर ध्यान रखते हुए कि अधिकांश देखनेवालों ने इन नहरों को सब कुछ चेष्टा करने पर भी नहर के सदृश नहीं पाया है, हमको शोक के साथ कहना पड़ता है कि अभी यह निश्चयरूप से सिद्ध नहीं हुआ कि मंगल पर बुद्धिमान व्यक्ति अवश्य हैं।

१०—गुलिवर की यात्रायें—पृथ्वी के एक, बृहस्पति के चार, और शनि के इससे भी अधिक उपग्रह देख कर कई व्यक्तियों ने, कुछ तो मज़ाक में और कई एक ने पूरे विश्वास के साथ, लिखा था कि मंगल के दो उपग्रह होंगे। अन्त में सन् १८७७ में प्रोफ़ेसर ऐसफ़ हॉल (Asaph Hall) ने वाशिंगटन (Washington) बेधशाला के बड़े दूरदर्शक से मंगल के दो ग्रहों का पता लगा ही डाला। पहले के लेखकों ने किस प्रकार इस आविष्कार की भविष्यद्वाणी की थी यह अत्यन्त रोचक है और इसलिए इसका वर्णन यहाँ पर प्रोफ़ेसर हॉल के परचे से दिया जाता है*। वे लिखते हैं।

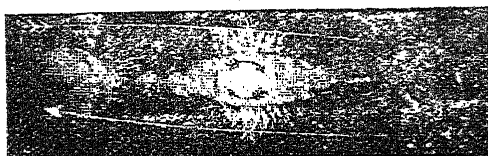
"१६१० में गैलीलियो के निकाले बृहस्पति के चार उपग्रहों के आविष्कार के थोड़े ही दिनों बाद, और जब इस आविष्कार के सच्चे होने पर लोग संदेह कर ही रहे थे, केपलर (Kepler) ने निम्न-

---

* Asaph Hall: Observations and Orbits of the Satellites of Mars, जहाँ से एक अवतरण G. H. Darwin: The Tides में भी दिया है।

लिखित पत्र अपने एक मित्र को लिखा था। गैलीलियो के इस आविष्कार की ख़बर उसको उसके मित्र वाखेनफ़ेल्स (Wachenfels) ने सुनाई थी; और केपलर कहता है:—

"'ऐसी ख़बर सुनकर, जो एक-दम निरर्थक जान पड़ती थी, मैं आश्चर्य के आवेश में ऐसा पड़ गया और हम दोनों के एक पुराने विवाद को इस प्रकार तय हो गया देख मैं इतना क्षुब्ध हो गया कि उसके आनन्द, मेरी लज्जा, और हम दोनों की हँसी के बीच न उसमें बोलने की शक्ति रही और न मुझमें सुनने की और विशेषकर इसलिए कि ऐसी नई बात सुन कर हमारे होश ठिकाने न थे।



चित्र ४६८—तीसरा पिंड पृथक् हो गया।

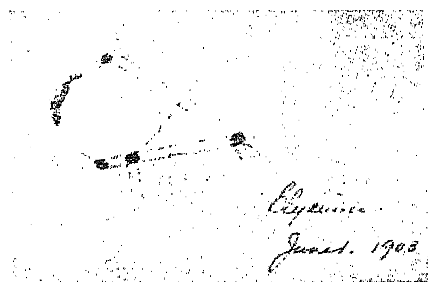
चित्र ४६४-४६८ ए० डब्ल्यू० बिकरटन की पुस्तक "बर्थ ऑफ़ वर्ल्ड्स ऐण्ड सिस्टेम्स" से लिये गये हैं।

उसके बिदा होने पर मैं तुरन्त सोचने लगा कि किस प्रकार से, बिना अपने "विश्वोत्पत्ति के रहस्य" को उलटे, जिसके अनुसार सूर्य के चारों ओर ६ ग्रह से अधिक नहीं हो सकते, ग्रहों की संख्या में वृद्धि हो सकती है। बृहस्पति के चक्कर लगानेवाले चारों ग्रहों के अविश्वास से मेरा चित्त इतना दूर है कि मेरी लालसा एक दूरदर्शक के लिए है, जिससे, हो सके तो तुम्हारे पहले ही, मंगल के पास दो ग्रह, जैसा अनुपात को ठीक रखने के लिए आवश्यकता प्रतीत होती है, शनि के साथ छः या आठ और शायद बुध और शुक्र के साथ एक एक का आविष्कार करें।'

"मंगल के उपग्रहों के विषय में डीन स्विफ़्ट का बयान उनके प्रसिद्ध व्यंगमय पुस्तक मिस्टर लेमुयल गुलिवर की यात्रायें (The Travels of Mr. Lemuel Gulliver) नामक पुस्तक में है। (यह वही पुस्तक है जिसमें पहले एक बालिश्त के बौनोंवाले देश में श्रौर पीछे ताड़ ऐसे दैत्यों के देश में गुलिवर के पहुँचने का वर्णन है)। लपूटा (Laputa) में अपने पहुँचने के वर्णन के बाद श्रौर लपूटा-निवासियों की गणित श्रौर संगीत के शौक की व्याख्या के बाद गुलिवर कहता है।

" 'मुझे गणित का जो ज्ञान था उससे मुझे उनकी भाषा सीखने में बड़ी सहायता मिली, क्योंकि उनकी बोली उस विज्ञान पर श्रौर संगीत पर बहुत निर्भर है; श्रौर संगीत में मैं निपुण हूँ। उनके विचार सदा रेखाओं श्रौर नक़शों में फँस जाया करते थे। जैसे उनको यदि किसी स्त्री या किसी अन्य जानवर के सौन्दर्य की प्रशंसा करनी हुई तो वे इसको वृत्त, वर्ग, समानान्तर चतुर्भुज, दीर्घ-वृत्त, इत्यादि, रेखागणित-सम्बन्धी शब्दों से करते हैं, या यह प्रशंसा कला श्रौर संगीत से लिये गये शब्दों से की जाती है, जिनके दुहराने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। श्रौर यद्यपि वे काग़ज़ पर, पेन्सिल श्रौर परकार के प्रयोग में अत्यन्त चतुर हैं, तो भी जीवन के साधारण काम-काज में इनसे बढ़ कर फूहर, भोंदे, श्रौर स्थूल लोगों को मैंने कभी नहीं देखा। श्रौर गणित श्रौर संगीत को छोड़ अन्य विषयों पर इतने सुस्त श्रौर ख़ब्त दिमाग़वालों को भी मैंने कभी नहीं देखा। इनमें तर्क करने की शक्ति थोड़ी है, श्रौर उनका विरोध प्रचंड होता है; हाँ, उस अवसर को छोड़ जब इनका विचार सही होता है, परन्तु विरले ही अवसरों पर ऐसा होता है। इन लोगों के दिल में हमेशा खटका लगा रहता है; क्षण भर के लिए भी उनको शान्ति नहीं मिलती; श्रौर उनका खटका ऐसी बातों से उठता है जिससे

शेष मनुष्य-जाति को कोई सरोकार नहीं रहता। उन्हें शंका है कि कई आपत्तियाँ आकाशीय पिंडों पर पड़नेवाली हैं और उनका डर उन्हीं भावी आपत्तियों से उत्पन्न हुआ है। जैसे, वे डरते हैं कि पृथ्वी के लगातार सूर्य की ओर बढ़ते रहने से, समय पाकर कभी सूर्य इसको सोख न ले या इसको निगल न जाय। और यह कि धीरे धीरे सूर्य अपने ही कलंकों से ढक न जाय और तब विश्व को यह कुछ भी प्रकाश न दे सके। और यह कि पृथ्वी पिछले पुच्छल तारे की दुम की झटकार से बाल बाल बच गई, नहीं तो जल कर यह अवश्य राख हो जाती;



[लॉवेल

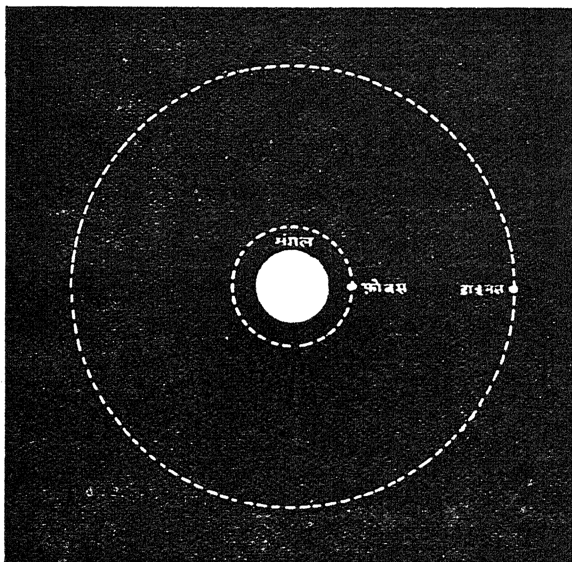
चित्र ४६९—लॉवेल का खींचा कुछ नहर-केन्द्रों का नक़शा।

और आगामी पुच्छल तारा जो आज से एक और तीस वर्षों में आनेवाला है शायद हमारा नाश कर डालेगा। क्योंकि यदि यह संक्रान्ति के समय सूर्य के पास एक निश्चित मात्रा से समीप चला जायगा (और उनको डर है कि यह ऐसा अवश्य करेगा, क्योंकि उनकी गणना से यही बात निकली है) तो इसे लाल तपाये हुए लोहे से दस हज़ार गुनो अधिक गरमी मिलेगी और सूर्य से हटने पर इसकी जलती हुई पूँछ सवा दस लाख और चौदह मील लम्बी होगी। यदि इसमें से, पुच्छल तारे के मस्तक से सवा लाख मील की दूरी से होकर पृथ्वी निकलेगी तो अवश्य पृथ्वी में आग लग जायगी और यह राख हो जायगी। और यह कि सूर्य अपनी रश्मियों को रोज़ ख़र्च करता है परन्तु उसे कोई भोजन नहीं

मिलता, इसलिए अन्त में इसका पूर्णतया क्षय हो जायगा और इसका नामोनिशान भी न रहेगा; जिससे इस पृथ्वी का भी नाश हो जायगा और साथ ही सब ग्रहों का भी, जिनको इसी से प्रकाश मिलता है।

" 'उन्हें बराबर इन सब आसन्न संकटों का और इसी प्रकार की अन्य आशङ्काओं से इतना डर लगा करता है कि वे अपने बिस्तर पर न तो सुख से सो सकते हैं और न तो उन्हें जीवन के सामान्य आनन्द और उत्सवों में कोई मज़ा मिलता है। प्रात:काल जब उनकी किसी मित्र से मुलाकात हो जाती है तो पहला प्रश्न सूर्य के स्वास्थ्य के विषय में होता है; उदय या अस्त होते समय वह कैसा था और आगामी पुच्छल तारे की चोट से बचने के लिए कितनी आशा की जा सकती है * * *। वे अपने जीवन का सबसे अधिक भाग आकाशीय पिंडों के देखने में लगाते हैं। इस काम को वे ऐसे दूरदर्शकों से करते हैं जो हमारे यंत्रों से कहीं अच्छे हैं, क्योंकि यद्यपि उनका बड़े-से-बड़ा दूरदर्शक ३ फ़ुट से बड़ा नहीं है, तो भी उनसे हमारे सौ फ़ुटवाले यंत्रों से कई गुना बड़ा और बहुत ही स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। इस बात के कारण उन्होंने हमारे यूरोपीय ज्योतिषियों से बहुत बढ़ कर आविष्कार किये हैं, क्योंकि उन्होंने दस हज़ार नक्षत्रों की सूची बना डाली है, परन्तु हमारी बड़ी-से-बड़ी सूचियों में इनके तिहाई तारे भी नहीं हैं। * * * इसी प्रकार उन्होंने दो छोटे छोटे तारे या उपग्रहों का आविष्कार किया है, जो मंगल की प्रदक्षिणा करते हैं। इनमें से भीतरवाला बड़े ग्रह के केन्द्र से ठीक उसके तीन व्यास की दूरी पर है और बाहरवाला पाँच व्यास की दूरी पर। पहला दस घंटे में एक चक्कर लगाता है और दूसरा साढ़े इक्कीस में।'

“ [प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक] वॉल्टेयर ने जो चर्चा मंगल के उपग्रहों की की है वह उसके माइक्रोमेगास, एक दार्शनिक इतिहास, (Micromegas, Histoire Philosophique) में है । माइक्रोमेगास मृगशिरा (Sirius साइरियस) नक्षत्र का रहनेवाला था । उसने एक पुस्तक लिखी थी, जिसमें एक शक्की मिजाज़ के



चित्र ४७०—मंगल के उपग्रह ।

भीतरी उपग्रह मंगल के ध्रुव-प्रदेशों से दिखलाई भी न पड़ेगा ।

बुड्ढे को नास्तिकता की बू आती थी । इसलिए वह अपने नक्षत्र को छोड़ हमारे सौर-परिवार में आ गया । वाल्टेयर लिखता है :—

“ ‘लेकिन अब अपने यात्री का हाल सुनिए । वह बृहस्पति से निकल आया और उसने लगभग दस करोड़ कोस का रास्ता तय

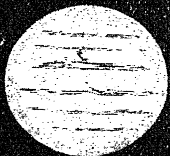
किया और वह मंगल ग्रह को छूता हुआ निकल गया; जो, जैसा सभी जानते हैं, हमारी छोटी सी पृथ्वी से पाँच गुना छोटा है; उसने उन दोनों चन्द्रमाओं की प्रदक्षिणा की जो इस ग्रह की नौकरी बजा लाते हैं और जो अभी तक हमारे ज्योतिषियों की निगाह से बच गये हैं। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि पादरी कैस्टल ने इन दोनों उपग्रहों के अस्तित्व के विरुद्ध अत्यन्त परिहास से लिखा है, परन्तु मैं उन लोगों का तरफ़दार हूँ जो सादृश्य के बूते पर परिणाम निकालते हैं। ये भले दार्शनिक कहते हैं कि मंगल के लिए, जो सूर्य से इतनी दूर पर है, यह कितना कठिन होगा कि वह बिना इन दोनों चन्द्रमाओं के काम चलावे।' "

११—मंगल के उपग्रह—नये उपग्रहों का नाम फ़ोबॉस (Phobos) और डाइमॉस (Deimos) रक्खा गया। फ़ोबॉस और डाइमॉस, अर्थात्, भय और विप्लव समर-देवता के दो कुत्ते थे। डाइमॉस का प्रदक्षिणा-काल क़रीब ३० घंटे का है, लेकिन फ़ोबॉस का प्रदक्षिणा-काल ८ घंटे से भी कम है। हमने देखा है कि मंगल का दिन-रात लगभग हमारे ही दिन-रात के बराबर है। इस प्रकार इस भीतरी नन्हें से उपग्रह का ८ ही घंटे का महीना मंगल के एक रात्रि से भी कम है। इसका विचित्र परिणाम यह होगा कि यह मंगल पर पश्चिम की ओर उगेगा और पूर्व की ओर डूबेगा और एक ही रात्रि में अमावस्या और पूर्णिमा दोनों हो जायगी। किसी किसी रात्रि में तो यह दो बार उगता होगा। परन्तु यह उपग्रह मंगल के इतना पास है कि यह ध्रुव-प्रदेशों से दिखलाई भी न पड़ेगा (चित्र ४७०)।

बाहरी उपग्रह कुछ कम विचित्र नहीं है। इसका प्रदक्षिणा-काल मंगल के भ्रमण-काल से थोड़ा ही अधिक है। इसलिए जैसे जैसे मंगल के घूमने के कारण कोई स्थान पश्चिम हटता जायगा उससे

थोड़े ही अधिक वेग से दूसरा ग्रह पूर्व से पश्चिम जायगा। परिणाम यह होगा कि डाइमॉस लगभग तीन दिन तक डूबेगा ही नहीं और इतनी देर में अमावस्या से पूर्णिमा और पूर्णिमा से अमावस्या दो बार हो जायगी।

परन्तु दोनों ग्रह छोटे हैं। पासवाला उपग्रह लगभग १० मील और दूरवाला केवल ५ मील व्यास का होगा। मंगल से ये वैसे ही जान पड़ेंगे जैसे शुक्र हमको प्रतीत होता है।



चित्र ४७१—छोटे दूरदर्शकों में भी बृहस्पति और इसके चार प्रधान ग्रह बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं।

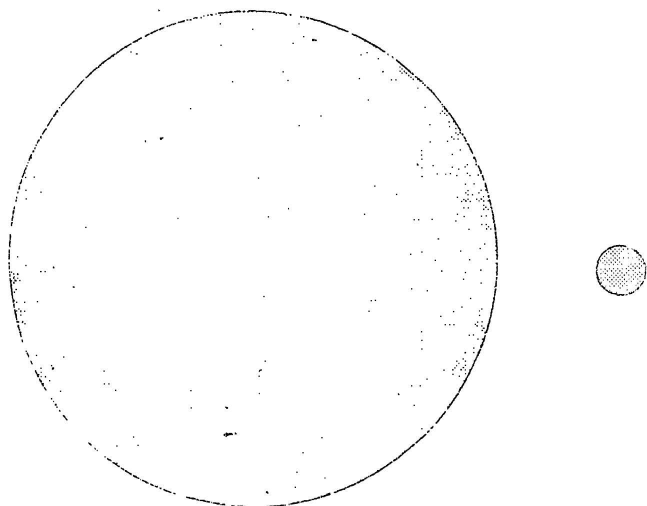
अध्याय १४

बृहस्पति और शनि

१—बृहस्पति—मंगल और अवान्तर ग्रहों के बाद बृहस्पति पड़ता है। सब ताराओं से चमकदार, ग्रहों में केवल शुक्र और कभी कभी मंगल से कम, यह बृहत्काय ग्रह सहज ही में पहचाना जा सकता है। शुक्र की तरह यह सदा सूर्य के पास ही नहीं रहता; हर तेरहवें महीने यह पूर्व दिशा में सन्ध्या-समय उदय होकर प्रातः-काल पश्चिम में डूबता है और इस प्रकार हमको रात भर दिखलाई पड़ता है। ज़रा सा पीले रंग के कारण, इसमें और रक्त वर्ण मंगल में भूल नहीं हो सकती। छोटे दूरदर्शकों में भी यह और इसके चार प्रधान उपग्रह बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं (चित्र ४७१)।

नाप में, और तौल में भी, यह सब ग्रहों से, उनको मिलाकर एक साथ रखने पर भी, बड़ा है, परन्तु इसकी घनता, सूर्य के समान, पानी से थोड़ी ही अधिक है। इसकी परिक्षेपण-शक्ति (alhedo) से, जो ४४/१०० के बराबर है, और अन्य प्रमाणों से भी, पता चलता है कि यह बादलों से ढका है। इसमें कलायें अवश्य बनती हैं, परन्तु पूर्णबिम्ब से कम ही अन्तर होने के कारण (पृष्ठ ४६९ देखिए) बिना नापे इसका पता नहीं चलता। कला और प्रकाश के बढ़ने के सम्बन्ध से पता चलता है कि बृहस्पति सपाट है, जिस बात का बोध उसके बादलों से ढके रहने से भी होता है। बृहस्पति के बिम्ब के किनारे केन्द्र से कम चमकदार हैं, जिससे भी वहाँ के वायु-मंडल का पता लगता है (पृष्ठ २५४ देखिए)। पहले लोग समझते थे कि बृहस्पति इतना गरम है कि यह केवल सूर्य के प्रकाश से ही नहीं

चमकता, अपने निजी प्रकाश से भी चमकता है, परन्तु यह बात सत्य नहीं है, क्योंकि बड़े से बड़े दूरदर्शक से देखने पर भी, जब इसका कोई उपग्रह इसके साये में चला जाता है और इस प्रकार उस उपग्रह का ग्रहण लग जाता है, तब वह उपग्रह अदृश्य ही रहता है। यदि बृहस्पति स्वयं भी प्रकाश दे सकता तो ग्रहण के समय उपग्रह

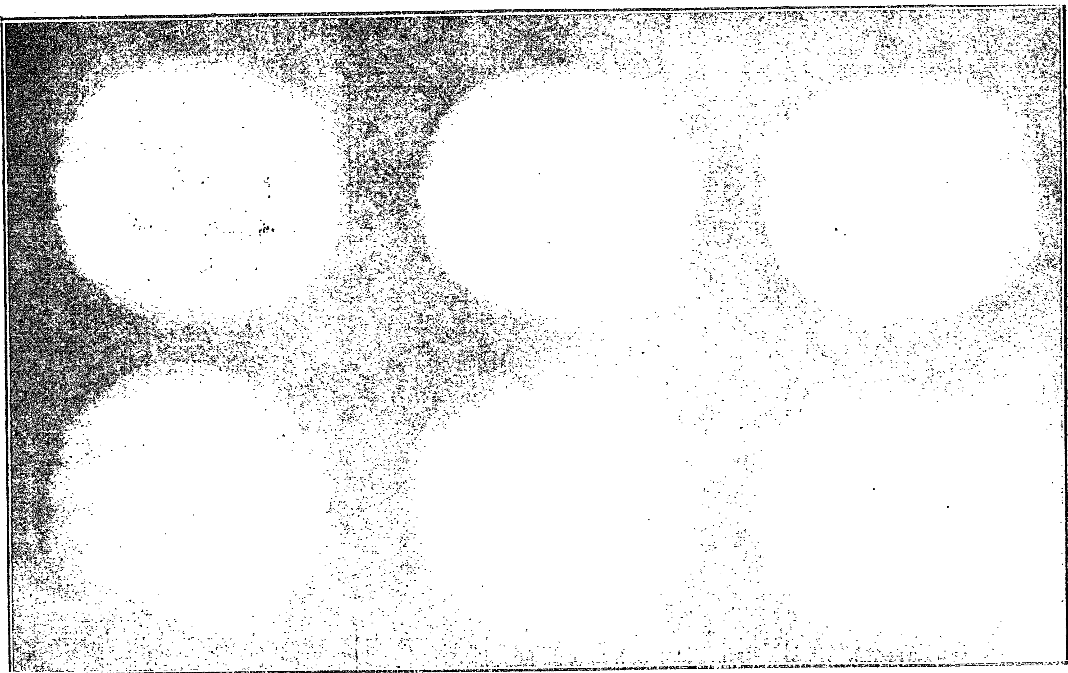


चित्र ४७२—बृहस्पति और पृथ्वी की नापों की तुलना।

पृथ्वी की अपेक्षा बृहस्पति बहुत बड़ा है।

अदृश्य न हो जाया करते, क्योंकि वे बृहस्पति के प्रकाश से चमकते रहते।

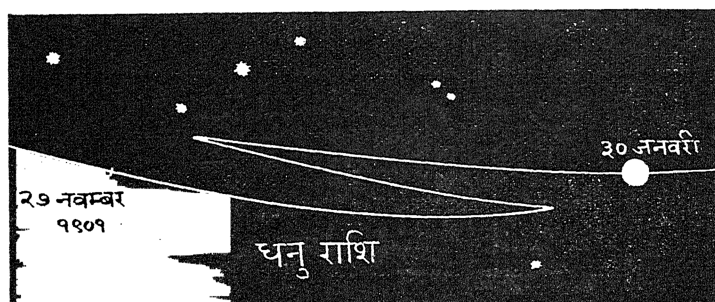
बृहस्पति सूर्य से इतना दूर है कि वहाँ पृथ्वी की अपेक्षा २५ में केवल एक भाग प्रकाश और गरमी पहुँचती होगी। वहाँ से सूर्य बहुत छोटा और विवर्ण दिखलाई पड़ता होगा।



[स्लिफ़र; लॉवेल वेधशाला

चित्र ४७३—बृहस्पति के कुछ फ़ोटोग्राफ़।

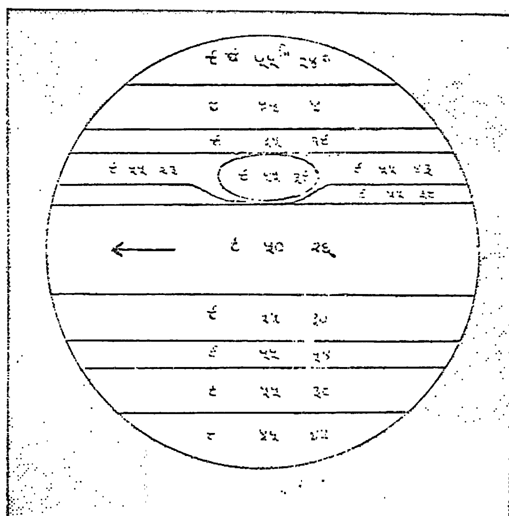
इतना स्थूल-काय होने पर भी बृहस्पति अपनी धुरी पर दस घंटे में ही एक बार घूम लेता है। पृथ्वी की मध्य रेखा पर स्थित देश एक मिनट में भ्रमण के कारण केवल १७ मील प्रति मिनट के वेग से चलते हैं, परन्तु बृहस्पति पर मध्य रेखा के देश ५०० मील प्रति मिनट के वेग से चलते हैं। इस तेज़ी से घूमने का परिणाम यह है कि बृहस्पति बहुत चिपटा हो गया है। इस बात का पता बृहस्पति को दूरदर्शक से देखते ही लग जाता है और इसके चित्रों से भी प्रत्यक्ष है। पृथ्वी अपने ध्रुवों पर केवल १२ मील ही दबी हुई है, परन्तु बृहस्पति अपने ध्रुव-प्रदेश पर २,००० मील दबा हुआ है।



चित्र ४७४—सन् १९०१ में तारात्रों के बीच बृहस्पति का मार्ग।

परन्तु बृहस्पति का भ्रमण-काल निश्चित रूप से मालूम नहीं है। इसका कारण इतना यह नहीं है कि इस पर कोई तीक्ष्ण चिह्न दिखलाई नहीं पड़ते, जितना यह कि सब चिह्न एक ही वेग से नहीं घूमते। बृहस्पति का मध्य भाग लगभग ९ घंटे ५० मिनट में एक भ्रमण करता है। अन्य भाग ९ घंटे ५५ मिनट से कुछ अधिक समय में करते हैं। परन्तु ये भाग भी ठीक ठीक एक ही समय में भ्रमण नहीं करते (चित्र ४७५)।

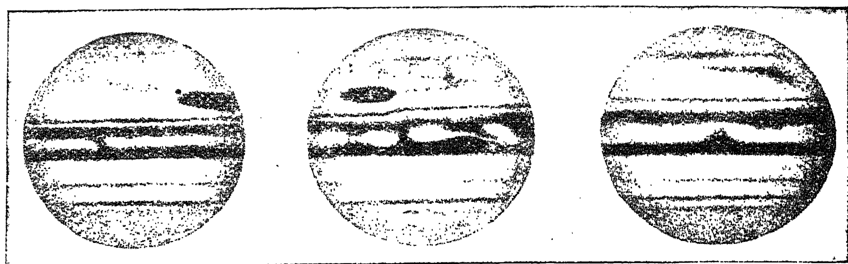
२—बृहस्पति की आकृति—छोटे से दूरदर्शक में भी बृहस्पति पर धारियाँ दिखलाई पड़ती हैं, परन्तु बड़े दूरदर्शकों में इसकी सतह पर अनेकों चिह्न दिखलाई पड़ते हैं। इसका रंग—अधिकांश लाल और भूरा—बड़ा सुन्दर जान पड़ता है। यहाँ पर दिये गये संसार के बड़े बड़े दूरदर्शकों की सहायता से प्रसिद्ध

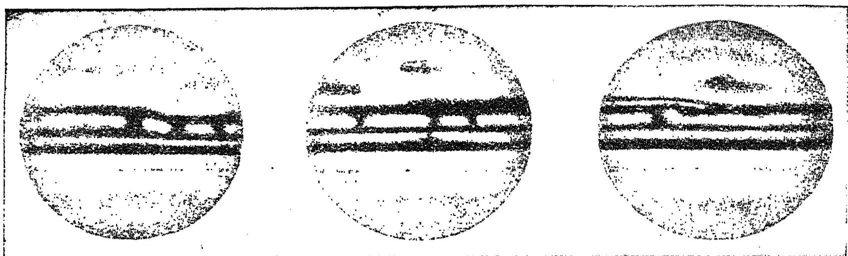


चित्र ४७५—बृहस्पति का अक्ष-भ्रमण।

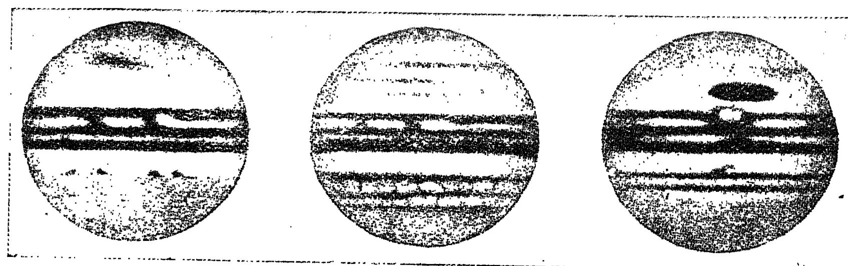
मध्य कटि-बंध सबसे तेज़ घूमता है। अन्य भाग प्रति-चक्कर लगभग ५ मिनट पिछड़ जाते हैं।

ज्योतिषियों के खिंचे चित्र और फ़ोटोग्राफ़ों से इसकी आकृति का अच्छा पता चल जायगा। बृहस्पति की धारियाँ स्थायी नहीं हैं। उनके रूप, स्थिति, चौड़ाई, गति सभी में कुछ न कुछ अन्तर बराबर पड़ा करता है जैसा चित्र ४७६ से स्पष्ट पता चलता है।







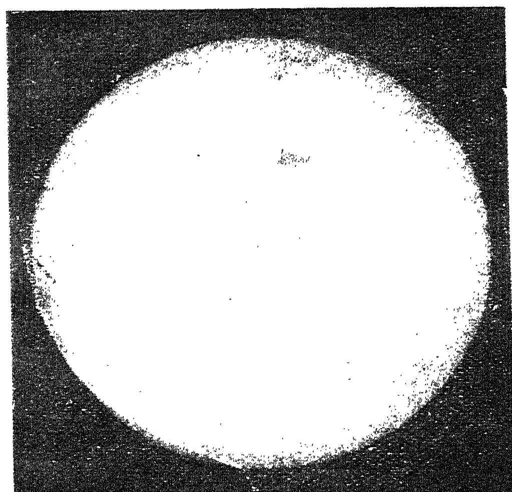


[न्यूकॉम्ब-एंगलमान की ऐस्ट्रॉनोमी से

चित्र ४७६—भिन्न भिन्न वर्षों में बृहस्पति की आकृति ।

इनसे धारियों के बदलने का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है (१८७८ से १८८१) ।

बृहस्पति के अधिकांश चिह्न अस्थायी हैं। सप्ताह दो सप्ताह तक दिखलाई पड़ते हैं और वे बादल जान पड़ते हैं, परन्तु उस पर कुछ ऐसे चिह्न भी हैं जो प्राय: चिरस्थाई हैं। इनमें से एक जो कम-से-कम ७५ वर्ष से दिखलाई पड़ रहा है "बृहद्-रक्त-चिह्न" (the great red spot) कहलाता है (चित्र ४७७, और रङ्गीन चित्र)।



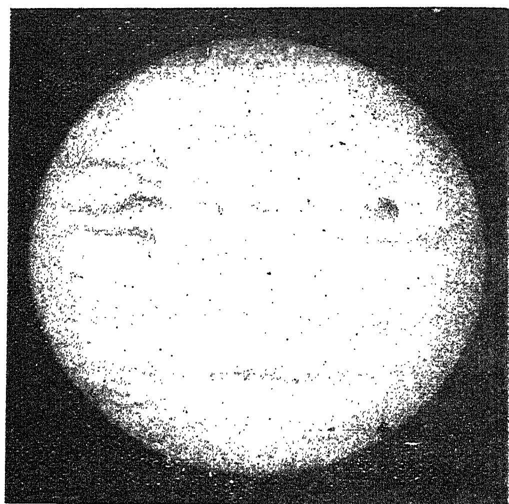
[एन्टोनिआडी

चित्र ४७७—बृहस्पति।

बृहद्-रक्त-चिह्न स्पष्ट दिखलाई पड़ रहा है।

बृहस्पति के दक्षिण (चित्रों में ऊपरी) भाग में यह चिह्न कई वर्षों से बहुत स्पष्ट दिखलाई पड़ता रहा परन्तु अब वह इतना स्पष्ट नहीं है। यह ३०,००० मील लम्बा और ७,००० मील चौड़ा, पृथ्वी से देखने से खीरे के आकार और ईंट के रङ्ग का दिखलाई पड़ता था, धीरे धीरे इसका रङ्ग फीका पड़ गया, परन्तु इसका स्थान अब भी

गड्ढे के समान दिखलाई पड़ता है। १८७८ में यह पहले पहल देखा गया था। यह लाल चिह्न भी बराबर एक वेग से नहीं घूमता रहा। अपने मध्य वेग से चलने पर यह जहाँ रहता उससे २०,००० मील कभी आगे, कभी पीछे हो जाया करता था। यह अन्य चिह्नों की अपेक्षा ऊँचा है या नीचा इस पर वर्षों के तर्क-वितर्क के बाद एक ज्योतिषी ने इसके जानने की नई रीति बतलाई। एक काला



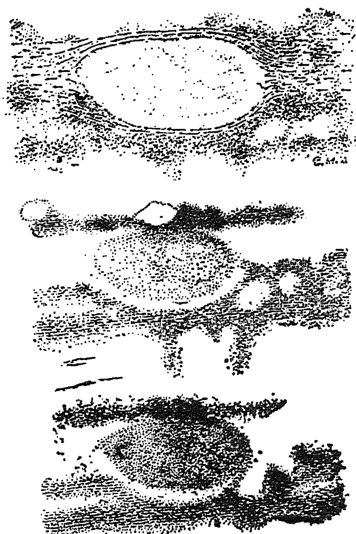
[ऐन्टोनिआडी

चित्र ४७८—बृहस्पति ।

बृहद्-रक्त-चिह्न बाईं ओर है।

चिह्न बृहद् लाल चिह्न के पीछे पीछे, परन्तु इससे कुछ अधिक वेग से चल रहा था। उस ज्योतिषी ने कहा कि देखना चाहिए कि काला चिह्न लाल के ऊपर से या नीचे से निकलेगा। यदि यह ऊपर से चला जाय तो समझना चाहिए कि लाल चिह्न कम ऊँचा है

और यदि यह नीचे से चला जाय तो लाल चिह्न अधिक ऊँचा होगा। परन्तु जब समय आया तब काला चिह्न लाल की बगल से निकल गया और यही बात अन्य अवसरों पर भी देखी गई है। लाल चिह्न के ज़रा सा दक्षिण एक साँवला प्रदेश है जो सन् १९०१ से अब तक है। यह लाल चिह्न से शीघ्रगामी है और जब कभी यह लाल चिह्न तक पहुँचता है तो यह उसकी बगल से निकल जाता है (चित्र ४७९)। इसकी गति लाल चिह्न की अपेक्षा १६ मील प्रतिघंटा अधिक है। इन अवसरों पर लाल चिह्न कई हज़ार मील आगे घसीट जाता है परन्तु फिर यह पीछे लौट आता है। स्पष्ट है कि ये चिह्न ठोस वस्तु पर नहीं हैं, केवल वायुमंडल में उड़ रहे हैं।

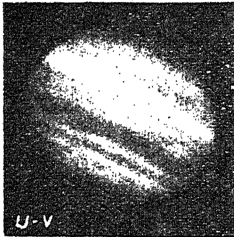


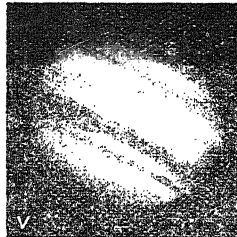
[ऐन्टोनिआडी

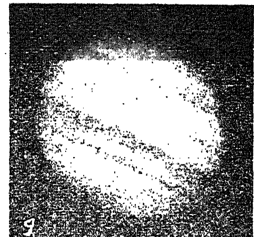
चित्र ४७९—काले दाग़ लाल चिह्न की बगल से निकल जाते हैं।

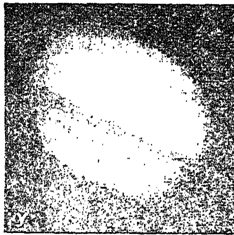
ताप-क्रम इत्यादि से, आकृति से और चिह्नों के स्थायी न होने से यह निश्चय है कि हमें बृहस्पति के वायुमंडल के बादल ही दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु इन बादलों के नीचे क्या है, इसका हमको अभी तक पता नहीं है। पहले समझा जाता था कि बृहस्पति अवश्य बहुत गरम होगा, और इसका अधिकांश गैस होगा, तभी तो इसका घनत्व सूर्य से भी कम है और इसमें लगातार उथल-पुथल हुआ करता है। दूसरा कारण ऐसा ख्याल करने का यह भी था कि

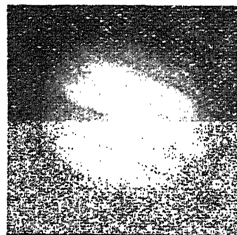
बृहस्पति अत्यन्त बड़ा है। इसलिए अभी वह पृथ्वी के बराबर ठंढा न हुआ होगा, जैसे मंगल से बड़ा होने के कारण पृथ्वी अभी मंगल के समान ठंढी नहीं हुई है। लॉवेल (Lowell) * का कहना था कि

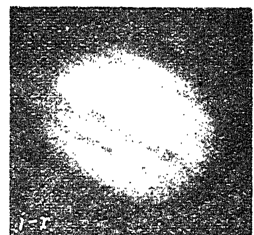












[राइट; लिक बेधशाला

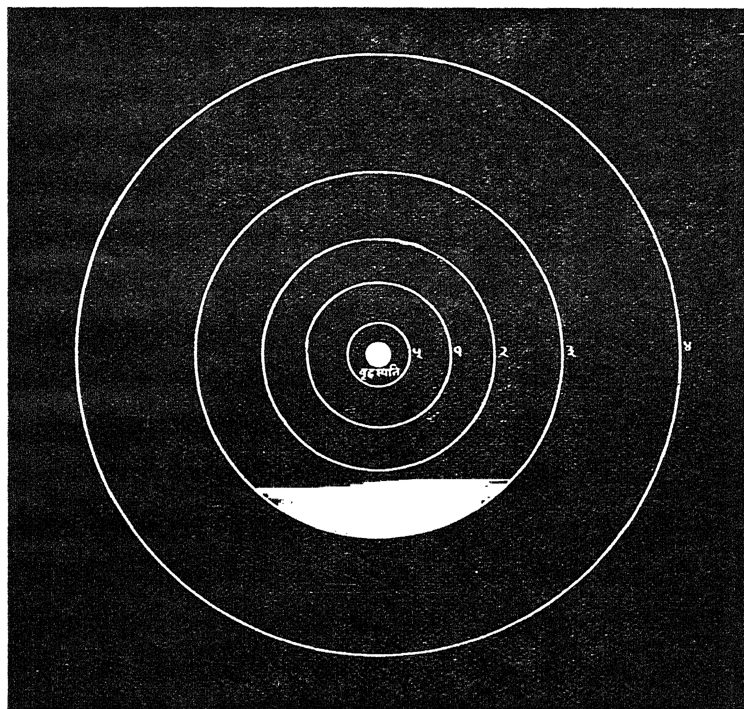
चित्र ४८०—बृहस्पति के भिन्न भिन्न रंगों के प्रकाश से लिये फ़ोटोग्राफ़।

ये क्रम से परा-कासनी, बैंगनी, नीला, पीला, लाल, उपरक्त रंग के प्रकाश-छननों द्वारा लिये गये हैं। चित्र ४२९ और ४३० से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि धारियाँ वायुमंडल के नीचे से नहीं दिखलाई पड़तीं; वे वायुमंडल पर ही हैं।

"बृहस्पति ठोस नहीं है, परन्तु यह उफनते हुए भारी वाष्पों का खौलता हुआ कड़ाहा है।" परन्तु अब ऐसा जान पड़ता है कि बृहस्पति बहुत ठंढा है। उसका ताप-क्रम नापा गया है। कम से

* Lowell: Evolution of worlds.

कम, बाहरी वाष्पों का ताप-क्रम बहुत कम है, जिससे अब समझा जाता है कि जो बादल हमको दिखलाई पड़ते हैं वे पानीवाले बादल न होंगे। पाठक जानते होंगे कि कारबन-द्विओषिद (carbon dioxide) गैस, जो हमारे साँस के साथ बाहर निकलता है और लकड़ी जलने

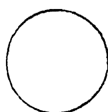


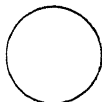
चित्र ४८१—बृहस्पति के कुछ उपग्रहों की सापेक्षिक दूरियाँ।

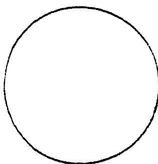
पर बनता है, काफ़ी ठंढा होने पर जम जाता है। हो सकता है, बृहस्पति के बादल इसी पदार्थ के हों; या किसी ऐसे पदार्थ के हों, जिन्हें हम पृथ्वी पर गैस के रूप में देखते हैं, परन्तु जो बहुत ठंढक पाकर जम जाते हैं, या तरल पदार्थ बन जाते हैं, और जो बहुत

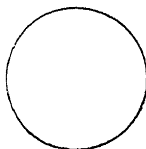
कम ताप-क्रम पर हो खूब ज़ोर से खौलते हैं। डाक्टर जेफ़रीज़ (Jeffuies) का कहना है कि हो सकता है बृहस्पति में पत्थर का भीतरी भाग हो, ऊपर से गहरी तह बर्फ़ की हो और तब उसके ऊपर विस्तृत वायु-मंडल हो। इस प्रकार बृहस्पति का कम तापक्रम और कम घनत्व दोनों बातें समझ में आ जाती हैं।

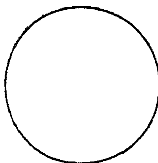
३—बृहस्पति के उपग्रह—हमारे कविगण एक ही चन्द्रमा पर इतने मुग्ध हो गये हैं; बृहस्पति पर उनकी क्या गति होगी जहाँ ६ चन्द्रमा हैं ? इनमें से चार हमारे चन्द्रमा के बराबर या उससे भी बड़े हैं (चित्र ४८२)। कभी दो, कभी चार, कभी और भी अधिक चन्द्र जब वहाँ आकाश में उदय होते होंगे और उनमें से कोई धनुषाकार, कोई अर्ध और कोई पूर्ण दिखलाई पड़ता होगा तो वहाँ की शोभा अपूर्व होती होगी।

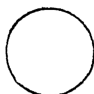


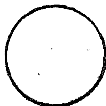


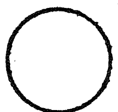






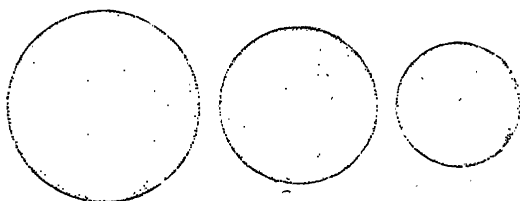






चित्र ४८२—बृहस्पति के चार उपग्रहों और कुछ अन्य उपग्रहों की चन्द्रमा से तुलना।

चित्र ४८१ में बृहस्पति के कुछ उपग्रहों की सापेक्षिक दूरी दिखलाई गई है। इनमें से चार (नम्बर १, २, ३, ४) बड़े उपग्रहों का आविष्कार गैलीलियो ने अपने नये दूरदर्शक से किया था। इनकी गति से उसने तुरन्त निश्चय किया कि जिस प्रकार चन्द्रमा पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है उसी प्रकार ये उपग्रह भी बृहस्पति की प्रदक्षिणा करते हैं; परन्तु यह सौर-परिवार के नये सदस्यों के आविष्कार का पहला अवसर था। उस समय लोगों को विश्वास



चित्र ४८३—एक चक्कर के भिन्न भिन्न स्थानों पर बृहस्पति का सापेक्षिक आकार।

मंगल की तरह बृहस्पति भी कभी बड़ा, कभी छोटा दिखलाई पड़ता है, परन्तु अन्तर उतना अधिक नहीं पड़ता (चित्र ४४५ पृष्ठ ५२६ से तुलना कीजिए)।

ही नहीं होता था कि यह सम्भव है कि सौर-परिवार में नये कुटुम्बी भी हों। दार्शनिकों ने "सिद्ध" कर दिया था कि इसमें ठीक उतने ही सदस्यों को होना चाहिए जितने देखे गये थे। इनमें से प्रसिद्ध ज्योतिषी केपलर भी एक था। हम पहले देख चुके हैं कि उस पर इस नये आविष्कार का क्या प्रभाव पड़ा। एक दूसरे ज्योतिषी—क्लेवियस ने गैलीलियो की हँसी उड़ाते कहा कि बृहस्पति के उपग्रहों को देखने के लिए ऐसा दूरदर्शक चाहिए जो उनको उत्पन्न कर सके;

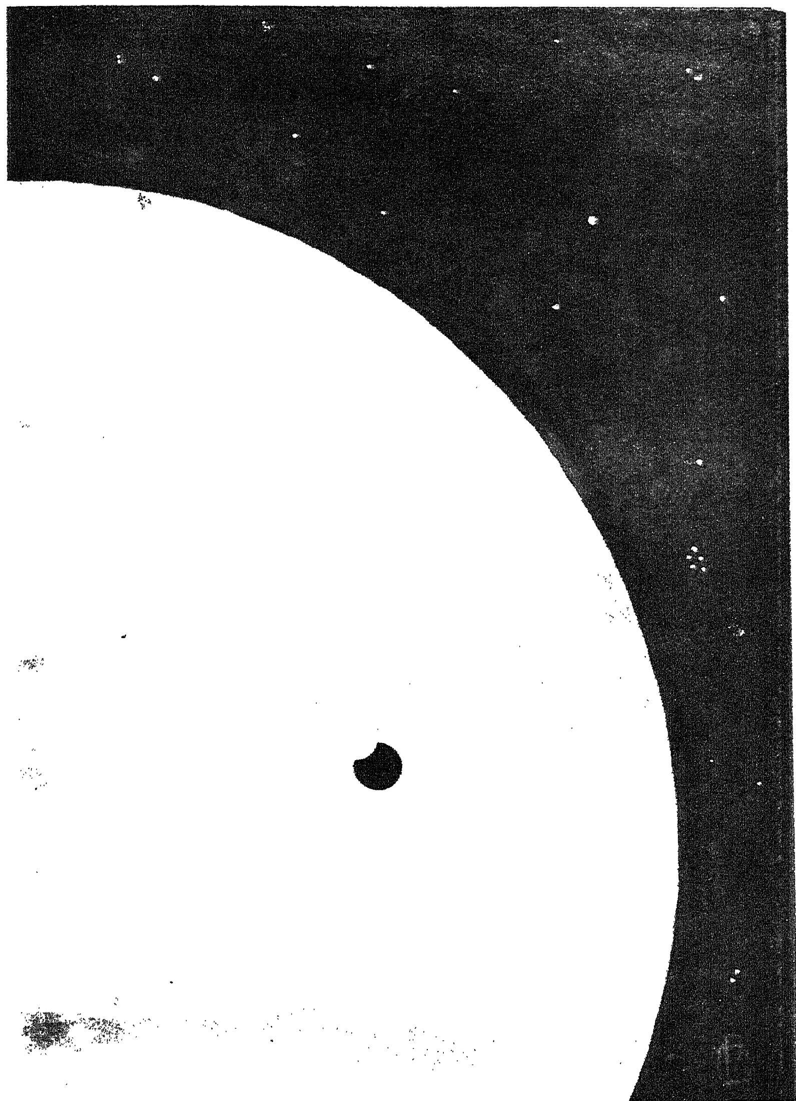
परन्तु, गैलीलियो के निमंत्रण पर दूरदर्शक से इनकी जाँच करने पर, उसे इतमीनान हो गया कि वस्तुतः ये उपग्रह हैं। एक दूसरा दार्शनिक इससे अधिक चतुर था। इस डर से कि कहीं उसकी भी मति भ्रष्ट न हो जाय उसने दूरदर्शक में आँख लगाना ही अस्वीकार कर दिया। थोड़े ही काल बाद उसकी मृत्यु हो गई। "मैं आशा करता हूँ" तीखे गैलीलियो ने कहा कि "स्वर्ग जाते समय रास्ते में उसने उनको देखा होगा।"*

बहुत वर्षों के बाद एक नये उपग्रह का आविष्कार बारनार्ड (Barnard) ने किया। यह इतना छोटा—केवल लगभग १०० मील व्यास का—और बृहस्पति के यह इतना समीप है कि बड़े से बड़े दूरदर्शकों से भी अत्यन्त कठिनाई से दिखलाई पड़ता है। शेष चारों उपग्रह बृहस्पति से दूर और अत्यन्त छोटे हैं। उनका पता केवल फ़ोटोग्राफ़ी ही से लग सका है, क्योंकि प्रकाश-दर्शन अधिक देने से उनके क्षीण प्रकाश का प्रभाव एकत्रित होते होते काफ़ी हो जाता है। इन उपग्रहों का पता इतनी कठिनाई से लगा है कि यह सम्भव है कि बृहस्पति के अन्य ग्रह भी हों जिनका पता लगाना और भी कठिन हो और जिनका पता शायद भविष्य में लगे।

बृहस्पति के एक दो उपग्रह कोरी आँख से भी देखे गये हैं, परन्तु इसके लिए तेज़ आँख चाहिए। यदि बृहस्पति इतना चमकीला न होता तो ये उपग्रह सुगमता से देखे जा सकते, क्योंकि वे काफ़ी बड़े और चमकीले हैं, परन्तु वे बृहस्पति के प्रकाश में छिप जाते हैं और साधारणतः नहीं दिखलाई पड़ते। लोगों का ख़्याल है कि जब तीसरे और चौथे उपग्रह बृहस्पति से दूर और प्रायः एक ही

---

* Newcomb: Popular Astronomy (1878), p. 336.



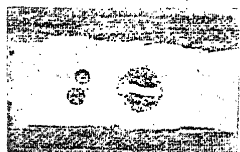
बृहस्पति

इस ग्रह में कई एक धारियाँ दिखलाई पड़ती हैं। एक अंडाकार लाल चिह्न भी दिखलाई पड़ता है। सफ़ेद गोल पिण्ड इसका एक उपग्रह है और काला धब्बा इस उपग्रह की परछाईं है।

पृ० ५८२

साथ रहते हैं उन्हीं अवसरों पर ये दोनों मिलकर एक उपग्रह के समान दिखलाई पड़ते हैं।

बृहस्पति के चार प्रधान उपग्रह व्यास में दो से सवा तीन हज़ार मील के हैं और इस प्रकार उनमें से सबसे बड़ा चन्द्रमा का ड्योढ़ा है। इनमें से तीन पानी की अपेक्षा तिगुना या दुगुना भारी हैं, परन्तु चौथा, जो बृहस्पति से सबसे दूर पर है, पानी से बहुत हलका है। इसका घनत्व कुल ०.६ है। घनत्व से, परिक्षेपण-शक्ति से, और कला और प्रकाश-वृद्धि के सम्बन्ध से पता चलता है कि इन उपग्रहों की सतह हमारे चन्द्रमा के समान ही ऊँची-नीची है। चौथे का इतना कम घनत्व है कि शायद उसमें भी बहुत सा जमा हुआ कारबन-द्विओषिद होगा।



[बारनार्ड

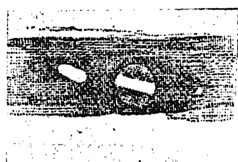
चित्र ४८४—बृहस्पति का प्रथम उपग्रह कभी कभी दो विन्दु सा क्यों जान पड़ता है।

दाहिनी ओर असली हालत और बाईं ओर यही हमें दूर से कैसा दिखलाई पड़ता है यह दिखलाया गया है।

इन उपग्रहों में से बाज़ की चमक बृहस्पति से अधिक और बाज़ की कम है। इसलिए जब ये अपनी प्रदक्षिणा में उसके सामने आ जाते हैं तो अपनी चमक के अनुसार चमकीले या काले दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु इनमें से जो बृहस्पति के सबसे अधिक निकट है वह कभी कभी विचित्र आकार का, लम्बा या दो काले विन्दु सा दिखलाई पड़ता है। इसका अर्थ बारनार्ड ने यह लगाया कि इस उपग्रह के ध्रुव-प्रदेश साँवले हैं और मध्य भाग हलके रङ्ग का है। जब यह उपग्रह बृहस्पति के श्वेत भाग के सामने पड़ता है (चित्र ४८४) तब यह दो विन्दु सा दिखलाई पड़ता है। जब यह साँवले भाग के सामने पड़ता है तब लम्बा सा जान पड़ता है (चित्र ४८५)। इसका कारण यहाँ दिये गये चित्रों को दूर से देखने पर स्पष्ट हो जायगा।

जहाँ तक पता चलता है, हमारे चन्द्रमा की तरह ये उपग्रह भी अपना एक ही मुख अपने प्रधान ग्रह की ओर किये रहते हैं।

४—उपग्रहों का ग्रहण—सूर्य, पृथ्वी और बृहस्पति जब एक ही सीध में नहीं रहते, उस समय बृहस्पति की छाया में उपग्रहों का जाना या इस छाया में से उनका निकलना और कभी कभी दोनों हमको दिखलाई पड़ता है (चित्र ४८६)। ज्यों ही कोई उपग्रह बृहस्पति की साया में घुसता है, त्यों ही उस पर ग्रहण लग जाता है। छाया से निकलने पर उपग्रह होता है।



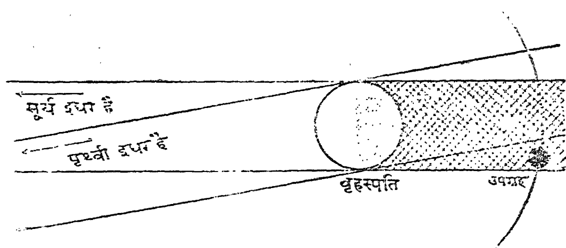
[बारनार्ड

चित्र ४८५— बृहस्पति का प्रथम उपग्रह कभी कभी लम्बा सा क्यों जान पड़ता है।

दाहिनी ओर असली हालत; बाईं ओर, यही हमें दूर से कैसा दिखलाई पड़ता है।

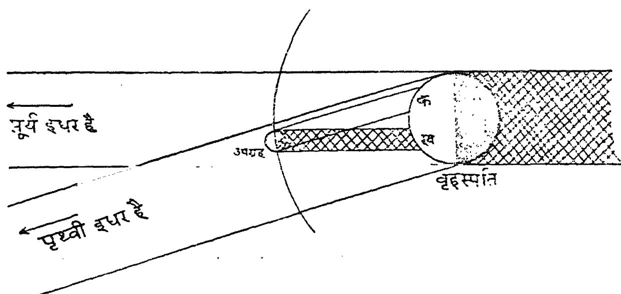
इन ग्रहणों के सिवाय, हम देखते हैं कि जब उपग्रह सूर्य और बृहस्पति के बीच में आ जाता है तब उपग्रह की छाया बृहस्पति पर पड़ती है (चित्र ४८७) उपग्रह का दिखलाई पड़ना कुछ कठिन भी है क्योंकि ग्रह और उपग्रहों के रंग या चमक में अन्तर कम है, परन्तु इनकी परछाईं स्पष्ट दिखलाई पड़ती है (रङ्गीन चित्र देखिए)। जैसे जैसे उपग्रह अपने ग्रह की प्रदक्षिणा करने में आगे बढ़ता है तैसे तैसे परछाईं भी आगे बढ़ती है और यह पृथ्वी की स्थिति के अनुसार कभी आगे और कभी पीछे दिखलाई पड़ती है। छोटे से दूरदर्शक में भी उपग्रहों के ग्रहण और उनकी परछाइयाँ अच्छी तरह देखी जा सकती हैं और ये दृश्य बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं। इनके अतिरिक्त उपग्रहों का बृहस्पति की आड़ में छिप जाना या उसके बिम्ब पर चढ़ आना देखा जा सकता है। ग्रहण, इत्यादि, सब घटनाओं का समय नाविक पंचांग (Nautical Almanac) में,

जो प्रत्येक वर्ष के लिए ३ वर्ष पहले ही से छप जाता है, दिया रहता है।



चित्र ४८६—जब सूर्य, पृथ्वी और बृहस्पति एक ही सीध में नहीं रहते उस समय हम उपग्रहों का ग्रहण देख सकते हैं।

एडिनबरा (स्कॉटलैंड) की राजवेधशाला (Royal Observatory) के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर सैम्पसन ने इन उपग्रहों के हज़ारों ग्रहणों का सूक्ष्म अध्ययन किया है। ग्रहण-काल के घटने बढ़ने से उनको

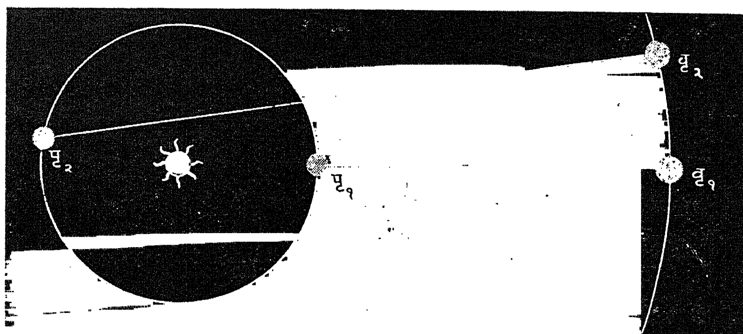


चित्र ४८७—उपग्रह की छाया किस प्रकार बृहस्पति पर पड़ती है।

पृथ्वी से "क" पर उपग्रह दिखलाई पड़ता है और "ख" पर छाया।

पता चला है कि बृहस्पति का आकार स्थायी नहीं है। यह अपने मध्यम आकार से कभी १०० मील तक छोटा, कभी बड़ा होजाता है।

५—प्रकाश का वेग—बृहस्पति के उपग्रहों के ग्रहणों से रेमर (Römer) ने प्रकाश के वेग का बड़ी सुन्दर रीति से आविष्कार किया। रेमर डेनमार्कनिवासी था और विलक्षण प्रखर बुद्धि का था। उसने प्रकाश के वेग के अतिरिक्त यामोत्तर यंत्र, यामोत्तर चक्र, और पूर्वापर वृत्त यंत्र का आविष्कार किया, जिनमें से प्रथम



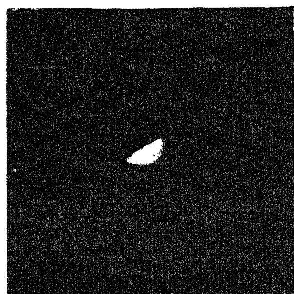
चित्र ४८८—प्रकाश का वेग बृहस्पति के उपग्रहों से कैसे जाना गया।

पृ१ वृ१ की अपेक्षा पृ२ वृ२ में चलने से प्रकाश को लगभग १६ मिनट अधिक समय लगता है, इसी से प्रकाश का वेग मालूम हो जाता है।

दो के बिना गोलीय-ज्योतिष जौ भर भी आगे न बढ़ सकता। वस्तुत: ठीक कहा गया है कि रेमर अपने ज़माने के १०० वर्ष आगे था। उसने ज्ञात किया कि प्रकाश एक स्थान से दूसरे स्थान तक तत्क्षण नहीं पहुँच जाता; इस क्रिया में समय लगता है, यद्यपि प्रकाश का वेग बहुत अधिक है और एक ही सेकंड में यह १,८६,००० मील से कुछ अधिक चलता है।

चित्र ४८८ में सूर्य, पृथ्वी और बृहस्पति दिखलाये गये हैं। जब पृथ्वी $पृ_1$ पर और बृहस्पति $बृ_1$ पर रहता है तब इन दोनों में सबसे कम दूरी रहती है। इस स्थिति में जब प्रथम उपग्रह का ग्रहण लगता है तो मान लीजिए कि ३ बजा है। अब ध्यान दीजिए कि यह उपग्रह ४२ घंटे २८ मिनट में बृहस्पति की एक प्रदक्षिणा





[यरकिज़ बेधशाला

चित्र ४८९ और ४९०—कभी कभी बृहस्पति चन्द्रमा के पीछे छिप जाता है।

ये चित्र १२ अगस्त १८९२ के हैं। पहले चित्र में बृहस्पति छिप रहा है, दूसरे में यह चन्द्रमा के अप्रकाशित भाग के पीछे से निकल रहा है! इन चित्रों से स्पष्ट है कि चन्द्रमा पर वायु-मंडल नहीं है।

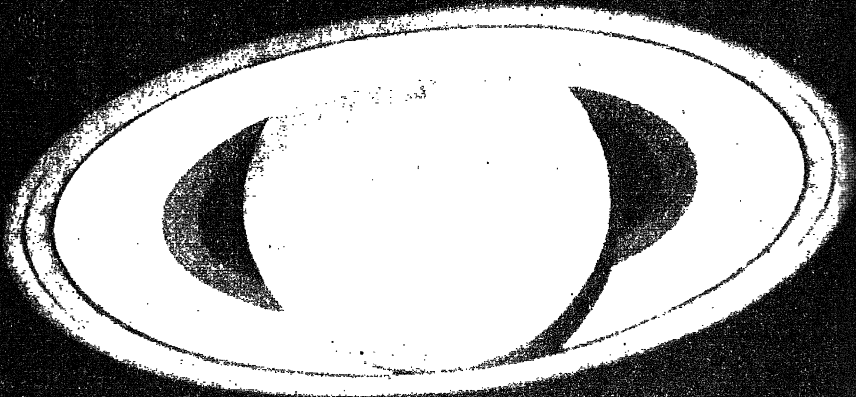
करता है। इसलिए इतने ही समय बीतने पर दूसरा ग्रहण लगेगा। इसके दुगुने समय बीतने पर तीसरा ग्रहण लगेगा, इत्यादि। इसके सौगुने समय बीतने पर एक ग्रहण फिर लगेगा, परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि उस क्षण ग्रहण नहीं लगता है जो इस प्रकार गणना से आता है; ग्रहण लगता है कोई १६ मिनट बाद। इसका क्या

कारण है ? सोचते सोचते रेमर ने सोचा कि १०० वें ग्रहण की पारी आने तक पृथ्वी $पृ_2$ पर पहुँच जाती है, बृहस्पति $वृ_2$ तक हो पहुँच पाता है ; इसलिए पृथ्वी और बृहस्पति के बीच की दूरी बढ़ जाती है। इस अधिक दूरी के चलने में प्रकाश को अवश्य अधिक समय लगता है। इसी से यह पिछड़ जाता है। इस प्रकार रेमर ने सिद्ध कर दिया कि पृथ्वी-कक्षा के व्यास को तय करने में प्रकाश को लगभग १६ मिनट लगता है। इससे प्रकाश का वेग मालूम हो सकता है; परन्तु इस अनोखी बात को उस समय के अन्य वैज्ञानिक मानने के लिए तैयार नहीं थे। इसके ५० से भी अधिक वर्ष बाद, बेचारे रेमर की मृत्यु हो जाने के बहुत पीछे, उसके आविष्कार की महत्ता लोगों ने देखी।

६—**उपग्रहों की कक्षा**—बृहस्पति के दो आख़िरी उपग्रहों में यह विशेषता है कि वे उलटी दिशा में चलते हैं। ध्रुव तारा से देखने पर सब ग्रह और बृहस्पति के शेष सातों उपग्रह घड़ी की सुइयों के विपरीत दिशा में घूमते दिखलाई पड़ेंगे, परन्तु अंतिम दोनों उपग्रह घड़ी की सुई के अनुसार घूमते दिखलाई पड़ेंगे।

बृहस्पति से छठे और सातवें उपग्रहों की मध्यम दूरी प्राय: एक ही है, परन्तु इनकी कक्षायें विपरीत दिशाओं में बढ़ी हुई हैं ; उनका तिरछापन भी विपरीत दिशाओं में है। कक्षायें एक दूसरे को कहीं भी नहीं छूतीं, बल्कि सिकड़ की कड़ियों की तरह एक दूसरे के भीतर फँसी हैं। इसलिए इन उपग्रहों के टक्कर खा जाने का कोई भी भय नहीं है।

नवाँ उपग्रह बहुत छोटा है और बृहस्पति से बहुत दूर भी है। एक अत्यन्त रोचक प्रश्न यह उठता है कि क्या यह कोई अवान्तर ग्रह है जो बृहस्पति के आकर्षण में फँस कर इसी का चक्कर लगाने



[ऐन्टोनिआडी

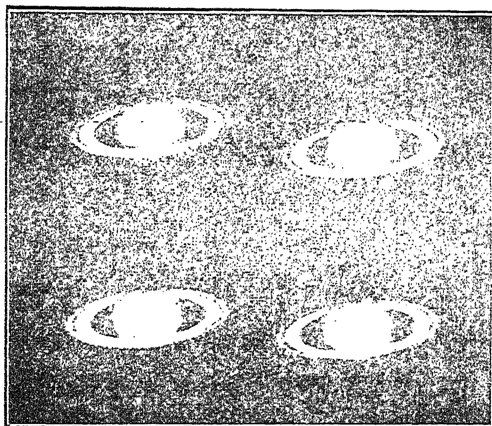
चित्र ४६१—शनि ।

लगा ? और क्या यह सम्भव है कि भविष्य में यह फिर बृहस्पति को छोड़ कर चल दे ? इन प्रश्नों का उत्तर केवल गणित से मिल सकता है, परन्तु ठीक ठीक हिसाब लगाना अत्यन्त कठिन है। मोटे हिसाब से यही पता चलता है कि इस बात का कोई डर नहीं है और यह उपग्रह हमेशा ही बृहस्पति के साथ रहा होगा।

७—**शनि**—सूर्य से चलने पर बृहस्पति के बाद, और लगभग इससे दुगुनी दूरी पर, शनि पड़ता है। प्राचीन काल के ज्योतिषियों को जितने ग्रह ज्ञात थे उनमें अन्तिम यही था। इसका वेग अन्य जाने हुए ग्रहों से कम होने के कारण—एक चक्कर यह २९½ वर्ष में लगाता है—इसका नाम शनैश्चर, धीरे धीरे चलनेवाला, पड़ा। प्रथम श्रेणी के चमकदार तारों की तरह, परन्तु कुछ मैले पीले प्रकाश से, यह ग्रह चमकता है। अन्य तारों के बीच में ख़ूब चमचमाते हुए शुक्र, अंगारे के समान मंगल या सब तारों से अधिक प्रकाशवान् बृहस्पति की तरह इसको पहचान लेना बिलकुल सरल नहीं है, परन्तु किसी पंचांग से इसकी स्थिति जान लेने पर इसकी पहचान सुगमता से की जा सकती है। कोरी आँख से देखने पर इस ग्रह में कोई विशेषता नहीं पाई जाती, परन्तु दूरदर्शक से देखने योग्य वस्तुओं में यह अत्यन्त मनोहर है। जब इसके वलय चौड़े दिखलाई पड़ते हैं उस समय निःसन्देह यह सबसे अधिक सुन्दर ग्रह जान पड़ता है। बीच में कुछ चपटा-सा गोला और इसको चारों ओर से कमरबन्द की तरह घेरे हुए, धारीदार, चौड़ा, परन्तु पतला, वलय (ring) दिखलाई पड़ता है (चित्र ४९१) जो एक दम अनोखा है। ऐसा वलय किसी अन्य आकाशीय पिंड के साथ नहीं देखा गया है।

अपने परिणाम के हिसाब से शनि सब ग्रहों से अधिक चिपटा है। इसके प्रत्येक ध्रुव ४,००० मील दबे हुए हैं। तिस पर भी

यह इतना चिपटा नहीं है जितना इसको होना चाहिए था, यदि यह भीतर से बाहर तक एक ही घनत्व का होता। इससे सिद्ध होता है कि शनि भीतर अधिक घना है, बाहर कम। परन्तु जैसा पहले बतलाया जा चुका है, शनि पानी से हलका है। इसका घनत्व पानी के हिसाब से केवल लगभग $\frac{7}{10}$ है। इसलिए शनि



[बारनार्ड

चित्र ४१२—शनि के चार फ़ोटोग्राफ़।

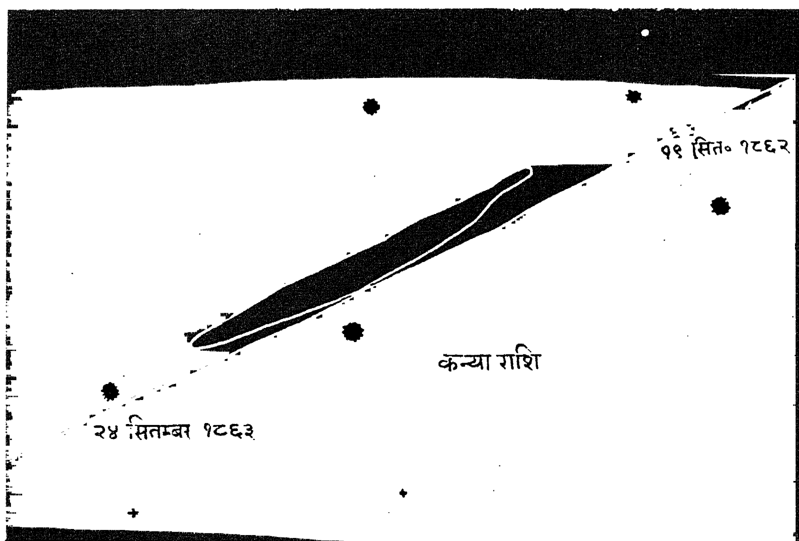
इन सुन्दर फ़ोटोग्राफ़ों को बारनार्ड ने माउन्ट विल-सन के ६० इंचवाले दूरदर्शक से खींचा था।
(प्रकाशदर्शन लगभग दस सेकंड)

का अधिकांश अत्यन्त हलका होगा। अब भी कुछ ठीक पता नहीं चलता कि शनि कैसे इतना हलका है।

हेपबर्न ने बतलाया है कि यदि हम पृथ्वी और शनि का मुक़ा-बला करें तो हमें एक विचित्र सम्बन्ध मिलता है जो अवश्य संयोग-

वश घटित होता है, परन्तु स्मरण रखने के लिए अच्छा है। मोटे हिसाब से सूर्य से शनि की दूरी पृथ्वी की दूरी का साढ़े नौ गुना है। उसका मध्यम व्यास पृथ्वी के व्यास के साढ़े नौ गुने से ज़रा सा कम है और उसकी तौल पृथ्वी की तौल के दस गुने का साढ़े नौ गुना है।

शनि अपनी धुरी पर कितने समय में घूमता है—उसका परि-भ्रमण-काल क्या है—यह जानना कठिन काम है, क्योंकि इसके

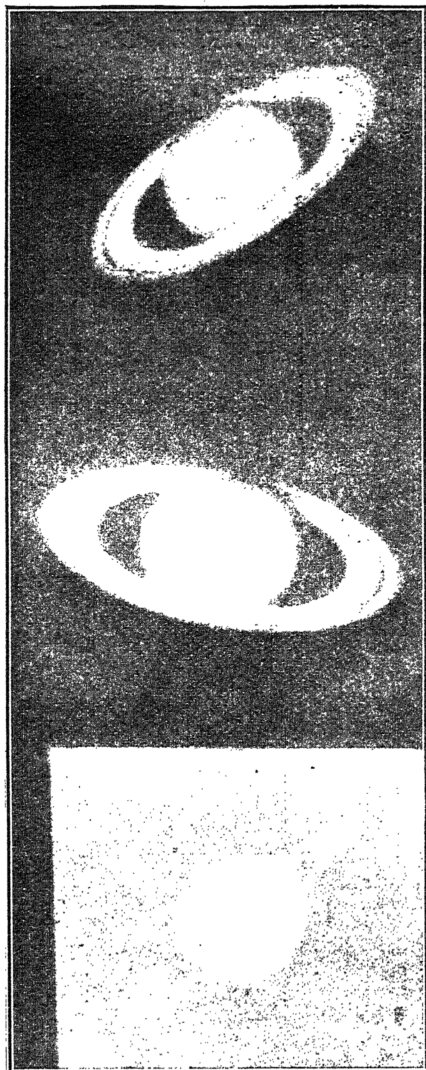


चित्र ४६३—सन् १८६२-६३ में नक्षत्रों के बीच शनि का मार्ग।

पृष्ठ पर साधारणतः कोई चिह्न ऐसे नहीं दिखलाई पड़ते जिससे हमारा काम निकले। परन्तु शनि की मध्यरेखा के पास १८७६ में एक अत्यन्त चमकीला श्वेत चिह्न दिखलाई पड़ा, जिससे हॉल (Hall)

ने—वे ही जिन्होंने मंगल के उपग्रहों का आविष्कार किया था— शनि का परिभ्रमण-काल १० घंटे १४ मिनट होना निश्चय किया। परन्तु १९०३ में एक दूसरा चिह्न उत्तर की ओर दिखलाई पड़ा जिससे बारनार्ड ने देखा कि परिभ्रमण-काल १० घंटे ३८ मिनट है। २४ मिनट का अन्तर! इससे पता लगता है कि भिन्न भिन्न प्रदेशों के बादलों के वेग में आठ नौ सौ मील प्रतिघंटे का अन्तर होगा।

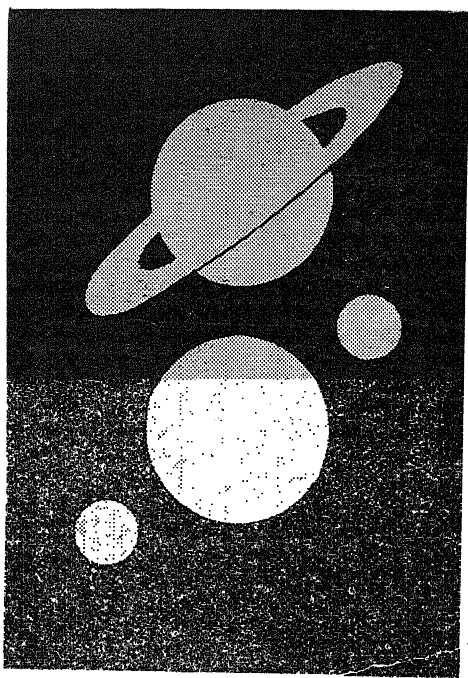
शनि से सूर्य बहुत ही छोटा दिखलाई पड़ेगा। वहाँ पृथ्वी की अपेक्षा ९० में केवल एक भाग प्रकाश और गरमी पहुँचती होगी, परन्तु रात्रि को एक अत्यन्त शोभायमान दृश्य दिखलाई पड़ता होगा। वलय पूर्व



[लॉवेल बेधशाला

चित्र ४९४—शनि के कुछ फ़ोटोग्राफ़।

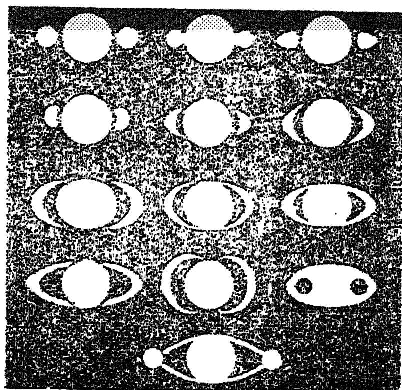
से पश्चिम असंख्य दीपकों की चौड़ी धारा के समान फैला हुआ अपने श्वेत और शीतल प्रकाश से शनि को प्रकाशित कर देता होगा और साथ ही इसके नौ उपग्रह, कोई शृङ्गाकार, कोई अर्ध गोलाकार, कोई अर्धाधिक और कोई पूर्ण, आकाश को सुशोभित करते होंगे।



चित्र ४१९—शनि का १६१० में वास्तविक स्वरूप (ऊपर) और वह गैलीलियो को कैसा दिखलाई पड़ा (नीचे)।

८—दूरदर्शक में शनि की आकृति—ऊपर बतलाया गया है कि शनि, अपने वलय से घिरा हुआ, ज़रा सा चपटे गोले की तरह दिखलाई पड़ता है। इस गोले पर कई एक धारियाँ दिखलाई

पड़ती हैं। ये बहुत ही फीकी होती हैं, यद्यपि चित्रों में उन्हें कुछ चटक दिखलाना ही पड़ता है। साधारणत: शनि बीच में चमकीला और ध्रुवों की ओर साँवला दिखलाई पड़ता है। इसका वलय लगातार नहीं है, बीच में कटा हुआ है। भीतर का भाग पतली काली जाली के समान अर्ध पारदर्शक है और बहुत मन्द प्रकाश देता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि शनि के तीन वलय हैं, एक बाहरी, एक मध्यस्थ और एक भीतरी। भीतरी वलय अपनी आकृति के कारण "ईषत्कृष्णा" (dusky) या "जालीनुमा" (gauze या crepe) वलय कहलाता है। बाहरी की अपेक्षा मध्यस्थ वलय चमकीला है, परन्तु इस मध्यस्थ वलय में भी बाहरी भाग अधिक चमकीला है और भीतरी भाग कुछ कम। ये बातें और शनि की धारियाँ चित्र ४९१ में स्पष्ट देखी जा सकती हैं।



[हॉयगेन्स

चित्र ४९६—शनि के कुछ पुराने चित्र।

देखिए, इनमें से कुछ चित्र आधुनिक चित्रों से कितना मिलते हैं, और इनसे वलय का पता लग जाना चाहिए था; परन्तु तिस पर भी इन चित्रकारों को उसका पता न लगा।

गैलीलियो ने जब अपने नये आविष्कार किये हुए दूरदर्शक से शनि को देखा तो उसे जान पड़ा कि ग्रह अकेला नहीं, तेहरा है। कुछ वर्षों बाद उसने फिर देखा तो उसे जान पड़ा कि ग्रह एकहरा

ही है। तब उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। "क्या शनि ने" उसने कहा "अपने लड़कों को ही खा डाला?" फिर उसे खटका हुआ कि कहीं उसे देखने ही में न धोखा हुआ हो। उसने लिखा है "मैं नहीं जानता कि ऐसे आश्चर्यजनक अवसर पर हम क्या कहें, यह इतना अनोखा है, इतना विचित्र है! समय की कमी, इस घटना का अनूठापन, मेरी बुद्धि की दुर्बलता और अशुद्धियाँ कर बैठने का डर, इन सबने मिल कर मुझे बावला बना दिया है।" परन्तु गैलीलियो ने धोखा नहीं खाया था। कुछ वर्षों बाद शनि के दोनों पार्श्ववर्ती फिर दिखलाई पड़े। बात यह थी कि जब गैलीलियो ने शनि को पहले पहल देखा था तब इसका वास्तविक स्वरूप चित्र ४९५ के ऊपरी भाग की तरह था। बहुत कम शक्ति के दूरदर्शक के कारण उसको यह बीच में एक बड़े और इधर उधर दो छोटे मंडलों की तरह दिखलाई पड़ा। जैसा अभी बतलाया जायगा, जब दर्शक शनि-वलय के धरातल में आ जाता है तब वलय अदृश्य हो जाते हैं। दूसरी बार शनि को ऐसी अवस्था में देख कर गैलीलियो समझ न सका कि असली बात क्या है। गैलीलियो के बाद लगभग पचास वर्ष तक ज्योतिषी इस ग्रह को दूरदर्शक से देखते रहे और उन्होंने इसको भिन्न भिन्न आकृति का देखा (चित्र ४९६)। परन्तु किसी की समझ में न आया कि वास्तविक अवस्था क्या है। अन्त में गणित, विज्ञान और यंत्र-निर्माण इन सबमें सिद्धहस्त, प्राचीन हॉलैंड का प्रसिद्ध वैज्ञानिक, हॉयगेन्स ने असली बात का पता लगाया (चित्र ४९७, ४९८), क्योंकि एक बार इन रहस्यमय पार्श्ववर्त्तियों को फिर अन्तर्ध्यान होते देख कर वह इसका कारण समझ गया। परन्तु अपने विचारों को अच्छी तरह जाँच करने के लिए वह

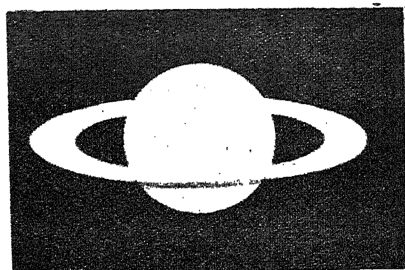
समय चाहता था। इसलिए उसने अपने आविष्कार की घोषणा इस रूप में की :—

aaaaaaa ccccc d eeeee g h iiiiiii llll mm nnnnnnnnn oooo pp q rr s ttttt uuuuu.

जिसमें सब अक्षर वर्णमाला के क्रमानुसार लिखे गये हैं। इनको, जैसा हॉयगेन्स ने पीछे बतलाया, ठीक तरह से लिखने पर यह वाक्य बनता है :—

"Annulo cingitur, tenui, plano, nusquam cohoerente, ad eclipticam inclinato"

अर्थात्, यह पतले समथल वलय से घिरा हुआ है, जो इसे कहीं नहीं छूता और जो पृथ्वी कक्षा के धरातल से तिरछा है। स्पष्ट है कि हॉयगेन्स को इस वलय का बिलकुल सच्चा पता लग गया था। इसके बीस वर्ष बाद फ्रेंच ज्योतिषी कैसिनी ने देखा कि यह वलय एक नहीं है, दो भागों में बँटा है और इन दोनों भागों के बीच काली रेखा सी दिखलाई पड़ती है। फिर ७५ वर्ष पीछे, १८५० में, अमेरिका के बॉन्ड (Bond) ने तीसरे "ईषत्कृष्ण" वलय का आविष्कार करके ज्योतिष-संसार को आश्चर्य में डाल दिया। बॉन्ड घड़ीसाज़ था, परन्तु १८ वर्ष की अवस्था में सूर्य-ग्रहण से ऐसा

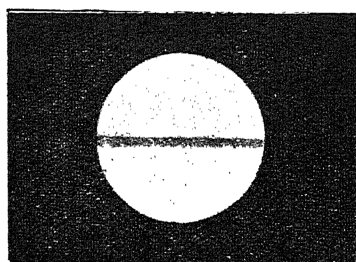


[हॉयगेन्स

चित्र ४९७—हॉयगेन्स का खींचा शनि का चित्र।

हॉयगेन्स ने ही पहले पहल शनि-वलय के शुद्ध आकार का पता लगाया था।

आकर्षित हुआ कि वह ज्योतिष के पीछे पड़ गया। अन्य देशों में वेधशालाओं के कार्य का अध्ययन करके उसने अपनी एक निजी वेधशाला बनवाई। अन्त में, हारवार्ड-विश्वविद्यालय में एक वेधशाला खुलने पर वह ५४ वर्ष की आयु में वहाँ का अध्यक्ष बनाया गया। यहाँ इसने ईषत्कृष्ण वलय का आविष्कार किया।



[हॉयगेन्स

चित्र ४६८—हॉयगेन्स का खींचा शनि का दूसरा चित्र।

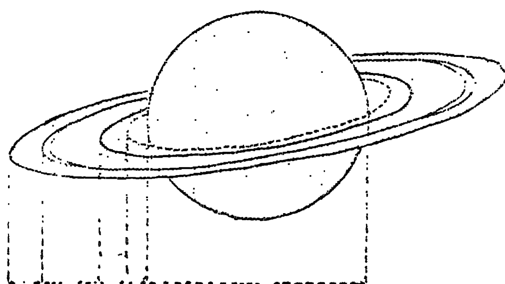
जब वलय अदृश्य हो गये थे।

वलय इत्यादि की नाप चित्र ४६६ में दी गई है। वलय की मोटाई केवल लगभग १० मील है। यदि हम शनि की मूर्त्ति शुद्ध पैमाने पर बनावें और इसके गोले को फ़ुट भर बड़ा बनावें तो इसका वलय पतले-से-पतले चीनी कागज़ से भी पतला बनाना पड़ेगा!

यह वलय अपने प्रकाश से नहीं चमकता, क्योंकि इस पर ग्रह की परछाईं पड़ती है (चित्र ४६१ इत्यादि को ध्यान से देखिए)। वलय की भी परछाईं ग्रह पर पड़ती है।

८—वलय-कला—वलयों का धरातल शनि-कक्षा से झुका हुआ है। पृथ्वी लगभग शनि-कक्षा के धरातल में रहती है और वलयों का धरातल सदा अपने समानान्तर ही रहता है। इसलिए, जैसा चित्र ५०० से स्पष्ट है हमें शनि-वलय का कभी उत्तरी, कभी दक्षिणी पृष्ठ दिखलाई पड़ता है। स्पष्ट है कि उत्तर से दक्षिण होते समय एक स्थिति ऐसी आ जाती है जब हम ठीक ठीक शनि-वलय के धरातल में पड़ जाते हैं। उस समय हमको न तो इस वलय का

उत्तरी, न दक्षिणी भाग दिखलाई पड़ता है; उस स्थिति में शनि-वलय को धार (किनारा) दिखलाई देना चाहिए, परन्तु, जैसा ऊपर बतलाया गया है, यह इतना पतला है कि यरकिज़ के ४० इंच-वाले दूरदर्शक में भी अदृश्य हो जाता है। जो शनि के वलयों के भिन्न भिन्न आकारों को—शनि-वलय-कलाओं को—मूर्ति द्वारा स्पष्ट देखना चाहें वे एक नारंगी के किनारे दफ़्ती का वलय लगा कर



११ २० १० ७५

चित्र ४९९—शनि-वलयों की नाप,

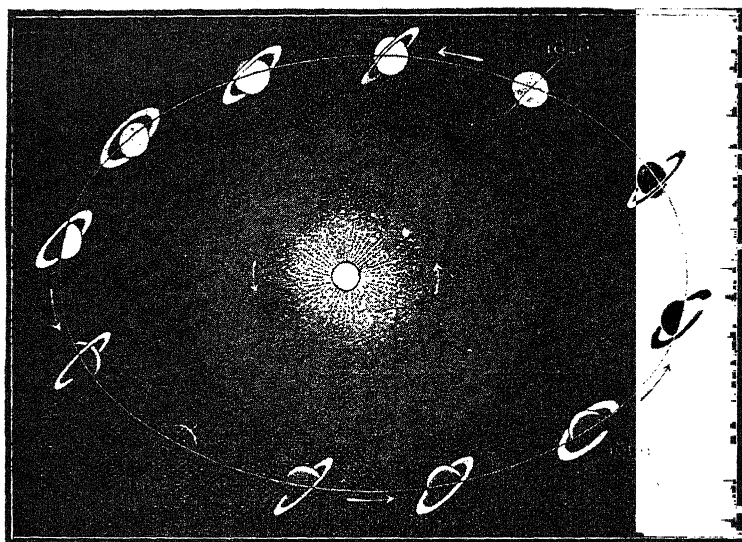
हज़ार मील की इकाइयों में।

और चित्र ५०१ में दिखलाई स्थितियों से इसे देख कर, इसकी कलाओं का ज्ञान अच्छी तरह कर सकते हैं।

जब वलय मिट जाते हैं, या प्रायः मिट जाते हैं, तब शनि के छोटे उपग्रहों का देखना कुछ सुगम हो जाता है। जिस समय वलय चमकती हुई सुई की तरह दिखलाई पड़ता है उस समय ये उपग्रह इस पर बिधे हुए मोतियों की तरह अत्यन्त सुन्दर जान पड़ते हैं।

जिस समय सूर्य-प्रकाश वलय के उत्तरी पृष्ठ पर पड़ता है और हमको दक्षिणी पृष्ठ दिखलाई पड़ता है (चित्र ५०२), उस समय यह

अत्यन्त चिपटा, प्राय: सरल रेखा की तरह, प्रतीत होता है परन्तु यह रेखा सब जगह एक मोटाई की नहीं दिखलाई पड़ती। बाहरी और मध्यस्थ वलयों के बीच का शून्य स्थान और फिर ईषत्कृष्ण वलय भी मोटे दिखलाई पड़ते हैं (चित्र ५०३)। इसका कारण यह



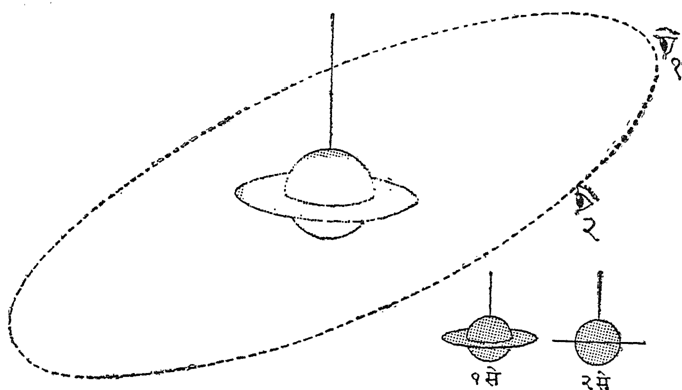
[चेम्बर्स की ऐस्ट्रॉनोमी से

चित्र ५००—हमें कभी शनि-वलय का उत्तरी, कभी दक्षिणी पृष्ठ दिखलाई पड़ता है।

और कभी कभी ये अदृश्य हो जाते हैं।

है कि शून्य अथवा प्राय: शून्य स्थान से प्रकाश नीचे तक घुस आता है और वहाँ के कणों को प्रकाशित कर देता है। खूब प्रकाशित हो जाने के कारण "प्रकाश-प्रसरण" उत्पन्न हो जाता है जिससे ये मोटे जान पड़ते हैं (पृष्ठ ३६३ देखिए)।

जब वलय हमको ख़ूब चौड़ा दिखलाई पड़ता है तब शनि की चमक प्रायः दुगुनी हो जाती है। ७ नवम्बर १९२० में वलय अदृश्य हो गये थे, इसके लगभग ७½ वर्ष पहले और पीछे ये ख़ूब अच्छी तरह से दिखलाई पड़े थे और १९३५ में वलय फिर अदृश्य हो जायँगे। इन तिथियों में २९½ वर्ष या आवश्यकतानुसार इसका दुगुना तिगुना जोड़ने से भविष्य में किस समय वलय



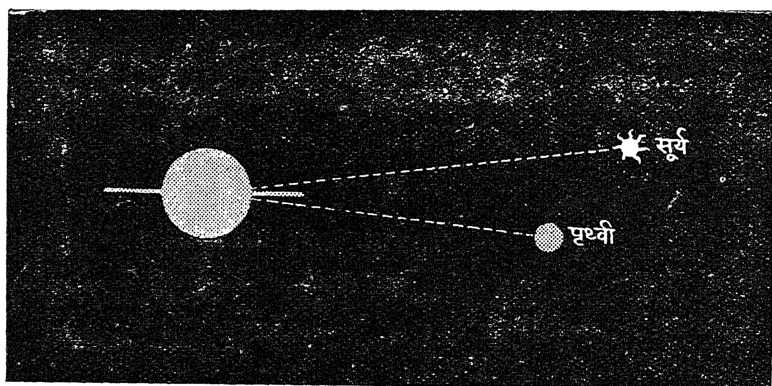
चित्र ५०१—शनिवलय क्यों कभी चौड़े, कभी सँकरे, दिखलाई पड़ते हैं।

और ये क्यों कभी कभी अदृश्य हो जाते हैं।

अदृश्य होंगे या ख़ूब अच्छी तरह दिखलाई पड़ेंगे इसका पता सहज ही में लग सकता है।

१०—शनि की बनावट—जैसा शनि के फ़ोटोग्राफ़ों से पता चलता है शनि के किनारे केन्द्र की अपेक्षा कम चमकदार हैं, जिससे पता चलता है कि शनि पर वायुमंडल है (पृष्ठ २५४ देखिए)। यही बात अन्य लक्षणों से भी जानी जा सकती है। जिस समय

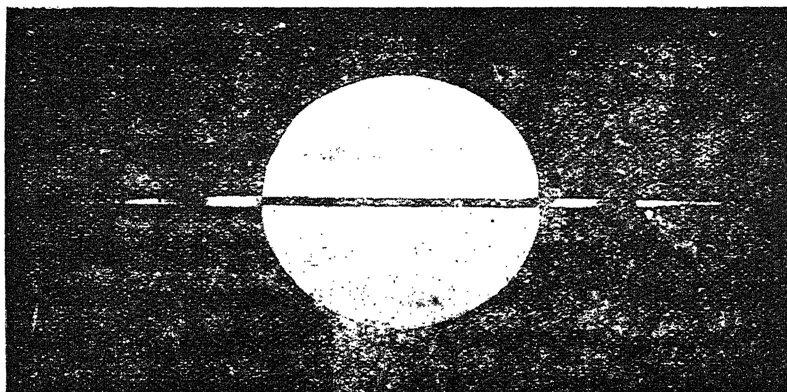
वलय मिट जाते हैं, उस समय कला और प्रकाश-वृद्धि के सम्बन्ध से पता चलता है कि शनि सपाट है। कला से यह न समझ बैठना चाहिए कि शनि भी चन्द्रमा की तरह शृंगाकार दिखलाई पड़ता है। इसका विम्ब पूर्णकला से ज़रा सा ही घटता है। परन्तु इतने ही से शनि का सपाट होना बहुत अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है। शनि को किसी भी दूरदर्शक से केवल देखने से ही इतनी अच्छी तरह यह बात सिद्ध न हो सकती। सपाट होने से, इसके बादलों



चित्र ४०२—कभी कभी सूर्य-प्रकाश शनि-वलय के उत्तरी पृष्ठ पर पड़ता है और साथ ही हम इसका दक्षिणी पृष्ठ देखते हैं।

के आश्चर्यजनक अधिक वेग से, और इसके अत्यन्त अल्प घनत्व से स्पष्ट है कि शनि पर गहरा वायुमंडल होगा, परन्तु इसके अतिरिक्त शनि की बनावट के विषय में अधिक नहीं मालूम है। अनुमान से कहा जा सकता है कि इसकी बनावट बृहस्पति की-सी होगी परन्तु इसका अधिकांश काग (cork) से भी हलका है; इसलिए शनि के सम्बन्ध में बृहस्पति से भी अधिक जटिल समस्या है। देखना चाहिए यह कैसे और कब हल होता है।

शनि का वलय से घिरा रहना और भी आश्चर्यजनक है। हो सकता है, साधारण जनता को इसमें कोई भी आश्चर्य की बात न दिखलाई पड़े, परन्तु ज्योतिषी की स्थिति भिन्न हो है। प्रसिद्ध ज्योतिषी साइमन न्यूकॉम्ब लिखते हैं "आश्चर्य—जिसकी परिभाषा में हम उन सब कठिनाइयों और समस्याओं को शामिल कर सकते हैं जिनसे मनुष्यों को प्रकृति के विषयों के कारण समझने में मुक़ा-



[बारनार्ड

चित्र ४०२—शनि-वलय का दक्षिणी पृष्ठ,
जब प्रकाश इसके उत्तरी पृष्ठ पर पड़ता है।

बला करना पड़ता है—अर्ध ज्ञान का परिणाम है और न तो पूरे ज्ञान के साथ और न पूरे अज्ञान के साथ रह सकता है। जो कुछ भी नहीं जानते उनको किसी बात पर आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि वे किसी बात की प्रतीक्षा नहीं करते, और क्या होनेवाला है इसका पूर्ण ज्ञान भी आश्चर्य को मिटा देता है। दो सौ वर्ष पहले के ज्योतिषियों को इस बात से कि एक जोड़ा वलय इस ग्रह को घेरे हुए हैं और सदा इसके साथ चलते हैं, कुछ आश्चर्य नहीं हुआ,

क्योंकि उनको नहीं मालूम था कि वलयाकार पिण्डों पर आकर्षण-शक्ति का क्या प्रभाव पड़ता है। परन्तु जब लाप्लास (Laplace) ने इस विषय पर खोज की, तो उसे पता चला कि एक ही घनत्व और एक ही मोटाई का, ग्रह को घेरे रहनेवाला वलय चिरस्थायी हो ही नहीं सकता। कितनी ही अच्छी तरह ये समतुलित (balanced) क्यों न हों—कितनी ही सूक्ष्मता से ये निश्चल-स्थिति में क्यों न रख दिये जायँ—परन्तु नाम-मात्र बाहरी शक्ति, किसी उपग्रह का या दूरस्थ ग्रह का आकर्षण, इस निश्चलता को भंग कर देगी और वलय शीघ्र ही ग्रह से जा लड़ेगा।"*

महा यशस्वी लाप्लास के अधूरे ही गणना के बहुत पीछे इँगलैंड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक मैक्स्वेल (Maxwell) ने एक पारितोषिक के लिए लिखे गये प्रबन्ध में गणित से सिद्ध किया कि वलय न तो ठोस और न तरल हो सकते हैं। वे अवश्य छोटे छोटे ठोस टुकड़ों से बने होंगे और प्रत्येक टुकड़ा उपग्रह की भाँति, उपग्रहों के नियमों से बद्ध होकर, ग्रह की परिक्रमा करता होगा।

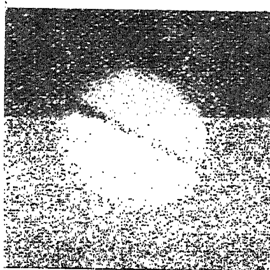
इसका समर्थन रश्मि-विश्लेषक यन्त्र से भी होता है। हमने देखा है कि प्रधान ग्रह के जितने ही पास कोई उपग्रह होगा, उतने ही कम समय में यह चक्कर लगायेगा—उतना ही इसका वेग अधिक होगा। परन्तु ठोस वलय के घूमने में बाहर के विन्दु अधिक, और भीतर के कम, वेग से घूमते हैं; क्योंकि एक ही भ्रमण-काल में बाहर के विन्दु को बड़ा चक्कर लगाना पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि यदि हम वलय के भिन्न भिन्न विन्दुओं का वेग जान सकें तो पता चल सकता है कि वलय ठोस है या नहीं। यदि किसी भीतरी विन्दु की अपेक्षा बाहरी का वेग कम हो तो वलय ठोस नहीं हो सकता। अमेरिका के कीलर (Keeler) ने १८९५ में रश्मि-विश्लेषक यंत्र

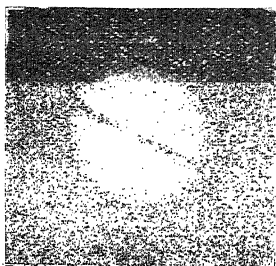
---

* Newcomb: Popular Astronomy, p. 349.

से वलय के भिन्न भिन्न भागों का वेग नापा और प्रमाणित कर दिया कि वलय ठोस नहीं हैं।

एक फ्रेंच गणितज्ञ, रोशे (Roche) ने इसका समर्थन इस प्रकार किया कि ग्रह के उस शक्ति के कारण जिससे अन्य ग्रहों में यह ज्वार-भाटा उत्पन्न कर सकता है, कोई वलय या उपग्रह ग्रह से इसके व्यासार्ध के ढाई गुने से कम दूरी के भीतर रह नहीं सकता।





[लॉवेल वेधशाला

चित्र २०४—शनि के फ़ोटोग्राफ़।

जब वलय अदृश्य रहता है।

इसके भीतर आने से वह इस शक्ति की प्रचंडता से टूट फूट कर चूर्ण हो जायगा। शनि के वलय इस दूरी के भीतर हैं; इससे स्पष्ट है कि वलय ठोस नहीं हो सकते। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि गणितज्ञों की यह धारणा है कि पहले कभी ठोस वलय रहे होंगे और पीछे टूट गये होंगे; नहीं, गणना से नतीजा यह निकलता है कि आरम्भ में ही वलय ठोस न रहे होंगे।

जरमन-ज्योतिषी ज़ेलिगर (Seeliger) ने दूसरी ही दृष्टि से इनका कण-मय होना सिद्ध किया है। जब सूर्य ठीक हमारे पीछे

रहता है और इनको हम उसी दिशा से देखते हैं जिस दिशा से उन पर प्रकाश पड़ता है, और इसलिए जब स्थिति वही रहती है जिससे पूर्ण कला दिखलाई पड़ती है तब हमको इन वलयों से बहुत अधिक प्रकाश मिलता है। परन्तु पृथ्वी के थोड़ा सा ही हट जाने पर प्रकाश बहुत घट जाता है। यदि वलय ठोस होते तो ऐसा कदापि न होता। वे छोटे छोटे टुकड़ों से अवश्य बने हैं, इसी लिए तो सब टुकड़ों पर प्रकाश नहीं पड़ने पाता। एक की छाया दूसरे पर पड़ा करती है। ज्यों ही उनको हम ज़रा सी तिरछी दिशा से देखने लगते हैं त्यों ही उनकी छाया भी हमको दिखलाई पड़ने लगती है। इसी कारण प्रकाश इतना घट जाता है।

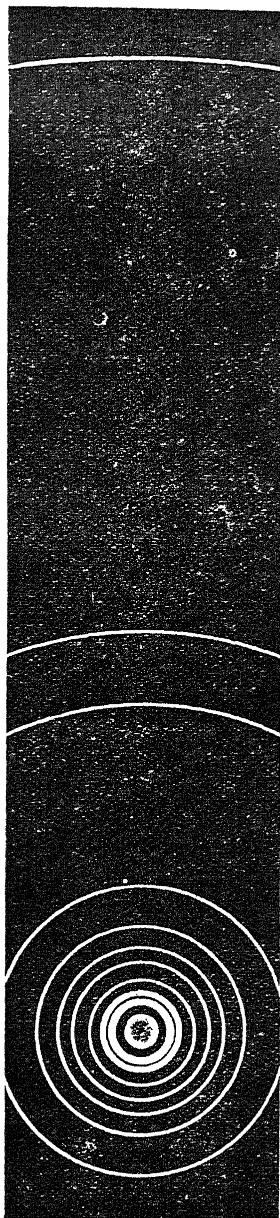
वलयों के ठोस न होने का प्रत्यक्ष प्रमाण हमको ईषत्कृष्ण वलय के प्राय: पारदर्शक होने से और बाहरी वलय के अर्ध पारदर्शक होने से मिलता है, क्योंकि इनके पार तारे देखे गये हैं, हाँ वे कुछ मलिन प्रकाश के हो जाते हैं। मध्यस्थ वलय, वही जो सबसे अधिक प्रकाशवान् है, छोटे छोटे कणों से इतना घना भरा होगा कि उसके पार अभी तक कोई तारा नहीं दिखलाई पड़ा, परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि अभी तक हमको किसी वस्तुत: चमकीले तारे को इसके पार देखने का कोई अवसर ही नहीं मिला है।

११—शनि के उपग्रह—शनि के नौ उपग्रहों का निश्चय रूप से पता लगा है। एक दसवें के आविष्कार की सूचना १९०५ में प्रकाशित हुई थी, परन्तु वह उपग्रह फिर कभी देखा न जा सका, इसलिए संदेह होता है कि पहली बार शायद भ्रम हो गया होगा।

जिस समय बृहस्पति के केवल चार ही उपग्रहों का ज्ञान था, उस समय भी शनि के उपग्रहों का पता लग चुका था; इससे प्रत्यक्ष है

कि शनि के उपग्रह अधिक प्रकाशवान् हैं। इनमें से एक चन्द्रमा से बड़ा है और दो इससे ज़रा सा छोटे हैं। सबसे बड़े को, जिसका नाम टाइटन (Titan) है, हॉयगेन्स ने पहले १६५५ में देखा था। उस ज़माने में लोगों को शुभाशुभ संख्याओं के विषय में विचित्र धारणा थी। अपने शनि-सम्प्रदाय-सम्बन्धी पुस्तक में हॉयगेन्स ने लिखा कि छः ग्रह (बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति और शनि) और छः उपग्रह (१ पृथ्वी का, चार बृहस्पति के और एक शनि का) मिलकर कुल १२ हुए जो अत्यन्त शुभ संख्या है; इसलिए अब अधिक उपग्रह न होंगे। उपग्रह को कौन कहे, जैसा सभी जानते हैं, दो नये ग्रह मिले।

अपने विचित्र विचारों के कारण हॉयगेन्स ने उपग्रहों की खोज करना छोड़ दिया, परन्तु कैसिनी ने कुछ वर्ष पीछे चार नये उपग्रहों का पता लगाया। इस बात से विज्ञान-संसार में अपने देश का नाम उज्ज्वल होते देख फ्रेंच-सरकार इतनी खुश हुई कि उसने इसके स्मरणार्थ एक पदक बनवा दिया।



चित्र ४०४—शनि के उपग्रहों की सापेक्षिक दूरी।

इसके सौ वर्ष से अधिक काल बीतने पर हरशेल (Herschell) ने दो नये उपग्रहों का ज्ञान किया। इनमें से एक उपग्रह वलय के इतना निकट रहता है कि साधारणतः दिखलाई नहीं पड़ता। आठवें उपग्रह का पता अमेरिका के बॉन्ड (Bond) ने लगाया। १८९८ में पिकरिंग ने नवें उपग्रह का पता फ़ोटोग्राफ़ी से पाया।

इन उपग्रहों की दूरी का ज्ञान चित्र ५०५ से हो जायगा। अन्तिम उपग्रह में विशेषता यह है कि वह शनि की परिक्रमा विपरीत दिशा में करता है। और सब उपग्रह ध्रुव तारे से देखने पर विलोम (अर्थात् घड़ी की सुइयों से उलटी, counter clockwise) दिशा में चलते दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु यह अनुलोम (clockwise) दिशा में चलता है। उस समय ज्योतिषियों को इस बात से बहुत आश्चर्य हुआ, क्योंकि लाप्लास ने सब ग्रहों के विलोम दिशा में चलने के बल पर एक सिद्धान्त—वही प्रसिद्ध नीहारिका-सिद्धान्त (The Nebular Hypothesis)—बनाया था जिससे सूर्य, ग्रहों और उपग्रहों की उत्पत्ति का पता चलता था। पीछे बृहस्पति के दो बाहरी उपग्रह भी अनुलोम दिशा में चलते हुए पाये गये।

शनि और बृहस्पति दोनों के दूरस्थ उपग्रह क्यों पीछेमुँह चलते हैं इसका उत्तर ठीक नहीं मालूम, परन्तु गणित से इतना सिद्ध कर दिया गया है कि बृहस्पति के दोनों बाहरी उपग्रह यदि सीधी दिशा में चलते तो वे बृहस्पति के आकर्षण में सदा न बँधे रहते। अब तक वे दूर निकल गये होते। शनि के नवें उपग्रह के लिए यह बात लागू नहीं है, परन्तु इतना अवश्य ठीक है कि यदि यह सीधी दिशा में चलता तो इतना स्थायी न होता जितना यह है; यदि वह सीधो दिशा में चलता होता तो अपेक्षाकृत

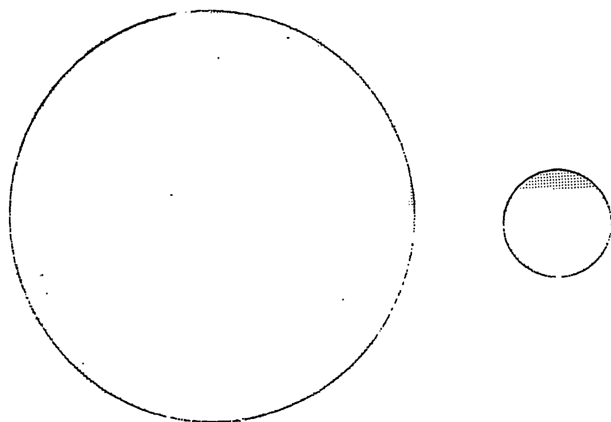
थोड़ा ही सा धक्का लगने पर यह विचलित हो जाता और शनि को छोड़ देता।

जहाँ तक पता चलता है या अनुमान किया जा सकता है, शनि के सब उपग्रह सदा एक ही मुख शनि की ओर किये रहते हैं। एक के लिए तो पक्का प्रमाण मिला है; दो के लिए भी कुछ कुछ प्रमाण हैं, परन्तु शेष के लिए अनुमान-मात्र ही है।

अध्याय १५

यूरेनस और नेपच्यून

१—यूरेनस का इतिहास—आज से डेढ़ सौ वर्ष पहले तक शनि ही सौर-परिवार का द्वाररक्षक समझा जाता था। ग्रहों का आविष्कार कब हुआ था यह किसी को ज्ञात नहीं था; अति प्राचीन



चित्र २०६—यूरेनस (वारुणी) और पृथ्वी की नापों की तुलना।

यूरेनस पृथ्वी से बहुत बड़ा है।

काल से लोग इन्हें जानते थे और इनके नाम पर सप्ताह के दिनों का नाम रख दिया गया था। किसी को स्वप्न में भी नहीं ख़याल था कि भविष्य में किसी नये ग्रह का आविष्कार होगा। यहाँ तक कि जब हरशेल ने नये ग्रह यूरेनस (Uranus) को आकाश की जाँच करते समय अकस्मात् देखा तो उसने समझा कि यह कोई पूँछ-रहित

पुच्छल तारा होगा ! एक वर्ष बाद जाकर पता लगा कि पुच्छल तारा नहीं, यह ग्रह है।

नये ग्रह के आविष्कार से ज्योतिषियों में बड़ी हलचल मची। "विज्ञान के लिए यह वैसी ही बात थी जैसा पुरानी दुनिया के काम-



[नॉलेज से

चित्र ४०७—विलियम लैसल।

इसने यूरेनस के दो उपग्रहों का आविष्कार किया था।

काज में अमेरिका का आविष्कार था; सचमुच, सौर-राज्य के क्षेत्र-फल को—यदि उसका राज्य एक ही धरातल में नापा जाय—इसने चौगुना कर दिया"*। इस आविष्कार से हरशेल का बड़ा नाम

---

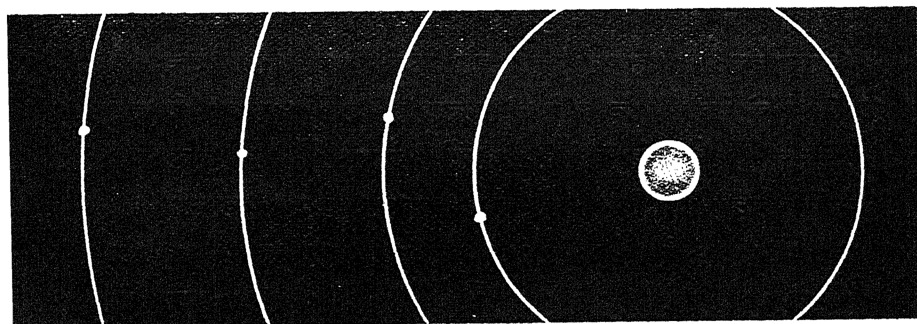
* Rev. T. E. R. Phillips in "Splendour of the Heavens", p. 375.

हुआ। वह राज-ज्योतिषी बना दिया गया और उसे 'सर' की पदवी मिली। फ्रांस के ज्योतिषियों ने नये ग्रह का नाम 'हरशेल' रक्खा, परन्तु हरशेल स्वयं अपने राजा के नाम पर इसका नामकरण "Georgium Sidus"—जॉर्जीय नक्षत्र—करना चाहता था। इस गड़बड़ी में जरमन-ज्योतिषी बोडे (Bode) ने—जिसके नाम पर बोडे का नियम अब भी प्रसिद्ध है—इसका नाम पुराने देवता के नाम पर यूरेनस रक्खा।

यूरेनस अँधेरी और स्वच्छ रात में तेज़ आँखों को एक अत्यन्त छोटे तारे के समान दिखलाई पड़ता है। इसलिए इसका कोरी आँख से ही आविष्कार होना प्रायः असम्भव था। अपने हाथ से बनाये हुए सात इंच के दूरदर्शक से हरशेल नक्षत्रों को देख रहा था जब एक नक्षत्र को देखकर उसे शक हो गया। उसने चक्षु-ताल को बदल कर एक अधिक शक्तिवाला दूसरा चक्षु-ताल लगाया। उसने देखा कि इससे यह और भी बड़ा दिखलाई पड़ने लगा। नक्षत्रों (ताराओं) को अधिक शक्ति के चक्षु-ताल से देखने पर वे बड़े नहीं जान पड़ते—शून्य को चाहे किसी अंक से गुणा किया जाय वह शून्य ही रहेगा—इसलिए हरशेल ने समझा कि यह कोई पुच्छल तारा होगा, विशेष करके इसलिए कि उसने देखा कि यह ताराओं में स्थिर नहीं है, चल रहा है। गणितज्ञ ज्योतिषियों ने इस "पुच्छल तारे" की कक्षा निकालनी आरम्भ कर दी, परन्तु कोई भी कक्षा ठीक नहीं उतरी, क्योंकि जैसे जैसे समय बीतने लगा, तैसे तैसे लोगों ने देखा कि यह पुच्छल ताराओं की तरह लम्बी सी कक्षा में नहीं चल रहा है। यह प्रायः गोल कक्षा में चलता है। तब लोगों को सूझी कि यह पुच्छल तारा नहीं है। ग्रह होगा। लगभग एक वर्ष बाद यह निश्चय रूप से ज्ञात हुआ कि नया पिंड ग्रह ही है।

पिछले निबन्धों और रजिस्टरों को खोजने पर पता चला कि यह कई बार पहले देखा जा चुका था। विशेष करके एक ज्योतिषी ने इसे आठ बार थोड़े-थोड़े समयों पर देखा था। यदि उसने इन बेधों का मिलान किया होता तो वह इस बात का अवश्य आविष्कार कर लेता कि यह ग्रह है। परन्तु नवीन ग्रह का आविष्कार करना तो दूसरे के भाग्य में था।

यूरेनस का नाम हिन्दी में वारुणी रक्खा गया है। यह पृथ्वी से व्यास में चौगुना और इसलिए आयतन में ६४ गुना बड़ा है।



चित्र ५०८—यूरेनस के उपग्रहों की सापेक्षिक दूरी।

सूर्य से बहुत दूर होने के कारण इसको एक परिक्रमा में ८४ वर्ष—एक मनुष्य के जीवन परिमाण भर—समय लगता है।

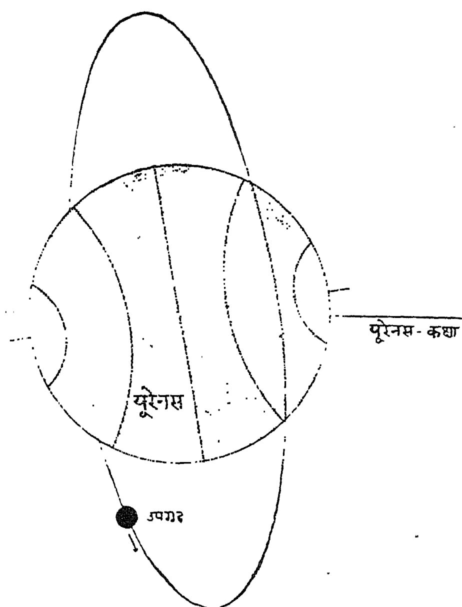
२—दूरदर्शक में इस ग्रह की आकृति—दूरदर्शक से देखने पर यह ग्रह एक छोटे और कुछ चपटे, बिम्ब सा दिखलाई पड़ता है। रंग में यह समुद्र के समान हरा है। यह इतनी दूर है कि इसमें कलायें नहीं दिखलाई पड़तीं और इसलिए उसका पृष्ठ सपाट है या ऊँचा नीचा इसका पता सुगमता से नहीं लगता; परन्तु

इसकी परिक्षेपण-शक्ति बृहस्पति सी है। बहुत दूर होने और इसलिए इसका विम्ब छोटा दिखलाई पड़ने के कारण यूरेनस के विषय में अधिक बातें नहीं जानी जा सकी हैं, परन्तु अनुमान किया जाता है कि इसकी बनावट बृहस्पति सी होगी क्योंकि यह भी बृहस्पति के ही समान पृथ्वी से बहुत बड़ा है। इसकी घनता और परिक्षेपण-शक्ति भी बृहस्पति ही सी है।

यूरेनस से आये प्रकाश के रश्मि-चित्र में सूर्य-प्रकाशवाली काली रेखाओं के अतिरिक्त कुछ धारियाँ ऐसी हैं जिनसे प्रकाश का लाल और नारंगी भाग बहुत कुछ मिट जाता है। इससे पता चलता है कि यूरेनस में गहरा वायुमंडल है; परन्तु ये रेखायें किस वस्तु के कारण बनती हैं यह पता नहीं। इस प्रसंग में यह कहना उचित है कि ये ही रेखायें नेपच्यून में भी मिलती हैं, जिससे वह ग्रह भी हरा दिखलाई पड़ता है और ये रेखायें शनि और कुछ-कुछ बृहस्पति के रश्मि-चित्रों में भी मिलती हैं; हाँ कम प्रचण्ड रूप में। कुछ लोगों का अनुमान है कि ये रेखायें किसी नये मौलिक पदार्थ के कारण नहीं बनतीं; अवश्य कोई यौगिक पदार्थ (Compound) ऐसा होगा जो बहुत ठंढे तापक्रम पर बनता है और बहुत विस्तृत होने के कारण उसकी रेखायें स्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं। अभी तक ये रेखायें प्रयोगशाला में नहीं देखी जा सकी हैं।

बड़े दूरदर्शकों से यूरेनस के पृष्ठ पर कभी-कभी कुछ रेखायें झलक जाती हैं, परन्तु निश्चय रूप से कोई नहीं कह सकता कि वस्तुतः ये रेखायें देखी गई हैं। हो सकता है ये अपनी-अपनी भावना का ही परिणाम हों क्योंकि इन धारियों को लोगों ने एक ही तरह नहीं देखा है। स्पष्ट है कि साधारण रीति से यूरेनस का परिभ्रमण-काल नहीं निकाला जा सकता; परन्तु रश्मि-विश्लेषक यंत्र से (पृष्ठ २८६) यह समय नापा गया है, जिससे पता लगता है

कि यह ग्रह लगभग पौने ग्यारह घंटे में अपनी धुरी पर घूमता है। इसके अतिरिक्त इस ग्रह की चमक नियमानुसार थोड़ा सा घटा बढ़ा करती है, जिससे पता लगता है कि इसका पृष्ठ सब जगह एक रूप सा चमकीला नहीं है और इसके घूमने से जब अधिक चमकीला भाग हमारी ओर आ जाता है तब इसका प्रकाश बढ़ जाता है और जब कम चमकीला भाग आ जाता है तब इसकी चमक कम हो जाती है। इसलिए इसकी चमक के घटने-बढ़ने के समय को नापने से भी इसका परिभ्रमण-काल नापा जा सकता है। इस रीति से भी यूरेनस के एक बार अपनी धुरी पर घूमने का समय लगभग पौने ग्यारह घंटा आता है।



चित्र २०९—यूरेनस का अक्ष प्रायः यूरेनस की कक्षा में ही है।
इसलिए वहाँ बड़ी विचित्र ऋतुएँ होती होंगी।
(अगले चित्र से तुलना कीजिए)।

३—उपग्रह—इस ग्रह के चार उपग्रह हैं। दो का तो हरशेल ने स्वयं पता लगाया था। दो का लैसल (Lassell) ने। लैसल शराब बनाने का काम करता था, परन्तु उसको ज्योतिष का शौक था। २१ वर्ष की अवस्था में धनाभाव के कारण अपना शौक पूरा करने के लिए उसने अपने हाथ से दूरदर्शक बनाना

आरम्भ किया। अन्त में एक अन्य व्यक्ति की सहायता से उसने २४ इंच व्यास का बहुत बढ़िया दर्पणयुक्त दूरदर्शक बना लिया। इसी से उसने इन दोनों उपग्रहों का आविष्कार किया।

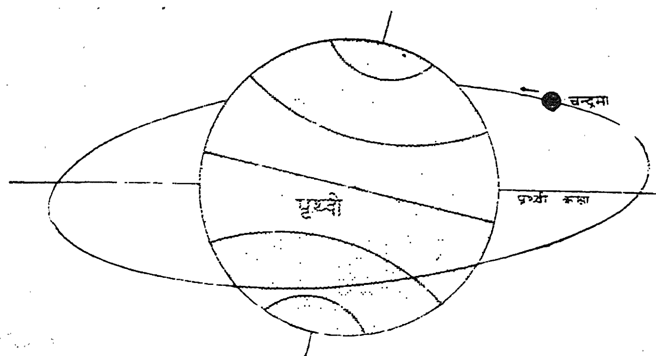
इन उपग्रहों के विषय में हमें विशेष ज्ञान नहीं है। इनमें से जो सबसे बड़ा है वह शायद व्यास में हमारे चन्द्रमा का आधा होगा। परन्तु इन ग्रहों के विषय में आश्चर्यजनक बात यह है कि इनका धरातल पृथ्वी और यूरेनस की कक्षाओं के धरातल से—दोनों कक्षाओं का धरातल क़रीब-क़रीब एक ही है—प्राय: समकोण बनाता है। इससे, और ग्रह के भिन्न-भिन्न विन्दुओं के वेग से भी, पता चलता है कि यूरेनस का अक्ष प्राय: यूरेनस की कक्षा में ही है (चित्र ५०९)। यह विशेषता किसी भी ग्रह में नहीं पाई जाती। बृहस्पति का अक्ष बृहस्पति या पृथ्वी की कक्षा के हिसाब से खड़ा है; पृथ्वी, मंगल और शनि के अक्ष पृथ्वी-कक्षा से लगभग २४° का कोण बनाते हैं—इसी से तो पृथ्वी पर भिन्न-भिन्न ऋतुएँ होती हैं और वैसी ही ऋतुएँ मंगल और शनि पर होती होंगी। परन्तु यूरेनस पर बड़ी विचित्र ऋतुएँ होती होंगी। मध्यरेखा से कुछ ही उत्तर या दक्षिण देशों में भी यहाँ के आर्कटिक वृत्त में स्थित स्थानों की तरह गरमी में अर्धरात्रि को ही सूर्य दिखलाई पड़ता होगा। परन्तु वहाँ तो सूर्य का बल इतना घट जाता है कि गरमी हुई तो क्या और न हुई तो क्या। वहाँ का भयानक कम तापक्रम कभी भी इतना बढ़ने नहीं पाता होगा कि जमे हुए गैस पिघल सकें।

४—नेपच्यून का इतिहास*—इस ग्रह का आविष्कार आधुनिक ज्योतिष के एक अति निरंकुश और प्रदीप्त कल्पना के कारण हुआ है। इसके यूरेनस पर पड़े आकर्षण से मानो हमने पहले ही से टटोल

---

* Newcomb: Popular Astronomy के आधार पर।

कर इसको जान लिया; और इस प्रकार दूरदर्शक से पहचाने जाने के पहले ही इसकी दिशा की गणना आकर्षण-सिद्धान्त से कर ली गई। एक बेध करनेवाले से कहा गया कि यदि वह आकाश के अमुक विन्दु पर अपना दूरदर्शक साधेगा तो उसे एक नया ग्रह दिखलाई पड़ेगा। उसने ऐसा किया और वह ग्रह वस्तुतः बतलाये स्थान के बहुत पास ही था। ज्योतिष की उस शाखा के, जिसका सम्बन्ध आकाशीय पिण्डों की गति से है और जो आकर्षण-सिद्धान्त की नीव



चित्र ५१०—पृथ्वी की कक्षा और इसका अक्ष।

पर खड़ा किया गया है, अचूक होने का इससे आश्चर्यजनक उदाहरण की कल्पना करना कठिन है।

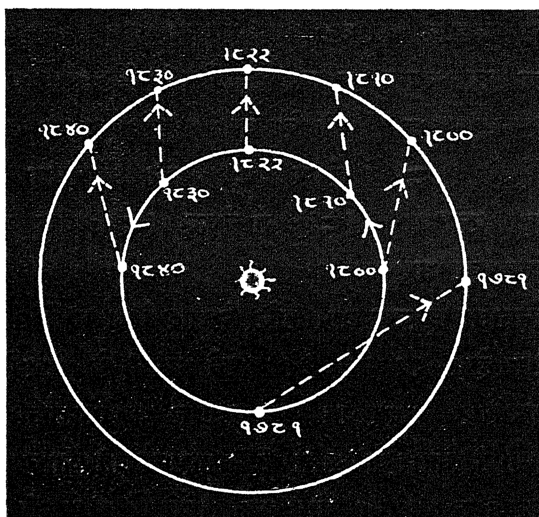
उन अनुसंधानों का वर्णन करने के लिए जिनका यह फल हुआ, हमको १८२० तक जाना होगा। उस साल पेरिस शहर के बूवार्ड (Bouvard) नाम के ज्योतिषी ने बृहस्पति, शनि और यूरेनस की नई सारिणियाँ बनाईं। उसे पता चला कि बृहस्पति और शनि तो आकर्षण-सिद्धान्त के अनुसार ठीक ठीक चलते हैं, परन्तु यूरेनस ऐसा नहीं करता। सूर्य के अतिरिक्त बृहस्पति, शनि, इत्यादि

सब ग्रहों के आकर्षण को शामिल करने पर भी यूरेनस के लिए कोई ऐसी कक्षा निर्धारित करना, जो नये और पुराने सब बेधों के अनुकूल हो, असम्भव था। पुराने बेधों का अभिप्राय यहाँ उन बेधों से है जो यह जानने के पहले ही लिये गये थे कि यूरेनस ग्रह है। इसलिए बूवार्ड ने पुराने बेधों को निकाल कर अलग कर दिया और नये बेधों के ही आधार पर अपनी सारिणी बनाई।

परन्तु थोड़े ही वर्ष बीते थे कि फिर यह ग्रह बूवार्ड के बतलाये मार्ग से विचलित होने लगा। दस वर्ष में अन्तर स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगा। पचीस वर्ष में यह इतना बढ़ गया कि ज्योतिषियों का नाकोंदम हो गया। हाँ, ज्योतिषियों को छोड़ अन्य लोगों को यह अन्तर अत्यन्त सूक्ष्म जान पड़ता। चन्द्रमा के व्यास का सोलहवाँ भाग भी यह नहीं था। यदि आकाश में दो नक्षत्र चलते, एक तो वास्तविक ग्रह के स्थान में और एक गणना किये ग्रह के स्थान में तो वह अवश्य आश्चर्यजनक तेज़ आँख होती जो इन दोनों नक्षत्रों को पृथक् पृथक् देख सकती; परन्तु, दूरदर्शक से बड़ा करने पर, यह सुगमता से नापने योग्य अन्तर है, जिसे ज्योतिषी क्षण भर के लिए भी माफ़ नहीं कर सकता। इस प्रकार विचलित होने का क्या कारण हो सकता है, इस विषय पर कभी कभी ज्योतिषियों में वादानुवाद होता रहा, परन्तु कुछ ठीक तरह से निश्चय नहीं हो सका।

१८४५ में फ्रेंच ज्योतिषी ऐरागो (Arago) ने अपने नवयुवक और उस समय अज्ञात मित्र लेवेरियर (Leverrier) से यूरेनस की गति के विषय में खोज करने के लिए कहा। ऐरागो अच्छी तरह जानता था कि लेवेरियर योग्य सिद्धान्ती और सिद्धहस्त गणितज्ञ है। लेवेरियर अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़ कर इस काम में तत्परता के साथ जड़ से पता लगाने बैठा। पहला काम यह था कि निश्चय कर लिया जाय कि कहीं बूवार्ड के सिद्धान्त या गणना में त्रुटि

के कारण तो यह अन्तर नहीं पड़ रहा है। इसलिए उसने यूरेनस की गति पर बृहस्पति और शनि के प्रभाव का दुबारा गणना करने और सारिणी को दुहराने से श्रीगणेश किया। फल यह हुआ कि उसको सारिणियों में कई एक छोटी छोटी त्रुटियाँ मिलीं, परन्तु ये ऐसी नहीं थीं कि इनसे यूरेनस की गति में अधिक भेद पड़े।



चित्र २११—कोई अज्ञात ग्रह यूरेनस को कैसे विचलित कर सकता था।

१७८१ से १८१० तक अज्ञात ग्रह यूरेनस के वेग को बढ़ाता था। १८३० से १८४० तक वह इसके वेग को घटाता था।

इसके बाद प्रश्न यह उठा कि क्या कोई कक्षा ऐसी मिल सकती है जो बृहस्पति और शनि के आकर्षण का फल निकाल देने के बाद आधुनिक वेधों के अनुकूल हो। इसका उत्तर मिला कि यह

सम्भव नहीं है, क्योंकि अच्छी से अच्छी कक्षा निकालने पर यूरेनस कभी इधर कभी उधर जाता दिखलाई पड़ता था। केवल एक बात बाक़ी रह गई—यह देखना कि किसी नये ग्रह से तो यह सब बखेड़ा नहीं हो रहा है और यदि यही बात है तो वह ग्रह आकाश में किधर होगा।

यह समझना अत्यन्त सरल है कि किस प्रकार कोई अज्ञात ग्रह यूरेनस की गति को घटा बढ़ा सकता है। चित्र ५११ में भीतरी वृत्त पर यूरेनस की कई स्थितियाँ दिखलाई गई हैं। इन समयों पर अज्ञात ग्रह की भी स्थितियाँ बाहरी वृत्त पर दिखलाई गई हैं। स्पष्ट है कि १७८१ से लेकर १८१० तक अज्ञात ग्रह यूरेनस के वेग को बढ़ा रहा था। १८३० से लेकर १८४० तक वह इसके वेग को घटा रहा था।

अज्ञात ग्रह यूरेनस और शनि के बीच में हो नहीं सकता था, क्योंकि ऐसा होने पर शनि भी अपने मार्ग से विचलित हुआ करता। इसलिए अवश्य यह अज्ञात ग्रह यूरेनस-कक्षा के बाहर होगा। बोडे के नियम के सहारे इस अज्ञात ग्रह की दूरी यूरेनस की दूरी का प्रायः दुगुना मान कर लेवेरियर ने इसकी स्थिति की गणना की। सितम्बर १८४६ में उसने डाक्टर गाले (Galle) को पत्र लिखा "कुम्भ राशि के अमुक विन्दु पर अपना दूरदर्शक साधो तो उसी विन्दु के आस-पास ही—एक अंश के भीतर ही—तुम्हें नया ग्रह मिलेगा, जो चमक में नवीं श्रेणी के तारे की तरह, परन्तु देखने में छोटे से विम्बवाले ग्रह की तरह, दिखलाई पड़ेगा। डाक्टर गाले ने—वह बरलिन वेधशाला का नवयुवक अध्यक्ष था—शीघ्र ही इस नये पिंड को देखा। इसके ग्रहों के समान विम्ब भी था और यह नक्षत्रों के उस नये नक़शे पर नहीं था (चित्र ५१३-१४) जो हाल ही में छपा था। इसकी स्थिति सूक्ष्मता से नाप ली गई। दूसरी

रात फिर नापने पर पता चला कि यह बतलाई हुई दिशा में चल भी रहा है। अब नाममात्र भी संदेह नहीं रह गया, और यह ख़बर सब जगह फैल गई।

इधर फ्रांस में तो इस प्रकार लेवेरियर ने नये ग्रह का आविष्कार किया, उधर इँगलैण्ड में केम्ब्रिज विश्व-विद्यालय के एक नये ग्रैजुएट, ऐडम्स (J. C. Adams) ने भी इसी प्रश्न की जाँच आरम्भ की। १८४१ में ही ऐडम्स ने संकल्प किया था कि डिगरी मिल जाने के बाद ही यूरेनस की गति की जाँच करके पता लगायेंगे कि वह अज्ञात ग्रह किस स्थान पर होगा जिसके कारण शायद यूरेनस गणित से निकले मार्ग पर ठीक-ठीक नहीं चलता। उसने इस समस्या की बात एअरी (Airy) के एक रिपोर्ट में पहले-पहल पढ़ी थी।



[ऐस्ट्रॉनोमी फ़ॉर ऑल से

चित्र २१२—पेरिस-बेधशाला में स्थापित की गई लेवेरियर की मूर्ति।

लेवेरियर की ही गणना से नेपच्यून का आविष्कार हुआ था। ऐडम्स ने लेवेरियर के पहले ही नेपच्यून की स्थिति की गणना कर डाली थी, परन्तु राज-ज्योतिषी एअरी की लापरवाही से किसी ने ऐडम्स की गणना पर ध्यान नहीं दिया था।

ऐडम्स ने सचमुच अपना प्रस्ताव पूरा किया। १८४३ की गरमी की छुट्टी में ही उसने मोटे हिसाब से नये ग्रह की गणना कर डाली। १८४५ में उसने सब गणना पूरी कर डाली और

केम्ब्रिज के प्रोफ़ेसर चैलिस की सलाह से वह राज-ज्योतिषी एअरी से मुलाकात करने ग्रिनिच गया। अभाग्यवश एअरी वहाँ नहीं था। कुछ सप्ताह पीछे वह एअरी से फिर मिलने गया, परन्तु इस बार जब ऐडम्स पहुँचा उस समय एअरी भोजन कर रहा था और खानसामा बोला कि साहेब से मुलाकात नहीं हो सकती। इसी से तो कहना पड़ता है कि नये ग्रह का प्रथम आविष्कार ऐडम्स के भाग्य में नहीं लिखा था। परन्तु ऐडम्स ने लिखकर एक पुरज़ा एअरी के पास भिजवा दिया था कि नया ग्रह किस स्थिति में देखा जा सकता है। ऐडम्स की गणना ऐसी सच्ची थी कि यदि उसी समय बतलाई हुई दिशा में दूरदर्शक साधा जाता तो नया ग्रह अवश्य मिल जाता, परन्तु राज-ज्योतिषी को ऐडम्स की योग्यता पर विश्वास नहीं था। कहाँ गणित में ऐसा कठिन विषय जिसको हाथ में लेने से बड़े-बड़े गणितज्ञ डरते थे, कहाँ कल का पास हुआ लड़का! एअरी ने ऐडम्स को चिट्ठी लिखकर भेजा कि क्या आपने सूर्य से यूरेनस की दूरी में जो अन्तर पड़ा करता है उस पर भी ध्यान दिया है? ऐडम्स ने इसका कोई उत्तर न दिया; शायद मारे क्षोभ के कि राज-ज्योतिषी मुझ पर इतना भी विश्वास नहीं करता कि ज़रा सी बात पर ऐसा प्रश्न करता है, या शायद अपने लज्जाशील स्वभाव के कारण। परन्तु साफ़ बात यह है कि उसने कोई उत्तर नहीं दिया और राज-ज्योतिषी ने भी इस विषय पर फिर ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया।

इतने में लेवेरियर के परचे छपे। एअरी ने यह देखकर कि लेवेरियर का उत्तर भी ऐडम्स का सा निकला है नये ग्रह की खोज करना निश्चय कर लिया; परन्तु यह समझ कर कि नये ग्रह के देखने के लिए बहुत बड़े दूरदर्शक की आवश्यकता पड़ेगी, और ग्रिनिच में

वैसा यंत्र न रहने के कारण, उसने केम्ब्रिज के प्रोफ़ेसर चैलिस को ग्रह की खोज करने को लिखा। ग्रह की पहचान उसकी आकृति से करने की चेष्टा करने के बदले यह काम चैलिस ने उसकी गति से करना चाहा। आकाश के उस भाग का जहाँ ग्रह का



चित्र ४१३—गाले को नेपच्यून कहाँ दिखलाई पड़ा।

नवीन ग्रह की स्थिति तीर से सूचित की गई है।
(अगले चित्र से तुलना कीजिए)

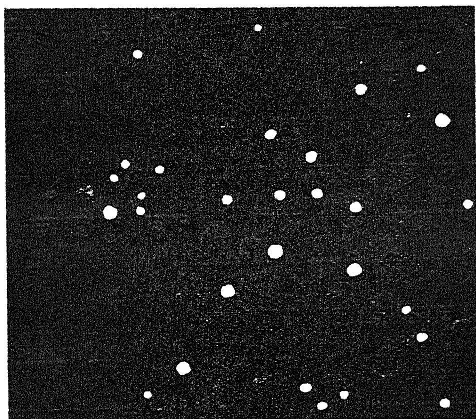
रहना बतलाया गया था कोई अच्छा नक़शा इँगलैण्ड में नहीं था। इसलिए यह आवश्यक था कि उस भाग के सब नक्षत्रों की स्थिति कई बार सूक्ष्म रीति से नापी जाय। ऐसा करने पर और प्रत्येक नक्षत्र के भिन्न-भिन्न वेधों का मिलान करने से ग्रह का पता उसकी गति से लग जाता। यह रीति तो बड़ी पक्की थी। ग्रह यदि इतना छोटा भी होता कि इसका विम्ब दिखलाई न पड़ता और नक्षत्रों के

समान विन्दु-सरीखा ही जान पड़ता, तो भी उसका पता लग जाता; परन्तु इस रीति में समय बहुत लगता है। पीछे पता लगा कि ४ अगस्त १८४६ और फिर १२ अगस्त को नये ग्रह की स्थिति नापी गई थी। यदि चैलिस इन दोनों बेधों की तुलना करता तो उसे नये ग्रह के आविष्कार का यश मिलता, परन्तु अन्य कामों को इससे अधिक आवश्यक समझने के कारण ये बेध उसके नोट-बुक में ही पड़े रहे। न्यूकॉम्ब का कहना है कि चैलिस का कार्य-क्रम बहुत अंश उस मनुष्य का-सा था जो यह जान कर कि शायद एक हीरा अमुक स्थान के पास समुद्र के किनारे बालू पर गिर गया है, उस स्थान के पास के सब बालू को किसी सुविधा के स्थान में उठा ले जाय, इस अभिप्राय से कि अवकाश मिलने पर उसे आराम से चाला जायगा; और इस तरह से हीरा सचमुच उसके कब्ज़े में रहे परन्तु उसे पता न लगे।

लेवेरियर ने गाले के नाम चिट्ठी सितम्बर १८४६ में भेजी थी। उस समय भी चैलिस नक्षत्रों के बेध में लिप्त था और उसे ज़रा भी ख़बर न थी कि "खोज की मुख्य वस्तु उसके नोट-बुक में पेन्सिल से लिखे अक्षरों में अच्छी तरह क़ैद हो गई है"। जब नये ग्रह के देखे जाने की ख़बर चैलिस को मालूम हुई तब उसे अपने नोट-बुक से पता लगा कि उसने स्वयं क़रीब दो महीने पहले ही इसको देखा था; परन्तु पछताने से क्या होता है।

अब एअरी ने अपनी पूरी शक्ति से ऐडम्स का नाम प्रसिद्ध करना चाहा। बड़ी बहस चली और स्वभावतः लोगों के मिजाज़ गरम हो गये। लेवेरियर के मित्र यही समझते थे कि यह सब एक चाल है जिससे यह बतला कर कि ऐडम्स ने पहले ही से गणना कर रक्खी थी अँगरेज़ यह चाहते हैं कि लेवेरियर को यश न मिलने

हैं। ऐडम्स के मित्र एअरी और चैलिस पर, विशेषकर एअरी पर, हद से ज्याद: नाखुश हुए और बड़ी कड़ी कड़ी बातें कही गई। परन्तु जैसा न्यूकॉम्ब लिखते हैं "लेवेरियर और ऐडम्स के बीच में इस अद्-भुत गणना में क़ानूनी प्रथमता लेवेरियर की थी, यद्यपि ऐडम्स उससे लगभग साल भर आगे बढ़ा था। इसके कारण दो हैं। पहले तो



चित्र ३१४—इस नक़शे से तुलना करने पर गाले को पता चल गया कि नवीन पिण्ड कोई ग्रह है।

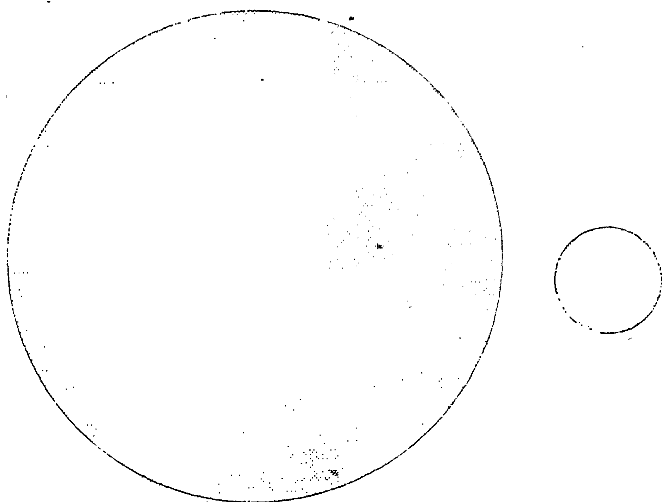
क्योंकि यदि यह पहले भी यहीं रहा होता तो नक़शे में अवश्य अंकित होता।

ऐडम्स ने ग्रह देखे जाने के पहले कुछ भी प्रकाशित नहीं किया; दूसरे, लेवेरियर के आदेशानुसार ही ग्रह का वास्तविक आविष्कार हुआ। परन्तु इससे ऐडम्स का जो आदर ऐसे उत्तम प्रश्न पर आक्रमण करने में और उसको वीरता और सफलता-पूर्वक हल करने में कौशल के लिए मिलना चाहिए उसमें कुछ कमी न होनी

चाहिए। विज्ञान का चित्त उस शिखर पर अब पहुँच रहा है जहाँ प्रथमता के विषय में वादानुवाद इज़्ज़त के ख़िलाफ़ समझा जाता है। आविष्कार मनुष्य-जाति के लाभ के लिए किये जाते हैं; और यदि स्वाधीन रूप से कई व्यक्ति एक ही आविष्कार को करें तो उचित यही है कि प्रत्येक को अपनी सफलता के लिए कीर्ति मिले। हमें चाहिए कि हम मिस्टर ऐडम्स को उसी किन्तु-परन्तु-रहित प्रशंसा का हक़दार समझें जो प्रत्येक अकेला आविष्कारक को मिलना चाहिए; और अधिक भाग्यशाली लेवेरियर के कारण जो कुछ प्रथमता का हक़ उसने खो दिया, उसका चुकता उस समवेदना से हो जायगा जो अपने कार्य को तुरन्त प्रकाशित कराने में असफलता के कारण इस तीव्र बुद्धिवाले अल्प-वयस्क विद्यार्थी के प्रति सबको होगा, यद्यपि रोचकता और महत्त्व के कारण इसे तुरन्त छप जाना चाहिए था।"

नेपच्यून के आविष्कार के बाद कई एक बातों को खोज करनी पड़ी। पहली बात यह थी कि देखा जाय कि पहले कब कब इस ग्रह का बेध किया गया था। लेवेरियर और ऐडम्स दोनों ने ग्रह की स्थिति ठीक बतलाई थी, परन्तु भविष्य में यह किधर जायगा—इसकी शुद्ध कक्षा क्या है—दोनों ने ग़लत बतलाया था, क्योंकि नये ग्रह की दूरी बोडे के नियमानुसार कल्पना की गई थी, परन्तु वास्तविक दूरी भिन्न है। तो भी थोड़े महीनों में ही नये ग्रह की शुद्ध कक्षा का ज्ञान सबको हो गया। शुद्ध कक्षा के ज्ञान के बाद देखना पड़ा कि गत वर्षों में यह जहाँ जहाँ रहा होगा आकाश के उस भाग का बेध कौन कौन कर रहा था। इनकी नक्षत्र-सूचियों को देखने से ग्रह के कई पुराने स्थानों का पता लगने की सम्भावना थी। देखते देखते पता लगा कि फ्रेंच ज्योतिषी लैलांड (Lalande) ने ५० वर्ष पहले ग्रह के समीपवर्ती प्रदेश के नक्षत्रों का बेध किया था।

उसकी छपी सूची को देखने पर ग्रह मिला। अवश्य ही, लैलांड ने इसे नक्षत्र समझा था, परन्तु विशेष बात यह थी कि इसके आगे संदेह-सूचक चिह्न छपा था। संयोगवश, पेरिस-वेधशाला के असली हस्तलिखित कागज़ात सावधानी से सुरक्षित रक्खे गये थे। उनसे पता लगा कि ८ और फिर १० मई १७९५ को लैलांड ने



चित्र ४१४—नेपच्यून और पृथ्वी की सापेक्षिक नाप।
नेपच्यून पृथ्वी से बहुत बड़ा है।

इस ग्रह का वेध किया था। इतनी देर में ग्रह ज़रा सा हट गया था; इसी से लैलांड ने यह समझा कि शायद इन दोनों वेधों में से किसी एक में अशुद्धि हो गई होगी; इसी लिए छपी सूची में उसने संदेह चिह्न लगा दिया था। उसे ज़रा भी ख़्याल नहीं था कि इस त्रुटि में एक ऐसी बात छिपी हुई है जिसके आविष्कार से उसका नाम अमर हो जाता। बिना अच्छी तरह जाँच किये ही उसने

पहले वेध को छोड़ दिया और दूसरे को संदेह-चिह्न-सहित लिख लिया और "इस प्रकार बड़े दाम का मोती हाथ से गिर गया, जिसका फिर पता अर्ध-शताब्दी के बीतने के पहले नहीं लग सका"।

५—परिक्रमा-काल, इत्यादि—नेपच्यून सूर्य से पृथ्वी की अपेक्षा ३० गुनी अधिक दूरी पर है। इसी लिए इसका परिक्रमा-काल लगभग १६५ वर्ष है। ज्यों ज्यों ग्रहों की दूरी बढ़ती जाती है, त्यों त्यों उनका वेग घटता जाता है, तिस पर भी नेपच्यून लगभग ३⅓ मील प्रतिसेकंड चलता है। इसके आविष्कार के इतिहास से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह कोरी आँख से नहीं देखा जा सकता; परन्तु छोटे दूरदर्शकों से यह मन्द तारे के समान चमकता हुआ देखा जा सकता है।

बड़े दूरदर्शकों में इसका छोटा सा विम्ब हरे रंग का दिखलाई पड़ता है। यूरेनस से यह ग्रह नाप में ज़रा-सा ही छोटा है। यद्यपि अभी तक इसके परिभ्रमण-काल का—अपनी धुरी पर एक बार घूमने के समय का—पता नहीं लग सका है, तिस पर भी नाप, तौल, घनता, रंग, रश्मि-चित्र, इत्यादि की समानता से अनुमान किया जाता है कि नेपच्यून की बनावट यूरेनस की तरह होगी।

नेपच्यून के एक उपग्रह को लैसल ने पहले पहल देखा। नाप में यह शायद चन्द्रमा के बराबर होगा। यह भी बृहस्पति के बाहरी उपग्रहों की तरह उलटी दिशा में घूमता है।

६—नेपच्यून से सौर-परिवार कैसा दिखलाई पड़ेगा—नेपच्यून से सूर्य इतना दूर है कि वहाँ से यह उतना ही बड़ा दिखलाई पड़ता होगा जितना बड़ा हमको शुक्र निकटतम स्थिति में जान पड़ता है। गरमी तो वहाँ नाममात्र ही पहुँचती होगी। परन्तु दोपहर के समय वहाँ का सूर्यप्रकाश पूर्ण चन्द्रमा के प्रकाश का ७०० गुना

होगा। इसलिए वहाँ दिन में रोशनी इतनी तेज़ होगी कि यदि वहाँ मनुष्य रहते तो उन्हें कम प्रकाश की शिकायत न रहती। १,००० मोमबत्ती की ताक़त की रोशनी को दस फ़ुट पर रखने से जितना प्रकाश मिलता है वहाँ दोपहर का प्रकाश उतना ही होगा। गरमी भी उसी अनुपात में मिलती है जैसे प्रकाश। परन्तु



[स्प्लेंडर ऑफ़ दि हेवंस से

चित्र ४१६—**गाले**।

इसने नेपच्यून को पहले पहल देखा था। आविष्कार के समय गाले जवान था।

मनुष्यों के काम के लिए सूर्य में प्रकाश आवश्यकता से बहुत अधिक है। पूर्णिमा के चन्द्रमा से हमको इतना प्रकाश मिलता है कि बहुत कुछ काम चल जाता है, परन्तु इससे गरमी इतनी कम आती है कि चन्द्रमा का प्रकाश शीतल कहा जाता है। इसी प्रकार नेपच्यून पर भी सूर्य से विशेष गरमी न मिल सकेगी। यदि, जैसा

बहुत सम्भव जान पड़ता है, नेपच्यून में निजो गरमी नहीं है, या बहुत कम है, तो सूर्य की गरमी काफ़ी न पहुँचने से वहाँ हमारे जैसा वायुमंडल तरल रूप धारण कर लेगा—केवल इतना ही नहीं, इसके कुछ अंश जम जायँगे।

नेपच्यून से, हमारी जैसी आँखों को, बृहस्पति और शनि मध्यम या मंद चमक के तारे के समान दिखलाई पड़ेंगे। शुक्र और पृथ्वी अपने अधिक परिक्षेपण-शक्ति के कारण चमकीले तो शायद शनि के ही समान दिखलाई पड़ेंगे, परन्तु सूर्य के बहुत निकट होने के कारण ये सर्व-सूर्य-ग्रहण के समय ही सुगमता से देखे जा सकेंगे। बुध के सूर्य के बहुत पास और साथ ही छोटा और वायु-रहित होने के कारण, मंगल के भी वायुरहित होने के कारण, और यूरेनस को कम प्रकाश मिलने के कारण, शायद ये तीनों ग्रह वहाँ से केवल ग्रहण के समय लिये गये फ़ोटोग्राफ़ों में ही देखे जा सकेंगे।

७—नवीन ग्रह का इतिहास—इस वर्ष (१९३० में) नेपच्यून से भी दूर रहनेवाले एक नवीन ग्रह का आविष्कार हुआ है। स्वभावतः जनता को भी नवीन ग्रह के आविष्कार में दिलचस्पी हो जाती है, क्योंकि ऐसी घटनायें प्रतिदिन नहीं हुआ करतीं। इस नये ग्रह को लेकर आधुनिक समय में अभी तक कुल तीन ग्रहों का आविष्कार हुआ है, यूरेनस, नेपच्यून और यह। इसी लिए तो सबका चित्त इसकी ओर आकर्षित हो जाता है।

नये ग्रह का आविष्कार आकाश के उसी कोने में हुआ है जहाँ आज से डेढ़ सौ वर्ष पहले हरशेल ने यूरेनस का आविष्कार किया था। इसका भी आविष्कार उसी प्रकार हुआ है जिस तरह नेपच्यून का हुआ था। नेपच्यून के आविष्कार के बाद से ही लोग इससे भी दूरस्थ किसी नवीन ग्रह के आविष्कार की फ़िक्र में थे,

परन्तु इस वर्ष के पहले तक की सभी चेष्टायें असफल हुई थीं। बात यह है कि यूरेनस की गति में अज्ञात ग्रह के कारण १२०



[ऐडम्स के कलेक्टेड वर्क्स से

चित्र ५१७—जे० सी० ऐडम्स।

इसने भी स्वाधीन रूप से नेपच्यून की गणना की थी।
उस समय वह केवल २६ वर्ष का था।

विकला का अन्तर पड़ गया था, परन्तु नेपच्यून की गति में केवल २ विकला का ही अन्तर पड़ता था। २ विकला का अन्तर इतना

सूक्ष्म है कि साधारण दूरदर्शकों से इसका नापना भी कठिन है। इस पर से विशेष कठिनाई यह है कि आविष्कार होने के बाद से अभी तक नेपच्यून ने एक भी पूरा चक्कर नहीं लगाया है और इसलिए इसके भ्रमण-काल, इत्यादि, का हमको इतना अच्छा ज्ञान नहीं है, जितना होना चाहिए। परन्तु इन कठिनाइयों से हिम्मत न हार कर गणितज्ञ इसके पीछे वर्षों से पड़े थे। वे यूरेनस के बचे-खुचे अन्तर पर भी भरोसा करते थे। इन गणितज्ञ ज्योतिषियों में से डब्ल्यू० एच० पिकरिङ्ग और पी० लॉवेल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

जनता में लॉवेल अपने मंगल-सम्बन्धी कार्य के लिए ही प्रसिद्ध था, परन्तु उसने अन्य ग्रहों के विषय में भी बहुत कार्य किया था। जैसा पहले लिखा जा चुका है। उसने अपने ख़र्च से ऊँचे और बहुत ही अच्छे स्थान पर बड़ी और सुसज्जित बेधशाला बनवाई थी और मरने के बाद इसमें ग्रह-सम्बन्धी खोजों को जारी रखने के लिए काफ़ी धन छोड़ गया। उसके सहायक लगातार इस बेधशाला में महत्त्वपूर्ण काम में लगे रहे हैं। मरने के दो वर्ष पहले उसने वरुण के उस पारवाले ग्रह पर एक परचा पढ़ा था, जिसमें उसकी स्थिति की भविष्यद्वाणी की गई थी। नये ग्रह का आविष्कार इस स्थिति के बहुत पास ही हुआ है। तब से आज तक इस ग्रह के लिए बराबर खोज होती रही है, परन्तु इसका आविष्कार इसी मार्च (१९३०) में हुआ है।

८—नवीन ग्रह का स्वरूप—अभी इस ग्रह के सम्बन्ध में अधिक ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ है, परन्तु यह ठीक अवान्तर ग्रहों जैसा होगा और उनसे यह पृथक् केवल इसी बूते पर किया जाता है कि इसकी गति बहुत कम है, जो इसके बहुत दूर होने का परिणाम है। ठीक कक्षा का ज्ञान तो अभी वर्षों तक नहीं हो सकेगा

क्योंकि बहुत दूर होने के कारण यह अत्यन्त मंद-गति से चलता है। साथ ही, बहुत निस्तेज होने के कारण पिछले वर्षों के वेधों में इसके निकलने की कम सम्भावना है; हाँ, कुछ प्लेटों में इसका फ़ोटोग्राफ़ मिल सकता है, जिससे कक्षा की गणना में सहायता मिलेगी।

नया ग्रह हमको १५ वीं श्रेणी के तारे की तरह दिखलाई पड़ता है; इसलिए यह नेपच्यून से भी १,००० गुना मंद प्रकाश का है। ३० इंच के तालयुक्त दूरदर्शक से इसके फ़ोटोग्राफ़ लेने में आध घंटे से कम प्रकाश-दर्शन नहीं लगेगा और यदि इसके कोई उपग्रह होंगे तो वे संसार के बड़े-से-बड़े दो-चार दूरदर्शकों से ही देखे जा सकेंगे।

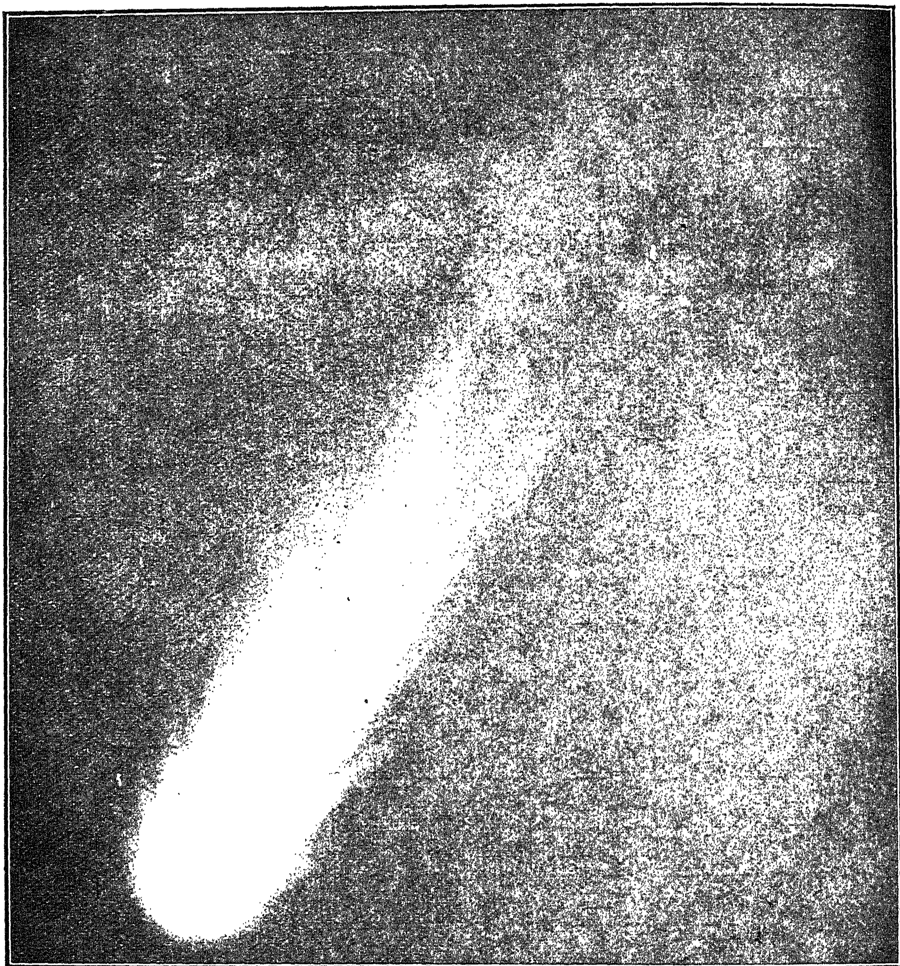
नाप में यह ग्रह, सम्भव है, बहुत छोटा हो; क्योंकि ज्ञात ग्रहों में बृहस्पति सबसे बड़ा है, और इसके इस पार और उस पार दोनों ओर के ग्रह क्रमशः छोटे होते जाते हैं (मंगल ही इस नियम से बद्ध नहीं है)।

नेपच्यून को अब सौर-परिवार का द्वार-रक्षक होने की पदवी नहीं मिल सकती। यह पृथ्वी की अपेक्षा केवल ३० गुनी ही अधिक दूरी पर है, परन्तु नवीन ग्रह लगभग ४५ गुनी दूरी पर होगा। इसके एक प्रदक्षिणा में ३०० से भी अधिक वर्ष लगते होंगे। यह वस्तुतः शनैश्चर—शनैः शनैः चलनेवाला—है।

नवीन ग्रह से सूर्य उतना ही बड़ा दिखलाई पड़ता होगा जैसा हमको बृहस्पति दिखलाई पड़ता है। वहाँ भयानक सरदी पड़ती होगी। यदि पृथ्वी उस ग्रह की दूरी पर कर दी जाय तो हम सब और हमारा वायुमंडल भी जम कर ठोस हो जायगा।*

---

* इन दो प्रकरणों की कई बातें लंडन के "टाइम्स" समाचार-पत्र (१७ मार्च १९३०) में निकले डा० जैकसन के एक लेख के आधार पर हैं।



[हेलवान बेधशाला, ईजिप्ट

चित्र २१८—ब्रुक्स केतु।

देखिए इस केतु से बहुत सी रश्मियाँ निकलती हुई जान पड़ती हैं। यह चित्र हेलवान (ईजिप्ट) के ३० इंचवाले दर्पण-युक्त दूरदर्शक से लिया गया था (२२ अक्टूबर १९११); प्रकाश-दर्शन १० मिनट।

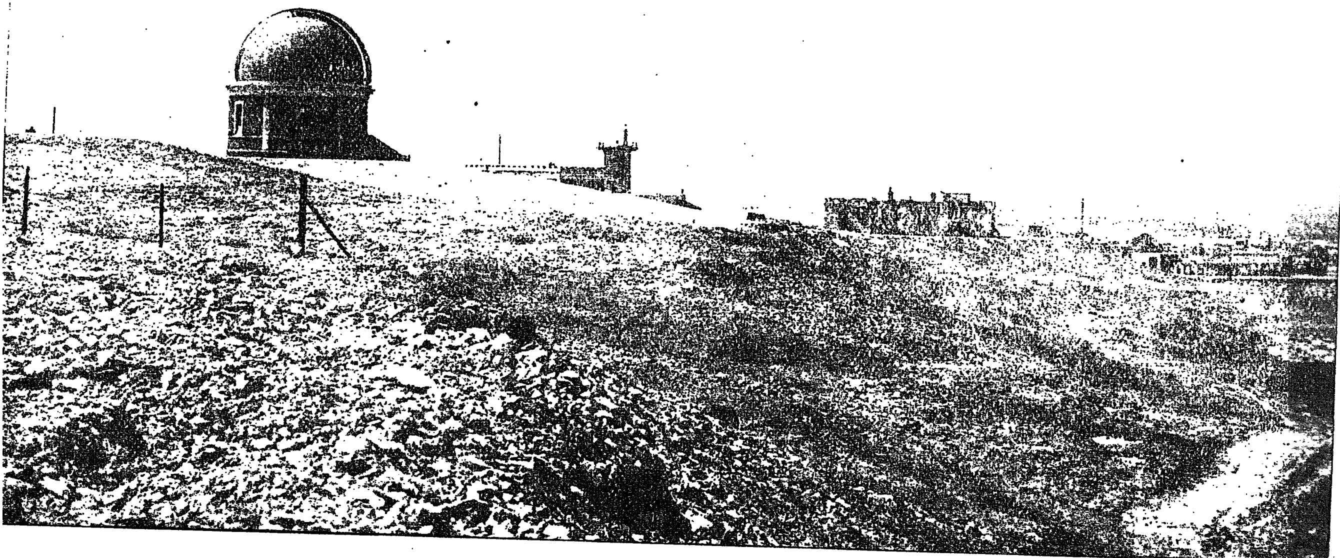
अध्याय १६

पुच्छल तारे

१—**प्रारम्भिक**—सूर्य, चन्द्रमा और ग्रह स्थायी हैं। उनकी आकृति एक सी रहती है या नियमानुकूल बदलती है, परन्तु अब जिन आकाशीय पिंडों पर विचार किया जायगा वे बड़े ही विचित्र हैं, और इसलिए जनता उन पर बहुत ध्यान देती आई है। सूर्य आज प्रातःकाल उदय हुआ था; कल भी इसी प्रकार उदय होगा, चन्द्रमा इस महीने भी सदा की भाँति घटेगा, अमावस्या होगी, फिर कलायें दिखलाई पड़ेंगी और तब पूर्णिमा होगी; ऐसा सभी पहले से बतला सकते हैं। परन्तु पुच्छल तारे (Comets) अधिकांश एकाएक दिखलाई पड़ जाते हैं और अकसर उनकी पूँछें इतनी बढ़ जाती हैं कि असभ्य मनुष्यों की बात ही क्या, इस समय के बहुत से सभ्य मनुष्य भी किसी आपत्ति की भावना से डरने लगते हैं। जो कोई भी सुन पाता है वह एक बार इस दीर्घकाय अभ्यागत की ओर अवश्य देखता है, चाहे उसका आना उसे शुभ या अशुभ जान पड़े। परन्तु पिछले कई हज़ार वर्षों में, पृथ्वी के हर एक कोने में पुच्छल ताराओं का आना अशुभ ही माना जाता था और भारी दुर्घटनाओं से इसका सम्बन्ध समझा जाता था जैसा कि सत्रहवीं शताब्दी के एक यूरोपीय कवि* ने लिखा है—"प्रज्वलित नक्षत्र संसार को दुर्भिक्ष, महामारी और महायुद्ध से तर्जित करता है; राजाओं को मृत्यु से, राज्यों को उपद्रव से; प्रत्येक रियासत को अनेक हानियों से; गँडेरियों को मरी से; कृषकों को

---

* Du Bartus. His Divine Weekes and Workes.

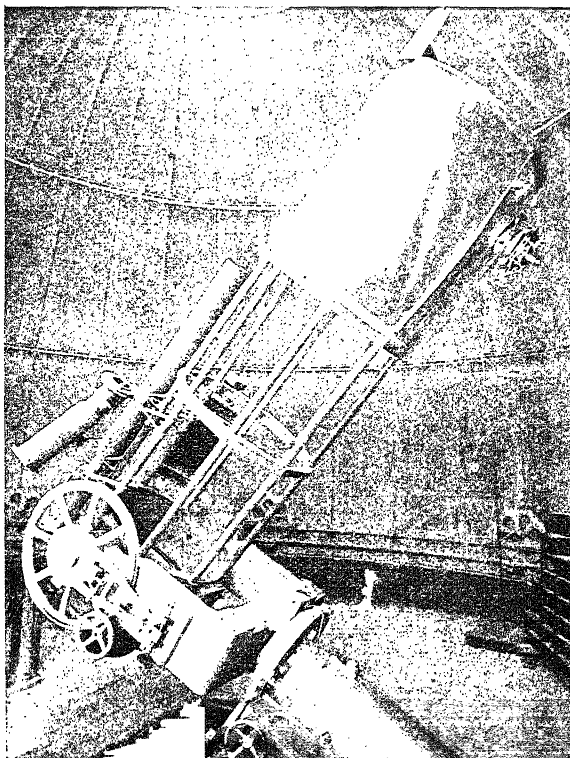


[हेलवान बेधशाला

चित्र २१९—हेलवान बेधशाला ।

कायरो के पास, ईजिप्ट । यहाँ का प्रधान यंत्र अगले चित्र में दिखलाया गया है ।

बुरे मौसिम से; नाविकों को तूफ़ान से; नगरों को विप्लव से।" महाकवि शेक्सपियर ने भी लिखा है "जब भिखमंगे मरते हैं तब पुच्छल तारे नहीं दिखलाई पड़ते, राजाओं की मृत्यु पर आकाश



[हेलवान वेधशाला

चित्र ४२०—हेलवान बेधशाला का ३० इंचवाला दर्पणयुक्त दूरदर्शक।

स्वयं जल उठता है।" प्राचीन समय के लोग ज्योतिष-घटनाओं में सर्व-सूर्य-ग्रहण और चमकीले पुच्छल तारात्रों को नहीं भूल सकते थे और उनकी चर्चा प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थों में मिलती है।

पुराने समय के लोगों का विश्वास ऐसा अवश्य था, परन्तु इस बात की सचाई की परीक्षा करने से उनका विश्वास ठीक नहीं जान पड़ता। सच्ची बात यह है कि प्रतिवर्ष कहीं न कहीं, कोई न कोई, दुर्घटना हुआ ही करती है और यदि कोई दुर्घटनाओं और पुच्छल तारात्रों में नाता जोड़ना चाहे तो ऐसा वह आसानी से कर सकता है। पुच्छल तारात्रों का एकाएक दिखलाई पड़ना, उनकी चमक, उनके आकार और उनके घटने बढ़ने से अवश्य ही प्राचीन लोगों के हृदय में आनन्द के बदले भय का संचार होता था और इसी लिए वे ऐसे तारात्रों का सम्बन्ध दुर्घटनाओं से ही जोड़ा करते थे।

फिर, यदि छोटे छोटे, केवल दूरदर्शक में दिखलाई पड़नेवाले, पुच्छल तारात्रों पर भी ध्यान रक्खा जाय तब हमेशा ही एक दो पुच्छल तारे आकाश में उपस्थित रहते हैं।

२—पुच्छल तारात्रों का स्वरूप—पुच्छल तारे, जैसा उनके नाम से ही प्रत्यक्ष है, पूँछ-समेत दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु छोटे पुच्छल तारे, विशेषकर वे जो इतने छोटे हैं कि केवल दूरदर्शक यंत्र से ही देखे जा सकते हैं, कई एक बिना पूँछ के भी होते हैं। साधारणतः पुच्छल तारात्रों में तीन भाग होते हैं, (१) नाभि (nucleus), (२) शिखा (head) या शिर और (३) पुच्छ (tail)। नाभि छोटी और बहुत चमकीली होती है (चित्र ५२२) और यह शिर के बीच में रहती है। नाभि तारे के समान दिखलाई पड़ती है, परन्तु सब पुच्छल तारात्रों में यह उपस्थित नहीं रहती और किसी किसी में दो या अधिक नाभियाँ भी होती हैं। सभी पुच्छल तारात्रों में शिर होता है। यह छोटी सी नीहारिका के समान, या अस्पष्ट बादल के बहुत छोटे टुकड़े के समान होता है और साधारणतः गोल रहता है। बहुत से पुच्छल तारात्रों में पहले

नाभि नहीं रहती, सूर्य के पास आ जाने पर ही यह बनती है, परन्तु बाज़ बाज़ में पहले ही से, सूर्य से दूर रहने पर भी, नाभि दिखलाई पड़ती है। पूँछ झाड़ू के समान, सूर्य से विपरीत दिशा में निकली हुई, दिखलाई पड़ती है और प्रायः सभी चमकीले पुच्छल



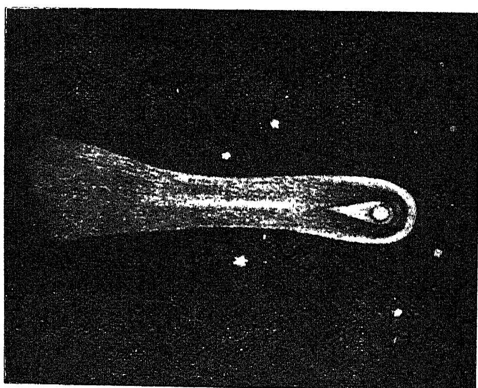
[पंच की विशेष अनुमति से

चित्र ४२१—नवीन केतु के दिखलाई पड़ने पर ज्योतिषियों की चिन्ता !!!

ताराओं में यह रहती है। पूँछ बिलकुल सीधी नहीं होती। यह किस ओर झुकी रहती है यह चित्र २६१, पृष्ठ २९९, से स्पष्ट हो जायगा।

कभी कभी शिर कई तहों से बना हुआ दिखलाई पड़ता है (चित्र ५२३), परन्तु बहुत कम पुच्छल तारात्रों में ऐसा देखा गया है।

पुच्छल तारे का शिर साधारण तारे के समान छोटे से लेकर चन्द्रमा के समान बड़े तक देखा गया है, परन्तु चमकीला रहने पर



[हिम्मेल उन्ड एर्डे से

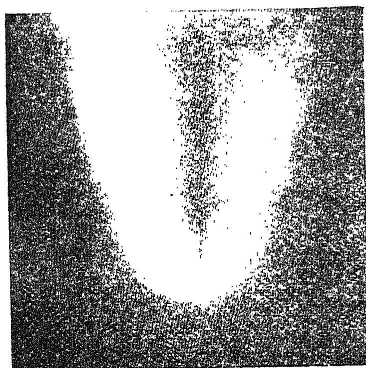
चित्र ५२२—साधारणतः पुच्छल तारात्रों में तीन भाग होते हैं।

(१) नाभि, जो तारे के समान दिखलाई पड़ती है,
(२) शिखा या शिर, जिसके ही बीच नाभि रहती है
और (३) पूँछ।

भी यह पारदर्शक होता है। जब पुच्छल तारे की गति के कारण शिर किसी साधारण तारे के सामने आ जाता है तो भी पीछेवाला तारा पहले ही की भाँति स्पष्ट और चमकीला दिखलाई पड़ता है। पूँछ भी पूर्णतया पारदर्शक होती है।

पुच्छल तारे बाज़ तो इतने चमकीले होते हैं कि वे दिन में भी देखे जा सकते हैं। १८८२ का पुच्छल तारा (चित्र ५२४) एक समय इतना चमकीला हो गया था कि हाथ को फैला कर सूर्य

को ओट में कर देने पर यह दिन में ही, सूर्य से थोड़ी दूर पर, दिखलाई पड़ता था। परन्तु पाँच महीने के भीतर ही, सूर्य से कुछ दूर निकल जाने पर, यह इतना मंद पड़ गया कि इसे कोई कोरी आँख से नहीं देख सकता था। साल भर में यह इतना मंद और छोटा हो गया कि बड़े से बड़े दूरदर्शकों से भी नहीं दिखलाई पड़ता था। यह बात नहीं है कि केवल अधिक दूरी के ही कारण यह इतना छोटा और कम चमकीला दिखलाई पड़ता रहा हो। जैसा आगे समझाया जायगा, साधारणतः सूर्य के पास आने से ही पुच्छल ताराओं में पूँछ निकल आती है और वे बड़े और चमकीले हो जाते हैं। दूर जाने पर वे फिर पहले जैसे छोटे और मंद हो जाते हैं।



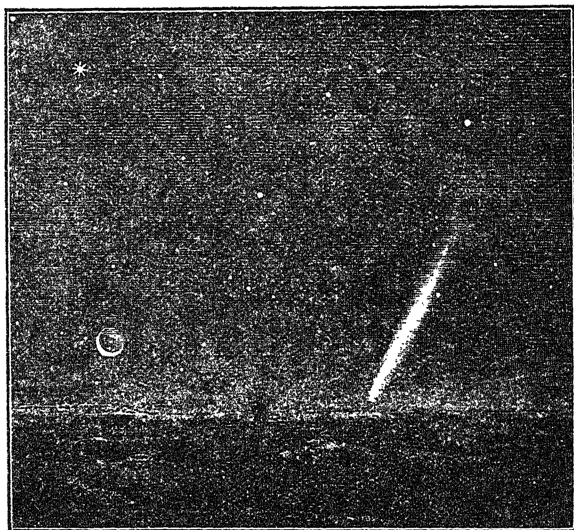
[बॉन्ड

चित्र ४२३—कभी कभी पुच्छल तारे का शिर कई तहों से बना दिखलाई पड़ता है।

डोनाटी पुच्छल तारा १८५८।

बाज़ पुच्छल तारे तो इतने चमकीले होते हैं कि सूर्य और चन्द्रमा के बाद उन्हीं का नम्बर आता है, और इतने बड़े होते हैं कि उनकी पूँछ क्षितिज (horizon) से लेकर खस्वस्तिक (zenith सर के ऊपर के बिन्दु) तक पहुँच जाती है; परन्तु जितने पुच्छल ताराओं का इस समय तक पता चला है उनमें से अधिकांश केवल दूरदर्शक से ही देखे जा सकते हैं और वे बहुत छोटे और मंद होते हैं। १९२५ तक लगभग ९०० पुच्छल तारे देखे गये थे। इनमें से लगभग ४०० तो दूरदर्शक के आविष्कार के पहले देखे गये थे

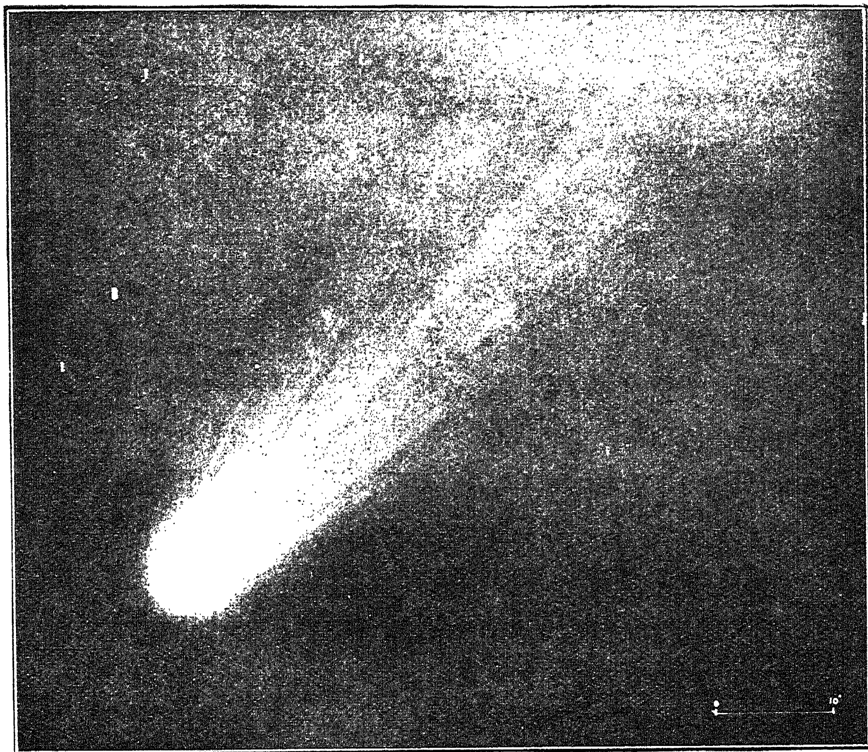
और इसलिए वे चमकीले थे। शेष सोलहवीं शताब्दी के बाद देखे गये हैं। अब बहुत से लोग पुच्छल तारात्रों की खोज नियमानुसार किया करते हैं और १८८० के बाद से प्रतिवर्ष पाँच पुच्छल तारात्रों के देखे जाने का परता (average) पड़ा है। सौ वर्ष में पन्द्रह बीस वस्तुत: चमकीले पुच्छल तारे देखे गये हैं और इनमें से एक दो



[चेम्बर्स की ऐस्ट्रॉनोमी से

चित्र ५२४—सन् १८८२ का पुच्छल तारा।
यह एक समय इतना चमकीला था कि दिन में ही दिखलाई पड़ता था।

दिन को भी दिखलाई पड़ जाते हैं। १६१० में दो चमकीले पुच्छल तारे दिखलाई पड़े थे, जिनमें एक इतना चमकीला था कि वह दिन में भी देखा जा सकता था। उस वर्ष का दूसरा पुच्छल तारा प्रसिद्ध हैली-केतु (Halley's comet) था, जिसका वर्णन आगे किया जायगा। पुच्छल तारे को केतु भी कहते हैं।



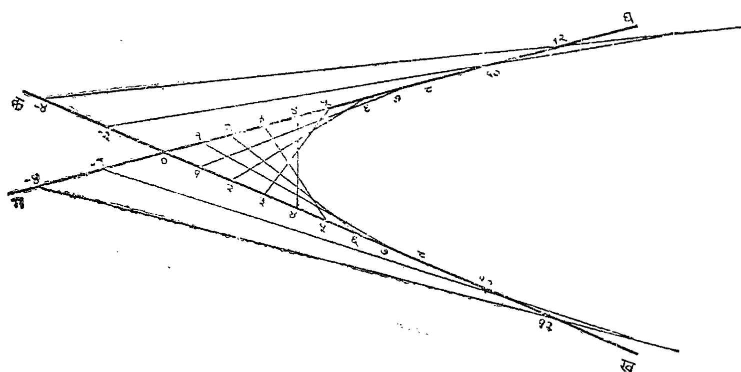
[हेलवान बेधशाला

चित्र ४२५—ब्रुक्स केतु।

चित्र ४१८ में दिखलाये गये केतु का ६ दिन बाद का दृश्य। देखिए केतु की पूँछ अब बहुत बड़ी हो गई है (नोट—यह चित्र पिछले की अपेक्षा छोटे पैमाने पर है)।

प्राचीन काल के कुछ लोगों की यह धारणा थी कि केतु एक तारे से दूसरे तारे को भेंट मुलाकात के लिए बराबर जाया करते हैं। यदि उनकी यह धारणा ठीक होती तो इन केतुओं को करोड़ों वर्ष तो चलने में लगते और केवल दो चार महीने ही उनको मुलाक़ात के लिए समय मिलता !

३—दीर्घ-वृत्त और परवलय—पुच्छल तारात्रों की स्थिति को बेध करके गणना द्वारा उनकी कक्षाओं का पता सुगमता से लगाया जा सकता है। प्रायः सभी पुच्छल तारात्रों की कक्षा

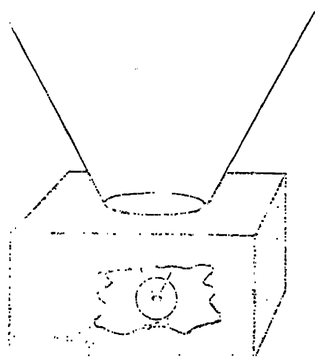


चित्र ५२६—परवलय खींचने की रीति।

अत्यन्त लम्बी दीर्घ-वृत्त (ellipse) या परवलय (parabola) के आकार की होती है। हमने देख लिया है (पृष्ठ ४६४) कि दीर्घवृत्त क्या है और किस प्रकार खींचा जा सकता है। अब यहाँ पर परवलय खींचने की रीति बतलाई जाती है। दो रेखायें क ख, ग घ एक दूसरे को ० में काटती हुई खींच लीजिए (चित्र ५२६)। इन पर बिन्दु १, २, ३, इत्यादि, बराबर बराबर दूरी पर चित्र में दिखलाई गई रीति ले लीजिए। अब किसी संख्या की कल्पना कीजिए, जैसे ८। उन

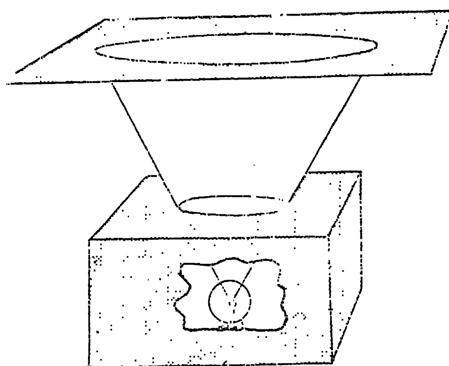
बिन्दुओं द्वारा, जिनकी संख्याओं का जोड़ ८ है, रेखायें खींचने से परवलय बन जायगा। बिन्दु –१ को बिन्दु ९ से जोड़ना चाहिए, –२ को १० से, इत्यादि।

परवलय सीमाबद्ध नहीं होता। यह अनन्त दूरी तक चला जाता है। परवलय के आकार से साधारण मनुष्य भी परिचित होंगे। जब कभी कोई एक पत्थर का टुकड़ा फेंकता है तब इसका मार्ग परवलय के आकार का होता है। नल से निकली पानी की धार भी परवलय के रूप में गिरती है। परवलय के समान एक दूसरी वक्र रेखा भी होती है जिसे अतिपरवलय (hyperbola) कहते हैं। वृत्त, दीर्घ-वृत्त, परवलय और अतिपरवलय का सम्बन्ध किसी सूची (Cone) को काटने से अच्छी तरह समझा जा सकता है। जैसे, यदि किसी बक्स के एक सिरे के बीच में गोल छेद काट दिया जाय और बक्स के ठीक बीच में बहुत छोटी सी, बिन्दु सदृश, बिजली बत्ती या दिया रख दिया जाय तो प्रकाश की रश्मियाँ सूची के आकार में निकलेंगी (चित्र ५२७)। यदि इस प्रकाश के मार्ग में कोई समतल (plane) पड़े, जैसे कोई दफ़्ती, और इस दफ़्ती को सूची के अक्ष के हिसाब से चौचक (लम्बरूप) रक्खा जाय तो प्रकाश इस पर वृत्त के रूप में पड़ेगा (चित्र ५२८)। यदि दफ़्ती को कुछ तिरछा रक्खा जाय तो प्रकाश इस पर दीर्घ-वृत्त के रूप में पड़ेगा (चित्र ५२९)। यदि दफ़्ती को धीरे-धीरे अधिक तिरछा किया जाय तो इस दीर्घ-वृत्त को

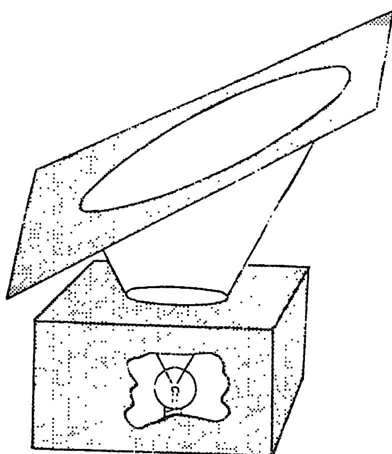


चित्र ५२७—प्रकाश-रश्मियों की सूची।

लम्बाई बढ़ती जायगी। अन्त में, जब दफ़्ती एक रश्मि के समानान्तर हो जाती है तब दीर्घ-वृत्त की लम्बाई इतनी बढ़ जाती है कि यदि यह काफ़ी बड़ी होती और प्रकाश काफ़ी तेज़ होता तो दीर्घ-वृत्त अनन्त दूरी तक जाता हुआ दिखलाई पड़ता (चित्र ५३०)। अब प्रकाश को सीमाबद्ध करनेवाली वक्र रेखा दीर्घ-वृत्त रह ही नहीं गई, क्योंकि यह अब वृत्त के समान बंद नहीं है। इसको परवलय कहते हैं। दफ़्ती को अधिक तिरछी स्थिति में रखने से अति-परवलय बनता है (चित्र ५३१)।



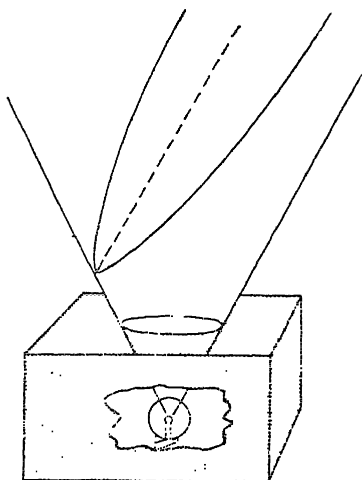
चित्र ५२८—वृत्त।
प्रकाश-सूची को किसी ऐसे समतल से काटने पर जो मध्य रश्मि से समकोण बनाता हो, वृत्त बनता है।



चित्र ५२९—दीर्घ-वृत्त।
प्रकाश-सूची को तिरछे समतल से काटने पर दीर्घ-वृत्त बनता है।

४—पुच्छल ताराओं की कक्षा—पुच्छल ताराओं की कक्षा अधिकतर बहुत लम्बी दीर्घ-वृत्त ही होती है। बाज़ की कक्षा परवलय और थोड़े से पुच्छल ताराओं की कक्षा अतिपरवलय भी होती है, परन्तु

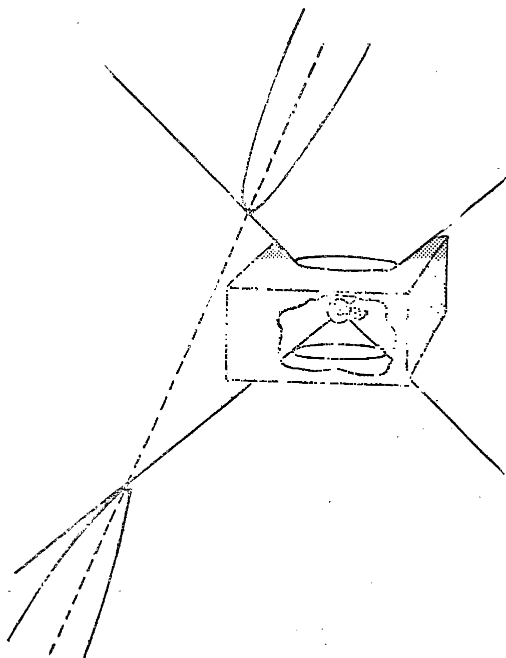
इनके सम्बन्ध में ज्योतिषियों को शंका है कि वस्तुतः शायद कक्षायें लम्बी दीर्घ-वृत्त ही होंगी। वेध की स्थूलता के कारण वे परवलय या अतिपरवलय की तरह जान पड़ती होंगी। इस बात का पता कि ज़रा सा भी वेध में अन्तर हो जाने से कक्षा क्यों दीर्घ-वृत्त के बदले परवलय या अतिपरवलय सी लगेगी चित्र ५३२ के देखने से लग जायगा। ध्यान देने योग्य बात है कि तीनों वक्र रेखायें उस भाग में जहाँ वे सूर्य और पृथ्वी के निकट हैं प्रायः मिली हुई हैं। केवल उस भाग में जहाँ वे पृथ्वी से दूर हैं वे स्पष्ट रूप से पृथक् हैं; परन्तु जब पुच्छल-तारा इस ओर रहता है तब वह पृथ्वी से इतनी दूर रहता है कि उसका ठीक वेध नहीं किया जा सकता। सारांश यह कि अभी तक इसका प्रमाण नहीं मिला है कि कोई पुच्छल तारा सूर्य की ओर वस्तुतः परवलय या अतिपरवलय में आता है, जिससे यह अर्थ निकलता है कि जह तक ज्योतिषियों को ज्ञात है कोई भी पुच्छल तारा वस्तुतः अन्य ताराओं के निकट से नहीं आता पाया गया है। हाँ, कुछ पुच्छल ताराओं की कक्षायें सूर्य की परिक्रमा करके लौटते समय अतिपरवलय अवश्य हो गई हैं, जिससे शंका होती है कि ऐसे पुच्छल तारे फिर न लौट कर आयेंगे।



चित्र ४२०—परवलय।

प्रकाश-सूची को ऐसे समतल से काटने पर जो सूची की सतह में स्थित किसी रश्मि के समानान्तर हो परवलय बनता है।

अत्यन्त लम्बे दीर्घ-वृत्त में, जो प्रायः परवलय ही से होते हैं, चलने-वाले पुच्छल तारात्र्यों के लौटने के विषय में भी कुछ नहीं कहा जा सकता। ज़रा सा भी विचलित हो जाने पर वे या तो अधिक



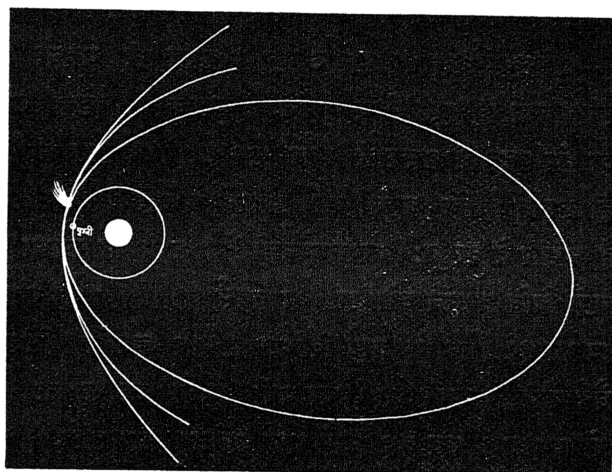
चित्र ४३१—अतिपरवलय।

अतिपरवलय में दो शाखायें होती हैं और यह प्रकाश-सूची को किसी इतने तिरछे समतल से काटने पर बनता है जो सूची को दोनों ओर काटे।

वृत्ताकार हो जायँगे, या वे अतिपरवलय हो जायँगे और तब पुच्छल तारा फिर लौटेगा ही नहीं।

हमने देखा है कि यद्यपि ग्रह सब दीर्घ-वृत्त में चलते हैं, तो भी उनकी कक्षायें प्रायः गोल हैं। परन्तु पुच्छल तारे, सबके सब, लम्बे

दीर्घवृत्त में चलते हैं और इसलिए सूर्य के पास आने पर ही दिखलाई पड़ते हैं। ऐसे पुच्छल तारात्रों की संख्या अब बढ़ती जा रही है जिनकी कक्षा हमें ठीक मालूम हो और जिनके लौटने का समय निश्चित रूप से बतलाया जा सके। पहले समझा जाता था कि पुच्छल तारे सभी परवलय में चलते हैं और इसलिए वे कभी



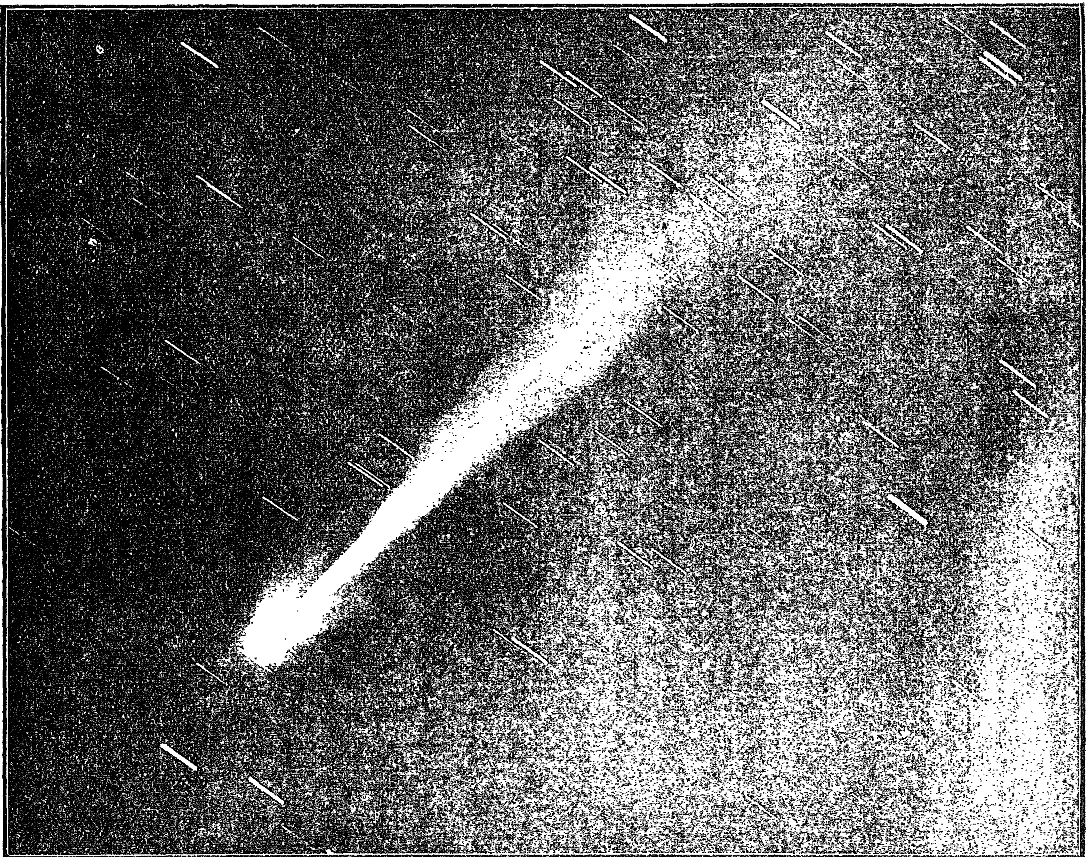
चित्र २३२—दीर्घ वृत्त, परवलय और अतिपरवलय।
इन तीनों में पृथ्वी के निकट अंतर बहुत कम है।

दुबारा नहीं लौटते। किसी पुच्छल तारे के लौटने के विषय में पहले पहल भविष्यद्वाणी हैली (Halley) ने उस केतु के लिए की थी जिसको अब हैली-केतु कहते हैं। इस भविष्यद्वाणी का इतिहास आगे लिखा जायगा। यह बड़ा ही रोचक है।

ग्रहों की कक्षाओं की धरातलें प्रायः एक ही हैं, परन्तु पुच्छल-तारात्रों को कक्षाओं की धरातलों में कोई भी सम्बंध नहीं है। कोई पृथ्वी की कक्षा की धरातल के निकट और कोई इससे बिलकुल भिन्न हैं। इसी प्रकार ध्रुव तारे से देखने पर कोई पुच्छल तारा घड़ी की सूई की

दिशा में और कोई इसकी विपरीत दिशा में चलता दिखलाई पड़ेगा। कोई कोई सूर्य के बहुत निकट होकर, यहाँ तक कि उसके कॉरोना (Corona पृष्ठ ३६७ देखिए) में से होकर, निकलते हैं, कोई सूर्य से निकटतम दूरी पर भी मंगल-कक्षा के बाहर ही रह जाते हैं। निश्चय ही कुछ और भी दूर से ही सूर्य परिक्रमा कर लेते होंगे, और अत्यन्त अधिक दूरी के कारण उनका हमको पता नहीं लगता।

५—ओल्बर्स का आविष्कार—कक्षा की गणना करना बहुत सरल नहीं है, इसी लिए सुभीते के ख़्याल से पुच्छल तारात्रों की कक्षा को पहले परवलय ही मान कर उनकी गणना की जाती है। यही कारण है कि बहुत सी कक्षायें परवलय ही समझ ली जाती हैं, यद्यपि वे वस्तुतः परवलय नहीं हैं। कक्षा की गणना करने की अच्छी विधि जरमन ज्योतिषी ओलबर्स (Olbers) ने बतलाई। इस पुरुष का इतिहास भी बड़ा विचित्र है और हमको सिखलाता है कि धैर्य और परिश्रम से क्या नहीं किया जा सकता। यह रीति उसे एक रात, जब वह अपने एक बीमार सहपाठी के बिस्तरे के पास बैठा उसकी निगरानी कर रहा था, सूझी। इस रीति के कारण कक्षा की गणना करने में घंटों की मेहनत बचने लगी और बहुत से ज्योतिषी, जो पहले बहुत समय लगने के भय से इधर ध्यान नहीं देते थे, केतु-कक्षाओं की गणना में लग गये। ओलबर्स ने कभी किसी बेधशाला में शिक्षा नहीं पाई थी। कभी भी उसे बड़े यंत्रों से बेध करने का अवसर नहीं मिला था। उसका अधिकांश समय अपने चिकित्सक के पेशे में व्यतीत करना पड़ता था। चालीस वर्ष तक वह इस पेशे में लगा रहा। परन्तु वह शरीर से बहुत हृष्ट-पुष्ट था और इसलिए सोने के समय में से कई घंटे निकाल कर अपने मनोरंजन के लिए वह ज्योतिष अध्ययन में लगा रहता था। उसके इस मनोरंजन से ही ज्योतिष के एक दो अंगों की इतनी उन्नति हुई



[ग्रिनिच बेधशाला

चित्र ५३३—केतु, १९०८ का तीसरा।

यह फ़ोटोग्राफ़ २९ सितम्बर १९०८ का है। देखिए इसके सिर से एक लम्बी और दो छोटी पूँछें निकली हुई हैं। लम्बी पूँछ विचित्र रीति से टेढ़ी हो गई है।

जितनी औरों के दिन-रात परिश्रम से न हो सकी। उसने अपने कोठे पर कई एक छोटे-मोटे यंत्रों को इकट्ठा कर लिया था, और वहीं आधी शताब्दी तक प्रतिरात्रि लगातार कई घंटे आविष्कार, वेध या गणना में व्यतीत किया करता था।

अपने उत्साह और सहृदयता के कारण उसने कई एक दूसरे व्यक्तियों को ज्योतिष की ओर आकर्षित किया। एनके (Encke), जिसके नाम से एक पुच्छल तारा प्रसिद्ध है, ओल्बर्स ही का शिष्य था।

पुच्छल ताराओं का पहचान करना सरल नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर कि अमुक पुच्छल तारा वही है या नहीं जो पहले अमुक समय पर देखा गया था उस पुच्छल तारे की आकृति से नहीं की जा सकती, क्योंकि यह बदलती रहती है। पहचान कक्षाओं से की जाती है। यदि दो पुच्छल तारे एक ही कक्षा में चलते दिखलाई पड़ें और उनके दिखलाई पड़ने के समय में अन्तर लगभग उतना ही हो जितना गणना से निकलता है तो समझ लिया जाता है कि ये दोनों पुच्छल तारे एक ही हैं। यही कारण है जिससे कक्षाओं की गणना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

६—विस्तार—कक्षाओं की गणना करने से पुच्छल ताराओं की दूरी का भी पता चल जाता है; और तब उनके प्रत्यक्ष आकार को नाप कर यह भी बतलाया जा सकता है कि पुच्छल तारा कितना मील लम्बा चौड़ा है, ठीक उसी प्रकार जैसे सूर्य या अन्य ग्रहों के व्यास की गणना की जाती है (पृष्ठ २१३)। पुच्छल तारे कोई कोई इतने बड़े होते हैं कि हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। उनका शिर ही पृथ्वी की अपेक्षा व्यास में साधारणतः चौगुने से लेकर बीस गुने तक होता है। स्मरण रखना चाहिए कि जिस शिर का व्यास पृथ्वी के व्यास का २० गुना होगा उसका आयतन



[ग्रिनिच वेधशाला

चित्र २३४—केतु, १९०८ का तीसरा।

यह ३ नवम्बर का चित्र है। देखिए एक महीने में पूँछ कितनी मोटी हो गई है। (पिछले चित्र से तुलना कीजिए)। पहले से यह बहुत चमकीली भी हो गई है।

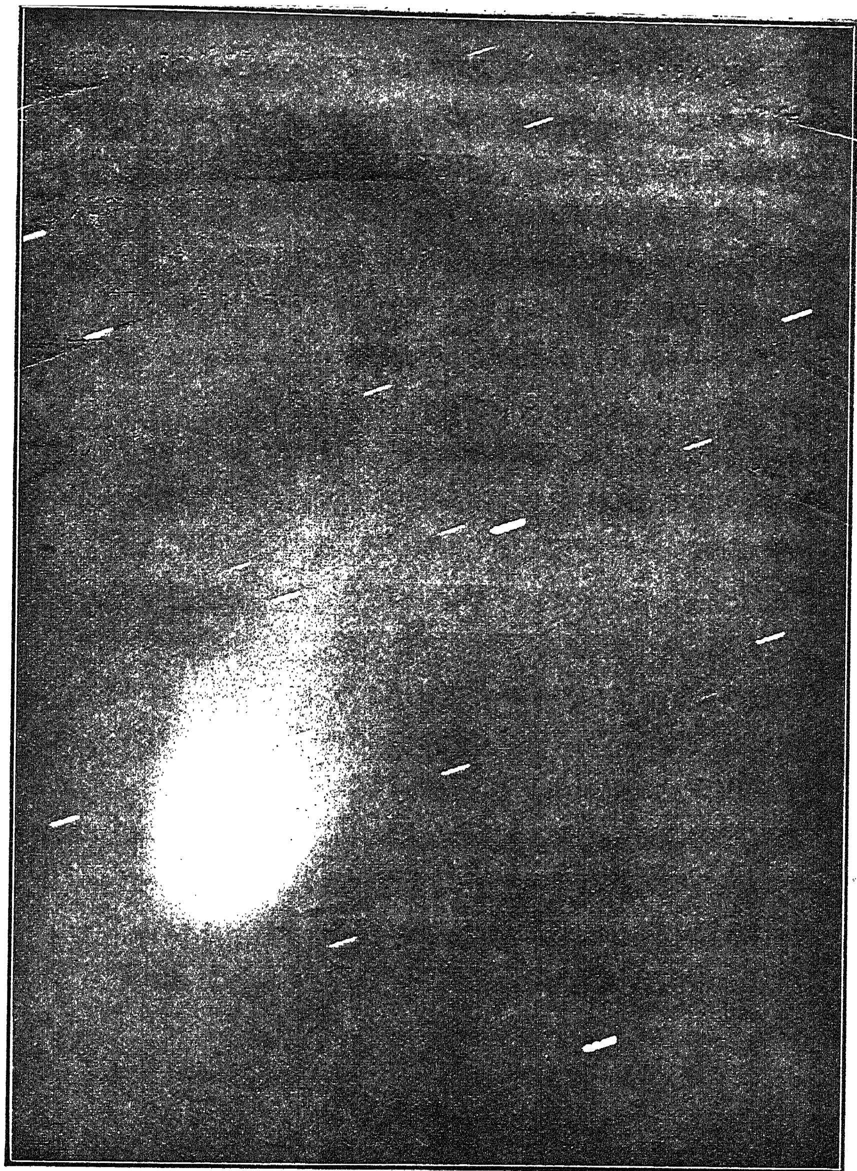
८,००० गुना होगा। १८११ के पुच्छल तारे का शिर सूर्य से भी बहुत बड़ा था।

यदि यह शिर की बात है तो फिर उनकी पूँछ का क्या ठिकाना। चमकीले केतुओं की पूँछ चार पाँच करोड़ मील तक लम्बी होती है। कई एक की पूँछें तो १० करोड़ मील के लगभग देखी गई हैं। सूर्य के पास से यदि ऐसा केतु पूँछ फैलावे तो पृथ्वी तक पहुँच जाय! और सूर्य कितनी दूर है इसे आपने अनेक उदाहरणों से देख ही लिया है (पृष्ठ २११)।

पुच्छल ताराओं की नाभियाँ छोटी होती हैं। हैली-केतु की नाभि ५०० मील की है और डोनाटी-केतु की नाभि ६०० मील की।

पुच्छल ताराओं में एक विचित्र बात यह है कि उनका विस्तार घटा बढ़ा करता है। सूर्य के पास आने पर पूँछ निकल आने या नाभि उत्पन्न हो जाने की बात तो पहले ही बतला दी गई है, परन्तु उनमें केवल इतना ही अन्तर नहीं पड़ता। उनके शिर की नाप भी घटा-बढ़ा करती है। पहले शिर छोटा रहता है। सूर्य के निकट आने पर यह बढ़ने लगता है, परन्तु बहुत निकट पहुँचने पर फिर घट जाता है। कुछ ज्योतिषियों का ख़्याल था कि शिर वस्तुतः घटता-बढ़ता नहीं, भिन्न भिन्न दिशा से प्रकाश पड़ने पर ऐसा जान पड़ता है, परन्तु यह बात ठीक नहीं पाई गई है।

शिर के घटने-बढ़ने का उदाहरण हैली-केतु से भी मिल जाता है। १६०६ के सितम्बर में इसके शिर का व्यास पृथ्वी के व्यास के दूने से कुछ कम था, परन्तु तीन महीने में यह फूल कर तीस गुना हो गया। सूर्य से निकटतम दूरी पर पहुँचते पहुँचते यह सिकुड़ कर आधा (पृथ्वी का १५ गुना) हो गया परन्तु फिर जून १६१० में यह पहले से भी बड़ा, पृथ्वी के हिसाब से पूरा ४० गुना



[ग्रिनिच बेधशाला

चित्र ४३४—डिलावान केतु, २६ सितम्बर १९१४।

यह एक छोटा सा केतु है। ऐसे केतु दो चार प्रतिवर्ष ही दूरदर्शक द्वारा दिखलाई पड़ते हैं।

बड़ा, हो गया। १९११ के अप्रैल तक यह फिर पृथ्वी का चौगुना ही रह गया।

कोई कोई पुच्छल तारे बिलकुल अनियमित रूप से घटते-बढ़ते दिखलाई पड़े हैं। होल्म-केतु (Holme's Comet) का शिर १८९२ के नवम्बर में पृथ्वी का २५ गुना बड़ा था। एक महीने में यह इसका दूना हो गया, तब यह इतना फीका और पारदर्शक हो गया कि बड़े दूरदर्शकों में भी अदृश्य हो गया। जनवरी में यह फिर चमक उठा। चमकीला तो ख़ूब हो गया, परन्तु यह पृथ्वी का केवल चौगुना ही रह गया। धीरे धीरे यह पृथ्वी का चालीस गुना हो गया और तब फिर लुप्त हो गया। इन विचित्र घटनाओं का भेद अभी तक भी नहीं खुल सका है।

७—तौल—यद्यपि पुच्छल तारे इतने बड़े होते हैं, तो भी उनका द्रव्य-मान (mass) या वज़न बहुत कम होता है। कई एक पुच्छल तारे पृथ्वी और अन्य ग्रहों के बहुत पास से निकल गये हैं—दो तीन बार तो निश्चय ही पृथ्वी उनकी पूँछ में पड़ गई है—परन्तु तो भी वे पृथ्वी या उन ग्रहों को अपने निश्चित मार्ग से नाम-मात्र भी विचलित नहीं कर सके। इससे स्पष्ट है कि इनका द्रव्य-मान बहुत ही कम होगा। अनुमान किया गया है कि बड़े पुच्छल तारात्रों का भी द्रव्य-मान पृथ्वी के द्रव्य-मान का १/१०,००,००० वें भाग से भी कम होगा, परन्तु ठीक ठीक उनका द्रव्य-मान कितना है, इसका पता लगाने का कोई उपाय अभी तक नहीं निकाला जा सका है।

द्रव्य-मान कम होने की बात से यह न समझ लेना चाहिए कि पुच्छल तारे दो चार मन के होते हैं। यदि पृथ्वी का दस लाख भाग करने के बदले इसका दस खरब (दस लाख × दस लाख) भाग भी कर दिया जाय, और पुच्छल तारा ऐसे एक भाग के बराबर हो, तो भी यह डेढ़ लाख मन का होगा!



[केप ऑफ़ गुड होप बेधशाला

चित्र २३६—केतु १६०१ का पहला।

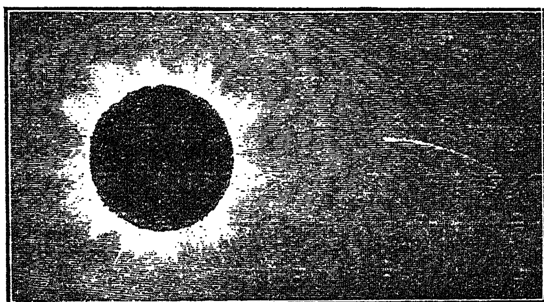
चित्र में चारख़ाना केवल नापने के सुभीते के लिए खींचा गया है।

कम द्रव्य-मान और अधिक विस्तार के कारण पुच्छल तारात्रों का घनत्व प्राय: शून्य के बराबर होता है। साधारण (हाफ़-वॉट-वाले नहीं) बिजली के लट्टू (bulb) में, सभी जानते हैं, हवा नहीं रहने दी जाती। जहाँ तक सम्भव है पम्प से सब हवा निकाल ली जाती है। कहा जाता है कि इसमें शून्य (vacuum) है, परन्तु गणना करने से पता चलता है कि केतुत्रों की पूँछ इससे भी अच्छे शून्य के तुल्य होगी। वहाँ का घनत्व बिजली के लट्टू के भीतरवाले वायु के घनत्व से भी कम होगा। केवल शिर का घनत्व इससे ज़रा सा अधिक होगा। श्वार्ट्सशिल्ड (Schwartszschild) का अनुमान है कि हैली-केतु के २,००० घन मील में उतना द्रव्य भी न होगा जितना साधारण वायु के एक घन इंच में होता है!

पुच्छल-तारात्रों के घनत्व के अत्यन्त न्यून होने का समर्थन सूर्य-विम्ब के सामने उनके आ जाने पर भी होता है। १८८२ में एक पुच्छल तारा सूर्य के पास दिखलाई पड़ा। वह सोने के समान चमकते हुए सूर्य-विम्ब-छोर के निकट ही चाँदी के समान श्वेत प्रकाश से चमक रहा था और धीरे-धीरे उस खौलते हुए विम्ब के समीप खिंचा जा रहा था। परन्तु ज्यों ही यह सूर्य-विम्ब से छू गया त्यों ही एकाएक अदृश्य हो गया। ऐसा चटपट यह मिट गया कि देखनेवाले को विश्वास हो गया कि अवश्य यह सूर्य के पीछे चला गया, परन्तु पीछे इसकी कक्षा की गणना करने पर ज़रा भी शक नहीं रह गया कि वस्तुत: यह सूर्य-विम्ब के सामने होकर गया। इसका मिट जाना इस प्रकार नहीं समझाया जा सकता कि यह उसी चमक का था जैसा सूर्य और इसलिए यह काले धब्बे की तरह नहीं दिखलाई पड़ सका, क्योंकि यदि यह विम्ब के किनारे के भागों के समान चमकीला होता तो बीच में अवश्य ही कम चमकीला होने के कारण काला धब्बा सा दिखलाई पड़ता

और यदि यह सूर्य के मध्य भाग के समान चमकीला होता तो किनारे पर मिट नहीं जाता। इसलिए यही मानना पड़ता है कि वस्तुत: यह प्राय: शून्य घनत्व का था।

८—पुच्छल तारात्रों की खोज—पहले कहा जा चुका है कि कई व्यक्ति पुच्छल तारात्रों की खोज नियमानुसार बराबर किया करते हैं। इन तारात्रों की खोज करना बहुत सरल है और



[चेम्बर्स की ऐस्ट्रॉनोमी से

चित्र ५३७—सर्व-सूर्य-ग्रहण के समय,

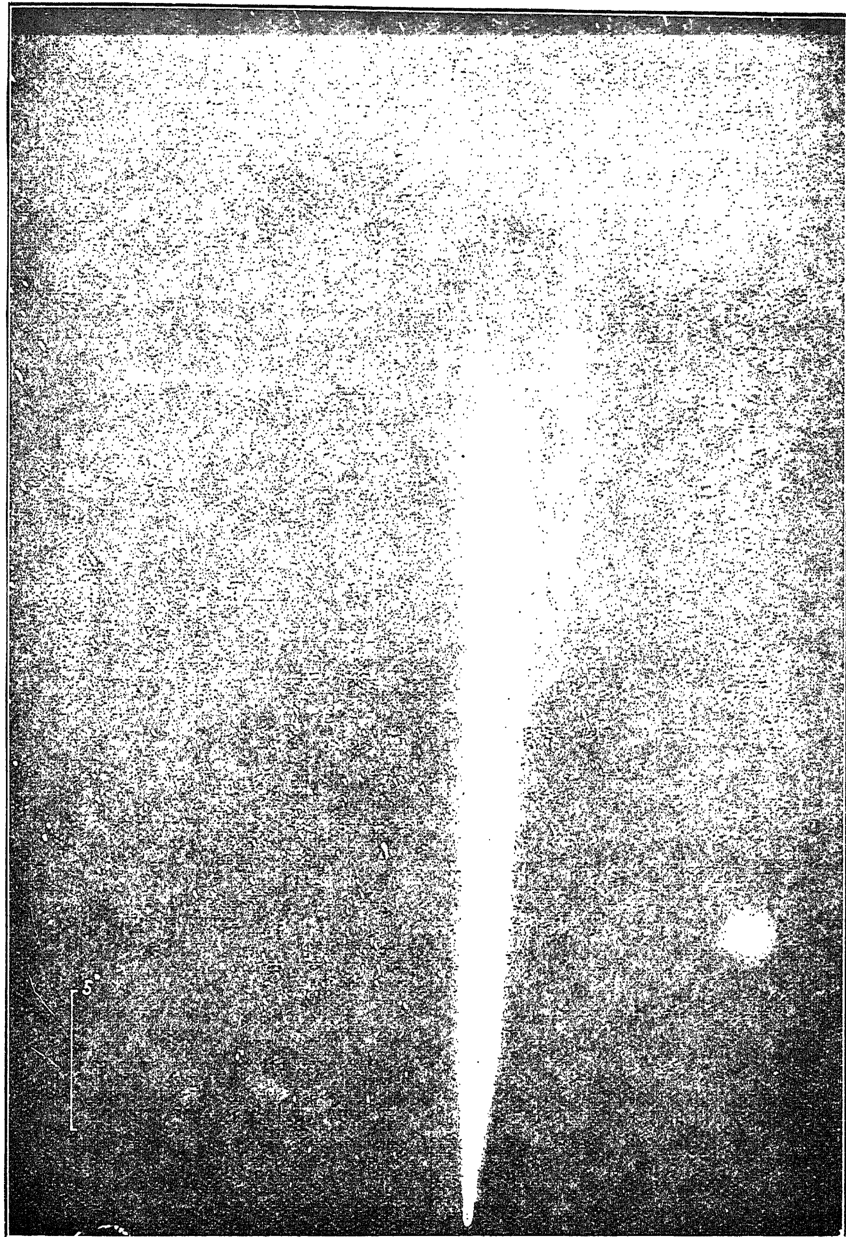
जब सूर्य का प्रकाश मिट जाता है तब इसके पास अक्सर पुच्छल तारे दिखलाई पड़ते हैं। इसी से अनुमान किया जाता है कि प्रतिवर्ष कम से कम पचीस तीस पुच्छल तारे सूर्य के पास अवश्य आते होंगे।

इसके लिए बड़े दूरदर्शक की भी आवश्यकता नहीं पड़तो। परन्तु इस काम के लिए दूरदर्शक में एक विशेष चक्षु-ताल (eye-piece) लगाना पड़ता है जिसकी प्रवर्धन-शक्ति (magnifying power) कम, परन्तु दृष्टि-क्षेत्र (field of view) अधिक, होता है (पृष्ठ १५६ देखिए)। ऐसे चक्षु-तालवाले यंत्र को केतु-अन्वेषक (comet-seeker) कहते हैं। इसको आगे पीछे घुमा-घुमा कर आकाश के उस भाग की

सूक्ष्म जाँच किया करते हैं जहाँ पुच्छल तारात्रों के रहने की सम्भावना रहती है, विशेष रूप से सूर्य के निकट। पहले पहल जब केतु दिखलाई पड़ता है तब यह साधारणतः पुच्छरहित, छोटी सी नीहारिका की भाँति रहता है। दो चार घंटे में इसकी गति से पता चल जाता है कि यह नीहारिका है या पुच्छल तारा।

बड़ी बेधशालाओं के ज्योतिषी अन्य कामों में फँसे रहते हैं। ऐसी ही किसी जगह पुच्छल तारात्रों की खोज की जाती है। इसलिए छोटे दूरदर्शकवाले शौकीन ज्योतिषियों को नये केतुओं के पता लगाने का अच्छा मौक़ा रहता है। उन्हें इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि पुच्छल तारात्रों की पहचान तारात्रों के हिसाब से उनके चलायमान होने से की जाती है। दैनिक गति के कारण कुल तारा-समूह एक साथ ही घूमते हैं, जैसे किसी पुस्तक को धीरे धीरे घुमाने से अक्षर पहले सीधे दिखलाई पड़ेंगे, फिर बेंड़े, फिर उलटे, इत्यादि। दाहने के अक्षर बायें, ऊपर के नीचे, चले जायँगे। परन्तु केतुओं का चलना वैसा होता है जैसे एक अक्षर का अपना स्थान छोड़ कर अन्य अक्षरों के आगे या पीछे या ऊपर या नीचे इत्यादि निकल जाना। नये पुच्छल तारे का पता लगने पर तुरन्त किसी बेधशाला को तार से सूचना भेजनी चाहिए। यदि यह वस्तुतः नया पुच्छल तारा होगा तो उस तारे का नाम आविष्कारक के नाम के अनुसार रख दिया जायगा।

८—नामकरण—पुच्छल तारात्रों का नाम अब तीन प्रकार से रक्खा जाता है। एक तो आविष्कारक के नाम से, जैसे डोनाटी केतु। दूसरे, वर्ष और अक्षर लिख कर, जिससे पता चलता है कि उस पुच्छल तारे का आविष्कार किस वर्ष और किस क्रम से हुआ। जैसे १६१० बी (1910 b) से वह पुच्छल तारा सूचित किया जाता



[लॉवेल बेधशाला

चित्र ४३८—प्रसिद्ध हैली-केतु; १३ मई १९१०।

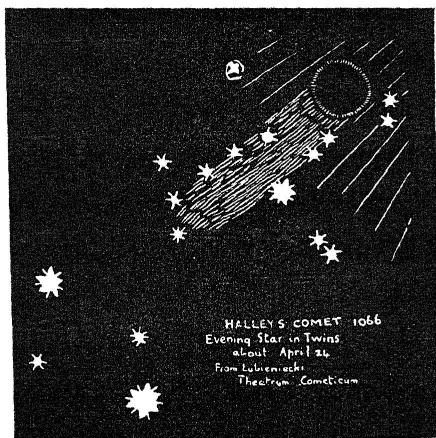
हैली-केतु कई बार देखा जा चुका है। पिछली बार यह १९१० में दिखलाई पड़ा था। देखिए दाहिनी ओर पूँछ के छोटे छोटे टुकड़े सूर्य से विपरीत दिशा में बहते चले जा रहे हैं। बायें कोने में ५° की रेखा खिंची है। इससे स्पष्ट है कि केतु ३०° से भी लम्बा था।

है जिसका आविष्कार १९१० में हुआ और जो उस साल का दूसरा पुच्छल-तारा था; अर्थात्, इसके पहले एक और पुच्छल-तारा उस साल देखा गया था जिसका नाम १९१० ए (1910 a) रक्खा गया। तीसरी रीति वह है जिसमें वर्ष और उसके पीछे रोमन संख्या (I. II, III, IV, V, इत्यादि) लिख दिये जाते हैं; इससे पता चलता है कि पुच्छल तारा किस वर्ष और किस क्रम से सूर्य से निकटतम दूरी पर पहुँचा। जैसे, यदि १९२५ में १० पुच्छल ताराओं ने, अपनी अपनी कक्षाओं में चलते हुए, अपनी कक्षा के उस विन्दु को जो सूर्य से निकटतम दूरी पर है पार किया, तो १९२५ III (1925 III) से इनमें से तीसरा तारा सूचित किया जायगा।

कभी कभी एक ही केतु का दोहरा नाम पड़ जाता है, जैसे पॉन्स-ब्रुक्स-केतु (Pons-Brooks comet)। इसका आविष्कार पहले पॉन्स ने १८१२ में किया था और पीछे जब यह १८८३ में लौट कर आया तब इसका आविष्कार ब्रुक्स ने किया।

१०—केतु-समूह और केतु-परिवार—सन १६६८, १८४३, १८८० और १८८२ में चार पुच्छल तारे दिखलाई पड़े, जो बड़े चमकीले थे और जिनकी सूरत और कक्षायें भी एक सी थीं। इन सभों की बड़ी चमकदार पूँछ थी और सभी लुब्धक तारे की दिशा से हमारी ओर आते हुए जान पड़ते थे। दूसरे, और फिर तीसरे, पुच्छल-तारे के आने पर लोग इसी संदेह में थे कि ये तीनों एक ही पुच्छल-तारे तो नहीं हैं? गणना करने से तो उनके लौटने का समय ६०० या ८०० वर्ष के लगभग जान पड़ता था; परन्तु यदि ये तीनों एक ही हैं तो वह इतना शीघ्र कैसे लौट आया। इस पर अनेक सिद्धान्त बनते रहे, परन्तु १८८२ में चौथे पुच्छल-तारे को ठीक उसी कक्षा में चलते हुए देखकर किसी को

सन्देह नहीं रह गया कि ये चारों भिन्न-भिन्न पुच्छल-तारे हैं जो सम्भवतः एक ही बहुत बड़े पुच्छल-तारे के टूटने से बन गये हैं। उनका यह विचार और भी तब दृढ़ हो गया जब उन्होंने १८८२ वाले केतु को अपनी आँखों से टूटते देखा। उपरोक्त चार पुच्छल-ताराओं में सबसे बड़ा, जो शेष तीनों से बहुत बड़ा था, १८८२ वाला ही था। सूर्य से निकटतम दूरी पर पहुँचने के पहले इसमें एक ही नाभि थी। पीछे इसके चार टुकड़े हो गये, जो उसी कक्षा में चलने लगे, परन्तु उनकी एक दूसरे से दूरी बढ़ने लगी। क्रॉयट्स (Kreutz) ने इन चारों टुकड़ों की अलग अलग कक्षा निकाली है और उसका कथन है कि इनके परिक्रमण-काल ६६४, ७६९, ८७५ और ९५९ वर्ष हैं। इसलिए अब ये चारों टुकड़े फिर चार काफ़ी बड़े पुच्छल-ताराओं के रूप में आयेंगे और इस प्रकार इस समूह में चार के बदले सात पुच्छल तारे हो जायँगे जो सभी एक ही कक्षा में चलेंगे।



[लूबीनीकी

चित्र ५३१—सन् १०६६ में हैली-केतु।

इस समूह के अतिरिक्त दूसरे समूह भी एक ही कक्षा में चलते हुए पाये जाते हैं, पर उनके पुच्छल तारे इतने भड़कीले नहीं हैं।

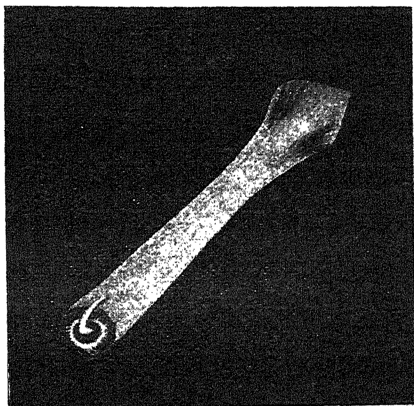
ऊपर बतलाये मेल के केतु-समूहों (groups of comets) के अतिरिक्त कुछ केतु-परिवार (families) भी हैं, जिनमें से सबसे बड़ा

बृहस्पतिवाला है। इस परिवार के सदस्यों में विशेषता यह है कि उनकी कक्षा का धरातल प्रायः बृहस्पति-कक्षा के धरातल में है; केवल इतना ही नहीं, जब ये सूर्य से महत्तम दूरी पर रहते हैं तब वे बृहस्पति-कक्षा के बहुत पास रहते हैं। इनकी कक्षायें अपेक्षाकृत उतनी लम्बी नहीं होतीं जितना अन्य पुच्छल-तारात्रों की, और ये सब एक ही दिशा में—ग्रहों की तरह पश्चिम से पूर्व की ओर—चलते हैं। ऐसा समझा जाता है कि इन पुच्छल-ताराओं को बृहस्पति ने अपने आकर्षण से पकड़ लिया है, जैसा अभी समझाया जायगा।

११—केतु-बन्दी-करण—अधिकांश पुच्छल तारे इतने लम्बे दीर्घ-वृत्तों में चलते हैं कि उनकी कक्षा परवलय ही जान पड़ती है। अब कल्पना कीजिए कि कोई पुच्छल तारा, जो प्रायः बृहस्पति-कक्षा के धरातल में चलता है और जिसके चलने की दिशा भी वही है, बृहस्पति के आगे पड़ जाता है। एक ही धरातल में रहने के कारण और एक ही दिशा में चलने के कारण बृहस्पति काफ़ी समय तक उस पुच्छलतारे के पीछे पीछे चलेगा और उसे पीछे की ओर आकर्षित करता रहेगा। इसका परिणाम यह होगा कि पुच्छल तारे का वेग कम हो जायगा। इसलिए अपनी पुरानी कक्षा में न चल कर वह एक नई छोटी सी कक्षा में चलेगा और सूर्य का समीपवर्त्ती दास बन जायगा।

वेग कम हो जाने से पुच्छल तारा सूर्य की ओर क्यों झुक पड़ेगा इसे समझने के लिए स्मरण रखना चाहिए कि अपने वेग के ही कारण वह सूर्य में गिरने से बच जाता है। प्रत्येक वेग-रहित पिंड सूर्य के आकर्षण के कारण अवश्य सूर्य में जा गिरेगा। इस बात को प्रत्यक्ष रूप से देखने के लिए किसी पत्थर के टुकड़े को कमानी के सिरे पर बाँध कर नचाइए। नचाने से कमानी तन जाती

है (चित्र ५४२)। जितने ही वेग से पत्थर नचाया जायगा, उतना ही बड़ा चक्कर यह काटेगा; वेग कम करने से चक्कर छोटा हो जायगा। नचाना बंद करने पर कमानी सिकुड़ जाती है। ठीक इसी प्रकार पुच्छल तारे के वेग के घटने से वह छोटे वृत्त में चलने लगता है। अन्तर केवल इतना ही है कि चक्कर छोटा हो जाने पर कमानी का खिंचाव तो कम हो जाता है, परन्तु सूर्य का आकर्षण दूरी कम होने से बढ़ जाता है; इसलिए वेग घट जाने से पुच्छल ताराओं की कक्षाओं में बहुत अधिक अन्तर पड़ जाता है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि बृहस्पति-वाला केतु-परिवार, और अन्य ग्रहों से सम्बन्ध रखनेवाले परिवार भी, इसी प्रकार बन गये होंगे।



[हेवेलियस के आधार पर

चित्र ५४०—सन् १६८२ में हैली-केतु।

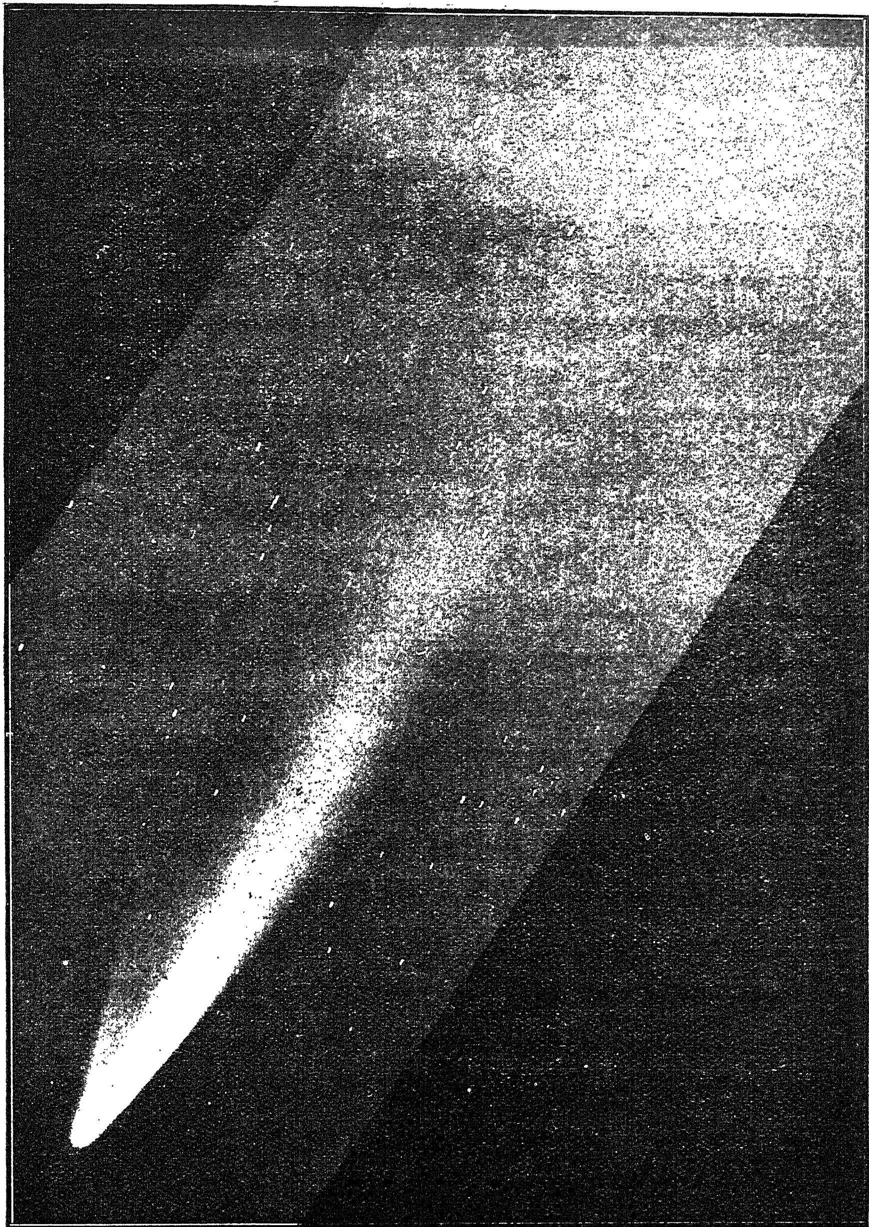
बृहस्पति बहुत भारी है, इसी लिए इसने बहुत से पुच्छल ताराओं को पकड़ लिया है। शनि, यूरेनस और नेपच्यून के परिवार छोटे हैं। उनमें क्रम से अभी तक २,३ और ६ सदस्य पाये गये हैं। बृहस्पति के परिवार में लगभग तीस हैं। ये पुच्छल तारे सभी छोटे हैं, कोरी आँख से नहीं देखे जा सकते।

उपरोक्त ग्रह जिस प्रकार पुच्छल ताराओं को पकड़ सकते हैं उसी प्रकार उन्हें भगा भी सकते हैं। यदि केतु पीछे पड़ जाय

और बृहस्पति आगे तो केतु का वेग बढ़ जायगा और वह अधिक लम्बे दीर्घ-वृत्त, परवलय या अतिपरवलय में चलने लगेगा। आधुनिक समय में भी केतु का पकड़ा जाना और भगा दिया जाना देखा गया है। ब्रुक्स-केतु (१८८६-V) का परिक्रमण-काल १८८६ में बृहस्पति के आकर्षण के कारण २७ वर्ष से घट कर ७ वर्ष हो गया और कक्षा भी उसी हिसाब से छोटी होगई। दूसरी ओर, १७७० के पहले लेक्सेल केतु (Lexell's comet) साढ़े पाँच वर्ष के परिक्रमण-काल में एक प्रदक्षिणा लगाया करता था। परन्तु उस साल बृहस्पति के आकर्षण के कारण इसका वेग इतना बढ़ गया कि यह निकल गया और अभी तक फिर दिखलाई नहीं पड़ा।

इस प्रश्न पर भी बहुत बहस हुई है कि क्या कोई ग्रह किसी पुच्छल तारे के वेग को इतना कम कर दे सकता है कि वह सूर्य की परिक्रमा न करके उस ग्रह हो की करने लगे, अर्थात्, उस ग्रह का उपग्रह बन जाय। परन्तु यह सम्भव नहीं जान पड़ता। इसके लिए उस पुच्छल तारे का वेग बहुत ही कम हो जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त दूसरी भी एक दो कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं।

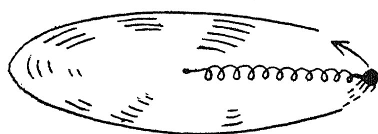
१२—पुच्छल तारों को फ़ोटोग्राफ़ी—पुच्छल तारों के विषय में हमारा ज्ञान फ़ोटोग्राफ़ी के कारण बहुत बढ़ गया है। इसके द्वारा ऐसे ब्योरे दिखलाई पड़ते हैं जो और किसी तरह दिखलाई न पड़ते (पृष्ठ १३२ देखिए)। फ़ोटोग्राफ़ी के आविष्कार के बाद से कई बार चेष्टा की गई, परन्तु पहला फ़ोटोग्राफ़ १८५८ में बन सका। बात यह थी कि पहले प्लेट बहुत मन्द (slow) होते थे और तीन चार घंटे के प्रकाश-दर्शन (एक्सपोज़्हर) में भी उन पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता था। परन्तु अब उनका फ़ोटोग्राफ़ लेना सरल हो गया है। घड़ी से चलते हुए दूरदर्शक पर कोई भी कैमेरा बाँध कर उनका फ़ोटोग्राफ़ लिया जा सकता है, परन्तु इस कार्य के लिए



[लॉवेल-बेधशाला

चित्र २४१—केतु १९१० का पहला ।
देखिए, लम्बी पूँछ के अतिरिक्त एक छोटी सी पूँछ भी स्पष्ट दिखलाई पड़ रही है।

विशेष कैमेरे भी बनते हैं, जिनका लेन्ज़ (ताल) बहुत तेज़ और अच्छा होता है। हम देख चुके हैं कि ताराओं के हिसाब से पुच्छल तारा चला करता है। इसलिए फ़ोटोग्राफ़ लेते समय दूरदर्शक को बराबर कैमेरे के सिर की तरफ़ रखना पड़ता है; इस प्रकार पुच्छल-तारे का चित्र तो तीक्ष्ण आता है, परन्तु ताराओं का चित्र विन्दु-सदृश आने के बदले लम्बा आ जाता है, जैसा यहाँ दिये गये फ़ोटोग्राफ़ों में दिखलाई पड़ता है।



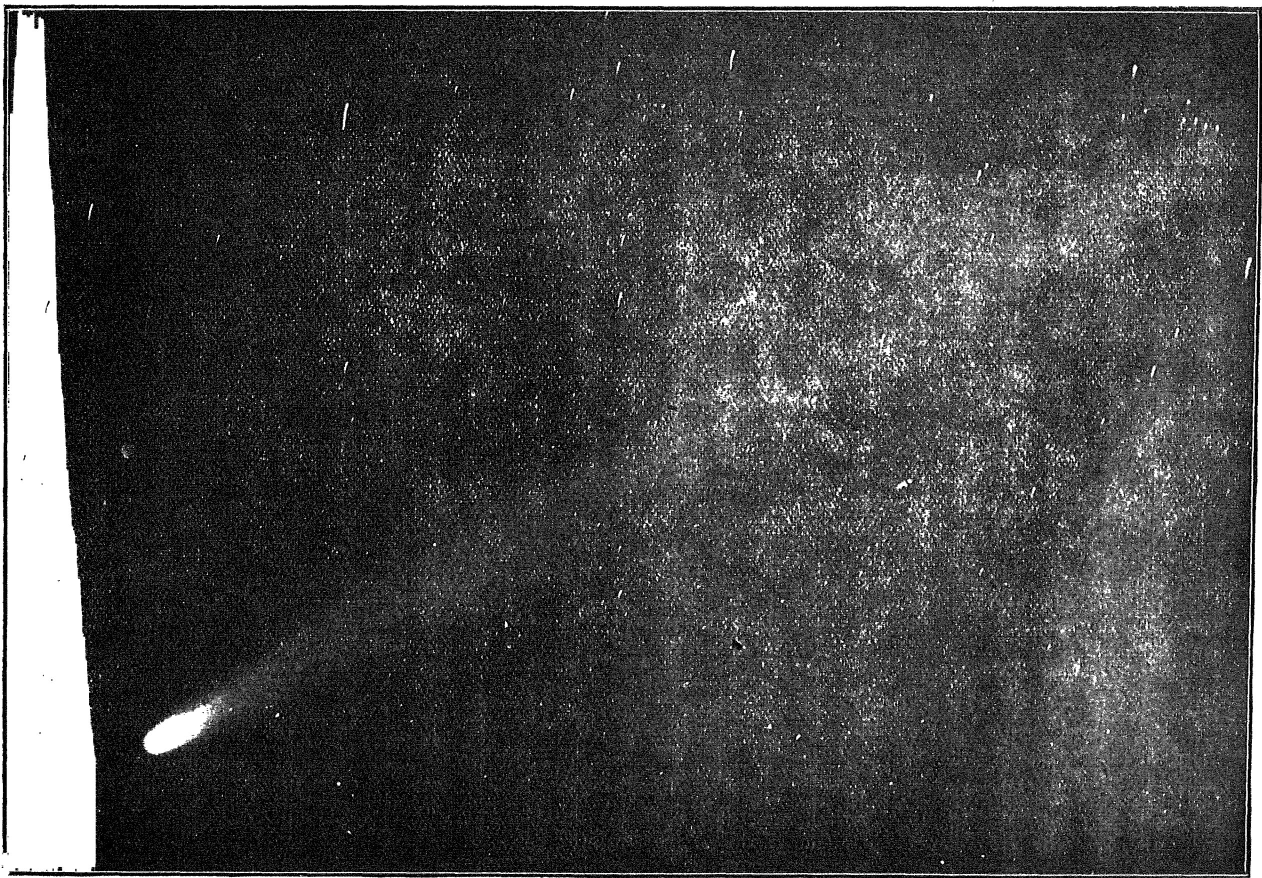


चित्र ५४२—नचाने पर कमानी तन जाती है।

१३—पुच्छ-विषयक सिद्धान्त—इस बात से कि केतुओं की पूँछ सूर्य से विपरीत दिशा में रहती है पता चलता है कि सूर्य और इन पूँछों में घना सम्बन्ध है। सूर्य और पूँछ के द्रव्य में आकर्षण के बदले प्रतिसारण (repulsion) होता होगा जिससे पूँछ खिंचने के बदले पीछे हट जाती है; परन्तु कुल मिला कर पुच्छल तारे पर प्रायः उतना ही आकर्षण पड़ता होगा जितना इस प्रतिसारण के न रहने पर पड़ता, क्योंकि केतु आख़िर आकर्षण सिद्धान्तानुसार ही चलता पाया जाता है।

ओल्बर्स का कथन था कि यह प्रतिसारण विद्युतीय (electrical) है। इस सिद्धान्त की ब्योरेवार स्थापना एक रूस के वैज्ञानिक ने की थी, जिससे यह बात भी समझ में आ जाती थी कि क्यों बाज़ बाज़ केतुओं के तीन पृथक् पृथक् पूँछें होती हैं (चित्र ५४५)।

परन्तु अब वैज्ञानिकों का विश्वास है कि प्रकाश के दबाव से ही यह प्रतिसारण उत्पन्न होता है (पृष्ठ ३०२) देखिए।



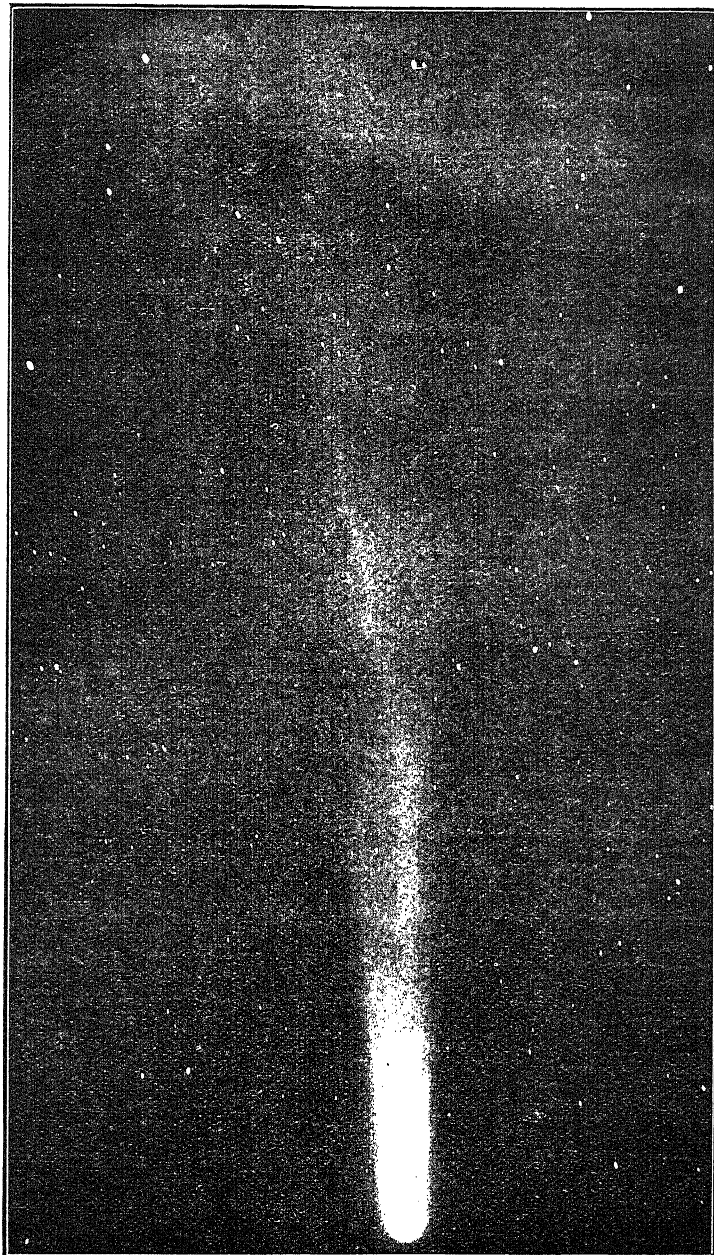
[बारनार्ड

चित्र ४४३—हैली-केतु, ४ मई १९१०।

किसी कारण से, जो अभी अच्छी तरह नहीं समझा गया है, केतु से बहुत बारीक, गर्द की तरह, पदार्थ निकला करता होगा। सूर्य के प्रकाश से दबाव में पड़ कर इसके कण सूर्य से विपरीत दिशा में लौट पड़ते होंगे (चित्र ५४६), ठीक उसी प्रकार जैसे फव्वारे में पानी के कण पृथ्वी के आकर्षण के कारण नीचे गिर पड़ते हैं।

प्रकाश का दबाव साधारण नाप के कणों पर बहुत कम पड़ता है। परन्तु यदि किसी कण का व्यास आधा कर दिया जाय तो इसका वज़न पहले का आठवाँ भाग हो जायगा, परन्तु इसकी सतह और इसलिए प्रकाश भार भी घट कर केवल चौथाई ही हो जायँगे। इस-लिए, यद्यपि वज़न और प्रकाश-भार ये दोनों घट गये, परन्तु वज़न के हिसाब से प्रकाश-भार आधा ही घटा। इससे स्पष्ट है कि अत्यन्त सूक्ष्म कणों पर आकर्षण की अपेक्षा प्रकाश-भार ही अधिक होता होगा और इसलिए केतु से निकले कण, यदि वे काफ़ी सूक्ष्म होंगे तो, सूर्य की ओर न खिंच कर विपरीत दिशा ही में जायँगे। पूँछ के कुछ धनुषाकार रूप में मुड़ जाने का कारण भी अब समझ में आ जाता है, क्योंकि दूर पहुँचने पर पूँछ के कणों को बड़ी कक्षा में चलना पड़ता है। इसलिए वे कुछ पिछड़ जाते हैं।

इस बात का समर्थन कि केतुओं की पूँछ का पदार्थ वस्तुतः सूर्य से विपरीत दिशा में चलता रहता है फ़ोटोग्राफ़ी से होता है। पूँछों में कहीं कहीं गाँठ सी पड़ी रहती है या उनमें कभी कभी अन्य ब्योरे दिखलाई पड़ते हैं। थोड़े थोड़े समय बाद लिये गये फ़ोटोग्राफ़ों में इन ब्योरों की स्थितियों का मिलान करने से पता चलता है कि वे सूर्य से विपरीत दिशा में चलते रहते हैं। कई पूँछों का बनना भी केतु के शिर में से कई भिन्न भिन्न सूक्ष्मता के कणों का निकलना मान कर समझाया जा सकता है।



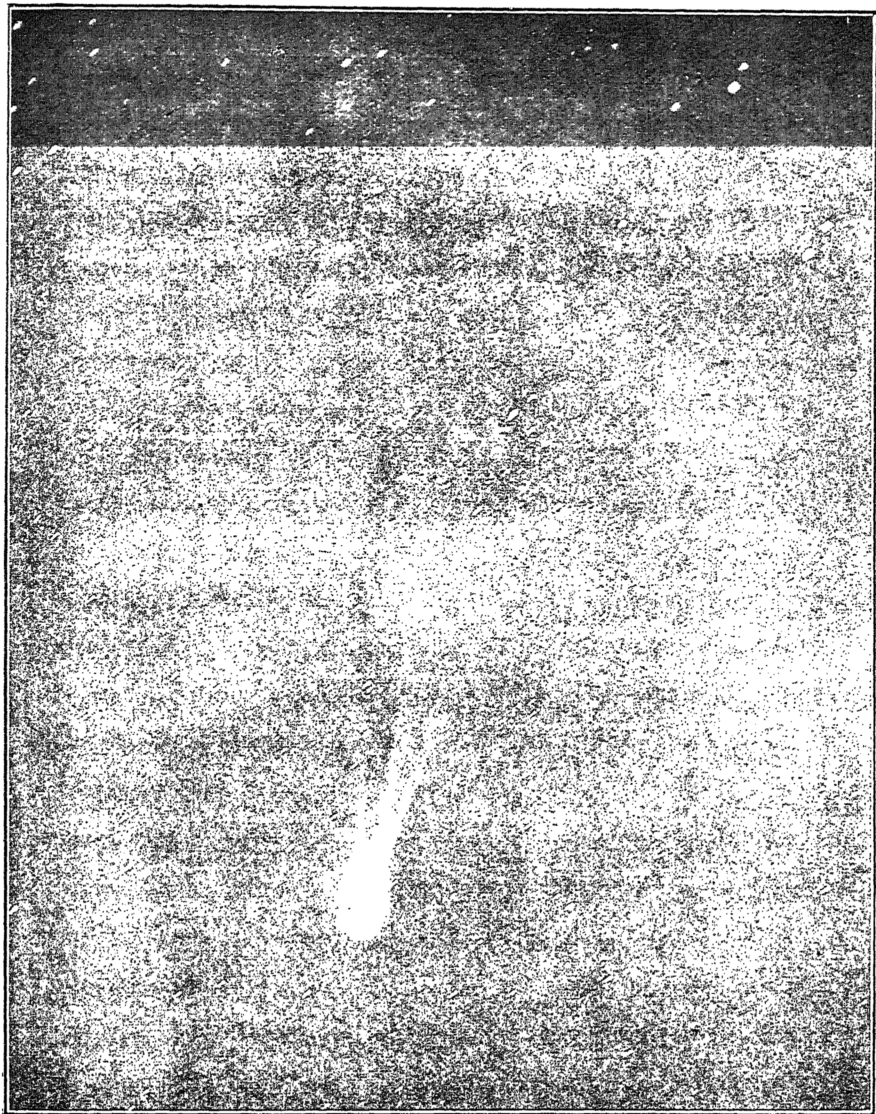
[लोवेल-वेधशाला

चित्र २४४—हैली-केतु, ७ मई १९१० ।

पूँछ चमकीली क्यों होती है, यह प्रश्न भी बहुत टेढ़ा है। इतना तो निश्चय है कि पूँछों में निज का भी कुछ प्रकाश होता है। वे केवल उन पर से बिखरे हुए सौर-प्रकाश ही से नहीं दिखलाई पड़तीं, क्योंकि यदि यही बात सत्य होती तो सूर्य के पास पहुँचने पर उनका प्रकाश इतना नहीं बढ़ सकता। अभी तक कोई सिद्धान्त पक्का नहीं बन सका है; परन्तु ऐसा सम्भव जान पड़ता है कि इन पर सौर रश्मियों के पड़ने से इनमें स्वयं ख़ूब प्रकाश देने की शक्ति आ जाती है, ठीक उसी प्रकार जैसे सितार के एक तार को बजाने से इसके सुर में मिला हुआ दूसरा तार भी बजने लगता है।

मोटी मोटी बातें तो सब इस प्रकार समझ में आ जाती हैं, परन्तु अब भी कई बातें ऐसी हैं जिनका कारण समझ में नहीं आता। उदाहरण के लिए, ब्रुक्स-केतु (१८९२—IV) ने नवम्बर २ को अपनी पूँछ अनायास ही हिला दी थी। कभी कभी किसी केतु की पूँछ एक-दम तिरछी निकल आती है। स्पष्ट है कि अभी हमें केतु-पुच्छ-पाश से मुक्त होने में देर है।

१४—पुच्छल ताराओं की मृत्यु—पुच्छल ताराओं से पूँछ के रूप में जो पदार्थ निकल जाते हैं वे फिर लौट कर नहीं आते हैं। इसलिए पूँछें धीरे धीरे छोटी होती जाती होंगी। बड़े पुच्छल ताराओं में ज्वारभाटा के समान तरंगें उठती होंगी। कम से कम उन पर वैसी ही शक्ति अवश्य काम करती होगी जिससे पृथ्वी पर ज्वारभाटा बनता है। सूर्य के अत्यन्त निकट जाने के कारण बड़े पुच्छल ताराओं पर यह शक्ति अत्यन्त भीषण हो जाती होगी और शायद इसी लिए वे टुकड़े टुकड़े हो जाते होंगे। एक पुच्छल तारे का टूटना पहले बतलाया जा चुका है। कुछ अन्य केतुओं का टूट जाना भी देखा गया है। इस सम्बन्ध में बीला-केतु (Biela's comet) का इतिहास मनोरंजक है।



[बारनार्ड

चित्र २४२—स्विफ़्ट-केतु, ४ अप्रैल १८९२।

देखिए इस केतु में तीन पूँछें स्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं।

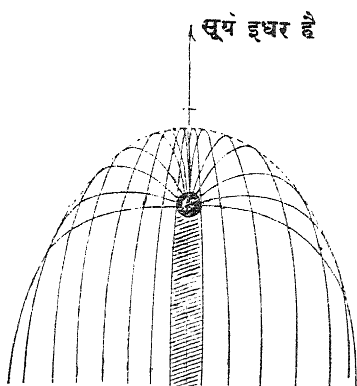
आँस्ट्रिया के एक अफ़सर विलहेलम फोन बीला (Wilhelm Von Biela) ने १८२६ में एक छोटा सा पुच्छल-तारा दूरदर्शक से देखा। गणना करने पर पता चला कि यह छः सात वर्ष में एक चक्कर लगाता है। पुराने रजिस्टरों को देखने पर पता चला कि यह पुच्छल तारा पहले भी देखा गया था। १७७२ में इसे एक फ़्रांसीसी ने कोरी आँख से देखा था। १८०५ में फिर इसी का आविष्कार पाँन्स ने किया था। ओलबर्स ने उस समय अपनी कोरी आँख से इसको देखा था। बेध अच्छी तरह न हुए रहने के कारण उस समय पूरी गणना नहीं हो सकी, परन्तु इतना सन्देह अवश्य हुआ कि शायद यह १७७२ वाला ही पुच्छल-तारा है। १८२६ में बीला के देखने के बाद इसका बेध कई ज्योतिषियों ने किया, परन्तु कोरी आँख से किसी को यह न दिखलाई पड़ा।

गणनानुसार यह जान कर कि १८३२ में यह फिर दिखलाई पड़ेगा, ओलबर्स और कुछ अन्य गणितज्ञों ने इस बात की पूरी जाँच की कि किस दिन यह दिखलाई पड़ेगा। ओलबर्स को पता चला कि जिस स्थान से यह होकर निकलेगा ठीक उसी स्थान में पृथ्वी एक महीने बाद पहुँचेगी और शायद उस समय कुछ अधिक उल्कापात होगा (अगले अध्याय से इसका कारण मालूम हो जायगा)। बस इतना ही जनता में खलबली पैदा कर देने के लिए काफ़ी था। सभी जगह शोर गुल मचने लगा। समाचार-पत्रों में भी धूम रही। लोग समझे कि क़यामत का दिन आ गया। कौन कह सकता है कि ज्योतिषियों की गणना में ज़रा सी त्रुटि नहीं रह गई होगी, और इसलिए पुच्छल-तारे और पृथ्वी में मुठभेड़ नहीं हो जायगी। लापलास ने पहले एक बार लिखा ही था कि पृथ्वी से किसी दूसरे आकाशीय पिंड से टकरा जाना असम्भव नहीं है और यह भी बतलाया था कि टकराने से पृथ्वी किस प्रकार

चकनाचूर हो जायगी। बस, लोग समझ लिये कि वह दिन आने ही वाला है।

यह पुच्छल तारा अन्त में उस गणना से निकले समय पर आया और निकल भी गया और कोई विशेष बात नहीं देखी गई। इसके बाद लौटने पर भी कोई विशेष घटना नहीं हुई।

१८४५ के नवम्बर में जब यह फिर दिखलाई पड़ा तो साधारण आकृति का था। बीस दिन बाद यह तुम्बी के आकार का हो गया, अर्थात् यह बीच में ज़रा पतला पड़ गया और दोनों सिरों पर कुछ गोल। दस दिन अधिक बीतने पर यह दो भागों में बँट गया। केम्ब्रिज के प्रोफ़ेसर चैलिस ने जब अपने बड़े दूरदर्शक में १५ जनवरी को आँख लगाई तो वे बोल उठे "यह क्या, यहाँ तो अब दो पुच्छल-तारे दिखलाई पड़ते हैं।" उन्हें पहले विश्वास ही नहीं हुआ, परन्तु दोनों को साथ साथ चलते पाकर मानना पड़ा कि केतु टूट कर दो हो गया है।



चित्र २४६—केतु की पूँछ। ज्योतिषियों का ख़याल है कि केतु से बराबर बहुत बारीक चूर्ण निकला करता है जो सूर्य के प्रकाश से दबाव में पड़ कर इसके विपरीत दिशा में मुड़ जाता है और इसी से पूँछ बनती है।

इन दोनों भागों ने शान्ति से सूर्य की परिक्रमा करनी जारी ही रक्खी। इससे उनके अत्यन्त हलके होने का प्रमाण मिलता है; क्योंकि वे उस समय एक दूसरे से इतने भी दूर नहीं थे जितना चन्द्रमा पृथ्वी से है। यदि वे काफ़ी भारी होते तो अपने आकर्षण

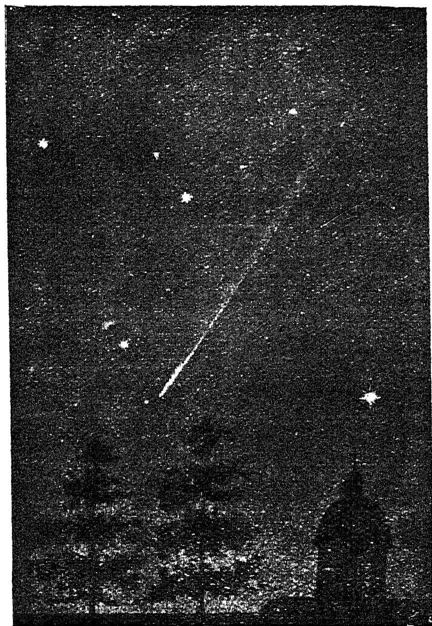
के कारण या तो वे सिमट कर एक हो जाते या एक दूसरे की परिक्रमा करने लगते। परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। हाँ, उन दोनों में पूँछें निकल आईं, उनमें नाभियाँ भी उत्पन्न हो गईं और उनमें से कभी एक चमकदार हो जाता, कभी दूसरा। इतना ही नहीं; उन दोनों के बीच कभी कभी प्रकाश का पुल बँध जाता था।

१८५२ में ये दोनों फिर लौटे परन्तु अबकी पहले की अपेक्षा वे अठगुने दूरी पर हो गये थे। थोड़े समय बाद वे अदृश्य हो गये और आज तक वे फिर नहीं देखे गये हैं, यद्यपि उनकी कक्षा अच्छी तरह से मालूम थी और उनकी खोज में कई एक सिद्धहस्त ज्योतिषी लगे थे। सभी निराश हो गये थे परन्तु गटिङ्गन (Göttingen) के प्रोफ़ेसर क्लिंकरफ़िस (Klinkerfues) ने आशा नहीं छोड़ी। वे गणना करते रहे और उनको पता लगा कि यह यूरोप में नहीं दिखलाई पड़ेगा परन्तु दक्षिणी देशों में देखा जा सकता है। इसलिए उन्होंने ३० नवम्बर १८७२ को मद्रास के मिस्टर पॉगसन (Pogson) के पास तार भेजा "बीला २७ को पृथ्वी छू दिया, थीटा सेन्टॉरी (θ Centauri) के पास खोजो।" खोज की गई और एक पुच्छल तारा उस नक्षत्र के पास दिखलाई भी पड़ा, परन्तु दो दिन के वेध के बाद ही बादल आ गये और पीछे सूर्य के प्रकाश में वह पुच्छल तारा छिप गया, इसलिए उसकी कक्षा की गणना नहीं हो सकी। परन्तु अब सभी मानते हैं कि क्लिंकरफ़िस की गणना में अशुद्धि थी और संयोग से बतलाये हुए स्थान में दूसरा कोई पुच्छल तारा उपस्थित था।

बीला-केतु की क्या गति हुई इसका पक्का पता तो है नहीं, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि होल्म्स-केतु की तरह इसका भी चमकना बन्द हो गया है। पहले कुछ लोगों की धारणा थी कि बृहस्पति के आकर्षण से यह दूर निकल गया होगा और

इसका मार्ग परवलय या अतिपरवलय हो गया होगा, परन्तु यह बात ठीक नहीं मालूम होती, क्योंकि गणना करने से पता लगता है कि यह बृहस्पति के समीप उस साल गया हो नहीं।

अदृश्य हो गये केतु क्या फिर भी कभी किसी रूप में दिखलाई पड़ते हैं इसका भेद अगले अध्याय में खुलेगा। तब आप यह भी देखिएगा कि कई नष्ट-भ्रष्ट पुच्छल ताराओं के शिर के दो चार टुकड़े हमारे अजायबघरों (museums) में भी आ पहुँचे हैं।



[एल० जी० लियों

चित्र ४४७—हैली-केतु, मेक्सिको में, सन् १९१०।

कोरी आँख का दृश्य।

परन्तु यह न समझना चाहिए कि बीला केतु की तरह सभी पुच्छल तारे शीघ्र ही मिट जायँगे। हैली-केतु हज़ारों वर्ष से बार बार सूर्य की प्रदक्षिणा कर रहा है और अभी तक वैसा ही चमकीला जान पड़ता है जैसा यह अत्यंत प्राचीन पुस्तकों में बतलाया गया है। हाँ, १९१० में यह इतना भड़कीला अवश्य नहीं था। फिर एनके-केतु, जो केवल लगभग सवा तीन वर्ष में ही एक परिक्रमा

पूरा कर लेता है, ३१ बार अब तक देखा गया है और यह ज्यों का त्यों दिखलाई देता रहा है।

१५—**पुच्छल ताराओं की बनावट**—ऊपर लिखी बातों के आधार पर और अगले अध्याय में बतलाई बातों की सहायता से यह समझा जाता है कि पुच्छल तारे महज़ बहुत से छोटे बड़े टुकड़ों के समूह हैं। उनके साथ बहुत सा गर्द और गैस भी रहता है। जब वे सूर्य से दूर रहते हैं तब वे हमको सूर्य के प्रकाश के उस भाग के कारण दिखलाई पड़ते हैं जो उन पर से लौट कर हमारे पास आता है। जैसे जैसे व सूर्य के निकट आते हैं वैसे वैसे उनमें से गैस और गर्द निकलने लगते हैं और उनमें सूर्य की रश्मियों से निज की चमक भी उत्पन्न होने लगती है। सूर्य के अधिक पास आने पर, यदि गैस और गर्द की मात्रा काफ़ी हुई तो प्रकाश भार के कारण पूँछ बन जाती है। जब कोई पुच्छल तारा सूर्य की आधी प्रदत्तिणा करके इससे दूर हटने लगता है तब गैस और गर्द का निकलना बंद हो जाता है। मोटे कण फिर सिमट जाते हैं। और पुच्छल तारा फिर पुच्छ-रहित हो जाता है। पारदर्शक होने के कारण यह निश्चय है कि वे टुकड़े जिनसे पुच्छल तारा बना रहता है दूर दूर पर रहते होंगे। उनमें गैस उपस्थित रहने की कल्पना इस लिए करनी पड़ती है कि उनके रश्मि-चित्र से पता लगता है कि उनमें नत्रजन (nitrogen), कर्बन-एकौषिद (carbon monoxide), उदकर्बन (hydrocabons), शामजन (cyanogen), इत्यादि, गैस अवश्य हैं।

वे टुकड़े जिनसे पुच्छल तारा बना रहता है कितने बड़े होते होंगे, इसका केवल अनुमान ही भर है, कोई प्रमाण नहीं है। उनमें से बड़े से बड़े अवश्य कई मन के होंगे और इस पृथ्वी पर जो बड़े बड़े उलके गिरे हैं उनसे वे कई गुने बड़े होंगे। केतुओं के छोटे

कण बारीक से बारीक गर्द से भी सूक्ष्म होंगे। औसत व्यास शायद आध इंच से कम न होगा, क्योंकि यदि कम व्यास होता तो प्रकाश-भार के कारण केतुओं पर सूर्य की आकर्षण-शक्ति प्रत्यक्ष रूप से कुछ कम हो जाती। इतना जानने पर सरल गणना से तुरंत पता लग जाता



(स्प्लेंडर अफ़ द हेवंस से)

चित्र २४—हैली

इसने भविष्यद् वाणी की थी कि वह केतु जिसका नाम पीछे हैली-केतु पड़ गया ७६ वर्ष में फिर लौटेगा।

है कि यदि सभी टुकड़े क़रीब इसी नाप के होते तो एक घन मील में केवल दस बारह टुकड़ों के उपस्थित रहने का परता पड़ेगा। यदि टुकड़ों का घनत्व पत्थर के समान मान लिया जाय तो प्रति घन मील में डेढ़ दो तोला द्रव्य का परता पड़ेगा।

अनुमान किया गया है कि यदि हैली-केतु के सब अवयव एक साथ ही समेट कर रख दिये जायँ तो उनकी नाप उतनी मिट्टी का केवल बीसवाँ भाग ही होगा जितनी पैनामा नहर (Panama canal) बनाते समय खोदनी पड़ी थी। क्रॉमलिन* (Crommelin) का अनुमान है कि हैली केतु के अवयव अधिकतर कई फ़ुट लम्बे चौड़े होंगे। वे दो चार मील के नहीं हो सकते, नहीं तो जब यह पुच्छल तारा हमारे और सूर्य के बीच आ गया था उस समय सूर्य के बिम्ब पर यह काले धब्बे की तरह अवश्य दिखलाई पड़ता।

हमारे पाठकों को यह भ्रम हो सकता है कि यदि पुच्छल तारे इतने हलके होते हैं तो उनकी गति रुक क्यों नहीं जाती। पर उनको स्मरण रखना चाहिए कि वे असली शून्य (vacuum) में चलते हैं। वहाँ रुकावट पैदा करनेवाली कोई वस्तु का लेशमात्र भी नहीं रहता। बिजली के लट्टू के भीतर की तरह पम्प (pump) की सहायता से बनी शून्य में रूई और सीसा एक ही वेग से गिरते हैं; फिर सम्पूर्ण शून्य में तो तनिक भी अन्तर नहीं रहेगा।

१६—पुच्छल तारे भी सौर-जगत् के सदस्य हैं— पहले, जब तक हैली-केतु के दीर्घ-वृत्त में चलने की बात का आविष्कार नहीं हुआ था लोग यही समझते थे कि पुच्छल तारे अनन्त दूरी से आते हैं और उसी अनन्त आकाश में सदा के लिए लौट जाते हैं। परन्तु अब थोड़े समय में परिक्रमा करनेवाले बहुत से पुच्छल ताराओं का पता लगने पर लोगों का यह विश्वास जाता रहा। इसके लिए एक दूसरा भी कारण है।

पता लगा है कि नक्षत्रों के हिसाब से सूर्य स्थायी नहीं है। यह १३ मील प्रतिसेकंड के वेग से चल रहा है। यदि पुच्छल तारे

* Russll-Dugan-Stewar : Astronomy, q. 444.

अनन्त दूरी से आते तो उनमें से अधिकांश में इतना वेग होता कि वे अतिपरवलय में चलते, परन्तु कोई भी पुच्छल तारा अतिपरवलय में चलता हुआ नहीं देखा गया है। इसलिए वे अवश्य ही सौर-जगत् के सदस्य होंगे।

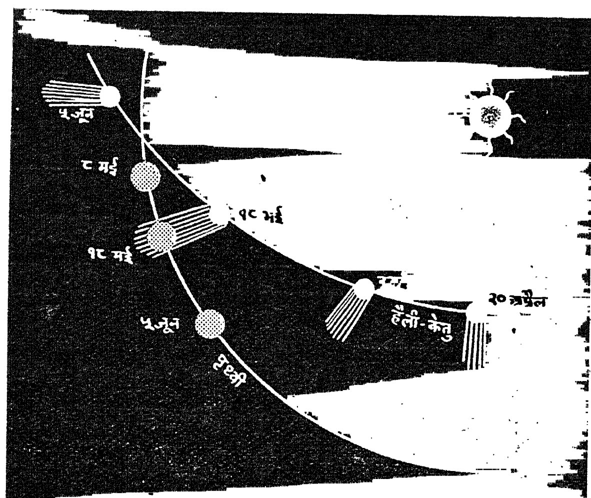
पुच्छल तारात्रों की संख्या कई लाख होगी। तीन चार पुच्छल तारे हर वर्ष देखे जाते हैं, इससे अनुमान किया जाता है कि प्रति-वर्ष कम से कम बीस-पचीस अवश्य ही सूर्य की परिक्रमा करते करते अपनी कक्षा के उस विन्दु को पार करते होंगे जो सूर्य से निकटतम दूरी पर है। कुछ का तो बृहस्पति या अन्य ग्रह के आकर्षण से वेग इतना बढ़ जाता होगा कि वे सूर्य के आकर्षण से मुक्त हो जाते होंगे। परन्तु दूसरे सूर्यों (नक्षत्रों) से छुटे हुए पुच्छल तारात्रों के सौर-जगत् में आ जाने की सम्भावना कम जान पड़ती है।

बहुत से पुच्छल तारात्रों का परिक्रमण-काल कई हज़ार वर्ष होगा। उनके दुबारा लौटने की प्रतीक्षा कौन कर सकता है?

१७—पुच्छल तारात्रों से मुठभेड़—गत वर्षों में पुच्छल तारात्रों का डर जनता में कई बार फैल गया था। इसलिए यह देखना चाहिए कि सच्ची बात क्या है। पुच्छल तारात्रों से हमको दो प्रकार का डर हो सकता है। एक तो यह कि उनके सर से टक्कर खाकर पृथ्वी चकनाचूर हो जाय। दूसरे यह कि उनकी पूँछ में उपस्थित विषैले गैसों से—इतना निश्चय है कि उनकी पूँछों में कर्बन एकौषिद (carbon monoxide) आदि विषैले गैस अवश्य हैं—हमारा वायुमंडल इतना कलुषित हो जाय कि हम सब मर जायँ।

पुच्छल तारात्रों की बनावट ठीक ठीक ज्ञात न रहने से इस प्रश्न के विषय में कुछ निश्चय रूप से कहा नहीं जा सकता; परन्तु

यदि पहले बतलाया गया सिद्धान्त ठीक है—जैसा बहुत सम्भव जान पड़ता है—और पुच्छल तारा वस्तुतः दूर दूर पर बिखरे हुए कई छोटे छोटे टुकड़ों से बना है तब कोई विशेष डर नहीं है। यदि ये सभी टुकड़े लड़कों के खेलने की गोली के आकार के होंगे, या दो चार सेर के भी होंगे, तो हमारा वायु-मंडल हमको बचा लेगा। ऐसे टुकड़े



चित्र २४६—१९१० में पृथ्वी और हैली-केतु का माग।

१८ मई को पृथ्वी इसकी पूँछ में पड़ गई थी।

पृथ्वीतल तक पहुँचते पहुँचते वायु-मंडल में ही भस्म हो जाते हैं और हमें उल्का के रूप में दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु यदि ये टुकड़े दस बीस मन के, या इससे भी बड़े, होंगे तब तो मामला टेढ़ा हो जायगा। पृथ्वी के जिस भाग पर वे गिरने लगेंगे उसका सत्यानाश ही हो जायगा, पर हाँ, पृथ्वी चकनाचूर नहीं हो जायगी।

रह गई विषैले गैसों की बात; उनसे कोई डर नहीं मालूम होता, क्योंकि केतुओं में इनकी मात्रा काफ़ी नहीं है। शायद वायु-मंडल की ऊपरी तहों में ओषजन की अधिकता के कारण विषैले गैस परिवर्तित होकर विषरहित भी हो जायँगे। जो हो, इतना निश्चय है कि पृथ्वी आधुनिक समयों में भी पुच्छल ताराओं की पूँछ में से निकल गई है और हम लोगों को गणना के सिवाय और किसी बात से इसका पता नहीं लगा है। १८६१ के बड़े पुच्छल तारे की पूँछ में से, और अभी हाल में १९१० के हैली केतु की पूँछ में से भी, पृथ्वी निकल गई और हम लोगों को इसका ज्ञान भी नहीं हुआ।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि पृथ्वी और केतुओं के लड़ जाने की कोई विशेष सम्भावना नहीं है। वस्तुतः, गणना-द्वारा यह भी बतलाया जा सकता है कि ऐसी घटनाओं के होने की कितनी सम्भावना (probability) है। न्यूकॉम्ब का कहना है कि यदि कोई आँख मूँद कर आकाश में गोली चला दे तो उस गोली से किसी उड़ती हुई चिड़िया के मर जाने की सम्भावना पृथ्वी के केतु से टकराने की सम्भावना से अधिक है" !

१८—कुछ ऐतिहासिक केतु—१—एनके-केतु। १८१८ में फ़ान्स के पॉन्स (Pons) ने छोटे से एक केतु को देखा। एनके ने प्रचलित प्रथा के अनुसार इसकी कक्षा को परवलय मान कर गणना की, परन्तु यह कक्षा किसी प्रकार भी संतोषदायक न निकली। तब उसने फिर से बड़े परिश्रम से सूक्ष्म गणना की और उसे पता चला कि यह दीर्घ-वृत्त में चल रहा है और यह वही पुच्छल तारा है जो पहले भी कई बार देखा जा चुका था। प्रसिद्ध हरशेल की बहन, मिस कैरोलिन हरशेल (Caroline Herschell) ने इसका पहले पहल आविष्कार १७९५

में किया था। फिर एनके ने इसके लौट आने के समय की गणना की और वह बतलाये हुए समय पर ठीक लौट आया। एनके के परिश्रम और बुद्धिमत्ता के कारण ज्योतिषियों ने इस पुच्छल तारे का नाम एनके-केतु रख दिया। हैली-केतु के बाद यह दूसरा केतु था जो परवलय के बदले दीर्घ-वृत्त में चलता हुआ पाया गया था। हैली-केतु का परिक्रमण-काल तो ७६ वर्ष के लगभग है, परन्तु इसका केवल ३$\frac{१}{३}$ वर्ष।

यह पुच्छल तारा बहुत छोटा-सा है, परन्तु कभी कभी नन्हे से तारे के समान कोरी आँख से भी दिखलाई पड़ता है। इसका भी स्वरूप थोड़ा-बहुत बदलता रहता है। परन्तु इसमें एक विशेष बात यह है कि इसका परिक्रमण-काल घटता चला जा रहा है। परिक्रमण-काल पहले प्रत्येक बार लगभग ढाई घंटे घटता था और अब कुछ कम घटता है, परन्तु इस घटने का कोई कारण मालूम नहीं। ओलबर्स के मतानुसार सूर्य के इर्द-गिर्द कोई ऐसी वस्तु है जिससे एनके-केतु के चलने में बाधा पहुँचती है और इसी से इसका वेग प्रत्येक चक्कर में कुछ कम हो जाता है। वेग कम हो जाने से इसकी कक्षा कुछ छोटी हो जाती है, और परिक्रमण-काल कम हो जाता है। बाधा उत्पन्न करने-वाले माध्यम (resisting medium) के अस्तित्व पर बहुत बहस हुई है। कितने इसे नहीं मानते, क्योंकि अन्य केतुओं का परिक्रमण-काल नहीं घट रहा है, परन्तु अधिकांश ज्योतिषियों का मत है कि रुकावट पैदा करनेवाला पदार्थ वस्तुतः उपस्थित है। राशिचक्र-प्रकाश भी (पृष्ठ ५१४ देखिए) शायद इसी पदार्थ के कारण दिखलाई पड़ता है।

२—सन् १८४३ का पुच्छल तारा—फ़रवरी १८४३ में एक पुच्छल तारा सूर्य के पास ही छोटी तलवार के समान दिखलाई पड़ा। यह बहुत चमकीला था। दोपहर में भी सूर्य को ओट में कर देने पर

इसकी पूँछ चन्द्रमा के व्यास की दसगुनी लम्बी दिखलाई पड़ती थी। थोड़े ही दिनों में यह बहुत बढ़ गई। ११ मार्च को कलकत्ते के एक व्यक्ति ने इसकी पूँछ में एक नई शाख देखी जो क्षितिज से



[टरनर की वॉयेज इन स्पेस से

चित्र २९०—हैली की भविष्यद्वाणी का सत्य होना।

एक फ्रेंच चित्रकार ने इसमें एक देवी को दिखलाया है जो हैली को क़ब्र से अपनी भविष्यद्वाणी की पूर्ति देखने को बुला रही है।

खस्वस्तिक की ओर आधी दूर तक पहुँच सकती थी। यह पुच्छल तारा सूर्य की सतह से केवल ३२,००० मील की दूरी से निकल गया और अपने भीषण वेग के कारण ही सूर्य में गिरने से बच गया।

यह उस समय ३६६ मील प्रतिसेकंड के वेग से चल रहा था और आधी परिक्रमा में इसे कुल सवा दो घंटे लगे, यद्यपि शेष परिक्रमा में निस्संदेह इसे सैकड़ों वर्ष लगेंगे।

जैसे पतली छड़ी को ज़ोर से घुमा देने पर वह तड़ से टूट जाती है, इसी प्रकार यदि इस केतु की पूँछ ठोस होती तो टुकड़े टुकड़े हो जाती, क्योंकि लाखों मील की लम्बी पूँछ केवल सवा दो घंटे में दो समकोण के बराबर मुड़ न सकती।

३—डोनाटी-केतु—इसकी चर्चा ऊपर भी हो चुकी है। इस अत्यन्त चमकीले और सुन्दर पुच्छल तारे की गणना उन्नीसवीं शताब्दी के सबसे बड़े केतुओं में की जाती है। इसकी नाभि के समान चमकीली नाभि ऐसी ही किसी केतु में पाई जाती है। ११२ दिन तक यह पुच्छल तारा कोरी आँख से दिखलाई पड़ता रहा और दूरदर्शक से ६ महीने तक। इसका परिक्रमण-काल लगभग २,००० वर्ष है और यह नेपच्यून के सवा पाँच गुनी दूरी तक पहुँच जायगा।

४—टेबुट-केतु (Tebutt's Comet)—यह १८६१ में दिखलाई पड़ा था। बहुत बड़ा था, परन्तु इसलिए यह प्रसिद्ध है की इसकी पूँछ में से पृथ्वी होकर निकली थी।

सन १८८० और ८२ के पुच्छल ताराओं की चर्चा ऊपर हो चुकी है

५—मोरहाउस-केतु (Morehouse's Comet)—यह १६०८ में देखा गया और इसका पता पहले फ़ोटोग्राफ़ी से लगा। यद्यपि यह बहुत छोटा था और साधारणतः कोरी आँख से नहीं दिखलाई पड़ता था, तो भी यह अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण था, क्योंकि इसकी पूँछ में इस वेग से अन्तर उत्पन्न हुआ करते थे कि उनसे बहुत सी नई बातों का पता लगा। बारनार्ड ने ४७ दिन के भीतर इसके २३६ फ़ोटोग्राफ़ लिये। इसकी पूँछ कभी कभी आश्चर्यजनक शीघ्रता से बदल

जाती थी। जैसे ३० सितम्बर को अमरीका में रात्रि आरम्भ के समय पूँछ साधारण थी, परन्तु रात्रि बीतने भी न पाई थी कि पूँछ बवंडर के आकार की हो गई और शिर से केवल अत्यन्त पतली गरदन द्वारा जुड़ी थी। दूसरी रात पूँछ अलग हो गई और दूर बह गई। फिर दूसरी पूँछ निकल आई। इस केतु की चमक भी कभी कभी अनायास ही बढ़ जाया करती थी और एक दो दिन तक छोटे से तारे के समान कोरी आँख से भी यह दिखलाई देने लगता था।

६—हैली-केतु—निःसंदेह सब केतुओं में यह अधिक प्रसिद्ध है। न्यूटन (Newton) ने आकर्षण-सिद्धान्त के आविष्कार के बाद यह सम्मति प्रकट की थी कि केतु भी आकर्षण-नियमानुसार चलते होंगे। उसने एक केतु की कक्षा भी निकाली थी, परन्तु परिक्रमण-काल बहुत अधिक निकलने के कारण उसके समर्थन करने का कोई उपाय न मिला। न्यूटन के मित्र हैली (Halley) ने, जिसके ही आग्रह और खर्च से न्यूटन की प्रसिद्ध पुस्तक प्रिन्सिपिया (Principia) छपी थी, १६८२ के केतु की कक्षा निकाली जिससे पता चला कि यह लगभग ७६ वर्ष में एक चक्कर लगाता है। गणना करने पर उसे पता चला कि १५३१ और १६०७ के पुच्छल तारे वही रहे होंगे जो १६८२ में दिखलाया था। इसके पहले किसी को यह नहीं सूझी थी कि केतु भी बार-बार नियमानुसार लौटते होंगे*, परन्तु इन बातों के आधार पर हिम्मत कर

---

* इस सम्बन्ध में यहूदियों की धर्म-पुस्तक की यह कहानी बड़े मार्के की है।

"पैलेस्टाइन के दो पण्डित, गम्बील और जोसू साथ ही समुद्र-यात्रा कर रहे थे। पहला सिर्फ़ रोटी लाया था, दूसरा रोटी के अतिरिक्त कुछ आटा भी। जब गम्बील की रोटी चुक गई तब उसने अपने साथी से कुछ आटा माँगा और कहा कि तुम जानते थे कि यात्रा में विलम्ब होगा और सिद्धा भी

हैली ने भविष्यद्वाणी की कि १७५८ के अन्त में या १७५९ के आरम्भ में यह पुच्छल तारा फिर दिखलाई पड़ेगा। उस समय के ज्योतिषियों को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। कितनों ने तो स्पष्ट कह दिया कि केवल प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए हैली ने एक झूठी तिथि बतला दी है और चालाकी से इसे ७६ वर्ष बाद रक्खा है जिसमें मरने के पहले भंडा-फोड़ न हो। लेकिन हैली केवल इतना ही लिख गया "यदि यह पुच्छल तारा हमारे गणनानुसार १७५८ के लगभग लौट आये तो पक्षपात-रहित भविष्य की जनता इस बात को मानने में न हिचकेगी कि इसका आविष्कार एक अँगरेज़ ने किया था।"

इधर ७६ वर्ष बीतते बीतते आकर्षण-सिद्धान्त इस तरह जम गया था कि किसी को संदेह न रह गया कि वह केतु—जिसे लोग हैली-केतु कहने लगे—बतलाये समय पर अवश्य लौटेगा। इतना ही नहीं, जैसे-जैसे १७५८ समीप आने लगा तैसे-तैसे इसे बेध करने के लिए तैयारियाँ अधिक तत्परता से होने लगीं। किस समय यह केतु सूर्य से निकटतम दूरी पर पहुँचेगा इस बात की अधिक सूक्ष्म गणना करने का और बृहस्पति और शनि का प्रभाव भी शामिल कर लेने का क्या फल होगा यह जानने की इच्छा बहुतों को थी, परन्तु

लाये। जोसू ने कहा कि एक बड़ा तेजस्वी तारा है जो प्रत्येक सत्तर वर्ष पर आता है और नाविकों को धोखा देता है। हमने समझा कि हमारी यात्रा में यह अचानक दिखलाई पड़ेगा और हमारी यात्रा में देर करवा देगा। इसी लिए हम सिद्धा भी लेते आये।" (अगस्त १९१० के "ऑबज़रवेटरी" नामक पत्रिका से)।

फ्रांस के एक गणितज्ञ ने सिद्ध कर दिया है कि यह यात्रा उसी साल हुई थी जब सन् ६६ में हैली-केतु दिखलाई पड़ा था। तो क्या यहूदियों को पता लग गया था कि यह पुच्छल तारा नियमानुसार लौटा करता है?



[मैनचेस्टर आर्ट गैलरी की विशेष अनुमति से

केतु और जूलियस सीज़र

रोम के सम्राट् जूलियस सीज़र को उसकी स्त्री केतु दिखला रही है और इसे किसी भारी विपत्ति की सूचना समझ कर भयभीत हो रही है।

इसमें इतना समय लगता कि किसी की हिम्मत न पड़ती थी। अन्त में फ्रान्स के ज्योतिषी क्लेरो (Clairaut) ने, दो अन्य ज्योतिषियों की सहायता से, गणना आरम्भ कर दी। ६ महीने तक इन तीनों ने सुबह से रात तक परिश्रम किया। केवल भोजन करने के लिए बीच में रुकते थे। इस प्रकार कठिन परिश्रम करने ही से वे उस पुच्छल तारे के लौट आने के पहले गणना समाप्त कर सके। १४ नवम्बर १७५८ में क्लेरो ने घोषित किया कि हैली-केतु बृहस्पति के कारण ५१८ दिन और शनि के कारण १०० दिन, इस प्रकार कुल मिला कर लगभग २० महीने पिछड़ जायगा और इसलिए १३ अप्रैल १७५७ को सूर्य से निकटतम दूरी पर पहुँचेगा।

इस केतु को देखने के लिए चारों ओर चेष्टा होती रही, परन्तु किसी वृत्तिमत ज्योतिषी (professional astronomer) के भाग्य में इसका पुनः आविष्कार करना नहीं बदा था। पहले पहल इसको ड्रेस्डन (Dresden) शहर के पास रहनेवाले पालिट्ज़श (Palitzsch) नाम के एक कृषक ने देखा। यह ज्योतिष का बड़ा शौकीन था, बड़ी तेज़ निगाह का था और उसके पास एक आठ फ़ुट लम्बा दूरदर्शक भी था। १२ मार्च को—बतलाये समय के १ महीने पहले—यह उस साल सूर्य से निकटतम दूरी पर पहुँचा। क्लेरो की गणना में कुछ त्रुटि रह गई थी। यूरेनस और नेपच्यून का उस समय तक आविष्कार नहीं हुआ था।

१८३५ की यात्रा में हैली-केतु गणना-प्राप्त तिथि के चार दिन पीछे सूर्य से निकटतम दूरी पर पहुँचा। उस वर्ष इसको पहले-पहल रोम (इटली) के वेधशालाध्यक्ष ने देखा।

१९१० में हैली-केतु फिर लौटा और अच्छी तरह देखा गया। अब की बार जरमन ज्योतिषी वोल्फ़ (Wolf) ने—वही जो

अवान्तर ग्रहों के आविष्कार के लिए प्रसिद्ध है—सबसे पहले इसका पता फ़ोटोग्राफ़ी से लगाया। १९ मई को यह सूर्य और पृथ्वी के बीच में आ गया। दूसरे दिन यह पृथ्वी से निकटतम दूरी पर पहुँचा। शुरू मई में यह केतु बड़ा ही तेजस्वी दिखलाई पड़ता था। सूर्य के सामने आ जाने के कुछ दिन पहले चमक में यह सब नक्षत्रों से बढ़ गया और इसकी पूँछ ६०° लम्बी थी। १६ तारीख़ के बाद इसका शिर तो सूर्य के बहुत पास पहुँच जाने से देखा नहीं जा सकता था, परन्तु उस समय इसकी पूँछ बढ़ कर १२०° की हो गई थी। प्रातःकाल, सूर्योदय के कुछ पहले, यह पूँछ आकाश-गंगा के समान चमकीली और चौड़ी, क्षितिज से खस्वस्तिक के उस पार तक लम्बी, दिखलाई पड़ती थी। १८ मई को पृथ्वी इसकी पूँछ के दूरस्थ भाग में पड़ गई (चित्र ५४९, पृष्ठ ६८२)। पीछे यह केतु शाम को दिखलाई पड़ने लगा और शीघ्र ही छोटा होते होते लुप्त हो गया।

कॉवेल (Cowell) और क्रॉमलिन (Crommelin) ने इस केतु की पुरानी स्थितियों की गणना की है और पता लगाया है कि प्राचीन समय में वह कब कब दिखलाई पड़ा होगा। सन् –८७ (८७ पूर्व) से लेकर १९१० तक कुल २१ बार यह लौटा है और पुराने इतिहासों को खोजने से इन इक्कीसों बार का वर्णन कहीं न कहीं मिलता है। उनका ठीक उसी समय पर और आकाश के उसी भाग में दिखलाई पड़ने की चर्चा मिलती है जहाँ गणनानुसार इसे दिखलाई पड़ना चाहिए था। जहाँ कहीं इस पुच्छल तारे के मार्ग का भी वर्णन दिया है इसका मार्ग भी ठीक बैठता है। इससे सिद्ध है कि यह पुच्छल तारा पुराने समय में भी इसी चमक और आकार का था जैसा कि अब। कुछ पुराने वर्णनों में, विशेषकर चीनी पुस्तकों में, इस केतु की आकृति का ऐसा सच्चा

वर्णन है कि आश्चर्य होता है। यूरोपीय लोग प्राचीन समय में केतुओं से बहुत डरते थे और ज्योतिष के विचार से उनका अध्ययन कभी नहीं करते थे, इसलिए उनके प्राचीन ग्रंथों में इस केतु के विषय पर कोई विशेष बातें नहीं लिखी हैं। परन्तु भाग्यवश चीन देश के लोग केतुओं के मार्ग का सूक्ष्म वर्णन लिख गये हैं। जापान की प्राचीन पुस्तकों में भी इनका शुद्ध वर्णन मिला है। इस सम्बन्ध में क्रॉमलिन का कहना है कि १४५६ के पहले तक चीन-निवासियों का वर्णन ही शुद्ध है। यूरोपीयों ने कई एक ग़लतियाँ की हैं, "परन्तु इसके बाद से यूरोपीय तरीक़े शीघ्र अच्छे हो गये, परन्तु पूर्वीय रीतियाँ जैसी की तैसी ही रह गईं।"

अध्याय १७

उल्कायें

१—**उल्का**—सभी ने देखा होगा कि कभी कभो तारे टूट कर गिरते हुए से जान पड़ते हैं। इनको उल्का (meteor) कहते हैं। साधारणत: ये छोटी होती हैं, परन्तु कभी कभी ये इतनी चमकीली होती हैं, कि उनसे सारा दृश्य प्रकाशित हो उठता है और कभी कभी हर-हर हर-हर आवाज़ भी सुनाई पड़ती है। कभी कभी ये उल्कायें आकाश में टुकड़े-टुकड़े हो जाती हैं और उनमें से बादल गरजने के समान शब्द होता है। जिस प्रकार पुच्छल तारात्रों से पुराने समय में लोग डरा करते थे, उसी प्रकार थोड़ा बहुत उल्काओं से भी डरते थे। परन्तु छोटी-छोटी उल्काओं का दिखलाई पड़ना इतना साधारण है कि इनसे लोग परिचित हो जाते हैं; हाँ विशेष चमकीली और गरजनेवाली उल्काओं की बात दूसरी है। कभी कभी ये उल्कायें रास्ते ही में पूर्णतया भस्म नहीं हो जातीं, वे पृथ्वी तक पहुँच जाती हैं, इनको उल्का-प्रस्तर (meteorite) कहते हैं; उल्का-प्रस्तरों से अवश्य डरने का कारण रहता है। अभी हाल में दो मनुष्य इस प्रकार के एक उल्के से चूर हो गये। २३ सितम्बर १९२८ के "लीडर" समाचार-पत्र में छपा था:—

"कलकत्ता, २० सितम्बर

"यहाँ पर जालौन ज़िला (यू० पी०) के कंत नामक गाँव के पास प्राण-घातक उल्का के गिरने का समाचार मिला है। एक अमीन और उसका सहायक खेत नाप रहे थे। वे तुरंत मर गये और एक तीसरा व्यक्ति सख़्त घायल हुआ। पहले व्यक्ति की लाश का अभी

तक पता नहीं चला, क्योंकि उसकी धज्जियाँ उड़ गईं। २० मील तक गिरने का शब्द सुनाई पड़ा। लोग इस उल्के को परमेश्वर के



[जिओलॉजिकल सरवे

चित्र ४४१—मेरुआ (भारतवर्ष) में गिरा उल्का-प्रस्तर।

क्रोध का चिह्न समझते हैं। उल्का-प्रस्तर का एक ५० मन का टुकड़ा इस ज़िले के मुख्य स्थान में जाँच के लिए भेज दिया गया है।"

पेनसिलवैनिया विश्व-विद्यालय बेधशाला के अध्यक्ष, डाक्टर ऑलीवियर (Olivier) ने, जो उल्का-सम्बन्धी बातों में प्रमाण माने जाते हैं, अभी हाल में कहा है कि न्यूयॉर्क या कोई दूसरा बड़ा शहर एक दिन बात की बात में उल्का-द्वारा नष्ट हो जा सकता है, जो इसे क्षण भर में चपाती सा चपटा कर देगा। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि लगभग २० वर्ष हुए साइबेरिया में भीषण आकार का एक उल्का-प्रस्तर गिरा। ख़ैरियत यह हुई कि यह एक निर्जन वन में गिरा। यदि यह किसी बड़े शहर पर गिरता तो लाखों जानें जातीं।

२—साइबेरिया का भीषण उल्का-पात—१९०८ जून ३० को सात बजे सवेरे, पूरे प्रकाश में, येनीशाई प्रान्त में एक अत्यन्त तेजस्वी उल्का देखी गई। हज़ारों मनुष्यों ने इसे देखा। सैकड़ों हज़ार ने इसके वायु में चलने से उत्पन्न हुई बादल गरजने के समान घड़घड़ाहट को सुना। इरकुट्स्क (Irkutsk) तक के भूकम्प-यंत्रों में उसके गिरने से उत्पन्न हुई पृथ्वी की कँपकँपी लिख गई।*

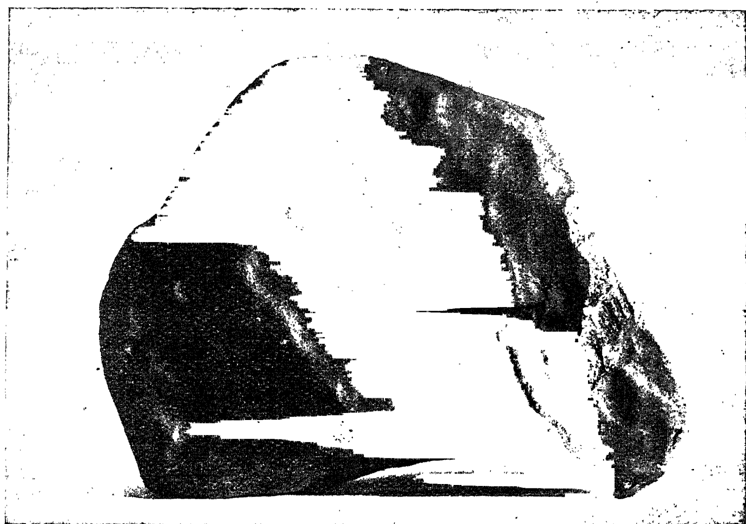
सब कुछ होते हुए भी उस स्थान का लोगों को पता नहीं चला जहाँ वह उल्का-प्रस्तर गिरा था। बात यह थी कि यह इतना चमकदार था, और इसकी आवाज़ इतनी तेज़ थी कि लोगों को धोखा हो गया। सभी समझते थे कि यह कहीं पास ही गिरा होगा, परन्तु वस्तुतः यह कई सौ मील उस शहर से उत्तर की ओर गिरा था।

यूरोपियन महासमर के कारण लोग इस बात को प्रायः भूल ही गये थे। परन्तु १९२१ में कुछ रूसी वैज्ञानिकों ने सोवियेट सरकार से उस उल्का-पात के विषय में खोज करने के लिए थोड़ा

---

* बहुत से स्थानों में ऐसे यंत्र दिन-रात चला करते हैं। ज़रा भी भूकम्प आने से इन यंत्रों में पृथ्वी की थरथराहट लिख जाती है।

सा धन प्राप्त किया और खोज के लिए निकले। कुलिक (Kulik) खोज-पार्टी का अगुआ था। कई एक उल्का-प्रस्तर मिले, परन्तु जिसकी खोज में ये लोग निकले थे वहाँ तक न पहुँच सके। कारण यह था कि जहाँ तक पता चला यह स्थान अत्यन्त दुर्गम और मार्गरहित जंगल के बीच था, जहाँ एक अर्धसभ्य जाति के इने-गिने थोड़े से व्यक्ति रहते हैं।



[जिओलॉजिकल सरवे

चित्र ५५२—लूआ (भारतवर्ष) में गिरा उल्का-प्रस्तर।

यह लगभग ६ इंच का है।

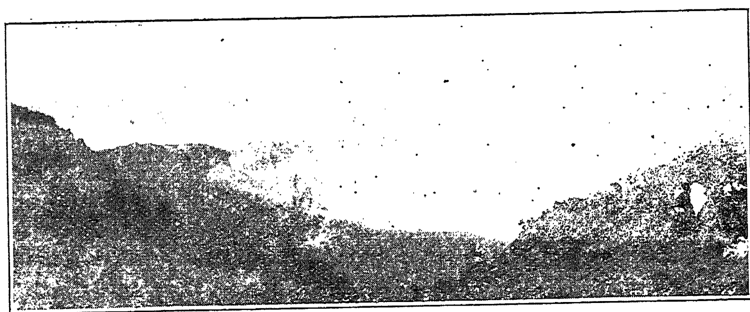
१९२७ में कुलिक ने दूसरी पार्टी तैयार की और असह्य कठिनाइयाँ उठाते हुए, बहुत दिनों तक आधा पेट खाकर, यह साहसी १९०८ वाले बृहत्-काय उल्का-प्रस्तर के पतन-स्थान पर पहुँच ही गया और वहाँ की पूरी छान-बीन की। कुलिक के वर्णन

से जैसी भयानक घटना यहाँ घटी हुई जान पड़ती है वैसी घटना आज तक पहले कभी भी सुनने में नहीं आई। उसने लिखा है कि स्ट्रेल्का और वानोवरा नामक छोटी छोटी बस्तियों के बीच के उजाड़ स्थान में उल्का-पात हुआ था। इस दुर्घटना के पहले यह बहुत घना जंगल था। अब तो यह तृण-रहित हो गया है। बीच में, कई मील के घेरे में, पृथ्वी ऐसी फट और खुद गई है जैसे इसको अलफ़ लैला में बतलाये गये किसी जिन्न ने ताड़ ऐसे लम्बे हल से जोत दिया हो। ज्वालामुखी पर्वत के मुख के समान कई एक गड्ढे बन गये हैं, ठीक उसी स्वरूप के जैसे चन्द्रमा पर दिखलाई पड़ते हैं। इसके चारों ओर कई मील तक सब दरख़्त झुलस गये हैं। उनके छिलके और उनकी शाखाओं का पता नहीं है और वे स्वयं बाहर को ओर झुक गये हैं। ठीक ऐसा जान पड़ता है जैसे अचानक ज्वाला की लपट ने इनको झुलसा और जला दिया हो और इनके छिलके को उखाड़ कर और इनकी शाखाओं को नोच कर दूर फेंक दिया हो। इस स्थान से ५० मील की दूरी पर के मकान गिर गये और मनुष्य भी मर गये। यहाँ के एक निवासी ने कुलिक को बतलाया कि उसके एक रिश्तेदार के पास इसी जंगल में १,५०० मवेशी थे। उल्का-प्रस्तर गिरने के बाद उनका कहीं पता ही न लगा। केवल एक दो जानवरों की जली हुई लाश मिली। मकान भी पूर्णतया जल गया था। उसमें रक्खे हुए सब औज़ार पिघल गये थे।

लेकिन आश्चर्यजनक बात यह है कि कोई बड़ा सा उल्का-प्रस्तर वहाँ नहीं मिला। कुलिक का अनुमान है कि उल्का-प्रस्तर एक नहीं था, यह कई एक टुकड़ों में था। वे सब अब ज़मीन के अन्दर बहुत दूर तक घुस गये हैं। इस बात का लोग इरादा कर रहे हैं कि यहाँ बड़ी सी पार्टी लाकर ज़मीन खोद कर जाँच की जाय और हो सके तो उल्का-प्रस्तर से लाभ भी उठाया जाय, क्योंकि ऐसे

पत्थरों में बहुत सा अंश लोहे का रहता है। बाज़ तो शुद्ध लोहा होते हैं। कुलिक का अनुमान है कि कई टुकड़े तो तीन तीन हज़ार मन के रहे होंगे।

३—४,००० फ़ुट का गड्ढा—अरिज़ोना (Arizona), अमरीका, में भी एक जगह, ऐसा जान पड़ता है, किसी समय ऐसा ही भीषण उल्कापात हुआ था। वहाँ एक बड़ा भारी गड्ढा है (चित्र ५५३) जिसका व्यास लगभग ४,००० फ़ुट है। उसकी दीवारें बाहर



[फ़ोटो, डी० एम० बैरिङ्गर

चित्र ५५३—उल्का-प्रस्तर के कारण बना हुआ अरिज़ोना का गड्ढा।

रसेल-डुगन-स्टिवर्ट की ऐस्ट्रॉनोमी से (गिन कम्पनी की कृपा)।

से १५० फ़ुट ही ऊँची हैं, परन्तु गड्ढे के पेंदे से वे ६०० फ़ुट ऊँची हैं (चित्र ५५४, ५५५)। इस गड्ढे के आस पास, पाँच मील के भीतर हज़ारों छोटे छोटे उल्का-प्रस्तर मिले हैं, परन्तु लोगों का विश्वास है कि बड़े बड़े सभी प्रस्तर पृथ्वी के भीतर घुस गये हैं। छेद (Boring) करके भीतर से बानगी निकालने पर पता चला है कि गड्ढे के नीचे कई सौ फ़ुट तक की पृथ्वी भुरकुस हो गई है, परन्तु अभी तक असली उल्का-प्रस्तरों का, जिनके कारण इतना बड़ा गड्ढा उत्पन्न हुआ होगा, पता

नहीं चल सका है। हाल में ऐसे प्रमाण मिले हैं, जिनसे पता चलता है कि उल्का-प्रस्तर सब तिरछे गिरे थे और इसलिए गड्ढे के नीचे ये न मिलेंगे। वे दक्षिण की ओर निकल गये होंगे, अभी पता नहीं कितनी दूर। कुछ लोग वहाँ नलों से छेद कर रहे हैं। यदि उल्का-प्रस्तर का पदार्थ सुगमता से ऊपर लाया जा सकेगा तो बहुत मुनाफ़ा होगा।

जान पड़ता है कि इस उल्का-प्रस्तर के गिरे कई हज़ार वर्ष हुए, क्योंकि अब इस गड्ढे के किनारे दरख़्त उगे हैं जिनमें कई एक ७०० वर्ष से अधिक आयु के हैं। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि यहाँ पर भी एक ही बड़ा सा प्रस्तर नहीं गिरा होगा, कई एक टुकड़े गिरे होंगे; हाँ एक एक टुकड़े कई सौ मन के रहे होंगे।

४—इतिहास—बाइबिल में एक स्थान पर लिखा है "ईश्वर ने आकाश से बड़े बड़े पत्थर गिराये"। हो सकता है यह बात उल्का-प्रस्तरों के गिरने के लिए लिखी गई हो। यदि ये बातें ठीक हैं तो उल्काओं के सम्बन्ध में यह शायद सबसे प्राचीन लेख है। प्राचीन रोमन ग्रंथकार लिवी (Livy) ने सन् ६५० ई० पूर्व (650 B. C.) में उल्कापात होने की चर्चा की है। उसने लिखा है "राजा और दरबारियों के पास समाचार लाया गया कि ऐलबन शृंग पर पत्थर बरसा है। इस बात की सम्भावना पर यद्यपि विश्वास नहीं होता था, तिस पर भी कुछ लोग इसकी जाँच के लिए भेजे गये; तब उनके सामने ही आकाश से बहुत से पत्थर गिरे"। साथ ही साथ, भयानक नाद भी सुनाई पड़ा। लोगों ने इसका अर्थ यह लगाया कि देवता लोग अप्रसन्न हैं और इसलिए ९ दिन तक व्रत रखने की आज्ञा कर दी गई।

चीनी पुस्तकों में सन् ६८७ ई० पू० के २३ मार्च के सम्बन्ध में लिखा है "अर्ध रात्रि के समय, तारे पानी की तरह

बरसने लगे"। फिर सन् ६४४ ई० पू० में ५ पत्थरों के गिरने का चर्चा है।

ऑलीवियर का मत है कि "इस बात के बहुत से प्रमाण मिलते हैं कि मूर्तिपूजा के अति प्रारम्भिक रूपों में से उल्का-प्रस्तरों की पूजा भी शामिल थी"। इस बात के समर्थन में वह लिखता है कि प्राचीन ग्रंथों में इसके प्रमाण मिले हैं; फिर अमरीका के आदिम-



[ऑलीवियर के "मीटियर्स" से

चित्र २२४—पिछले चित्र में दिखलाये गये गड्ढे का भीतरी दृश्य।

निवासियों की क़ब्रों में उल्का-प्रस्तर गड़े हुए मिले हैं। एक उल्का-प्रस्तर अज़टेकों के मंदिर में मिला है। आज भी कुछ असभ्य या अर्ध-सभ्य जातियाँ इनको पवित्र मानती हैं। "देवताओं की माता" की जो प्रतिमा २०४ ई० पू० में रोम में लाई गई थी वह उल्का-प्रस्तर ही थी। ट्रॉय का पलेडियम, रोम में स्थित नूमा की पवित्र ढाल और साइप्रस में स्थित वीनस की मूर्ति भी उल्का-प्रस्तर ही थे। एफ़िसस

शहर के डिआना की मूर्ति भी उल्का-प्रस्तर ही रही होगी, क्योंकि लिखा है कि यह बृहस्पति से गिरी थी।

ऑलीवियर ने लिखा है "यह अच्छी तरह से मालूम है कि वह पवित्र पत्थर जो मक्का के क़ाबा में उत्तर-पूर्व कोने में लगा हुआ है उल्का-प्रस्तर है। इसका इतिहास सन् ७०० के पहले आरम्भ हुआ होगा, परन्तु मुसलमानों की अविचार मति ने इसके किसी टुकड़े का रासायनिक विश्लेषण नहीं करने दिया है"।*

इसमें संदेह नहीं कि चीनियों ने उल्का-पातों का अन्य सब जातियों से अच्छा विवरण लिखा है। किस तिथि को किस स्थान पर कितने प्रस्तर गिरे थे यह सब ब्योरेवार लिखा मिलता है।

सबसे पुराना उल्का-प्रस्तर, जिसके गिरने की तिथि के विषय में थोड़ा-बहुत ज्ञान है, वह है जो इस समय ज़ेको-स्लोवाकिया के एल्बोगेन (Elbogen) शहर के टाउनहॉल में रक्खा है। यह लगभग १४०० ई० में गिरा था। किंवदन्ती है कि एक राज-कर्मचारी था जो अत्यन्त क्रूर था और वही ईश्वर के क्रोध से पत्थर हो गया। परन्तु सबसे पुराना उल्का-प्रस्तर जिसके गिरने की ठीक तिथि मालूम है वह है जो अलसेस (Alsace) में एनसिसहाइम (Ensisheim) के गिरजाघर में रक्खा है। इस गिरजाघर के रजिस्टर में लिखा है "१६ नवम्बर १४९२ को एक आश्चर्य-जनक चमत्कार हुआ; क्योंकि मध्याह्न के पूर्व ११ और १२ बजे के बीच बादल तड़पने के समान घोर कड़क और बहुत दूर से और देर तक सुनाई देती हुई घड़घड़ाहट के साथ, एनसिसहाइम के शहर में १३० सेर का एक पत्थर गिरा। एक लड़के ने गिसगाउड तहसील के एक खेत में इसको गिरते देखा। यहाँ पर ५ फुट से भी अधिक गहरा

* C. P. Olivier: Meteors, Baltmore, 1925.

गड्ढा हो गया था। इसको लोग अद्भुत वस्तु समझ कर गिरजाघर में लाये। लूसर्न, विल्लिङ्ग और कई एक अन्य स्थानों पर आवाज़ इतनी स्पष्ट सुनाई पड़ी थी कि इनमें से प्रत्येक शहर में लोग समझे कि कहीं कुछ मकानात गिर पड़े हैं। बादशाह मैक्स-मिलियन, जो उस समय एनसिसहाइम में था, इस पत्थर को



[ऑलिवियर के "मीटियर्स" से

चित्र ५५५—उसी गड्ढे का दूसरा भीतरी दृश्य।

मनुष्य के पीछे पहाड़ नहीं दिखलाई पड़ रहा है। यह गड्ढे की दीवार है।

क़िले में उठवा ले गया। इनमें से दो टुकड़े तोड़वा कर, एक तो ऑस्ट्रिया के सिगिसमुंड नवाब के लिए और दूसरा अपने लिए, उसने हुक्म कर दिया कि अब इस पत्थर को कोई हानि न पहुँचावे; और इसको गिरजाघर में लटका देने का भी हुक्म कर दिया।"

५—वैज्ञानिकों का अंधविश्वास—केवल जनता ही सदा अन्ध-विश्वासी नहीं होती। कभी कभी वैज्ञानिक भी अंध-विश्वासी होते हैं और जनता ठीक रास्ते पर रहती है। यूरोप में मध्य-कालीन समय में जैसे जैसे विज्ञान की उन्नति होने लगी तैसे तैसे वैज्ञानिकों का विश्वास बढ़ता गया कि पत्थर आकाश से गिर नहीं सकते और इसलिए उन्होंने मान लिया कि वे कभी गिरे भी नहीं थे। जनता की बातों को कि आकाश से पत्थर गिरते हुए देखे गये हैं उन्होंने अंध-विश्वास का परिणाम समझा। इसलिए वे उनकी हँसी उड़ाया करते थे जिन्होंने लिखा था कि ऐसी घटनायें प्रत्यक्ष देखी गई हैं। इस विषय में ऑलीवियर ने अपनी "उल्कायें" (Meteors) नामक पुस्तक में लिखा है।*

"अब हम अट्ठारहवीं शताब्दी के दूसरे भाग में आते हैं। इसके पहलेवाली शताब्दियों में कई एक उल्का-प्रस्तर गिरे थे और इनका कई एक स्पष्ट वर्णन उन लोगों ने किया था जिन्होंने अपनी आँखों से देखा था। तिस पर भी, इतना प्रमाण होते हुए, हमको मूर्खता और पक्षपात के उदाहरण मिलते हैं जिनको उस समय के अच्छे वैज्ञानिकों के नेताओं ने दिखलाया। ये लोग निस्संदेह अपने को सबसे अधिक अग्रसर और "आधुनिक" समझते थे और दूसरे भी उनको ऐसा समझते थे। इसे सब काल के लिए ऐसे व्यक्ति को चेतावनी समझनी चाहिए जो ख़्याल करता हो कि वह अपने अनु-भव के बाहर की बातों का भी निश्चयरूप से निर्णय कर सकता है। फ़्रांस के वैज्ञानिक ऐकैडेमी ने लूसे में पत्थर गिरने के विषय में सच्ची बात की खोज करने के लिए एक कमीशन भेजा। अनेकों ऐसे गवाहों की, जिन्होंने स्वयं अपनी आँखों से ऐसी घटनाओं को देखा था, गवाही रहने पर भी इस कमीशन ने यही निर्णय किया

---

* पृष्ठ ९।

कि पत्थर गिरा नहीं; वह पृथ्वी पर का ही पत्थर था, केवल उस पर बिजली गिरी थी। इससे भी बुरा उदाहरण अभी आनेवाला था। १७९० की २४ जूलाई को दक्षिण-पश्चिम फ्रांस में फिर पत्थर गिरे। बहुत से पत्थर गिरे, और पृथ्वी में धँस गये। इसके साथ की अन्य घटनायें [प्रकाश इत्यादि] सैकड़ों मनुष्यों ने देखीं। तीन सौ से भी अधिक लिखी शहादतें, जिनमें से कई तो



[ऑलीवियर के "मीटियर्स" से

चित्र ५५६—बाज़ बाज़ उल्का-प्रस्तर बेतरह टेढ़े रहते हैं या जलने से टेढ़े हो जाते हैं।

इसी से गिरते समय वे नाचने लगते हैं।

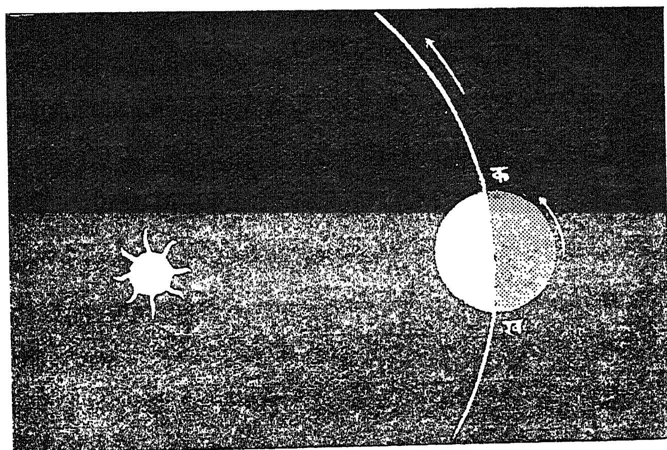
सौगंध खाकर सच्ची बतलाई गई थीं, पेश की गईं और पत्थर के टुकड़े भी पेश किये गये। वैज्ञानिक पत्रिकाओं ने इनको छापा तो अवश्य, परन्तु केवल इसी लिए कि वे जनता की मूर्खता और गप्पों पर विश्वास करने की आदत की हँसी उड़ा सकें। बर्थलन के शब्द—और कहा जाता है कि यह अन्य वैज्ञानिकों के मत को भी शुद्ध रूप

में प्रदर्शित करता है—यहाँ देने लायक हैं, "कमीशन की इस रिपोर्ट पर हम क्या टीका-टिप्पणी करें ? इस बात पर, जो प्रत्यक्ष रूप से झूठी है, जो नितान्त असम्भव है, यह सच्ची गवाही पढ़कर जो विचार उठते हैं उनका निर्णय करना हम विज्ञ पाठकों के हाथ में छोड़ देते हैं।"

परन्तु इन वैज्ञानिकों का निर्णय सुनी अनसुनी करके पत्थर फिर गिरे और जहाँ-तहाँ गिरते ही रहे। अन्त में १८०३ में फ्रांस के एक गाँव पर पत्थरों की पूरी बौछार पड़ी। तब वैज्ञानिक ऐकैडेमी का पहलेवाला दृढ़ विश्वास हिल गया और अन्त में प्रसिद्ध वैज्ञानिक बायो (Biot) इस बात की जाँच के लिए भेजा गया। उसने सिद्ध किया कि पत्थर वस्तुतः गिरते हैं और वे आकाश ही से आते हैं। तब से इन उल्का-प्रस्तरों के विषय में हमारा ज्ञान बराबर बढ़ता ही गया है।

९—१,००,००० टुकड़े—कभी कभी एक ही स्थान में एक ही समय अनेकों उल्का-प्रस्तर गिरते हैं। १८३० में फ्रांस के एक स्थान में दो तीन हज़ार पत्थर गिरे। वहाँ के निवासी व्याकुल हो गये। पोलैन्ड के पुल्टुस्क नगर में एक बार १,००,००० पत्थर गिरे थे और हंगैरी में भी एक बार इसी प्रकार की प्रस्तर-वर्षा हुई थी। अभी हाल में अरिज़ोना में १९ जूलाई १९१२ को १४,००० पत्थर गिरे थे। कभी कभी तो उल्कायें वायु-मंडल में टूट कर टुकड़े टुकड़े हो जाती हैं, परन्तु अधिकतर वे हमारे वायु-मंडल में घुसने के पहले ही टुकड़े टुकड़े हुई रहती हैं। यह बात इन टुकड़ों के आकार से जान पड़ती है। पृथ्वी के पास आकर टूटे हुए टुकड़े अधिक कोरदार होते हैं। फिर कोई कोई उल्कायें चन्द्रमा ऐसी बड़ी जान पड़ती हैं, जिससे पता चलता है कि वस्तुतः उनके कई टुकड़े होते होंगे और सबों के साथ ही जलने से हमें एक ही बहुत बड़ी उल्का

दिखलाई पड़ती है। बिजली तड़पने ऐसी जो कड़क सुनाई देती है वह साधारणतः उल्काओं के टूटने की आवाज़ नहीं रहती। उनके बहुत गर्म हो जाने से और उनके अत्यन्त अधिक वेग के कारण यह आवाज़ उत्पन्न होती है, क्योंकि उल्का-प्रस्तरों के गिरने में बहुत कम समय लगता है।



चित्र २२७—उल्कायें अर्धरात्रि के बाद अधिक दिखलाई पड़ती हैं।

इसका कारण यह है कि उस समय, जैसा इस चित्र से स्पष्ट है, दर्शक पृथ्वी के उस भाग में (क के पास) रहता है जो आगे बढ़ता रहता है और इसलिए जिसको बहुत सी उल्काओं से सामना करना पड़ता है। अर्धरात्रि के पहले दर्शक पृथ्वी के उस भाग (ख के पास) रहता है जो पीछे हटता रहता है और इसलिए उस समय केवल शीघ्रगामी उल्कायें ही दर्शक के वायु-मंडल में घुस पाती हैं।

७—उल्काओं की जातियाँ—उन सब पिण्डों को जो बाहर से हमारे वायु-मंडल में घुसते हैं और चमक उठते हैं उल्का कहा जाता है। इनकी तीन जातियाँ मानी जाती हैं। जहाँ तक पता चलता है तीनों जातियाँ वस्तुतः बनावट में एक ही हैं, केवल उनके

डीलडौल में अन्तर है। देखने में तीनों में काफ़ी अन्तर है और इसलिए इनको तीन जातियों में बाँटना अनुचित नहीं है। पहली जाति उन छोटे छोटे उल्काओं की है जो ठीक तारे के समान ही जान पड़ती हैं। इनको छोटा उल्का (Shooting star या meteor) कहते हैं। अत्यन्त मंद-प्रकाश की उल्काओं से लेकर शनि या बृहस्पति के समान चमकीली उल्कायें इस जाति में रक्खी जाती हैं। इनसे अधिक चमकीली उल्काओं को अग्नि-पिंड (Fireball) कहते हैं। ये कम से कम बृहस्पति या शुक्र के समान चमकीली होती हैं और कभी कभी तो पूर्णिमा के चन्द्रमा से भी कई गुनी बड़ी और चमकीली देखी गई हैं। इनके चलने से बादल के गरजने के समान आवाज़ होती है। ये अपना रास्ता समाप्त करते करते फट जाती हैं और इनसे भयंकर नाद पैदा होता है। १८७७ के एक अग्नि-पिंड से ऐसी तेज़ आवाज़ निकली कि लोग बहरे से हो गये। ऐसा अनुमान किया गया था कि बिजली तड़पने से कम से कम इसमें १०० गुनी अधिक आवाज़ हुई थी। जहाँ तक पता है किसी अग्नि-पिंड का कोई भाग पृथ्वी तक नहीं पहुँचता। यह पूर्णतया भस्म हो जाता है; राख अवश्य पृथ्वी तक पहुँचती होगी। उल्का-प्रस्तर (meteorites) उल्काओं की तीसरी जाति है। ये देखने में अग्नि-पिंड के समान होते हैं, परन्तु इनमें जलने से बचा हुआ कुछ भाग पृथ्वी तक पहुँच जाता है। स्पष्ट है कि ऊपर की तीनों जातियाँ एक दूसरे से बहुत भिन्न नहीं हैं, तो भी अग्नि-पिंड और उल्का-प्रस्तर नामों के प्रयोग से सुविधा होती है।

८—उल्का-झड़ी—कभी-कभी आकाश उल्काओं से भर जाता है। लगातार घंटों तक उल्कापात हुआ करता है। एलियट ने लिखा है।* "१२ नवम्बर १७९९ को तीन बजे तड़के लोगों ने

*Trans. Am. Philos. Soc., Vol. 6. 1804.

मुझे उल्कापात देखने के लिए जगाया। घटना उत्कृष्ट और भयानक थी। सारा आकाश ऐसा जान पड़ता था मानों आतिश-बाज़ी के बानों से प्रकाशित हो उठा हो। यह घटना दिन निकल आने के बाद केवल सूर्य के प्रकाश से ही बन्द हुई। प्रतिक्षण उल्कायें उतनी ही असंख्य जान पड़ती थीं जैसे तारे, और प्रत्येक



[न्यूकॉम्ब-एंगलमान की ऐस्ट्रॉनोमी से

चित्र ४४८—एक उल्का-प्रस्तर।

देखिए इसमें चेचक के समान कितने दाग़ पड़ गये हैं।

दिशा की ओर उड़ रही थीं। केवल वे पृथ्वी से आकाश की ओर नहीं जा रही थीं। वस्तुतः, सभी उल्काओं का मार्ग पृथ्वी की ओर ही थोड़ा बहुत झुका सा जान पड़ता था और जिस जहाज़ पर हम लोग थे उसके ऊपर भी कुछ खड़ी गिरती जान पड़ीं, यहाँ तक कि मैं बराबर डर रहा था कि दो चार हम लोगों के बीच

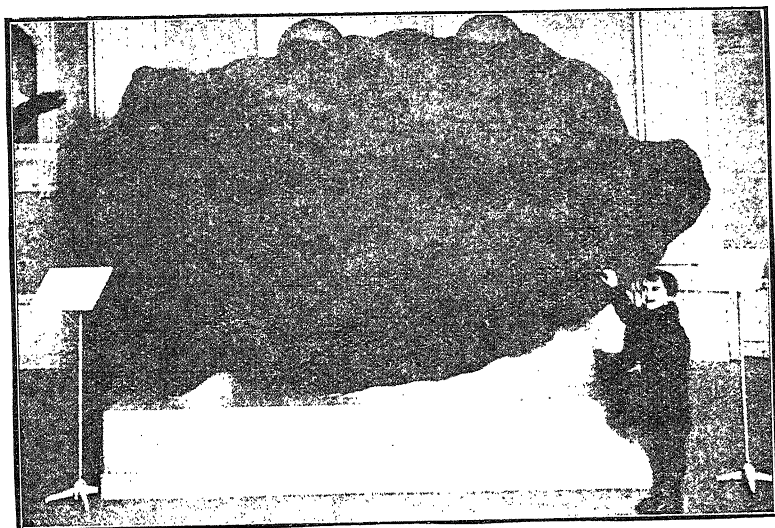
भी आ गिरेंगी। मैं के-लार्गो नामक स्थान से २४° पर था × × ×, पीछे मुझे मालूम हुआ कि यह दृश्य बहुत दूर तक दिखलाई पड़ा × × × और वहाँ [वेस्ट इन्डीज़ के उत्तरी भाग] पर भी यह वैसा ही चमकदार था जैसा जहाँ हम थे।"

इस उल्का-झड़ी (Meteoric shower) पर लोगों ने कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया। लोग इसे भूल चले थे, परन्तु इसके ३४ वर्ष बाद फिर ऐसी ही झड़ी देखने में आई। एक दर्शक (प्रोफ़ेसर ओल्मस्टेड Olmsted) ने "सिलीमैन जनरल" नामक पत्रिका में इसका यों वर्णन किया था। "आज सुबह बड़े तड़के आकाश में अग्नि-पिंडों का, जिन्हें साधारणतः उल्का कहते हैं, आश्चर्यजनक दृश्य देख पड़ा। लेखक का ध्यान इस ओर लगभग पाँच बजे आकर्षित किया गया। उस समय से लेकर लगभग सूर्योदय तक, इनका स्वरूप अद्भुत और अति शोभायमान था। मैंने इस प्रकार का जो कुछ भी पहले देखा था; उससे यह कहीं बढ़कर था।

"इस दृश्य का कुछ अनुमान करने के लिए, पाठक को अग्नि-पिंडों की लगातार वर्षा की कल्पना करनी चाहिए। ये बान की तरह थे और आकाश के एक विन्दु से चारों ओर फैलते थे। × × × ये इस विन्दु से भिन्न-भिन्न दूरी पर अपना रास्ता आरम्भ करते थे, परन्तु यदि वे रेखायें, जिनमें ये चलते थे, पीछे की ओर बढ़ा दी जातीं तो सब एक ही विन्दु में मिलतीं। × × लुप्त होने के पहले ये पड़ाके के समान फट जाते थे × × × परन्तु कोई आवाज़ नहीं सुनाई पड़ती थी। × × × उल्कायें भिन्न-भिन्न चमक की थीं। कुछ तो केवल विन्दु-सरीखी थीं। दूसरी बृहस्पति या शुक्र से भी बड़ी और चमकदार थीं। एक तो लगभग चन्द्रमा के बराबर

थी। प्रकाश की लपट ऐसी तेज़ थी कि सोये हुए मनुष्य जग उठते थे।..."

एक दूसरे दर्शक ने लिखा था "मैं समझता हूँ कि इसे मानने में ज़रा भी अतिशयोक्ति नहीं है कि प्रतिघंटे दस हज़ार उल्कायें गिर रही थीं।"



[सायंटिफ़िक अमेरिकन से

चित्र ५५९—अमरीका के अजायब-घर में रक्खा बड़ा उल्का-पत्थर।

यदि हमारे वायु-मंडल में अधिकांश उल्का-प्रस्तर भस्म न हो जाते तो ऐसे पत्थरों के गिरने से रोज़ ही दुर्घटनायें हुआ करतीं।

ऊपर के दर्शकों के वर्णन से यह पता नहीं चलता कि उल्काओं का गिरना कब आरम्भ हुआ। यह एक तीसरे दर्शक के वर्णन से पता लगता है।

"लगभग ९ बजे रात को उल्काओं ने पहले पहल मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। ढाई बजे रात तक इनकी संख्या

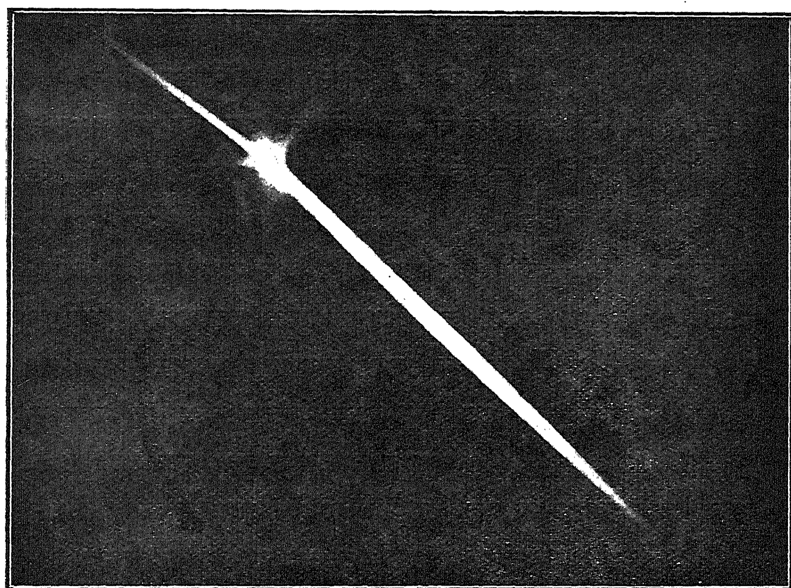
और चमक बढ़ती ही गई। उस समय मनुष्यों को जितने दृश्य देखने को मिलते हैं शायद उनमें से सबसे सुन्दर मेरे आश्चर्य-चकित नेत्रों के सामने आया। पीछे बतलाये गये समय से लेकर सूर्योदय तक आकाश की आकृति भयानक उत्कृष्ट थी। ऐसा जान पड़ता था जैसे आकाश की अनन्तता से अग्नि-पिंड-समूह हमारी पृथ्वी की ओर बवंडर की तरह दौड़ रहे थे। × × ×"

इसी प्रकार के वर्णन अनेकों ने दिये। इस घटना से बहुतेरे अत्यन्त डर गये और समझे कि क़यामत का दिन अब सचमुच ही आ गया। इस उल्का-झड़ी का प्रभाव जनता पर चाहे जो हुआ हो, वैज्ञानिकों पर यही हुआ कि उनका मन उल्काओं के विषय की ओर भी आकर्षित हो गया और इस विषय की तभी से विशेष उन्नति हुई है।

८—उल्काओं की संख्या—प्रतिघंटे हज़ारों उल्काओं का दिखलाई पड़ना तो इने-गिने अवसरों पर ही घटित होता है। प्रश्न यह है कि साधारणतः प्रतिघंटे कितनी उल्कायें दिखलाई पड़ती होंगी। साधारण मनुष्य प्रतिघंटे जितने उल्काओं को देखता है उनकी संख्या का परता ४ से ८ तक पड़ता है। हाँ, इस काम में अभ्यास हो जाने पर वह इससे अधिक (दस पन्द्रह तक) देख सकता है। इससे अनुमान किया जाता है कि उन उल्काओं की संख्या जो २४ घंटे में पृथ्वी भर पर दिखलाई देती होंगी कई लाख होगी। यदि हम इसमें उनकी भी संख्या शामिल करना चाहें जो केवल दूरदर्शक ही से दिखलाई पड़ती हैं, तो इनकी संख्या शायद कई करोड़ तक पहुँचेगी।

हम लोगों को देखने पर ऐसा जान पड़ता है कि हमें आकाश का आधा भाग दिखलाई पड़ता है और इसलिए यदि किसी एक स्थान से प्रतिघंटे दस पन्द्रह उल्कायें दिखलाई पड़ें तो सारी पृथ्वी

से प्रतिघंटे बीस-तीस दिखलाई पड़ती होंगी। परन्तु हमको इस प्रकार धोखा नहीं खा जाना चाहिए। यह तो अवश्य ठीक है कि हमको प्रतिक्षण प्रायः आधे तारे दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु वायु-मंडल का हमें केवल बहुत थोड़ा सा भाग ही दिखलाई पड़ता है।



[बटलर

चित्र ५६०—एक अग्नि-पिंड।

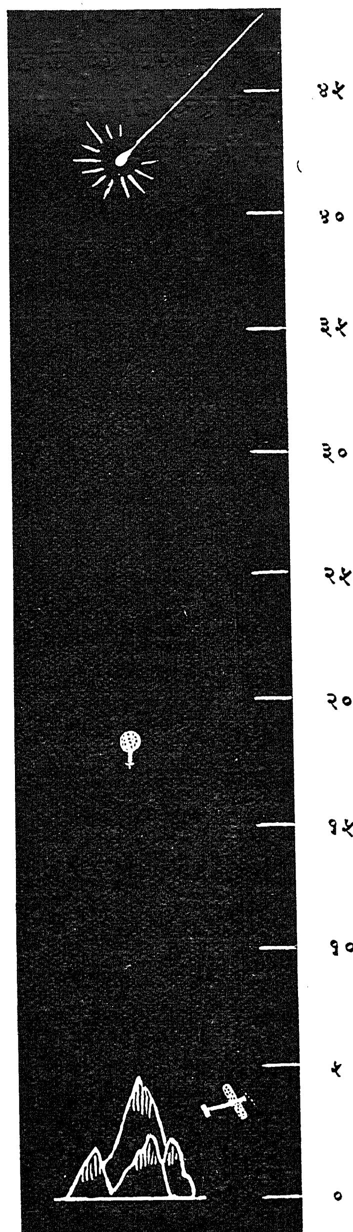
यह रास्ते में घोर नाद करके फट गया। संयोगवश ठीक उसी समय का चित्र खिंच गया है।

यह बात आप इस पर ध्यान देने से समझ जायँगे कि जब एक जगह पानी बरसता है और आकाश पूर्णतया बादलों से ढका रहता है, उसी समय किसी दूसरे स्थान पर, जो इष्ट स्थान से सौ-पचास मील ही पर है, बादल-रहित आकाश रह सकता है।

१ —उल्काओं का मार्ग—उल्का-अध्ययन में यह आवश्यक है कि उल्काओं का मार्ग ठीक-ठीक निकाला जाय। इस काम में साधारण मनुष्य भी ज्योतिषियों की बड़ी सहायता कर सकते हैं। ज्योतिषी भी ऐसे व्यक्तियों का बड़ा आदर करते हैं जो इस परिश्रम में उनका हाथ बँटावे। डेनिङ्ग (Denning) ने, जिसने उल्काओं के बेध में अपना जीवन अर्पण कर दिया, लिखा है "बहुत आशा की जाती है कि स्वयं-सेवक ऐसे निकलेंगे जो केवल उन सिद्धान्तीय प्रश्नों की ही जाँच नहीं करेंगे जो उल्काओं के सम्बन्ध में उपस्थित होते हैं, परन्तु जो उनका बेध भी करेंगे। ज्योतिष के कई विभागों में अधिक कार्य-कर्त्ताओं की बहुत आवश्यकता है, परन्तु जितनी आवश्यकता इस विभाग में है उतनी अन्य में नहीं। और यहाँ एक ऐसा कार्य-क्षेत्र है जिसमें अति मूल्यवान् कार्य बेश-क़ीमत यंत्रों के लिए पैसा ख़र्च किये बिना ही सम्पादन किया जा सकता है, केवल ऐसे स्थान की आवश्यकता पड़ती है जहाँ से पूरा आकाश दिखलाई पड़े; इसके अतिरिक्त बेध करने की शक्ति और इतने धैर्य और उत्साह की भी आवश्यकता पड़ती है जितने से बेध करनेवाला लम्बी रात में कई घंटों तक चौकस रह सके।"

उल्का-पथों के बेध करने के लिए वस्तुतः किसी विशेष यंत्र की आवश्यकता नहीं पड़ती; हाँ एक छड़ी की सहायता से कार्य कुछ सुगम हो जाता है। उल्का-पात होने के बाद छड़ी को उसी स्थिति में रखना चाहिए जिस रास्ते से उल्का गई। इस कार्य में इस बात पर ध्यान रखने से विशेष सहायता मिलेगी कि उल्का किन-किन ताराओं के पास से होकर निकली थी। छड़ी को ठीक स्थिति में रख कर देखना चाहिए कि उल्का किस तारा-समूह (constellation) के किस विन्दु से आरम्भ हुई और इसी प्रकार यह भी देखना चाहिए कि इसका कहाँ अन्त हुआ। ये

दोनों बातें और तिथि, समय, उल्का की चमक और वेग यह सब लिख लेना चाहिए। वेग के अनुमान ही करने में कठिनाई पड़ती है, अन्य सब बातें सरल हैं। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि इस काम के लिए तारा-समूहों का अच्छा ज्ञान होना चाहिए।



चित्र ५६१—ऊँचे से ऊँचा पहाड़ लगभग ५ मील ऊँचा है;

हवाई जहाज़ों से हम इतना भी नहीं उड़ सके हैं; हाँ, मनुष्य-रहित गुब्बारे २० मील तक पहुँच गये हैं। परन्तु साधारण उल्काओं की ऊँचाई ६० मील से अधिक होती है।

इन दिनों फ़ोटोग्राफ़ी की सहायता से भी उल्काओं का मार्ग अंकित किया जाता है। इसके लिए केवल कैमेरे में तेज़ लेन्ज़ होना चाहिए। कैमेरे में प्लेट लगा कर और लेन्ज़ खोल कर इसका मुँह आकाश की ओर करके इसको टिका देते हैं और

इसको यों ही, यदि रात अँधेरी हुई तो छः-सात घंटे तक, रहने देते हैं। जब कोई उल्का लेंज़ के दृष्टि-क्षेत्र से निकल जाती है तब समय नोट करके लेन्ज़ को बन्द कर देते हैं; या, एक ही प्लेट पर दो-चार उल्का-पथों का फ़ोटो भी लिया जा सकता है।

११—उल्काओं की ऊँचाई—पहले कुछ लोग समझते थे कि उल्कायें पृथ्वी के बहुत पास ही दिखलाई पड़ती हैं और पृथ्वी

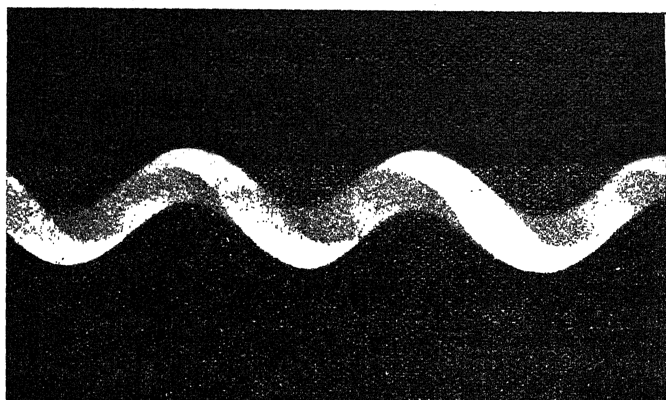


[चेम्बर्स की एस्ट्रॉनोमी से

चित्र ९६२—कुछ विचित्र धूम्र चिह्न (trails) जो उल्काओं के पीछे उनके मार्ग में रह जाते हैं।

से निकली गैसों के जल उठने से ही वे बनती हैं। परन्तु अठारहवीं शताब्दी के अन्त में दो जरमन विद्यार्थियों ने उल्काओं की दूरी नापी। इसके लिए उन दोनों ने भिन्न भिन्न स्थानों से उल्काओं का मार्ग बेध किया। स्पष्ट है कि भिन्न भिन्न स्थानों से बेध करने पर सरल गणित की सहायता से इसकी दूरी का ज्ञान किया जा सकता है (चित्र २०१, पृष्ठ २१२)। इन दोनों विद्यार्थियों के रास्ता दिखलाने पर कई एक दूसरे लोगों ने भी उल्काओं की दूरी नापी। पता चला है कि छोटी उल्काओं की औसत ऊँचाई, जब वे हमें पहले दिखलाई

पड़ती हैं, लगभग ७० मील है और उनका अन्त लगभग ५० मील की ऊँचाई पर होता है (चित्र ५६१)। तिरछा चलने के कारण उनकी औसत यात्रा लगभग ३५ मील की होती है। अग्निपिण्ड हमको अधिक ऊँचाई पर ही, कभी कभी तो १०० मील तक की ऊँचाई से, दिखलाई पड़ने लगते हैं और अधिक नीचे आने पर उनका अन्त हो जाता है। उनकी औसत यात्रा भी इसी हिसाब से अधिक, लगभग २०० मील की होती है।



[माउन्ट विलसन

चित्र ५६३—एक विचित्र धूम्र-चिह्न।

यह ठीक कॉर्क-स्क्रू की तरह है।

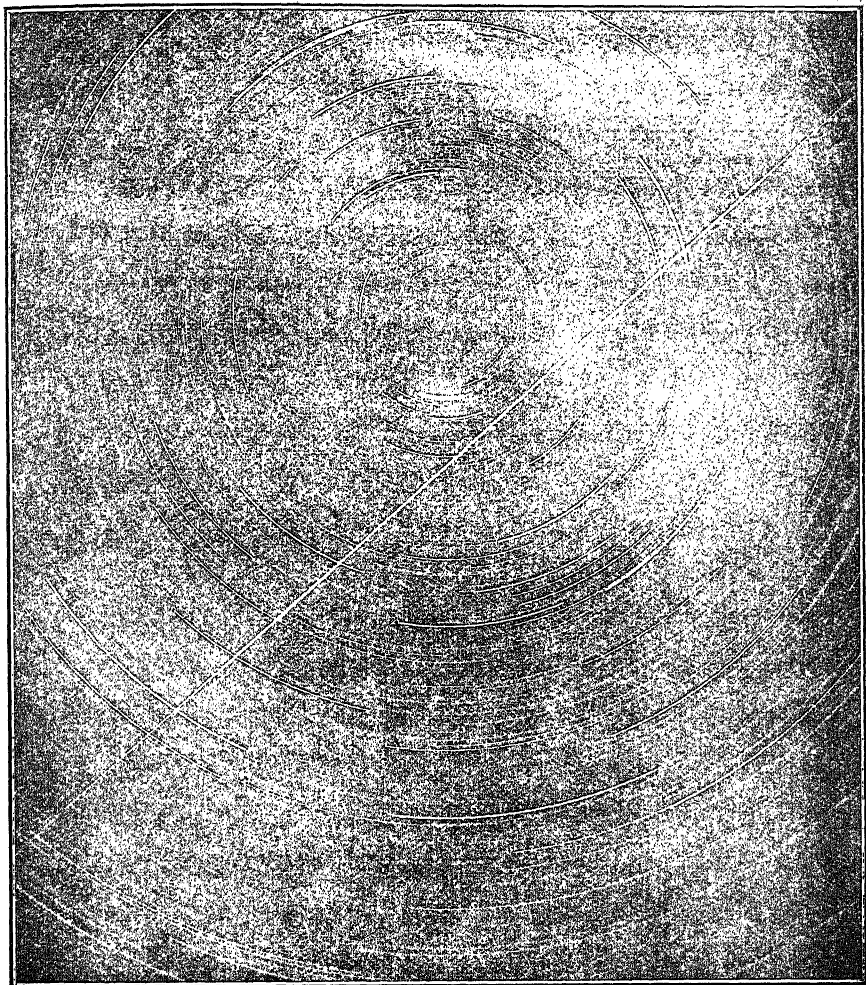
उल्काओं का वेग नापना कठिन है। हमारे वायु-मंडल के कारण, उल्का-प्रस्तरों का वेग पृथ्वी तक पहुँचने पर बहुत कम हो जाता है, परन्तु जिस क्षण अग्नि-पिण्ड या उल्का-प्रस्तर दिखलाई पड़ते हैं, उस समय उनका वेग सौ सवा सौ मील प्रतिसेकंड तक पाया गया है। सच्चा गोलाकार न होने के कारण उल्का-प्रस्तर गिरते गिरते नाचने लगते हैं। बहुत चमकीली उल्काओं के मार्ग में धुँआ सा कुछ रह जाता



[क्लेपेस्टा

चित्र २६४—नक्षत्रों का फ़ोटोग्राफ़ लेते समय इस अग्नि-पिण्ड के मार्ग का भी फ़ोटो उतर आया।

देखिए, अग्नि-पिण्ड कभी कम, कभी अधिक, बड़ा होता रहा है।

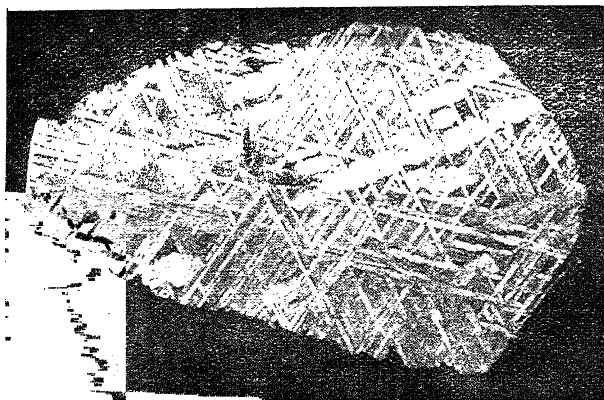


[लॉकियर

चित्र ५६५—ध्रुव-तारा के पास के नक्षत्रों का फ़ोटोग्राफ़ लेते समय इस उल्का का भी फ़ोटोग्राफ़ खिंच गया।
इसके कभी मोटे हो जाने, कभी पतले हो जाने का साफ़ पता चलता है।

है। इस धुयें की आकृति कभी कभी विचित्र रूप की होती है या वायु के कारण हो जाती है (चित्र ५६२,५६३)।

१२—उल्काओं की बनावट, इत्यादि—ऊपर लिखी बातों के आधार पर वैज्ञानिकों ने यह निश्चय किया है कि छोटी उल्का, अग्नि-पिण्ड और उल्का-प्रस्तर सभी छोटे छोटे पत्थर के टुकड़े हैं। जब वे चलते चलते पृथ्वी के पास आ जाते हैं तब पृथ्वी



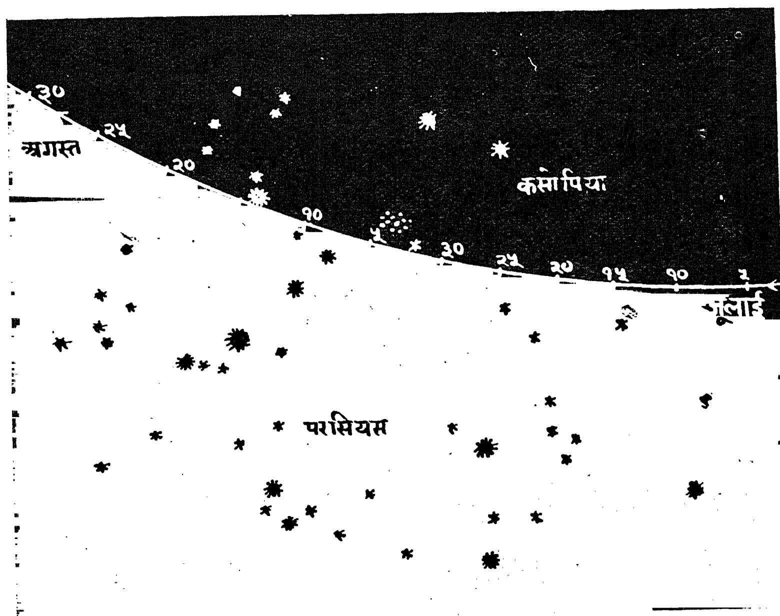
ऑलीविथर के "मीटियर्स" से

चित्र ५६६—तेज़ाब में छोड़ने के बाद उल्का लोह की रवा-दार बनावट स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगती है।

उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। परन्तु भीषण वेग के कारण हमारे वायुमंडल के घने भाग में पहुँचते ही उनमें इतनी गरमी पैदा हो जाती है कि वे या उनसे निकली हुई गैस जल उठती हैं। गैस निकलने की बात का यों पता चला है कि त्रिपार्श्वयुक्त दूरदर्शक (पृष्ठ २८७) से ताराओं का रश्मि-चित्र खींचते समय कभी कभी दूरदर्शकों के सामने उल्कायें भी आ गई हैं और उनका भी

रश्मि-चित्र खिंच गया है। इन रश्मि-चित्रों से पता चलता है कि उल्काओं में प्रज्वलित गैस भी रहती है।

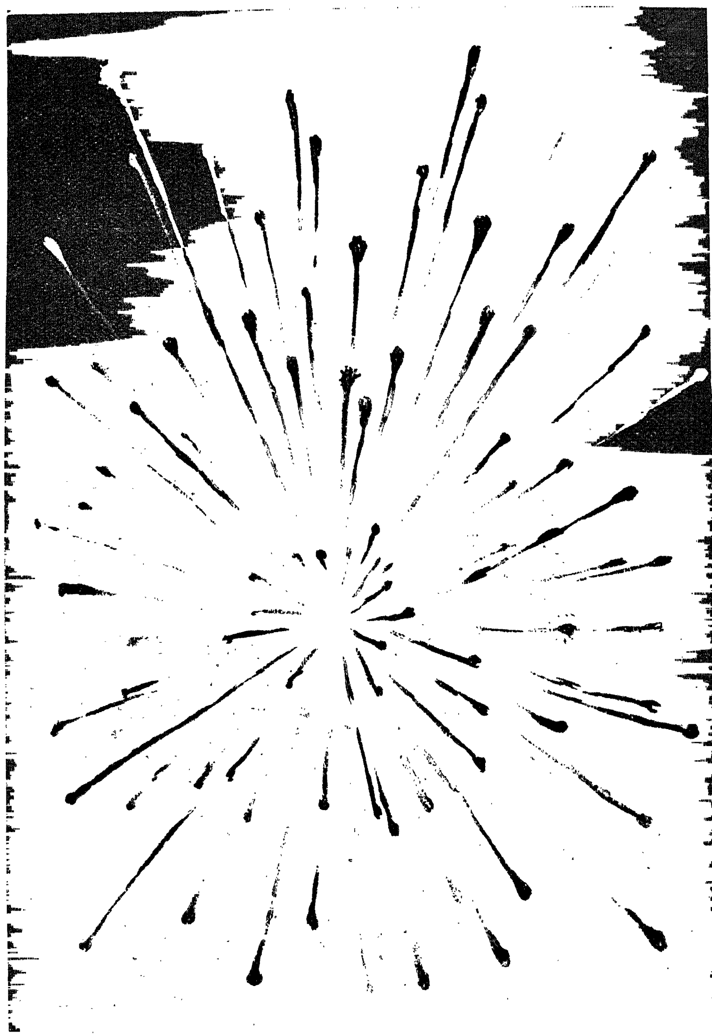
उल्काओं की कुल जीवन-लीला साधारणतः एक ही दो सेकंड में समाप्त हो जाती है। इसी लिए इसके ऊपर की गरमी भीतर



चित्र ५६७—नक्षत्रों के बीच एक सम्पात-मूल का मार्ग।

सम्पात-मूल उस विन्दु को कहते हैं जिससे उल्कायें आती हुई दिखलाई पड़ती हैं। बाज़ बाज़ सम्पात-मूल का मार्ग ठीक वही होने के कारण जिसमें पहले कोई केतु चलता था लोग समझते हैं कि उल्का-प्रस्तर किसी केतु के अवयव होंगे।

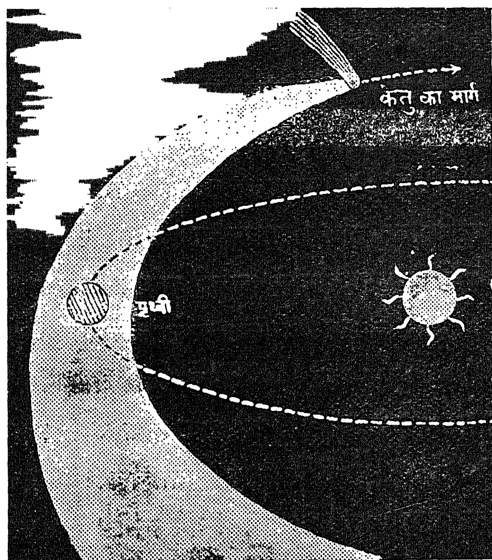
बहुत दूर तक पहुँचने नहीं पाती। उल्का-प्रस्तर के पृथ्वी पर गिरने के समय तक इसकी ऊपरी सतह बहुत कुछ ठंढी हो जाती है; और थोड़ी देर में, भीतरी भागों के बर्फ़ से कहीं अधिक ठंढा रहने के कारण, बाहर भी बहुत ठंढा हो जाता है। यही कारण है कि जो



चित्र ५६८—उल्का-झड़ी में उल्कायें एक ही विन्दु से आती हुई जान पड़ती हैं।

परन्तु वस्तुतः वे समानान्तर रेखाओं में चला करती हैं।

उल्का-प्रस्तर दो चार मिनट पहले भट्ठी की आँच से भी अधिक गर्म था वही पीछे बर्फ़ से भी अधिक ठंढा पाया जाता है। कभी कभी नम स्थानों पर गिरे उल्का-प्रस्तर बर्फ़ से ढके भी पाये गये हैं, क्योंकि उनके भीतरी भाग इतने ठंढे थे कि थोड़ी देर में उनके बाहर का पानी जम गया।



चित्र ६६६—पुच्छल तारात्रों का कल्पित मार्ग।

अनुमान किया जाता है कि पुच्छल तारात्रों के मार्ग में असंख्य रोड़े बिखरे रहते हैं। यही हमें समय पाकर उल्का के रूप में दिखलाई पड़ते हैं।

उल्काओं के प्रकाश से उनके तौल का भी पता लगाया गया है। इससे मालूम हुआ है कि साधारणत: उल्का सरसों के समान छोटी होती होगी! अग्नि-पिंड और उल्का-प्रस्तर स्वभावत: बहुत बड़े होते होंगे। सबसे बड़ा उल्का-प्रस्तर जो अभी तक पाया गया है वह है

जो इस समय अमेरिका के म्यूज़ियम (American Museum of Natural History, New York) में है। यह ग्रीनलैंड (Greenland) से लाया गया था और तौल में लगभग १,००० मन है। इसका नाम ग्रीनलैंड के निवासियों ने "आनाइटो" रक्खा था जिसका अर्थ है "तम्बू", क्योंकि इसकी शकल वैसी है।

पृथ्वी पर मिले उल्का-प्रस्तरों के ऊपर एक पतली तह वार्निश के समान पाई जाती है। यह ऊपरी भागों के पिघल जाने के कारण बन जाती है। उनमें चेचक के दाग़ की तरह, बहुत से गड्ढे भी बन जाते हैं (चित्र ५५८, पृ० ७०७)। शीघ्र जलनेवाले भागों के पहले जल जाने के कारण ये गड्ढे बनते होंगे। अधिकांश उल्का-प्रस्तर रवादार पत्थर होते हैं। सौ पीछे लगभग तीन में लोहा अधिक रहता है। तेज़ाब में छोड़ने के बाद इनकी रवादार बनावट स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगती है (चित्र ५६६)। उल्का-प्रस्तरों में कोई नया मौलिक पदार्थ नहीं पाया गया है। हाँ, उनके पत्थर सब ठीक ठीक उसी प्रकार के नहीं होते जैसे यहाँ के। रवा के रहने से पता चलता है कि वे किसी समय में पिघले पत्थरों के ठंढे होने से बने होंगे।

उल्का-प्रस्तरों के गरम करने से जलनेवाली गैसें निकलती हैं, जिससे पता चलता है कि मार्ग में ही उनमें से गैस निकलने का सिद्धान्त ठीक होगा।

१३—**उल्का-सम्पात-मूल**—हमने देखा है कि कभी कभी हज़ारों उल्कायें झड़ी की तरह एक साथ ही गिरती हैं। उस समय प्राय: सभी उल्कायें एक विन्दु से आती दिखलाई पड़ती हैं, इस विन्दु को सम्पात-मूल (Radiant) कहते हैं।

उल्का-झड़ी में तो सम्पात-मूल स्पष्ट ही दिखलाई पड़ता है, परन्तु साधारण उल्काओं के मार्गों का नक़शा बनाने से और उन



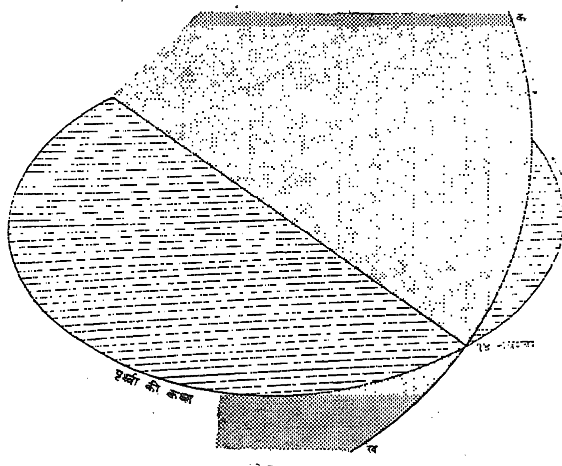
उल्का-पात

भीषण उल्का-पात का एक कल्पित चित्र। बाज़ ज्योतिषियों का ख़याल है कि ऐसे ही किसी उल्का-पात से पृथ्वी कभी नष्ट हो जायगी।

पृ० ७२२

मार्गों को पीछे-मुँह बढ़ाने से उनमें से कई एक एक ही विन्दु से आती जान पड़ती हैं। यही इन उल्काओं का सम्पात-मूल है।

सम्पात-मूल अन्य तारात्रों के हिसाब से स्थायी नहीं रहते। वे भी पुच्छल तारात्रों की भाँति लम्बे लम्बे दीर्घ-वृत्त में चलते पाये गये हैं। केवल यही नहीं। कुछ सम्पात-मूल तो ठीक उन्हीं कक्षाओं में चलते पाये गये हैं जिनमें किसी समय कोई केतु चलता था; जो



चित्र ४७०—किसी किसी सम्पात-मूल का मार्ग पृथ्वी-कक्षा को काटता है।

क ख, सम्पात-मूल का मार्ग है।

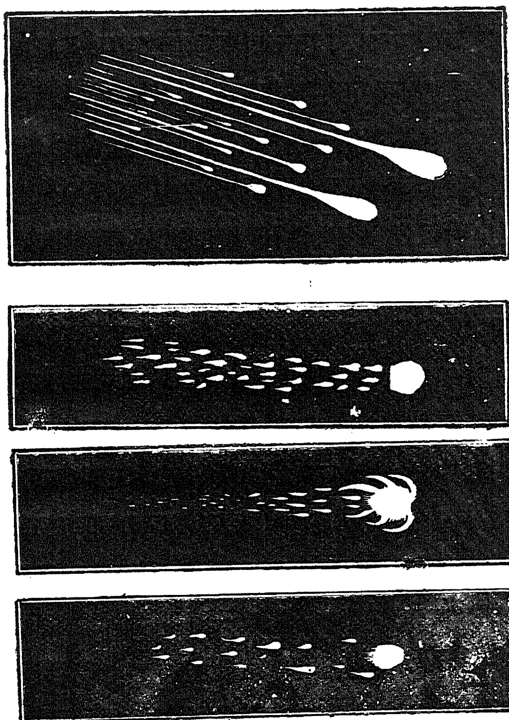
अब अदृश्य हो गया है। प्रसिद्ध बीला-केतु, जिसका वर्णन पिछले अध्याय में किया गया है, जैसा वहाँ बतलाया गया था, सन् १८५२ के बाद फिर नहीं देखा गया, परन्तु ठीक उसी कक्षा में एक सम्पात-मूल चलता पाया गया है। इससे समझा जाता है कि उल्कायें वस्तुतः केतु से ही उत्पन्न होती होंगी। इस बात पर आगे

फिर विचार किया जायगा। उल्का-पथ वस्तुत: एक विन्दु से नहीं आरम्भ होते होंगे। उल्कायें समानान्तर रेखाओं में चलती होंगी और इसी लिए देखने में वे एक विन्दु से आती जान पड़ती होंगी (चित्र ५६८), जैसे रेल की पटरी पर खड़े होने से पटरियों के बीच की दूरी कम होती हुई जान पड़ती है—ऐसा मालूम होता है कि वे कुछ दूर पर जाकर सट गई होंगी; या जैसे घाट किनारे खड़े होकर सीढ़ियों को देखने से ये सीढ़ियाँ एक विन्दु से आती जान पड़ती हैं, यद्यपि वस्तुत: वे समानान्तर रहती हैं।

१४—उल्का-झड़ी की उत्पत्ति—पुराने या वर्तमान पुच्छल ताराओं की कक्षा में, या उन्हीं के समान लम्बे दीर्घ-वृत्त में, सम्पात-मूल के चलने के कारण ऐसा अनुमान किया जाता है कि पुच्छल तारे स्वयं अनेक नन्हें नन्हें से लेकर कई मन तक के टुकड़ों से बने रहते होंगे। जब तक उनमें से, सूर्य के प्रभाव में आने पर, प्रकाश-मय गैस या गर्द निकलती है तब तक वे हमें पुच्छल-तारे के रूप में दिखलाई पड़ते हैं। पीछे, जब उनकी सब निकलने-योग्य गैस और गर्द निकल जाती है तब वे अदृश्य हो जाते हैं। आरम्भ से ही पुच्छल ताराओं के अवयव थोड़ा बहुत बिखरने लगते हैं और कभी कभी वे टूट कर दो या तीन या अधिक भागों में भी बँट जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि पुच्छल ताराओं का मार्ग असंख्य पत्थर के टुकड़ों से भर जाता है (चित्र ५६९)। पहले ये टुकड़े कहीं अधिक कहीं कम रहते हैं; परन्तु समय पाकर पूरा मार्ग टुकड़ों से एक रूप भर जाता है। हाँ, जहाँ पर पुच्छल तारा स्वयं रहता है, चाहे यह हमको दिखलाई भी न दे, वहाँ स्वभावत: ये रोड़े अत्यन्त घने होते होंगे।

हमने देखा है कि पुच्छल ताराओं और सम्पात-मूलों का मार्ग अत्यन्त लम्बा दीर्घ-वृत्त होता है। कोई कोई मार्ग पृथ्वी-कक्षा को

काटते हैं (चित्र ५७०)। इसका परिणाम यह होता है कि जब पृथ्वी इस मार्ग पर पहुँचती है तब इसकी इन रोड़ों से मुठभेड़ हो जाती है। ये पृथ्वी पर आ गिरते हैं, या पृथ्वी अपनी आकर्षण-शक्ति से उनको खींच लेती है। गिरते समय ये पत्थर के टुकड़े जल



[चेम्बर्स की ऐस्ट्रॉनोमी से

चित्र ५७१—एक अग्नि-पिण्ड-समूह के ४ चित्र, १८६३।

उठते हैं और हमको अपनी डीलडौल के अनुसार छोटी उल्का, अग्नि-पिण्ड या उल्का-प्रस्तर के रूप में दिखलाई पड़ते हैं।

यदि यह सिद्धान्त ठीक है तो हमको प्रतिवर्ष लगभग एक नियत तिथि पर एक ही सम्पात-मूल से उल्का-पात होता हुआ दिख-

पड़ना चाहिए, क्योंकि पृथ्वी प्रतिवर्ष एक ही तिथि पर उस स्थान पर पहुँचेगी। और उल्का-पात ठीक इसी प्रकार दिखलाई भी देते हैं; जैसे १४ नवम्बर को सिंह-राशि की दिशा से, १२ अगस्त को परसियस (Perseus) राशि पुंज से, इत्यादि।

इस सिद्धान्त से य हबात भी समझ में आ जाती है कि उल्का-झड़ी प्रतिवर्ष क्यों नहीं दिखलाई पड़ती। बात यह है कि कोई कोई मार्गों में सब रोड़े एक ही स्थान पर एकत्रित हैं। वे अभी बहुत बिखरे नहीं हैं। जब पृथ्वी और इन समूहों की मुठभेड़ हो जाती है, तब हमें उल्का-झड़ी दिखलाई पड़ती है। इसी सिद्धान्त के आधार पर, यह देख कर कि पहले प्रति तैंतीस या चौंतीस वर्ष पर उल्का-झड़ी लगा करती थी, एक अमरीका के ज्योतिषी ने यह भविष्यद्-वाणी की थी कि १८६६ में फिर उल्का-झड़ी होगी, और सचमुच उस वर्ष झड़ी लगी, जिसका वर्णन पहले दिया जा चुका है। सन १९०० के लगभग फिर झड़ी लगनी चाहिए थी। और लगी भी; परन्तु बहुत हलकी। यद्यपि लाखों उल्कायें गिरीं, तो भी यह पिछली उल्का-झड़ी के मुक़ाबले में कुछ नहीं थी। अनुमान किया जाता है कि इसका कारण यह है कि बृहस्पति के आकर्षण के कारण इनका मार्ग कुछ बदल गया।

उल्कायें अकसर झुण्ड में चलती हैं। कई स्थानों में एक साथ ही बहुत से उल्का-प्रस्तरों के मिलने से भी यह बात जानी गई है और कई बार ऐसे झुण्ड देखे भी गये हैं। चित्र ५७१ में १८६३ का एक अग्नि-पिंड-समूह दिखलाया गया है। अभी १९१३ में कैनाडा से बरमुडा जाते हुए अत्यन्त सुन्दर पंद्रह बीस झुण्ड साथ ही देखे गये थे। प्रत्येक झुण्ड में तीस चालीस उल्कायें रही होंगी। अनुमान किया गया है कि वे देखते देखते ६,००० मील निकल गईं।

अध्याय १८

क्या हम ग्रहों तक जा सकते हैं ?

१—**ग्रह-यात्रा**—इस पृथ्वी के आदि निवासी, जब सभ्यता का विकाश नहीं हुआ था, आश्चर्य करते रहे होंगे कि नदी के उस पार क्या है, क्योंकि उनके पास इसको पार करने की कोई युक्ति नहीं थी। बहुत समय नहीं बीतने पाया होगा कि वे बेड़ा और पीछे नाव बना कर नदी के पार उतरने लगे होंगे। हज़ार दो हज़ार वर्ष पहले समुद्र-तट के वासी आश्चर्य किया करते थे कि समुद्र उस पार क्या होता होगा। कुछ समय बाद वे जहाज़ बनाना सीख लिये, जिनमें वे आराम से जा सकते थे और देख सकते थे। इस प्रकार मनुष्य दूर दूर निकल गये और नये देशों में जा बसे। पिछले कुछ वर्षों में उसने चिड़ियों के समान उड़ना भी सीख लिया है और मछलियों के समान समुद्रतल तक डुब्बी मार सकता है।

आज मनुष्य अपने दूरदर्शकों से सौर-जगत् के दूसरे सदस्यों को देखता है और आश्चर्य करता है कि वहाँ क्या रहता होगा। क्या वहाँ भी मनुष्य रहते होंगे ? क्या वह कभी वहाँ जा सकेगा और देख सकेगा ?

यदि वहाँ जाना सम्भव हो जाय तो निःसन्देह इन ग्रहों को देख आने में बड़ा मज़ा आयेगा। चन्द्रमा के वायुरहित होने के कारण वहाँ जाकर बसने की बात नहीं हो सकती, परन्तु उसकी बनावट को समीप से अच्छी तरह देखना शिक्षाप्रद होगा। और फिर, चन्द्रमा का वह भाग जो हम पृथ्वी से नहीं देख सकते देखने योग्य होगा। हो सकता है, शुक्र में जा बसने के योग्य स्थान मिले।

फिर, मंगल के विषय में वैज्ञानिकों का वादानुवाद कि वहाँ पर कोई जीवित प्राणी हैं या नहीं सदा के लिए तय हो जायगा।

२—हमारा अभिप्राय—इस अध्याय में हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि हम आपको प्रसिद्ध जूल्स वर्न या वेल्स के उपन्यासों के समान किसी कल्पित यात्रा का वर्णन सुनायें और आपको ग्रहों की सैर करायें। यह कार्य तो वर्न और वेल्स ऐसे उपन्यासकारों का है। हमारा अभिप्राय यह है कि आपको प्रोफ़ेसर गॉडर्ड (Goddard) के बाण की बात बतलायें, क्योंकि कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि समय बीतने पर हम वस्तुतः इससे मंगल तक जा सकेंगे। समाचार-पत्रों में छपा था कि एक ग्रह से दूसरे पर जाना उस समय तक स्थगित रहेगा जब तक परमाणुओं की शक्ति को अपने कार्य में जोतने की रीति हमको ज्ञात न हो जाय; प्रोफ़ेसर गॉडर्ड का कहना है कि यह कथन तो ३० वर्ष पीछे के उन वैज्ञानिकों का सा है जो कहते थे कि वायुयान तब तक काम में नहीं लाया जा सकता जब तक हमको पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के मिटाने का उपाय न मालूम हो जाय। हाँ, यह अवश्य सत्य है कि यदि हम परमाणुओं की शक्ति का उपयोग कर सकें तो अन्तर-ग्रहीय बाणों को चलाने के लिए वह अत्यन्त सुविधाजनक उपाय होगी। तो भी, परमाणुओं की शक्ति इस कार्य के लिए आवश्यक नहीं है, क्योंकि इस समय भी जो शक्तियाँ हमारे हाथ में हैं उन्हीं से अन्तर-ग्रहीय यात्रायें सफल हो सकती हैं। उदाहरणार्थ, यदि अधिक शक्तिवाले किसी चालक का, जैसे हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का, प्रयोग किया जाय और उसको इस प्रकार जलाया जाय कि इसकी पूरी शक्ति काम में आये तो अभी ही अन्तर-ग्रहीय यात्रा सम्भव है और इसके लिए ऐसे यान की आवश्यकता न पड़ेगी जो अत्यन्त दीर्घ-काय हो या जो हमारे वश में पूर्णतया

न रहे। हाँ, यदि ऐसे यान में कम शक्तिवाले चालक का प्रयोग किया जाय, जैसे पत्थर का कोयला, या मिट्टी का तेल और यदि हम चालक की पूरी शक्ति का उपयोग न कर सकें, तो यान अवश्य ही इतना बड़ा हो जायगा कि इसको काम में लाना असम्भव होगा। कुल कठिनाई इस समय ऐसे यंत्र के छोटे छोटे ब्योरों को पूर्णतया दोषरहित करने में है; और इस समय प्रोफ़ेसर गॉडर्ड और कुछ अन्य वैज्ञानिक इसी में लगे हैं।

सायन्टिफ़िक अमेरिकन के एक लेखक ने गॉडर्ड के बाण (rocket) से मंगल तक पहुँचने की रीति बतलाई है। उसी लेख के आधार पर यह अध्याय लिखा गया है।



[सायंटिफ़िक अमेरिकन से

चित्र ५७२—प्रोफ़ेसर गॉडर्ड और उनका एक छोटा सा बाण।

३—गॉडर्ड-बाण—

जैसा हम पहले देख चुके हैं दो ग्रहों के बीच का आकाश बिलकुल शून्य है। उसमें किसी प्रकार का पदार्थ नहीं है जो चलती हुई वस्तुओं की गति में रुकावट पैदा कर सके। परन्तु साथ ही, किसी पदार्थ के न रहने से न वायुयान के पंखे (प्रोपेलर propeller) वहाँ किसी प्रकार की सहायता पहुँचा सकते हैं और न मोटर या रेल के पहिये, क्योंकि वायुयान के पंखे के लिए हवा चाहिए, जिसको काटने से वायुयान में उड़ने की शक्ति आती है, और मोटर के पहिये के लिए सड़क चाहिए

जिस पर ही घूमने से मोटर में आगे बढ़ने की शक्ति आती है। सड़क और वायु के अभाव में केवल एक ही रीति है जिससे हम मंगल तक पहुँच सकते हैं और वह यह कि पृथ्वी से तोप के गोले के समान कोई चीज़ इतनी ज़ोर से छोड़ी जाय कि वह पृथ्वी के आकर्षण के पार निकल जाय। फिर इसकी दिशा को किसी प्रकार इस तरह बदलना पड़ेगा कि हम मंगल तक पहुँच सकें। वहाँ पहुँचने पर किसी प्रकार इसके वेग को इतना घटाना पड़ेगा कि मंगल से जा लड़ने के बदले हमारा यान (या गोला) मंगल के उपग्रह की तरह उसकी प्रदक्षिणा करने लगे। इस प्रकार मंगल के पास साल छः महीने रहने के बाद इसके वेग को फिर किसी तरह बढ़ाना पड़ेगा, जिससे यह मंगल के आकर्षण-पाश से मुक्त हो जाय और पृथ्वी तक लौट आये।

इस प्रकार गोले को ऐसा होना चाहिए कि इसकी गति शून्य में भी घटाई बढ़ाई जा सके। आरम्भ में इसके वेग की गति ७ मील प्रतिसेकंड तक हो जानी चाहिए, क्योंकि इससे कम वेग से छोड़ा गया गोला पृथ्वी के आकर्षण के बाहर न जा सकेगा।

वैज्ञानिकों को अभी केवल एक ही रीति मालूम है जिससे ऊपर की आवश्यकताओं की पूर्त्ति की जा सकती है। वह अमरीका के प्रोफ़ेसर गॉडर्ड का शीघ्रगामी बाण है। बड़े से बड़े तोपों से दागे गये गोले में केवल लगभग ½ मील प्रतिसेकंड का ही वेग उत्पन्न होता है।

गॉडर्ड-बाण की अब इतनी उन्नति हो गई है कि सफलता प्राप्ति की पूरी आशा है। छोटे छोटे बाण बना कर यह देख लिया गया है कि सिद्धान्त बिलकुल ठीक है; यदि ऐसे बाण केवल काफ़ी बड़े बनाये जासकें तो हम पृथ्वी के बाहर निकल जायँ। यह भी प्रत्यक्ष है कि बड़े बाणों के बनाने में कठिनाइयाँ अवश्य पड़ेंगी, परन्तु वे ऐसी न होंगी

कि उनको दूर न किया जा सके। वे कठिनाइयाँ उसी प्रकार की हैं जो बड़े बड़े समुद्रगामी जहाज़ों के बनाने में पड़ती हैं। इस प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना ही पड़ेगा जिसमें इंजिनियरिङ्ग के कुल ज्ञान को लगा देना पड़े, क्योंकि अनन्त दूरी तक पहुँचनेवाली मशीन को बहुत बड़ा बनाना पड़ेगा, परन्तु किसी प्रकार भी हमारा अभिप्राय असम्भव नहीं जान पड़ता।

४—बाणों के चलने का सिद्धान्त—यद्यपि यह बात पहले आश्चर्यजनक जान पड़ती है, परन्तु सच्ची बात यही है कि गॉडर्ड-बाण—और सच पूछिए तो किसी भी मेल का बाण—शून्य में भी उसी सुगमता से काम कर सकता है जिस प्रकार हवा में। वस्तुतः, शून्य में यह कुछ अच्छा ही काम करेगा। इसलिए वायुमंडल में ही ७ मील प्रतिसेकंड के वेग की आवश्यकता न पड़ेगी। और वायु-मंडल को पार कर लेने पर वेग सुगमता से घटाया-बढ़ाया जा सकेगा।

शून्य में बाण के चलने की बात प्रयोगों-द्वारा प्रमाणित कर दी गई है और बाण के सिद्धान्त को समझ लेने पर समझ में भी आ जाती है। इसका सिद्धान्त वही है जिसे न्यूटन का तीसरा गति-नियम कहते हैं:—प्रत्येक क्रिया के लिए उतनी ही बड़ी, परन्तु प्रतिकूल दिशा में, एक प्रतिक्रिया भी होती है। जैसे, यदि आप किसी नाव पर खड़े हों, जो बँधी न हो परन्तु स्थिर हो, और यदि आप किनारे की ओर बढ़ें तो नाव पीछे चलने लगेगी। इसमें वायु से कुछ प्रयोजन नहीं। जब आपको आगे बढ़ना रहता है तब पृथ्वी को (और यहाँ पर नाव को) आप पीछे ठेलते हैं। इस प्रकार आप आगे बढ़ते हैं। परन्तु ठीक उसी कारण से नाव पीछे जाती है।

फिर, जब किसी बन्दूक़ से गोली छोड़ी जाती है तब बारूद के जलने से जो शक्ति पैदा होती है वह गोली को आगे ढकेलती है,

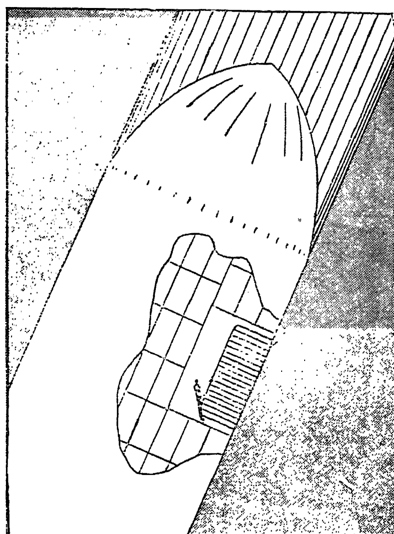
परन्तु यह शक्ति बन्दूक़ पर भी काम करती है, इसी से तो बन्दूक़ पीछे हटता है और बन्दूक़वाले को धक्का लगता है। बाण में गोली नहीं रहती, परन्तु गैस नीचे की ओर बड़े वेग से निकलती है और बाण पर पीछे मुँह लगा धक्का इसको ऊपर प्रेरित करता है। इसलिए बाण का वेग बढ़ने लगता है और वेग किस हिसाब से बढ़ता है, यह बारूद को न्यूनाधिक मात्रा में जलाने से अपने वश में रक्खा जा सकता है।

गॉडर्ड-बाण साधारण बाणों से उसी प्रकार अच्छा है जैसे देहाती पनचक्की से १,००० अश्व-बलवाला टरबिन-इन्जन (turbine)। यह भी साधारण बाणों के ही सिद्धान्त पर काम करता है, परन्तु महत्तम शक्ति प्राप्त करने और कम बारूद ख़र्च करने पर पूरा ध्यान देकर इसका निर्माण किया गया है। कुछ नये बाणों में तरल पदार्थ, जैसे पेट्रोल या शुद्ध शराब जलाया जाता है, परन्तु वस्तुतः क्या जलाया जाता है इसको आविष्कारकों ने अभी गुप्त रक्खा है। पहले के बाणों में बारूद ही जलाई जाती थी।

इन बाणों में बारूद को फ़ौलाद के डिब्बों में जलाया जाता है। डिब्बे बहुत हलके होते हैं, परन्तु ये इतने मज़बूत होते हैं कि बारूद के जलने पर वे फट नहीं जाते। जलने से उत्पन्न हुई गैसों को नीचे लगी विशेष आकार की टोंटी (nozzle) से निकलने दिया जाता है। यह टोंटी टरबिन-इंजनों की टोंटी की तरह होती है और इस आकार की बनाई जाती है कि इसमें होकर गैसों के निकलने से बाण में महत्तम वेग उत्पन्न हो। आधुनिक बाणों में इस टोंटी से गैस १२,००० फ़ुट प्रतिसेकंड के वेग से निकलती है।

यदि चलती हुई वस्तुओं की गति में हमारे वायुमंडल के कारण रुकावट न पड़ती और पृथ्वी के आकर्षण के कारण वस्तुएँ पृथ्वी की ओर न खिंच आतीं, तो थोड़ी सी बारूद से ही बाण अनन्त दूर

निकल जाता। रुकावट और आकर्षण के कारण बारूद को लगातार जलाना पड़ेगा, परन्तु प्रथम सेर बारूद की अपेक्षा द्वितीय सेर बारूद से अधिक वेग उत्पन्न होगा, क्योंकि एक तो बोझ कुछ कम हो जाने के कारण अधिक वेग पैदा भी होगा, दूसरे ऊपरी वायुमंडल के कम घना होने से और वहाँ पर आकर्षण कुछ कम होने से रुकावट कम रहेगी। इसलिए बराबर बारूद के जलाये जाने से उत्तरोत्तर वेग बढ़ता ही जायगा, और ७ मील प्रतिसेकंड से अधिक वेग हो जाने पर बारूद को जलाते रहने की आवश्यकता न पड़ेगी।



चित्र ४७३—मंगल तक जाने के लिए बाण का सिर।

इसमें बैठकर दो व्यक्ति मंगल तक जा सकेंगे। पृथ्वी म बने गहरे छेद से इसको पहले छोड़ना पड़ेगा। पीछे अपनी ही शक्ति से यह मंगल तक जा सकेगा।

५—कितनी बारूद चाहिए—लेकिन जब बाण के अन्तिम वेग को अधिक बढ़ाने की चेष्टा की जाती है तब बारूद की मात्रा बहुत शीघ्र बढ़ जाती है। यदि अन्तिम वेग ३½ मील प्रतिसेकंड हो तो छूछे बाण के प्रतिसेर के लिए २० सेर बारूद लगेगी। यदि अन्तिम वेग इसका दुगुना—अर्थात् ७ मील प्रतिसेकंड—हो तो बारूद बीस की दुगुनी नहीं २० गुनी अर्थात् कुल ४०० सेर लगेगो। और इतनी बारूद

बाण को केवल पृथ्वी से भगाने के लिए काफ़ी होगी; लौटने की बात दूर रही।

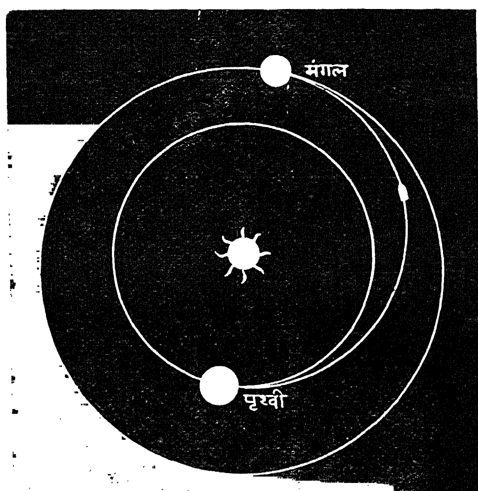
इसी लिए इन दूरगामी बाणों को कई टुकड़ों में बनाया जाता है, जिसमें वे डिब्बे जिनकी बारूद जल गई हो, तुरन्त गिरा दिये जायँ, और केवल वे ही डिब्बे साथ में रहें जिनमें बारूद भरी हो। इस उपाय से वेग अधिक शीघ्र बढ़ता है। इसी ख़्याल से दोहरा बाण बनाया जा सकता है, जिसमें जब काफ़ी बारूद ख़र्च हो जाय तब बाण के बाहरी ढाँचे को छोड़ दिया जाय और भीतरी छोटे बाण को ही रक्खा जाय।

६—टेढ़ी बात—इतने बड़े बाण के बनाने में जो पृथ्वी के आकर्षण को छोड़ कर दूर निकल जाय और उसमें मनुष्य भी बैठ सकें, इन्जिनियरिङ्ग की अनेक कठिनाइयाँ पड़ेंगी। ये हीं कठिनाइयाँ अन्य बड़ी इमारतों के बनाने में भी पड़ती हैं। जैसे, छोटे से नाले पर पटरा रखने ही से पुल बँध जाता है और छोटी सी नदी पर पुल बाँधना भी कोई बड़ी बात नहीं है, परन्तु कलकत्ते के पास हुगली पर पक्का पुल बाँधना टेढ़ी खीर है।

कुछ उदाहरणों से यह कठिनाई स्पष्ट समझाई जा सकती है। ईंट के दो चार फ़ुट ऊँचे खम्भे पर, इसके बेंड़े नाप के हिसाब से प्रति वर्ग इंच पर ५० मन का बोझा लाद दिया जा सकता है और खम्भा चूर न होगा। परन्तु यदि एक मील ऊँचा खम्भा बनाना हो तो अपने बेंड़े चेत्रफल के प्रत्येक वर्ग इंच पीछे इसका ही तौल ५० मन से अधिक हो जायगा और इसलिए साधारण खम्भा बनाने से वह अपने ही भार से चूर हो जायगा। इसलिए इसको, पहाड़ की तरह, नीचे चौड़ा बनाना पड़ेगा। इसी प्रकार इस्पात का तार पाँच मील लम्बा होने पर अपने ही बोझ को न सँभाल सकेगा; और जैसे जैसे हम इन सीमाओं के निकट पहुँचते हैं तैसे

तैसे इन सबमें अपने तौल के हिसाब से बोझ सँभालने की शक्ति कम होती जाती है और इसलिए इनसे लाभदायक काम निकालने में अधिकाधिक चातुर्य की आवश्यकता पड़ती है।

यदि बाण के वेग को अति शीघ्र बढ़ाना हो तो कुल बोझ बहुत बढ़ जाता है, परन्तु इन सब बातों की गणना की जा सकती



चित्र ४७४—पृथ्वी से मंगल तक जाने के लिए लगभग सात महीने लगेंगे।

यात्रा आरम्भ के समय पृथ्वी की स्थिति और यात्रा समाप्ति के समय मंगल की स्थिति दिखलाई गई है। आना-जाना और सैर-सपाटा कुल दो वर्ष के भीतर ही हो जायगा।

है और ठीक उस वेग का उपयोग किया जा सकता है जिसमें महत्तम सुविधा हो। आधुनिक बाणों में वेग का घटाना-बढ़ाना पूर्णतया अपने वश में रहता है। इसके छोटे-छोटे डिब्बों में भरी हुई बारूद घड़ी-युक्त मशीन से जलाई जाती है और इच्छानुसार कम

या अधिक शीघ्रता से यह कार्य किया जा सकता है। साधारण और छोटे बाणों में भी इस गति को वश में रखने का कुछ उपाय रखना पड़ता है, जैसे, बारूद के कणों को छोटा या बड़ा रखना। बारूद जितनी ही बारीक होगी, उतनी ही जल्द जलेगी। परन्तु असली यात्रा में वेग को बढ़ाने की गति ठीक उतनी ही रखनी पड़ेगी जितनी यात्रीगण बरदाश्त कर सकें। इस बात की जाँच पहले ही से उनको अति वेग से चक्कर खाते हुए यंत्र में बिठला कर, कर लेनी पड़ेगी। मनुष्यों को अति वेग से कोई कष्ट नहीं होता, वेग के एकाएक बढ़ने से होता है। जैसे, अच्छी मोटर को अच्छी सड़क पर ख़ूब तेज़ दौड़ाने में कुछ कष्ट नहीं होता, परन्तु यदि किसी ऐसी सवारी पर बैठा जाय जिसमें बराबर झटके लगते रहें तो बहुत कष्ट होता है।

७—**मंगल यात्रा**—मंगल तक पहुँचाने योग्य बाण का एक चित्र यहाँ दिया जाता है (चित्र ५७३)। ऐसा बाण कहीं बना नहीं है; बन भी नहीं रहा है। परन्तु आशा की जाती है कि ऐसे बाण से मंगल तक पहुँचने में सफलता प्राप्त हो सकती है। इससे यह भी पता चलता है कि बड़े बाणों के बनाने में कौन-कौन सी कठिनाइयाँ पड़ेंगी। बाण का केवल सिर ही इस चित्र में दिखलाया गया है। इसके चारख़ाने वे डिब्बे हैं जिनमें बारूद भरी है। ऐसे कई हज़ार डिब्बे रहेंगे। प्रत्येक में टोंटी लगी रहेगी और प्रबन्ध रहेगा कि डिब्बों की बारूद का जलना नीचे से आरम्भ हो। जैसे जैसे बारूद जलती जायगी, तैसे तैसे ये डिब्बे गिरते जायँगे। वेग को घटाने के लिए बारूद के छोटे छोटे डिब्बे भी रहेंगे। इनको विपरीत दिशा से जला कर मंगल के पास पहुँचने पर बाण का वेग कम किया जा सकेगा; और फिर लौट कर पृथ्वी के पास आ जाने पर भी इनकी आवश्यकता पड़ेगी। बहुत छोटे छोटे डिब्बों को जला

कर बाण की दिशा ठीक की जा सकेगी। बीच में एक स्थान पर एक अत्यन्त वेग से घूमता हुआ चक्का (जिसको जायरस्कोप, gyroscope, कहते हैं) रक्खा जायगा। इसके रहने से बाण सीधा चल सकेगा। बारूद को इच्छानुसार बिजली-द्वारा जलाने के सब खटके एक सुगम स्थान में लगे रहेंगे। यात्रियों के रहने की कोठरियाँ बाण के चारों ओर रहेंगी और जब बाण उड़ता रहेगा उस समय बाण के भीतरी भाग के चारों ओर ये नाचती रहेंगी। बात यह है कि पृथ्वी से दूर निकल जाने पर उसकी आकर्षण-शक्ति वहाँ रह न जायगी और इसलिए यदि कोठरियाँ नाचती न रहें तो उनमें मनुष्यों का रहना कठिन हो जायगा। कोठरी के नाचते रहने से सब वस्तुएँ छटक कर बाण की बाहरी दीवालों की ओर गिरेंगी। इसलिए ये दीवाल ही फ़र्श का काम देंगी, और वहाँ मनुष्य बाण की धुरी की ओर सर करके खड़े हो सकेंगे। यदि ऐसा प्रबन्ध न रक्खा जाय तो पृथ्वी से दूर निकल जाने पर और बाण के वेग के समरूप हो जाने पर वहाँ आकर्षण की तरह कोई भी शक्ति न रहेगी। इसलिए यात्रियों को शायद वैसा ही जान पड़ेगा जैसे ऊपर नीचे झूलते हुए चरखे में नीचे गिरते समय मालूम होता है, और बराबर मचली आवेगी। इसके अतिरिक्त, जल या कोई भी वस्तु के "गिर" पड़ने पर वे गिरेंगो नहीं; जहाँ की तहाँ उड़ती सी रह जायँगी।

पृथ्वी १९ मील प्रतिसेकंड के वेग से चल रही है। इसके आकर्षण से निकल कर यदि पृथ्वी की अपेक्षा अपना वेग दो मील प्रतिसेकंड अधिक कर लिया जायगा तो बाण की कक्षा अधिक दीर्घ-वृत्ताकार हो जायगी और हम इस प्रकार मंगल की कक्षा तक क़रीब सात महीने में पहुँच जायँगे (चित्र ५७४)। पृथ्वी पर से यात्रा ठीक समय आरम्भ की जायगी कि मंगल-कक्षा में पहुँचने पर

मंगल वहाँ रहे। तब वेग को इतना कम कर दिया जायगा कि बाण मंगल का उपग्रह हो जाय। लगभग साल भर वहाँ रहने पर, मंगल और पृथ्वी की स्थितियों के फिर अनुकूल हो जाने पर, वहाँ से अपने वेग को बढ़ा कर यहाँ लौट आयेंगे।

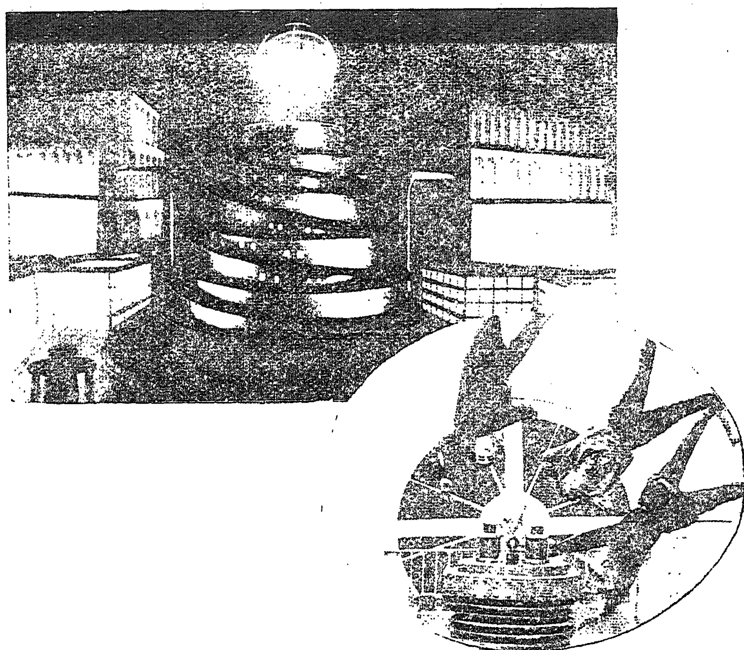
इस प्रकार के बड़े बाण को, जो सात मील प्रतिसेकंड के वेग से पृथ्वी की ओर आयेगा, पृथ्वी पर धीरे से उतारना कठिन होगा। इसलिए वायु-मंडल में आने पर, बाण के सब यात्री एक हवाई जहाज़ में चढ़ जायँगे और बाण को छोड़ देंगे। वह हवाई जहाज़ चित्र के दाहिनी ओर दिखलाया गया है। इसमें इंजन की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, क्योंकि इससे केवल पृथ्वी पर उतरना ही रहेगा। सुभीते के ख़्याल से इसके पंख मुड़े रक्खे रहेंगे। बाण में से इसको निकालने के लिए विशेष दरवाज़ा बना रहेगा।

८—**अधिक व्यय**—इस प्रकार का बाण बड़े से बड़े जहाज़ों के तौल का होगा, परन्तु शायद इसका बनाना जहाज़ बनाने से सुगम होगा, क्योंकि यह उतना विस्तृत न होगा। परन्तु इसमें दो तीन ही यात्रियों के लिए स्थान रहेगा, क्योंकि उनके लिए भोजन, जल और साँस लेने के लिए ओषजन भी, दो वर्ष से अधिक समय के पूरी यात्रा के लिए ले जाना पड़ेगा।

व्यय बहुत लगने के कारण और इससे मुनाफ़ा होने की सम्भावना न होने के कारण, शायद हाल में ऐसे बाणों का बनना सम्भव नहीं है।

हाँ, छोटे छोटे गॉडर्ड-बाण बहुत से बन रहे हैं और उनका प्रयोग वायुमंडल के उन ऊपरी भागों की जाँच के लिए किया जा रहा है, जहाँ गुब्बारे भी नहीं पहुँच सकते। इन बाणों का प्रयोग करके, वायुमंडल के बाहर से ज्योतिष-सम्बन्धी फ़ोटोग्राफ़ खींचने का भी

विचार किया गया है। इन बाणों का युद्ध के कार्य के लिए प्रयोग होना भी सम्भव जान पड़ता है। गत यूरोपीय महासमर के समय इस



[पापुलर सायंस से

चित्र २७२—**सिनेमा में ग्रह-यात्रा।**

जो ज्योतिषी नहीं है उनको भी ग्रह-यात्रा रोचक जान पड़ता है। अभी हाल में जरमनी से एक फ़िल्म निकला है। इसका नायक एक नये यान का आविष्कारक है जो नाचते हुए चक्रों से चलता है और जिस पर पृथ्वी के आकर्षण का असर नहीं पड़ता। ऊपर के चित्र में इस वायु को ऊपर उछालनेवाला यंत्र दिखलाया गया है। नीचे के चित्र में यह दिखलाया गया है कि आकर्षण के अभाव में यात्री छत पर भी चल सकते हैं। अवश्य ही, यह सब कुछ कोरी कल्पना है।

प्रश्न की जाँच की जा रही थी, परन्तु शान्ति हो जाने पर यह काम बन्द कर दिया गया। उस समय प्रमाणित हो गया था कि

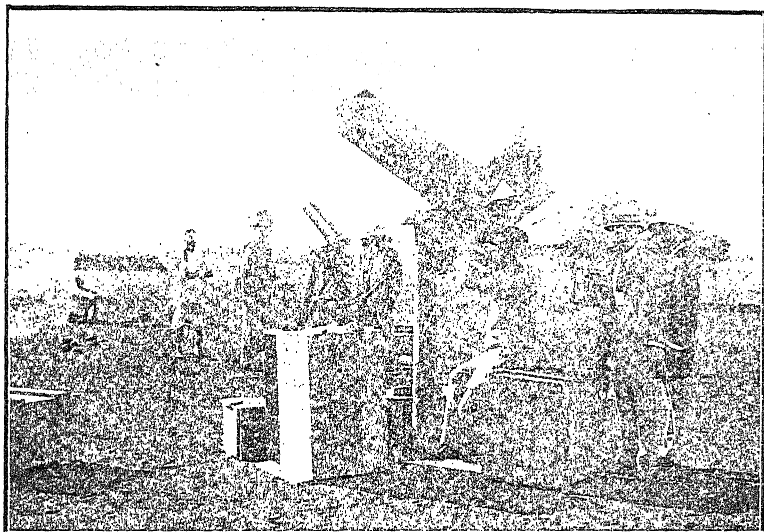
बड़े बड़े तोपों से छूटे गोले की अपेक्षा बाणों से किसी प्रकार कम सच्चा निशाना नहीं बैठता। साथ ही, गोलों की अपेक्षा इनको बहुत ही बड़ा बना सकने की सम्भावना है। शायद ऐसे बाण भी बन सकेंगे जो रूस से अमरीका पर दागे जा सकेंगे। देखना चाहिए उस समय युद्ध की रीतियों में क्या क्या परिवर्तन होता है।

परिशिष्ट

(पृष्ठ ३४७ के सम्बन्ध में)

अभी (अक्टूबर, १९३१) तक एरॉस के बेधों से सूर्य की दूरी की गणना समाप्त नहीं हो सकी है; अब भी कुछ महीनों की देर है।

(पृष्ठ ५०७ के सम्बन्ध में)



[नायगमवाला

चित्र ३१२ अ—महाराज तख़्तसिंह जी बेधशाला, पूना, की ग्रहण-पार्टी (दूसरा दृश्य)।

जिउर, जनवरी १८९८।

शब्द-कोष

सुभीते के लिए इस पुस्तक में उपयोग किये गये वैज्ञानिक शब्दों का कोष यहाँ दिया जाता है। शोक है कि काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की संशोधित वैज्ञानिक शब्दावली उस समय प्रकाशित नहीं हुई थी जब पुस्तक लिखी गई थी। इसलिए कई शब्द इस पुस्तक में उक्त शब्दावली से भिन्न हैं, जिनमें से कुछ, मेरी राय में, शब्दावली के शब्दों से अच्छे हैं। कदाचित्, शब्दावली के दूसरे संस्करण में वे रख लिये जायँगे। इधर, यदि इस पुस्तक का कभी दूसरा संस्करण निकलेगा तो अवश्य ही शब्दावली में दिये शब्दों का ही यथासम्भव उपयोग किया जाएगा। इस कोष में जहाँ किसी अँगरेज़ी शब्द का रूपान्तर शब्दावली में भिन्न है वहाँ उसे भी कोष्ठों के भीतर रख कर दिखला दिया गया है; जैसे, Ultra-violet, पराकासनी, [नील-लोहितोत्तर]।

A

Aberration (of a lens), दोष, [अपेरण]
—, chromatic, रंगदोष, [वर्णापेरण]
—, spherical, गोलीय दोष, [गोलापेरण]
Achromatic, रंग-दोष-रहित, [अवर्णक]
Albedo, परिक्षेपण-शक्ति
Almanac, nautical, नाविक पंचांग
Altazimuth, दृग्-यन्त्र
Amateur, अव्यवसायी, शौकीन
Annular, वलयाकार
Anti-clockwise, विलोम दिशा में, [वामावर्त]
Aperture, छिद्र
Arc-lamp, आर्क लैम्प
Asteroid, अवान्तर ग्रह
Astrology, फलित ज्योतिष
Astronomy, ज्योतिष

Astronomy, descriptive, वर्णनात्मक ज्योतिष
—, gravitational, आकर्षण-शक्तीय ज्योतिष
—, nautical, नाविक ज्यो०
—, practical, क्रियात्मक ज्योतिष
—, spherical, गोलीय ज्यो०
Astronomical telescope, ज्योतिष-सम्बन्धी दूरदर्शक
Astrophysics, ऐस्ट्रोफ़िज़िक्स, ज्योतिष-सम्बन्धी भौतिक विज्ञान
Atmosphere, वायुमंडल, वातावरण
Atom, परमाणु
Attraction, आकर्षण
—, gravitational, आकर्षण, [गुरुत्वाकर्षण]
Aurora Borealis, उत्तरी प्रकाश, [सुमेरुज्योति]
Average, औसत
Axis, अक्ष

B

Back-ground, ज़मीन
Baily's beads, बेली मनका
Balanced, समीकृत
Band, धारी
Binoculars, युगल दर्शक, [द्विनेत्री दूरबीन]
—, prismatic, त्रिपार्श्व-युक्त युगल-दर्शक, [त्रिपार्श्वीय द्विनेत्री दूरबीन]
Blink microscope, निमीलं सूक्ष्मदर्शक
Bolometer, बोलोमीटर
Bore, छेद करना
Bulb, लट्टू (बिजली का), [बल्ब]
Burner, बरनर, [ज्वालक]
Burning glass, आतिशी शीशा

C

Camera, कैमेरा
Canal, नहर
Candle power, एक मोमबत्ती की रोशनी [बत्ती-बल]
Capella, ब्रह्महृदय
Capture of comets, केतु-बन्दीकरण
Cassegranian telescope, कैसिग्रेनियन दूरदर्शक
Celestial mechanics, आकाशीय गति-शास्त्र
Celestial objects, आकाशीय पिण्ड
Centigrade, शतांश
Chart, मान-चित्र
Chromatic aberration, रंग-दोष, [वर्णापेरण]
Chromosphere, वर्णमंडल
Clock-wise, अनुलोम दिशा, [दक्षिणावर्त]
Clock-work, घड़ी की सी मशीन, [घंटी यन्त्र]

Coelostat, नाड़ीमंडल दर्पण
Collimator, कॉलीमेटर, [संधान-कारक]
Collision. टक्कर
Colour-blind, रंग के सम्बन्ध में अंधा [वर्णान्ध]
Colour-filter, प्रकाश-छनना, [वर्ण-निःस्यन्दक]
Comet, केतु, पुच्छल तारे
Comet-seeker, केतु-अन्वेषक
Compound, यौगिक पदार्थ
Concave, नतोदर
Cone, सूची, [शंकु]
Conical, सूच्याकार, [शंकाकार]
Constellation, तारा-समूह, [नक्षत्र]
Constitution, बनावट, [संगठन]
Convex, उन्नतोदर
Cork, काग
Corona, कॉरोना, मुकुट, [किरीट]
Cosmogony, विश्व-विकास
Counter-clockwise, विलोम दिशा, [वामावर्त]
Crator, ज्वालामुख
Crepe ring, जालीनुमा वलय
Crest, लहर की चोटी, [तरंग-शीर्ष]
Crisium, Mare संकट सागर
Cross-wires, स्वस्तिक तार, [स्वस्तिका सूत्र]
Crown-glass क्राउन शीशा, [क्राउन काँच]
Crystal, रवा, [मणिभ]
Crystalline structure, रवादार बनावट, [मणिभ संगठन]
Cycle, चक्र
Cyclone, बवंडर

D

Dark glass, गहरे रंग का शीशा
Declination axis, क्रान्ति-धुरी
Degree, अंश
Density, घनत्व
Descriptive astronomy, वर्णनात्मक ज्योतिष
Distilled, स्रवित
Dome, गुम्बद
—, revolving, घूमनेवाला गु०
Dusky ring, ईषत्कृष्ण वलय
Dynamics, गति-शास्त्र

E

Eclispe, ग्रहण
—, annular, वलयाकार ग्र०
—, partial, खंड ग्र० [अपूर्ण ग्रहण]
—, total, सर्व ग्र०, [पूर्ण ग्र०]
Electric bulb, बिजली का लट्टू, [बल्ब]
Electromagnet, विद्युत्-चुम्बक
Electron, ऋणाणु, [इलैक्ट्रन]

Electroscope, विद्युत्-प्रदर्शक, [विद्युद्दर्शक]
Ellipse, दीर्घ-वृत्त
Elementary positive charge, धनाणु
Eleven-year cycle, एकादश-वर्षीय चक्र
Energy, शक्ति
Enlargement (photographic), एनलार्जमेंट
Equatorial, नाड़ी-मंडल यंत्र, [निरक्षीय दूरबीन]
Erecting eye-piece, सीधा करनेवाला चक्षु-खंड [अनुलोमक लैंस]
Ether, ईथर
Evening star, सायंकालिक तारा
Evolution, theory of, विकाश-सिद्धान्त
Experiment, प्रयोग
Exposure, प्रकाश-दर्शन, [उद्घाटन]
Eye-piece, चक्षु-ताल, चक्षु-खंड, [उपनेत्र]
—, erecting, सीधा करनेवाला चक्षु-खंड, [अनुलोमक उपनेत्र]
Eye-piece, solar, सौर चक्षुताल
Eye-piece, terrestrial, भू-लोकस्थ चक्षु-खंड

F

Facula. मशाल
Family of comets, केतु-परिवार
Field of view, दृष्टि-क्षेत्र
Filamentous nebula, तन्तु-मय नीहारिका
Filter, प्रकाश-छनना, [निःस्यन्दक, वर्ण-निःस्यन्दक]
Finder, प्रदर्शक
Fire-ball, अग्नि-पिण्ड
Fixed stars, स्थिर तारे, तारे
Flash-spectrum, झलक-रश्मि-चित्र
Flint-glass, फ्लिंट शीशा, [फ्लिंट काँच]
Focal length, फ़ोकल लम्बान, [नाभ्यन्तर]
Focus, नाभि
Force, (शक्ति), बल
Furnace, भट्ठी

G

Galilean telescope, गैलीलियन दूरदर्शक
Galvanometer, विद्युत्-मापक, [धारा-मापक]
Gaseous, वायव्य, [गैसीय]
Gauze ring, जालीनुमा वलय
Glass, शीशा, [काँच]
—, crown, क्राउन शीशा
—, dark, गहरे रंग का शीशा

Glass, flint, फ़्लिंट शीशा
—, smoked, कालिख लगा शीशा
Gold-leaf electroscope, विद्युत-प्रदर्शक [स्वर्णपत्र विद्युद्दर्शक]
Grating, जाली, [ग्रेटिङ्ग]
Gravitational astronomy, आकर्षण-शक्तीय ज्योतिष
Great red spot, बृहद्-रक्त-चिह्न
Group of comets, केतु-समूह

H

Halley's comet, हैली केतु
Head (of a comet), शिर
Horizon, क्षितिज
Horn, शृङ्ग
Horse-power, अश्व-बल, [अश्व-सामर्थ्य]
Humorum, Mare, रस सागर
Hyperbola, अतिपरवलय

I

Imbrium, Mare, वर्षा सागर
Image, मूर्ति, [प्रतिबिम्ब]
Impure spectrum, अशुद्ध रश्मि-चित्र
Infra-red, (परा-लाल), उपरक्त
Interference, इंटरफ़ियरेन्स, [व्यतिकरण]
Ionisation, आयोनाइज़ेशन, [आयनीकरण]
Irradiation, प्रकाश-प्रसरण, [उद्योतन]

J

Jupiter, बृहस्पति

L

Layer, तह, [स्तर]
Lens, ताल, लेन्ज़ [लैंस]
Liquid, तरल, [द्रव]
Longitude, देशान्तर, [रेखांश]

M

Magnetic storm, चुम्बकीय आँधी [चुम्बकीय तूफ़ान]
Magnifying glass, प्रवर्धक ताल, आतिशी शीशा [अभि-वर्धक लैंस]
Magnifying power, प्रवर्धन शक्ति, [अभिवर्धकता]
Magnitude (of a star), श्रेणी
Map, मान-चित्र, नक़्शा
Mare, सागर
— Crisium, संकट सा०
— Humorum, रस सा०
— Imbrium, वर्षा सा०
— Nectaris, अमृत सा०
— Serenitatis, प्रशान्त सा०
— Tranquilitatis, शान्ति सा०
Mars, मंगल
Mass, द्रव्यमान, [जाड्य]
Matter, द्रव्य
Mean, मध्य-मान
Mercury, बुध
Meridian, याम्योत्तर वृत्त

Meteor, उल्का
Meteoric shower, उल्का-झड़ी
Meteorite, उल्का-प्रस्तर
Meteorologist, जल-वायु के अध्ययन करनेवाले
Microscope, सूक्ष्म-दर्शक
—, blink, निमिलं सू०
Milky-way, आकाश गंगा
Molecule, अणु
Morning star, प्रातःकालीन तारा
Motion, गति
—, proper, निजी गति
Mounting, (of a lens), घर
—, (of a telescope), अरोपण, [आरोप]
Mural circle, भित्ति यंत्र
Museum, अजायब घर

N

Naked eye, कोरी आँख
Nautical almanac, नाविक पंचांग
Nautical astronomy, नाविक ज्योतिष
Nebula, नीहारिका
—, filamentous, तन्तुमय नी०
—, spiral, कुंडलाकार नीहारिका [सर्पिल नी०]
Nebular hypothesis, नीहारिका-सिद्धान्त
Nectaris, Mare, अमृतसागर
Neptune, वरुण, नेपच्यून
New Astronomy नवीन ज्योतिष
Newtonian telescope, न्यूटोनियन दूरदर्शक [न्यूटनीय दूरबीन
North pole, उत्तर ध्रुव
Novae, नवीन तारे
Nucleus (of a comet), नाभि, [केन्द्रक]

O

Objective, प्रधान ताल, [उपदृश्य लैंस]
Observation, बेध, [अवलोकन, पाठ]
Observatory, (१) बेधशाला, (२) दूरदर्शक-गृह
Oil-engine, तैल-इंजन
Opera-glass, ऑपेरा ग्लास, [नाट्य दूरबीन]
Opposition, षड्भान्तर
Orrery, ऑरेरी

P

Panchromatic, पैनक्रोमैटिक
Parabola, परवलय
Partial eclipse, खंड ग्रहण, [अपूर्ण ग्रहण]
Pendulum, लंगर, दोलक
Penumbra, उपच्छाया
Periodic, चक्र-बद्ध, [आवर्त्त]

Personal equation, व्यक्तिगत समीकरण, निजी समीकरण
Phase, कला
Photometry, ज्योति-मापन, [दीप्ति-मापन]
Photosphere, प्रकाश-मंडल
Physics, भौतिक विज्ञान
Plane, धरातल, समतल
Planet, ग्रह
Platform, चौकी
Plate, प्लेट
—holder, प्लेट-घर, [प्लेट-धारक]
Pleides, कृत्तिका
Polar-axis, ध्रुव-धुरी
Polarisation, पोलैराइज़ेशन, [ध्रुवन]
Pole, ध्रुव
— star, ध्रुव-तारा
Polish, पॉलिश
Power, magnifying, प्रवर्धन-शक्ति, [अभिवर्धकता]
Practical astronomy, क्रियात्मक ज्योतिष, [प्रयोगिक ज्योतिष, प्रयोगात्मक ज्यो०]
Pressure दबाव, [दाब]
Prism, त्रिपार्श्व, कुलम
Prismatic, त्रिपार्श्वयुक्त, [त्रि-पार्श्वीय]
Prominence, सूर्योन्नत ज्वाला, रक्त ज्वाला
Proper motion, निजी गति
Pump, पम्प
Pure spectrum, शुद्ध रश्मि-चित्र

Q

Quantum-theory, मात्रा-सिद्धान्त, [क्वांटम सिद्धान्त]
Quartz, स्फटिक

R

Radiant, सम्पात-मूल
Radio-active, रेडियम-रश्मि बिखरानेवाले, [रेडियमधर्मी]
Record (gramophone), तवा, [चूड़ी]
Reflect, परावर्तित करना
Reflecting telescope, दर्पण-युक्त दूरदर्शक, [परावर्त्तन दूरबीन]
Refracting telescope, ताल-युक्त दूरदर्शक, [वर्त्तन दूरबीन]
Relativity, theory of, सापेक्ष-वाद, [अपेक्षावाद]
Repulsion, प्रतिसारण
Resistance, बाधा, [प्रतिरोध]
Resisting medium, बाधा उत्पन्न करनेवाला माध्यम
Retina, नेत्रान्त-पटल, (कृष्णपटल)
Reversing layer, पलटाऊ तह
Revolution, प्रदक्षिणा, परिक्रमण
Revolving dome, घूमनेवाला गुम्बद
Rings, कुंडलियाँ

Rings of Saturn, शनि-वलय
Rotation, अक्ष-भ्रमण, परिभ्रमण

S

Satellite,, उपग्रह
Saturn, शनि
Secondary chromatic aberration, गौण रंग-दोष, (गौण वर्णापेरण)
Serenitatis, Mare, प्रशान्त सागर
Shooting star, छोटा उल्का
Sidereal, नाक्षत्र, [नाक्षत्रिक]
Silvering, कुलई
Sirius, लुब्धक
Slit, शिगाफ़, लम्बा छिद्र, [झिरी]
Slow (plate), मंद
Smoked glass, कालिख लगा शीशा
Solar eye-piece, सौर चक्षु-ताल
Solar system, सौर-जगत्
Spectrograph, रश्मि-विश्लेषक कैमेरा
Spectroheliograph, रश्मि-चित्र-सौर-कैमेरा
Spectroscopy, रश्मि-विश्लेषण
Spectrum, रश्मि-चित्र, [वर्ण पट]
—, impure, अशुद्ध र०
—, pure, शुद्ध र०
Spherical aberration, गोलीय दोष,[गोलापेरण]
Spherical astronomy, गोलीय ज्योतिष
Spherical Trigonometry, गोलीय त्रिकोणमिति
Spiral nebula, कुंडलाकार नीहारिका, [सर्पिल नी०]
Spot, the great red, बृहद्-रक्त-चिह्न
Star, shooting, छोटा उल्का
Stellar, नाक्षत्र, [नाक्षत्रिक]
Stereoscope, सैरबीन
Streamers, रश्मियाँ
Sun-spot, सूर्य-कलंक, [सूर्य के धब्बे]
Sun-spot cycle, सूर्य-कलंक चक्र
Survey, पैमाइश
Surveyor, क्षेत्र-मापक

T

Tail, पुच्छ
Telescope, altazimuth, दृग्-यन्त्र
Telescope, astronomical, ज्योतिष-सम्बन्धी दूरदर्शक, [ज्यौतिष दूरबीन]
—, Cassegranian, कैसिग्रेनियन दू०
—, equatorial, नाड़ी-मंडल दू० [निरक्षीय दू०]
—, Galilean, गैलीलियन दू०

Telescope, Newtonian, न्यूटोनियन दू०, [न्यूटनीय दू०]
—, reflecting, दर्पणयुक्त दू०, [परावर्त्तक दू०]
—, refracting, तालयुक्त दू०, [वर्त्तक दू०]
—, tower, अट्टालिका दू०
Temperature, तापक्रम
Terrestrial eye-piece, भूलोकस्थ चक्षु-खंड, [पार्थिव उपनेत्र]
Theory of Relativity, सापेक्षवाद, [अपेक्षावाद]
Total eclipse, सर्व ग्रहण, [पूर्ण ग्रहण]
Tower telescope, अट्टालिका-दूरदर्शक
Trail, धूम्र-चिह्न
Tranquilitatis, Mare, शान्ति सागर
Transit, गमन, [संक्रान्ति]
— circle, यामोत्तर चक्र, [संक्रान्ति यन्त्र]
—, of Mercury, रवि-बुध-गमन
—, of Venus, रवि-शुक्र-गमन
Trigonometry, spherical, गोलीय त्रिकोणमिति
Tripod, तिपाई
Twilight, संधि-प्रकाश, [संध्या-द्युति]

U

Ultra-violet, पराकासनी, [नील-लोहितोत्तर]
Umbra, परिच्छाया
Universe, विश्व
Uranus, वारुणी, यूरेनस

V

Vacuum, शून्य
Valve, वाल्व
Venus, शुक्र
View-finder, दृश्य-बोधक [दृश्य-अन्वेषक]
Volume, (घनफल), आयतन
Vulcan, वल्कन

W

Wave, तरंग
—-length, लहर-लम्बान, [तरंग-दैर्ध्य]

X

X-ray, एक्स रश्मि, [ऐक्स किरण, रंजन किरण]

Z

Zenith, खस्वस्तिक, [शिरोबिन्दु]
Zodiac, राशि-चक्र
Zodiacallig ht, राशि-चक्र-प्रकाश

अनुक्रमणिका

अंकों से पृष्ठ-संख्या समझना चाहिए; चित्रों की पृष्ठ-संख्या कोष्ठों के भीतर दी गई है

आ

इ

ई

उ

ए

ऐ

ओ-औ

क

ग

घ

फ